শরৎ বাঙ্ময়

राहुल वाङ्मय

राहुल-वाङ्मय

परामर्श

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

डॉ. नामवर सिंह

डॉ. निर्मला जैन

सम्पादन

कमला सांकृत्यायन

सम्पादन सहयोग

बसन्तकुमार कपूर

रामकुमार कृषक

संयोजन

जया पड़हाक

जेता सांकृत्यायन

राधाकृष्ण

राहुल वाङ्मय

R- 1500 Set

जीवनी और संस्मरण

जिल्द 3

ISBN 81-7119-186-x

राहुल-वाङ्मय
खण्ड : दो—जीवनी और संस्मरण—जिल्द : 3

प्रथम संस्करण : 1994
पहली आवृत्ति : 1998

मूल्य
1500 रुपये
(जीवनी और संस्मरण : खण्ड दो—4 जिल्दें)

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

साज-सज्जा : प्रशान्त

लेज़र कम्पोज़िंग
कम्प्यूटेक सिस्टम
मानसरोवर पार्क, दिल्ली-110032

मुद्रक
हिन्दुस्तान ऑफसेट प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

RĀHUL VĀNGMAYA
Part-2 : Jeevani aur Sansmaran : 4 Volumes
Rs. 1500.00



महापण्डित राहुल सांकृत्यायन : 'हर्न क्लिफ' के अध्ययन-कक्ष में–1956

प्रकाशकीय

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के युगान्तरकारी लेखक हैं। उनके ऐसा क्रांतिचेता लेखक पहले नहीं हुआ और बाद में भी, अभी तक तो नहीं ही हुआ है। वे एक व्यक्ति ही नहीं, एक संस्था थे। उनका सम्पूर्ण जीवन और समग्र लेखन, अपने देश और देशवासियों के लिए था। उन्होंने सदैव भारत के हित में ही सोचा और लिखा। अपनी आत्मकथा–जीवन-यात्रा–में भी उन्होंने अपने बारे में कम, भारत और भारत के बाहर युग-परिवर्तन की ऐतिहासिक स्थितियों को निर्मित करनेवालों के सम्बन्ध में ही अधिक लिखा है।

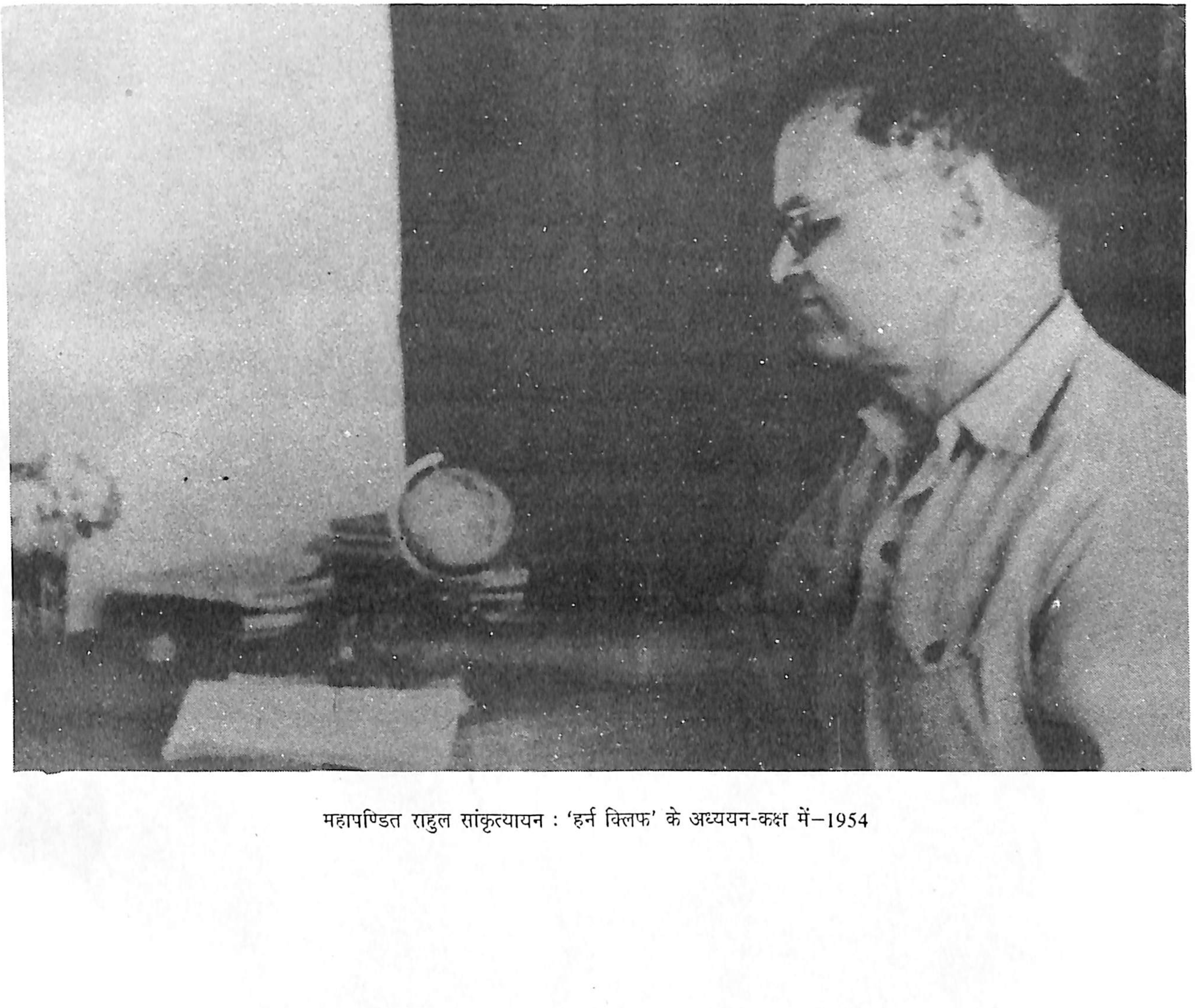
अपने जीवनी और संस्मरण-साहित्य में भी इसी प्रकार उन्होंने जीवन के सामाजिक, राजनीतिक संघर्ष और आत्म-बलिदान प्रेरित घटनाओं का प्रामाणिक एवं विशद विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने भारत के उन देशभक्तों और क्रांतिकारियों की जीवनियाँ लिखीं, जिन्होंने देश की आजादी और उस के मूलगामी विकास के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

ऐसे अप्रतिम लेखक राहुल सांकृत्यायन के रचना-लोक–'राहुल-वाङ्मय' के विभिन्न खण्डों–को विषयवार उनकी पुस्तकों के आधार पर नियोजित किया गया है।

'राहुल-वाङ्मय' के इस द्वितीय खण्ड की तीसरी जिल्द में हैं–जनमानस को आंदोलित कर क्रांति उत्पन्न करा देनेवाले युग-प्रवर्तक विचारक 'कार्ल मार्क्स' और परम्परागत चिन्तनधारा को नया मोड़ देकर विश्व का पहला समाजवादी राज्य स्थापित करनेवाले 'लेनिन' की बहुचर्चित जीवनियाँ, जो जीवन तथा श्रम के प्रति नयी आस्था जगाती हैं।

प्रकाशन में रह गयी किसी भी त्रुटि के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

विषयानुक्रम



महापण्डित राहुल सांकृत्यायन : 'हर्न क्लिफ' के अध्ययन-कक्ष में–1954

कार्ल मार्क्स

प्राक्कथन

नवीन मानव-समाज के विधाता कार्ल मार्क्स के जीवन और सिद्धांतों के सम्बन्ध में हिंदी में छोटी-मोटी पुस्तकों का बिल्कुल अभाव नहीं है, लेकिन जिसमें पर्याप्त रूप से मार्क्स की जीवनी, सिद्धांत और प्रयोग मौजूद हों, ऐसी पुस्तक का अभाव जरूर खटक रहा था, केवल इसी की पूर्ति के लिए यह पुस्तक लिखी गई। यह मेरिंग की पुस्तक 'कार्ल मार्क्स' पर आधारित है, इसके अतिरिक्त कुछ और पुस्तकों से भी मैंने सहायता ली है। मुझे संतोष होगा, यदि इस प्रयास से मार्क्स को समझने में हिंदी पाठकों को सहायता मिले।

यह पुस्तक उन चार जीवनियों में है, जिनको मैंने इस साल (1953 ई. में) लिखने का संकल्प किया था। 'स्तालिन', 'लेनिन' और 'कार्ल मार्क्स' के समाप्त करने के बाद अब चौथी पुस्तक 'माओ-चे तुंग' ही बाकी थी, जिसे जुलाई में समाप्त कर दिया।

लिखने में डॉ. महादेव साहा, साथी र
मेंश सिन्हा और साथी सच्चिानन्द शर्मा ने पुस्तकों के जुटाने में बड़ी मेहनत की। श्री मंगलसिंह परियार ने टाइप करके काम को हल्का किया, एतदर्थ इन सभी भाइयों का आभार मानते हुए धन्यवाद देता हूँ।

राहुल सांकृत्यायन

1
विषय-प्रवेश

वर्ग-शासन शुरू हुए हजारों वर्ष हो गए। जिस वर्ग के हाथ में आर्थिक साधन तथा सम्पत्ति थी, उसी के हाथ में शासन था और उसने अपनी इसी शक्ति के बल पर निर्बलों का शोषण और उत्पीड़न किया। इन हजारों वर्षों में समाज के तरह-तरह के विकास होते भी हमने जनता की अधिक संख्या को सारे संसार के भरण-पोषण के भार वहन करते, भूख और दीनता की चक्की में पिसते देखा, जब कि उन्हीं के श्रम के बल पर चन्द व्यक्ति बड़े सुख और विलास का जीवन बिताते रहे। इन चन्द व्यक्तियों ने दूसरे के धन, स्त्री या स्वतंत्रता के अपहरण के लिए युद्ध घोषित किया और बहुसंख्यक जन मृत्यु के मुँह में पड़े। इन चन्द व्यक्तियों ने जनों के लिए कानून बनाए—तुम्हें इस परिस्थिति में यह काम करना होगा, तुम्हें श्रम के लिए इस तरह से वेतन मिलेगा, तुम्हें इस तरह सोचना, बोलना और चलना होगा, और वे वैसा करते रहे। उन्होंने हाल तक, असह्य होने पर चन्द छोटी-छोटी बगावतों को छोड़, चुपचाप सारे अत्याचारों को सहा।

लेकिन, इन हजारों वर्षों में बहु-संख्यकों पर होते दारुण अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठानेवाले, उत्पीड़न-शून्य नये समाज का स्वप्न देखनेवाले भी जरूर पैदा हुए, यद्यपि उनकी संख्या कम थी, उनकी आवाज क्षीण थी, किन्तु शोषण, उत्पीड़न के बढ़ाव के साथ-साथ यह क्षीण आवाज भी ऊँची होती गई। मगर, जब तक वह आवाज अवास्तविक तथा आकाश से आती रही, तब तक उसमें वह ताकत नहीं आई, जो कि ठोस पृथ्वी-तल से उसके घने वायुमंडल में गूँजने पर पिछली एक शताब्दी के भीतर देखी गई।

मानव-समाज की आर्थिक विषमताएँ ही वह मर्ज है, जिसके कारण मानव-समाज में दूसरी विषमताएँ और असह्य वेदनाएँ देखी जाती हैं। इन वेदनाओं का अनुभव हर देश-काल में मानवता-प्रेमियों और महान् विचारकों ने दुख के साथ अनुभव किया और उनके हटाने का यथासंभव प्रयत्न भी किया। भारत में बुद्ध (563-483 ई. पू.), चीन में मो-ती (480-400 ई. पू.), ईरान में मज्दक (529 ई.), तिब्बत में मुने-चुने पाँ (1846-47 ई.) यहूदी संतों में अमाँ (800 ई. पू.), इसैया (746-700 ई. पू.), यूरोप में अफलातूं (427-347 ई. पू.), सैनेका (65 ई. पू.), सवोनरोला (145-298 ई.), आन्द्रेयाये, पीटर चेम्बरलैंड (1649 ई.), वोलूतेर (1649-1778 ई.), टामस स्पेन्स (1750-1814 ई.), विलियम गाडविन (1793 ई.), सेन्ट साइमन (1760-1825), फूरिये (1772-1837), प्रूधो (1809-35 ई.), चार्ल्स हाल (1805 ई.), राबर्ट आवेन (1771-1860 ई.) जैसे अनेक विचारक प्रायः ढाई सहस्राब्दियों तक उस समाज का स्वरूप देखते रहे, जिसमें मानव समान होंगे, उनमें कोई आर्थिक विषमता नहीं होगी, लूट-खसूट, शोषण-उत्पीड़न से वर्जित मानव-संसार उस वर्ग का रूप धारण करेगा, जिसका लाभ भिन्न-भिन्न धर्म मरने के बाद देते हैं।

लेकिन, विषमता के हटाने और साम्यवाद को स्थापित करने का स्वप्न देखनेवाले उस साधन को नहीं पा सके, न बतला सके, जिसके द्वारा मनुष्य की सामाजिक विषमता हटाई जा सके। पूर्वी और पश्चिमी सन्तों ने इसका उपाय हृदय-परिवर्तन को बतलाया। पुराने युग के लोगों की बात छोड़िए, 20वीं शताब्दी में भी गांधीजी

जैसे और बहुत-से पुरुष हृदय-परिवर्तन द्वारा समानता की स्थापना करना चाहते थे, और गाँधी-सम्प्रदाय के एक संत विनोबा भावे हृदय-परिवर्तन कर लोगों से जमीन दान में ले समानता स्थापित करने का स्वप्न देखते गाँव-गाँव पैदल घूम रहे हैं। सन्तों की आड़ में अपना उल्लू साधनेवाले भी जोर से प्रोपेगैंडा में लगे हुए हैं। वह समझते हैं कि कम्युनिज्म से बचने का यह बहुत अच्छा उपाय है। उनमें से कितने ही यह समझते भी होंगे, कि जिन समस्याओं–रोटी, कपड़े, वास का अभाव–के हल को अब तक दुनिया में कम्युनिज्म को छोड़कर किसी ने नहीं किया, और विनोबा का भूदान-यज्ञ भी उसके हल करने में सहायक नहीं हो सकेगा, लेकिन वह समझते हैं कि जब तक नैया अभी पूरी तौर से भरकर समुद्र के गर्भ में चली गई है, तब तक इस प्रोपेगैंडे से लोगों की आँखों में धूल तो झोंकी जा सकती है। अपनी महँगी जमीन को दान देनेवाले पुराने सामन्तों और जमींदारों में भी बिरले ही मिलेंगे। 'उड़ता सत्तू पितरों को' की कहावत को पूरा करनेवाले भले ही मिल जायँ। किसानों के संघर्ष से परेशान कुछ लोग अपने हाथ से पहले ही निकल-सी गई भूमि का दान करके पुण्य लूट रहे हैं, कुछ लोग ऐसी भूमि को दे रहे हैं, जिसका आबाद होना असम्भव या अत्यन्त व्ययसाध्य है, कुछ लोग नाम कमाने के लिए भूदान की घोषणा करके फिर उसे अपनों में ही वितरण कर देने की आशा से वैसा कर रहे हैं। इस तरह की भूमियों को निकाल देने पर कितनी भूमि बच रहती ? यदि उसमें कुछ अच्छी भूमि है, और उसे दलित जाति के बेखेतवाले मजूरों का दे दिया जाय, तो यह अच्छी बात है, इसे कोई नहीं इन्कार करता। लेकिन भूदान-यज्ञ न जमीन के भूखे लोगों की समस्या हल कर सकता है, न अनाज के भूखे लोगों की। उसी जमीन को एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने में कितना छटाँक अधिक अनाज पैदा होगा ?

वैज्ञानिक समाजवाद के युग से पहले यदि कोई हृदय-परिवर्तन या भूदान-यज्ञ जैसी बातों को करता, तो कोई बात भी थी, लेकिन आज जब साम्यवाद का सूर्य मध्याह्न पर पहुँचकर अपनी प्रखर किरणों को फैला रहा है, उस समय इस तरह की बातें करना या तो निरा बचपन है, या उसके भीतर भारी धोखा छिपा हुआ है।

ढाई हजार वर्षों से भिन्न-भिन्न स्वप्नद्रष्टाओं ने साम्यवादी समाज को लाने के लिए जो भी सोचा-किया था, उसके लिए मौखिक ही नहीं, बहुतों ने क्रिया के रूप में भी परिणत करना चाहा और भारी बलिदान के साथ। ईरान के मज्दक ने अपनी और अपने लाखों अनुयायियों की जानें इसी प्रयत्न में गँवाईं। लेकिन विषमता हटाने की समस्या वैसी की वैसी बनी रही। इस समस्या को हल करने का जिसने वैज्ञानिक ढंग निकाला, जिसने इस रोग का बारीकी के साथ निदान किया, और उसकी औषधि को भी परख-परखकर देखा, वह मार्क्स वस्तुतः नये युग का विधाता है, नये संसार के निर्माताओं में वह प्रथम है, और उसकी पैनी सूझ तथा परख उसे दुनिया का सर्वश्रेष्ठ विचारक सिद्ध करती है।

2

बाल्य और स्कूली जीवन (1818-35 ई.)

कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई, 1818 ई. को ट्रीर (ट्रेव्स) नगर में हुआ था, जो पश्चिमी जर्मनी के राइनलैंड के वेस्टफालिया इलाके में है। औद्योगिक युग के लिए सभी सामग्री वहाँ मौजूद है, क्योंकि लोहे-कोयले आदि की बड़ी-बड़ी खानें यहीं पर हैं, इसीलिए आगे चलकर राइनलैंड के जर्मनी का हथियारखाना बन गया। 19वीं सदी के प्रथम पाद में सामन्तवाद के भारी प्रभाव में होते भी जर्मनी लोहे, कोयले आदि के बारे में उदासीन कैसे रह सकता था ? इसीलिए राइनलैंड उद्योग-प्रधान होने लगा था, जिसका परिणाम था वहाँ पूँजीवादी और पूँजीपतियों के प्रभाव में वृद्धि। बर्लिन, लाइप्जिग, कोइनिग्सबर्ग के पुराने नगर अब कोलोन से पीछे पड़ते जा रहे थे, जो औद्योगिक राजधानी होने से प्रमुख स्थान ग्रहण करने लगा। राइनलैंड जहाँ एक ओर जर्मनी का

हथियारखाना है, वहाँ वह फ्रांस की सीमा पर पड़ता है, इसीलिए आगे लोहे-कोयले की यह भूमि फ्रांस के साम्राज्यवादियों के लिए सिरदर्द का कारण वन गई। इस प्रकार अपनी वाल्य आँखों से ही कार्ल को नई पूँजीवादी दुनिया के वातावरण में साँस लेने का मौका मिला।

कार्ल मार्क्स जातितः यहूदी थे। उनके दादा मार्क्स लेवी ट्रीर के यहूदियों के रब्वी (स्वामी या पुरोहित) थे, जिनका देहान्त 1798 ई. में हुआ था। कार्ल की दादी इवा मार्क्स मोजे-परिवार में पैदा हुई थीं, और वह कार्ल के सात वर्ष होने के समय मरी थीं। दादी का वंश एक शताब्दी से अधिक से रब्बी होता आया था। इस प्रकार कार्ल का जन्म ऐसे वंश में हुआ था, जिसे कट्टरपंथी ब्राह्मण का वंश कहा जा सकता है, यद्यपि इस कट्टरता से कार्ल का पाला नहीं पड़ा था। मार्क्स लेवी–पीछे लेवी हटा दिया, और उसकी सन्तानों में केवल मार्क्स ने ही अपने वंश का नाम रक्खा–के दो पुत्र सामुएल और हर्शल तथा दूसरी कितनी ही सन्तानें हुईं, जिनका विद्या से अधिक सम्बन्ध हुआ। सामुएल कार्ल का चचा था, जो 1781 ई. में पैदा होकर 1829 ई. में–कार्ल की 11 वर्ष की अवस्था में–मरा। वाप के मरने पर यही ट्रीर का रब्वी बना था। कार्ल का पिता हर्शल मार्क्स 1782 ई. में पैदा हुआ, और कार्ल के वीस वरस में होने के समय 1838 ई. में मरा। मार्क्स के होश सँभालते ही (1824 ई. में) हर्शल मार्क्स ने यहूदी धर्म छोड़ ईसाई धर्म को स्वीकार किया, और अब उसका नाम हाइनरिख मार्क्स पड़ गया। हर्शल या पीछे के हाइनरिख की पत्नी हेनरिटा प्रेसबुर्ग (हालेंड) के यहूदी की लड़की थी, जिसके बाप-दादा एक शताब्दी से अपने यहाँ यहूदी गुरु (रब्वी) होते आए थे। हेनरिटा 1863 ई. में मरी, अर्थात् जब कार्ल मार्क्स 48 वर्ष के होकर अपने क्रांतिकारी काम में पूरी तौर से जुट गए थे। यद्यपि वह अपनी बेसरो-सामानी की जिन्दगी में माँ की उतनी सहायता नहीं कर सकते थे, लेकिन उसके प्रति उनका सदा भारी स्नेह रहा। कार्ल मार्क्स के और भाई-बहनें थीं, जिनमें कार्ल के अतिरिक्त उनकी तीन बहनों में, साफी मास्ट्रिख्ट में श्मालहाउजेन नामक वकील की पत्नी, मई एमिली ट्रीर के कोनराडी इंजीनियर की पत्नी, लुइसी दक्षिणी-अफ्रीका में केपटोन के यूटा नामक व्यापारी की पत्नी का पता लगता है।

छोटा-बड़ा व्यापार और पुरोहिती (रब्वीगिरी) आम तौर से यूरोप में यहूदियों का व्यवसाय रहा है, लेकिन मार्क्स के पिता हाइनरिख उसे छोड़ चुके थे। वह ट्रीक के एक अच्छे वकील थे। पिता-माता का जीवन बड़ा ही शान्ति और सुख का था, इसलिए कार्ल का वाल्यकाल बड़ी स्वतन्त्रता और निश्चिन्तता में बीता। यद्यपि माँ शिक्षा-दीक्षा और शायद बुद्धि में भी पिछड़ी हुई थी–वह जन्म-भर टूटी-फूटी ही जर्मन बोल सकती थी–लेकिन पिता-माता का स्नेह और घर की खुशहाली वालक कार्ल को विरासत में मिली थी। माँ स्वप्न देखा करती थी, कि मेरा लड़का आगे चलकर भारी लक्ष्मीपात्र वनेगा, लेकिन पिता लक्ष्मी से ज्यादा सरस्वती के भक्त थे। अपने लड़के की अद्भुत प्रतिष्ठा को देखकर उनकी कल्पना दूसरी ही थी, यद्यपि वह भी यह नहीं चाहते थे कि उनका अद्भुत पुत्र युगप्रवर्तक होते हुए भी जीवन-भर आर्थिक कष्टों में पड़ा प्रतिगामी सरकारों द्वारा उत्पीड़ित हो दर-दर मारा फिरे। कार्ल मार्क्स का अपने परिवार के लोगों ही से स्नेह-सम्बन्ध नहीं था, वल्कि अपने मातृकुल के साथ भी वह बहुत घनिष्ठता रखते थे, विशेषकर अपने मामा फिलिप्स (हालैंड) के साथ।

उस समय भी जर्मनी में यूरोप की और जगहों की तरह यहूदियों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। इस प्रतिभाशाली जाति ने कला, ज्ञान-विज्ञान के हर एक क्षेत्र में अद्भुत प्रतिभाओं को जन्म दिया–यूरोपीय दर्शन का पिता स्पिनोजा यहूदी वंश में पैदा हुआ। आधुनिक और भावी संसार का नव-निर्माता कार्ल मार्क्स भी यहूदी माता-पिता का पुत्र था। आधुनिक संसार का सवसे बड़ा विज्ञानवेत्ता आइन्सटाइन भी इसी जाति में पैदा हुआ, लेकिन इतिहास के आरम्भ से ही यहूदियों को अछूत की तरह देश-देश में अधिकारवंचित और सम्मानरहित होकर मारे-मारे फिरना पड़ा। यहूदी खेती नहीं कर सकते थे। विद्यालयों में भी उनके साथ भेद-भाव रखा जाता था, इसलिए बुद्धिजीवी तथा सरकारी नौकरियों में जाना उनके लिए सम्भव नहीं था। नीच जाति समझ उनके साथ ब्याह-शादी करना भी लोग बहुत कम पसन्द करते। लेकिन, यहूदी भी अपने को ईसाइयों से कम नहीं समझते थे, इसलिए हमारे यहाँ की तरह उन्होंने भी अपनी अलग-अलग जात बना ली थी, और जात से बाहर शादी करनेवालों को पारसियों की तरह जाति-बहिष्कृत कर दिया जाता था। दूसरों के दुर्व्यवहार और अपनी

जाति-पाँत की संकीर्णता ने यहूदियों को केवल नीचा ही नहीं बना दिया था, बल्कि उनके लिए छोटी-मोटी दुकान और व्यापार छोड़कर जीविका का कोई रास्ता नहीं छोड़ रखा था। इसी जबर्दस्ती का यह फल हुआ कि इस जाति ने व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में आगे चलकर प्रमुखता हासिल की। पर ऐसी प्रमुखता राथ्सचाइल्ड, राकफेलर आदि कुछ इने-गिने परिवारों की ही हो सकती थी, अधिकांश यहूदी पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के नगरों के सबसे गरीब मुहल्लों और कस्बों में भारी दरिद्रता की जिन्दगी बिताते रहे। दुकान के साथ वह पहले ही से सूद पर रुपया भी लगाते थे, और सूदखोरों के प्रति लोगों की जैसी घृणा सभी देशों में देखी जाती है, वही यहूदियों के ऊपर हो गई। इस प्रकार केवल जाति-पाँत, सामाजिक बिलगाव तथा स्ववंशी ईसा मसीह के खून का अपराध ही यूरोप के ईसाई जन-साधारण का यहूदियों के खिलाफ होने का कारण नहीं बना, बल्कि उनकी सूदखोरी और बनियावृत्ति भी इसमें प्रधान कारण हुई। पीढ़ियों से चले आते ऐसे अपमान से मुक्त होने का एक ही रास्ता था : यहूदी धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म को स्वीकार करना। लेकिन, धर्म-परिवर्तन का अर्थ था सभी सगे-सम्बन्धियों से हमेशा के लिए विच्छेद, तथा अपनी कुलागत परम्पराओं और मान्यताओं का परित्याग। यह भावनाएँ कितनी शक्तिशाली हैं, हिन्दू इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं, ईसाई या मुसलमान होने पर उनकी क्या गति होती है, इसे वह जानते हैं। यहूदी धर्म छोड़कर ईसाई होने का मतलब केवल यही नहीं था, कि अब एक धर्म के सभी बन्धनों से आदमी मुक्त हो गया. अब वह सुअर को भी खा सकता है, और दूसरे कालातीत रीति-रिवाजों का भी पाबन्द नहीं, बल्कि ईसाई होने का मतलब था सामाजिक दासता से मुक्ति—अब वह अपने देशवासी दूसरे ईसाइयों की तरह अपने वर्ग के अनुसार स्थान पाने का अधिकारी था। उधर यहूदी पुरोहित वर्ग और समाज भी इतना जड़ था कि धर्म-ग्रंथों और रीति-रिवाजों में जरा भी अविश्वास प्रकट करने पर जातिच्युत कर दिया करता था। कार्ल मार्क्स के पिता का सम्बन्ध वकील होने से अब व्यापारियों और रब्बी के समाज से भिन्न साधारण जर्मन समाज से अधिक पड़ता था। हाइनरिख मार्क्स को यहूदी जाति से अधिक एशिया के प्रति भक्ति थी। वह एशिया के वीरतापूर्ण इतिहास और उसके वीरों को बड़ी आत्मीयता के साथ देखते थे। यह वह समय था जब कि कितने ही यहूदी जर्मनी में अपने बाप-दादों का धर्म छोड़ ईसाई बन रहे थे। हाइनरिख हाइन (महाकवि), एडवर्ड गांज आदि ने भी सामाजिक मुक्ति तथा जन्मभूमि की साधारण जनता में मिल जाने के ख्याल से ईसाई धर्म स्वीकार किया था। इस प्रकार 1824 ई. में अपनी बेटे की 6 साल की उमर में हाइनरिख मार्क्स का ईसाई बनना बिल्कुल नई घटना नहीं थी। राइनलैंड में यहूदियों की सूदखोरी और बनियापन के कारण लोगों की जो अपार घृणा यहूदियों के प्रति थी, उससे मुक्त होने का यही सबसे आसान रास्ता था। कार्ल अभी क-ख सीखने लगा था, जब कि यह परिवर्तन परिवार में हुआ। पिता पहले ही से उदार विचार के थे, उसपर यह धर्म-परिवर्तन, फिर यदि मार्क्स को घर में यहूदी कट्टरता की गन्ध भी देखने को न मिली हो, तो आश्चर्य क्या ? यहूदी धर्म और उसकी कट्टरता को तो कार्ल के घर से बाप ने ही विदा कर दी थी। हाइनरिख ने अपने प्रतिभाशाली पुत्र को बहुत-से पत्र लिखे थे, जिनमें कहीं भी यहूदीपन की गन्ध नहीं मिलती। मार्क्स को आगे बढ़ने के लिए पुराने पक्षपातों से उलझने या लड़ने की जरूरत नहीं थी।

कार्ल को ट्रीर के स्कूल में पढ़ने बैठा दिया गया, शायद उसी समय जब कि परिवार ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। 25 अगस्त, 1835 ई. को सत्रह साल की उम्र में मार्क्स ने ट्रीर के कालेज की अपनी पढ़ाई खतम करके प्रमाणपत्र पाया। इस सत्रह वर्ष के जीवन में कोई ऐसी उल्लेखनीय घटनाएँ नहीं घटीं, अथवा उन्हें जमा करने का मौका नहीं मिला, इसलिए मार्क्स के इस जीवन के बारे में बहुत बातें ज्ञात नहीं हैं। मार्क्स के स्कूल के सहपाठियों से भी इस विषय में सहायता नहीं मिली। जिसका कारण यह है कि लेखकों ने बहुत पीछे, प्रायः मार्क्स की मृत्यु के बाद सामग्री संचय करने का प्रयत्न किया। ट्रीर के विद्यार्थी-जीवन के बारे में कहा जाता है, ग्रीक और लातिन के महान् ग्रंथों के अत्यन्त कठिन वाक्यों के अर्थ लगा देना कार्ल का बाएँ हाथ का खेल था। लातिन भाषा पर विषय और भाव दोनों की दृष्टि से कार्ल का असाधारण अधिकार था। धर्म और इतिहास के प्रति शायद अभी कार्ल की उतनी दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन उसके जर्मन निबन्ध को परीक्षकों ने दिलचस्प बतलाया था जिसका विषय था, 'व्यवसाय चुनने से पहले एक तरुण के विचार'। कार्ल ने अपने

विचार इस विषय पर गतानुगतिक तौर से नहीं प्रकट किए थे। उसने लिखा था, हम सदा ऐसे पेशे को अख्तियार नहीं कर सकते जिसके बारे में हम अपने को योग्य समझते हैं। हम जब इसके बारे में निश्चय करने की स्थिति में होते हैं, उसके पहले समाज के साथ हमारे सम्वन्ध परिपक्व (रूपान्तरित) होने लगते हैं। समाज और उसके सम्बन्धों के बारे में इस तरह के परिवर्तन का ख्याल बतलाता है कि तरुणाई के आरंभिक दिनों में ही कार्ल का दिमाग कितना दूर तक सोच सकता था।

3
युनिवर्सिटी-जीवन (1835-41 ई.)

वकील पिता अपने पुत्र को भी शायद एक सफल वकील बनाना चाहता था, इसलिए ट्रीर की पढ़ाई समाप्त करने के बाद पिता की सलाह से कार्ल मार्क्स 1835 ई. के शरद में बोन् युनिवर्सिटी में दाखिल हुआ, जहाँ पर वह एक साल तक कानून पढ़ता रहा। बोन के इस विद्यार्थी-जीवन के बारे में बहुत कम बातें मालूम हैं। पिता की चिट्ठियों में इस बात की शिकायत देखी जाती है कि कार्ल पैसों को बरबाद करता है।

1. प्रेम

कार्ल अब अठारह वर्ष का था। ऐसे प्रतिभाशाली पुरुष के विचारों का इस अवस्था में भी अधिक परिपक्व होना स्वाभाविक है। मार्क्स आगे चलकर कभी गतानुगतिक नहीं रहा। उसके इस स्वभाव का परिचय इन आरंभिक दिनों में भी लग सकता था। हाइनरिख मार्क्स वकील और ट्रीर के सामन्त तथा प्रीवी कौंसिलर लुडविग फान-वेस्टफालेन का आपस में घनिष्ठ परिचय था। यह परिवार उन कुलीन सामन्तों या प्रशिया के प्रतापी नौकरशाहों से सम्बन्ध नहीं रखता था, वल्कि वह अपनी असैनिक सेवाओं से आगे बढ़ा था। लुडविग पहले ब्रुन्सविक के ड्यूक फर्डिनांड का असैनिक-सेक्रेटरी रह चुका था। ड्यूक पश्चिमी जर्मनी की ओर से पन्द्रहवें लुई के सातसाला युद्धों में लड़ा था जिसमें फिलिप वेस्टफालेन ड्यूक का चीफ-आफ-स्टाफ रहा था। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इंग्लैंड के राजा ने फिलिप को सम्मानित करते हुए सेना का अड्जूटेंट-जेनरल बनाना चाहा, लेकिन उसने उसे स्वीकार नहीं किया। यह मालूम ही है कि फ्रांस की छेड़ी लड़ाइयों में इंग्लैंड और जर्मनी (उस समय संयुक्त जर्मनी अभी दूर का स्वप्न था) एक-दूसरे के साथी थे। इंग्लैंड के इसी सम्बन्ध के कारण फिलिप ने एक स्काच बैरन की लड़की से ब्याह किया था। अपनी सेवाओं के लिए उसे सामन्ती उपाधि फानवेस्टफालेन मिली थी। फिलिप के पुत्रों में एक का नाम लुडविग फानवेस्टफालेन था, जो पिता की सफलताओं के कारण अव साधारण कुल का न होकर एक छोटा-मोटा सामन्त समझा जाने लगा था। यद्यपि लुडविग धन, प्रभुता और मान में दूसरे जर्मन सामन्तों की स्थिति में था, लेकिन भिखमंगे युंकरों का भी दिमाग जैसे आसमान पर रहता है, वह रोग उसे नहीं लगा था। इसी लुडविग की लड़की जेनी थी, जो साल्जवेडेल में 12 फरवरी 1824 ई. को—अर्थात् कार्ल मार्क्स के जनम से चार साल पहले—पैदा हुई थी। उस समय जेनी का पिता साल्जवेडल में लांडराट (मजिस्ट्रेट, शरीफ) था। दो वर्ष बाद वहाँ से उसकी बदली ट्रीर में हो गई, और अव वह सरकार का परामर्शदाता था।

राइनलैंड जर्मनी के दूसरे भागों से भिन्नता रखता था। वह सामन्तों का नहीं, उद्योगपतियों का प्रदेश वनता जा रहा था। वह जर्मनी के चिरप्रतिद्वंद्वी फ्रांस की सीमा पर पड़ता था, इसलिए वहाँ असाधारण योग्यतावाले ही आदमी को शासक बनाकर भेजा जाता था। प्रशिया के महामंत्री हार्डेनबेर्ग की इसीलिए लुडविग फानवेस्टफालेन पर खास तौर से नजर पड़ी। लुडविग साधारण सामन्तों से कितना विलक्षण था, यह इसी से मालूम होगा कि कार्ल मार्क्स जीवन के अन्त तक अपने ससुर का नाम वड़े सम्मान और कृतज्ञतापूर्वक लिया करते थे, और लिखते वक्त उसे प्रिय पितृतुल्य मित्र करके सम्बोधित करते थे। लुडविग सुशिक्षित था, वह होमर की कविताओं

के पृष्ठ के पृष्ठ दोहरा सकता था, शेक्सपियर के बहुत-से नाटक उसे कंठस्थ थे—अंग्रेजी और जर्मन दोनों में। लुडविग के घर में विद्या और साहित्य का बड़ा ही सुन्दर वातावरण था। उसके पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। कार्ल जैसे प्रतिभाशाली तरुण की जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए वह साधन-सम्पन्न था। ऐसी अवस्था में यदि बचपन से ही कार्ल मार्क्स का लगाव वेस्टफालेन परिवार से हो जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं। लुडविग इस मेधावी बच्चे को बहुत प्यार करता था। उसकी पुत्री जेनी और कार्ल बचपन से ही साथ खेला करते थे। उन्हें पता नहीं लगा कि कब बचपन का वह स्नेह दो तरुण-हृदयों के प्रेम में परिवर्तित हो गया। जेनी एक असाधारण सुन्दरी लड़की थी, लेकिन उसका स्वभाव दूसरी सामन्त-कुमारियों से बिल्कुल अलग था। उसके चाहनेवाले बहुत-से थे। वह अपने पिता के कुल और दर्जे के प्रभाव से किसी धनी और प्रभावशाली सामन्त-कुमार से ब्याह करके सुख और विलास का जीवन बिताती। जेनी ने यदि अपने ऐसे बालपन के साथी के साथ अपने जीवन का गठबंधन किया, जिसका भविष्य 'खतरे से भरा और अनिश्चित' (मार्क्स के पिता के शब्दों में) था, तो इसे यही कहना चाहिए कि जेनी बिल्कुल दूसरी ही तरह की लड़की थी। मार्क्स का पिता उसके लिए 'देवकन्या जादूगरनी' जैसे शब्द इस्तेमाल करता था और साथ ही वह उसके प्रेम को इतना पक्का समझता था कि कोई राजकुमार भी उसे कार्ल से छीन नहीं सकता था। पिता ने मार्क्स के जीवन को जिस तरह का खतरे से भरा और अनिश्चित समझा था, वह उसके सामने कुछ भी नहीं था, जैसा कि जेनी को भुगतना पड़ा। लेकिन जेनी को इस अद्भुत पुरुष का अखंड प्रेम मिला था, जिसे वह बहुमूल्य समझती थी। मार्क्स जेनी के बाल्य-प्रेम और उसके परिवार को पैंतालीस वर्ष (1863 ई.) की उमर में अत्यन्त मधुर शब्दों में याद करता था। वह उस साल अपनी माँ की अन्त्येष्टि के लिए ट्रीर गया था, जब कि लिखा था : "प्रतिदिन मैं पुराने वेस्टफालेन भवन (रोमेरे स्ट्रार्स) की तीर्थ-यात्रा करने जाता था। वह सारे रोमन ध्वंसावशेषों से भी अधिक मेरे लिए मनोहर मालूम होता था, क्योंकि वह मुझे अपनी तरुणाई के सुखमय दिनों की याद दिलाता था और इसी ने मेरी निधि को एक समय अपने भीतर सुरक्षित रक्खा था। प्रतिदिन दाहिने-बायें से मुझसे लोग ट्रीर की अत्यन्त सुन्दरी लड़की, 'नृत्य की रानी' के बारे में पूछते थे।" एक आदमी के लिए यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि उसकी पत्नी सारे नगर की स्मृति में 'जादूगर राजकुमारी' के तौर पर याद की जाती हो। मृत्यु के समय तक मार्क्स अपने से पहले ही दुनिया छोड़ गई जेनी को अपार स्नेह के साथ याद करता था।

बचपन से बढ़ते-बढ़ते दोनों का स्नेह तरुणाई के प्रेम में बदल गया था। ऐसी स्थिति में दोनों तरुण हृदयों को बिछोह असह्य मालूम होता था, लेकिन पढ़ाई तो पूरी करनी थी। मार्क्स पढ़ने के लिए जब बोन् गया, उसी समय बिना अपने माता-पिताओं की अनुमति से दोनों ने विवाह-बन्धन में बँधने का संकल्प कर लिया। वकील हाइनरिख मार्क्स से लुडविग फानवेस्टफालेन का दर्जा, कुल और मर्यादा बहुत ऊँची थी, लेकिन जब उसे मालूम हुआ, तो उसने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकृति दे दी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि दोनों का ब्याह अभी हो गया। जेनी का पीहर पीछे भी जर्मनी में बहुत प्रभावशाली था। उसका सौतेला बड़ा भाई फार्डिनेंड फानवेस्टफालेन प्रशिया का गृहमन्त्री, सामन्तों का कट्टर पक्षपाती था। वह जेनी से पन्द्रह वर्ष बड़ा था। जेनी का सगा भाई एडगर फानवेस्टफालेन था। वह अपने यशस्वी बहनोई के साथ अच्छा सम्बन्ध रखता था, वैयक्तिक ही नहीं, राजनीतिक भी। यद्यपि वह पक्का मार्क्सवादी नहीं बन सका, लेकिन उसने कम्युनिस्ट घोषणा पर हस्ताक्षर किए। उसके दिल में अपनी बहन और बहनोई के प्रति सदा स्नेह रहा और इसी के उपलक्ष्य में बहन और बहनोई ने अपने लड़के का नाम एडगर रक्खा था।

2. बर्लिन युनिवर्सिटी में (1836-41 ई.)

बोन् की पढ़ाई बेटे से भी अधिक बाप को नापसन्द थी। बाप एक प्रशियन देशाभिमानी था और प्रशिया का केन्द्र या बर्लिन। इसलिए, जैसा कि उसने 1 जुलाई, 1836 के पत्र में लिखा था, अपने पुत्र को बर्लिन युनिवर्सिटी में राजनीतिक अर्थशास्त्र और कानून पढ़ने के लिए भेजा। शायद पिता को ऐसा करना इसलिए भी जरूरी समझ पड़ा कि सामन्त कुमारी से ब्याह करना ठट्ठा नहीं है, उसे सुखी रखने के लिए कार्ल को अधिक धन

और पद की आवश्यकता होगी जिसके लिए प्रशिया की राजधानी में जाकर उसकी शिक्षा और परिचय प्राप्त करना अधिक सहायक होगा। मार्क्स अब अपनी प्रेमिका से दूर जा रहा था, जो कि उसके लिए प्रिय नहीं था। जहाँ तक मार्क्स का सम्बन्ध था, वह राइनलैंड को ज्यादा पसन्द करता था, अधिक सर्द बर्लिन उसे पसन्द नहीं थी। मार्क्स की प्रार्थना पर दोनों के पिता-माताओं ने जेनी के साथ पत्र-व्यवहार करने की उसे अनुमति दे दी थी, तो भी जेनी का पहला पत्र बर्लिन में उसे तब मिला, जबकि वहाँ रहते उसे एक साल हो गए।

सन् 1837 ई.–जब कि वह उन्नीस साल का हो गया था–से मार्क्स के जीवन पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री हमें मिलने लगती है, जिसमें उसके अपने पत्र भी सम्मिलित हैं। 10 नवम्बर, 1837 को मार्क्स ने घर पर एक पत्र भेजा था। उससे उसके साल भर के बर्लिन के जीवन के बारे में कितनी ही बातें मालूम होती हैं : उसे ज्ञान की अपार पिपासा थी। वह अपना सारा समय उसी को तृप्त करने में लगाता था। वह अपने उच्च विचारों पर पहुँचने के लिए अपार मेहनत करने में सक्षम होते भी अपनी कड़ी आलोचना करता था। 22 अक्तूबर, 1836 को कार्ल ने युनिवर्सिटी की प्रवेशिका परीक्षा पास की। प्रोफेसरों के लेक्चरों की वह कोई पर्वाह नहीं करता था, और न कानून के अनिवार्य व्याख्यानों में ही शामिल होता था। युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों में केवल एडवर्ड गांज ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसका प्रभाव मार्क्स के मानसिक विकास पर पड़ा। वह गांज के फौजदारी कानून और प्रशिया के दीवानी कानून के व्याख्यानों को सुनने जाता, और गांज भी अपने विद्यार्थी के मेहनती स्वभाव की प्रशंसा करता था। लेकिन मार्क्स ने कानून के ऐतिहासिक सम्प्रदाय की कड़ी खबर अपने आरंभिक लेखों में ली थी, उससे ही मालूम होता है कि कानून के प्रति उसकी आस्था कैसी थी। गांज दर्शन का भी पंडित था, वह भी उस सम्प्रदाय का विरोधी था। इस प्रकार स्पष्ट है कि गांज के ऐसे विचारों का प्रभाव तरुण मार्क्स के ऊपर पड़ा था। मार्क्स के कथनानुसार वह इतिहास और दर्शन के साथ कानून को केवल सहायक-अनुशासन के तौर पर ही पढ़ता था। अब उसकी इतिहास और दर्शन में बहुत दिलचस्पी थी, लेकिन युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों के लेक्चर ऐसे नहीं होते थे, जिनसे मार्क्स के हृदय में कोई आकर्षण पैदा होता। हेगेल की गद्दी पर अवस्थित गबलर के तर्कशास्त्र-सम्बन्धी व्याख्यानों को अनिवार्य होने ही से वह सुनने जाता था। गबलर को वह हेगेल का अत्यन्त निकृष्ट अनुयायी मानता था। कार्ल मार्क्स वस्तुतः स्वतंत्र विचार का था। उसके दिल में ज्ञान की प्यास और लगन भी अत्यधिक थी, लेकिन वहाँ के प्रोफेसर उसकी तृप्ति नहीं कर सकते थे। दस वर्ष में युनिवर्सिटी जो उसे नहीं दे सकती थी, वह एक साल के भीतर अपने अध्यवसाय से प्राप्त कर सकता था।

प्रतिभाशाली तरुण के हृदय में एक बार कविता-कामिनी का प्रेम जरूर पैदा होता है। तरुण कार्ल मार्क्स भी उससे बच नहीं सका। उसने तीन कापियाँ अपनी कविताओं से भर ली थीं, जिनको 'मेरी प्यारी और सदा की प्रियतमा' जेनी फानवेस्टफान को समर्पित किया था। दिसम्बर, 1836 में ये कविताएँ जेनी के हाथ में थीं जिसने मार्क्स की बहन साफी के लेखानुसार हर्ष-विषाद के अश्रुओं के साथ उनका स्वागत किया था। लेकिन जान पड़ता है, तरुण प्रेमी का प्रेमिका के वियोग के प्रथम वर्ष ने कविता की ओर जो प्रेरणा दी थी, वह आगे सूख गई, क्योंकि उसके एक साल बाद के पिता को लिखते हुए अपने पत्र में उसने अपनी कविता को तीन कौड़ी का बतलाते हुए कहा था : "चौरस और आकृतिहीन कल्पना है, कोई स्वाभाविक नहीं, सभी बातें हवाई, अस्ति (है) और भवति (होता) है, जो है और जो होगा, दोनों में जबर्दस्त विरोध। कभी कल्पना की जगह केवल अलंकारों की प्रतिध्वनि।" इतने दोषों के गिनाने के बाद वह इतना स्वीकार करता है कि कविता की ज्वाला के लिए अनुभूति और प्रयत्न की शायद कुछ लालसा थी, सभी दोषों के रहते हुए भी। इसमें सन्देह नहीं, मार्क्स आलंकारिक भाषा के प्रयोग में जर्मन साहित्य के महान् निर्माताओं के बराबर पहुँचा था। शायद कविता देवी की यह आरंभिक आराधना ही थी जिसने उसे अपनी गम्भीर लेखनी को कितने ही अंशों में सुगम बनाने में सहायता प्रदान की।

मार्क्स ने अपने पत्र में घर को लिखा था : "कविता की ओर तो मेरी मामूली-सी यों ही दिलचस्पी है, मुझे तो दर्शन से भिड़ना है।" वह अब दर्शन की जो भी पुस्तकें मिलतीं, उनके गम्भीर अध्ययन में डूबा रहता

था।

यूरोप का अद्वितीय दार्शनिक हेगेल (1770-1831) की कर्मभूमि जर्मनी की यही नगरी बर्लिन थी। अब भी बर्लिन युनिवर्सिटी में उसकी मेधा की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी, लेकिन जैसा कि ऊपर बतलाया, अब उसकी गद्दी पर चापलूस तीसरी श्रेणी के आदमी बैठाए गए थे। 1837-38 ई. में मार्क्स को कितनी ही बार यह ख़्याल आता रहा होगा—यदि मैं छ-सात वर्ष पहले यहाँ आया होता। जर्मन दर्शन के अतिरिक्त वह ग्रीक दर्शन को भी बड़े ध्यान से पढ़ रहा था। पुस्तकों के पढ़ते समय उसकी एक आदत यह भी हो गई थी कि वह उनका सार उतार लेता। मार्क्स ने इतिहास, कला और दर्शन की कितनी ही अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों का संक्षेप कर लिया था। तैकितस की सारी गेरमानियों का उसने जर्मन भाषा में अनुवाद कर डाला। ग्रीक, लेटिन और जर्मन को पर्याप्त न समझकर उसी समय उसने अंग्रेजी और इतालियन पढ़ने की भी आवश्यकता समझी और उसके लिए कुछ प्रयत्न भी किया। उस समय के आरंभिक प्रयत्न और सफलता के बारे में उसने लिखा था : बहुत-सी रातें जागतें बीतीं, बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं और बहुत-सी भीतरी और बाहरी प्रेरणाएँ प्राप्त कीं।

वह जिस तरह से तन्मय होकर परिश्रम कर रहा था, उसका स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा और डाक्टरों की सलाह से उसे बर्लिन के पड़ोस के मछुओं के गाँव स्ट्रालाउ में जाकर रहना पड़ा। वहाँ जल्दी ही उसका स्वास्थ्य ठीक हो गया। युनिवर्सिटी के दूसरे वर्ष (टर्म) के लिए तैयार होकर वह फिर जुट पड़ा। यद्यपि उसकी जिज्ञासा का क्षेत्र बहुत विस्तृत था, लेकिन धीरे-धीरे उसका ध्यान हेगेल के दर्शन की ओर विशेष तौर से केन्द्रित होने लगा। पहले जब हेगेल को उठाया, तो वह उसे बिल्कुल पसन्द नहीं आया। लेकिन अस्वस्थ रहने के समय उसने फिर उसको पढ़ना शुरू किया, और अब उसमें उसे रस आ रहा था। हेगेल के दर्शन की बारीकियाँ उसे अपनी ओर खींच रही थीं।

मार्क्स ने घर आने के लिए पिता की अनुमति माँगी, लेकिन पिता समझता था कि जेनी के पास रहने पर लड़के की पढ़ाई में बाधा होगी, इसलिए उसने अगले वर्ष की ईस्टर की छुट्टियों में आने के लिए कहा। पुत्र कितना ही कहता रह गया कि मुझे आपसे कितनी ही बातों पर विचार करना है, लेकिन पिता मानने के लिए तैयार न हुआ। 1837 ई. में अब पिता का स्वास्थ्य भी उतना अच्छा नहीं था। प्रश्न पूछकर पिता ने स्वयं मार्क्स की बर्लिन की दिनचर्या के बारे में लिखा था : "भगवान् हमें बचाये ! कोई व्यवस्था नहीं। विज्ञान के सभी क्षेत्रों में घुसना और घूमना तेल के चिराग के मन्द प्रकाश में सिर मारना है। विद्यार्थियों के ड्रेसिंग गौन में बालों में बिना कंघी किए पाठ में जाना, फिर हाथ में बियर का गिलास लेकर मन परिवर्तन करना। सामाजिक मेल-जोल से विमुखता और सभी उचित बातों का परित्याग, यहाँ तक कि अपने पिता को भी गौण स्थान देना, सामाजिक कला को एक गन्दी कोठरी में सीमित करना, जहाँ जेनी के प्रेमपत्र भयंकर अस्त-व्यस्त रूप में पड़े हैं तथा जहाँ पर पिता के सदाशयपूर्ण शिक्षावाले शायद आँसुओं के साथ लिखे गए पिता के पत्र, पाइप जलाने के लिए इस्तेमाल होते हैं, इससे कहीं अच्छा है, यदि वह इस अस्त-व्यस्तता में न पड़ किन्हीं तीसरे प्रकार के आदमियों के हाथ में पड़ जाते।" मार्क्स के पिता को पुत्र की फजूलखर्ची की बड़ी शिकायत थी : "मेरा लायक पुत्र प्रतिवर्ष सात सौ डालर खर्च करता है, मानो हम पैसे से बने हों। और वह सभी हिदायतों के विरुद्ध तथा सभी रिवाजों के ख़िलाफ, क्योंकि धनी-से-धनी विद्यार्थी को पाँच सौ डालर से अधिक की जरूरत नहीं पड़ती।" यद्यपि पिता यह भी मानता था कि कार्ल साधारण अर्थों में फजूलखर्च नहीं है, बल्कि हर एक आदमी का हाथ लूटने के लिए कार्ल की पाकिट पर रहता है। इसी पत्र में पिता ने घर आने की अनुमति न देते हुए लिखा था : "इस वक्त घर आना बेवकूफी होगी। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि तुम क्लास के व्याख्यानों—जिसके लिए पैसा देना पड़ता है—की कोई पर्वाह नहीं करते, तो भी मैं जोर देता हूँ कि तुम्हें शिष्टाचार का पालन करना चाहिए।" अन्त में पिता ने ईस्टर के समय घर आने की अनुमति देते लिखा था, वह इच्छा होने पर दस दिन पहले भी आ सकता है।

यद्यपि पिता अपने पत्रों में अक्सर पुत्र की हृदयहीनता की शिकायत करता था, लेकिन वस्तुतः मार्क्स का यह स्वभाव नहीं था। पिता या किसी के साथ भी वह हृदयहीन नहीं हो सकता था। अपने सम्बन्धियों

के साथ तो आजीवन उसका सौहार्द्र रहा। मार्क्स अपने पिता को अपने पत्रों में समझाने की कोशिश करता था। इन पत्रों की पंक्तियों में उसके नवार्जित ज्ञान और स्वतंत्र प्रतिभा की भी छाप होती थी, लेकिन शायद अब पिता के लिए उन पंक्तियों का समझना आसान नहीं था। पिता के लिखने पर उसी साल नहीं, बल्कि अगले ईस्टर में भी आने का ख्याल मार्क्स ने छोड़ दिया। वस्तुतः जेनी को छोड़ देने पर बर्लिन में अब अपनी ओर खींचने के लिए जितने आकर्षण थे, उतने ट्रीर में नहीं हो सकते थे। और यह भी कहना मुश्किल है कि जेनी और विद्या दोनों के आकर्षण में कौन अधिक शक्तिशाली है। मार्क्स ने अपने निश्चय की सूचना 10 फरवरी, 1838 के पत्र द्वारा दी थी। उस समय अभी-अभी हाइनरिख मार्क्स पाँच सप्ताह की बीमारी से उठे थे। लेकिन यह स्वास्थ्य-सुधार देर तक कायम नहीं रहा। पेट की बीमारी थी जो फिर बिगड़ गई और तीन महीने बाद 10 मई, 1838 को बूढ़ा पिता चल बसा। वह अपने पुत्र को नहीं समझ सका। उसने विद्या में तन्मय तथा पैसों का कोई मूल्य न समझनेवाले पुत्र को हृदयहीन समझा था, लेकिन असली बात यह नहीं थी। मार्क्स का स्नेह अपने पिता के प्रति सदा रहा।

3. हेगेल का दर्शन

पिता की मृत्यु के बाद भी तीन वर्ष तक मार्क्स ने अपने अध्ययन को बर्लिन में जारी रखा। हेगेल के दर्शन ने उसे अपनी ओर इतना खींचा था कि वह उसके अध्ययन के हर एक साधन को ढूँढ़ने में लगा रहता। यद्यपि हेगेल की गद्दी पर कोई योग्य प्रोफेसर नहीं था, लेकिन बर्लिन में तरुण हेगेलियों का एक गिरोह था जिसने मार्क्स को जल्दी ही अपनी ओर खींच लिया। उस समय हेगेल का दर्शन प्रशिया का सरकारी दर्शन माना जाता था, और संस्कृति-मन्त्री अल्टेनस्टाइन और उसके प्रीवी कौंसिलर (निजी पार्षद) योहानेज शूल्जे का उस ओर विशेष ध्यान था। हेगेल राज्य की बड़ी महिमा गाता था, और कन्फूशी की तरह व्यक्ति के विरुद्ध राज्य को सर्वोपरि मानना उचित समझता था। ऐसे दार्शनिक का राज्य क्यों न ख्याल करता ? हेगेल ने राजतन्त्र को शासन की सबसे अच्छी व्यवस्था बतलाया था, और यह भी कहता था कि प्रभुताशाली वर्ग को शासन करने में कुछ अप्रत्यक्ष अधिकार मिलने चाहिए, तो भी राजा की शक्ति को निर्बल नहीं करना चाहिए। वह आजकल के संविधानों की तरह जनता के प्रतिनिधियों की शासन-सभा में जरूरत नहीं समझता था। यद्यपि राजनीति में इस तरह वह प्रतिक्रियावादी था, लेकिन द्वन्द्वात्मक दर्शन को वह मानता था, उसकी धारा बिल्कुल दूसरी ओर ले जा रही थी। हेगेल के दर्शन के अनुसार अस्ति (है, भव) एक चीज है जिसका प्रतिद्वन्द्वी नास्ति है। इन दोनों के विरोधी समागम से एक तीसरी उच्च धारणा भवित (होती है) निकलती है। उसके अनुसार हर एक चीज उसी एक ही समय 'है' भी और 'नहीं' भी है, क्योंकि हर एक चीज दीपक की लौ की तरह सदा परिवर्तन की स्थिति में, सदा विकास और पतन की स्थिति में है। इस दर्शन के अनुसार विकास की प्रक्रिया निम्न से उच्चतर रूप में निरन्तर परिवर्तित होती रहती है।

हेगेल यद्यपि राजसत्ता का पक्षपाती था, लेकिन उसने धर्म के प्रति उस तरह के भाव नहीं दिखलाए, इसीलिए प्रशियन शोषक धर्म को मुख्य स्थान देने के लिए तैयार नहीं थे। हेगेल के दर्शन को राजनीति में लाकर उसे क्रांतिकारी विचारधारा का रूप देना मार्क्स का काम था, लेकिन उससे पहले ही इस दर्शन ने धार्मिक क्षेत्र में अपनी तोड़-फोड़ की नीति शुरू कर दी थी। हेगेल ने घोषित किया था कि बाइबिल की कहानियों को भी वैसा ही मानना चाहिए, जैसी दूसरी आम कहानियों को। उनके लिए सच्चे ऐतिहासिक आधार की आवश्यकता नहीं है। इस विचारधारा ने डेविड स्ट्रास नामक एक तरुण को ईसा की जीवनी लिखने की प्रेरणा दी, जो 1835 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के निकलते ही बड़ी खलबली मच गई। उसने ईसा को ऐतिहासिक पुरुष मानते हुए ऐतिहासिक सामग्री के तौर पर ही इंजील के कथानकों की कसौटी पर रखा। स्ट्रास का इससे कोई भी राजनीतिक उद्देश्य नहीं था, लेकिन बाइबिल के विश्वास पर उसे चोट अवश्य पहुँची।

पीढ़ियाँ वहीं नहीं रहना चाहती हैं, जहाँ पर उन्हें पूर्वजों ने ला पहुँचाया। स्ट्रास ने यद्यपि अभी धार्मिक क्षेत्र में ही हेगेल के दृष्टिकोण का उपयोग किया था, लेकिन अब उसे राजनीतिक क्षेत्र में भी इस्तेमाल करनेवाले

पैदा हो गए थे। तरुण हेगेलियों ने 1838 ई. में अपने विचारों के लिए 'हालिशे यारबुखेर' (हाल वर्ष-पत्र) निकाला। जर्मनी में ऐसे वर्ष-पत्रों के प्रकाशित करने की प्रणाली-सी निकल पड़ी थी जिनमें अनेक लेखों को संगृहीत कर दिया जाता था। उस वक्त वहाँ सेन्सर की नादिरशाही चल रही थी, किन्तु वह मासिक-साप्ताहिक-दैनिक पत्रों के लिए ही थी, इसलिए सेन्सर से बचने के लिए वर्ष-पत्र निकालने का रास्ता ढूँढ़ निकाला गया था। इस वर्ष-पत्र में साहित्य और दर्शन-सम्बन्धी लेख निकलते थे। पुराण-हेगेलीय पुराने बनकर अपना 'बर्लिनर यारबुखेर' निकालते थे, जिसके जवाब में अर्नाल्ड रूगे और फ्योडोर एखटेरमेयर ने तरुण हेगेलियों के इस नये वर्ष-पत्र को निकाला था। 1815 ई. में—हेगेल के जीते समय ही—जेना में 'बूरशेन्शाफ्ट' के नाम से बूर्जुआ जनतांत्रिक विद्यार्थियों का आंदोलन शुरू हुआ था जो बहुत कुछ अपने समकालीन रूसी दिसम्बरियों जैसी विचारधारा रखता था। रूगे ने इस आन्दोलन में भाग लिया था और परिणामस्वरूप उसे छह वर्ष तक जेल की हवा खानी पड़ी। आगे चलकर उसके रवैये में फर्क़ हुआ, जब कि ब्याह के सम्बन्ध से उसे हाले युनिवर्सिटी में प्रोफेसर का स्थान मिल गया। अब वह प्रशिया की राजव्यवस्था को स्वतंत्र और न्यायोचित बतलाता था। इससे मालूम है कि रूगे में न स्वतंत्र विचारों की भावना थी, न क्रांति के लिए लगन। लेकिन लिखने की सामग्री उपस्थित करने में वह कुशल था, इसीलिए 'हालिशे यारबुखेर' धीरे-धीरे तरुण पाठक मंडली को अपनी ओर खींचने में सफल हुआ। रूगे के वर्ष-पत्र में 'ईसा की जीवनी' के लेखक स्ट्रास की लेखनी का चमत्कार देखने में आने लगा। स्ट्रास बाइबिल के निर्भ्रान्त होने की कड़ी आलोचना कर रहा था। जब अधिकारियों का ध्यान इस ओर गया, तो रूगे ने यह कहकर समाधान करना चाहा कि हम 'हेगेलीय ईसाइयत और हेगेलीय प्रशिया' का प्रचार करते हैं। अभी तक रूगे को सरकार की ओर से प्रोफेसर पद की स्वीकृति नहीं मिली थी। मन्त्री आल्डेन्स्टाइन को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए उसने स्वीकृति नहीं दी। इससे रूगे की राजभक्ति पर चोट पहुँची, इसमें सन्देह नहीं।

कार्ल मार्क्स के जीवन के तीन साल बर्लिन के जिन तरुण हेगेलियों में बीते, वह सभी रूगे के वर्ष-पत्र में लिखा करते थे। उनके क्लब में मुख्यतः अध्यापक, लेखक और युनिवर्सिटी के लेक्चरर मेम्बर थे। रुटेनबर्ग बर्लिन के सैनिक-विद्यालय में भूगोल का अध्यापक था जिसका मार्क्स के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसे यह कहकर नौकरी से निकाल दिया गया था कि एक दिन वह शराब में बेहोश हो मोरी में पड़ा था, लेकिन असली बात कुछ और ही थी। उसने पत्रों में कुछ ऐसे लेख लिखे थे जिसे अधिकारी पसन्द नहीं करते थे। मार्क्स अभी बीस ही साल का था, जब कि वह तरुण हेगेलीय क्लब का मेम्बर बना था, और आयु में उससे बड़े कितने ही मेम्बर उसकी प्रतिभा और लेखनी का लोहा मानते थे। एडवर्ड मेयेन का सम्बन्ध एक पत्रिका के साथ था, जो ज्यादा दिन तक जी नहीं सकी। इसी पत्रिका में मार्क्स की दो कविताएँ छपीं, मार्क्स की कविताओं में सिर्फ यही दो प्रकाशित हो पाईं। क्लब के दो मुख्य मेम्बर थे म्युनिसिपल हाई स्कूल का अध्यापक क़ार्ल फ्रीडरिख कोप्पेन और बर्लिन युनिवर्सिटी का लेक्चरर ब्रूनो बावर। इन दोनों का मार्क्स के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और दोनों दस वर्ष बड़े होने पर भी अपने तरुण मित्र की प्रतिभा की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। मार्क्स बाईस वर्ष ही का था कि 1840 ई. में कोपेन ने प्रशिया के राजा महान् फ्रीडरिक की जन्मशताब्दी के अवसर पर जो लेख लिखा था, उसे 'मेरे मित्र ट्रीर के कार्ल मार्क्स' को समर्पित किया था जिससे मालूम होगा कि मार्क्स की योग्यता अब स्वीकार की जाने लगी थी।

4. कार्ल फ्रीडरिक कोपेन

कोपेन बड़ा मेधावी विद्वान् था, इतिहास में उसकी भारी गति थी। वर्ष-पत्र में छपे उसके लेखों को बड़ी चाव से पढ़ा जाता था। कोपेन ने ही पहले-पहल फ्रांस की महाक्रांति के समय के शासन का ऐतिहासिक तौर से विवेचन किया था। उसने अपने समसामयिक इतिहास-लेखकों की क्रांति-सम्बन्धी गलत धारणाओं का जबर्दस्त खंडन किया और कितनी ही नये क्षेत्रों में ऐतिहासिक खोज की। कोपेन और बावर के घनिष्ठ सम्पर्क में तरुण मार्क्स को आने का मौका मिला था जिससे मार्क्स के विचारों के आगे बढ़ने में सहायता मिली थी। इन दोनों

में भी कोपेन अधिक गम्भीर लेखक और विचारक तथा अपने पथ पर दृढ़ रहनेवाला व्यक्ति था। कोपेन ने नोर्डिक (जर्मन) जातियों की पौराणिक परम्पराओं की एक बड़ी सुन्दर साहित्यिक भूमिका लिखी थी। बुद्ध के ऊपर उसने जो ग्रंथ लिखा था, उसकी शोपनहावेर ने भी बड़ी प्रशंसा की थी, यद्यपि यह दार्शनिक पुराने हेगेलियों के साथ कोई सहानुभूति न रखता था। कोपेन ने 18वीं शताब्दी के बुर्जुआ पुनरुज्जीवन-आन्दोलन को और आगे बढ़ाया। रूगे ने बावर, कोपेन और मार्क्स को इसी आन्दोलन की उपज बतलाया था। कोपेन ने 18वीं शताब्दी के दर्शन के बारे में किए जानेवाले विरोधों का जवाब दिया। पुराण-हेगेलियों को भी कोपेन ने विचारों के एकान्तवासी तपस्वी, तर्कशास्त्र के पुराने ब्राह्मणों की तरह आसान मारकर पुनः तीनों पवित्र वेदों को निरन्तर और एकमात्र जपते रहना, जब-तब माया की दुनिया को लोभ-भरी आँखों से देखना बतलाया था। उसने इन लोगों को दलदल का मेढक बतलाया और यह भी कि यह ऐसे सरीसृप हैं जिनका न कोई धर्म है, न कोई पितृभूमि है, न कोई विचारधारा है, न आत्मा है, न हृदय है। जो न सर्दी महसूस करते हैं, न गर्मी, न सुख, न दुख, न प्रेम, न घृणा। उनके न ईश्वर है, न शैतान। ये अभागे प्राणी नर्क के फाटकों के चारों तरफ मँडरा रहे हैं और अत्यन्त नीच होने के कारण उन्हें भीतर जाने इजाजत नहीं। फ्रीडरिक महान् जर्मनी का देवता बन गया था, क्योंकि उसने जर्मन सैनिक-शक्ति को संगठित और सुशिक्षित करने में बड़ा काम किया था। कोपेन ने उसका 'बड़ा दार्शनिक' के तौर पर ही सन्मान किया। यही नहीं, बल्कि उसने यह भी कहा कि काँट से उलटे हो। फ्रीडरिक महान् ने दो प्रकार के तर्कों को स्वीकार नहीं किया : "एक सैद्धान्तिक (परमार्थ) जो सन्देहों विरोधों तथा प्रतिशोधों को बिल्कुल ईमानदारी के साथ और धृष्टतापूर्वक सामने लाता है और दूसरा व्यावहारिक (सांवृतिक), जो कि दूसरे के किए हुए पापों की लीपा-पोती करता है...साथ ही राजा (फ्रीडरिक) दार्शनिक (कांट से मनु पीछे नहीं था।"

कोपेन की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। बर्लिन के जीवन में वैसे भी कोई आकर्षण नहीं था। बर्लिन में उस शक्तिशाली मेरुदंड का अभाव था जो कि उद्योग-धंधों के रूप में राइनलैंड में पाया जाता था। वस्तुतः बर्लिन फौजी छावनीवाले एक शहर से बढ़कर नहीं था।

मार्क्स कोपेन के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखता था, यह बतला चुके हैं। इसमें शक नहीं कि आरंभिक विचारों के निर्माण और लेखन-शैली में भी कोपेन से उसे सहायता मिली थी। यद्यपि आगे चलकर दोनों के रास्ते दो हो गए, लेकिन वह सदा आपस में मित्र बने रहे। बीस वर्ष बाद जब मार्क्स बर्लिन गया, तो उसने कोपेन को 'सदा जैसा' पाया। दोनों एक-दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और आपसी मेल-मुलाकात में घंटों बिताए। इसके थोड़े ही दिनों बाद 1863 ई. में कोपेन की मृत्यु हो गई।

5. ब्रूनो बावर

कोपेन कई बातों में विशिष्टता रखता था, लेकिन बर्लिन के तरुण हेगेलियों का वास्तविक नेता बावर को समझा जाता था। बावर पर राज्य के संस्कृति-मन्त्री अल्टेन्सटाइन की कृपा थी, क्योंकि उसे वह भारी मेधावी तरुण समझता था। ब्रूनो बावर अवसरवादी नहीं सिद्ध हुआ, यद्यपि स्ट्रास ने बड़े सम्बन्धों के कारण इसकी भविष्यद्वाणी की थी। 1938 ई. के ग्रीष्म में बावर विरोधी हो गया, जब कि हेंग्स्टेनबर्ग ने बाइबल के कठोर और क्रोधी यहेबा को ईसाइयत का भगवान् बनाना चाहा। अल्टेन्सटाइन ने उसी साल की शरद में उसे बोन् युनिवर्सिटी में इस ख्याल से भेज दिया कि वर्ष के अन्त तक उसको लेक्चरर से प्रोफेसर बना दिया जायगा। लेकिन राज्य का कृपापात्र रहने के लिए उसके पास हृदय और योग्यता नहीं थी। स्ट्रास ने ईसा की जीवनी में, इंजील की कहानियों में इतिहास ढूँढ़ने की कोशिश की थी, लेकिन बावर ने स्पष्ट कह दिया कि इंजील की कहानी में इतिहास का एक कण भी नहीं है, यह सारी कपोल-कल्पना है। ईसाई धर्म ग्रीस-रोम के पुराने संसार पर विश्वधर्म के तौर पर लादा नहीं गया, बल्कि वह दुनिया की एक स्वाभाविक उपज थी। जिस समय इस तरह के विचार बावर के दिमाग में परिपक्व हो रहे थे, उसी समय उससे नौ वर्ष छोटे कार्ल मार्क्स और बावर का बराबर का साथ था, वे क्षण-भर के लिए भी एक-दूसरे से अलग न होनेवाले साथी थे। बोन् जाने के बाद बावर की

यह कोशिश थी कि मार्क्स भी वहीं आ जाये। बोन् का बौद्धिक जीवन उसे निम्न श्रेणी का मालूम होता था, इसलिए वह मार्क्स को बुलाना चाहता था। बावर के पत्रों से मालूम होता था कि वह काफी क्रांतिकारी था, लेकिन उसके दिमाग में सदा क्रांति से मतलब था, दार्शनिक क्रांति का। प्रशिया के होहेंन जोलेर्न राजवंश के प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उसके ख्याल से इस वंश के उदारमना राजाओं ने चार शताब्दियों तक धर्म और राज्य के सम्बन्धों को ठीक करने का प्रयत्न किया। इस चापलूसी का यही फायदा हुआ कि प्रशिया के नये राजा ने बावर के संरक्षक अल्टेन्सटाइन को हटाकर उसकी जगह आइखहोर्न को राज्य-मन्त्री बनाया, जो कि विज्ञान और दर्शन किसी क्षेत्र में भी स्वतन्त्रता की गन्ध को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं था, यद्यपि बावर कोपेन से 'कहीं' अधिक हेगेलीय विचारों का और दर्शन का पंडित था, लेकिन उसमें कोपेन जैसी दृढ़ता नहीं थी।

ग्रीक दार्शनिक सम्प्रदाय ग्रीक जीवन के राजनीतिक विशृंखलन से पैदा हुआ। सन्देहवादी, भोगवादी एपिकुरीय तथा संयमवादी स्तोइक उसी से अस्तित्त्व में आए, जिन्होंने ईसाई धर्म के लिए रास्ता साफ किया। ये पीछे के दार्शनिक प्लातोन और अरिस्तातिल के विचारों और ज्ञान की गम्भीरता तक नहीं पहुँच सके थे। हेगेल ने उनको बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते हुए उपेक्षित कर दिया था। इन ग्रीक दार्शनिकों की कोशिश थी कि व्यक्ति को उसके बाह्य परिस्थिति और वातावरण से अलग करके अन्तर्मुखी कर दिया जाय, जहाँ पर कि उनके विचारों के अनुसार शान्ति में वास्तविक सुख मौजूद है—ऐसी शान्ति, जिसका बाल भी बाँका नहीं हो सकता, चाहे सारी बाह्य दुनिया में ध्वंसलीला क्यों न मची हो। यह आत्मचेतन, स्वविज्ञान का ग्रीक दर्शन था जो कि ईसाई धर्म के स्वीकार करने से पहले रोम के उच्च वर्ग में सर्वत्र सम्मानित था। ग्रीक दर्शन के इस सिद्धान्त (आत्मचेतना) ने बावर, कोपेन और तरुण मार्क्स को अपनी ओर बहुत आकृष्ट किया था। पुराने ग्रीक दर्शन (आत्मचेतना) ने किसी ऐसे प्रतिभाशाली दार्शनिक को नहीं पैदा किया, जैसे कि उसके पुराने स्वाभाविक दर्शन ने देमोक्रेतु और हेराक्लितु अथवा उनसे कुछ पीछे के प्लातोन, अरिस्तातिल जैसों को पैदा करके किया था। तो भी इस आत्मचेतना-दर्शन का एक महत्त्व भी था। इसने जातीय (हेलनिक) और सामाजिक (दासता-सम्बन्धी) उन सीमाओं को तोड़ दिया जिनके तोड़ने का ख्याल भी प्लातोन और अरिस्तातिल नहीं कर सकते थे। इस काम ने पुराण-ईसाई धर्म को आगे बढ़ाने का मौका दिया जो कि उस समय दलितों और उत्पीड़ितों का धर्म था, वह दासों और कमकरों को अपनी ओर खींच रहा था। इसमें शक नहीं, जब रोम के उच्च वर्ग ने भी ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया, तो उसका वह पुराना रूप जाता रहा, और वह फिर उन्हीं पुरानी सीमाओं को पुनः स्थापित करने में सहायक होने लगा। फिर सामन्त ऐसे धर्म के लिए धर्मयुद्धों में तत्परता क्यों न दिखाते ? यूरोप के सभी देशों में कबीलाशाही के अनुकूल पुराने धर्मों को बलपूर्वक नष्ट करके ईसाई धर्म को फैलाने की क्यों न कोशिश करते ? ईसाइयत इस तरह भारी बन्धन का कारण बन गई। फिर 18वीं सदी के सामन्त-विरोधी बूर्जुआ पुनरुज्जीवन-आन्दोलन ने ग्रीक दर्शन की आत्मचेतना को फिर से उज्जीवित करना चाहा, जिसमें धर्म के प्रति सन्देहवादियों के सन्देह, एपिकुरियों की घृणा को अपनाया और स्तोइक लोगों से गणतन्त्री भावनाएँ उधार ली गई थीं।

बावर फ्रीडरिक महान् को पुनरुज्जीवन-आन्दोलन के बड़े नायकों में से मानता था जिसमें कोपेन भी उससे सहमत था। मार्क्स अपने दोनों पुराने साथियों के विचारों से इतने अंश में सहमत था कि ये तीनों दर्शन ग्रीक जीवन के लिए गम्भीर महत्त्व रखते थे। जो समस्या कोपेन और बावर के सामने थी, वह मार्क्स के सामने भी आई, लेकिन उसने इसका जवाब दूसरी ही तरह से दिया। वह मानवी आत्मचेतना को ही परम भगवान् कहता जिसके सामने वह किसी भगवान् को सहन करने के लिए तैयार नहीं था, चाहे वह धर्म के विकृतकारी दर्पण द्वारा उपस्थित किया जाता या दार्शनिक अनुभूति के तौर पर।

अपने पिता के जीवन में ही मार्क्स ने निश्चय कर लिया था कि अपना भावी जीवन स्वतन्त्रतापूर्वक अध्ययन-अध्यापन में बिताऊँगा। उस समय तक युनिवर्सिटी और शिक्षा-संस्थान ही ऐसे स्थान थे जहाँ दर्शन और साइन्स के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार रखनेवालों के लिए स्थान था। 1839 ई. के शरद में मार्क्स को

बर्लिन में पढ़ते आठ सत्र हो चुके थे। उसे अन्तिम परीक्षा देकर छुट्टी लेने की जल्दी नहीं थी। जहाँ तक ज्ञानार्जन का सम्बन्ध था, वह अपने प्रयत्नों द्वारा काफी आगे बढ़ रहा था। मार्क्स में जीवन के अन्तिम क्षणों तक ज्ञान की पिपासा और विद्या के प्रति असाधारण प्रेम था। उसने बर्लिन के जीवन में ग्रीक दर्शन का बहुत गहराई तक प्रवेश करके सांगोपांग अध्ययन किया था और 'आत्मचेतन' के तीनों दार्शनिक सम्प्रदायों को खूब पढ़ा। अपनी किसी कल्पना को भी वह तुरन्त मानने के लिए तैयार नहीं था, और आत्म-आलोचना की तो कोई सीमा नहीं थी। जैसे-जैसे विद्या के सूत्रों को पकड़ते वह और गहराई में उतरता जाता था, वैसे ही वैसे नवीन जिज्ञासा उसके हृदय को अधिकृत करती जाती थीं।

बावर के बोन् चले जाने और उसके आग्रह पर मार्क्स को भी वहाँ जाने की इच्छा हुई। लेकिन जल्दी ही मालूम हो गया कि प्रशिया में अब कहीं भी विचार-स्वातंत्र्य के लिए जगह नहीं है। मई, 1840 में अल्टेन्सटाइन मर गया, संस्कृति-मंत्रालय को प्रीवी-कौंसिलर लाडेनबर्ग ने सँभाला और अपने पुराने अध्यक्ष की भावनाओं का काफी ख्याल रखना चाहा। बावर को उसने स्थायी पद पर नियुक्त करने के लिए लिख भी दिया, लेकिन थोड़े ही समय बाद आइखहोर्न को संस्कृति-मन्त्री बना दिया गया। बोन् के धर्म-विद्या-विभाग ने बावर के प्रोफेसर के तौर पर नियुक्ति को मानने से इन्कार कर दिया। बावर शरद की छुट्टियों में बर्लिन आया था। वह बोन् लौटने की सोच ही रहा था कि उसको इस घटना की खबर लगी। वह निराश न हो, इस आशा से लड़ने का मन करके लौटा कि मार्क्स के भी जल्दी आ जाने से हम दोनों मिलकर कुछ कर सकेंगे। लेकिन यह आशा सफल नहीं हुई। मार्क्स समझता था कि बावर के मित्र और सहायक होने के कारण बोन् की गुटबन्दी मुझे पैर जमाने नहीं देगी, और जहाँ तक ऊपर का सम्बन्ध था, वह आइखहोर्न या लाडेनबर्ग की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अपने को अयोग्य समझता था। जहाँ भी उदार विचारों की सम्भावना थी, वहाँ आइखहोर्न रूढ़िवादियों की नियुक्ति करता जा रहा था। शेलिंग को उसने बर्लिन का रेक्टर (कुलपति) नियुक्त किया, जो कि बुढ़ापे में अलहाम (भगवान् की ओर से दिए जानेवाले ज्ञान) पर विश्वास करने लगा था, और स्ट्रॉस को हाल युनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनाने की भी कोशिश की।

ऐसी स्थिति में मार्क्स जैसे तरुण होगेलीय को क्या आशा हो सकती थी। उसे यह भी विश्वास नहीं था कि बर्लिन युनिवर्सिटी उसे परीक्षा में सफल होने देगी, इसीलिए बर्लिन का ख्याल छोड़कर उसने किसी दूसरी छोटी युनिवर्सिटी में पी-एच. डी. (दर्शनाचार्य) का निवन्ध पेश करने का निश्चय किया। अभी भी उसके हृदय में प्रोफेसर बनने की आकांक्षा थी, इसीलिए बाबर के साथ मिलकर पत्रिका निकालने का ख्याल छोड़ दिया, क्योंकि पत्रिका में अपने उग्र विचारों के कारण प्रकट हो जाने के बाद उसे प्रोफेसरी नहीं मिल सकती थी।

6. पी-एच. डी. का निवन्ध (1841 ई.)

मार्क्स ने अपना पी-एच. डी. का निबन्ध जैसा युनिवर्सिटी में दिया, जिसपर 15 अप्रैल (1841 ई.) को उसे डाक्टर की उपाधि मिली, निबन्ध का विषय था, 'दैमोक्रेतीय और एपीकुरीय स्वाभाविक दर्शन के भेद'। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह निबन्ध केवल डिग्री के लिए अध्ययन का परिणाम नहीं था, बल्कि इसके लिए जो परिश्रम मार्क्स ने किया था, वह स्वयं उसकी तीव्र जिज्ञासा का फल था और उसके द्वारा स्वयं उसके भीतर परिवर्तन होता रहा था। ग्रीक दर्शन के गंभीर अध्ययन की यह भूमिका मात्र थी। मार्क्स को ग्रीक दर्शन और उसके एपिकुरीय, स्तोइक तथा सन्देहवादी दर्शनों के सम्बन्ध के बारे में विस्तृत ग्रन्थ लिखने की इच्छा थी। इस निबन्ध में उसने पुराण कल्पनामूलक दर्शन के सम्बन्ध में सिर्फ एक ही उदाहरण का आधार लिया था।

मार्क्स के इस निबन्ध की कुछ बातें निम्न प्रकार हैं :

पुराने ग्रीक स्वाभाविक दार्शनिकों में दैमोक्रेतु ही ऐसा था, जो कि भौतिकवाद से बहुत घनिष्ठ समीपता रखता था। उसका कहना था कि अभाव से कोई वस्तु नहीं निकल सकती (न भावो विद्यतेऽभावात्) और किसी

वस्तु (भाव) का ध्वंस भी नहीं हो सकता। दुनिया के सारे परिवर्तन भिन्न-भिन्न परमाणुओं के संयोग और वियोग मात्र हैं। कोई वस्तु या घटना अकस्मात् नहीं पैदा होती, हर एक घटना किसी कारण या आवश्यकता से होती है। उसके विचार से परमाणु और शून्य आकाश छोड़कर दुनिया में और कोई चीज अस्तित्व नहीं रखती, वह केवल कल्पना मात्र है। परमाणु असंख्य और अनन्त रूप में अनन्त प्रकार के हैं। वह अनन्त आकाश में निरन्तर गिरते रहते हैं। बड़े परमाणु के पतन का वेग अपेक्षाकृत अधिक होता है, इसलिए वह गिरते वक्त अपने से अपेक्षाकृत कम गति रखनेवाले छोटे परमाणु से टकराते हैं। इस संयोग के कारण जो भौतिक गति और चक्कर शुरू होता है, उसी से संसार की सृष्टि आरम्भ होती है। परमाणुओं के इस तरह के संयोग-वियोग से असंख्य जगत् एक साथ या बारी-बारी से बनते और लुप्त होते हैं।

(1) **एपिकुरु (314-270 ई. पू.)**—एपिकुरु ने दैमोक्रेतु के परमाणुवादी दर्शन को लेकर उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन किया। खास तौर का परिवर्तन यह था कि एपिकुरु परमाणुओं के पतन को सीधी रेखा में न मान चक्करदार मानता था। एपिकुरी-दर्शन पुराने जगत् का बड़ा ही उन्नत भौतिकवाद था, जिसकी रक्षा करके उसे लुकरेतियु की कविता दे रेरुम नतुरा ने हमारे पास पहुँचाया। कांट ने एपिकुरु के परमाणुओं की कल्पना का उपहास किया, लेकिन तब भी उसने ऐन्द्रियक दार्शनिकों में उसी तरह सर्वोत्तम माना, जैसे कि बौद्धिक दार्शनिकों में प्लातोन को। इस प्रकार दैमोक्रेतु और एपिकुरु दो महान् भौतिकवादी दार्शनिक थे। मार्क्स ने एपिकुरु की बातों की आलोचना करते हुए भी इस बात का उल्लेख किया कि एपिकुरु केवल इन्द्रियों के प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता था। दैमोक्रेतु के लिए जो लक्ष्य था, वह एपिकुरु के लक्ष्य का एक साधन मात्र था। एपिकुरु प्रकृति का बोध प्राप्त करना नहीं चाहता था, बल्कि प्रकृति के सम्बन्ध में ऐसे दृष्टिकोण को खोजना चाहता था, जो कि उसके दर्शन का समर्थन करे। वह बतला चुके हैं कि प्लातोन के बाद के ग्रीस में तीनों ही प्रधान दार्शनिक सम्प्रदाय आत्मचेतनावादी थे। हेगेल के अनुसार एपिकुरीय दर्शन आत्मा की वैयक्तिक चेतना का निराकार सार था। स्तोइक दर्शन उसी का निराकार समष्टिगत चेतना है। दोनों ही एकांगी (एकांत) कल्पना मात्र हैं, जिनके इसी एकांतवाद के कारण संदेहवादी उनके विरुद्ध थे।

यह बहुत कुछ भारतीय दर्शन में सौत्रान्तिकों के ब्रह्मार्थवाद, योगाचारों के विज्ञानवाद पर, नागार्जुन के शून्यवाद की तरह दो अन्तों और दोनों पर सन्देह उत्पादन करते हुए तीसरे वाद की सृष्टि थी।

(3) **स्तोइक-दर्शन**—एलियातिक जैनो (490-530 ई. पू.) और साइप्रेसी (कुप्री) जैनो (304 ई. पू.) इस दर्शन के बड़े-बड़े आचार्य थे। स्तौआ पौइकिले (नुकीली अटारी में) द्वितीय जैनो ने अपना विद्यालय स्थापित किया था, इसीलिए इस सम्प्रदाय का नाम स्तोइक पड़ा। यद्यपि एपिकुरीय और स्तोइक दोनों का लक्ष्य एक था, लेकिन जहाँ एपिकुरीय परमाणुवादी और व्यक्तिवादी थे, वहाँ स्तोइक सामान्य (अवयवों को) सर्वोपरि मानते हुए कहते थे : अवयव अवयवी के सर्वथा अधीन है। इस प्रकार उनका दर्शन नियतिभाग्यवाद की ओर ले जाता था। राजनीतिक तौर से वह गणतंत्र के पक्षपाती थे और धार्मिक तौर से पुराने मिथ्या-विश्वासों और रहस्यवाद से अपने को मुक्त नहीं कर सके थे। वह दार्शनिक हेराक्लितु (535-475 ई. पू.) के दर्शन को अपनाते थे, जो कि बुद्ध का समकालीन और विचारों में कितनी ही समानता रखता था। जैसे एपिकुरीय दैमोक्रेतु का अन्धाधुन्ध अनुगमन करने के लिए तैयार नहीं थे, उसी तरह स्तोइक भी हेराक्लितू के दर्शन को केवल साधन के तौर पर इस्तेमाल करते थे। इसीलिए व्यक्ति के पृथक् होने के सिद्धान्त के कारण एपिकुरीय दर्शन नियतिवाद से मुक्त हो प्रत्येक व्यक्ति के इच्छा-स्वातंत्र्य को मानता था और दार्शनिक तौर से प्रत्येक व्यक्ति को धैर्य-धारी दुखिया स्वीकार करता था। अपने ऊपर शासन करनेवाले अधिकारियों का अनुसरण करो, इसको कहते हुए भी एपिकुरु ने धर्म के बन्धनों से स्वतंत्र होने की घोषणा की थी।

मार्क्स ने इसके बाद दोनों प्राकृतिक दर्शनों के भेद की व्याख्या की। दैमोक्रेतु केवल परमाणुओं से भौतिक अस्तित्व तक ही अपने को सीमित रखना चाहता था, लेकिन एपिकुरु उससे आगे बढ़कर कल्पना, आकृति तथा उपदान-सामग्री, सार और अस्तित्व के तौर पर भी परमाणु पर विचार करता था। एपिकुरु बाह्य संसार का केवल भौतिक आधार ही परमाणु को नहीं मानता था, बल्कि यह भी कि परमाणु पृथक्भूत व्यक्ति का

प्रतीक तथा निराकार व्यक्ति (आत्मचेतना) का आकार नियम भी है। दैमोक्रेतु ने परमाणु के सरस रेखा में नीचे पतन से सभी घटनाओं का होना सिद्ध किया, जब कि एपिकुरु ने परमाणुओं को सरल रेखा छोड़ चक्कर काटते गिरते हुए मानकर नियतिवाद से मुक्ति प्राप्ति की, जैसा कि एपिकुरीय दर्शन के सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार लुकरेतियू ने बतलाया है : यदि परमाणुओं की चक्करदार गति न होती, तो विचार-स्वातंत्र्य की कहाँ गुंजाइश रहती ? सृष्टि और कल्पना-सम्बन्धी परमाणु के विचारों के बीच में जो विरोध देखा जाता है, वह सारे एपिकुरीय दर्शन में मिलता है। तो भी एपिकुरीय प्राकृतिक दर्शन ने भौतिक जड़ता का त्याग कर दिया। एपिकुरु को मार्क्स ने 'सर्वश्रेष्ठ ग्रीक विचारक' माना है, जिसने धर्म की स्वेच्छाचारिता से मनुष्य को मुक्त करने का प्रयत्न किया। मार्क्स ने एपिकुरीय मूल विचारधारा को उससे भी अधिक आगे और स्पष्टता के साथ विकसित किया, जितना कि स्वयं एपिकुरु ने किया था। हेंगेल ने एपिकुरीय दर्शन को सिद्धान्त के तौर पर विचारहीन बतलाया था : इसमें शक नहीं कि एपिकुरु स्वनिर्मित पुरुष था, वह अपने विचारों को जनसाधारण की भाषा में रखना चाहता था। मार्क्स ने एपिकुरु के दर्शन को इतनी हल्की नजर से नहीं देखा, बल्कि उसने कहा कि एपिकुरु अपनी द्वंद्ववादी शैली को बड़े अधिकारपूर्वक इस्तेमाल करता है। हेगेल के शिष्य मार्क्स की भाषा इस निबन्ध में बड़ी परिपुष्ट मालूम होती है। वह द्वंद्ववादी शैली को अपनी इस कृति में बड़े अधिकारपूर्वक इस्तेमाल करता है, और जहाँ तक इसका सम्बन्ध है, हेगेल के दूसरे अनुयायियों से वह कहीं बढ़कर अपने गुरु की नपी-तुली और भावों-भरी भाषा का उपयोग करता है।

इस समय (1849 ई.) तक यद्यपि मार्क्स स्वतंत्र विचार के तौर पर कुछ आगे बढ़ा था, लेकिन हेगेलीय दर्शन का विज्ञानवादी आधार अब भी उसपर पूरा छाया हुआ है, जिसका एक परिणाम था, दैमोक्रेतु के विपक्ष में उसकी सम्मति। परमाणुवाद को उसने बाहरी तजुर्बे का परिणाम बतलाकर एपिकुरीय की प्रशंसा करते हुए उसे परमाणुवाद के साइन्स का संस्थापक माना। यद्यपि वास्तविकता यह है कि परमाणुवाद का प्रथम प्रतिष्ठापक दैमोक्रेतु था, न कि एपिकुरु। हेगेल के विज्ञानवाद का प्रभाव ही उससे ऐसा करा रहा था। मार्क्स के अपने विचार थे : जीवन का मतलव कर्म करना और कर्म करने का मतलब संघर्ष है। संघर्ष करने के लिए शक्ति देनेवाले तत्त्व की आवश्यकता थी, जिसे मार्क्स एपिकुरु के दर्शन में पा रहा था। उसने धर्म के बन्धनों को तोड़ने के लिए विद्रोह करने का प्रचार किया : न विजली की कड़क-चमक से, न देवताओं के भय से, न द्यौ के वज्रों की गरगराहट से भयभीत हो।

अपने निबन्ध के प्राक्कथन को–जिसे कि मार्क्स अपने निबन्ध के साथ प्रकाशित करना चाहता था–उसने अपने ससुर को बड़े भावुकतापूर्ण शब्दों में समर्पित किया था।

मार्क्स के इस निबन्ध की अन्तिम पंक्तियों में उसके भविष्य के कर्मक्षेत्र की भी कुछ-कुछ झलक मालूम होती है। उसने लिखा था : जब तक कि विश्वविजयी और अपराजित हृदय में एक भी बूँद हरकत कर रही है, तब तक वह एपिकुरु के इन शब्दों में शत्रुओं की सदा अवहेलना करता रहेगा, 'वह अनीश्वरवादी नहीं है, जो कि पामर जन-समूह के देवताओं की अवमानना करता है, बल्कि अनीश्वरवादी वह है, जो कि जन-समूह के देवताओं सम्बन्धी रायों को स्वीकार करता है।' प्रोमेथियो के कथनानुसार सीधा सत्य यह है कि मैं सभी देवताओं के प्रति घृणा रखता हूँ; तथा प्रोमेथियो ने देवताओं के चाकर हेरमी को जैसा उत्तर दिया था, उन्हीं शब्दों में :

> निश्चित रहो, तुम्हारी निकृष्ट दासता से,
> मैं अपने दुःखों को कभी नहीं बदलूँगा।

प्रोमेथियो दार्शनिक जगत् का सर्वश्रेष्ठ संत और शहीद है। मार्क्स के इन विचारों को पढ़कर उसके मित्र बावर को भी बहुत भय लगने लगा। इस द्वितीय प्रोमेथियो के लिए भला अब प्रशिया-राज्य की युनिवर्सिटी में जगह कैसे मिल सकती थी ? प्रशियनशाही तो हर जगह विचार-स्वातंत्र्य को खतम कर रही थी। 1841 ई. के बसंत में आइकहोर्न ने ब्रूनो बावर के विरुद्ध बोन् के धर्म-विद्या-विभाग को इसलिए निर्लज्जतापूर्वक खड़ा किया कि बावर ने इंजील की आलोचना की थी। प्रशिया का नया राजा विल्हेल्म अपने को स्वतंत्र प्रेस और

स्वतंत्र विचारों का समर्थक कहता था। उसने सेन्सर करने में ढिलाई करने का आदेश निकाला। लेकिन यह बिल्कुल दिखावे की बात मालूम हुई, जब कि 1841 ई. के ग्रीष्म में रूगे को अपनी पत्रिका को सेन्सर कराने का हुक्म मिला। इससे बचने के लिए रूगे को 1 जुलाई, 1841 ई. से अपनी पत्रिका ड्वाशे यारबुखेर (जर्मन वर्ष-पत्र) को डेस्डेन से निकालना पड़ा। इस कड़ाई ने मार्क्स और बावर को बतला दिया कि अपना पत्र निकालने की जगह यही बेहतर है कि रूगे के पत्रों में ही लेख दिया जाय।

यद्यपि डाक्टर का निबन्ध युनिवर्सिटी में स्वीकृत हो गया, लेकिन मार्क्स ने शायद प्रेस की इन्हीं कठिनाइयों के कारण उसे प्रकाशित करने का ख्याल छोड़ दिया या कम से कम उसकी जल्दी नहीं समझी, और आगे के कामों की तत्परता ने फिर उसे वैसा अवसर पाने का मौका नहीं दिया।

इसी साल के नवम्बर में वीगेड ने एपिकुरु ही नहीं, हेगेल को भी पक्का अनीश्वरवादी बतलाते हुए एक पुस्तक नास्तिक, ख्रीस्ट-विरोधी हेगेल के विरुद्ध न्याय का अन्तिम ट्रम्प प्रकाशित किया। एक गुप्त लेखक के तौर पर वीगेड ने अन्तिम ट्रम्प में अपने को पक्का धर्मविश्वासी दिखलाते हुए हेगेल की नास्तिकता पर बाइबिल की भविष्यत्वाणियों को उद्धृत करते हुए अफसोस प्रकट किया। भाषा और शैली इतनी सुन्दर थी कि एक बार पठित जनता में इस पुस्तिका ने बड़ी सनसनी फैला दी, और कितने ही धर्मविश्वासी तो सचमुच धोखा खा गए। प्रकाशक वीगेड था, लेकिन पुस्तिका का गुमनाम लेखक ब्रूनो बावर था। देर नहीं लगी, अन्तिम ट्रम्प के खिलाफ निषेधाज्ञा निकल गई। वीगेड के लिए उसका और प्रकाशित करना कठिन हो गया। इसी समय मार्क्स बीमार हो गया, और उसके ससुर लुडविग फानवेस्टफालेन की भी तीन महीना बीमार रहकर 3 मार्च, 1842 को मृत्यु हो गई। ऐसी स्थिति में मार्क्स कुछ नहीं कर सका। 10 फरवरी को उसने एक मामूली लेख सबसे नई राजाज्ञा के बारे में लिखा। यद्यपि यह लेख सेन्सर की कठिनाई को हल्का करने के ख्याल से लिखा गया था, और उसका उस समय कोई महत्त्व नहीं समझा गया, लेकिन वस्तुतः इसी लेख के द्वारा मार्क्स ने राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया। मार्क्स ने उस लेख के साथ की चिट्ठी में लिखा था, यदि सेन्सर मेरे लेख का सेन्श्युर (खंडन) न करे तो इस लेख को जितनी जल्दी हो सके, छाप दें। मार्क्स का अनुमान ठीक निकला। 25 फरवरी को रूगे ने लिखा कि ड्वाशे यारबुखेर को सेन्सर के कारण हद से अधिक कठिनाई हो रही है, इसलिए तुम्हारे लेख का छपना असम्भव है। रूगे ने यह भी लिखा कि सेन्सर ने जिस सामग्री को रद्द कर दिया है, उसमें से कई सुन्दर चीजें मैंने जमा कर ली हैं, जिन्हें अनेक्डोटा फिलोसोफि का दार्शनिक उपाख्यान के नाम से देश से बाहर स्वीट्जरलैंड में छपवाना चाहता हूँ। मार्क्स ने अपने 5 मार्च के पत्र में इसका बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया, क्योंकि इसी समय खिस्तानी कला के ऊपर लिखे गए उसके निबन्ध के छापने में सक्सनी प्रदेश के सेन्सर ने रुकावट डाल दी थी। यह लेख 'अन्तिम ट्रम्प' के द्वितीय भाग के तौर पर निकाला जानेवाला था। मार्क्स ने लेख को फिर दोहराया और उसे हेगेलीय प्राकृतिक नियम की आलोचना के साथ अनेक्डोटा में छाप देने के लिए लिखा। हेगेल ने प्राकृतिक नियम कहकर राजतन्त्र का समर्थन किया था। उसी का खंडन करते मार्क्स ने संवैधानिक राजतंत्र पर आक्षेप करते हुए लिखा था, यह पूर्णतया परस्पर-विरोधी और वर्णसंकरी विचारधारा है। रूगे ने उसे लेना स्वीकार किया था, लेकिन सेन्सर-सम्बन्धी लेख को छोड़कर दूसरा उसे कोई नहीं मिला।

20 मार्च को मार्क्स ने बतलाया कि मैं अपने खिस्तानी-कला-सम्बन्धी निबन्ध को 'अन्तिम ट्रम्प' की शैली, तथा हेगेलीय परिभाषाओं की बेकार की सीमाओं से मुक्त करके अधिक स्वतन्त्र और व्यापक चाहता हूँ। इस काम को उसने अप्रैल के मध्य तक खतम कर देने का वचन दे दिया था। 27 अप्रैल को निबन्ध प्रायः समाप्त कर चुका था, और उसने रूगे से कुछ दिन और ठहरने की प्रार्थना करते यह भी कहा था कि मैं उसका संक्षेप ही भेज सकूँगा, क्योंकि अब निबन्ध बढ़ते-बढ़ते एक पुस्तक का रूप ले चुका है। 21 अक्टूबर को रूगे ने सूचित किया था कि अनेक्डोटा तैयार हो गया है, और यह जूरिच (स्वीट्जरलैंड में) 'लितेरारिस्चेस्क कोन्तोर' द्वारा प्रकाशित किया जायगा। उसने अभी भी मार्क्स के निबन्ध के लिए जगह छोड़ रक्खी थी, लेकिन वह यह भी जानता था कि मार्क्स जब किसी काम में लग जाता है तो उसे आधे पर छोड़ना नहीं चाहता। रूगे

मार्क्स से सोलह वर्ष बड़ा था, लेकिन वह बावर और कोपेन की तरह ही उसकी प्रतिभा और योग्यता का जबर्दस्त समर्थक था। रूगे बेचारा प्रतीक्षा ही करता रह गया। इसी समय मार्क्स ने अपनी दिलचस्पी दर्शन से भी ज्यादा एक दूसरे क्षेत्र में दिखलाई, जिससे रूगे संतुष्ट हुआ। सेन्सर-सम्बन्धी लेख द्वारा राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद मार्क्स अनेक्डोटा में दर्शन के ताने-बाने बुनने की जगह अब अपने जीवन के मूल कर्मक्षेत्र राजनीति में प्रवेश करने के लिए तैयार था।

4

प्रथम कर्मक्षेत्र (1842 ई.)

1. राइनिश जाइटुंग

राइनलैंड जर्मनी का उद्योग-प्रधान प्रदेश था, जहाँ अब बूर्ज्वाजी एक नया वर्ग पैदा हो चुका था। वह सामन्ती निरंकुश शासन को वैसे भी पसन्द करने के लिए तैयार नहीं था, ऊपर से फ्रांस की सीमा पर होने से फ्रेंच-क्रांति का प्रभाव उसपर पड़ना जरूरी था। 1789 ई. की फ्रेंच-महाक्रांति और 1830 ई. की घटनाओं ने फ्रांस में सामन्तवाद को खतम कर पूँजीवाद शासन को स्थापित कर दिया था। पड़ोसी बूर्ज्वा वर्ग की तरह राइन-उपत्यका के जर्मन भी बड़ी सामन्ती व्यवस्था का विरोध करने के लिए तैयार हो गए। आम तौर से निहित स्वार्थवाले वर्गों का जैसा रवैया है, वैसे ही यहाँ के कुछ लोगों ने पहले सरकार-समर्थक एक पत्र निकालने का ख्याल किया, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। सरकारी समर्थक 'कोलनिशे जाइटुंग' वहाँ के पत्रों के क्षेत्र में अपने को इजारेदार समझता था, और उसे बर्लिन की सरकार का समर्थन प्राप्त था। इस इजारेदारी को हटाने के लिए कई पत्रों ने कोशिश की, लेकिन उन्हें अकाल ही काल के गाल में पड़ना पड़ा। कई मर्तबे असफल होने के बाद अब कुछ धनी-मानी नागरिकों ने पूँजी का प्रबन्ध करके नये आधार पर एक पत्र निकालने का निश्चय किया। राइनिश अल्गेमाइन जाइटुंग (1939 ई. में स्थापित) को 'राइनिश जाइटुंग' के नाम से निकालने की सरकार से अनुमति मिल गई। कोलोन के बूर्ज्वा प्रशिया सरकार को दिक करने की इच्छा नहीं रखते थे, यद्यपि राइनलैंड के लोग प्रशियनों को विदेशी जैसा ही मानते थे और कितनी ही मर्तबे वह प्रशिया की अपेक्षा फ्रांस के साथ अपनी सहानुभूति दिखलाते थे। लेकिन अब उद्योग-धंधे में बड़ी तेजी से विकास हो रहा था, और प्रशियन भी राइनलैंडकों के साथ कुछ रियायत करने के लिए तैयार थे। राइनवालों की माँग थी–राजकीय कोष का मितव्ययिता के साथ प्रबन्ध, रेलवे का विस्तार, कोर्ट-फीस ओर स्टाम्प-करों में कमी करना आदि।

कोलोन में 1 जनवरी, 1842 को राइनिश जाइटुंग (राइन समाचार) विरोधी पत्र के तौर पर ही निकालना पड़ा। जल्दी ही पत्र की ग्राहक-संख्या आठ हजार तक पहुँच गई और उसके प्रभाव से सरकार भी आशंकित हो पड़ी। राइनलैंड के कैथलिक पादरियों को प्रोटेस्टेंट जर्मन सरकार दबाना चाहती थी। नये पत्र ने उनका पक्ष लिया, जो अधिकतर व्यावसायिक दृष्टि से ही नये पत्र के सम्पादक-मंडल में थे तरुण बैरिस्टर जार्ज युंग, तरुण असेसर डागोवर्ट ओपेनहाइन। ओपेनहाइन मोजेज इसके प्रभाव में आकर फ्रेंच समाजवाद से परिचित हो गया था। दोनों सम्पादक तरुण हेगेलियों से प्रभावित थे। उनके लिए यह स्वाभाविक था कि अपने समान विचार के तरुणों के लेख लिखवाएँ। अपने जन्मप्रदेश का पत्र होने के कारण भी मार्क्स का आरम्भ ही से राइनिश जाइटुंग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। मार्च के अन्त में ट्रीर से कोलोन जाना चाहता था, लेकिन वहाँ का जीवन मार्क्स को अधिक अशांत मालूम होता था। इस समय तक बावर बोन् से हट चुका था, लेकिन मार्क्स नहीं चाहता था कि प्रतिक्रियावादी वहाँ चैन की बंशी बजाएँ, इसलिए उसने बोन् में रहते कोलोन के नये पत्र के लिए उन लेखों को लिखना शुरू किया, जिन्हें जल्दी ही सभी लेखों से श्रेष्ठ माना जाने लगा।

यद्यपि तरुण हेगेलियों के लेखों को पत्र में स्थान देना सम्पादकद्वय के कारण था, लेकिन यह निश्चित ही है कि बिना भागीदारों की अनुमति के ऐसे उग्र लेख पत्र में नहीं छापे जा सकते थे। भागीदार समझते थे कि उनके जैसे प्रतिभाशाली सम्पादक और लेखक जर्मनों में दूसरे नहीं मिल सकते। मार्क्स की सिफारिश पर रुटेनबर्ग को भी सम्पादकीय-विभाग लिया गया, जिसे बर्लिन सरकार भयंकर क्रांतिकारी समझती थी और उसपर बराबर खुफिया विभाग की निगाह रहती थी। मार्च, 1848 में फ्रीडरिक विलियम (विल्हेल्म) चतुर्थ यह समझकर काँप गया कि उस साल की क्रांति का वास्तविक प्रेरक रुटेनबर्ग था। यद्यपि बर्लिन सरकार असंतुष्ट थी, लेकिन तो भी वह नहीं चाहती थी कि कोलनिशे जाइंग को राइनलैंड में एक एकच्छत्र राज्य करने के लिए छोड़ दिया जाए। इस प्रकार राइनिश जाइटुंग जल्दी काल-कवलित नहीं हो सका। पहले लेख के कुछ ही महीने बाद 1842 ई. में मार्क्स को पत्र का सम्पादक बना दिया गया। इसी से मालूम होगा कि पत्रकारिता के पहले ही प्रयास में उसने अपनी प्रतिभा में कितना चमत्कार दिखलाया था। उसने भी इसे सौभाग्य की बात समझी, क्योंकि अब उसके हाथ में जबर्दस्त लेखनी के साथ-साथ एक जबर्दस्त पत्र भी आ गया था।

2. रेनिश डीट (राइन संसद्)

राइनलैंड में एक अलग प्रादेशिक डीट (डाइट, संसद्) थी। 1841 ई. में नौ सप्ताह तक उसका अधिवेशन डुसेलडोर्फ में होता रहा। मार्क्स ने इसकी कार्रवाइयों पर पाँच लम्बे निबन्ध लिखकर बतलाया कि प्रादेशिक संसदें नपुंसक नकली प्रतिनिधि-संस्थाएँ हैं, जिन्हें प्रशिया के राजा ने 1815 ई. में संविधान प्रदान करनेवाली प्रतिज्ञा के भंग को छिपाने के लिए कायम किया है। इन परिषदों की बैठकें बन्द कमरे में होतीं, और अधिक से अधिक छोटी-छोटी साम्प्रदायिक बातों पर ही बहस करने की उन्हें स्वतंत्रता थी। 1837 ई. में कोलोन और पोजेन में कैथलिक चर्च से झगड़ा हो जाने के बाद से संसद् का अधिवेशन नहीं हुआ था। इन संसदों के सदस्य वही होते थे, जो जमींदार थे। देहात से आधे मेम्बर लिए जाते थे, शहरी जमींदारों के एक-तिहाई और हर-जमींदारों के एक-चौथाई। साथ ही यह भी शर्त थी कि कोई भी निर्णय बिना दो तिहाई बहुमत के वैध नहीं माना जा जाएगा। ऐसी संसदों के प्रति लोगों की घृणा क्यों न होती, लेकिन अपनी गद्दी पर बैठने के बाद 1841 ई. में फ्रीडरिक विलयम चतुर्थ ने संसदों का अधिवेशन करवाया, इस प्रकार वह कर्ज लेने में सुभीता प्राप्त करना चाहता था। लेकिन बन्द कमरे में अधिवेशन होना नागरिकों को पसन्द नहीं था। कोलोन के हजारों निवासियों ने हस्ताक्षर करके आवेदनपत्र भेजकर कहा, कि संसद के अधिवेशन में साधारण जनता को भी जाने का अधिकार हो, उसकी कार्रवाई रोज प्रकाशित की जाय, बिना काटे-छाँटे सारी रिपोर्ट संसद् की कार्रवाइयों में छापी जाय। संसद् और सभी प्रादेशिक बातों पर प्रेस में बहस करने का अधिकार हो, और सेन्सर को हटाकर एक निश्चित प्रेस कानून बनाया जाय। संसद् ने नागरिकों की माँगों का समर्थन करने में अक्षम हो राजा से केवल यही प्रार्थना की, कि अपने अभिलेखों में वक्ताओं के नामों को प्रकाशित करने की आज्ञा दी जाय और मनमानी हटाकर सेन्सर करने का एक कानून बना दिया जाय। राजा ने उनकी विनम्र प्रार्थना को भी ठुकरा दिया। संसद् के सदस्य कितने प्रतिक्रियावादी थे, यह इसी से मालूम होगा कि संसद् सभी प्रतिगामी बातों का समर्थन करती थी। हाँ, कोलोन और राइनलैंड के आर्थिक ढाँचे में कितने ही परिवर्तनों के कारण वह ऐसी बातों को मानना पसन्द करती थी जो कि नये बूर्ज्वा वर्ग के अनुकूल हों। सरकार ने भू-सम्पत्ति के बटवारे में एक सीमा निश्चित करने का प्रस्ताव रक्खा था, जिसमें कि शक्तिशाली किसान वर्ग कायम रहें। संसद् ने आठ वोटों के विरुद्ध 49 वोटों से उसे अस्वीकार कर दिया।

मार्क्स ने अपने लेखों में संसद् की बड़ी कड़ी आलोचना की : संसद् दिन के उजाले में मुँह नहीं दिखा सकती। अपनी मंडली की गोपनियता उसके लिए बहुत अनुकूल है। मार्क्स ने उसे बकलोल संसद् कहा था। मार्क्स ने अपने लेखों में अपनी जन्मभूमि राइनलैंड के जलवायु और भूभाग का बड़ी भावुकता के साथ नाम लिया था। उन लेखों में आज भी राइन तट के द्राक्षा-उद्यानों और सुखद धूप का आनन्द और गर्मी मिलती है। इसी समय मार्क्स ने लेखक के धर्म के सम्बन्ध में लिखा था : एक लेखक को जीवित रहने के लिए पैसा

कमाने के ख्याल से लिखना चाहिए, लेकिन उसे पैसा कमाने के लिए जीना और लिखना नहीं चाहिए।··· प्रेस की पहली स्वतंत्रता यह है कि उसे व्यापार से मुक्त करना। जो लेखक प्रेस को केवल धन कमाने का साधन बना छोड़ता है, उसे इस आंतरिक दासता का दण्ड मिलना उचित है, बाहरी दासता अर्थात् सेन्सर की रोक··· उसके लिए दंड है। मार्क्स ने अपने जीवन-भर लेखक के इस धर्म का पालन किया।

मार्क्स ने कोलोन के कैथलिक लार्ड पादरी की गिरफ्तारी को गैर-कानूनी बतलाकर उसकी कड़ी आलोचना की। अभी भी मार्क्स के विचार जितने कानून और न्याय की दृष्टि से थे, उतने आर्थिक कारणों पर निर्भर नहीं करते थे। अभी भी वह कानून और राज्य के सम्बन्ध में हेगेलीय दर्शन की सीमा से बाहर नहीं निकल सका था।

3. संघर्ष के पाँच मास

'राइनिश जाइटुंग' जर्मनी के उद्योगप्रधान प्रदेश का पत्र था। यद्यपि पहले उसका उद्देश्य वह नहीं था, लेकिन वह जनता की सहायता से ही फूल-फल सकता था, इसलिए जनप्रिय बनने के लिए आवश्यक था कि वह कुछ गर्म-गर्म भी चीजें दे, इसीलिए उस साल की गर्मियों में पत्र में सम्भवतः मोजेज हेस की प्रेरणा से, बर्लिन में आवासों की कठिनाइयों के बारे में एक या दो लेख निकले, जिनमें से एक वाइटलिंग के लेख का उद्धरण था, दूसरा स्ट्रासबुर्ग के पंडित कांग्रेस की रिपोर्ट के तौर पर था, जिसमें समाजवादी समस्याओं का जिक्र करते हुए कहा गया था कि हीन वर्ग जो मध्यम वर्ग की सम्पत्ति की ओर ईर्ष्या की दृष्टि से देख रहा था, उसकी तुलना 1789 ई. की फ्रेंच-क्रांति में सामन्तों के विरुद्ध मध्य वर्ग के संघर्ष से किया जा सकता है, फर्क इतना ही है कि इस समय समस्या का हल शान्तिपूर्वक हो सकता है। लेख में कोई ऐसी उग्र क्रांतिकारी बात नहीं थी, लेकिन इसके कारण 'राइनिश जाइटुंग' पर कम्युनिज्म (साम्यवाद) की ओर झुकने का आक्षेप किया गया। आग्सबुर्ग के 'अल्गेमाइन जाइटुंग' ने अपने राइन के सहयोगी की कड़े शब्दों में आलोचना की—धनी-मानी व्यापारियों के पुत्र, इस बात का जरा भी ख्याल किए बिना—कि हम इस प्रकार अपने धन में कोलोन के गिर्जों में काम करनेवाले आदमियों या जहाजी कुलियों को सहभागी बना रहे हैं--समाजवादी विचारों से बच्चों की तरह आग के साथ खेल रहे हैं। 'राइनिश जाइटुंग' की बात को लड़कपन कहते हुए लिखा कि जर्मनी जैसे आर्थिक तौर से पिछड़े हुए देश में मध्य-वर्ग की 1789 ई. के फ्रांस के सामन्तों के भाग्य से तुलना करना निरी मूर्खता है। मार्क्स का पहला सम्पादकीय कर्तव्य था, इस तरह के आक्षेपों का जवाब देना। यद्यपि तथाकथित समाजवादी विचारों के ऊपर हुए प्रहार के जवाब में कलम उठाने की उसकी इच्छा नहीं होती थी, तो भी उसने कुछ लिखना जरूरी समझा और सविस्तार आलोचना के लिए अधिक अध्ययन के बाद लिखने का वादा किया।

मार्क्स ने उस समय जो लिखा, उससे उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह बड़ी उत्सुकतापूर्वक ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगा, जब कि वह फिर अध्ययन में लग सकेगा। लेकिन इस समय तो वह 'राइनिश जाइटुंग' में दिलोजान से इतना लगा था कि अपने बर्लिन के पुराने साथियों से सम्बन्ध तोड़ने के लिए भी तैयार था। बर्लिन में हेगेलीय क्लब के उसके साथी अब 'मुक्त मानव' समाजवालों के रूप में बदल गए थे। मार्क्स को उनकी यह बात पसन्द नहीं आई, क्योंकि इसमें उसे आत्म-विज्ञापन और अहम्मन्यता की बू आती थी। तब भी अभी बावर पर उसका विश्वास था। बर्लिन के उसके पुराने साथी अब ऐसे लेख भेजते थे, जिनमें कुछ को सम्पादक और कुछ को सेन्सर काट देते थे। अभी तक रूटेनबर्ग का बर्लिन के तरुण लेखकों के साथ जैसा बर्ताव था, उससे वह समझते थे कि 'राइनिश जाइटुंग' हमारे विचारों का वाहक है; लेकिन अब सम्पादक की कुर्सी पर मार्क्स बैठा था। मार्क्स और बर्लिन के पुराने साथियों का सम्बन्ध-विच्छेद नवम्बर, 1842 में हुआ। इस समय हेरवेग और रूगे बर्लिन गए। हेरवेग उस समय अपनी सफलता पर फूला नहीं समाता था। कोलोन जाने पर बड़ी जल्दी वह मार्क्स का मित्र बन गया था। ड्रेसडेन में रूगे से उसकी मुलाकात हुई, जिसके साथ वह बर्लिन पहुँचा। 'स्वतन्त्र मानव' की कलाबाजियाँ उसको बिल्कुल फीकी और बेकार मालूम हुईं। रूगे अपने सहयोगी ब्रूनो बावर से खासकर 'स्वतन्त्र मानव' के इस विचार पर उलझ पड़ा। व्यावहारिक पहलू पर बिना

विचार किए हुए राज्य, वैयक्तिक सम्पत्ति और परिवार को उठा देने जैसी बात बेहुदी है–हेरवेग ने जब इस तरह की नुक्ताचीनी की, तो उसके विरोधियों ने भी छिद्र ढूँढ़ते राजा से उसकी मुलाकात एवं एक धनी लड़की से मँगनी की बात लेकर आक्षेप किया। अन्त में दोनों पक्षों ने 'राइनिश जाइटुंग' का सहारा लिया। रूगे की सहमति से हेरवेग ने एक वक्तव्य लिखकर कहा कि 'स्वतन्त्र मानव' व्यक्ति के तौर पर बहुत भले आदमी हैं, लेकिन आत्म-विज्ञापन के लिए उनका राजनीतिक रूमानीपन (रोमांचकता) आदि उनके लक्ष्य और स्वतन्त्रता के पक्ष को नुकसान पहुँचाता है। मार्क्स ने इस वक्तव्य को छाप दिया, इस पर मेयेन ने 'स्वतन्त्र मानव' की तरफ से खूब कड़े लेख लिखे। पहले मार्क्स ने इनका जवाब बड़ी नर्मी से दिया और कोशिश की कि 'स्वतन्त्र मानव' का उपयोगी सहयोगी बना रहे–"मैं चाहता हूँ, कि शिकायतों में इतनी अधिक अस्पष्टता न हो, शब्दाडम्बर, आत्म-प्रशंसा कम और पते की बातें ज्यादा हों, वास्तविक स्थितियों का सविस्तार वर्णन हो और कथनीय विषय के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान का अधिक परिचय दिया जाय। मेरी राय में यह ठीक नहीं है, बल्कि इसे नैतिकता के विरुद्ध भी कहा जा सकता है कि साधारण-सी आलोचना आदि में संसार को एक बिल्कुल नई दृष्टि से देखनेवाले कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट मतवादों को खामखा डाला जाय। अगर कम्युनिज्म पर बहस करनी ही है, तो उसे विस्तारपूर्वक और एक बिल्कुल दूसरे ढंग से करना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि अगर धर्म का खण्डन करना है तो उसे दूसरी तरह नहीं, बल्कि राजनीतिक स्थिति के साथ खण्डन करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा करना एक समाचारपत्र के अधिक अनुरूप होगा और इससे हमारी जनता की ज्ञान-वृद्धि होगी। धर्म अपने आंतरिक बिल्कुल सूखे स्वर्ग के सहारे नहीं, बल्कि पृथ्वी के सहारे जीता है। वह अपने आप लुप्त हो जायगा, जब वह उल्टी वास्तविकता एक बार विलीन हो जायगी, जिसके विचारों का वह प्रतिनिधित्व करता है। अन्त में मैंने उनसे यह भी कहा कि अगर वह दर्शन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं, तो नास्तिकवाद के विचारों के साथ खेलना कम करें–उनका ऐसा करना उन बच्चों की याद दिलाता है, जो सुनने के लिए तैयार न हों। किसी आदमी से बड़े ऊँचे स्वर से कहते हैं कि हम भूत से नहीं डरते।" मार्क्स के इस उद्धरण से मालूम होगा कि अपने सम्पादक के फर्ज को अदा करते हुए वह किस नियम पर चलता था।

मार्क्स के उपर्युक्त शब्दों को स्वतन्त्र मानव क्यों पसन्द करने लगे ? उनके प्रतिनिधि मेयेन ने बहुत ढिठाई के साथ एक पत्र मार्क्स को लिखा, जिसपर मार्क्स ने रूगे को लिखा था : "यह सब एक हद दर्जे की अहम्मन्यता को दिखलाता है। वह इस बात को नहीं अनुभव करते कि एक राजनीतिक मुखपत्र की रक्षा के लिए हमें बर्लिन की, इस तरह की बहकों को छोड़ना होगा, जो कि अपनी गुट को छोड़कर और किसी बात से सम्बन्ध नहीं रखती।···रोज-रोज सेन्सर की क्षुद्रता, मंत्रियों के पत्रों, प्रादेशिक गवर्नर की शिकायतों, डीट (संसद्) की हाय-तोबा, शेयर-होल्डरों (भागीदारों) के विरोधों आदि-आदि से काम पड़ रहा है। इसपर भी मैं अपने स्थान को इसीलिए पकड़े हुए हूँ, क्योंकि जहाँ तक हो सके, स्वेच्छाचारियों के इरादों को निष्फल करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। तुम समझ सकते हो कि इस पत्र से मैं झल्ला उठा, और मेयेन को एक काफी कड़ा जवाब दिया।"

अब से मार्क्स का सदा के लिए स्वतंत्र मानव से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। स्वतंत्र मानव में सबकी गति अन्त में स्वतन्त्रता के मार्ग से भ्रष्ट होने में हुई। बावर और एडवर्ड मेयेन ऐसे पत्रों के सम्पादक बने, जिनमें उन्हें मालिकों की हाँ में हाँ मिलाते हुए ही कुछ लिखने का अवसर मिलता था।

1842 ई. के शरद में रूटेनबेर्ग को अब भी सरकार भयंकर आदमी समझती थी और उसने राइनिश जाइटुंग से उसे हटाने की माँग की। सारी गर्मियों में सरकार पत्र के लिए कठिनाइयाँ पैदा करती रही, जिनसे वह समझती थी कि वह अपने आप मर जायेगा। 8 अगस्त को राइनलैण्ड के गवर्नर फान शापर ने ऊपर सरकार को लिखा था कि पत्र के 885 ग्राहक हैं। 15 अक्तूबर को मार्क्स ने सम्पादक-पद को सँभाला था। 10 नवम्बर को शापर ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि ग्राहकों की संख्या लगातार बढ़ रही है, जो अब 1820 तक पहुँच गई है, पत्र की नीति सरकार के सम्बन्ध में विरोधी और धृष्टतापूर्ण है। सरकार की कोपाग्नि में घी का काम करने के लिए इसी समय राइनिश जाइटुंग ने एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी ढंग के विवाह-बिल (विधेयक) की कापी

प्राप्त करके उसे अधिकारियों की इच्छा के विरुद्ध छाप दिया। इसके कारण प्रशिया के राजा को बहुत गुस्सा आया और उसने माँग की कि उक्त मसौदा जिससे मिला, उसका नाम प्रकट किया जाय, नहीं तो पत्र को तुरन्त बन्द कर दिया जाएगा। लेकिन राजा के मन्त्री राइनिश जाइटुंग को इस प्रकार शहीद बनाना नहीं पसन्द करते थे, इसलिए उन्होंने सिर्फ यही माँग की कि रूटेनबेर्ग को हटाकर कोई जिम्मेवार सम्पादक नियुक्त किया जाय। साथ ही डोलेशाल की जगह वीटहाउस को उन्होंने सेन्सर नियुक्त किया। मार्क्स ने, जैसा कि 30 नवम्बर के अपने पत्र में उसने रूगे को लिखा था, रूटेनबेर्ग को खतरनाक आदमी नहीं समझा था। बर्लिन के स्वतन्त्र मानव से जो विरोध चल रहा था, वह इस स्थिति में और भी उग्र हो चला।

गवर्नर शापर ने रूटेनबेर्ग को हटाकर दूसरे सम्पादक को नियुक्त करने के लिए 12 दिसम्बर तक की मियाद दी। इसी समय आपसी फूट के नये कारण पैदा हो गए। वेर्नकास्टेल के एक संवाददाता ने मोजेल के किसानों की गरीबी और तकलीफों के बारे में दो लेख लिखे, जिनके संबंध में शापर ने दो संशोधन भेजे। संशोधन बिल्कुल भद्दे और हल्के थे, लेकिन तब भी पत्र ने उन्हें कुछ प्रशंसा के साथ ही प्रकाशित किया। इस बीच काफी सामग्री जमाकर जनवरी के मध्य से पत्र ने पाँच लेख छापे, जिनमें प्रमाण के सहित बतलाया कि सरकार ने मोजेल के किसानों की शिकायतों को बड़ी पाशविक कड़ाई के साथ दबा दिया। गवर्नर को इससे संतोष हुआ कि 21 जनवरी, 1843 को मंत्रिमंडल ने राजा की उपस्थिति में पत्र को दबा देने का निश्चय कर लिया है। शेयर होल्डरों का रुपया लगा हुआ था, और वैयक्तिक सम्पत्ति शोषकों के राज्यों में पवित्र थाती मानी जाती है, इसलिए पत्र को, तिमाही के अन्त तक जारी रखने की इजाजत मिली। सरकार द्वारा इस तरह जबर्दस्ती अपने प्रदेश के निर्भीक पत्र का दबाया जाना राइन-निवासियों ने पसन्द नहीं किया। उन्होंने एक ओर ग्राहकों की संख्या को एकाएक 3200 तक पहुँचाकर अपनी सहानुभूति प्रकट की और दूसरी तरफ हजारों ने हस्ताक्षर करके अपने पत्र की जान बचाने के लिए राजधानी में अर्जी भेजी। शेयर होल्डरों का प्रतिनिधिमंडल भी राजा से मिलने बर्लिन गया, लेकिन उनको इजाजत नहीं दी गई, और जनता के हस्ताक्षर से भेजे गए आवेदन-पत्रों को रद्दी टोकरी में फेंक दिया गया। शेयर होल्डरों को अपनी पूँजी का ख्याल था, कहीं वह डूब न जाए, इसलिए उन्होंने पत्र से अधिक नर्मी बरतने की माँग की, जिसपर 17 मार्च को मार्क्स ने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने से पहले उसने सरकारी सेन्सर को काफी परेशान भी किया।

नया सेन्सर सेन्टपाल एक चेक (बोहेमियन) तरुण था। मार्क्स के नैतिक बल, बुद्धि, प्रतिभा का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। 2 मार्च को उसने राजधानी में रिपोर्ट भेजी कि वर्तमान परिस्थिति में मार्क्स ने 'राइनिश जाइटुंग' से सम्बन्ध तोड़ने और प्रशिया को छोड़ने का निश्चय किया है। 18 मार्च को सेन्टपाल ने रिपोर्ट भेजी : "डाक्टर मार्क्स निश्चित तौर से कल सम्पादक-पद से हट गया और उसकी जगह एक मामूली तथा नर्म विचारोंवाले आदमी ओपेन हाइम ने सम्पादक-पद को सँभाल लिया। मुझे इससे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि आज लेखों के सेन्सर करने में मुझे मुश्किल से चौथाई समय लगाना पड़ा।" सेन्सर ने अपने आकाओं से सिफारिश की कि मार्क्स के हट जाने पर अब पत्र को चालू रखने की इजाजत दी जाय।

'राइनिश जाइटुंग' के दबाने के 25 जनवरी के सरकारी निश्चय का जैसे ही पता लगा, मार्क्स ने रूगे को लिखा था : "मुझे इसके लिए आश्चर्य नहीं हुआ। आरम्भ से ही सेन्सर की हिदायतों के बारे में मेरी क्या राय थी, यह तुम जानते हो। जो कुछ हो रहा है, उसे मैं स्वाभाविक परिणाम ही समझता हूँ। 'राइनिश जाइटुंग' का दबाया जाना मेरी राय में राजनीतिक चेतना की प्रगति की सूचना है। मैं अब इस्तीफा दे रहा हूँ। जो भी हो, वातावरण मेरे लिए बड़ा ही पीड़ाकर था। बन्धन में रहते काम करना बुरी बात है, और स्वतंत्रता के लिए भी तलवार की जगह सुई से लड़ना बुरी बात है। मैं अधिकारियों के पाखंड, मूर्खता और पशुता और अपनी आज्ञानुवर्तिता··से ऊब गया हूँ। अब जब कि सरकार ने मुझे मेरी स्वतंत्रता लौटा दी··जर्मनी में मेरे लिए करने को कुछ नहीं है। आदमी को यहाँ रहकर खोटा बनना पड़ता है।"

इस प्रकार मार्क्स के राजनीतिक जीवन का पहला भाग खतम हुआ, जब कि अभी वह अपने पच्चीसवें वर्ष में था।

4. फ़्वारवाख के सम्पर्क में

मार्क्स ने रूगे को लिखे उक्त पत्र में अपनी पहली छपी पुस्तक के प्राप्ति-स्वीकार के बारे में लिखा था। यह उसके लेखों का संग्रह 'अनेक्डोटा जुर नो एस्टेन इवाशेन फिलोसोफी उंट पुब्लिजिस्टिक' (दो जिल्दों में) मार्च, 1843 के आरम्भ में ज़ूरिच (स्वीट्जरलैंड) में छपा। जुलियस फ्रोबेल ने जर्मन सेन्सर द्वारा पीड़ित लेखकों की कृतियों को लिटेरारिशे कोन्टोर नाम से प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया था। इस संग्रह में तरुण हेगेलियों के कितने ही लेख सम्मिलित थे, जिनमें लुड्विग फ़्वारबाख का नाम सबसे पहले था। फ़्वारबाख ने हेगेल के सारे दर्शन को रद्दी की टोकरी में फेंकते घोषित किया था कि यह निष्प्राण विचार है, इसमें धर्म-विद्या की रोगी आत्मा के सिवा और कुछ नहीं है। दर्शन-सुधार पर प्रारम्भिक निबन्ध में फ़्वारबाख ने अपने जिन विचारों को प्रकट किया था, मार्क्स को बिल्कुल नये-से मालूम हुए। एंगेल्स ने पीछे स्वीकार किया कि मार्क्स के बौद्धिक विकास में फ़्वारबाख की अमर कृति ईसाइयत-सार (1841 ई. में प्रकाशित) ने बड़ा प्रभाव डाला था। एंगेल्स ने भी इस ग्रंथ के मुक्तिदायक प्रभाव के बारे में लिखा था : "सर्वत्र उत्साह था। हम सभी तुरन्त फ़्वारबाख के अनुयायी बन गए।" लेकिन 'राइनिश जाइटुंग' के लेखों में इसका जरा भी चिह्न नहीं मिलता, कि उस वक्त मार्क्स के ऊपर फ़्वारबाख का कोई प्रभाव था। तो भी मार्क्स ने बड़े उत्साह के साथ फ़्वारबाख के नये विचारों का स्वागत किया। फरवरी, 1844 में इवाश-फ्रांजोशिशे यारबुखेर (जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र) के निकलने के समय मार्क्स पर जरूर फ़्वारबाख के विचारों के प्रभाव को देखा गया। प्रारम्भिक निबन्ध में फ़्वारबाख के ईसाइयत-सार के विचार सूक्ष्म रूप में पाए जाते हैं, शायद इसीलिए एंगेल्स को भ्रम हुआ और उन्होंने तुरन्त अनुयायी बनने की बात कही। लुड्विग फ़्वारबाख (1804-32 ई.) हेगेल का शिष्य था। हेगेल के बाद उसका दर्शन दो शाखाओं में बँट गया, जिनमें डुरिंग जैसे लोग भौतिकवाद के कट्टर विरोधी थे और हेगेलीय विज्ञानवाद को लेकर प्रतिक्रियावादी दर्शन की धारा चलाने लगे। दूसरी शाखा हेगेल के दर्शन को रहस्यवाद और विज्ञानवाद से छुड़ा उसके वास्तविक लक्ष्य द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ओर ले जा रही थी। इस दल का अगुआ फ़्वारबाख था। इस प्रकार मार्क्स का हेगेलीय दर्शन के इस विशिष्ट रूप के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में फ़्वारबाख का हाथ था, इसमें सन्देह नहीं। फ़्वारबाख को देहात का एकान्त जीवन पसन्द था, लेकिन तब भी वह हथियार डालनेवाला निकम्मा पुरुष नहीं, बल्कि सच्चाई के लिए लड़नेवाला योद्धा था। वह गलेलियों की तरह नगर को कल्पनाशील दिमागों का जेलखाना मानता था, जब कि देहाती जीवन की स्वतंत्रता को प्रकृति के खुले ग्रंथों को पढ़ने का सुन्दर अवसर देनेवाला मानता था। फ़्वारबाख जैसे विचारक के लिए नगर के शोर-गुल से भरे वातावरण से अलग शान्त स्थान में रहना शायद इसलिए पसन्द था कि उसके एकाग्रतापूर्ण स्वभाव के वह अधिक अनुकूल था। एकान्तवासी होते हुए भी फ़्वारबाख अपने समय के बड़े-बड़े संघर्षों में अगली पाँती में रहता था। ईसाइयत-सार में उसने लिखा था : मनुष्य धर्म को बनाता है, धर्म मनुष्य को नहीं। और मनुष्य की कल्पना जिस उच्चतम सत्ता को बनाती है, वह उसकी अपनी सत्ता का कल्पित प्रतिबिम्ब छोड़ और कुछ नहीं है। जिस समय उसकी यह पुस्तक प्रकाशित हुई, मार्क्स का ध्यान उसी समय राजनीतिक संघर्ष की ओर गया था। इसने मार्क्स के संघर्षमय जीवन में दृढ़तापूर्वक पैर रखने में सहायता की, इसमें शक नहीं। प्रारम्भिक निबन्ध ने हेगेलीय दर्शन के प्रतिक्रियावादी रूप को बिल्कुल नंगा और बेकार कर दिया, और अब उसका द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण भौतिकवाद और समाजवाद की सेवा के लिए तैयार था। 'प्रारम्भिक निबन्ध' ने मार्क्स के ऊपर भारी प्रभाव डाला। 13 मार्च, 1843 ई. को रूगे को पत्र लिखते समय मार्क्स ने घोषित किया था : "फ़्वारबाख की सिर्फ एक बात मुझे पसन्द नहीं है, वह यही कि वह प्रकृति की बहुत अधिक पर्वा करता है और राजनीति की बहुत कम, यद्यपि राजनीति से मित्रता स्थापित करके ही समसामयिक दर्शन सच्चा बन सकता है। लेकिन मैं मानता हूँ, कि इसे वैसा ही होना पड़ेगा, जैसा कि सोलहवीं शताब्दी में प्रकृति के उत्साही भक्तों को राज्य के उत्साही भक्तों के साथ लोहा लेकर करना पड़ा था।" मार्क्स का कहना बिल्कुल ठीक था, क्योंकि 'प्रारम्भिक निबन्ध' में फ़्वारबाख ने सिर्फ एक ही बार राजनीति का नाम लिया है, सो भी गौण रूप से। मार्क्स ने अब

हेगेल के विधान-दर्शन की और राज्य-दर्शन की पूरी तौर से परीक्षा करने का निश्चय किया, जैसे कि फ्वारबाख ने उसके प्रकृति-धर्म-दर्शन की परीक्षा की थी। उसी पत्र में लिखे दूसरे वाक्य से भी मार्क्स के ऊपर पड़े फ्वारबाख के प्रभाव को देखा जा सकता है।

प्रशियन सेन्सर के कारण प्रशिया में रहते हुए कुछ लिखना सम्भव नहीं है, इसलिए मार्क्स ने जर्मनी को छोड़ने का निश्चय किया।

5. विवाह (1843 ई.)

लेकिन जर्मनी को वह बिना जेनी को लिए छोड़ना नहीं चाहता था। 25 जनवरी को उसने रूगे से पूछा था, कि हेरवेग द्वारा जूरिच से भविष्य में निकाले जानेवाले इ्वाशेरबोटे में कोई काम मिल सकता है या नहीं। पर हेरवेग को स्वयं जूरिच से निकलने के लिए मजबूर किया गया, जिसके कारण वह वहाँ से पत्र नहीं निकाल सका। इसपर दोनों के संयुक्त सम्पादकत्व में यारबुखेर (वर्षपत्र) के नाम से एक पत्र निकालने का सुझाव रूगे ने रक्खा और कोलोन छोड़ने के बाद लाइपजिग में आकर बात करने के लिए बुलाया। उस समय जर्मनी में पत्र-पत्रिकाओं के ऊपर सेन्सर का बहुत जोर था, उससे बचने के लिए वर्षपत्र निकाले जाते थे, जिनमें भिन्न-भिन्न लेखों का संग्रह रहता, और पत्र-पत्रिकाओं में न सम्मिलित होने के कारण उसे सेन्सर कराके छपाने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन मार्क्स जैसे विचार रखनेवाले लेखकों के लेख वर्षपत्र में भी आसानी से प्रकाशित होने पाते थे, इसमें सन्देह था। 13 मार्च के अपने पत्रों में रूगे को मार्क्स ने लिखा था : "यदि इ्वाशे यारबुखेर को फिर प्रकाशित होने की इजाजत मिल जाय, तो अधिक से अधिक विगत कामों का ही हम हल्का-सा अनुकरण कर सकेंगे, जो कि वर्तमान के लिए पर्याप्त नहीं है। पर 'इ्वाश-फ्रांजोशिशे यारबुखेर' (जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र) एक सिद्धान्त की चीज होगी, एक महत्त्वपूर्ण घटना और ऐसा अध्यवसाय होगा, जो कि हमें उत्साहित करेगा।" मार्क्स ने इस प्रकार जर्मनी के भीतर जर्मन वर्षपत्र न निकाल बाहर से 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र' निकालने का प्रस्ताव रक्खा, जिसे 19 मार्च के अपने पत्र में रूगे ने स्वीकार किया।

पिता के मरने और डाक्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद जिस समय मार्क्स ने अपने राजनीतिक संघर्षमय जीवन को आरम्भ किया था, उसी वक्त उसके सामने कितनी ही घरेलू कठिनाइयाँ भी उपस्थित हुई थीं, लेकिन मार्क्स उनको कोई महत्त्व नहीं देता था। वह मानवजाति के सारे समाज के दुःखों के हटाने की चिन्ता में था, जिसके सामने घरेलू कठिनाइयाँ उसके लिए नगण्य-सी थीं। उसने इन कठिनाइयों का शायद ही कभी जिक्र किया। पहली बार तुच्छ निजी मामले कहते उसके वाक्य उस पत्र द्वारा हमारे पास पहुँचे हैं, जिसे कि 9 जुलाई, 1842 को रूगे को लिखा था : 'अनेक्डोटा' के लिए लिखने का वचन देकर भी मैं क्यों नहीं कुछ कर सका, "मेरा अवशिष्ट समय अत्यन्त अरुचिकर पारिवारिक झगड़ों के कारण बरबाद और बेकार हो गया। यद्यपि यह काफी अच्छी हालत में है, तो भी मेरे परिवार ने मेरे रास्ते में ऐसी कठिनाई डाली, जिसने मुझे कुछ समय के लिए अत्यन्त परेशान करनेवाली स्थितियों में डाल दिया। शायद मैं तुम्हें इन तुच्छ निजी मामलों का वर्णन करके परेशान करना नहीं चाहूँगा। यह वस्तुतः सौभाग्य की बात है, कि हमारे सार्वजनिक मामले किसी नैतिक बलवाले पुरुष को घरेलू कठिनाइयों द्वारा परेशान नहीं कर सकते।" इन शब्दों से मार्क्स के दृढ़ चरित्रबल का पता लगता है जो कि उसके कंटकाकीर्ण दीर्घ जीवन-पथ के लिए हमेशा बहुत बड़ा संबल रहा। उसकी क्या घरेलू कठिनाइयाँ थीं, इसका विवरण कहीं नहीं मिलता है। रूगे को उसने लिखा था : "जैसे ही हमारी सारी योजनाएँ ठीक रूप ले लेंगी, मैं क्रोज्नाख जाऊँगा, जहाँ जेनी की माँ अपने पति के मरने के बाद जाकर रहती थी।" ब्याह करके मार्क्स अपनी सास के घर में कुछ समय बिताना चाहता था। मार्क्स के शब्दों में "जिसमें कि हमारे काम शुरू करने से पहले हमारे पास कुछ सामग्री रहे।...बिना किसी भावुकता के मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं प्रेम में गम्भीरता के साथ पूरी तरह डूबा हुआ हूँ। हम दोनों कुछ अधिक सात वर्ष से मँगनी किए हुए हैं। मेरी भावी पत्नी को मेरे कारण अपने धम्रभीरु सामन्ती सम्बन्धियों से संघर्ष करना पड़ा, अपने उन धर्मभीरु सामन्ती सम्बन्धियों के साथ, जो कि स्वर्ग में पिता और बर्लिन में सरकार को समानरूपेण

पूज्य समझते हैं, और कुछ मेरे अपने परिवार के साथ, जिसपर पुरोहित लोगों तथा मेरे दूसरे शत्रुओं ने प्रभाव कायम कर रखा है। इन संघर्षों ने उसके स्वास्थ्य को प्रायः खतरे में डाल दिया। इसीलिए वर्षों तक मैं और मेरी भावी पत्नी अनावश्यक परेशान करनेवाले झगड़ों में पड़ने के लिए मजबूर हुए।"

यहाँ घरेलू कठिनाइयों की कुछ भनक मिलती है। अब मार्क्स देश छोड़ने के लिए तैयार था और ब्याह करके अपने भविष्य का भी कोई प्रबन्ध करना चाहता था। यह प्रबन्ध आसानी से हो गया, और मार्क्स को लाइपजिग जाने की जरूरत भी नहीं पड़ी। रूगे अच्छा खासा पैसेवाला आदमी था, उसने लिटेरारिशे कोन्टोर के छह हजार डालर (6 हजार पौंड) का शेयर लेना स्वीकार किया। फ्रोबेल ने प्रकाशन का काम अपने ऊपर लिया। यह निश्चय हुआ कि मार्क्स को सम्पादन के काम के लिए 500 डालर वार्षिक वेतन दिया जाय।

19 जून, 1843 के स्मरणीय दिन को जेनी से ब्याह किया। जेनी विचारों में पति से अभिन्नता रखती थी, उसका सारा जीवन पुराणवर्णित किसी परम तपस्विनी सती जैसा मालूम पड़ता है।

जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र को छापने के लिए तीन जगहें सामने थीं, ब्रुशेल्स (बेल्जियम), पेरिस (फ्रांस) और स्ट्रासबुर्ग (अलसस्की राजधानी)। मार्क्स दम्पति स्ट्रासबुर्ग को अधिक पसन्द करते, लेकिन रूगे और फ्रोबेल के पेरिस और ब्रुशेल्स के देख आने के बाद पेरिस को ही अधिक अनुकूल समझा गया। यद्यपि ब्रुशेल्स में पेरिस की अपेक्षा कानूनी लड़ाइयाँ कम थीं, लेकिन पेरिस जर्मन जीवन के नजदीक पड़ता था, और रूगे ने यह भी लिखा कि वहाँ पर मार्क्स तीन हजार फ्रांक या कुछ कम में आराम से रह सकता है।

मार्क्स को मधुमास बिताने के लिए कुछ महीने मिले, जिन्हें उसने अपनी सास के घर में बिताया। फिर 25 वर्ष के मार्क्स और 29 वर्ष के जेनी ने वहाँ से उठकर पेरिस में डेरा डाला। जर्मनी के इस जीवन के सम्बन्ध में मार्क्स का आखिरी लेख जो मिलता है, वह 23 अक्तूबर, 1843 को फ्वारबाख के नाम लिखा एक पत्र है, जिसमें उसने जर्मन कवि शेलिंग की आलोचना के सम्बन्ध में अपने वर्षपत्र के प्रथम अंक के लिए एक लेख माँगा था। फ्वारबाख ने ईसाइयत-सार के दूसरे संस्करण में जो भूमिका लिखी थी, उसे पढ़कर मार्क्स को ख्याल आया कि फ्वारबाख शायद इस काम के लिए अपनी कलम कलम उठाए। उसने पत्र में लिखा था : "हरशेलिंग ने कितनी चतुराई से फ्रांसीसियों को ठगा। पहले दिल और दिमाग के निर्बल कूजन को और बाद में चमत्कारी लारू को। पियर लारू और उसके सहकारी अब भी शेलिंग को एक ऐसा आदमी समझते हैं, जिसने अतिलौकिक विज्ञानवाद के स्थान पर बुध्यनुसारी यथार्थवाद, निराकार विचारों की जगह पर रक्तमांस के विचारों को, बाहरी दर्शन की जगह विश्वदर्शन को स्थापित किया।...इसलिए आप हमारे प्रकाशन तथा सत्य की भारी सेवा करेंगे, अगर आप हमारे प्रथम अंक के लिए शेलिंग की रूपरेखा को प्रदान करें। आप ही इस काम के लिए उचित पुरुष हैं, क्योंकि आप शेलिंग से बिल्कुल उलटे हैं। जहाँ तक शेलिंग का सम्बन्ध है, अपनी तरुणाई के ईमानदार विचारों के कारण वह हमारा सबसे अच्छा प्रतिद्वन्द्वी कहा जा सकता है। अपने इन विचारों के लिए उसके पास कल्पना छोड़ कोई दूसरे साधन नहीं, अहम्मन्यता छोड़ कोई दूसरी शक्ति नहीं, अफीम छोड़ कोई प्रेरणादायक बल नहीं, स्त्रैणं ग्रहणक्षमता के अनुकुसपन के सिवा कोई ज्ञान-साधन नहीं। उसके पास तरुणाई के स्वप्न से बढ़कर कभी कुछ नहीं थे, लेकिन आपके भीतर वह सत्य, वास्तविकता और पौरुषपूर्ण गम्भीरता बन गए... इसलिए मैं आपको प्रकृति और इतिहास की यमल शक्तियों द्वारा नियुक्त शेलिंग का आवश्यक और स्वाभाविक प्रतिद्वन्द्वी मानता हूँ।" इन पंक्तियों से फ्वारबाख के प्रति मार्क्स के उस समय के भाव प्रकट होते हैं। लेकिन फ्वारबाख ने मार्क्स की प्रार्थना को स्वीकार करने में आनाकानी की। उसने पहले रूगे को सहायता करने का वचन दिया था, लेकिन पीछे इन्कार कर दिया। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए, कि फ्वारबाख पलायनवृत्तिवाला आदमी था। लेकिन, इस समय उसके पास काफी हिम्मत नहीं थी कि जर्मनी के घोर प्रतिक्रियापूर्ण वातावरण में फिर अपनी लौह-लेखनी लेकर लड़ने के लिए तैयार हो जाता। उसने मार्क्स को यद्यपि बड़े सौहार्दपूर्ण शब्दों में जवाब दिया, लेकिन वह इन्कार छोड़ और कुछ नहीं था।

5
पेरिस में (1843-45 ई.)

1. 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र'

मार्क्स ने बड़े उत्साह के साथ वर्षपत्र के सम्पादन को अपने हाथ में लिया, लेकिन पत्र का केवल एक ही अंक दोहरी जिल्दों में फरवरी, 1844 ई. के अन्त में प्रकाशित हो सका। यही उसका आदिम और अन्तिम अंक था। जैसा कि नाम से मालूम होता है, इस पत्र द्वारा फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों के मनीषियों के बौद्धिक सहयोग की आशा की गई थी। जर्मनी की विशेषता थी उसका हेगेलीय दर्शन, जो कि फ्रांसीसियों को केवल विज्ञानवाद की धुन्ध में भटकने को प्रोत्साहन दे सकता था, और फ्रांस की जर्मनी को विशेष देन हेगेलीय दर्शन के तीक्ष्ण तट की ओर कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह निश्चय ही अध्यात्म और रहस्यवाद की मरुभूमि में भटकाने में सहायक होता। रूगे ने फ्रांस के तत्कालीन मनीषियों लामारतीन लामे ने, लुई ब्लाक, लारू, प्रूधों से इसके बारे में बातचीत की थी। केवल लारू और प्रूधों जर्मन-दर्शन के बारे में जानकारी रखते थे, उनमें भी एक पेरिस से बाहर रहता था, और दूसरे ने लीनोटाइप मशीन के आविष्कार में दिमाग को खपाते अपनी लेखनी को विश्राम दे रखा था। अराजकतावादी लुई ब्लाक और दूसरों ने किसी तरह के सहयोग देने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार जहाँ तक फ्रेंच लेखकों का सम्बन्ध था, वर्षपत्र को निराश होना पड़ा। लेकिन जर्मन लेखकों के सहयोग में जरूर सफलता मिली। सम्पादकों के अतिरिक्त कवि हाइने, हेरवेग और योहान याकोबी जैसे प्रथम श्रेणी के लेखकों ने अपने लेख भेजे, द्वितीय श्रेणी के लेखकों में मोजेज-हेस, पलाटिनेट के तरुण वकील एफ. सी. बैर्नेज, तथा सबसे तरुण लेखक फ्रेडरिक (फ्रीडरिख) एंगेल्स जैसों के सुन्दर लेख मिले। एंगेल्स ने कई तरह के लेखनक्षेत्र में घूमते हुए अब प्रथम बार पूरा हथियारबन्द होकर राजनीतिक क्षेत्र में पैर रक्खा था। यद्यपि वर्षपत्र का उद्देश्य क्रांतिकारी विचारधारा का समर्थन करना था, लेकिन अब भी वह हेगेलीय दर्शन की कक्षा में ही घूमना चाहता था।

प्रथमग्रास मक्षिकापातः हुआ, वर्षपत्र के युगल नम्बर के निकलते देर नहीं हुई, कि झगड़े का बीजारोपण हो गया। वर्षपत्र में पत्र-व्यवहार छपा था, जो रूगे, फ्वारबाख, बकुनिन के पत्र-व्यवहार से शुरू हुआ था। बकुनिन तरुण रूसी क्रांतिकारी था, जो ड्रेसडेन में रूगे के साथ आकर रहने लगा था। पत्र-व्यवहार में आठ चिट्ठियाँ थीं, जिनमें लेखकों के हस्ताक्षर-संकेत दर्ज थे, जिनसे मालूम होता है कि उनमें से तीन-तीन पत्र मार्क्स और रूगे के थे और बुकनिन तथा फ्वारबाख के एक-एक। पीछे रूगे ने दावा किया कि पत्र-व्यवहार सारा मेरा लिखा हुआ है और केवल जहाँ-तहा ही वास्तविक पत्रों से उद्धरण लिए गए हैं; लेकिन वस्तुतः पत्र उन्हीं के लिखे हुए थे, जिनके हस्ताक्षर-संकेत उनपर मिलते हैं।

वर्षपत्र के सम्बन्ध में कुछ उत्साहवर्द्धक सन्देश भी मिले थे, लेकिन उनका स्वागत वैसा नहीं हुआ। पहले तो फ्रेंच मनीषियों का सहयोग न होने से उसका जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र नाम ही उचित नहीं मालूम होता। मार्क्स ने तब भी कहा था, "इसमें कुछ उल्लेखनीय बातें हैं, जो कि जर्मनी में सनसनी पैदा करेंगी।" लेकिन सनसनी पैदा करने से पहला काम यह हुआ कि संचित निधि जल्दी ही खत्म हो गई। फ्रोबेल ने साफ कह दिया कि जब तक और पैसा नहीं मिलता, मैं कुछ नहीं कर सकता। इसके बाद वर्षपत्र के प्रकाशित होते ही प्रशिया की सरकार ने उसके विरुद्ध जहाद बोल दी। उसने बाहर के राज्यों पर भी दबाव डालना चाहा, लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। फिर अपने सभी प्रदेशों के गवर्नरों को 18 अप्रैल, 1844 को सूचित किया कि यारबुखेर में देशद्रोह और राजनीतिक अपराधवाली बातें हैं; साथ ही गवर्नरों को यह भी हुकम दिया कि बिना हल्ला-गुल्ला किए जैसे ही प्रशिया की सीमा के भीतर आवें, उनके कागज-पत्रों को जब्त करके रूगे, मार्क्स, हाइने और बुर्नी को गिरफ्तार कर लिया जाय। सीमान्त पर भी सावधानी रखने के लिए राजाज्ञा निकाली गई और जैसे

ही वर्षपत्र भीतर आया, उसे जब्त कर लिया गया। राइन नदी के एक स्टीमर से वर्षपत्र की सौ कापियाँ जब्त की गईं, और बेर्गजाबेर्न के पास फ्रांसीसी सीमान्त पर दो सौ से अधिक कापियाँ हाथ लगीं। यह आर्थिक चपत सीमित साधनोंवाले प्रकाशकों के बर्दाश्त से बाहर की बात थी।

पहले ही रूगे ने मार्क्स को लिखा था : "यारबुखेर मर गया और हेगेलीय दर्शन अब अतीत की चीज है। आओ, पेरिस में ऐसे एक पत्र का प्रबन्ध करें, जिसमें हम पूर्ण स्वतंत्र और निर्भीक हों, ईमानदारी के साथ अपनी और जर्मनी की पूर्णतया आलोचना कर सकें। लेकिन मार्क्स ही वर्षपत्र जैसे प्रयत्न के मुख्य केन्द्र थे। सोचनेवाले स्वतंत्र दिमागों के लिए एक नये केन्द्र की आवश्यकता वह मानते थे। यद्यपि अतीत के बारे में सन्देह की गुंजाइश नहीं थी, लेकिन वही बात भविष्य के बारे में नहीं कही जा सकती थी। मार्क्स के शब्दों में : सुधारकों में आम अराजकता और फूट पड़ी है। वह सभी यह स्वीकार करने के लिए मजबूर हैं, कि भविष्य के बारे में उनके पास कोई यथार्थ विचार नहीं हैं। तो भी नये आन्दोलन को यही एक बड़ा सुभीता है कि हम नई दुनिया को रूढ़िवश पहले से कल्पित करना नहीं, बल्कि उसे पुराण की आलोचना में खोलना चाहते हैं। अब तक पहेलियों के हल को दार्शनिक अपने लिखने की मेज पर तैयार रक्खे पाते थे, सारी बाहरी मूर्ख दुनिया को बस यही करना था कि आँखों को मूँद ले, और पकी-पकाई परम-साइन्स को पूड़ी को लेने के लिए मुँह खोल दे। फिलासफी ने अपने को वाद-निष्पक्ष कर लिया है, जिसका सबसे बड़ा सुबूत यही है, कि दार्शनिक चेतना ने सिर्फ ऊपरी तौर से नहीं, बल्कि पूरी तौर से युद्ध की ज्वाला में अपने को डाल दिया है। हमारा कार्य यह नहीं है, कि पहले ही से भविष्य का निर्माण करें और सभी समय की सभी समस्याओं का हल तैयार करें; बल्कि निश्चय ही हमारा काम है साथ ही वर्तमान दुनिया की निष्ठुरतापूर्वक आलोचना करना भी। निष्ठुरता से मेरा मतलब यही है कि न हम अपने निष्कर्षों से ही लोहा लेने में भय खाएँ और न वर्तमान राज्य-शक्तियों से लोहा लेने में।"

यहाँ मार्क्स का वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपने भविष्य के कृत्यों के बारे में स्पष्ट है। वह काबेत, देजामी और वाइटलिंग की तरह पहले से पके-पकाये साम्यवाद (कम्युनिज्म) की तरह के किसी वाद का झंडा फहराने की इच्छा नहीं रखते। ऐसे सोशलिस्टों की विचारधारा मार्क्स को बिल्कुल पसन्द नहीं थी, जो कि सामयिक राजनीतिक प्रश्नों को तुच्छ समझते थे। वह मानते थे कि राज्य के पारस्परिक विरोध, आदर्श और व्यावहारिक कल्पनाओं के संघर्ष द्वारा सब कहीं सामाजिक सत्य को खोज निकाला जा सकता है। इसलिए हमें राजनीति की आलोचना–राजनीति के वास्तविक संघर्ष में भाग लेने से अपने को रोकना नहीं चाहिए। इस तरीके से हम दुनिया के सामने सिद्धान्तशास्त्री के रूप में पेश होने से अपने को बचा सकेंगे। 'यह सत्य है, सिर नवाओ और इसकी पूजा करो' कहते एक नये सिद्धान्त को दुनिया के सामने उपस्थित करने से हम अपने को बचा सकेंगे। हमें दुनिया के लिए नये सिद्धान्त (नियम) उसके पुराने सिद्धान्तों से निकालकर विकसित करने होंगे। हमें दुनिया को यह नहीं कहना है : 'अपने झगड़ों को छोड़ो, वह मूर्खतापूर्ण हैं। हमारी बात सुनो, क्योंकि हमारे पास वास्तविक सत्य है।' इसकी जगह हमें दुनिया को यह दिखलाना है कि क्यों तुम्हें संघर्ष करना पड़ता है, इस तरह की चेतना को चाहे दुनिया पसन्द करे या न करे, उसे प्राप्त करना होगा। संक्षेप में मार्क्स ने अपने नये पत्र के सामने प्रोग्राम रक्खा था : संघर्षों और आकांक्षाओं को अनुभव करने में युग को सहायता देना।

मार्क्स इस बात को अनुभव करने लगे थे, लेकिन रूगे अभी वहाँ नहीं पहुँचा था। मार्क्स वस्तुतः चालक थे और रूगे चालित, वर्षपत्र के निकालने के समय यही बात साफ देखी गई। रूगे वैसे भी पेरिस में पहुँचने के बाद बीमार हो जाने से सम्पादकीय कामों में अधिक भाग नहीं ले सका, और सारा काम मार्क्स के ऊपर पड़ा। रूगे वर्षपत्र के बारे में उन बातों को नहीं कर सका जिन्हें उसने सोच रक्खा था, तो भी उसने प्रथम अंक से अंसतुष्ट होकर कहा, "कुछ उल्लेखनीय बातें इसमें हैं, जो जर्मनी में सनसनी पैदा करेंगी।"

पैसों के अभाव के कारण वर्षपत्र को आगे निकालना सम्भव नहीं था। रूगे और मार्क्स में मतभेद हो जाने के समय पैसे की बात आई। पैसों के सम्बन्ध में मार्क्स की सदा उपेक्षा रही, जबकि रूगे एक-एक पैसे के लिए मरता था। उसने मार्क्स के वेतन में पैसे की जगह वर्षपत्र की कापियाँ देनी चाहीं, लेकिन मार्क्स को

उस व्यापार का कोई अनुभव नहीं था। मार्क्स ने रूगे को व्यर्थ ही सनझाना चाहा कि पहली ही असफलता पर हथियार छोड़ बैठना नहीं चाहिए।

रूगे के अनुसार इस झगड़े का तुरन्त कारण था हेरबर्ग के बारे में मार्क्स का विशेष पक्षपात। रूगे उसे बदमाश कहता था, जब कि मार्क्स उसे बड़ा होनहार समझते थे। रूगे के विचार आगे चलकर अधिक सत्य साबित हुए, तो भी इसका यह अर्थ नहीं कि मार्क्स हेरबर्ग से पूर्णतया प्रसन्न थे। कुछ भी हो, ज्यादातर पैसे और वर्षपत्र की असफलता ने रूगे और मार्क्स को सदा के लिए एक-दूसरे से अलग कर दिया।

2. दो लेख

मार्क्स ने 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र में' अपने दो लेख प्रकाशित किए थे, जिनमें एक था 'हेगेलीय विधान-दर्शन की आलोचना की भूमिका' और दूसरा था यहूदी समस्या पर ब्रूनो बावर द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों पर टिप्पणी। ये दोनों ही लेख मार्क्स के जीवन के उषाकाल की प्रगतिशील विचारधारा पर प्रकाश डालते हैं।

(1) वर्ग-संघर्ष की दार्शनिक रूपरेखा–मार्क्स के पहले लेख में सर्वहारा वर्ग-संघर्ष की दार्शनिक रूपरेखा पेश की गई है, जब कि दूसरे लेख में समाजवादी समाज की दार्शनिक रूपरेखा दी गई है। मार्क्स ने बतलाया कि दर्शन का भौतिक हथियार सर्वहारा है, उसी तरह से सर्वहारा का बौद्धिक हथियार दर्शन है–यहाँ दर्शन से मार्क्स का मतलब है द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन। जनसाधारण में जब इस दर्शन की गहरी जड़ जम जाएगी, तो जर्मनों की मानव के रूप में मुक्ति होगी। जर्मनों की मुक्ति मनुष्य की मुक्ति है। दर्शन की अनुभूति सर्वहारा वर्ग के समाप्त किए बिना नहीं हो सकती और सर्वहारा बिना दर्शन की अनुभूति के अपने को समाप्त नहीं कर सकता। तरुण मार्क्स का यह लेख महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि दर्शन पर उनका काफी जोर है, जिसका अर्थ है हेगेल का प्रभाव अभी पूरी तौर से हटा नहीं है।

(2) यहूदी समस्या–जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र में ब्रूनो बावर की इस विषय की दो पुस्तकों के सम्बनध में यह लेख मार्क्स ने लिखा, जिसमें इस समस्या को द्वन्द्वात्मक दृष्टि से देखने की कोशिश की गई है। मार्क्स ने कहा कि विशेष आर्थिक स्थिति में पड़े रहने के कारण यहूदी लोग सूदखोर और बनिये बनने के लिए मजबूर हुए। फ्रेडरिक महान् ने ईसाई बैंकरों (महाजनों) को प्राप्त सुविधाएँ पैसेवाले यहूदियों को दीं, जिन्होंने पैसा पैदा कर उससे अपने मेहरबान राजा की सहायता की। यहूदी बड़े खुश थे, जब नई रोशनी के लोगों ने ईसाई धर्म की आलोचना करनी शुरू की, क्योंकि यहूदी हमेशा ईसा और उसके धर्म को अच्छी नजर से नहीं देखते थे। विचार-स्वातंत्र्य की उसकी माँग केवल दूसरों के लिए थी, जहाँ तक अपना सम्बन्ध था, वह यहूदी मनोवृत्ति को छोड़ने के लिए तैयार थे। लेकिन तरुण हेगेलियों ने, ईसाई धर्म तक ही अपनी आलोचना को सीमित नहीं रक्खा। फ्वारबाख ने यहूदी धर्म को अहंता का धर्म बतलाया–यहूदी अपनी खास विशेषताओं को आज तक कायम रखे हुए हैं। उनका सिद्धान्त, उनका ईश्वर संसार का व्यावहारिक सिद्धान्त है, अर्थात् धर्म के रूप में अहंता। अहंता मनुष्य को अपने भीतर केन्द्रित रखती है, साथ ही वह उसके सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को सीमित कर देती है, क्योंकि जो भी चीज उसके अपने हित से सीधे सम्बन्ध नहीं रखती, उसके प्रति वह उदासीन रहता है। बावर यहूदी समस्या को केवल धर्म-विद्या के चश्मे से देखना चाहता था। वह कहता था कि ईसाइयों की तरह ही यहूदी अपने धर्म की बराबर की स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं। बावर की राय में यहूदियों को पहले ईसाइयत और हेगेलीय दर्शन का अध्ययन करना चाहिए, फिर स्वतन्त्र होने की बात सोचनी चाहिए। मार्क्स बावर के इस विश्लेषण को दोषपूर्ण समझते थे। उनका कहना था–यहूदियों, ईसाइयों या सभी धार्मिक मनुष्यों की राजनीतिक मुक्ति का अर्थ है, राज्य को यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और सभी धर्मों से मुक्ति, राज्य के तौर पर वैयक्तिक सम्पत्ति का प्रतिषेध करना। उत्तरी अमेरिका के राज्यों की तरह जहाँ मतदान में धन की योग्यता को उठा दिया गया है–उसका यही अर्थ हो सकता है, कि राज्य ने जन्म, सामाजिक स्थिति, शिक्षा और पेशे के भेदभाव को छोड़, सार्वजनिक मताधिकार देकर वैयक्तिक सम्पत्ति आदि को हटा दिया है, लेकिन तो भी वह वैयक्तिक सम्पत्ति रखने की इजाजत देता है। शिक्षा और पेशे को भी उसने वैयक्तिक सम्पत्ति, वैयक्तिक शिक्षा और वैयक्तिक पेशे के

तौर पर कायम रक्खा है। इन भेदों को हटाने की बात तो अलग, राज्य का अस्तित्व पहले ही से इन्हें मान लेता है। बूर्ज्वा राज्य में जिसे पूर्णतया विकसित राजनीतिक राज्य कहते हैं, उनका भी प्रभाव भौतिक जीवन में विरोध के साथ मानवजाति के सामाजिक जीवन तक ही सीमित रहता है। राज्य के क्षेत्र से बाहर अहंता-भरे इस जीवन की सारी बातें बूर्ज्वा-समाज के गुणों के रूप में बनी रहती हैं। राजनीतिक राज्य का सम्बन्ध अपनी कल्पनाओं के साथ—चाहे वह कल्पनाएँ (सिद्धान्त) भौतिक तत्त्वों सम्बन्धी हों, जैसे कि वैयक्तिक सम्पत्ति अथवा वैचारिक तत्त्वों सम्बन्धी, जैसे कि धर्म वस्तुतः सार्वजनिक और वैयक्तिक हितों के बीच का विरोध ही है। अपने राज्य की नागरिकता के साथ मनुष्य किसी खास धर्म के अनुयायी होने के कारण एक विशेष सम्प्रदाय या धर्म के अनुयायी के तौर पर दूसरे आदमियों से जो विरोध रखता है, वह राजनीतिक राज्य और बूर्ज्वा-समाज के बीच का भेद-भर है। बूर्ज्वा-समाज आजकल के राज्य का आधार है, जैसे कि प्राचीन समाज का आधार तत्कालीन दास-प्रथा थी। आधुनिक राज्य अस्तित्व में आने के साथ मनुष्य के आम अधिकारों की घोषणा करता है, जिनके भोगने के लिए यहूदियों को भी उतना ही अधिकार है, जितना दूसरों को। मनुष्य के आम अधिकार की यह स्वीकृति अहंतापूर्ण बुजुर्वा-व्यक्ति और बौद्धिक तथा भौतिक तत्त्वों की अबाध गति को स्वीकार करता है। यही बौद्धिक और भौतिक तत्त्व समसामयिक बूर्ज्वा-समाज के साथ उसके जीवन के सार में है। वह मनुष्य को धर्म से मुक्त नहीं करते, बल्कि उसे धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं; वह मानव को सम्पत्ति से स्वतन्त्र नहीं करते, बल्कि सम्पत्ति रखने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। वह उसे व्यापार की क्षुद्रता से स्वतन्त्र नहीं करते, बल्कि उसे व्यापार की स्वतन्त्रता देते हैं। राजनीतिक क्रान्ति ने सामन्तवादी व्यवस्था तथा सभी शिल्पी संघों, सभाओं, परिषदों के—जो कि जनता के विलगाव के भिन्न-भिन्न बाह्य रूप थे—पैवन्दों को नष्ट करके बूर्ज्वा-समाज को पैदा किया।

मार्क्स उपसंहार में लिखता है—राजनीतिक मुक्ति का अर्थ है, मानव को बूर्ज्वा-समाज के एक मेम्बर के रूप में परिणत करना, उसे एक ओर अहंतापूर्ण स्वतन्त्र व्यक्ति तथा दूसरी ओर राज्य का नागरिक—एक नैतिक प्राणी के—रूप में परिणत करना। मानवता तभी पूर्णतया मुक्त हो सकेगी, जब कि वास्तविक, वैयक्तिक मानव के रूप में राज्य का निराकार नागरिक बदल जाएगा और अपने प्रायोगिक जीवन में वैयक्तिक मानव, अपने वैयक्तिक काम, अपनी वैयक्तिक स्थितियों में एक सामाजिक प्राणी बन जाएगा, जबकि मनुष्य सामाजिक शक्ति के तौर पर अपनी निजी शक्तियों को स्वीकार और संगठित करेगा, जिसके कारण सामाजिक शक्ति को राजनीतिक शक्ति के रूप में अपने से अलग नहीं रखेगा।

यहूदियों के बारे में मार्क्स पूछते हैं—यहूदी धर्म का धर्म-निरपेक्ष कौन-सा आधार है ? व्यावहारिक, आवश्यकता, स्वार्थ। यहूदियों का धर्म-निरपेक्ष कौन-सा सम्प्रदाय है ? खरीदना और बेचना। उसका धर्म-निरपेक्ष कौन-सा ईश्वर है ? पैसा। इसके बाद कहते हैं—तो बहुत अच्छा—बेचने-खरीदने से पैसे से मुक्ति अर्थात् व्यावहारिक, वास्तविक यहूदियत से मुक्ति हमारे समय में है यहूदियों की आत्म-मुक्ति। समाज का जो संगठन बेचने-खरीदने की आवश्यक स्थितियों अर्थात् बेचने-खरीदने की सम्भावना को उठा देगा, वही यहूदीपन को असम्भव कर देगा। मार्क्स का यहूदियत के बारे में विचार था कि ऐतिहासिक विकार तथा स्वयं यहूदियों के उत्साहपूर्ण सहयोग के कारण साधारण यहूदियत का सामयिक समाज-विरोधी तत्त्व आज की ऊँचाई तक पहुँचा। इस ऊँचाई पर उसे अवश्य अपने को समाप्त करना होगा। मार्क्स ने अपने इस लेख में बतलाया कि आज की धार्मिक समस्याएँ सामाजिक विशेष समस्या से अधिक कुछ नहीं हैं। उन्होंने यहूदियत के विकास को धार्मिक कल्पनाओं और मतवाद में नहीं, बल्कि औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में दिखलाया, जिसका विचित्र प्रतिबिम्ब यहूदी धर्म में पाया जाता है। यद्यपि मार्क्स ने इस लेख में सामाजिक और व्यावहारिक कारणों को बतलाकर नीचे उतरने की कोशिश की है, लेकिन अभी भी वह दार्शनिक क्षेत्र के सैर करने से बाज नहीं आये। मेरिंग के शब्दों में जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र में मार्क्स अभी भी दार्शनिक खेत को जोत रहे हैं, लेकिन उनके हल्के-पैने ढाल से जो हराई बनी है, उसका पहला अंकुर है, इतिहास की भौतिक धारणा, जो कि फ्रेंच सभ्यता के उष्ण सूर्य के नीचे जल्दी ही फूलने लगा।*

*Mehring, P. 73.

3. फ्रेंच सभ्यता

जर्मनी दर्शन विज्ञानवादी दर्शन की भूमि समझा जाता था, क्योंकि उसने कांट और हेगेल जैसे एक से एक महान् दार्शनिक पैदा किए। उसी तरह फ्रांस सामाजिक क्रांति, समाजवाद और भौतिकवादी दर्शन की भूमि समझा जाता था। मार्क्स और एंगेल्स ने हेगेल के दर्शन से द्वन्द्वात्मकता को लिया और फ्रांस से भौतिकवाद और समाजवाद को। इसलिए फ्रांस की राजधानी में पहुँचकर मार्क्स का और भी इस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था। महान् फ्रेंच-क्रान्ति ने फ्रांस में समाजवाद की स्थापना नहीं की, लेकिन तब भी उसने सामन्तवाद को खतम कर उसकी जगह बूर्ज्वावाद या पूँजीवाद की स्थापना करके समाजवाद के लिए सम्भावनाएँ जरूर पैदा कर दीं। विचार-क्षेत्र में तो इस क्रान्ति ने और भी जबर्दस्त प्रभाव डाला। जिस समय मार्क्स पेरिस में पहुँचे, उस समय पूँजीवादी (बूर्ज्वा) सभ्यता की अगुवा सचमुच ही पेरिस थी। यद्यपि 1789 ई. में ही बूज्वा-वर्ग अधिकाररूढ़ होने लगा था, लेकिन उसे पूर्ण सफलता 1830 ई. की जुलाईवाली क्रांति में हुई। अधिकार प्राप्त कर जब बूर्ज्वा-वर्ग आराम के साथ विश्राम ले रहा था। जब वहाँ बौद्धिक (विचारों का) संघर्ष अनवरत चल रहा था, उसी समय जर्मनी में बौद्धिक मृत्यु की नीरवता दिखाई पड़ती थी। मार्क्स के बारे में 1844 ई. में रूगे ने फ्वारबाख को सूचित किया था कि वह बहुत भारी परिमाण में ग्रंथों को पढ़ता, घोर परिश्रम कर रहा है। मार्क्स ने सचमुच ही अपने दूसरे कामों को छोड़कर बार-बार किताबों के अनन्त समुद्र में डुबकी लेनी शुरू की थी। कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार रात वह चारपाई का सहारा नहीं लेते और लगातार अध्ययन में लगे रहते। ऐसे समय उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन पाया जाना अचरज की बात नहीं थी। हेगेल के दर्शन की आलोचना मार्क्स लिखना चाहते थे, लेकिन फ्रेंच महाक्रांति के ऐतिहासिक महत्त्वों के भीतर जितना ही वह भीतर घुसते जाते थे, उतना ही उसकी ओर से उनकी उपेक्षा होती गई। फ्रेंच क्रांति के अध्ययन के बाद वह बूरबो-वंश की पुनःस्थापना-सम्बन्धी साहित्य के ऊपर पड़े। फ्रांस के इतिहास को पीछे की ओर 11वीं शताब्दी तक पढ़ने के बाद उन्होंने देखा, कि फ्रेंच इतिहास लगातार होते वर्ग-संघर्षों का एक प्रवाह है। इसके बाद वर्गों के आर्थिक ढाँचे का अध्ययन किया, जिसमें रिकार्डो की ओर उन्होंने विशेष तौर से ध्यान दिया। आज कम्युनिस्टों-मार्क्सवादियों को वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का आरंभक माना जाता है, जिसका अर्थ है, कि यह मार्क्स का आविष्कार था। लेकिन, मार्क्स ने इसका श्रेय लेने से हमेशा इन्कार किया। हाँ, मार्क्स ने यह जरूर किया कि वर्ग-संघर्ष के लिए ऐतिहासिक प्रमाण जमा करके उसे अकाट्य बना दिया। मार्क्स ने पता लगाया कि 'फ्रेंच तृतीय राज्य' ने 18वीं शताब्दी में शासक-वर्ग के विरुद्ध जिस जबर्दस्त हथियार को सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया, वह भौतिकवाद का दर्शन था। मार्क्स ने पेरिस में रहते समय इस दर्शन का विशेष तौर से अध्ययन किया। हेलवेसियो, होलबाख ने किस तरह भौतिकवाद को सामाजिक जीवन के साथ जोड़ा और मानव-बुद्धियों की स्वाभाविक समानता, बुद्धि और उद्योग की प्रगति के बीच अनिवार्य एकता, मानवता को स्वाभाविक भले होने और शिक्षा की सर्वशक्तिमत्ता का तत्त्व समझाया। मार्क्स ने उनकी शिक्षा को वास्तविक मानवतावाद कहा, जैसा कि उन्होंने फ्वारबाख के दर्शन के बारे में कहा था। भेद इतना ही था कि हेलवेसियो और होलबाख का भौतिकवाद साम्यवाद का सामाजिक आधार बन गया, जबकि फ्वारबाख के दर्शन में यह क्षमता नहीं थी।

पेरिस में मार्क्स को साम्यवाद और समाजवाद के अध्ययन के लिए सभी तरह के सुभीते प्राप्त थे। वहाँ एक से एक प्रतिभाशाली पुरुष उस वक्त मौजूद थे, उसका वातावरण समाजवाद के कीटाणुओं से भरा हुआ था। लेकिन जो अनेक तरह के समाजवाद पेरिस में लोगों को अपनी ओर खींचते देखे जाते थे, उनमें सबसे बड़ा दोष यह रहा कि वह अपनी सफलता के लिए सम्पत्तिवाले वर्गों की शुभेच्छा और अपनी युक्तिप्रवीणता पर विश्वास करते थे। वहाँ के समाजवादी विचारक अपने सामाजिक सुधारों या क्रांति की सफलता के लिए शान्तिपूर्ण प्रचार द्वारा स्वामियों को मनवा लेना भर पर्याप्त समझते थे। क्रांति कर-करके भी सफलता का मुँह न देख अब वह वस्तुतः निराश-से हो गए थे, और नहीं समझते थे, कि फिर उस तरह का कदम उठाने से कुछ हाथ लगेगा। वह दुखोत्पीड़ित जनसाधारण की सहायता करना चाहते थे, क्योंकि जनता अपने-आप अपने

को उबारने के लिए कुछ करने में असमर्थ थी। 1830 ई. में कमकरों के विद्रोह के असफल होने से उनके नेता सामाजिक क्रांति के लिए कोई सफल साधन नहीं देख पा रहे थे।

लेकिन, मजूर-आन्दोलन और भी तेजी से बढ़ता ही गया, कभी जर्मन कवि हाइनरिख हाइने के शब्दों में : "फ्रांस में सम्मान के योग्य केवल कम्युनिस्ट ही एक दल है। मैं वही भाव सेंट साइमन के अवशिष्ट अनुयायियों ...या फूरियेवादियों के बारे में भी रखता हूँ। फूरिये अब भी जीवित तथा सक्रिय हैं। लेकिन यह लोग केवल शब्द से ही प्रेरित होते हैं...यह परम विश्वात्मा द्वारा नियतिबद्ध गुलाम उसके विराट निर्णयों को पूरा करनेवाले दास नहीं हैं। देर या जल्दी में सेंट साइमन की सारी बिखरी सेना और फूरियेवादियों का सारा जेनरल-स्टाफ साम्यवाद की बढ़ती हुई सेना की ओर चला जायगा।" हाइने ने उसी साल इन पंक्तियों को लिखा था, जिस साल कि मार्क्स पेरिस में पहुँचे। राइनिश जाइटुंग का सम्पादन करते समय ही मार्क्स फ्रांस के दो प्रसिद्ध विचारकों लारू और प्रूधों से परिचित थे, दोनों ही मजदूर वर्ग के आदमी थे। उसी वक्त मार्क्स ने उनकी कृतियों को अच्छी तरह पढ़ने का निश्चय कर लिया था। दोनों लेखक इसलिए भी मार्क्स को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हुए, क्योंकि वह जर्मन दर्शन को अपने उद्देश्यों के साथ सम्मिलित करना चाहते थे, यद्यपि उन्हें जर्मन भाषा में ही मौजूद उस दर्शन को पढ़ने में बहुत कठिनाइयाँ थीं। मार्क्स ने हेगेलीय दर्शन का परिचय कराने के लिए प्रूधों के साथ घंटों बिताएँ। कभी-कभी दोनों विचार में एक-दूसरे के साथ हो जाते, लेकिन फिर जल्दी ही मतभेद हो जाता। प्रूधों के मरने के बाद मार्क्स ने स्वीकार किया, कि प्रूधों ने मजूर-आन्दोलन को जबर्दस्त प्रेरणा दी, और उसके द्वारा स्वयं मार्क्स को भी उसने प्रभावित किया। प्रूधों की पहली कृति को मार्क्स ने आधुनिक सर्वहारा की प्रथम वैज्ञानिक घोषणा (मेनिफेस्टो) बतलाया। मार्क्स ने फ्रेंच-क्रांति और उसके पीछे की विचारधारा का अध्ययन किया। फ्रेंच समाजवाद का ऊहापोह किया, फिर उन्होंने सर्वहारा का अध्ययन आरम्भ किया।

इस प्रकार फ्रेंच-सभ्यता का अध्ययन मार्क्स ने हल्के दिल से नहीं, बल्कि बड़ी तत्परता, गम्भीरता के साथ सारी शक्ति लगाकर किया।

4. पेरिस के अन्तिम मास और निष्कासन

(1) प्रथम सन्तान–पेरिस में रहते समय मार्क्स और जेनी की पहली सन्तान पैदा हुई, जिसे अपने सम्बन्धियों को दिखलाने वह जर्मनी गए। कोलोन के पुराने मित्रों का अब भी मार्क्स के साथ वैसा ही घनिष्ठ और सुन्दर सम्बन्ध था। उनसे लिये एक हजार डालरों के कारण मार्क्स को पेरिस में निश्चिन्त रहकर अध्ययन करने का बहुत सुभीता हुआ। हाइनरिख हाइने से मार्क्स का घनिष्ठ सम्बन्ध था। 1844 ई. में मार्क्स से जो प्रेरणा हुई, उससे प्रभावित हो कवि ने जर्मन निरंकुश शासकों के व्यय के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण कृति हेमन्ती कहानियाँ, जुलाहों का गीत लिखा। यद्यपि देर तक दोनों एकसाथ नहीं रहे, लेकिन मार्क्स हमेशा हाइने के समर्थक रहे। मार्क्स ने स्वयं तरुणाई में कवि बनने की चेष्टा की थी, यद्यपि जल्दी ही अपने क्षेत्र से बाहर समझकर उस प्रयास को छोड़ ही नहीं दिया, बल्कि अपनी उन रचनाओं को भी नष्ट होने दिया; लेकिन मार्क्स की सहानुभूति आजन्म कवियों के साथ रही। वह मानते थे, कि कवि एक विशेष प्रकार के मनुष्य हैं, जिन्हें साधारण मनुष्यों के गज से नहीं नापना चाहिए। अगर हम उनके गीत चाहते हैं, तो उन्हें कड़ी आलोचना से परास्त करना नहीं, बल्कि उनकी चाटुकारिता करनी होगी। लेकिन जहाँ तक हाइने का सम्बन्ध था, उसे मार्क्स कवि से और भी अधिक समझते थे। हाइने प्रतिभाशाली कवि के साथ-साथ योद्धा था; दीनों, दुखियों, सर्वहारों के पक्ष में वह प्रभुओं से लोहा लेने के लिए तैयार था, ऐसे सोने में सुगनधवाले कवि के साथ मार्क्स की घनिष्ठता क्यों न होती ? 1834 ई. में ही–जब कि मार्क्स अभी सोलह वर्ष के विद्यार्थी थे–हाइने ने घोषित किया था, "हमारे शिष्ट (क्लासिकल) साहित्य में जो स्वतंत्रता की भावना व्याप्त है, वह हमारे विद्वानों, कवियों और साहित्यिक पुरुषों में उससे कहीं कम सक्रिय है, जितनी कि हमारे शिल्पियों और कमकरों की साधारण जनता में।" मार्क्स दस साल बाद जिस वक्त पेरिस में थे, हाइने ने फिर कहा था : वर्तमान स्थिति के विरुद्ध संघर्ष करने में सर्वहारा

प्रगतिशील आत्माओं, महान् दार्शनिकों को अपने नेता के तौर पर पाने की माँग कर सकते हैं। मार्क्स और हाइने को आपस में घनिष्ठ बनाने के लिए कारण थे जर्मन दर्शन, फ्रेंच समाजवाद, और वह घृणा जो कि झूठे ट्यूटनवाद के प्रति थी, जो कि जर्मन बेवकूफी के पुराने चोगे के उग्रवादी वाक्यों द्वारा नवीन बनाना चाहता था।

(2) फोरवेड्र्स–आरम्भ में रूसी सामन्ती वर्ग का मिखाइल बकुलिन रूगे का कृपापात्र था। जब मार्क्स और रूगे में मतभेद पैदा हुआ, तो उसने मार्क्स का पक्ष लिया। 1844 ई. के नववर्ष से फोरवेड्र्स के नाम से एक अर्धसाप्ताहिक पत्र पेरिस से निकलने लगा था। 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र' के निकलने का स्वागत 'फोरवेड्र्स' ने गालियों से किया, इसी से मालूम हो सकता है कि उसकी नीति क्या थी। इस पत्र ने प्रशियन सरकार के कृपापात्र बनने की बड़ी कोशिश की, लेकिन अपने अन्धेपन के कारण सरकार नें पत्र की बिक्री देश में निषिद्ध कर दी थी। पत्र को भी रुख बदलना पड़ा। बेर्नेज नाम के एक तरुण लेखक ने अपना एक गर्मागर्म लेख भेजा। इसका इतना स्वागत हुआ कि कुछ समय बाद बेर्नेज सम्पादक बना दिया गया। इसी पत्र में एक प्रशियन के नाम से रूगे ने प्रशियन सरकार के खिलाफ शराबी राजा और लँगड़ी रानी जैसे शब्दों का उपयोग करते कई कड़े लेख लिखे। रूगे प्रशियन नहीं था, वह ड्रेस्डेन नगर परिषद् का एक सदस्य था, और बवेरियावासी बेर्नेज–राइनलैंड वेस्टफालिया से आया था। दूसरा लेखक बोर्न्सटाइन हम्बर्ग का था। ऐसी परिस्थिति में फोरवेड्र्स के इस लेख के लेखक मार्क्स ही समझे जा सकते थे। रूगे का सम्बन्ध मार्क्स से कितना खराब हो गया था, यह उसके मार्क्स के प्रति इस्तेमाल किए पूरी तौर से दुष्ट, ढीठ यहूदी जैसे शब्दों से ही मालूम होगा। दो साल बाद उसने प्रशिया के गृह-मन्त्री के पास क्षमा-प्रार्थना करते हुए पेरिस के अपने निर्वासित साथियों का भेद खोलकर विश्वासघात किया था, इसीलिए बिल्कुल सम्भव है, कि रूगे ने जान-बूझकर लेख को मार्क्स को बदनाम करने के लिए प्रशियन के नाम से छपवाया हो।

(3) सर्वहारा का पक्षपात–1844 में सिलेसिया के बुनकरों ने विद्रोह कर दिया। मार्क्स सर्वहारा को ही क्रांति का असली वाहक समझते थे, इसलिए वह सर्वहारा के किसी संघर्ष को महत्त्व दिए बिना नहीं रह सकते थे। लेकिन, रूगे कोई महत्त्व नहीं देता था। उसका कहना था : इसमें कोई राजनीतिक आत्मा नहीं है, और बिना राजनीतिक आत्मा के कोई सामाजिक क्रांति सम्भव नहीं। मार्क्स ने बतलाया कि ब्रूर्ज्वा और सर्वहारा की मुक्ति में गहरा भेद है। बूर्ज्वा-मुक्ति सामाजिक कल्याण की भावना से उत्पन्न होती है, जब कि सर्वहारा की मुक्ति सामाजिक वेदनाओं के कारण पैदा होती है। बूर्ज्वा-क्रान्ति राजनीतिक राज्य और कामनवेल्थ (समान राज्य) से अलग रहकर होती है, जब कि सर्वहारा क्रांति मानवता और मानवता के वास्तविक कामनवेल्थ (समान राज्य) से बिलगाव के कारण होती है। मानवता से बिलगाव उससे कहीं अधिक गहरा, कहीं अधिक असह्य, कहीं भयंकर और कहीं अधिक सहज विरोधी है, जितना कि राजनीतिक कामनवेल्थ से बिलगाव, और इसीलिए इस बिलगाव को खतम करने की भावना चाहे आंशिक रूप से ही क्यों न हो, सिलेसिया के बुनकरों के विद्रोह में है, अतएव वह कहीं अधिक जबर्दस्त घटना है। इस प्रकार रूगे से मार्क्स के दृष्टकोण का भेद होना स्वाभाविक है। मार्क्स के शब्दों में : "बुनकरों के केवल गीत को ले लो। कैसे विलक्षण, जबर्दस्त, निष्ठुर और शक्तिशाली तरीके से सर्वहारा वैयक्तिक सम्पत्तिवाले समाज के प्रति अपने विरोध के नारे को पेश करता है। सिलेसीय विद्रोह वहाँ आरम्भ होता है, जहाँ फ्रेंच और अंग्रेज विद्रोह (क्रांतियाँ) खतम हुईं; वहीं से एक वर्ग के तौर पर सर्वहारा-चेतना के साथ सिलेसिया के बुनकरों का विद्रोह आरम्भ होता है। इसकी सारी कार्रवाई एक विशेषता को रखती है। इन विद्रोहियों ने केवल मशीनों और कमकरों के प्रतिद्वन्द्वियों को ही नष्ट नहीं किया, बल्कि व्यापारियों के बहीखातों और उनके सम्पत्ति के दस्तावेजों को भी नष्ट कर दिया। कम-से-कम आरम्भ में सभी दूसरे आन्दोलन केवल उद्योगपतियों, दिखाई देनेवाले शत्रुओं के विरुद्ध हुए, लेकिन यह आन्दोलन अदृश्य शत्रु बैंकरों के विरुद्ध भी है। अन्ततः सबसे बड़ी बात यह है कि कोई भी अंग्रेजी विद्रोह इतनी हिम्मत, इतनी दृढ़ता और इतनी लगन के साथ नहीं किया गया था।"

इसी सम्बन्ध में मार्क्स ने वाइटलिंग के चमत्कारपूर्ण लेखों का भी जिक्र किया, जो कि अपने सैद्धान्तिक

विचारों में प्रूधों से भी बढ़-बढ़कर था, यद्यपि जहाँ तक क्रिया का सम्बन्ध है, वह उससे पीछे रहा। मार्क्स ने कहा : अपने दार्शनिकों और लेखकों को लेते क्या बूर्ज्वाजी अपनी मुक्ति, राजनीतिक मुक्ति के सम्बन्ध में कोई ऐसी कृति पेश कर सकती हैं, जिसकी तुलना वाइटलिंग के हारमनी (स्वरसता) और स्वतन्त्रता की गारंटियाँ से की जा सके ? इस जर्मन कमकर की सराहना करते हुए मार्क्स ने बतलाया कि इसके सामने दूसरा जर्मन राजनीतिक साहित्य बिल्कुल दरिद्र-सा मालूम होता है, और यह भी, यूरोपीय सर्वहारों में जर्मन सर्वहारा उसी तरह सिद्धान्तवादी है, जैसे कि अंग्रेज सर्वहारा अर्थशास्त्री और फ्रेंच सर्वहारा राजनीतिज्ञ। मार्क्स का सिलेसिया के बुनकरों के विद्रोह का मूल्यांकन अतिरंजित कहा जा सकता है। लेकिन इसमें तो शक नहीं कि वह उस शक्तिस्रोत को पकड़ने में समर्थ हुए थे, जो कि अन्त में वास्तविक सामाजिक क्रांति करके समाजवाद की स्थापना करने में समर्थ होगा। समाजवादी दिमाग और सर्वहारा के शस्त्रबल पर हुई रूसी क्रांति ने इसी बात को प्रमाणित किया।

पेरिस में 'न्यायी संव' (लीग आफ दी जस्ट) के नाम से कुछ कमकरों ने अपना एक संघ स्थापित किया था, जो कि 1830 ई. के बादवाले सालों में उनके 1839 ई. में अन्तिम पराजय के बाद फ्रांसीसी गुप्त सभाओं से पैदा हुआ था। संगठन के लिए यह पराजय अच्छी साबित हुई, क्योंकि उसके बाद संघ के मेम्बर अपने विचारों के लिए पेरिस ही नहीं, इंग्लैंड और स्वीट्ज़रलैंड के दूसरे केन्द्रों में विखर गए, जहाँ पर उन्होंने शाखाएँ कायम कीं। पेरिस के संगठन का नेता डंजिग-निवासी हेरमान इवेरबेक था। वह कैबेत के उटोपियन सिद्धान्तों के जाल में फँसा था, जिसका उसने जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया था। वाइटलिंग स्वीट्ज़रलैंड में आन्दोलन का नेता था और वह इबेरबेक से बुद्धि में कहीं बढ़-चढ़कर था। लीग की लन्दन-शाखा के नेता थे घड़ीसाज जोजेफ मोल, मोची हाइनरिख बावर और भूतपूर्व जंगलात का विद्यार्थी कार्ल शापर, जो कि लन्दन में प्रेस में कम्पोजीटर और कभी भाषाओं का शिक्षक रहकर अपनी जीविका चलाता था। मार्क्स ने इन तीनों 'वास्तविक मनुष्यों' के बारे में एंगेल्स से सुना, जब कि इंग्लैंड जाते समय सितम्बर, 1844 में पेरिस में वह मार्क्स से मिले, और उन तीनों का जिक्र बड़े आदर से किया। उस बार एंगेल्स दस दिन तक पेरिस में रहे, और उन्होंने अपना सारा समय मार्क्स के साथ बिताया। दोनों ने अपनी समान विचारधारा पर बहुत देर तक विचार किया और विचारों में दूर तक की एकता स्थापित करने में सफल हुए। इसी समय उनका पुराना मित्र ब्रूनो बावर ने मार्क्स और एंगेल्स के नये विचारों का जबर्दस्त समालोचक बन उसपर एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसी समय पता लगने पर दोनों ने जवाब देने का निश्चय किया। एंगेल्स ने तुरन्त बैठकर उसके बारे में लेख लिख डाला। मार्क्स उस काम में हाथ लगा, अपने स्वभाव से मजबूर होकर और गहराई में गए बिना नहीं रह सकते थे, इसलिए कई महीना लगाकर उन्होंने तीन सौ पृष्ठों का एक ग्रंथ लिख डाला, जिसकी समाप्ति जनवरी, 1875 ई. में हुई, और उसी के साथ मार्क्स का पेरिस का निवास भी समाप्त हो गया।

फोरवेड्र्स से रुष्ट होकर बर्लिन की सरकार ने फ्रांस की सरकार से पत्र को दवाने के लिए कहा, लेकिन मन्त्री गुइजो उसे मानने के लिए तैयार नहीं था। प्रशियन निरंकुशता अक्खड़ और असंस्कृत थी, जब कि फ्रांस के बूर्ज्वा-शासक काफी सभ्य और संस्कृत थे, इसलिए गुइजो ने बर्लिन को संतुष्ट करने के लिए ऐसा कोई कदम उठाना पसन्द नहीं किया। लेकिन जब मेयेर श्चेख ने तत्कालीन प्रशियन राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के ऊपर जुलाई, 1844 ई. में हत्या के उद्देश्य से हमला किया जिसके लिए स्टोरकौ के मेयेर हाइनरिख लुडबिग श्चेख को उसी साल फांसी पर चढ़ाया गया, तो जर्मन निर्वासितों की कार्रवाइयाँ उपेक्षापूर्वक नहीं देखी जा सकती थीं। गुइजो के मन्त्रिमंडल ने निश्चय किया कि 'फोरवेड्र्स' के खिलाफ दो कामों के लिए कार्रवाई की जाय–जिम्मेवार सम्पादक पर पर्याप्त पैसा अधिकारियों के पास न जमा करने के और राजा की हत्या के लिए भड़काने के अपराध में मुकदमा चलाया जाय।

बेर्नेज को जमानत न जमा करने के लिए दो महीने की सजा और 200 फ्रांक का जुरमाना हुआ, लेकिन तुरन्त ही 'फोरवेड्र्स' ने घोषित कर दिया कि भविष्य में अब वह पत्र मासिक निकला करेगा। अब उसपर जमानत का कानून लागू नहीं हो सकता था। बर्लिन फिर भी पेरिस पर दवाव डालती रही और अन्त में गुइजो

को उक्त पत्र के सम्पादकों और लेखकों को फ्रांस से निष्कासित करने की बात माननी पड़ी। एंगेल्स ने जेनी मार्क्स की अर्थी के समय जो भाषण दिया था, उसमें बतलाया था, कि गुइजो ने अलेक्जेंडर फान हमवोल्टी की बात में पड़कर ऐसा किया था, जिसका कि ब्याह द्वारा प्रशिया के वैदेशिक मन्त्री के साथ सम्बन्ध था। बर्लिन सरकार हाइने से खास तौर से नाराज हुई थी, क्योंकि कवि ने प्रशिया की स्थिति पर, खास करके उसके राजा के ऊपर कड़े ग्यारह व्यंग्यपूर्ण लेख लिखे थे। हाइने सारे यूरोप में प्रसिद्ध कवि था। फ्रेंच लोग भी उसे करीब-करीब एक राष्ट्रीय कवि के तौर पर मानते थे। ऐसे आदमी के साथ गुइजो–जो कि स्वयं भी साहित्य में दखल रखता था–बर्लिन के आदेश के अनुसार बर्ताव नहीं कर सकता था, इसलिए कवि पत्र के सम्पादकीय विभाग का सदस्य नहीं है, यह कहकर उसने छुट्टी ले ली।

हाइने को यद्यपि छुट्टी मिल गई। 11 जनवरी, 1845 को 'फोरवेड्र्स' से सम्बन्ध रखने के सन्देह में कितने ही निर्वासितों को देश-निष्कासन का हुकुम मिला, जिनमें मार्क्स, रूगे, बकुनिन, बोर्नस्टाइन और बेर्नेज भी थे। बोर्नस्टाइन ने 'फोरवेड्र्स' के प्रकाशन को बन्द कर देने का वचन देकर छुट्टी ले ली। रूगे अपने को राजभक्त साबित करने की कोशिश करता रहा। मार्क्स ऐसा कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि समाजवाद, सर्वहारा की मुक्ति और सामाजिक क्रांति की सेवा का संकल्प उन्होंने हल्के दिल से नहीं किया था। इस प्रकार एक साल से कुछ अधिक पेरिस में रहने के बाद मार्क्स ने ब्रुसेल्स जाने की तैयारी की। यह अवसर मार्क्स के लिए समाजवाद के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। इससे उनके अनुभव और ज्ञान की बड़ी वृद्धि हुई। इस समय का उन्होंने पूरा उपयोग किया, इसमें शक नहीं। साथ ही उन्होंने इसी समय अपने कितने ही आजन्म साथियों को प्राप्त करने में भी सफलता पाई।

6

फ्रीडरिख एंगेल्स

मार्क्स और एंगेल्स का पारस्परिक सम्बन्ध–वैयक्तिक और क्रांतिकारी जीवन दोनों का ही–असाधारण था। एंगेल्स मार्क्स से दो वर्ष बाद 28 नवम्बर, 1830 को जर्मनी के बर्मेन शहर में पैदा हुए थे, लेकिन वह जमल भाई से बढ़कर थे। विचारों में, भावों में और पारस्परिक स्नेह में इतना मेल और एकता दुनिया में शायद ही कभी दिखाई पड़ता हो। मार्क्स की सारी जीवनी में एंगेल्स साथ-साथ आते हैं। यहाँ एंगेल्स के अब तक के जीवन के बारे में हम कुछ कह देना चाहते हैं।

1. बाल्य-शिक्षा–एंगेल्स का पिता धनी और एक कारखाने का मालिक था, इसलिए मार्क्स से भी अच्छी हालत में बाल्य-जीवन के बिताने के लिए वहाँ सारे साधन मौजूद थे। मार्क्स के पिता की तरह उदार विचारों के वातावरण में पलने का एंगेल्स को मौका नहीं मिला, इसलिए धार्मिक संस्कारों से अपने को मुक्त करने में एंगेल्स को काफी मेहनत करनी पड़ी। साधारण पढ़ाई के बाद एंगेल्स एल्बरफेल्ट के कालेज में दाखिल हुए, जहाँ एक वर्ष रहकर अपनी पढ़ाई खतम करके वह पिता के कारबार में शामिल हो गए। बहुत वर्षों तक लगे रहे, लेकिन उसमें उनका मन नहीं लग सकता था, क्योंकि वह सर्वहारा के मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ रहे थे। एंगेल्स के 18 वर्ष की उमर में लिखे पत्र से मालूम होता है कि वह शराब को पसन्द करते थे और शराब का प्रेम उनका आजीवन रहा, यद्यपि वह हाइने की तरह पीकर मदमस्त हो गाने नहीं लगते थे।

मार्क्स की तरह एंगेल्स ने भी तरुणाई में कविता-सरस्वती की आराधना शुरू की, लेकिन अपने ज्येष्ठ साथी की तरह उन्हें भी जल्दी ही मालूम हो गया कि वह अधिकार से बाहर की चीज है। जर्मन महाकवि गोथे की तरह तरुण कवियों की सलाह को एंगेल्स ने पसन्द किया, जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ थीं :

तरुण लिखनीचन्द, ध्यान दो उन क्षणों में,
जब हृदय और आत्मा दोनों हर्षोत्फुल्ल हैं,
कि सरस्वती हो सकता है, तुम्हारे साथ जाए,
लेकिन वह कभी तुम्हारी पथ-प्रदर्शिका नहीं होगी।

एंगेल्स ने गोथे की सीख भविष्य के लिए मन में मान ली, लेकिन अपनी एक-एक कविता को प्रकाशित किए बिना नहीं रहे, क्योंकि दूसरे पट्ठे जो कि मुझ जैसे या अधिक बड़े गदहे (ऐसा करते) हैं, इस तरह मैं जर्मन साहित्य के तल को न उठा सकता हूँ, न गिरा सकता हूँ। फिर अपनी कविता को प्रकाशित करने में क्या हर्ज ? एंगेल्स ने खिस्तान पुराण के नाम से चार सर्गों में अपनी कविता को उसी समय प्रकाशित किया था, जिस समय कि ब्रूनो बावर को प्रोफेसरी से निकाला गया। यह व्यंग्यपूर्ण खण्ड-काव्य खिस्तान पुराण जूरिच के पास नोमुंस्टर (स्वीट्जरलैंड) में प्रकाशित किया गया। इसकी कुछ पंक्तियों में एंगेल्स ने अपने और मार्क्स के बारे में लिखा है। उस समय तक अभी मार्क्स के साथ एंगेल्स का साक्षात् परिचय नहीं हुआ था :

किन्तु जो लम्बी टाँगवाला बाएँ बहुत दूर तक नाचता है,
वह ओसवाल्ड है जिसकी कोट मटमैली और बीच में काली मिर्च के रंग की है,
मिर्च बाहर और मिर्च भीतर चोटनाटवाला ओसवाल्ड।
खोपड़ी से एड़ी तक पूरा अत्यन्त उग्रवादी,
वह एक हथियार छोड़ता है, जो गिलोटिन है।
और उसके तारों का वह कवाटीन गाता।
सदा नारकीय गीत बजाता, रुककर चिल्लाता
बनाओ तुम बटालियन।
कौन बेपर्वा हो अपने रास्ते पर आक्रमण करता है ?
ट्रीर का एक काली भौंवाला, एक पक्का टट्टू,
जो न चलता न फुदकता, बल्कि एड़ी लगाने पर कूदता है,
और अपने हाथों को हवा में ऊपर तानता है,
मानो उसका गुस्सा तुरन्त पकड़ लेगा,
स्वर्ग के प्रतापी खेमे को और उसे धरती पर फाड़ फेंकेगा
मुट्ठी बाँधे भयदायक मुक्के से वह बिना रुके धमकाता है,
मानो दस हजार शैतान उसकी छाती पर नाच रहे हों।

10 फरवरी, 1839 के एक पत्र से मालूम होता है, कि 19 वर्ष की उम्र में अब यह प्रतिभाशाली तरुण 'तरुण जर्मनी' के उथले साहित्य से ऊब गया था। उसने उस समय के फेशनेबल कवियों और साहित्यकारों का मजाक उड़ाते हुए कहा था : यह पट्ठा थ्योडोर मुंडट सुन्दरी तेनलियोंन के बारे में कूड़ा-करकट काफी परिमाण में लिपिबद्ध कर रहा है, जो कि गोथे की कविता की व्याख्या के रूप में नृत्य करती है। वह अपने को गोथे, हाइने, राहेल और स्टीगलिट्ज से उधार लिए हुए सूक्ष्म पक्षों से अलंकृत करता है। बुटिना के बारे में बड़ी कीमती मूर्खताओं को लिखता है। और हाइनरिख लौबे। यह पट्ठा एक के बाद एक अविद्यमान पात्र और ऐसी यात्रा की कहानियाँ लिखता है जो यात्रा-कहानियाँ नहीं है, मूर्खता के ऊपर मूर्खता को बिलोता जा रहा है। यह भयंकर है।

बर्मीन धर्मभीरुता का गढ़ है, इसलिए एंगेल्स को उसके फन्दे से निकलने में काफी मेहनत करनी पड़ी, जैसा कि तरुण एंगेल्स के एक पत्र के निम्न उद्धरणों से मालूम होता है : मैं प्रतिदिन, बल्कि प्रायः सारे दिन-भर सत्य के लिए प्रार्थना करता हूँ, और यह तब से बराबर करता जा रहा हूँ, जब से कि मेरे भीतर सन्देह उत्पन्न होने लगा, लेकिन तब भगवान, मैं तुम्हारे विश्वास की ओर लौट नहीं सकता।··इन पंक्तियों के लिखते समय आँसू निकल रहे हैं। मेरे हृदय में गहरा मन्थन हो रहा है, लेकिन मैं अनुभव करता हूँ, कि मैं खोया

नहीं गया हूँ, मैं जरूर उस भगवान का रास्ता पाऊँगा, जिसको कि मैं अपने सम्पूर्ण हृदय से चाहता हूँ।

एंगेल्स के मन में जब इस तरह के संघर्ष चल रहे थे, उसी समय अपने संदेहों को दूर करने के लिए वह धार्मिक नेताओं की पुस्तकों को पढ़ने लगे, जिससे वह डेविड स्ट्रॉस के विचारों तक पहुँचे। स्ट्रॉस ने जरूर प्रभाव डाला। दलदल से निकलने की पहली सूचना उनके एक पत्र से मिलती है : "मैं अव हेगेलीय होनेवाला हूँ। मुझे नहीं मालूम, मैं वह हो सकूँगा या नहीं, लेकिन स्ट्रॉस ने मेरे लिए हेगेल पर प्रकाश डाला है। वह बहुत युक्ति-युक्त मालूम होता है। पट्ठे का इतिहास-दर्शन जो भी हो, मुझे वह बिल्कुल अपने हृदय के अनुकूल मालूम होता है।"

इस प्रकार स्ट्रॉस ने एंगेल्स को धार्मिक नास्तिकता में लाकर छोड़ दिया, लेकिन फिर एंगेल्स को राजनीतिक नास्तिकता में घुसने में देर नहीं हुई। वह राजतंत्र और प्रशिया के राजा के सम्बन्ध में भी नास्तिक हो चले, जैसे कि उन्होंने प्रशिया के राजा की प्रशंसा करते हुए किसी को सुनकर कहा था : "मैं केवल उसी राजा से कुछ भली चीज की आशा रखता हूँ, जिसका दिमाग अपनी जनता के घूँसे से घायल हो गया और जिसके महल के जंगले क्रांति के पत्थरों से भरभराकर गिर रहे हैं।"

अक्तूबर, 1841 से अक्तूबर, 1842 तक एक साल में एंगेल्स बर्लिन में तोपखाने में सैनिक सेवा करते कुप्परग्रावेन की बैरकों में रहते थे, जो उस घर से नातिदूर था, जिसमें कभी हेगेल रहता और वह अन्त में मरा। वहाँ से कितनी ही बार एंगेल्स ने 'ड्वाशे यारबुखेर' (जर्मन वर्षपत्र) और 'राइनिश जाइटुंग' में लेख भेजे। फौजी वर्दी में वह खुलकर अपना नाम कैसे दे सकते थे ? इसलिए यह लेख फ्रीडरिख ओसवाल्ड के नाम से छपे थे। 6 दिसम्बर, 1842 को एंगेल्स की कड़ी आलोचना के पात्र एक लेखक के साथ सहानुभूति दिखलाते हुए गुजकोफ ने लिखा था : "फ्र. ओसवाल्ड को साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश कराने की कुसेवा की जिम्मेवारी दुर्भाग्य से मेरे ऊपर है। सालों गुजरे, जबकि एंगेल्स नामक एक तरुण व्यापारी ने ब्रेमेन से वुप्पेर्ल्लटन की स्थिति के बारे में पत्र भेजे थे। मैंने उसको शुद्ध किया, बहुत ज्यादा भड़कानेवाली पंक्तियों को काटकर उसे छाप दिया। इसके बाद उसने और भी मामूली चीजें भेजीं, जिन्हें मुझे सदा फिर से लिखना पड़ा। फिर एकाएक उसने संशोधन करने से मना कर दिया। हेगेल को पढ़ने और दूसरे पत्रों में अपने लेख भेजने लगा। तुम्हारी आलोचना जब निकली, उससे थोड़े ही पहिले मैंने बर्लिन में उसके पास पन्द्रह डालर (पौंड) भेजे थे। हमेशा इन जवान पट्ठों का ढंग है : सोचने और लिखने को सीखना हमारी मदद से, फिर उनका पहला स्वतन्त्र काम होता है बौद्धिक पितृहत्या। निश्चय ही, वह बुराई इतना अधिक नहीं फल-फूल सकती थी, यदि राइनिश जाइटुंग और रूगे का पत्र उसके लिए न होते।"

एंगेल्स आफिस में व्यापार के सम्बन्ध में एक योग्य कर्मी थे, और बैरक में भी वह एक योग्य सैनिक रहे। उस दिन से अपने जीवन के अन्त तक सैनिक विज्ञान का अध्ययन एंगेल्स का दिलचस्प विषय था। बर्लिन के सैनिक सेवावाले समय में एंगेल्स का सम्बन्ध 'स्वतन्त्र मानवों' से हुआ। अभी स्वतंत्र मानव उतने ज्यादा कूढ़मग्ज नहीं बने थे। उनसे विवादों में एंगेल्स ने भी एक-दो लेख लिखे थे। अप्रैल, 1842 में (22 वर्ष की उम्र में) एंगेल्स की एक 55 पृष्ठों की पुस्तिका 'लाइपजिग' में लेखक के नाम के बिना प्रकाशित हुई, जिसका नाम था, 'शेलिंग और भगवद्ज्ञान'। कवि शेलिंग को बुढ़ापे में पैगम्बर बनने का शौक चर्राया था, और उसे भगवान की ओर से प्रेरणा तथा ज्ञान मिलने लगा था। शेलिंग ने स्वतंत्र दर्शन पर आक्षेप करते हुए पुरानी बातों का समर्थन करना शुरू किया था। वह चाहता था कि बर्लिन में युनिवर्सिटी से हेगेलीय दर्शन हटे और उसकी जगह मेरे सम्बन्धी विश्वासों को पढ़ाया जाय। एंगेल्स की पुस्तिका को रूगे ने बकुनिन की समझा था और उसने होनहार तरुण की प्रशंसा भी की थी। इसी समय ब्रूनो बावर को प्रोफेसरी से हटाया गया, जिस पर एंगेल्स ने 'खिस्तान पुराण' के नाम से चार सर्ग का खंड-काव्य लिखा, जिसके बारे में हम पहले बतला चुके हैं।

साल-भर की सैनिक सेवा खतम हो जाने के बाद 1842 के सितम्बर के अन्त में एंगेल्स अपने घर लौटे, लेकिन दो महीने के बाद ही वह इंगलैंड के लिए रवाना हो गए, एरमेन और एंगेल्स नामक कताई मिल में

क्लर्क का काम करने लगे—इस मिल में उनके पिता भागीदार थे और पिता के कारबार को सँभालने का यह आरम्भ था। 1842 ई. में इसी यात्रा के समय वह कोलोन में जाकर पहले-पहल मार्क्स के साक्षात् सम्पर्क में आए। वैसे 'राइनिश जाइटुंग' में उनके लेख पहले निकले थे। मार्क्स कठोर यथार्थवादी दिमाग के पुरुष थे। वह सहसा किसी की लम्बी-चौड़ी बातों में नहीं आते थे, विशेषकर मध्यम वर्ग के ऊपर उनकी आस्था बहुत कम थी। इसीलिए इस पहली मुलाकान में मार्क्स ने भावी सारे जन्म के साथी के साथ उत्साह नहीं दिखलाया। मार्क्स अब 'स्वतंत्र मानवों' से ऊब चुके थे और उनसे सम्वन्ध-विच्छेद करनेवाले थे और बावर बन्धुओं के पत्रों के कारण एंगेल्स के प्रति अच्छे भाव नहीं रखते थे।

2. इंगलैंड में

इंगलैंड में 22 वर्ष के तरुण एंगेल्स ने पहली बार 21 मास बिताए। इस प्रवास का एंगेल्स के जीवन और विचारों पर वैसा ही प्रभाव पड़ा, जैसा कि मार्क्स पर पेरिस के निवास का। पेरिस यदि भौतिकवादी दर्शन और फ्रेंच-क्रांति की भूमि थी, तो इंगलैंड ने भी जबर्दस्त औद्योगिक क्रांति की थी, जिसके कारण बूर्ज्वा-वर्ग के आरम्भ और विकास का वहाँ अच्छी तरह अध्ययन किया जा सकता था। इंगलैंड ने औद्योगिक-क्रांति फ्रेंच-क्रांति से एक शताब्दी पहले की थी, जिसके कारण उसे समाज की अल्प-विकसित अवस्था में ही अपनी क्रांति करनी पड़ी थी। यदि अधिक विकसित स्थितियों में क्रामवेल के नेतृत्व में सामंतवादी व्यवस्था पर प्रहार हुआ होता तो शायद यहाँ भी सामन्तवाद के अवशेष न रह जाते। समय से पहले होने के कारण इंगलैंड के बूज्वा-वर्ग ने सामन्तों और उनके मुखिया राजा से समझौता किया था। अंग्रेज मध्यमवर्ग को राजा और सामन्तों से उतना तीव्र और लम्बा संघर्ष नहीं करना पड़ा, जैसा कि फ्रांस में 'तृतीय राज्य' को करना पड़ा और 'तृतीय राज्य' का संघर्ष वर्ग-संघर्ष था—यह फ्रेंच ऐतिहासिकों को बहुत पीछे पता लगा, लेकिन इंगलैंड में वर्ग-संघर्ष के विचारों का ख्याल तब हुआ, जब कि सर्वहारा ने 1832 ई. के सुधार विधेयक (बिल) के समय शासकवर्ग से संघर्ष छेड़ा।

एंगेल्स अब हेगेलीय दर्शन और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण के अध्ययन के बाद इस स्थिति में थे कि इंगलैंड की औद्योगिक-क्रांति के इतिहास के भीतर छिपे तत्त्वों को समझ सकते। इंगलैंड और फ्रांस में से एक में गंगा-जमुनी सामन्तवादी-पूँजीवादी ढाँचा रहता और दूसरे में सामन्तवादी प्रभाव से मुक्त शुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था का कायम होना अवश्य किन्हीं कारणों से था। इसका एक कारण यह था कि इंगलैंड में बड़े उद्योग का विस्तार उससे कहीं अधिक गहराई के साथ हुआ था, जितना कि फ्रांस में। अपने उद्योग का विकास करते समय इंगलैंड ने पुराने वर्गों—सामन्तों-जमींदारों—को नष्ट करके उनकी जगह नये वर्ग की सृष्टि की। आधुनिक बूर्ज्वा-समाज का भीतरी ढाँचा जितना इंगलैंड में स्पष्ट दिखाई देता था, उतना फ्रांस में नहीं। एंगेल्स ने इंगलैंड के उद्योग के स्वरूप और इतिहास का अध्ययन करते हुए जाना, कि आर्थिक तथ्य ही निर्णायक ऐतिहासिक शक्ति थे, जिनके आधार पर वर्तमान वर्ग-विद्वेष विकसित हुआ। बड़े पैमाने के उद्योग के कारण राजनीतिक दलों और राजनीतिक संघर्षों का विकास हुआ, इस प्रकार आर्थिक तथ्य ही इंगलैंड के साथ राजनीतिक इतिहास के आधार ठहरे।

एंगेल्स की इंगलैंड के औद्योगिक विकास के अध्ययन की ओर दिलचस्पी का एक कारण यह भी था, कि वह स्वयं अपने बाप के मिल में काम करते समय नजदीक से उद्योग को देख रहे थे। 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र' में मार्क्स ने जहाँ विधान के दर्शन की आलोचना की थी, वहाँ एंगेल्स ने अपने लेख में राष्ट्रीय अर्थनीति की आलोचना की थी। यद्यपि वह लेख अभी 23-24 वर्ष के तरुण की लेखनी से निकला था, लेकिन उसमें अपरिपक्वता नहीं दिखाई पड़ती थी। कुछ बड़ी नाकवाले जर्मन लेखक इस लेख को बिल्कुल विशृंखलित और अस्त-व्यस्त कहते थे, तो मार्क्स ने उसे चामत्कारिक रेखांकन घोषित किया था। रेखांकन मात्र तो था ही, क्योंकि एंगेल्स अपने इस लेख में राष्ट्रीय अर्थनीति के बारे में बहुत विस्तार और गहराई में नहीं जा सके थे। बूर्ज्वा-अर्थशास्त्र के विरोधों का असली कारण वैयक्तिक सम्पत्ति है, इसे बतलाते हुए तरुण एंगेल्स प्रूधों से भी आगे बढ़ गए थे। प्रूधों वैयक्तिक सम्पत्ति से उसकी अपनी भूमि पर लड़ते रहे। एंगेल्स ने अपने इस लेख में पूँजीवादी होड़

के अमानुषिक परिणामों, माल्थस की जनसंख्या की थ्योरी (वाद), पूँजीवादी उत्पादन के सदा बढ़ते प्रवाह, झोंक, व्यापारिक-संकट, मजूरी, कानून, साइंस की प्रगति की विवेचना की। साइंस के बारे में उन्होंने कहा कि वैयक्तिक सम्पत्ति के शासन से मानवता की मुक्ति आदि के साधन होने की जगह वह मानवता की दासता की कड़ियों को मजबूत करने का साधन बन गया है। उनके इसी लेख में वैज्ञानिक साम्यवाद का बीज आर्थिक क्षेत्र में देखा गया। साम्यवाद को ठोस आर्थिक आधार प्रस्तुत करने सम्बन्धी प्रथम प्रयत्न का श्रेय एंगेल्स को दिया जाना चाहिए। लेकिन एंगेल्स अपने ज्येष्ठ से इतने प्रभावित और उनके प्रति इतने अनुरक्त थे, कि उन्होंने अपनी महान् देनों का ख्याल नहीं किया। वह घोषित करते : मेरे आर्थिक लेखों को अन्तिम आकार देने का श्रेय मार्क्स को है, कभी लिखते : "मार्क्स अधिक महान् और अधिक दूर तक देखनेवाले थे। वह हम सबों से अधिक जल्दी तत्त्वों को देख लेते थे," और कहीं बची-खुची देन को भी यह कहकर नगण्य कर देते : हमने जिसे पता लगाया, उसे मार्क्स भी पता लगा लिए होते। लेकिन वास्तविकता यह है, कि आर्थिक क्षेत्र में वैज्ञानिक साम्यवादी प्रथम भूमि तैयार करनेवाले एंगेल्स थे। यह हमें मालूम ही है कि पुराने समाजवादियों और साम्यवादियों की यही निर्बलता थी कि वह साम्यवाद की स्थापना दिमागी संघर्ष और हृदय-परिवर्तन द्वारा करना चाहते थे। मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद ने उस निर्बल नींव को छोड़ आर्थिक शोषण के आधार पर प्रहार करते संघर्ष करने का रास्ता निकाला। आर्थिक शोषण के कारण जब कुछ मुट्ठी-भर शोषकों को छोड़ जनता का सबसे अधिक भाग अपनी रोटी, जीविका और भविष्य की चिन्ता में चौबीस घंटे परेशान रहता हो, तो वह संघर्ष भावुकतापूर्ण सोडे की बोतल की उफान की तरह क्षणिक नहीं हो सकता, उस संघर्ष की प्रत्येक सफलता उसके भावी वेग और शक्ति को बढ़ानेवाली तथा प्रत्येक असफलता शिक्षा लेने का अवसर देनेवाली होती है। एंगेल्स ने जिस तत्त्व को बीजरूपेण अपने इस लेख में दिखलाया था, इसमें शक नहीं, उसे चरम सीमा तक विकसित करना मार्क्स का काम था। इसमें सन्देह नहीं, कि मार्क्स एंगेल्स की अपेक्षा अधिक दार्शनिक गति रखते थे, मार्क्स का दिमाग इस गहन तत्त्वों के भीतर घुसकर परिणाम पर पहुँचने के लिए अधिक प्रशिक्षित और क्षमता रखता था।

वर्षपत्र में छपे एंगेल्स के दूसरे लेख में भी अभी पुराने दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रभाव दिखाई पड़ता है, कि उन्होंने इंगलैंड की परिस्थिति पर विवेचना करते हुए घोषित किया कि सारे वर्ष की साहित्यिक फसल में यही पढ़ने लायक है। फ्रांस की साहित्यिक समृद्धि के मुकाबिले में एंगेल्स ने अंग्रेजी साहित्य को बहुत दरिद्र बतलाया। अंग्रेज उस समय तक हिन्दुस्तान के राजा हो चुके थे। 1857 ई. के स्वतन्त्रता-युद्ध में अभी बारह-तेरह वर्षों की देरी थी। उस वक्त के शिक्षित अंग्रेजों का मूल्यांकन करते हुए एंगेल्स ने अपना विचार प्रकट किया : "वह सारी दुनिया में अत्यन्त घृणास्पद दास हैं, और पक्षपातों, विशेषकर धार्मिक दृष्टि के पक्षपातों से भरे हुए हैं। "अंग्रेज समाज का केवल एक ही भद्र भाग है, जिसे यूरोप में मजूर कहते हैं; और जो इंग्लैण्ड का परिया (अछूत) गरीब है, चाहे वह उसमें कितना ही मोटा-झोटा और भीरु हो। इंग्लैण्ड को मुक्ति की आशा इन्हीं से हो सकती है। वह अशिक्षित हैं, लेकिन उनमें पक्षपात नहीं है, शिक्षा के वह अच्छे पात्र हैं। उनमें अब भी एक बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए पर्याप्त जीवन है, उनके पास अब भी भविष्य हैं।" एंगेल्स ने शिक्षित अंग्रेजों की कूढ़मग्जी की बानगी दिखलाते हुए लिखा था, कि स्ट्रॉस के ईसा के जीवन को किसी भद्र अनुवादक ने अंग्रेजी में अनुवादित करने की हिम्मत नहीं की, और न किसी प्रसिद्ध प्रकाशक ने उसे प्रकाशित करने का साहस दिखाया। एक समाजवादी लेक्चरर ने उसका अनुवाद किया है। लन्दन, बर्मिंघम और मेन्चेस्टर के मजदूरों में वह बिक रही है।

इंग्लैण्ड का शिक्षित-वर्ग जहाँ इस तरह मूढ़ता में पड़ा हुआ था, वहाँ जर्मनी में फ्वारबाख कहता था : अब तक सदा यही सवाल उठाया जाता था, कि भगवान् क्या है ? जर्मन-दर्शनों ने हमें उत्तर दिया है : "भगवान् मनुष्य है, मनुष्य को अपने-आपका साक्षात्कार, अपने-आपके प्रति जीवन की सभी स्थितियों का नापना, अपने स्वरूप के अनुसार उनके बारे में फैसला करना, अपने निजी स्वभाव की माँगों के अनुसार पूरी तौर से मानवी फैशन में दुनिया को बनाना है, बस उसने हमारे युग की पहेली हल कर दी।" मार्क्स ने तुरन्त फ्वारबाख

के 'मानव' की मनुष्य, राज्य, समाज के तौर पर व्याख्या की, और एंगेल्स ने मनुष्य के स्वभाव को उसके इतिहास के रूप में समझा।

मार्क्स और एंगेल्स की विचारधाराओं में असाधारण समानता थी। कभी-कभी एक ही विचार दोनों के दिमाग में काम करते थे, इसमें हेगेलीय द्वन्द्वात्मक दर्शन और समाजवादी दृष्टिकोण मुख्य कारण था, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्हीं साधनों से सम्पन्न होकर मार्क्स फ्रेंच-क्रांति और वहाँ के भौतिकवाद के गम्भीर समुद्र में गोता लगा रहे थे और एंगेल्स अंग्रेजी उद्योग-धन्धे के विकास और नये आर्थिक सम्बन्ध की विवेचना में संलग्न थे। मार्क्स ने मानव के अधिकारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला, कि बूर्ज्वा-समाज का स्वभाव अराजकतापूर्ण, व्यवस्थाहीन है। एंगेल्स ने प्रतियोगिता (होड़) के बारे में कहा : "यह अर्थशास्त्रियों का मुख्य पदार्थ, उसकी प्रिय कन्या है।... ऐसे कानून के बारे में हम क्या सोचें, जो कि व्यापारिक संकटों से समय-समय पर होनेवाली क्रांतियों के परिणामस्वरूप ही काम करता है ? यह सीधा-सादा स्वाभाविक कानून है, जो कि अपने सम्बन्धित दलों की आत्मचेतनाहीन अवस्था पर आधारित है।"

3. 'पवित्र परिवार'

मार्क्स और एंगेल्स ने मिलकर जिस सबसे पहली कृति को लिखा, वह यही पुस्तिका थी। ब्रूनो बावर और उसके दो भाइयों एडगर और एगबेर्ट ने दिसम्बर, 1843 में अपने ऐसे दार्शनिक विचारों को प्रकाशित किया, जो अब मार्क्स और एंगेल्स की दृष्टि के प्रतिगामी थे। ब्रूनो बावर अपने को दार्शनिक आकाश में विचरण करनेवाला गरुड़ समझता था, मार्क्स के राजनीति में प्रवेश और उसके सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचारों से उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी। बावर के विचार से मुक्ति का रास्ता केवल शुद्ध दर्शन, शुद्ध थ्योरी (वाद) और शुद्ध समालोचना है। जिस जनता के ऊपर मार्क्स और एंगेल्स का पूर्ण विश्वास था, वह समझते थे कि मुक्ति का युद्ध सफलतापूर्वक इन्हीं के द्वारा लड़ा जा सकता है; उसके बारे में ब्रूनो बावर के विचार थे : "अब तक इतिहास के सभी बड़े-बड़े आन्दोलन पथभ्रष्ट और प्रारम्भ ही से असफल होने के लिए मजबूर थे; क्योंकि जनसाधारण उसमें दिलचस्पी रखते या बड़े उत्साह के साथ उसके पक्ष में थे; अथवा वह इसलिए बड़ी बुरी तरह खतम हो गए, क्योंकि जिस विचार पर वह केन्द्रित थे, उसके लिए बिल्कुल ऊपरी समझ-बूझ से अधिक की आवश्यकता नहीं थी, और इसीलिए जनसाधारण उसके बारे में अपना हर्ष प्रकट कर सकता था।" बुद्धि और जनसाधारण इन दोनों का विवाद बावर के दिमाग को परेशान किए हुए था। ज्ञान के लिए बावर के वही विचार थे, जो कि रूढ़िवादी गीता के निम्न शब्दों में मिलता है :

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमहि विद्यते।"

बावर की तरह की धारणा हमारे यहाँ के ज्ञानवादी आज भी रखते हैं। सभी जन-आन्दोलनों को बावर घृणा की दृष्टि से देखता था, चाहे वह ईसाइयत, यहूदी धर्म जैसे धार्मिक क्षेत्रों में हो, चाहे समाजवाद, फ्रेंच-क्रांति या अंग्रेजी औद्योगिक क्रांति के रूप में सामाजिक क्षेत्र में हो। ज्ञान को पवित्रतम माननेवाले अभी भी हमारे यहाँ अरविन्दो, रमण महर्षि या किसी दूसरे रूप में सन्त और भगवान् बनकर पूजे जाते हैं, और कितने ही दर्शन के प्रोफेसर उनकी चरण-धूलि ललाट में लगाकर अपने को धन्य समझते हैं। लेकिन, ज्ञान (विज्ञान) वादी हेगेलीय दर्शन और उसके अनुयायियों की आलोचना करते हुए एंगेल्स ने बहुत नर्मी दिखलाते हुए भी, आज से 108 वर्ष पहले लिखा था : इस (ज्ञानवाद) का सड़ा-गला हेगेलीय दर्शन उस बूढ़ी डाइन जैसा है, जिसका शरीर सूखकर अपने पहले रूप से घृणाजनक ढाँचे के रूप में बदल गया है, लेकिन वह अब भी अपने को आभूषित और अलंकृत करती प्रेमी पाने के आशा से चक्कर लगाती है। जब हेगेल ने घोषित किया, कि परमविज्ञान सृजनात्मक दुनिया विश्वात्मा है, जो पीछे केवल दार्शनिक में ही सचेतन हुआ, तो उसका अर्थ यही था कि परमविज्ञान ने आपाततः कल्पना में इतिहास बनाया। उसने स्पष्ट तौर से इस गलती को पहले ही कह दिया कि दार्शनिक व्यक्ति स्वयं ही परमज्ञान है।

मार्क्स और एंगेल्स ने बावर की आलोचना का नाम 'आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना' रक्खा

था, लेकिन पीछे प्रकाशक के सुझाव पर उसे 'पवित्र परिवार' नाम दिया गया। मार्क्स के विस्तार और गम्भीरता में जाने के स्वभाव के कारण यह पुस्तक भी 300 पृष्ठ से अधिक की हो गई। लेखकों ने समझा था कि इसके अधिकांश में साधारण जनता की उतनी दिलचस्पी नहीं होगी। लेकिन उनका यह ख्याल ठीक नहीं साबित हुआ। इस ग्रंथ में समालोचना सम्बन्धी सूक्ष्म बुद्धि का ही परिचय नहीं मिलता बल्कि लेखकों की अद्भुत प्रतिभा, शैली पर पूर्ण अधिकार और भाषा की अति सुसंबद्धता पाई जाती है, जिसके कारण मार्क्स की कृतियों में यह श्रेष्ठ मानी जा सकती है।

बावर ने लिखा था कि यह राज्य ही है, जो कि बूर्ज्वा-समाज के अलग-अलग कणों को इकट्ठा करके रक्खे हुए हैं। मार्क्स ने इसका जवाव दिया : वह इसलिए इकट्ठा पकड़कर रक्खे हुए हैं, क्योंकि वह कण केवल दिमाग में है, अपनी दिमागी उड़ान के स्वर्ग में है। किन्तु वस्तुतः वह कणों से भारी भेद रखते हैं, अर्थात् वह दिव्य अहंतावादी नहीं, बल्कि हंतावाले मानव-प्राणी हैं। "आज केवल राजनीतिक महामूढ़ ही यह कल्पना कर सकते हैं, कि बूर्ज्वा-जीवन को राज्य एकताबद्ध करता है।" बावर ऐतिहासिक ज्ञान में उद्योग और प्रकृति को महत्त्व देने पर नाक-भौं सिकोड़ता था, जब कि मार्क्स उनके बिना ऐतिहासिक ज्ञान को भ्रान्त धारणा मात्र मानता था, जब तक कि ऐतिहासिक ज्ञान मनुष्य के प्रकृति, प्राकृतिक विज्ञान और उद्योग के प्रति अपने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक मनोभाव को ऐतिहासिक आन्दोलन से अलग करता रहेगा :

"बावर जैसों का ऐतिहासिक विचार जैसे अनुभूति से चिंतन को, शरीर से आत्मा को अलग करता है, वैसे ही वह इतिहास को प्राकृतिक विज्ञान और उद्योग-धन्धे से अलग करता है, इतिहास की जन्मस्थान पृथ्वी की भौतिक उपज कच्चे माल की अपेक्षा स्वर्ग के अस्पष्ट बादलों की बनावटों को मानता है।"

जिस प्रकार मार्क्स ने आलोचनात्मक आलोचना का खंडन करते हुए फ्रेंच-क्रांति का समर्थन किया, वैसे ही फौशेर के विचारों को खंडन करते हुए एंगेल्स ने इंग्लिश इतिहास का समर्थन किया और औद्योगिक-क्रांति ने वहाँ जिन नई व्यवस्थाओं को लाने का प्रयत्न किया, उनके ऐतिहासिक औचित्य का समर्थन किया।

पवित्र परिवार के लिखने के समय (1844 ई.) अभी मार्क्स और एंगेल्स पुरानी दार्शनिक विचारधारा से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सके थे। अभी भी वह फ़्वारबाख की देनों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देते थे। 'पवित्र परिवार' में फूरिये की उटोपियन विचारधारा का भी प्रभाव देखा जाता है। फूरिये ने ऐतिहासिक विकास और स्वतंत्र मज़दूर-आन्दोलन के महत्त्व पर जोर दिया था। एडगर बावरे के तर्क का जवाब देते हुए एंगेल्स ने कहा था : 'आलोचनात्मक आलोचना' कुछ नहीं निर्माण कर सकती, जब कि मजूर सब कुछ निर्माण करते हैं।··· अंग्रेज और फ्रेंच मजूर इसके प्रमाण हैं। एडगर बावर ने प्रूधों के विचारों पर आक्षेप किया था, इसपर मार्क्स ने प्रूधों का जबर्दस्त समर्थन किया था, यद्यपि कुछ सालों बाद मार्क्स ने प्रूधों की कड़ी आलोचना भी की। मार्क्स ने आर्थिक क्षेत्र में प्रूधों के प्रारम्भिक प्रयत्न और सफलता की सराहना की, और उसकी अपूर्णता को मानते हुए बतलाया, कि यह वैसी ही अपूर्णता है, जैसी कि ब्रूनो बावर की धर्मविद्या-सम्बन्धी अपूर्णताएँ।

'पवित्र परिवार' का अधिकतर सम्बन्ध यद्यपि दर्शन और दार्शनिक तत्त्वों से है, लेकिन मार्क्स ने यहाँ अपने भौतिकवादी विचारों और वैज्ञानिक समाजवाद के सम्बन्ध में भी कितनी ही बातें कही हैं। फ्रेंच समाजवादी प्रूधों बूर्ज्वा के आर्थिक-व्यवस्था के आन्तरिक विरोध के आधार पर सम्पत्ति की व्यवस्था करता है, जब कि मार्क्स ने घोषित किया : वैयक्तिक सम्पत्ति धन के तौर पर अपनी सत्ता रखते हुए अपने विरोधी सर्वहारा को कायम रखने के लिए मजबूर है। यह विरोध का घनात्मक पक्ष है। वैयक्तिक सम्पत्ति अपने-आपमें पर्याप्त है। लेकिन सर्वहारा के तौर पर वह अपने को कायम रखने नहीं बल्कि खतम करने के लिए मजबूर है, और उसी समय अपने प्रतिरोधी को भी, जो कि उसे सर्वहारा बनाता है। सर्वहारा उस विरोध का ऋणात्मक (अभावात्मक) पक्ष, उसका ध्वंसमान पक्ष है, जो कि नष्ट होता है और स्वयं नष्ट होते हुए वैयक्तिक सम्पत्ति का भी विलोप करता है। अतएव इस विरोध के भीतर सम्पत्ति का स्वामी स्थिति-स्थापक है, और सर्वहारा ध्वंसक : एक का काम है विरोध को कायम रखना और दूसरे का उसे नष्ट करना। अपनी आर्थिक गति में वैयक्तिक सम्पत्ति अपने ध्वंस की ओर बढ़ती है।··· जब सर्वहारा विजयी होता है, तो वह समाज का अखंड (परम) पक्ष नहीं

बन जाता, क्योंकि वह तभी विजयी हो सकता है, जब कि वह अपने और अपने प्रतिनिधि दोनों का विलोप कर दे। इसके साथ सर्वहारा केवल अपने ही को नहीं, बल्कि अपने प्रतिरोधी-वैयक्तिक सम्पत्ति को भी विलुप्त करता है।

मार्क्स ने अपने सर्वहारा-प्रेम को उसके प्रति देवताओं जैसी भक्ति के रूप में नहीं दिखलाना चाहा, बल्कि सर्वहारा के सारे दोषों के रहते हुए भी उसकी दुर्दम्य क्रांतिकारिणी और सृजनात्मक शक्ति को देखकर ही उनमें यह पक्षपात पैदा हुआ।

4. इंगलैण्ड के मजूर

1844 ई. में एंगेल्स ने अपने ग्रंथ 'इंगलैंड में मजूर वर्ग की स्थिति' को समाप्त किया था, जो कि 1845 ई. के ग्रीष्म में लाइपजिग में विगांट द्वारा प्रकाशित हुआ। विगांट ही 'इ्वाशे यारबुखेर' (जर्मन वर्षपत्र) का भी प्रकाशक था। एंगेल्स की यह पुस्तक एक मौलिक समाजवादी कृति है। इस पुस्तक में एंगेल्स ने अपने प्रत्यवेक्षण और सूझ के अनुसार अंग्रेज मजूरों की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उत्पादन के पूँजीवादी ढंग ने किस तरह वहाँ घोर दरिद्रता फैलाई। मजूरों की दुरवस्था का वर्णन कितने ही अंग्रेज लेखक कर चुके थे, जिन्हें एंगेल्स ने जगह-जगह उद्धृत किया है। असह्य दरिद्रता का वर्णन करके पाठकों के हृदय में शोषकों के प्रति क्रोध और शोषितों के प्रति सहानुभूति पैदा की जा सकती है, लेकिन भावुकता से उस दुख का निवारण नहीं हो सकता है। इसीलिए एंगेल्स ने दुख के निदान की ओर विशेष तौर से ध्यान दिया है। 24 वर्ष के तरुण लेखक ने अपने इस ग्रंथ द्वारा दिखलाया कि उत्पादन के पूँजीवादी ढंग की आत्मा को वह कितना अच्छी तरह समझता है। उसने केवल बूर्ज्वा के उत्पादन ही नहीं, बल्कि उसके पतन की, सर्वहारा के दुख की ही नहीं, बल्कि उसकी मुक्ति की भी सफलतापूर्वक व्याख्या की है। बतलाया है, कि कैसे बड़े पैमाने के उद्योग ने आधुनिक मजूर-वर्ग को पैदा किया, शरीर से जीर्ण-शीर्ण, बुद्धि से भ्रष्ट और चरित्रबल में पशुता के नजदीक पहुँचे अमानवीकृत आधुनिक मजूर-वर्ग को पैदा किया, और कैसे ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद–जिसके नियमों को एंगेल्स ने विस्तारपूर्वक यहाँ खोलकर दिखलाया है–की प्रक्रिया की सहायता से मज़ूर-वर्ग विकसित हो रहा है और वह अनिवार्यतया वहाँ तक विकसित होगा, जब कि वह अपने विधाता (पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था) को उखाड़ फेंकेगा। एंगेल्स ने बतलाया कि इंगलैंड में सर्वहारा का शासन मजूर-आन्दोलन के साथ विलयन के परिणामस्वरूप होगा। एंगेल्स की यह पुस्तक समाजवाद की दृढ़ आधारशिला बनी। इसकी शैली और गम्भीरता को देखकर कुछ लम्बी नाकवाले पंडितों ने भावोद्रेक में घोषित किया, कि इस पुस्तक ने समाजवाद को युनिवर्सिटी के योग्य बना दिया। इतिहास की प्रगति को द्वन्द्वात्मक कार्य-कारण प्रक्रिया से विश्लेषण करते हुए मार्क्स और एंगेल्स भविष्य की ओर भी दूर तक देख सकते थे। यह कोई ज्योतिषियों और योगियों की भविष्यवाणी या भविष्यद्दृष्टि नहीं थी, यदि वह भविष्य के बारे में भी कुछ कहते थे। उनका अनुसन्धान और दृष्टि में कभी गलती नहीं देखी गई, लेकिन काल के बारे में वह भविष्यवाणियाँ कितनी ही बार गलत साबित हुईं, एंगेल्स के कथनानुसार इंग्लैंड में सामाजिक क्रांति तुरन्त तो क्या, अभी तक नहीं हुई। इसे एंगेल्स ने अपनी पुस्तक के लिखने के पचास वर्ष बाद स्वयं तरुणाई का उत्साह कहा था। एंगेल्स की इस कृति को पूर्ण और प्रकाशित हुआ देखने के लिए मार्क्स बहुत अधीर थे। उन्होंने अपने एक पत्र में जोर देते हुए लिखा था : अपनी अर्थशास्त्रीय कृति को अन्ततः पूरा कर ही डालो, चाहे तुम उससे पूरी तरह संतुष्ट न हो। इसकी कोई पर्वा नहीं। लोगों के दिमाग इस वक्त तैयार हैं। हमें इसी समय प्रहार करना चाहिए, जब कि लोहा गरम है।...समय जोर दे रहा है, इसलिए ऐसी कोशिश करो कि अप्रैल तक तुम उसे समाप्त कर सको। वही करो जैसा कि मैं करता हूँ, एक ऐसी तारीख निश्चित कर लो, जब कि तुम अवश्य उसे समाप्त कर दोगे, फिर इसकी कोशिश करो, कि जितना हो सके उतना जल्दी छप जाए। अगर वहाँ वह नहीं छप सकती; तो मान्हाइम डर्मस्टाट या और कहीं कोशिश करो, लेकिन सबसे बड़ी चीज यह है, कि वह जल्दी प्रकाशित हो।

मार्क्स जिस तरह एंगेल्स की कृतियों की अधीर होकर प्रतीक्षा करते थे, वही बात मार्क्स के बारे में

एंगेल्स की भी थी। दोनों मित्रों की इस तरह पत्र द्वारा बातचीत हो रही थी, इसी समय बर्मेन में खबर आई कि मार्क्स को पेरिस से निष्कासित कर दिया गया। एंगेल्स ने तुरन्त पैसा जमा करना शुरू किया और मार्क्स को सूचित करते कि इसमें सफलता होगी, बतलाया : मैं नहीं मानता, कि यह पैसा तुम्हारे ब्रुसेल्स-निवास को ठीक-ठाक करने के लिए पर्याप्त होगा। लेकिन, मैं साथ ही इस बातचीत का उल्लेख करना चाहता हूँ, कि मेरी पहली अंग्रेजी किताब् से जल्दी ही जो पारिश्रमिक मिलनेवाला है, उसे मैं बड़ी ख़ुशी से कम-से-कम अंशतः आपके काम के लिए रखता हूँ। जो भी हो, वर्तमान में मुझे उसकी आवश्यकता नहीं··· "शत्रु अपने दुष्कृत्यों के परिणामस्वरूप आपको पैसे की कठिनाइयाँ पैदा करने की प्रसन्नता नहीं प्राप्त कर सकेंगे।" एंगेल्स ने एक पीढ़ी तक इसीलिए अथक परिश्रम किया कि शत्रु मार्क्स को पैसों की परेशानी में डालकर ख़ुशी न मनाएँ।

7

ब्रुशेल्स में निर्वासित (1845-48 ई.)

11 जनवरी, 1845 को फ्रांस की सरकार ने जर्मन क्रांतिकारियों को देश से निकल जाने का हुक्म दिया, जिनमें मार्क्स भी थे। मार्क्स ने पेरिस छोड़, परिवार को ले ब्रुशेल्स का रास्ता लिया। एंगेल्स को शंका भी थी कि बेल्जियम में भी मार्क्स को चैन से रहने नहीं दिया जाएगा। जल्दी ही यह आशंका सत्य सिद्ध हुई। हाइने को लिखे अपने पत्र में मार्क्स ने बतलाया था कि ब्रुशेल्स पहुँचने के तुरन्त ही बाद मुझे बुलाकर इस शर्त पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया, कि मैं बेल्जियम की राजनीति पर कोई बात नहीं छापूँगा। मार्क्स ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया, क्योंकि वैसे किसी काम करने की उनकी न इच्छा थी और न सम्भावना थी। लेकिन प्रशियन सरकार बेल्जियम सरकार के ऊपर मार्क्स को निष्कासित करने के लिए दबाव डाल रही थी। मार्क्स अब भी प्रशिया के नागरिक थे। इस दबाव से बचने के लिए उन्होंने यही अच्छा समझा और 1 दिसम्बर 1845 को प्रशियन नागरिकता का परित्याग कर दिया। उस समय और उसके बाद में भी मार्क्स किसी देश के नागरिक नहीं बने, यद्यपि 1848 ई. के बसन्त में फ्रेंच गणराज्य की अस्थायी सरकार ने उन्हें बड़े सम्मान के साथ फ्रेंच नागरिकता प्रदान की थी। लेकिन वह सरकार स्वयं अधिक दिनों तक टिक नहीं सकी। फ्राइलीग्रथ, कुछ दूसरों के पीछे मार्क्स को भी इंग्लैंड में निर्वासित जीवन बिताते समय वहाँ के स्वाभाविक निवासी होने के दस्तावेज को लेने में एतराज नहीं हुआ।

1845 ई. के बसन्त में ही एंगेल्स ब्रुशेल्स आए। फिर दोनों मित्र साथ ही अध्ययन के उद्देश्य से छह हफ्ते के लिए इंग्लैंड गए। पेरिस में रहते समय मेकक्लोच (Macculloch) और रिकार्डो के अर्थशास्त्र का मार्क्स ने अध्ययन किया था। अब उसने इंग्लैंड के अर्थशास्त्रीय साहित्य में गहरी डुबकी लगाई, यद्यपि इस समय अभी वह उन्हीं पुस्तकों को देख सके, जो कि एंगेल्स के निवासस्थान मेन्चेस्टर में मिल सकती थीं, तथा जिनके नोट एंगेल्स ने ले रक्खे थे। अपने इंग्लैंड के प्रथम निवास के समय एंगेल्स ने राबर्ट ओबेन* (1771-186 ई.) के पत्र 'The New Moral World' (नव नैतिक विश्व) तथा चार्टिस्टों के पत्र 'The Northern Star' (उत्तरी तारा) में लेख लिखे थे। दोनों मित्रों ने अबकी यात्रा में इंग्लैंड के चार्टिस्टों और समाजवादियों से नये सम्पर्क स्थापित किए।

1. 'जर्मन-विचारधारा' (1845-48 ई.)

हेगेल के दर्शन के तौर पर अभी भी जर्मन-विचारधारा दोनों बन्धुओं का पीछा कर रही थी। इस यात्रा से लौटने

* ओबेन के बारे में देखें लेखक का 'मानव समाज', तृतीय संस्करण, पृ. 387-410

के बाद मार्क्स ने अपनी एक नई सम्मिलित कृति के आरम्भ करने के बारे में लिखा था : "हमने एक साथ मिलकर जर्मन दर्शन की सम्मतियों, विचारधाराओं के विरुद्ध अपने निजी दृष्टिकोण पर काम करने का निश्चय किया। वस्तुतः यह अपनी पहले की दार्शनिक चेतना से लोहा लेना था। हमने इसे पीछे के हेगेलीय दर्शन की समालोचना के रूप में किया। आक्टेव आकार की दो बड़ी-बड़ी जिल्दों में पुस्तक की हस्तलिपि वेस्टफालिया के हाथ में एक प्रकाशक को दी जा चुकी थी, जब कि हमें सूचना मिली कि बदली हुई परिस्थितियों के कारण उसका प्रकाशित करना सम्भव नहीं है, इसपर हमने अपने हस्तलेख को चूहों के कुतरने की आलोचना के लिए त्याग दिया। ऐसा करने में हमें कोई अफसोस नहीं हुआ, क्योंकि हमारा जो मुख्य उद्देश्य था, वह सफल हो गया था–अपने साथ हमारा समझौता हो गया था।" मार्क्स की बात ठीक थी, क्योंकि हस्तलेख पर चूहों ने सचमुच ही अपने दाँत साफ किए, और जो कुछ उसका बचा-खुचा भाग रह गया, उससे पता लग जाता है, कि क्यों ग्रंथकर्ता युगल हस्तलेख के इस प्रकार नष्ट होने से उदास नहीं हुए। ये दोनों जिल्दें बड़े आकार के 800 पृष्ठों में थीं, जिनके दर्शन के साथ उसी के हथियारों द्वारा लोहा लिया गया था। पुस्तक का नाम था 'जर्मन विचारधारा'। आधुनिक जर्मन दर्शन और उसके प्रतिनिधियों फ्वारबाख, बावर, ब्रूनो और स्टर्नर की आलोचना एवं जर्मन समाजवाद और उसके भिन्न-भिन्न पैगम्बरों की आलोचना। एंगेल्स ने पीछे अपनी स्मृति से कहा था कि स्टर्नर का खंडन उसकी अपनी पुस्तक से कम बड़ा नहीं था। फ्वारबाख-हेगेलीय दर्शन का प्रभाव अभी तक मार्क्स के ऊपर काफी चला आया था, लेकिन अब वह उससे मुक्त थे। मार्क्स ने फ्वारबाख सम्बन्धी एक-दो सूत्र 1845 ई. में नोट किए थे, जिन्हें कुछ शताब्दियों के बाद एंगेल्स ने प्रकाशित किया था। मार्क्स ने फ्वारबाख के भौतिकवाद में एक कमी जो पाई थी, वह थी 'शक्तिदायक तत्त्व' का अभाव। अपने डाक्टरेट की थीसिस (निबन्ध) में दैमोक्रेतु के दर्शन के बारे में भी मार्क्स की यही शिकायत थी। मार्क्स और कुछ एंगेल्स ने इस बात की कोशिश की, कि फ्वारबाख अपने भौतिकवादी दर्शन में कुछ और आगे बढ़े, ताकि उसकी विचारधारा में 'शक्तिदायक' तत्त्व प्रविष्ट हों। लेकिन फ्वारबाख के लिए अब वैसा करना सम्भव नहीं रह गया था। उसके शिष्य क्रीगे ने यद्यपि अटलान्टिक पार कम्युनिस्ट प्रचार करने में हाथ बँटाया था, लेकिन न्यूयार्क में उसने कम्युनिस्टों के भीतर गड़बड़ी पैदा करने में ही सफलता पाई।

2. 'सच्चा-समाजवाद' (1845-46 ई.)

उसी ग्रंथ में जर्मन समाजवाद और उसके भिन्न-भिन्न पैगम्बरों की भी खबर लेने की योजना बनाई थी। इसमें उन्होंने मोजेज हेस, कार्ल ग्रन, ओटो लूनिंग, हेरमान पुटमान आदि लेखकों की आलोचना की थी, जिन्होंने कि पत्र-पत्रिकाओं में छपे अपने लेखों द्वारा समाजवाद के सम्बन्ध में एक अच्छा साहित्य तैयार किया था। कार्ल ग्रन ने इस समाजवाद को 'सच्चा समाजवाद' नाम दिया था, जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने व्यंग के तौर पर इस्तेमाल किया। इतनी मेहनत से ताना बुना गया 'सच्चा समाजवाद' बहुत भंगुर साबित हुआ, और 1848 ई. तक लोग इसे भूल भी गए, यद्यपि वह 1845 और 1846 ई. में ही अधिकतर तैयार हुआ था। मार्क्स के बौद्धिक विकास में इसका कोई हाथ नहीं था। कम्युनिस्ट घोषणा में उन्होंने इसकी कड़ी आलोचना की। एंगेल्स का इस समाजवाद के प्रति और भी कठोर विचार था। हेस के साथ मार्क्स और एंगेल्स का अपने लेखों द्वारा सहयोग रहा, ब्रुशेल्स के निवास के समय भी उनका सम्बन्ध बना रहा और कुछ समय तो ऐसा मालूम होता था कि हेस ने दोनों के विचारों को स्वीकार कर लिया। मार्क्स और एंगेल्स ने 'वेस्टफालिशे डम्फ़्बूट' (1845 ई. में प्रकाशित) पत्र में अपने कई लेख दिए थे। इसी पत्र में जर्मन विचारधारा का दूसरा अनुच्छेद प्रकाशित हुआ था, इस प्रकार इस ग्रंथ का यही अंश चूहों के कुतरने से बच गया। मार्क्स और एंगेल्स भी हेगेलीय दर्शन से आगे प्रगति करके अपने वैज्ञानिक समाजवाद तक पहुँच गए थे और नवीन समाजवादवाले भी हेगेलीय दर्शन की ही आगे की उपज थे। लेकिन, दोनों में अन्तर यह था कि मार्क्स और एंगेल्स फ्रेंच-क्रांति और अंग्रेजी उद्योग के इतिहास के गम्भीर अध्ययन से अपने निष्कर्ष पर पहुँचे थे, जब कि 'सच्चे समाजवादी' समाजवादी सूत्रों और नारों के आधार पर दिमागी कल्पना से इस विचारधारा को तैयार करने में सफल हुए थे। मार्क्स

और एंगेल्स की कसौटी थी सर्वहारा और जनसाधारण के हित और क्षमता, जबकि 'सच्चे समाजवादी' उनसे दूर रहकर समाजवादी समाज की सृष्टि करना चाहते थे।

'सच्चे समाजवादियों' की ईमानदारी के बारे में सन्देह करने की बहुत कम गुंजाइश है। जर्मनी में क्रांति के फेल होने के बाद जो भीषण आतंक मचा था, उसमें कोई ऐसा कमजोर सच्चा समाजवादी नहीं मिला, जो शत्रु की ओर चला गया हो। साथ ही उनके दिल में मार्क्स और एंगेल्स के विषय में भारी सम्मान था। जब 'सच्चा समाजवादी' उनकी दृष्टि में गिर गया था, तब भी सच्चे समाजवादी अपने साहित्य को बड़ी खुशी से दोनों मित्रों को दिया करते थे। वस्तुतः मतभेद का कारण कोई छिपी दुर्भावना नहीं थी, बल्कि सच्चे समाजवादी अपनी पुरानी धारणाओं को छोड़ने की समझ नहीं रखते थे, सादे तौर से उनके दिलों में बावर, रूगे और स्टर्नर के प्रति खास कोमल भाव थे, लेकिन इनमें से कुछ मार्क्स के दृष्टिकोण को अपनाने में समर्थ हुए, जिनमें जोजेफ बेडेमेयर भी था। बेडेमेयर लूनिंग का सम्बन्धी था। वह प्रशियन तोपखाने में लेफ्टिनेंट था, लेकिन अपने राजनीतिक विचारों के कारण उसने सेना की नौकरी त्याग दी। फिर वह 'ट्रीरशे जाइटुंग' का उप-सम्पादक बना, जहाँ कार्ल ग्रन के प्रभाव में आकर सच्चा समाजवादी हो गया। 1846 ई. के बसन्त में वह ब्रुशेल्स गया, जहाँ उसकी मार्क्स और एंगेल्स से मुलाकात हुई, और जल्दी ही वह उनका अनुयायी बन गया। बेडेमेयर कभी एक असाधारण लेखक नहीं बन सका। जर्मनी लौटने पर उसने रेलवे की सर्वेयर की नौकर कर ली, फिर बाकी समय में 'वेस्टफालिशे डम्फूबूट' के सम्पादन में सहयोग देता रहा। बेडेमेयर ने मार्क्स के ग्रंथों के प्रकाशन के लिए बहुत कोशिश की थी और 'जर्मन विचारधारा' उसी के प्रयत्न से प्रकाशक के पास पहुँची थी, जिसका अवसान किस प्रकार हुआ, उसके बारे में हम बतला चुके हैं।

3. कवि और स्वप्नद्रष्टा

यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि तीस वर्ष की उमर तक पहुँचते-पहुँचते मार्क्स के परिचितों की संख्या भी बहुत अधिक हो गई थी। उनके प्रभाव में जितने लोग आए, वह सभी बराबर के साथी नहीं हो गए। तरुणाई में आदमी में आसक्ति कम और अपने आदर्शों के प्रति उत्साह अधिक रहता है। उमर के ढलने के बाद दुनिया और परिवार की दूसरी चीजें उनको घेर लेती हैं, और अक्सर तरुणाई के क्रांतिकारी यदि पथभ्रष्ट नहीं होते, तो शिथिल तो जरूर हो जाते हैं। मार्क्स के जीवन में हम ऐसे बहुत-से लोगों को पाते हैं। लेकिन जिनकी नियत में कोई दोष नहीं, और जिनका काम एक हद तक आदर्श के अनुरूप रहा, उनके लिए मार्क्स के दिल में भी सद्भावना रही।

(1) **वाइटलिंग**–वाइटलिंग सर्वहारा वर्ग में पैदा हुआ था। प्रतिभा और नैतिक बल दोनों में बहुत मजबूत था। सम्मान और साधन प्राप्त करने पर भी वह अपने वर्ग के हित में उसी तरह विचलित नहीं हुआ था, जिस तरह फ्रेंच समाजवाद का आचार्य प्रूधों। दोनों ही शरीर से बहुत हट्टे-कट्टे, कर्मठ और आगे चलकर जीवन की सभी अच्छी चीजों को पाने में समर्थ हुए थे, लेकिन उन्होंने सुख का मार्ग छोड़ दुख का मार्ग अपनाया और दुख की पराकाष्ठा का। वाइटलिंग की कोठरी में कभी-कभी तीन आदमी रहते, एक मामूली खाट पड़ी थी, एक लकड़ी का तख्ता लिखने की मेज का काम देता था। जब-तब काली काफी का प्याला वह पी लेता था। वह ऐसा जीवन उस समय बिता रहा था, जब कि दुनिया की विभूतियाँ उसकी आवाज सुनकर काँपती थीं। प्रूधों भी पेरिस में इसी तरह रहता था, जिस तरह वाइटलिंग। देह में मोटे ऊन का जाकेट और पैरों में लकड़ी के तले का खटखटाता चप्पल। वाइटलिंग एक फ्रांसीसी अफसर का लड़का था। काफी उमर हो जाने पर उसने पेरिस में फ्रेंच समाजवाद का गम्भीर अध्ययन किया। समाजवाद का आन्दोलन करते वह स्वीट्जरलैंड पहुँचा। उसके बाद 1846 ई. के आरम्भ में ब्रुशेल्स में था। लेकिन वहाँ भी उसे अधिकारियों ने चैन से रहने नहीं दिया और वह लन्दन चला आया, जहाँ न्यायी लीग के सदस्यों से उसकी नहीं पटी, यद्यपि उस समय इंग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन बड़े जोरों पर था, लेकिन निराश-सा वाइटलिंग अब दूसरी ही धुन में लगा था। वह एक विश्व-भाषा के निर्माण का प्रयत्न कर रहा था, जिसके लिए कि उसके पास बौद्धिक साधन नहीं थे।

एक ओर अपने वर्ग से विच्छेद हो जाने से उसकी शक्ति का स्रोत टूट गया था, और दूसरी ओर वह निरर्थक प्रयास। अच्छा ही किया, जो वह ब्रुशेल्स से लन्दन चला आया, क्योंकि मार्क्स भी वहाँ पर थे। मार्क्स ने उसका बड़े प्रेम से स्वागत किया, और कोशिश की कि उसकी प्रतिभा का उपयोग किया जाय। 30 मार्च, 1846 को ब्रुशेल्स में कम्युनिस्टों की एक बैठक में दोनों का उग्र मतभेद हो गया। वाइटलिंग ने मार्क्स को बहुत चिढ़ने दिया। उसने निराधार ही मार्क्स पर आक्षेप किया, कि उन्होंने मेरे आमदनी के रास्ते अनुवाद कार्य में भाँजी मारी। पर मार्क्स ने जहाँ तक हुआ वाइटलिंग की सहायता करने से हाथ नहीं खींचा।

(2) प्रूधों–प्रूधों फ्रांस के उस स्वतंत्र बरगंडी प्रदेश में पैदा हुआ, जिसे चौदहवें लुई ने अपने राज्य में मिला लिया। उसके साथी कहा करते थे कि वह जर्मनों जैसा मोटे सिरवाला है। जो भी हो, उद्बुद्ध प्रूधों को जर्मन दर्शन ने अपनी ओर खींचा। वाइटलिंग की तरह वह जर्मन दार्शनिकों को धुंध फैलानेवाला नहीं मानता था। वाइटलिंग स्वप्न उटोपियन (स्वप्नद्रष्टा) समाजवादी लेखकों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था, लेकिन उनके प्रति प्रूधों की जरा भी आस्था नहीं थी। दोनों ही इस बात के सबूत थे कि प्रतिभा और कर्मठता केवल उच्च और मध्यम वर्ग की बपौती नहीं, बल्कि सर्वहारा वर्ग भी उसको पैदा कर सकता है। मार्क्स का सर्वहारा वर्ग के प्रति असाधारण विश्वास और असीम पक्षपात था, इसलिए इन दोनों प्रतिभाशाली फ्रेंच विचारकों के प्रति अपने कार्य के आरम्भ में केवल प्रशंसा के ही शब्द थे। सब कुछ होने पर भी वाइटलिंग एक जर्मन कारीगर से अधिक विकसित नहीं हो सका और न प्रूधों फ्रेंच निम्नमध्यवर्गीय पुरुष से अधिक। दोनों को मार्क्स से विचार-विनिमय का काफी मौका मिला था, लेकिन आयु के अनुसार जब एक मर्तबे आदमी की धारणा पक्की हो जाती है, तो उसे छोड़ना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। मई, 1846 में प्रूधों का मार्क्स के साथ बिलगाव नजदीक आ गया। इस समय कम्युनिस्ट विचारधारा को फैलाने के लिए कई देशों में मार्क्स ने पत्र-व्यवहार के केन्द्र बनाए थे। क्रीग को इसी काम के लिए अमेरिका भेजा, जहाँ वह 20वीं सदी के भारतीय स्वामियों की तरह अपनी महंती जमाने का प्रयत्न करने लगा, जिसका मार्क्स को विरोध करना पड़ा। पेरिस में प्रूधों को इस कार्य में सहयोग देने के लिए मार्क्स ने लिखा था। 17 मई, 1846 को प्रूधों ने लियो से जवाब देते हुए मार्क्स के प्रस्ताव को स्वीकार किया था, लेकिन साथ ही यह भी कहा था कि मुझसे अधिक लिखना-पढ़ना नहीं हो सकेगा। इसी पत्र में उसने मार्क्स को एक उपदेश भी दे डाला था, जिससे पता लग गया कि दोनों के मतभेद की खाइयाँ सँकरी होने की जगह और बढ़ गई हैं। मार्क्स विचारों की गड़बड़ी को नहीं नहीं पसन्द करते थे, इसलिए वह सहिष्णुता और लीपापोती द्वारा उसको भुला देने को कार्य के लिए बाधक समझते थे। प्रूधों इस विषय में उदारता दिखलाना चाहता था। उसने मार्क्स को उपदेश देते हुए लिखा था : "हमें एक नई गड़बड़ी पैदा करके मानवजाति को नया कार्य नहीं देना चाहिए। हमें मानवजाति को बुद्धिमत्ता और दूरदर्शितावाली सहिष्णुता का उदाहरण पेश करना चाहिए। चाहे वह तर्क और बुद्धि का ही धर्म क्यों न हो, लेकिन हमें एक नये धर्म के प्रचारक का पार्ट नहीं अदा करना चाहिए।" इस प्रकार सच्चे समाजवादियों की तरह प्रूधों भी सहिष्णुता और उदारता के पथ का पथिक बन गया था। लेकिन सर्वहारा-आन्दोलन और क्रांति हवाई संघर्ष नहीं है। उनमें ठोस धरती के परस्पर-विरोधी हितों को लेकर संघर्ष करना पड़ता है, जहाँ पर विचारों की इस लीपा-पोती से काम नहीं चल सकता। इसीलिए मार्क्स साम्यवाद के वास्तविक प्रचार के लिए विचारों की गड़बड़ी को खतम करना सबसे आवश्यक समझते थे। क्रांति का पक्षपाती प्रूधों विचारों में अब ज्ञानमार्गी बनकर कहता था : "मेरी राय में फ्रांस के हमारे सर्वहारों को ज्ञान की इतनी प्यास है, कि यदि हम खून छोड़कर और कुछ पीने के लिए नहीं देते, तो हमारा स्वागत बुरी तौर से होगा।" प्रूधों के व्यवहार से मालूम हो गया, कि पेरिस के काम को उसके ऊपर छोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए अगस्त, 1846 में वहाँ का तमाम काम सँभालने के लिए एंगेल्स को पेरिस जाना पड़ा। महाक्रान्ति जैसी अनेक क्रान्तियों की भूमि और यूरोपीय सभ्यता का सबसे बड़ा केन्द्र होने के कारण साम्यवादी प्रचार के लिए भी पेरिस का बड़ा महत्त्व था। आरम्भ में एंगेल्स ने वहाँ से जो रिपोर्ट भेजी, वह काफी आशाजनक थी, लेकिन बाद में कुछ नहीं बना।

प्रूधों का दिमाग अब दूसरी ओर जुड़ गया था। उसने सहिष्णुता अर्थात् हृदय-परिवर्तन के दर्शन की ओर मुँह फेर लिया था, फिर दरिद्रता के प्रति भी उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन होना जरूरी था। उसने आर्थिक विरोधों की व्यवस्था के नाम से एक पुस्तक लिखी, जिसका दूसरा नाम 'दरिद्रता का दर्शन' भी था। प्रूधों* का फ्रांस के सर्वहारों पर बहुत प्रभाव था; इसलिए वह जो कुछ भी ऊल-जलूल लिखता, उसका प्रभाव उनपर पड़े बिना नहीं रहता। मार्क्स ने 'दरिद्रता का दर्शन' के खंडन में अपनी पुस्तक 'दर्शन की दरिद्रता' फ्रेंच भाषा में लिखी, जिसका उद्देश्य था कि प्रूधों स्वयं अपने विचारों की आलोचना अच्छी तरह देख सकें तथा उसके फ्रेंच अनुयायियों को भी अपनी कमजोरी का पता लगे। लेकिन प्रूधों का प्रभाव हटाने में मार्क्स को सफलता नहीं मिली। तो भी पुस्तक का मूल्य समय बीतने के साथ सभी देशों के लिए बढ़ता गया। इसी पुस्तक द्वारा पहले-पहल मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद को वैज्ञानिक ढंग से विकसित किया। ऐतिहासिक भौतिकवाद के विचार मार्क्स के पहले ग्रंथों में भी जब-तब छिट-पुट आए थे, लेकिन उन्होंने यहाँ सुव्यवस्थित ढंग से उसका प्रतिपादन किया। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स की सबसे बड़ी देन इतिहास सम्बन्धी विज्ञानों में उसी तरह है, जिस तरह प्राकृतिक विज्ञानों में डारविन का विकासवाद। इस पुस्तक के लिखने में एंगेल्स ने भी सहायता की थी, यद्यपि अपनी स्वाभाविक विनम्रता के कारण वह उसमें अपना अंश बहुत कम करके बतलाना चाहते हैं। एंगेल्स ने इस महान् सिद्धान्त के जन्म लेने के समय का वर्णन करते हुए लिखा है : जब मैं 1845 ई. के बसन्त में ब्रुशेल्स गया, तो मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के मूल विचारों को अन्तिम विकसित रूप में मेरे सामने रक्खा, जो थे : प्रत्येक ऐतिहासिक युग में आर्थिक उत्पादन और उसका अवश्य अनुगामी सामाजिक ढाँचा उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास के आधार होते हैं, और इसीलिए सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है–समसामयिक विकास की भिन्न-भिन्न मंजिलों में शोषितों और शोषकों के बीच, शासितों और शासकवर्गों के बीच का संघर्ष। यह संघर्ष अब ऐसे स्थान पर पहुँच गए हैं, जहाँ पर शोषित और उत्पीड़ित वर्ग–सर्वहारा, शोषक और उत्पीड़क वर्ग–बूर्ज्वाजी (पूँजीपति) से अपने को तब तक मुक्त नहीं कर सकते, जब तक कि साथ ही सारे समाज को सदा के लिए शोषण और उत्पीड़न से मुक्त नहीं करा देता। प्रूधों के विचारों का खंडन करते दरिद्रता के दर्शन की धुंध को दूर करते समय मार्क्स का दिमाग इस गम्भीर सत्य पर पहुँचा, जिसके आधार पर उन्होंने प्रूधों के दर्शन की दरिद्रता को दिखलाते हुए दरिद्रता के वास्तविक निदान और उपाय को बतलाया। पुस्तक की शैली बहुत ही स्पष्ट और गम्भीर है। इसमें पाठकों के दिमाग को थका देनेवाली शैली का पता नहीं लगता, जो कि बावर और स्टर्नर के जवाब में लिखते वक्त मार्क्स ने इस्तेमाल किया था। वहाँ दर्शन का जवाब दर्शन की भूमि पर उसी की भाषा में मार्क्स ने दिया था, जब कि यहाँ ऐतिहासिक भौतिकवाद के दर्शन को सर्वहारा की सबसे अधिक संख्या के लिए सुगम बनाया था। इस पुस्तक के दो भाग हैं : पहले भाग में मार्क्स अपने को समाजवादी अर्थात् अर्थशास्त्री के रूप में दिखलाते हैं, और दूसरे भाग में अर्थशास्त्री हेगेल के रूप में। मार्क्स ने सामाजिक विकास का वर्णन करते हुए लिखा है : "सभ्यता के आरम्भ के साथ उत्पादन, व्यवसाय, सामाजिक स्थिति और प्रतियोगिता (विरोध), एवं अन्त में संचित और प्रत्यक्ष श्रम के प्रतियोगों के ऊपर निर्मित होने लगा। बिना प्रतियोग के प्रगति नहीं हो सकती : सभ्यता ने शुरू से लेकर आज तक इस कानून को माना है। आज तक उत्पादक-शक्तियों का विकास वर्ग-विरोध की प्रधानता के आधार पर हुआ है।" मार्क्स ने आगे प्रूधों के विचारों का खंडन करने के बाद बतलाया कि उत्पादक शक्तियों का विकास (जिसने कि अंग्रेज मजूरों को 1770 ई. की अपेक्षा 1840 ई. में सत्ताईस गुने से भी अधिक उत्पादन बढ़ाने में समर्थ बनाया) वर्ग-विरोधों पर आधारित ऐतिहासिक स्थितियों के ऊपर अवलम्बित हैं : वैयक्तिक पूँजी का जमा होना, आधुनिक श्रम-विभाग, अराजकतापूर्ण होड़ और मजूरी व्यवस्था। अतिरिक्त श्रम के उत्पादन के लिए एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है, जो कि लाभ प्राप्त करे और दूसरा वर्ग लाभ को हाथ से खोए।

* "Systeme des contradictions economiques on philosophie de la misere" (Caris, 1846).

साम्यवाद के अन्तिम लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए मार्क्स ने बतलाया था कि माँग और पूर्ति के वीच ठीक तौर से संतुलन उसी समय सम्भव हो सकता था, जब कि उत्पादन के साधन सीमित थे, जव कि विनिमय बहुत थोड़ी सीमा के भीतर होता था, जबकि पूर्ति माँग पर अवलंबित थी, और उत्पादन उपभोग पर। बड़े पैमाने पर उद्योग-धंधे के विकास के साथ ऐसा होना असम्भव हो गया, क्योंकि बड़े पैमाने का उद्योग केवल हथियारों के कारण ही इसके लिए मजबूर हुआ कि माँग की प्रतीक्षा किए बिना बराबर बढ़ते हुए परिमाण में उत्पादन करता जाए, जिसके कारण उसे अनिवार्यतया आवश्यक और इसके बाद लगातार समृद्धि और अवसाद, संकट और अवरोध, नई समृद्धि इत्यादि का सामना करना पड़ेगा। आज के समाज में, जब कि उद्योग वैयक्तिक विनिमय, उत्पादन-सम्बन्धी अराजकता–जो कि बहुत-सी बुराइयों के स्रोत हैं–पर आधारित होते हुए साथ ही सभी प्रगतियों का कारण है; इसीलिए उसके सामने विकल्प है : आदमी को हमारे अपने समय के उत्पादन-साधनों द्वारा पहली शताब्दियों के ठीक अनुपात में प्राप्त करने की कोशिश करना, ऐसा सोच करनेवाला प्रतिगामी और उटोपियन (स्वप्नचारी) दोनों हैं : अथवा उसे अराजकता को हटाकर प्रगति करने का प्रयत्न करना होगा। "ऐसी अवस्था में उत्पादक शक्तियों को कायम रखने के लिए वैयक्तिक विनिमय को छोड़ना पड़ेगा।"

मार्क्स ने एक जगह लिखा है : "मेशिये प्रूधों आत्म-प्रशंसा करते समझते हैं कि मैंने अर्थशास्त्र और साम्यवाद दोनों का खण्डन कर दिया, लेकिन वस्तुतः वह दोनों से बहुत नीचे रहा। अर्थशास्त्रियों से नीचे इसलिए रहा, क्योंकि एक दार्शनिक के तौर पर अपने पाकेट में जादू का मन्तर रक्खे हुए वह सोचने लगा कि मुझे अर्थशास्त्र पर विस्तार के साथ जाने की आवश्यकता नहीं। समाजवादियों से नीचे इसलिए, कि उनके पास न पर्याप्त अन्तर्दृष्टि है और न इसके लिए पर्याप्त हिम्मत है कि अपने क़ो बूर्ज्वा क्षितिज के ऊपर कल्पना के क्षेत्र में उठा सकें। वह दोनों का संवाद करना चाहता है, लेकिन वस्तुतः वह सम्मिलित प्रमाद के सिवा और कुछ नहीं कर पाए। वह एक साइन्सवेत्ताके तौर पर बूर्ज्वा और सर्वहारा दोनों के ऊपर मँडराने की इच्छा रखता है, लेकिन वस्तुतः वह निम्न मध्यमवर्ग के व्यक्ति के सिवा और कुछ नहीं है, जो कि यहाँ-वहाँ पूँजी और श्रम के बीच, अर्थशास्त्र और समाजवाद के बीच लुढ़कते दिखाई देते हैं।" मार्क्स की इस कड़ी आलोचना से यह न समझना चाहिए कि वह प्रूधों की क्षमता को अस्वीकार करते थे। उन्हें इस बात का अफसोस था, कि प्रूधों निम्न मध्यमवर्गीय समाज की सीमा से आगे क्यों नहीं बढ़ता।

मार्क्स ने समस्या को साफ तौर पर रखते हुए लिखा है : "अगर सामन्तवादी उत्पादन का ठीक तौर से मूल्यांकन करना है, तो उसे विरोध पर आधारित उत्पादन के ढंग के तौर पर समझना होगा; यह देखना होगा कि कैसे इस विरोध के भीतर धन-वैभव पैदा किए गए, किस तरह उत्पादक शक्तियाँ वर्गों के संघर्ष के साथ-साथ विकसित हुईं, और किस तरह तब तक इन वर्गों में बुरा पक्ष–सामाजिक बुराई–लगातार उन भौतिक स्थितियों में बढ़ता गया, जब तक कि उसकी मुक्ति के लिए भौतिक स्थितियाँ परिपक्व नहीं हो गईं।" इसी तरह मार्क्स ने बूर्ज्वाजी (पूँजीवादी) व्यवस्था में भी उत्पादन के विकास को दिखलाते हुए बतलाया। जिन उत्पादन सम्बन्धों में अब वह विकास होने लगा, उनका स्वरूप सीधा-सादा और एक-सा नहीं, बल्कि दोहरा है–उन्हीं स्थितियों में, जिनमें कि वैभव पैदा होता है, दरिद्रता भी होती है, जैसे-जैसे पूँजीवाद का विकास होता है, वैसे ही वैसे उसी परिणाम में सर्वहारा की भी वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप इन दोनों वर्गों में संघर्ष होता है। अर्थशास्त्री पूँजीवादियों के शास्त्रकार हैं और कम्युनिस्ट तथा सोशलिस्ट सर्वहारा के। वह कम्युनिस्ट-सोशलिस्ट उटोपियन (स्वप्नचारी-अव्यावहारिक) हैं, जो कि उत्पीड़ित वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चिकित्सा-विज्ञान को ढूँढ़ने तथा शास्त्रप्रणालियों को तैयार करते हैं। लेकिन यह तभी तक, जब तक, कि सर्वहारा स्वयं एक वर्ग के रूप में काफी तौर से विकसित नहीं हो जाता, और बूर्ज्वा समाज की उत्पादक शक्तियाँ जब तक इतनी पर्याप्त विकसित नहीं हो जातीं कि वह सर्वहारा की मुक्ति और नये समाज के निर्माण के लिए आवश्यक भौतिक स्थितियों को प्रकट कर दे। लेकिन जितने परिमाण में इतिहास और उसके साथ सर्वहारा का संघर्ष आगे बढ़ता है, उतने परिमाण में उनके लिए आवश्यक नहीं रहता कि अपने दिमाग में साइन्स को ढूँढ़ें। तब उन्हें बस सिर्फ यही करने की आवश्यकता होती है कि जो कुछ उनकी आँखों के सामने हो रहा

है, उसका लेखाजोखा लगाएँ, और अपने को उसका हथियार बनाएँ। जब तक वह अभी अपने दिमाग में साइन्स की खोज करते शास्त्रों की रूपरेखा बना रहे हैं, जब तक वह अपने संघर्ष के केवल आरम्भ में ही हैं, तब तक वह केवल दुःख (दरिद्रता) ही देखते हैं और उन्हें इस दुःख का वह क्रान्तिकारी पहलू नहीं दिखाई पड़ेगा, जो कि पुराने समाज को उखाड़ फेंकेगा। इस क्षण से साइन्स ऐतिहासिक आन्दोलन (गति) की सचेतन उपज हो जाता है। यह अब शास्त्र और वाद न रहकर क्रांतिकारी बन जाता है।

मार्क्स ने अर्थशास्त्रीय तत्त्वों को सामाजिक सम्बन्धों का ही निराकार अथवा शास्त्रीय नाम बतलाते हुए कहा है–"हमारे सामाजिक सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के साथ घनिष्ठतया सम्बद्ध हैं। नई उत्पादक शक्तियों के पा लेने के बाद मानवजाति अपने उत्पादन के तरीके को बदल देती है। जिस तरीके से मानवजाति अपनी जीविका को प्राप्त करती है, उसी के अनुसार वह उसके अपने सामाजिक सम्बन्ध बदल देती है।..."

मार्क्स के अनुसार श्रम का विभाग प्रूधों के कथनानुसार अर्थशास्त्रीय तत्त्व नहीं है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक तत्त्व है, जो कि इतिहास के भिन्न-भिन्न रूप लेता रहा है। बूर्ज्वा अर्थशास्त्र के अनुसार फैक्टरी पूँजीवाद के अस्तित्व का कारण है, लेकिन फैक्टरी मजदूरों के बीच मित्रतापूर्ण समझौते के आधार पर अथवा पुराने शिल्पी-संघों की गोद में नहीं पैदा हुई। आजकल की फैक्टरियों के मालिक पुराने शिल्पी-संघों के स्वामी नहीं बने, बल्कि व्यापारियों ने उन्हें उद्योगपति बन करके सँभाला। इसी तरह होड़ और इजारेदार भी प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक तत्त्व है। होड़ औद्योगिक महत्त्वाकांक्षा के कारण नहीं, बल्कि व्यापारिक महत्त्वाकांक्षा के कारण होती है। इसका सम्बन्ध उत्पादन से नहीं, बल्कि लाभ-शुभ से है। यह मानव की आत्मा के लिए आवश्यक नहीं है, जैसा कि प्रूधों मानते हैं, बल्कि यह 18वीं शताब्दी में उत्पन्न होनेवाली ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम है, जो कि ऐतिहासिक कारणों से 19वीं सदी में लुप्त भी हो सकती है।

प्रूधों की तरह विचार रखनेवालों का ख्याल था कि भू-सम्पत्ति का आरम्भ ऐतिहासिक नहीं, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और नैतिक विचारों पर आधारित है, धन के उत्पादन से उसका बहुत दूर का सम्बन्ध है। जमीन की लगान प्रकृति के साथ अधिक घनिष्ठता के साथ मनुष्य को जोंड़ती है। इसका खंडन करते हुए मार्क्स ने कहा–"हर एक युग में सम्पत्ति का विकास भिन्न-भिन्न तरह तथा भिन्न-भिन्न सामाजिक सम्बन्धों के अनुसार होता है। इसीलिए बूर्ज्वा-सम्पत्ति की व्याख्या इसके सिवा और कोई नहीं है. कि बूर्ज्वा-उत्पादन के सभी सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या की जाय।" भूमि की लगान, पूँजी के लाभ की प्रचलित दर और पूँजी के सूद को लेते हुए उत्पादन के व्यय के काट देने के बाद कृषि की उपज का अतिरिक्त मूल्य निश्चित सामाजिक सम्बन्धों के बीच आरम्भ हुआ और वह केवल उन्हीं निश्चित सामाजिक सम्बन्धों के भीतर ही आरम्भ हो सकता था। खेत की लगान बूर्ज्वा रूप में जमींदारी है, अर्थात् बूर्ज्वा उत्पादन की स्थितियों के अधीन सामन्ती सम्पत्ति है।

अन्त में मार्क्स मजूर-संघों और हड़तालों के ऐतिहासिक महत्त्व को सिद्ध करते हैं, जिन्हें कि प्रूधों मानने से इन्कार करता है। बूर्ज्वा अर्थशास्त्री और समाजवादी भी यद्यपि भिन्न-भिन्न कारणों से मजूर-संघों और हड़तालों जैसे हथियारों को इस्तेमाल करने का विरोध करते हैं, लेकिन मजूर-संघ और हड़तालें बड़े पैमाने के उद्योग के विकास के साथ-साथ और समानान्तर अवश्य आगे बढ़ती रहेंगी। होड़ के कारण अपने हितों में बिलगाव रखते भी सभी मजूदरों को अपनी मजूदरी कायम रखना एक-सा जरूरी है; जिसपर कोई भी चोट पहुँचने पर उन सबके भीतर प्रतिरोध की भावना पैदा होती है। इसके कारण वह अपनी मजूर-सभाओं में संगठित होते हैं; जो भावी संघर्ष के लिए उपयोगी सभी गुणों को अपने भीतर रखती हैं, ठीक उसी तरह, जिस तरह कि सामन्ती राजाओं और ठाकुरों के विरुद्ध पूँजीवादियों (बूर्ज्वाजी) ने एक वर्ग के तौर पर अपने को संगठित किया था और जिसके बल पर उन्होंने सामन्तवादी समाज को पूँजीवादी बूर्ज्वा समाज में रूपान्तरित किया। बूर्ज्वाजी और सर्वहारा के बीच का विरोध एक वर्ग का दूसरे वर्ग के साथ का संघर्ष है–ऐसा संघर्ष, जो कि अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर पूर्ण क्रान्ति का रूप लेगा। सामाजिक आन्दोलन अपने से राजनीतिक आन्दोलन को अलग नहीं कर सकता, क्योंकि कोई भी ऐसा राजनीतिक आन्दोलन नहीं है, जो कि साथ ही साथ सामाजिक आन्दोलन न हो। राजनीतिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप पुरानी सामाजिक व्यवस्था टूटती है, यह आज हम भारतवर्ष

की रियासतों में देख रहे हैं, जहाँ सामन्तवादी स्वार्थों—जागीरों के निरंकुश शासन, विलास—को उठाकर अब सेठों की सरकार अपना आधिपत्य कायम कर रही है, जिसके फलस्वरूप सामन्तों का ही रूपरंग नहीं खतम हो रहा है, बल्कि उनके पीछे जीनेवाले लाखों लग्गू-भग्गुओं में जबर्दस्त सामाजिक परिवर्तन हो रहा है। रानियाँ और ठकुरानियाँ अब पुराने विचारों को रखते भी पुराने जीवन को चालू नहीं रख सकतीं। एक समय के परमस्वन्तत्र अन्नदाता अब ग्राम पंचायतों के सरपंच बनकर दूसरे पंथों के साथ दरियों पर बैठ रहे हैं। मार्क्स ने बतलाया कि उसी समाज का सामाजिक विकास राजनीतिक क्रान्ति नहीं रहेगा, जिसमें वर्ग-भेद नहीं है। जब तक वर्गहीन समाज उपस्थित नहीं होता, तब तक सभी आम सामाजिक परिवर्तनों के समय सामाजिक साइन्स का नारा होगा—"विजय या मृत्यु। खूनी युद्ध या कुछ नहीं। यही समस्या का निर्दय रूप है।" मार्क्स ने जार्ज सैंड के इन शब्दों को उद्धृत करते हुए प्रूधों के उत्तर को समाप्त किया।

मार्क्स ने इस पुस्तक में अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक भौतिकवाद की विवेचना और विकास किया और साथ ही वह जर्मन-दर्शन की भी खबर लेते हुए हेगेल तक पहुँचकर फ़्वारबाख़ से आगे बढ़ गए। उन्होंने बतलाया कि हेगेलीय सम्प्रदाय अब निश्चय ही दिवालिया बन गया है। फ़्वारबाख़ के दर्शन में 'शक्तिदायक सिद्धान्त' के अभाव की उन्होंने फिर शिकायत की।

मार्क्स ने अपने इस ग्रंथ में यह बतलाया कि हम उक्त निष्कर्ष पर 'युद्ध चिन्तन' द्वारा नहीं पहुँचते (बल्कि धर्मकीर्ति के शब्दों में 'यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्'—जब पदार्थों और वास्तविकता का निष्ठुर फैसला यही है, तो हम उससे इन्कार करनेवाले कौन ?)। इस प्रकार मार्क्स ने भौतिकवाद को ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक शैली प्रदान की, और साथ ही एक शक्तिदायक सिद्धान्त भी जो कि समाज की केवल व्याख्या कर छुट्टी नहीं ले लेता, बल्कि सर्वहारा की नई शक्ति द्वारा उसके रूपांतरित करने का रास्ता दिखलाता है।

4. ड्वाशे ब्रूसेलेसर जाटुइंग' (1847 ई.)

अपने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित करने में मार्क्स को कम कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। ब्रुशेल्स और पेरिस दोनों में किसी प्रकाशक के न तैयार होने पर छपाई का दाम उन्हें अपनी पाकिट से देना पड़ा। 1847 ई. की गर्मियों (वर्षा) में जो पुस्तक प्रकाशित हुई, तब 'ड्वाशे ब्रूसेलेसर जाइटुंग' नाम का एक पत्र भी निकाला, जिसके द्वारा अपने विचारों को लोगों के सामने रख सकते थे। 1847 ई. के आरम्भ में अडेलवेर्ट फान-बोर्नस्टेट के सम्पादकत्व में यह पत्र सप्ताह में दो बार निकलने लगा। बोर्नस्टेट पहले पेरिस में 'फोरवाड्र्स' का सम्पादन करता था और बाहर से उसका रूप चाहे राजनीतिक निर्वासित का था, लेकिन वह आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों की सरकारों के लिए खुफिया का काम करता था, जिसका पता बहुत पीछे बर्लिन और बीना के अभिलेख-संग्रहों से लगा, यद्यपि अभी भी यह स्पष्ट नहीं हो सका कि ब्रुशेल्स में रहते हुए भी वह इस काम को कर रहा था या नहीं। ब्रुशेल्स में रहनेवाले प्रशिया के राजदूत ने उसके पत्र की निन्दा बेल्जियम सरकार से की, इससे कम से कम इस काल में उसके खुफिया होने में सन्देह पैदा हो जाता है। लेकिन यह लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए भी हो सकता था। लोगों को सन्देह था, पर जो उपयोगी काम वह उस वक्त कर रहा था, उसके कारण मार्क्स इस सन्देह को महत्त्व नहीं देता था। इस पत्र में मार्क्स और एंगेल्स के कई महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते रहे। भारत में भी हिन्दू या मुसलमान समाजवाद के गीत गानेवालों का अभाव नहीं है। उनका यह प्रयत्न समाजवाद के हित नहीं, अहित के लिए ही जाने या अनजाने होता है। कोलोन से निकलनेवाले 'राइनिशर व्योवाख्तेर' पत्र ने भी ईसाई समाजवाद का गुन गाते हुए साम्यवाद (कम्युनिज्म) को अनावश्यक बतलाया था, जिसका जवाब देते हुए मार्क्स ने लिखा था—"ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्तों के प्रयोग के लिए अठारह सौ वर्ष मिले थे, जिनमें उन्हें विकसित किया जा सकता था, अब उन्हें प्रशियन धार्मिक-कमिश्नरों के हाथों आगे विकसित होने की आवश्यकता नहीं है। ईसाइयत (हिन्दू धर्म और इस्लाम को भी ले लीजिए) के सामाजिक सिद्धान्त पुराने युग में दास-प्रथा को उचित बतलाते थे, मध्ययुग में वह किसानों की अर्धदासता की प्रशंसा करते थे और आवश्यकता पड़ने पर आज भी वह सर्वहारा के उत्पीड़न को उचित

कहने के लिए विल्कुल तैयार हैं।··· ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त शासक और उत्पीड़ित वर्ग को कायम रखना आवश्यक वतलाते हैं, और उत्पीड़ित वर्ग को वह भी कुछ दे सकते हैं वह यही कि शासक वर्ग को उनके प्रति दया दिखलानी चाहिए। ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त सभी पापों की क्षतिपूर्ति को स्वर्गराज्य में स्थानांतरित करते हैं, और इस प्रकार पृथ्वी पर इस पापों के बने रहने को उचित बतलाते हैं। ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त घोषित करते हैं कि उत्पीड़ितों के विरुद्ध उत्पीड़कों के सारे आततायी कृत्य या तो मूल या किसी दूसरे पाप के उचित दंड हैं, या ईश्वर अपनी अगम बुद्धि से वैसा दुःख देना पसन्द करता है। ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त कायरता, कमीनेपन, त्याग, आत्मसमर्पण और वंशगतता–संक्षेप में आततायी के सभी गुणों का उपदेश करते हैं, लेकिन सर्वहारा आततायी के तौर पर अपने साथ व्यवहार होने देने के लिए तैयार नहीं है, और उसे अपनी रोज की रोटी से भी अधिक साहस, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त वंचना और पाखण्ड से भरे हुए हैं, जब कि सर्वहारा क्रान्तिकारी है।"

8

कम्युनिस्ट लीग (1947-48 ई.)

1847 ई. में ब्रुशेल्स में कम्युनिस्टों की संख्या काफी हो गई थी, यद्यपि यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स की तुलना में वहाँ का कोई नेता नहीं आ सकता था। मोजेज हेस और विलहेल्म वोल्फ इस समय वहीं रहते थे और उनके लेख भी 'ड्वाशे ब्रुसेलेसर जाटुइंग' में निकला करते थे। हेस अपने पुराने दर्शन के जाल से बाहर नहीं निकल पाया था, और 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' के निकलने के समय तक वह मार्क्स विल्कुल दूर हो गया था। विलहेल्म वोल्फ 1846 के बसन्त में ब्रुशेल्स आया। इस प्रकार उसकी मार्क्स-एंगेल्स से मित्रता बहुत पीछे शुरू हुई, लेकिन वह उसके मरने के समय तक वैसी ही बनी रही। वोल्फ स्वतंत्र-चेता नहीं था, लेकिन लोकप्रिय शैली में लिखनेवाला वह एक सिद्धहस्त लेखक था। वह सिलेसिया के किसानों में पैदा हुआ था, और बड़ी कठिनाइयों से संघर्ष करते युनिवर्सिटी में पहुँचा था, जहाँ उसे अपने वर्ग के उत्पीड़कों के प्रति अपार घृणा पैदा हो गई, जिनमें महान् विचारकों और कवियों की कृतियाँ भी सम्मिलित थीं। कितने ही वर्षों तक वह सिलेसिया के एक गढ़ी से दूसरी गढ़ी में घसीटा जाता रहा। फिर वह किसी के यहाँ घरेलू अध्यापक बन गया, लेकिन उस समय भी वही नौकरशाही तथा सेन्सर के खिलाफ छिट-पुट संघर्ष करता रहा। अन्त में जब उसे फँसाकर प्रशिया जेल में सड़ाने की नौबत आई, तो वह देश छोड़ने के लिए मजबूर हुआ। ब्रेस्ला (सिलेसिया) में रहते समय लासल के साथ उसकी मित्रता हो गई थी। वोल्फ बड़े सुन्दर स्वभाव का पुरुष था। उसे कोई भी प्रलोभन नहीं था, वह आजीवन एक निःस्वार्थ निर्भीक क्रांतिकारी योद्धा रहा।

ब्रुशेल्स में मार्क्स और एंगेल्स की मंडली में फर्डिनेंड वोल्फ भी था, यद्यपि उसके साथ दूसरे वोल्फ जैसी मार्क्स की घनिष्टता नहीं थी। इसी तरह एन्स्ट ड्रोंके, जार्ज वीर्थ भी थे। वीर्थ एक वास्तविक कवि था। वह तरुणाई में ही मर गया। उसके गीतों को किसी ने जमा नहीं किया, जिनसे लड़ाकू सर्वहारा की आत्मा बोल रही थी। ब्रुशेल्स पूँजीवादी वेल्जियम की राजधानी थी, जहाँ का राजतंत्र भी बूर्ज्वा था। इस वक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यूरोप में वह सबसे उपयुक्त स्थान था, क्योंकि पेरिस में प्रतिक्रियावाद ने अपना आधिपत्य जमा रक्खा था। वेल्जियम की 1830 ई. वाली क्रांति में भाग लेनेवालों के साथ मार्क्स और एंगेल्स का अच्छा सम्बन्ध था। जर्मनी में खास कोलोन में भी मार्क्स के नये और पुराने मित्र काम कर रहे थे। पेरिस में एंगेल्स ने जनतांत्रिक समाजवादी पार्टी से विशेषकर उसके साहित्यकार लुई ब्लांक और फर्दिनान्द फूलोकोन से सम्बन्ध स्थापित किया था–फूलोकोन पार्टी के मुखपत्र 'रिफार्म' (सुधार) का सम्पादक था। इंगलैंड के चार्टिस्ट-आन्दोलन के कार्यकर्ता जुलियन हर्न (नार्दन स्टार सम्पादक) और एर्नेस्ट जान्स से उनका घन्ष्ठि सम्बन्ध था।

1. लीग का काम

जनवरी, 1847 ई. में कम्युनिस्ट लीग ने एक और महत्त्वपूर्ण कदम आगे बढ़ाया, जब कि उसने बिखरे हुए लोगों और संगठनों को अधिक सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। 'न्यायी लीग' के बारे में हम पहले बतला चुके हैं, जिसकी नीति को मार्क्स पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने घटनाओं के दस वर्ष बाद 'न्यायी लीग' के बारे में कहा था : "एंग्लो-फ्रेंच समाजवाद तथा जर्मन-दर्शन की माजून (सम्मिश्रण) के खिलाफ हमने कितने ही छपे या लिथोग्राफ किए पम्पलेटों को निकालकर लीग की नीति की निष्ठुर आलोचना की और उसकी जगह एकमात्र स्थायी आधार के तौर पर बूर्ज्वा आर्थिक ढाँचे के भीतर वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि रखते लोगों के लिए उसकी सुगम शैली में व्याख्या की और यह समझाया कि उटोपियन व्यवस्था के लिए काम करने की आवश्यकता नहीं है, उसी में सजग होकर हाथ बँटाना चाहिए।"

जनवरी 1847 ई. में लीग ने अपनी केन्द्रीय कमेटी के एक सदस्य घड़ी-साज जोजेफ माल को ब्रुशेल्स भेजकर मार्क्स और एंगेल्स से प्रार्थना की कि आप हमारे संगठन में शामिल हों, क्योंकि हम आपके विचारों को स्वीकार करना चाहते हैं। मार्क्स ने इसे उन्हीं पम्फलेटों का प्रभाव समझा था, जिनमें से आज कोई भी काल की गति से बचकर हमारे पास नहीं पहुँचा। सरल भाषा और शैली में लिखे होने से मार्क्स के इन पम्फलेटों का महत्त्व उसी समय नहीं, बल्कि आज के लिए भी हो सकता था। 'न्यायी लीग' की शाखाएँ इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि कई देशों में थीं, जिनमें लन्दन की लीग ज्यादा सजीव और सचेष्ट थी। जूरिच और पेरिस के वातावरण में उसको उतनी सफलता नहीं मिली थी। 'न्यायी लीग' की स्थापना यद्यपि भिन्न-भिन्न देशों में बिखरे जर्मन कमकरों के लिए हुई थी, लेकिन लन्दन में इसने और जातियों के कमकरों से मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले लिया था। सभी देशों के राजनीतिक निर्वासितों से इसका सम्बन्ध था। शापेर, बावर और मोल जैसे पुराने नेताओं के अतिरिक्त सूक्ष्म चित्रकार कार्ल पफांडर हाइनब्रोन और थुरिंगिया का दर्जी जार्ज एकारियस भी इनमें शामिल थे।

मोल ने लीग की ओर से अपने उद्देश्यों की घोषणा तैयार करने के लिए ब्रुशेल्स जाकर मार्क्स को और पीछे पेरिस में आ एंगेल्स को अधिकार दिया। यह अधिकार 20 जनवरी, 1847 में शापेर के हाथों लिखा गया था। इसमें मोल को सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर सविस्तार सूचना देने तथा लीग की स्थिति बतलाने के बारे में कहा गया था, लेकिन मोल वह नहीं कर सका। उसने मार्क्स से यही प्रार्थना की कि आप लीग में शामिल हों, और उनके पहले के आक्षेपों को हटाते हुए यह सूचित किया कि लीग की कांग्रेस मार्क्स-एंगेल्स के आलोचनात्मक विचारों को स्वीकार करने और उसे लीग के सिद्धान्तों के तौर पर एक सार्वजनिक घोषणा के रूप में सम्मिलित करने के ख्याल से लन्दन में होने जा रही है। उसने मार्क्स और एंगेल्स को जोर देकर लीग में शामिल होने के लिए कहा कि इसी से पुराने विचारों को हटाया जा सकता है। लीग की प्रार्थना स्वीकार कर मार्क्स और एंगेल्स उसमें शामिल हो गए। 1847 ई. के ग्रीष्म में लीग की जो कांग्रेस हुई, वह गुप्त रीति से काम करने के लिए मजबूर एक जन-तांत्रिक संगठन से अधिक कुछ नहीं थी। यद्यपि उसने सभी तरह के षड्यंत्रों की भावना को छोड़ दिया था। लीग का संगठन कम्यूनों (संगतों) पर आधारित था, जो कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक दस सदस्यों के चक्करों, मुख्य-चक्करों, केन्द्रीय नेतृत्व और कांग्रेस के रूप में संगठित थी। इसका लक्ष्य था बूर्ज्वा को खतम करना, सर्वहारा के शासन को स्थापित करना, वर्ग-विरोधों पर आधारित पुराने समाज को नष्ट करना और बिना वर्ग और बिना वैयक्तिक सम्पत्तिवाले एक नये समाज का निर्माण करना।

अब से 'न्यायी' लीग का नाम कम्युनिस्ट लीग हो गया। उसके नियमों-उपनियमों को प्रत्येक कम्यून के पास पहले वाद-विवाद के लिए भेजा गया, जिसका अन्तिम निर्णय कांग्रेस के ऊपर छोड़ा गया, जो कि उसी साल के अन्त में बुलाई जानेवाली थी, और जिसे ही लीग के नये प्रोग्राम पर विचार करना था। प्रथम कांग्रेस में मार्क्स मौजूद नहीं थे, लेकिन पेरिस के कम्युनिस्टों के प्रतिनिधि के तौर पर एंगेल्स और ब्रुशेल्स के प्रतिनिधि के तौर पर विलहेल्म वोल्फ उसमें शामिल हुए थे।

लीग ने सबसे पहले ब्रुशेल्स में जर्मन कमकरों की शिक्षण-सभाएँ कायम कीं, क्योंकि इसके द्वारा खुली तौर से प्रचार करने का अवसर मिलता और साथ ही वहाँ से काम के लिए आगे कार्यकर्ता मिलते। इन सभाओं के काम करने का ढंग था : हफ्ते में एक दिन वाद-विवाद के लिए था, और दूसरा दिन सामाजिक मेल-मिलाप के लिए, जिसमें गायन, कविता-पाठ आदि होते थे। सभाओं ने सब जगह पुस्तकालय खोले थे, जहाँ पर कि कमकरों को कम्युनिज्म (साम्यवाद) के प्रारंभिक सिद्धान्तों की शिक्षा भी दी जाती थी।

इसी योजना के अनुसार उस साल अगस्त के अन्त में ब्रुशेल्स में जर्मन-कमकर सभा कायम की गई। मोजेज हेस और वालौ इसके दो अध्यक्ष थे और विलहेल्म वोल्फ सेक्रेटरी। जल्दी ही इसके एक सौ से अधिक सदस्य हो गए और बुध और शनिवार की शाम को उसकी बैठकें हुआ करतीं : बुध को सर्वहारा के हित सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर बहस होती और शनिवार को वोल्फ सप्ताह की घटनाओं की राजनीतिक आलोचना करता। 27 सितम्बर (1847 ई.) को सभा ने दूसरे देशों के मजदूरों के साथ अपने भाइचारे के भावों को प्रदर्शित करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय दावत दी। उस समय सार्वजनिक सभाओं में पुलिस के हस्तक्षेप का डर रहता था, जिससे बचने के लिए इस तरह की दावतें दी जाती थीं। लेकिन, उक्त दावत का विशेष उद्देश्य था, मार्क्स और एंगेल्स के प्रभाव को कम करना। उसी समय एंगेल्स ब्रुशेल्स में मौजूद थे, जिसके कारण दावत के संगठकों को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। एंगेल्स को सभा ने अपने दो उपसभापतियों में से एक निर्वाचित किया। 132 अतिथि इस दावत में शामिल हुए थे, जो जाति के तौर पर बेल्जियम, जर्मन, स्विस, फ्रेंच, पोल, इतालियन और एक रूसी भी था। दावत में कितने ही भाषण हुए और निश्चय हुआ कि लन्दन के बिरादरी जनतांत्रिकों (Fraternal Democrats) की तरह बेल्जियम सुधार-मित्र-संघ बनाया जाय। संगठन के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ, उसमें एंगेल्स भी चुने गए, लेकिन उन्हें जल्दी ही ब्रुशेल्स छोड़ना पड़ा, जिसपर उन्होंने योट्रेंड से सिफारिश की, कि मेरी जगह मार्क्स को ले लिया जाय और यह भी बतलाया जाय, कि अगर 27 सितम्बर को सभा में मार्क्स मौजूद होते, तो निस्संदेह उन्हें निर्वाचित किया गया होता : "इसलिए ऐसा करने का मतलब यह मैं नहीं होगा कि कमीशन में मेरा स्थान मार्क्स ले रहे हैं, वल्कि इसके विरुद्ध असली बात यह है कि सभा में यह उनका प्रतिनिधित्व कर रहा था।" अन्त में जब सार्वदेशिक एकता के लिए जनतांत्रिक सभा 7-15 नवम्बर को बनाई गई, तो इम्बेर्ट और मार्क्स उप-सभापति चुने गए, मेलिनेट आनरेरी सभापति और जोट्रेड कार्यकारी सभापति। सभा की नियमावली पर बेल्जियम, जर्मन, फ्रेंच और पोल सब मिलाकर करीब 60 आदमियों के हस्ताक्षर थे। जर्मन हस्ताक्षर करनेवालों में मार्क्स, मोजेज हेस, जार्ज वीर्थ, दोनों वोल्फ, स्टिफन बोर्न और बोर्नस्टेट भी थे।

नई सभा (एसोसिएशन) ने सबसे पहली जो बड़ी मीटिंग 29 नवम्वर (1847 ई.) को पोल-क्रांति के वार्षिकोत्सव मनाने के लिए की, उसमें जर्मन सदस्यों की ओर से फेनबोर्न ने भाषण दिया, जिसपर लोगों ने बड़ी हर्षध्वनि की। मार्क्स उस समय वहाँ मौजूद नहीं थे। वह बिरादरी जनतांत्रिक सभा के प्रतिनिधि के तौर पर लन्दन गए हुए थे, जहाँ पर भी पोल-क्रांति मनाने के लिए ही सभा हो रही थी। इस समय जो व्याख्यान उन्होंने दिया था, उसमें उन्होंने सर्वहारा की वात और क्रांतिकारी स्वर में कहा था : "प्राचीन पोलैंड लुप्त हो गया और हमें उसके पुनः लौट आने की इच्छा नहीं। किन्तु यह केवल पुराने पोलैंड की ही बात नहीं, बल्कि पुराने फ्रांस और पुराने इंगलैंड, वस्तुतः सभी पुराने लुप्त समाज के लिए यही बात है। फिर भी पुराने समाज का लुप्त होना उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता, जिनका उसके साथ कुछ लुप्त नहीं होता, और सभी देशों के लोगों की बहुसंख्या की यही स्थिति है।" मार्क्स ने इस व्याख्यान में बतलाया कि बूर्ज्वाजी के ऊपर सर्वहारा की विजय होने पर सभी उत्पीड़ित जातियों को स्वतन्त्रता मिलेगी। अंग्रेज सर्वहारा की अंग्रेज बूर्ज्वाजी पर विजय, सभी उत्पीड़कों के ऊपर सभी उत्पीड़ितों की विजय होगी। पोलैंड, पोलैंड में मुक्त नहीं होगा, बल्कि इंगलैंड में। अगर चार्टिस्ट अपने देश में अपने शत्रुओं को हरा सके, तो वह सारे बूर्ज्वा समाज को हराएँगे।

जो अभिभाषण मार्क्स ने बिरादराना जनतांत्रिकों के हाथ में दिया था, उसका स्वागत भी उसी तरह हुआ था : "आपके प्रतिनिधि, हमारे मित्र और भाई मार्क्स आपको बतलाएँगे कि हमने पढ़े जाने पर उसका कितने

उत्साह के साथ स्वागत किया। सभी आँखें आनन्द से चमकने लगीं, सभी कंठ स्वागत के लिए बोल उठे, और आपके प्रतिनिधि की ओर बिरादराना तौर से सभी हाथ आगे बढ़े।...राजाओं के षड्यंत्रों का जवाब हमें लोगों के षड्यंत्र द्वारा देना होगा।...हमारा दृढ़ विश्वास है कि अब हमें वास्तविक जनता सर्वहारा को सम्बोधित करना है–उन मनुष्यों को जो कि रात-दिन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के भार के नीचे दबे खून-पसीना एक कर रहे हैं–अगर हम आम भ्रातृत्व पैदा करना चाहते हैं।...हम जल्दी ही देखेंगे, बल्कि इसी वक्त देख रहे हैं, कि भाईचारे के झंडाबरदार, मानवजाति के मनोनीत वीर इसी सड़क द्वारा झोंपड़ों, मिस्त्रीखानों, हलों, बहरेनों और फैक्टरियों से आ रहे हैं।" इसके बाद बिरादराना जनतांत्रिकों ने सितम्बर 1848 में ब्रुशेल्स में एक आम जनतांत्रिक कांग्रेस करने का प्रस्ताव किया–सितम्बर 1848 में वहीं पर पूँजीपतियों ने अपनी मुक्त व्यापार कांग्रेस की थी।

इस सभा के अतिरिक्त मार्क्स के लन्दन जाने का एक और भी उद्देश्य था। जिस हाल में पोल-क्रांति का वार्षिकोत्सव मनाया गया था, उसी में कम्युनिस्ट-कमकर शिक्षा-लीग का हेडक्वार्टर था, जिसे 1840 ई. में शापेर, बावर, मोल ने स्थापित किया था। पोल-क्रांति वार्षिकोत्सव की बैठक के बाद इसी जगह कम्युनिस्ट लीग की दूसरी कांग्रेस हुई, जिसमें नई नियमावली को निश्चित तौर से स्वीकार करके नये प्रोग्राम पर बहस करनी थी। एंगेल्स भी इस कांग्रेस में मौजूद थे। 27 नवम्बर को उन्होंने पेरिस छोड़ा और बेल्जियम के बन्दरगाह ओस्टेंड में मार्क्स से मिलकर दोनों साथ खाड़ी पार कर इंगलैंड गए। कांग्रेस में दस दिनों तक वाद-विवाद और विचार-विनिमय होता रहा। इसके बाद मार्क्स और एंगेल्स को कम्युनिज्म (साम्यवाद) के मौलिक सिद्धान्तों को एक सार्वजनिक घोषणा-पत्र के तौर पर तैयार करने का काम सौंपा गया।

2. कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र

कम्युनिस्ट लीग की द्वितीय कांग्रेस ने इस प्रकार उस अमर घोषणा को तैयार करने का निश्चय किया, जो सर्वहारा की अन्तिम विजय तक पथ-प्रदर्शन का काम देता रहा और रहेगा, तथा साथ ही जिसमें भविष्य के नव-निर्माण का मार्ग भी निर्दिष्ट है। दिसम्बर के मध्य में मार्क्स ब्रुशेल्स लौट आए और एंगेल्स ब्रुशेल्स होते पेरिस चले गए। दोनों ही घोषणा तैयार करने में जल्दी का ख्याल नहीं कर रहे थे, उनके पास दूसरे काम भी थे; लेकिन कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय कमेटी देर करने के लिए तैयार नहीं थी। उसने 24 जनवरी, 1848 को ब्रुशेल्स की जिला कमेटी को कड़ाई के साथ सावधान करते हुए कहा कि हम नागरिक मार्क्स के खिलाफ कदम उठाने के लिए मजबूर होंगे, यदि उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र को, जिसे तैयार करने की जिम्मेवारी उन्होंने अपने ऊपर ली है–1 फरवरी तक तैयार करके केन्द्रीय कमेटी के हाथ में नहीं दे देते। लेकिन सारी धमकी के बाद भी घोषणा-पत्र एक महीने में तैयार नहीं हो सका। देर होने का कारण मार्क्स का स्वभाव हो सकता था, क्योंकि वह किसी काम को आधे दिल से करना नहीं जानते थे। यह भी हो सकता है कि एंगेल्स उस समय उनके पास नहीं थे। लेकिन, उधर लन्दन में केन्द्रीय कमेटी अधीर हो गई, जब उसने सुना कि मार्क्स ब्रुशेल्स में प्रचार में बड़े जोर-जोर के साथ लगे हुए हैं।

9 जनवरी, 1848 को जनतांत्रिक सभा में मार्क्स ने मुक्त व्यापार पर एक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान को वह ब्रुशेल्स की मुक्त-व्यापार-कांग्रेस में देना चाहते थे, लेकिन उनको बोलने का अवसर नहीं दिया गया। उन्होंने मुक्त व्यापारियों की धोखा-धड़ी का पर्दाफाश किया, जो कि कमकरों के हित की बात मौके-बेमौके किया करते हैं। मार्क्स ने बतलाया कि मुक्त व्यापार कमकरों की नहीं, बल्कि पूँजी की मुक्ति है, जो कि राष्ट्रों की इस सीमाओं को तोड़ फेंकना चाहती है, क्योंकि वह उसकी शक्तियों को स्वेच्छापूर्वक काम करने में बाधा देती है। मुक्त व्यापार राष्ट्रों का ध्वंस करता है, और बूर्ज्वाजी तथा सर्वहारा (प्रोलैतारियत) के बीच के विरोध को और तीव्र बनाता है, और इस प्रकार वह सामाजिक क्रांति की गति को तेज करता है। इस क्रांतिकारी अर्थ में मार्क्स मुक्त व्यापार के पक्ष में थे। एंगेल्स की तरह मार्क्स रक्षित व्यापार के विरुद्ध मुक्त व्यापार के प्रश्न को शुद्ध क्रांतिकारी दृष्टि से देखते थे। मार्क्स के इस भाषण का जनतांत्रिक सभा के सदस्यों ने बड़ा

स्वागत किया और उन्होंने उसे फ्रेंच और फ्लैमिश भाषाओं में अपनी ओर से छापने का निश्चय किया।

उक्त व्याख्यान से भी अधिक तथा सदा के महत्त्व का एक व्याख्यान उसी समय जर्मन-कमकर-सभा में मार्क्स ने दिया था, जिसमें मजूरी-श्रम और पूँजी की व्याख्या की थी। इस भाषण में मार्क्स ने बतलाया कि मजूरी अपने द्वारा उत्पादित माल में मजूरों का हिस्सा नहीं है, बल्कि वह उस वक्त की वर्तमान मालों का वह हिस्सा है, जिससे कि पूँजीपति उत्पादक श्रम-शक्ति की कुछ मात्रा को खरीदता है। उन्होंने समझाया कि श्रम-शक्ति का दाम दूसरे पण्यों के दाम की तरह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके उत्पादन में कितना खर्च हुआ। मामूली श्रम-शक्ति के उत्पादन का खर्च है : अपने अस्तित्व को कायम रखने तथा अपनी जाति (सन्तान) को जारी रखने में समर्थ होने के लिए आवश्यक साधनों को कमकरों के लिए प्रस्तुत करने पर जो खर्च आता है। इन्हीं खर्चों का दाम है मजूरी। दूसरे सभी पण्यों (सौदों) के दामों की तरह यह दाम भी बाजार की तरह प्रतियोगिता के उतार-चढ़ाव के अनुसार खर्च से कभी नीचा होता है, लेकिन इन उतार-चढ़ावों की सीमा के भीतर रहते यह प्रायः निम्नतम मजूरी के करीब होता है।

इसके बाद मार्क्स ने पूँजी को लिया। बूर्ज्वा अर्थशास्त्री कहते हैं, कि पूँजी संचित श्रम का ही नाम है। मार्क्स ने पूछा : "एक (हब्शी) दास क्या है, एक रंगवाली जाति का एक मानव। एक व्याख्या उतनी ही अच्छी है, जितनी दूसरी। नीग्रो एक नीग्रो है, लेकिन कुछ परिस्थितियों में वह दास बन सकता है। कपास कातनेवाली मशीन कपास कातने के लिए एक मशीन है, वह निश्चित स्थितियों में ही पूँजी का रूप लेती है। बिना उन परिस्थितियों के वह उसी तरह पूँजी नहीं बन सकती, जिस तरह कि सोना, सिक्का या चीनी-चीनी का दाम। पूँजी एक सामाजिक उत्पादन साधन, बूर्ज्वा समाज का एक उत्पादक सम्बन्ध है। सौदे की एक मात्रा, विनिमय मूल्य की मात्रा का एक परिमाण पूँजी का रूप लेता है, जबकि वह स्वतंत्र सामाजिक शक्ति के रूप में प्रकट होता है, अर्थात् जब समाज के एक भाग के तौर पर प्रकट होता है, और सीधे सजीव श्रम-शक्ति के साथ विनिमय द्वारा अपने को बढ़ाता है। पूँजी के अस्तित्व के लिए एक ऐसे वर्ग का वहाँ मौजूद होना आवश्यक है, जिसके पास श्रम (मेहनत) करने की क्षमता के सिवा और कोई चीज न हो। सीधे सजीव श्रम-शक्ति के ऊपर संचित, अतीत, बहिस्थापित श्रम की शक्ति पहले-पहल पूँजी के रूप में श्रम को इकट्ठा करती है। पूँजी इसे नहीं कहते कि संचित श्रम आगे और उत्पादन करने के लिए साधन के तौर पर सजीव श्रम-शक्ति की सेवा-सहायता करता है। पूँजी इस रूप में है कि संचित श्रम के विनिमय-मूल्य को कायम रखने और बढ़ाने के साधन के रूप में उसकी सजीव श्रम-शक्ति सेवा-सहायता करती है। पूँजी और श्रम-शक्ति एक-दूसरे पर अवलंबित, एक-दूसरे को परस्पर उत्पादित करते हैं।"

मार्क्स ने पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों की इस बात को भी गलत बतलाया कि पूँजी के विस्तार और विकास के साथ मजूरों की भी हालत बेहतर होती है। उन्होंने कहा कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि पूँजी के साथ मजूरी भी जरूर बढ़े। यह कहना सच नहीं है कि पूँजी जितनी ही मोटी-तगड़ी होती जायगी, वह अपने दास को भी उसी तरह खूब खिलाए-पिलाएगी। उत्पादक पूँजी का संचयन और केन्द्रीकरण बढ़ता है। उसके केन्द्रीकरण द्वारा श्रम का और विभाजन होता है, और भी अधिक मशीनों का इस्तेमाल बढ़ता है। श्रम का विभाजन जितना ही अधिक होता है, उतना ही अधिक कमकरों का अपना विशेष कौशल अनावश्यक होकर नष्ट हो जाता है। जब इस विशेष कौशल के स्थान पर श्रम को मशीन द्वारा ऐसे रूप में पेश किया जाता है, जिसमें कि कोई भी आदमी उस काम को आसानी से कर सकता है, तो इसके कारण कमकरों में होड़ बढ़ जाती है। यह होड़ और भी जोर पकड़ती है, जब कि श्रम-विभाजन एक मजदूर को पहले तीन मजदूरों जितना काम करने योग्य बना देता है। मशीन इस बात को और अधिक इस परिणाम को पैदा करती जाती है। उत्पादक पूँजी की वृद्धि औद्योगिक पूँजीपतियों को इसके लिए मजबूर करती है, कि वह और अधिक विकसित यन्त्रसाधनों से काम लें। अपने इस काम द्वारा वह छोटे-छोटे उद्योगपतियों को दिवाला निकालने के लिए मजबूर कर उन्हें सर्वहारों की जमात के भीतर फेंक देते हैं। पूँजी का संचयन जितना ही अधिक बढ़ता जाता है, उतनी ही सूद की दर गिरती जाती है, जिसके कारण छोटे-छोटे शेयर-होल्डर (भागीदार) अपने मिलनेवाले सूद पर जीवित नहीं रह

सकते और वह काम ढूँढ़ने के लिए उद्योगपतियों के पास जाने के लिए मजबूर होते हैं। इस प्रकार वे शेयर-होल्डर भी सर्वहारा की जमात को बढ़ाते हैं।

अन्त में मार्क्स ने बतलाया कि उत्पादक पूँजी जितनी अधिक बढ़ती है, उतनी ही अपने पैदा किए हुए माल के लिए ऐसा बाजार कायम करने को मजबूर होती है, जिसकी आवश्यकताओं का उसे पता नहीं। फिर उपज माँग से आगे बढ़ जाती है, पूर्ति माँग को मजबूर करने की कोशिश करती है, लेकिन जब उसमें सफल नहीं होती, अर्थात् माल की उपज माँग से कहीं अधिक हो जाती है, तब अर्थ-संकट (बाजार की मन्दी) पैदा हो जाता है, जो वह औद्योगिक भूकम्प है, जिसमें अपनी उपज के एक भाग की बलि नहीं, बल्कि स्वयं उत्पादक शक्तियों के भी एक भाग की बलि पाताल लोक के काले देवताओं को चढ़ा व्यापार जगत् अपने को बचाने की कोशिश करता है। ये भूकम्प आगे और बार-बार और भयंकर हो जाते हैं। पूँजी केवल श्रम पर ही जीवन धारण नहीं करती, बल्कि एक सामन्त या बर्बर सरदार की तरह वह अपने दासों की लाशों को भी अपने साथ कब्र में घसीट ले जाती है—पूँजी के इस भूकम्प में बहुत-से कमकर भी बेकार हो भूखे और बरबाद होते हैं—निष्कर्ष निकालते हुए मार्क्स ने कहा—"अगर पूँजी वेग के साथ बढ़ती है, तो मजदूरों के बीच में होड़ और तेजी के साथ बढ़ती है, अर्थात् मजूरों के जीवन और काम-काज के साधन अपेक्षाकृत कम हो जाते हैं, तो भी पूँजी की तेजी के साथ वृद्धि मजूरी-श्रम के लिए अत्यन्त अनुकूल स्थिति है।"

मार्क्स ने ब्रुशेल्स में जर्मन-मजूरों के सामने जो व्याख्यान दिया था, उसका अपूर्ण अंश ही हमारे पास तक पहुँचा। लेकिन इससे यह पता लग जाता है कि मार्क्स किस तरह प्रचार कर रहे थे। उनका व्याख्यान क्षणिक आवेश और उत्साह पैदा करने के लिए नहीं होता था, बल्कि वह वैज्ञानिक तथ्यों को रखकर हर एक चीज की तह में पहुँचने के लिए पथ-प्रदर्शन का काम देता था। लेकिन मार्क्स के व्याख्यानों और उनके महत्त्व को समझने के लिए मार्क्सीय दृष्टि की आवश्यकता थी, नहीं तो उन्हें आसानी से अरण्यरोदन कहा जा सकता है।

ऐसे ही क्रान्तिकारी बकुनिन ने पोल-क्रान्ति के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान दिया था, जिसके कारण उसे फ्रांस से निकल जाने का हुकुम हुआ और वह उसी समय ब्रुशेल्स पहुँचा था, जबकि मार्क्स ने मजूर-श्रम और पूँजी के ऊपर उक्त कई लेक्चर दिए थे। बकुनिन ने 28 दिसम्बर, 1847 को अपने एक रूसी मित्र को लिखा था—"मार्क्स अब भी अपनी उन्हीं पुरानी फजूल की कार्यवाहियों में लगा हुआ है, और उसके द्वारा मजूरों में से तर्क-बूझनेवाले बनाकर उन्हें खराब कर रहा है। यह वही पुराने पागलपन का सिद्धान्त छेड़ना और अतुष्ट आत्मतुष्टि है।" बकुनिन पीछे जार-भक्त बना, उसने वह सभी पाप किए, जो कि पतित भूतपूर्व क्रान्तिकारी किया करते हैं, लेकिन अपने इस तरह के विचारों से वह मार्क्स के स्थान पर अपने देश का पथ-प्रदर्शक और निर्माता कैसे बन सकता था ? उसने हेरवेग को पत्र लिखते हुए मार्क्स और एंगेल्स के ऊपर और भी कठोर वाग्बाण फेंकते हुए कहा था—"संक्षेप में झूठ और मूर्खता, मूर्खता और झूठ। उनके साथ रहते हुए स्वतन्त्र वायुमंडल में साँस लेना असम्भव है। मैं उनसे अलग रहता हूँ और मैंने उन्हें बिल्कुल साफ तौर से कह दिया है कि मैं तुम्हारे कम्युनिस्ट शिल्पकार समूह में शामिल नहीं हूँगा, मुझे उससे कुछ लेना-देना नहीं है।"

'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' जैसी अमर सजीव कृति के अस्तित्व में आना, जो संक्षेप में है—मार्क्स और एंगेल्स ने ब्रुशेल्स में पहुँचकर 'कमकर शिक्षा लीग' की स्थापना की। फिर ब्रुशेल्स से उन्होंने जर्मनी, लन्दन, पेरिस और स्वीट्जरलैंड के कम्युनिस्ट हलकों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया, जहाँ पर उनके और सहायकों द्वारा संचालित 'पत्र-व्यवहार कमेटियाँ' बनाई गईं। इसी सम्बन्ध में मार्क्स ने प्रूधों को भी लिखा था। 1846 ई. में केन्द्रीय पत्र-व्यवहार ब्यूरो ब्रुशेल्स में था, जहाँ मार्क्स स्वयं उनका नेतृत्व करते थे। पेरिस के ब्यूरो के संचालक एंगेल्स और लन्दन के ब्यूरो के संचालक बावर, शापेर और मोल थे। 20 जनवरी, 1843 को मोल ने लन्दन पत्र-व्यवहार कमेटी के प्रतिनिधि के तौर पर आकर ब्यूरो के बारे में रिपोर्ट दी। इसी मुलाकात का परिणाम लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस बुलाने के रूप में हुआ। इसी कांग्रेस में कम्युनिस्ट लीग कायम की गई, जिसमें ब्रुशेल्स के संगठन के प्रतिनिधि के तौर पर विलहेल्म वोल्फ शामिल हुआ था। जैसा कि पहले बतलाया, मार्क्स पहली

कांग्रेस में शामिल नहीं थे। वह नवम्बर, 1847 की दूसरी कांग्रेस में भी नहीं उपस्थित हो सके। कम्युनिस्ट लीग की कांग्रेस के निश्चयानुसार कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र के तैयार करने का काम उनको सौंपा गया, जो कि 1848 के फरवरी के उत्तरार्ध में प्रकाशित हुआ—यह स्मरण रखने की बात है कि पहले दो संस्करणों में इस घोषणा का नाम 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र' था। इससे यह मालूम होगा कि यह घोषणा-पत्र यों ही दिमाग से नहीं निकला, बल्कि उसके पहले कम्युनिस्ट संगठन अस्तित्व में आ चुके थे, जिनके पथ-प्रदर्शन के लिए इसे तैयार करने की जरूरत पड़ी।

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र के मसौदे को तैयार करने में मार्क्स और एंगेल्स के अतिरिक्त मोजेज हेस ने भी हाथ बँटाया था। प्रारम्भिक मसौदे का रूप कैसा था, इसे मार्क्स को लिखे एंगेल्स के 24 नवम्बर, 1847 (द्वितीय कांग्रेस से कुछ ही समय पहले) के पत्र से मालूम होता है—"विश्वास-स्वीकार के ऊपर जरा-सा विचारो। मैं समझता हूँ, कि सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी के ढंग को छोड़कर इसे कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र कहना अच्छा होगा। चूँकि कुछ इतिहास की बातें भी इसमें लानी हैं, इसलिए मैं समझता हूँ, इसका वर्तमान रूप ठीक नहीं होगा। जो कुछ मैंने इसके बारे में किया है, इसे मैं अपने साथ लाया हूँ। यह एक सीधे-सादे वर्णनात्मक ढंग में है, लेकिन बड़ी बुरी तरह से सम्पादित है। मैंने अत्यन्त जल्दी-जल्दी में इसे तैयार किया है।" एंगेल्स ने अपने इस पत्र में यह भी सूचित किया था कि मैंने मसौदे को पेरिस की शाखाओं के सामने पेश नहीं किया है। लेकिन मुझे आशा है कि एक-दो छोटी-मोटी बातों के सिवा इसे स्वीकार कर लिया जायगा। एंगेल्स ने पहला मसौदा पच्चीस प्रश्नों और उनके उत्तरों के रूप में तैयार किया। लेकिन उन्हें प्रश्नोत्तरी का ढंग नहीं पसन्द आया, और चिरस्थायी महत्त्व देने के लिए उस शैली में करने का सुझाव रक्खा, जिसमें कि घोषणा-पत्र हमारे सामने आज मौजूद है। घोषणा-पत्र एक बिल्कुल स्वतन्त्र और मौलिक कृति है, लेकिन जहाँ तक विचारों का सम्बन्ध है, उसमें कोई ऐसे विचार नहीं, जिसके ऊपर मार्क्स और एंगेल्स ने पहले न लिखा हो। जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है, उसका अन्तिम रूप देने में सबसे अधिक हाथ मार्क्स का है, लेकिन जिन समस्याओं का वर्णन इसमें आया है, उसमें एंगेल्स का भी मार्क्स से कम हाथ नहीं है। जिस समय घोषणा-पत्र तैयार हुआ, वह समय था, जब कि यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का चरम (सबसे बड़ा) समर्थन रूस कर रहा था। यह वह समय था, जब कि यूरोपीय सर्वहारा के फाजिल आदमियों को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका अपने भीतर हजम कर रहा था। अमेरिका और रूस दोनों ही देश यूरोप को कच्चा माल देते थे, और बदले में वह यूरोप की औद्योगिक उपज की बाजार बने हुए थे। इस प्रकार दोनों ही यूरोपीय सामाजिक व्यवस्था के उस समय अंग नहीं थे।

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में 1847 ई. तक के ऐतिहासिक विकास को ही लिया गया था, लेकिन उसमें जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, वह सदा के लिए एक-से हैं। 'दुनिया के सर्वहारो, एक हो जाओ।' इस मन्त्र ने तब से न जाने कितनी विजयों के नारे का रूप लिया।

1848 ई. के आरम्भ में घोषणा-पत्र जर्मन मूल और फ्रेंच अनुवाद के रूप में प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी में उसका अनुवाद दो साल बाद 1850 ई. में छपा। प्रथम विश्वयुद्ध के समय तुर्की भाषा में जब घोषणा प्रकाशित हुई, तो सुल्तान की पुलिस ने कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स नामक राजद्रोहियों को गिरफ्तार करने का वारंट निकाला था। मानव-इतिहास के सारे राजनीतिक निबन्धों में यह घोषणा सबसे महान्, सबसे स्पष्ट, सबसे व्यापक अर्थ और प्रेरणावाली कृति है। इसके चारों भागों का सारांश है :

(1) पहले भाग में पूँजीपति और सर्वहारा (प्रोलेतारी) इन दोनों वर्गों के उत्थान और विकास का संक्षिप्त विवरण है। पूँजीपति सामाजिक-सामूहिक रूप से होते उत्पादन के साधनों—कलकारखानों—का स्वामी है। सर्वहारा के पास उत्पादन के अपने साधन नहीं हैं। काम करके जीने के लिए मजदूरी पर अपना श्रम बेचने के सिवाय उसके वास्ते कोई चारा नहीं है।

दुनिया का लिखित इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है। दासता तथा सामन्तशाही युग में उत्पीड़क और उत्पीड़ित के बीच ये संघर्ष कभी छिपे, कभी प्रकट चलते रहे। इनका अन्त या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण के रूप में हुआ या दोनों प्रतिद्वन्द्वी वर्गों के नाम के साथ।

अमेरिका के आविष्कार एशिया के द्वार के खुलने और इनके साथ संसार के बाजार के विस्तार से पूँजीवाद का प्रादुर्भाव हुआ, इसके बाद बाजार की माँगों को पूरा करने और अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए भाप से चलनेवाले कल-कारखानों, यातायात के लिए भाप की रेलों और जहाजों का प्रचार हुआ।

पूँजीवाद के बढ़ने के साथ सामन्तशाही से उसकी टक्कर हुई और अन्त में उसने सामन्तशाही को परास्त कर अपनी प्रधानता स्थापित की। उत्पादन की शक्तियों को उसने इतना बढ़ाया, जितना उससे पहले कोई ख्याल में भी नहीं ला सकता था। पूँजीवाद ने एक और काम किया–कच्चे और तैयार माल के दान-आदान द्वारा उसने संसार को एक-दूसरे के आश्रित कर दिया। पहले उत्पादन बिखरे हुए थे। उन्हें इसने केन्द्रित किया। पूँजीवादियों की शक्ति बढ़ती ही गई और शासन-यन्त्र पर भी उनका अधिकार बढ़ा।

सामन्तशाही समाज ने उत्पादन की वह शक्तियाँ पैदा कीं, जिनपर उनका नियंत्रण नहीं हो सकता था। व्यापार को बढ़ा, कल-कारखानों को प्रारम्भ कर उसने पूँजीवाद को जन्म दिया। पूँजी ने उत्पादन के जबर्दस्त साधन तैयार किए। उसके वितरण और विनिमय के तरीके भी कम आश्चर्यकारी नहीं हैं। लेकिन उसने उत्पादन और वितरण का सामंजस्य नहीं पाया। उत्पादन ज्यादा, किन्तु उसे खरीदने के लिए जो पैसा चाहिए, उसमें अतिरिक्त मूल्य के बहाने कटौती की गई जिससे सभी पण्यों के खरीदने के लिए पैसा नहीं रहा। इसका ही परिणाम है, समय-समय पर होती रहनेवाली मंदियाँ, उत्पादित धन का जान-बूझकर संहार। इस प्रकार उसके अपने नाश के लिए हथियार आ मौजूद हुआ।

पूँजीवाद ने अपने मारने के लिए हथियार ही नहीं तैयार किया, बल्कि वह आदमी भी तैयार किए, जो हथियार को इस्तेमाल कर सकते हैं, यह हैं उनके अपने कारखानों के मजदूर–सर्वहारा।

मध्यम वर्ग–व्यापारी, शिल्पकार, किसान धीरे-धीरे नीचे गिरते जा रहे हैं। इन्हीं में से सर्वहारा फौज के रंगरूट भरती हो रहे हैं। आत्मरक्षा–जीविकारक्षा–के लिए मजदूर संगठित हो रहे हैं, और उनके हितों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए उनका राजनीतिक दल–मजदूर पार्टी बन रही है। दूसरी श्रेणियों में भी सर्वहारापन बढ़ रहा है, किन्तु मजदूर ही वह श्रेणी है, जिसमें क्रान्ति लाने की क्षमता है। दूसरे पीड़ित वर्ग अपने वर्तमान नहीं, भविष्य में मिलनेवाले स्वत्व के लिए लड़ना चाहते हैं, किन्तु सर्वहारा वर्तमान के लिए लड़ रहे हैं। मजदूर आन्दोलन अल्पमतों का नहीं, इतिहास में पहले-पहल एक भारी बहुसंख्या का आन्दोलन है। मजदूरों की हालत दिन-पर-दिन गिरती जा रही है, मजदूरी में कमी के साथ बेकारी बढ़ती जा रही है।

पूँजीवाद खुद अपनी कब्र खोदेनेवाले इन मजदूरों को तैयार कर चुका है।

(2) घोषणा-पत्र के दूसरे भाग के एक अधिकरण में मजदूर का कम्युनिस्टों के साथ क्या सम्बन्ध है, इसे बतलाया गया है। कम्युनिस्ट मजदूर वर्ग के अंग हैं, इसलिए उससे अलग-थलग रहने का ख्याल बहुत बुरा है। "(1) मजदूरवर्ग की दूसरी पार्टियों के खिलाफ कमूनिस्तों की कोई अलग पार्टी नहीं है। (2) सर्वहारा वर्ग के सारे स्वार्थों से अलग उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। (3) सर्वहारा आन्दोलन को खास रूप में ढालने के लिए वह अपना कोई मतवाद नहीं इस्तेमाल करना चाहते।"

"कमूनिस्त प्रत्येक देश के मजदूर-वर्ग का बहुत ही अग्रगामी और दृढ़मनस्क भाग है। यह वह भाग है, जो दूसरों को आगे की ओर ढकेलता ले जाता है। दूसरी ओर सिद्धान्त समझने में सर्वहारा का भारी जनसमूह से इस बात में विशेषता है कि वह कूच के रास्ते सर्वहारा-आन्दोलन के अन्तिम साधारण परिणाम और स्थितियों को साफ तौर पर समझता है।"कमूनिस्तों का नजदीक का उद्देश्य है–सर्वहारा को एक वर्ग में बद्ध करना, पूँजीवादी प्रधानता को उलटना और सर्वहारा द्वारा शासन-शक्ति पर अधिकार जमाना।"

कमूनिस्तों का सिद्धान्त (निष्कर्ष) किसी विश्व-सुधारक के आविष्कृत विचारों पर नहीं, बल्कि हमारी आँखों के सामने चलते ऐतिहासिक आन्दोलन पर आधारित है।

दूसरे भाग के बाकी अंश में कमूनिस्तों के ऊपर किए गए आक्षेपों का उत्तर दिया गया है। साम्यवाद किसी आदमी को समाज के द्वारा उत्पादित पदार्थों के उपभोग करने के अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता। वह सिर्फ इतना ही चाहता है कि इस तरह के उपभोग द्वारा दूसरे के श्रम पर काबू पाने की कोशिश न की

जाय। पूँजीवादी हायतौबा मचाते हैं कि मजदूरों के राज से संस्कृति का खात्मा हो जाएगा, किन्तु पूँजीवादियों की संस्कृति से आदमी को मशीन की तरह काम करने की शिक्षा के अतिरिक्त है ही क्या ? कमूनिस्त स्त्रियों पर साझा अधिकार नहीं चाहते, वह सिर्फ इतना ही कहते हैं, कि स्त्रियों की अर्ध-दासता खतम होनी चाहिए, गुप्त और प्रकट सब तरह की वेश्यावृत्ति बन्द होनी चाहिए और स्त्री को समाज में हर तरह से समान स्थान मिलना चाहिए।

कमूनिस्त स्वदेश और राष्ट्रीयता के भाव को मिटाना चाहते हैं, इस आक्षेप का उत्तर यह है कि "मजदूर का अपना कोई देश नहीं। जो उनके पास है ही नहीं, उसे हम उनसे छीनेंगे कैसे ? सर्वहारा को राजनीतिक प्रधानता प्राप्त करनी है, राष्ट्र का मुख्य वर्ग बनना है, यह खुद एक राष्ट्रीय काम है।" लेकिन जिस बूर्ज्वा राष्ट्रीयता का मतलब है, एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के ऊपर झपट्टा मारना, लगातार लड़ने की तैयारी करते रहना, वैसी राष्ट्रीयता जरूर कमूनिस्त नहीं चाहते। वर्गों के आपस के विरोध जितनी ही मात्रा में खतम होंगे, उतनी ही मात्रा में एक जाति का दूसरी जाति से वैमनस्य भी लुप्त होगा।

कमूनिस्त-प्रोग्राम के बारे में कहा गया है–"क्रान्ति में पहला काम जो मजदूर-वर्ग को करना है, वह है अपने को शासक-वर्ग के रूप में परिणत करना, जनतंत्रता के युद्ध को जीतना। सर्वहारा अपनी प्रभुता को इस्तेमाल करेंगे"बूर्ज्वा वर्ग से सभी पूँजी को अपने हाथ में ले लेने के लिए, उत्पादन के सभी साधनों को केन्द्रित करने, राज्य–शासक वर्ग के तौर पर संगठित सर्वहारा (प्रोलेतारी)–को हाथ में लेने और सम्पूर्ण उत्पादन-शक्तियों को जितनी शीघ्रता से हो सके, उतनी शीघ्रता से बढ़ाने के लिए।"

नजदीक के प्रोग्राम हैं : जमीन की मिल्कियत को उठा देना तथा सभी तरह के जमीन से लिए जानेवाले करों का सार्वजनिक काम के लिए व्यय करना। एक भारी और आमदनी के अनुसार बढ़ते हुए इन्कम-टैक्स द्वारा विरासत के सभी अधिकारों का बन्द करना। भगोड़ों और विद्रोहियों की सम्पत्ति को जब्त करना। राज्य की पूँजी लगाकर राष्ट्रीय यातायात के साधनों को राज्य के हाथ में केन्द्रित करना। राज्य के द्वारा उत्पादन के साधनों और फैक्टरियों को बढ़ाना। परती जमीन को जोत में लाना और सम्मिलित योजना के अनुसार जमीन के साधारण उपजाऊपन को बढ़ाना। श्रम के लिए सबको जिम्मेवार बनाना, औद्योगिक सेना को स्थापित करना–खासकर खेती के लिए। खेती की कल-कारखाने के उद्योग से घनिष्ठता स्थापित करना। देश में अधिकाधिक सामान वितरण करके देहात और शहर के अन्तर को उठा देना। सार्वजनिक पाठशालाओं में सभी बच्चों की निःशुल्क शिक्षा, आज के जैसे लड़कों का फैक्टरी में काम करना बन्द करना, शिक्षा और औद्योगिक उत्पादन को एक-दूसरे से मिलाना, आदि।

मजदूर-वर्ग खुद अपनी प्रधानता को अन्त में उठा देगा। जब विकास के पथ पर चलते-चलते वर्ग-भेद मिट जाएगा और सारा उत्पादन सारे राष्ट्र के विशाल संगठन के हाथ में जमा हो जाएगा, तो राजनीतिक शक्ति राज्य) अपने राजनीतिक रूप को खो देगी। राजनीतिक शक्ति वस्तुतः एक वर्ग की दूसरे वर्ग के उत्पीड़न के लिए संगठित की हुई शक्ति मात्र है। "सर्वहारों की राज-शक्ति के द्वारा सारे उत्पादन को अपने हाथ में ले शोषक वर्ग का अन्त कर देगा और वर्ग विद्वेष के भावों को हटा एक वर्ग बना, एक वर्ग के तौर पर प्राप्त की गई अपनी प्रधानता को छोड़ देगा। अब पुराने बूर्ज्वा-समाज, उसके वर्गों और वर्ग-विरोधों की जगह एक ऐसा संगठन होगा, जिसमें सबके विकास के साथ-साथ प्रत्येक का स्वतन्त्र विकास होगा।"

(3) तीसरे भाग में दूसरे समाजवादों का खंडन है। "वर्तमान समाज के प्रत्येक कायदे-कानून पर युटोपियन समाजवादियों का प्रहार मजदूर-वर्ग की आँख खोलने के लिए अत्यन्त मूल्यवान चीज थी।" लेकिन सभी वर्गों को और शासक-वर्ग को खास तौर से, हृदय-परिवर्तन की उनकी अपील गलत चीज थी। जब लोगों ने वर्ग-स्वार्थ पर संगठित समाज की बुराइयों को देख लिया, तो वह उस वर्ग-युक्त समाज को कैसे वांछनीय समझ सकते हैं ? समझाने-बुझाने से शासक-वर्ग के हृदय-परिवर्तन का यह विश्वास ही था, जिसने युटोपियनों को सभी तरह की राजनीतिक जद्दोजहद–खास कर क्रान्तिकारी कार्रवाइयों–के खिलाफ कर दिया। वह अपने उद्देश्य को शान्तिमय तरीके से पूरा करने की चाह रखते थे और अवश्य असफल होनेवाले छोटे-छोटे प्रयोगों द्वारा नये सामाजिक

सिद्धान्त की सच्चाई साबित करना चाहते थे।

(4) कमूनिस्त सभी जगह वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध होनेवाले प्रत्येक क्रान्तिकारी आन्दोलन की सहायता करते हैं। "सभी जगह वह सभी देशों की जनतांत्रिक पार्टियों की एकता और मेल-मिलाप के लिए कोशिश करते हैं।"

"कमूनिस्त अपने विचारों और उद्देश्यों के छिपाने को बुरा समझते हैं। वह साफ तौर से घोषित करते हैं, कि हमारा उद्देश्य सभी वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं को बलपूर्वक उठा फेंकने से ही पूरा हो सकता है। शासक-वर्ग को साम्यवादी क्रान्ति से काँपते रहने दो। सिवा अपनी बेड़ियों के सर्वहारा के पास खोने के लिए है ही क्या ? और पाने के लिए एक संसार है।"

सभी देशों के सर्वहारो, एक हो जाओ !

9

क्रांति और प्रतिक्रांति (1848 ई.)

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र के प्रकाशित होते ही मार्क्स और यूरोप के जीवन से एक संघर्षमय जीवन आरम्भ हुआ। जगह-जगह क्रान्तियाँ शुरू हुईं और मार्क्स को उनमें भाग लेने का फिर उत्साह होने लगा। इस समय मार्क्स तीस साल के थे।

1. फ्रेंच-क्रांति (1848 ई.)

1789 ई. की फ्रेंच-क्रान्ति यद्यपि सामन्ती-व्यवस्था को कितने ही अंशों में उखाड़ने में सफल हुई, तथापि वहाँ बूर्ज्वाजी को पूरी तौर से शक्ति हाथ में करने में चालीस वर्ष लगे। यद्यपि फ्रांस में राजतंत्र फिर से स्थापित हो गया, तथापि यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह बूर्ज्वाजी की छत्रछाया में ही। शोषण और उत्पीड़न ने अब सामन्ती रूप की जगह पूँजीवादी रूप ले लिया। शोषित और उत्पीड़ित कब तक चुप रहते ? 24 फरवरी, 1848 को बूर्ज्वा राजतन्त्र को उखाड़ फेंका गया। पेरिस की इस सफल क्रांति की प्रतिध्वनि यूरोप के और देशों में भी हुए बिना नहीं रह सकती थी। सबसे पहले फ्रेंच राजा बोनापार्त के दामाद बेल्जियम के राजा लियोपोल्द पर बीतने को हुई, लेकिन लियोपोल्द अपने ससुर से कहीं अधिक चतुर था। उसने तुरन्त घोषित किया कि यदि राष्ट्र चाहता है, तो मैं तुरन्त सिंहासन छोड़ने के लिए तैयार हूँ। वह लोगों को फँसाने-भुलवाने में सफल हुआ। बूर्ज्वा राजनीतिज्ञ उदारवादी मन्त्री देपुती (पार्लियामेंट सदस्य) और नगरों के मेयर उसके पक्ष में हो गए और उन्होंने विद्रोह की भावनाओं को तुरन्त दबा दिया। राजा ने अब उत्साहित हो सार्वजनिक सभाओं को छिन्न-भिन्न करने के लिए सैनिकों को इस्तेमाल करना शुरू किया और परदेशी निर्वासितों को सबकी जड़ समझकर पुलिस को उनके पीछे लगा दिया। मार्क्स के साथ खास तौर से बुरा बर्ताव किया गया। सिर्फ उन्हीं को नहीं, बल्कि उनकी बीवी को भी पुलिस गिरफ्तार कर ले गई—जेनी मार्क्स को एक रात बन्दीखाने में साधारण वेश्याओं के साथ रहना पड़ा। पीछे जिम्मेदार पुलिस अफसर को उसके पद से हटा दिया गया। गिरफ्तारी का हुकुम भी लौटा लिया गया, यद्यपि देश निकालने की आज्ञा नहीं हटाई गई। यह बिल्कुल कमीनापन था। क्योंकि मार्क्स ब्रुशेल्स छोड़ पेरिस जाने ही वाले थे।

क्रांति के फूट निकलने के तुरन्त बाद ही लन्दन में कम्युनिस्ट लीग के केन्द्रीय पदाधिकारियों ने अपने कार्यालय को ब्रुशेल्स के जिला-प्रतिनिधियों के हाथ में परिवर्तित कर दिया था, लेकिन अब ब्रुशेल्स की अवस्था भी खराब हो गई। वहाँ मार्शल-ला जारी हो गया था। इसलिए ब्रुशेल्स के पदाधिकारियों ने इस अधिकार को मार्क्स के हाथ में इस हिदायत के साथ सौंप दिया कि वह पेरिस में नया केन्द्रीय नेतृत्व बनाएँ। पेरिस में क्रांति

के सफल होते ही वहाँ की अस्थायी सरकार ने मार्क्स को बहुत सम्मान के साथ अपने यहाँ आने के लिए निमंत्रित करते हुए सरकार के एक मुख्य सदस्य फ्लोपों के (1 मार्च) पत्र द्वारा मार्क्स को लिखा था : "वीर और ईमानदार मार्क्स ! फ्रेंच गणराज्य की भूमि सभी स्वतन्त्रताप्रेमियों के लिए शरण-स्थान है। अत्याचारियों ने तुम्हें निर्वासित किया, लेकिन स्वतन्त्र फ्रांस तुम्हारे लिए अपना दरवाजा खोलता है–तुम्हारे और उन सभी के लिए, जो कि सभी जातियों के भाईचारे के पवित्र उद्देश्य के लिए लड़ते रहे हैं। फ्रेंच सरकार का हर एक अफसर इस अभिप्राय के लिए अपने कर्तव्य को समझे।" पेरिस में पहुँचकर मार्क्स ने कम्युनिस्ट लीग के कितने ही सदस्यों को इकट्ठा किया। जर्मन निर्वासितों की एक बड़ी सभा में 6 मार्च, 1848 को भावी प्रोग्राम के बारे में बतलाते हुए उन साथियों का जवर्दस्त विरोध किया, जो कि सशस्त्र आदमियों को लेकर जर्मनी में क्रांति करने के लिए जाना चाहते थे। इस योजना का बनानेवाला बोर्नस्टेट था, जिसने हेरवेग को भी अपनी ओर करने में सफलता पाई थी। बकुनिन भी इस योजना के पक्ष में था, लेकिन पीछे उसने उसके लिए अफसोस जाहिर किया। फ्रांस की अस्थायी सरकार भी योजना का समर्थन करने के लिए तैयार थी, लेकिन उसका उद्देश्य दूसरा ही था–वह बहुत-से परदेशी कमकरों से इस बेकारी के जमाने में पिंड छुड़ाना चाहती थी। उसने जर्मन क्रांतिकारियों को अपनी वैरकें दे दीं और जब तक सीमांत तक नहीं पहुँच जाते, तव तक पचास सांतीम (आधा फ्रांक) रोजाना भी दिया।

2. जर्मनी में क्रांति (1848-49 ई.)

मार्क्स ने इस बेवकूफी और दुस्साहस का विरोध किया। इसी समय 13 मार्च को बीना में और 18 मार्च को बर्लिन में क्रांति हो गई। क्रान्ति की शक्तियों को ठीक तरह से संगठित करके काम करने के लिए पेरिस में मार्क्स ने एक नया नेतृत्व स्थापित किया, जिसमें वह स्वयं, एंगेल्स और ब्रुशेल्स से वोल्फ एवं लन्दन से वावर-मोल तथा शापेर सम्मिलित थे। इस संगठन ने जर्मन सर्वहारा, निम्न मध्यमवर्ग किसानों के हित के लिए सत्रह माँगें रक्खीं, जिनमें कुछ थीं : जर्मनी को एक अविभाज्य गणराज्य घोषित करना, लोगों को हथियारबन्द करना, राजाओं और सामन्तों की ताल्लुकेदारियों-जमींदारियों का राष्ट्रीयकरण करना, खानों-यातायातों का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय मिस्तरीखानों की स्थापना, राज्य के खर्च से अनिवार्य शिक्षा का आम प्रवन्ध करना, आदि। ये माँगें पूरी की जानेवाली नहीं थीं, यह मार्क्स भी जानते थे, लेकिन प्रचार के लिए इनका महत्त्व था। कम्युनिस्ट लीग उस समय कमजोर हो चुकी थी, लेकिन मजूर वर्ग के पास क्रांति के दूसरे साधन थे। इसी समय मार्क्स ने पेरिस में एक जर्मन कम्युनिस्ट क्लब कायम की और उसके सदस्यों को उन्होंने जोर देकर कहा, कि हेरवेग के गुरिल्लों से अलग रहकर क्रांतिकारी आन्दोलन को वढ़ाने के लिए जर्मनी में अकेले-अकेले जाएँ। इस प्रकार सैकड़ों जर्मन मजूर जर्मनी के भीतर दाखिल होने में सफल हुए, फ्रेंच अस्थायी सरकार ने इसमें मार्क्स की मदद की। कम्युनिस्ट लीग के अधिकांश सदस्य जब जर्मनी के भीतर चले गए थे और उन्होंने जो काम वहाँ किया, उसने बतला दिया कि कम्युनिस्ट लीग ने क्रांति स्कूल का कितना काम वहाँ किया था। जहाँ-कहीं भी आन्दोलन में गर्मी दिखलाई पड़ती, वहीं लीग के सदस्य संगठन और नेतृत्व के लिए तैयार मिलते। शापेर नसाव में था, वोल्फ ब्रेस्लो में, स्टिफेन वोर्न वर्लिन में। बोर्न ने मार्क्स को चिट्ठी लिखते हुए ठीक कहा था : "लीग का अस्तित्व नहीं रहा, लेकिन तो भी उसका अस्तित्व सर्वत्र है।"

इसी समय मार्क्स अपने घनिष्ठ साथियों के साथ राइनलैंड में पहुँचे, जो कि उद्योग-धन्धे तथा नेपोलियन कानून के अधीन होने के कारण जर्मनी का सबसे प्रगतिशील भाग था। बर्लिन में प्रशियन दीवानी-संहिता (जाब्ता दीवानी) चलती थी। कोलोन शहर में जनतांत्रिकों और कम्युनिस्टों ने एक दैनिक पत्र निकालने की तैयारी की, यद्यपि यह काम आसानी से नहीं हुआ। पत्र के लिए शेयर बेचने की कोशिश की गई। एंगेल्स उस समय बर्लिन में थे, जहाँ से 25 अप्रैल, 1848 ई. को लिखे पत्र में उन्होंने मार्क्स को कोलोन में लिखा था : "यहाँ शेयरों के बेचने की कोई आशा नहीं !...लोग सामाजिक प्रश्नों के बारे में बातचीत करने से प्लेग की तरह कतराते हैं, वह इसे भड़काना कहते हैं...मेरे बूढ़े भद्रपुरुष से कुछ मिलने की आशा नहीं। वह समझता है कि कोलिनिशे

जाइटुंग भड़काने के लिए चरम साधन होगा, और वह मदद देने के लिए एक हजार डालर देने की जगह हमें खतम करने के वास्ते एक हजार गोलियाँ देना ज्यादा पसन्द करेगा।" यह लिखने के बाद भी एंगेल्स पन्द्रह शेयर बेचने में सफल हुए। 1 जून, 1848 को 'नोये राइनिशे जाइटुंग" (नवीन राइन पत्र) का पहला अंक निकाला। इसके मुख्य सम्पादक मार्क्स तथा संपादकीय विभाग में एंगेल्स, ड्रोंके, वीर्थ और दोनों वोल्फ थे।

मार्क्स ने फिर अपने पत्र द्वारा जनता की मुख्य शक्तियों का संगठन और पथ-प्रदर्शन करना शुरू किया। पत्र को जनतांत्रिकता का मुखपत्र कहा गया था, लेकिन उसका अर्थ नरम ढंग की जनतंत्रता ही था। उसने घोषित किया कि गणराज्य की स्थापना के बाद हमारा वास्तविक विरोधी-पक्षीय काम शुरू होगा। मार्च में बीना में जो सफलता मिली थी, उसका आधार जून में हाथ से चला गया, क्योंकि वहाँ वर्ग-विरोध अभी उतना अधिक विकसित नहीं हुआ था। बर्लिन में बूर्ज्वाजी इस बात की फिकर में थी कि किस तरह क्रांति को सर्वहारा के हाथ में जाने से बचाया जाय। अनेक बड़ी-छोटी रियासतों में बँटी जर्मनी में उदारवादी मन्त्री का अपने पूर्वाधिकारी सामन्तों से कोई भेद नहीं था। वह उसी तरह अपने राजाओं के सामने घुटने टेककर सम्मान प्रदर्शित करते थे। 18 मई को फ्रांकफुर्त (माइन पर) राष्ट्रीय सभा का पहला अधिवेशन हुआ। इसका काम था अपने सर्वप्रभुत्व सम्पन्न होने के कारण जर्मन एकता को स्थापित करना, लेकिन वह भी बात बनाने से आगे नहीं बढ़ सकी। पहले ही अंक में मार्क्स के पत्र ने इसकी बड़ी आलोचना की, जिसपर पत्र के बहुत-से शेयर-होल्डर साथ छोड़कर भाग गए, यद्यपि पत्र ने कोई बहुत बढ़-चढ़कर राजनीतिक माँगें नहीं पेश की थीं। फ्रांकफुर्त की राष्ट्रीय सभा के फेडरल गणराज्य की आलोचना करते हुए मार्क्स ने लिखा था कि छोटी-छोटी रियासतों के एक गणराजी सरकार के अधीन बनने को संयुक्त जर्मनी के अन्तिम संविधान के तौर पर नहीं माना जा सकता : "हम कोई युटोपियन (अव्यावहारिक, स्वप्नचारी) और अविभाज्य एक जर्मन गणराज्य के तुरन्त स्थापित करने की माँग नहीं पेश करते हैं, लेकिन यह माँग जरूर करते हैं, कि तथाकथित उग्रवादी जनतांत्रिक पार्टी संघर्ष और क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रथम मंजिल को अपना अन्तिम लक्ष्य समझने की गलती न करे। जर्मन एकता और जर्मन संविधान केवल उसी आन्दोलन के परिणामस्वरूप प्राप्त होगा, जो कि घरेलू द्वन्द्वों और पूर्व (रूस) के साथ युद्ध के परिणामस्वरूप एक निर्णय पर पहुँचने के लिए मजबूर हो। एक निश्चित संविधान की घोषणा नहीं की जाती, बल्कि वह उस आन्दोलन के परिणामस्वरूप पैदा होगा, जिसका कि तजर्बा नहीं हुआ। इसलिए यहाँ इस या उस राजनीतिक विचार के पूरा करने या इस और उस राय को पकड़ रखने का सवाल नहीं है, बल्कि सवाल है विकास के आम झुकाव को समझने का। राष्ट्रीय सभा को तुरन्त सम्भव व्यावहारिक कदम उठाने चाहिए।"

लेकिन राष्ट्रीय सभा ने दूसरा ही कदम उठाया। उसने आस्ट्रियन आर्कड्यूक योहान को राइख (राज्य) का रीजेंट निर्वाचित किया, जिसका अर्थ था, राजाओं के हाथ में खेलना। फ्रांकफुर्त संयुक्त जर्मनी की राजधानी होने का सपना देख रहा था जहाँ पर राष्ट्रीय सभा हो रही थी, लेकिन बर्लिन की घटनाओं का उससे कहीं अधिक महत्त्व था। जर्मनी के भीतर क्रांति का सबसे खतरनाक शत्रु प्रशियन राज्य था। 18 मार्च को क्रांति ने प्रशियन राज्य को उलट दिया, लेकिन उसका फल पहले बूर्ज्वाजी के हाथ में पड़ा और बूर्ज्वाजी ने क्रांति के साथ तुरन्त विश्वासघात करना शुरू किया। जिन शक्तियों को क्रान्ति ने मुक्त कर दिया था, उनकी बाढ़ को रोकना जरूरी था और उसके लिए सबसे अच्छा उपाय था कि उन्हें मीठी लोरियाँ सुनाकर सुला दिया जाय। काम्पहाउजेन हांजेमान के मंत्रिमंडल ने संयुक्त-डीट (संसद) की बैठक बुलाकर उसे एक बूर्ज्वा संविधान बनाने का काम सौंपने का निश्चय किया। प्रशिया की संयुक्त-डीट सामन्तों से भरी हुई थी। उससे किसी बूर्ज्वा संविधान की भी आशा नहीं हो सकती थी। पर बूर्ज्वाजी को डर लग रहा था कि यदि कमकरों को और आगे बढ़ने का मौका मिला, तो सामन्तों के हितों के साथ-साथ कहीं हमारे हितों का भी सर्वनाश न हो जाय। संयुक्त-डीट ने 6 और 8 अप्रैल को दो कानून (विधान) पास किए, जिनके द्वारा नये संविधान के आधार पर भिन्न-भिन्न बूर्ज्वा-अधिकार स्थापित किए गए और सार्वजनिक गुप्त और अप्रत्यक्ष मताधिकार के अनुसार निर्वाचित एक नई विधान-सभा के बनाने का निश्चय किया, जिसका काम था, मुकुट (राजा) की सम्मति से एक संविधान

बनाना। राजा, सामन्तों के सामन्त राजा को अपनी जगह पर अक्षुण्ण रहने दिया गया, और यह क्रांति के एक ही महीने बाद। 18 मार्च को प्रशियन गारद को हराकर बर्लिन के सर्वहारों ने जो विजय प्राप्त की थी, उसका फल इस प्रकार सर्वहारा के हाथों से छीन लिया गया। संविधान-सभा की बात को जब तक मुकुट न स्वीकार करे, तब तक वह कोई संविधान नहीं बना सकती थी। अब जब तक एक दूसरी क्रांति न हो जाए, कोई आशा नहीं थी और दूसरी क्रांति न होने देने के लिए काम्पहाउजेन-हांजेमान मंत्रिमंडल हर तरह से कोशिश कर रहा था। 22 मई को सभा बैठी। कहीं राजतन्त्र को हटाकर गणराज्य न कायम कर दिया जाय, इसलिए उसने नेताहीन क्रांति-विरोधियों को इंगलैंड से बुला प्रशिया-राजकुमारों को नेतृत्व प्रदान किया। प्रशिया का युवराज 18 मार्च की क्रांति में भागकर इंगलैंड चला गया था। लेकिन 14 जून को फिर बर्लिन के जनसाधारण ने ज्योग हाउज (उण्टेर डेन लिंडेन सड़क पर अवस्थित सैनिक इमारत) को हमला करके लिया और मुकुट के प्रति इस प्रकार अपने विरोधी भावों को प्रकट किया। इसपर काम्पहाउजेन ने इस्तीफा दे दिया, लेकिन हांजेमान अब भी अपने पद से चिपका रहा। काम्पहाउजेन अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील बूर्ज्वा-विचारधारा रखता था, जबकि हांजेमान बूर्ज्वा के हितों के लिए निर्लज्जतापूर्वक नंगा नाचने के लिए तैयार था। वह उसके लिए राजा और युंकरों (सामन्तों) की हर तरह की खुशामद करके सभा के लोगों को घूस-रिश्वत या जैसे भी हो, अपने पक्ष में रखने तथा जनसाधारण के अधिक और अधिक उत्पीड़न के लिए तैयार था। 'नाये राइनिश जाइटुंग' ने इस भयंकर स्थिति को रोकने की बड़ी कोशिश की। उसने बतलाया कि काम्पहाउजेन बूर्ज्वाजी के हित के लिए प्रतिक्रिया का बीज बो रहा है, लेकिन इसका फायदा सामन्ती दल उठाएगा। उसने हांजेमान-मंत्रिमण्डल के बड़े बुरे अन्त की भविष्यद्वाणी भी की और बतलाया—"बिना सारी जनता को अस्थायी तौर से अपना सहायक बनाए और कम या बेसी जनतांन्त्रिक भावों को स्वीकार किए बिना बूर्ज्वाजी अपने प्रभुत्व को स्थापित नहीं कर सकती।··· 1848 ई. की बूर्ज्वाजी (पूँजीपति वर्ग), निर्लज्जता और बेइज्जती के साथ किसानों के साथ विश्वासघात कर रही है, यद्यपि किसान उसके स्वाभाविक सहयोगी, उसके अपने मांस और खून हैं, और बिना किसानों के समर्थन के वह सामन्त-वर्ग के विरुद्ध कुछ भी करने में असमर्थ है।" मार्क्स ने कहा कि 1848 ई. की जर्मन-क्रांति 1798 ई. की फ्रेंच-क्रांति की झूठी नकल है।

जिस समय बर्लिन में हांजेमान-मंत्रिमंडल इस प्रकार अपनी जड़ें खोद रहा था, उसी समय सभी बूर्ज्वा वर्गों और पार्टियों ने मिलकर पेरिस की सड़कों में चार दिन की भयंकर लड़ाइयों के बाद वहाँ के सर्वहारों को हरा दिया।

जर्मनी में जो घटनाएँ घट रही थीं, उनके बारे में अपने पत्र में लिखते हुए मार्क्स ने बतलाया कि बूर्ज्वाजी और सर्वहारा के बीच होनेवाले वर्ग-संघर्ष में जनतन्त्रता को किसका पक्ष लेना चाहिए—"वह हमसे पूछेंगे, कि क्या हमारे पास राष्ट्रीय गारद, चल-गारद, गणराजी गारद और लाइन की पल्टनों के उन शहीदों के लिए आँसू, हाय या अफसोस के शब्द नहीं हैं, जिन्होंने कि जनता के क्रोध के सामने प्राण गँवाएँ। राज्य की ओर से उनकी विधवाओं और अनाथ बच्चों का ध्यान रक्खा जाएगा। उनके यशोगान के लिए बड़ी भड़कीली घोषणाएँ घोषित की जाएँगी, और उनके शरीरावशेषों को बड़े संयत और नम्र जलूसों द्वारा कब्रिस्तान में पहुँचाया जायगा। सरकारी प्रेस उन्हें अमर घोषित करेगा, और पूर्व से पश्चिम तक के यूरोपीय प्रतिगामी उनकी प्रशंसा करते नहीं थकेंगे, लेकिन दूसरी ओर जनतांत्रिक प्रेस का यह खास हक है, कि वह गरीबों की उन झुकी हुई गर्दनों के ऊपर अपनी पूजा की माला रखें, जो कि भूख से पीड़ित हैं, सरकारी प्रेस जिनके प्रति घृणा प्रकट करता है, डाक्टर जिनकी सुध लेने के लिए तैयार नहीं हैं; सभी इज्जतदार नागरिक जिनको चोर, बदमाश और कमीना कहकर गाली देते हैं, जिनकी स्त्रियाँ और वच्चे और भी अधिक कष्ट में डाले जा रहे हैं और जिनके बचे हुए लोगों में से सबसे अच्छे व्यक्ति समुद्र-पार निर्वासित हो चुके हैं।"

इस लेख के लिखने के बाद पत्र के बचे-खुचे शेयर-होल्डरों में से भी कितने ही साथ छोड़कर भाग गए।

हांजेमान-मंत्रिमंडल को सभी प्रतिगामियों की तरह कानून और व्यवस्था का सबसे अधिक ख्याल था,

क्योंकि सर्वहारा के गुस्से से उन्हें अपनी थैलियों के लिए हमेशा भय लगा रहता था। कानून और व्यवस्था कायम रखने के लिए 'अराजकता की शक्तियों' के विरुद्ध 'राज्य-शक्ति' को मजबूत करने की जरूरत थी, जिसके लिए उन्हें पुरानी प्रशियन सेना, पुलिस और नौकरशाही के हाथ में खेलना जरूरी था। सर्वहारा द्वारा घुटने टेकने के लिए मजबूर हुई प्रतिगामी शक्तियाँ अब फिर सिर उठाने की तैयारी करने लगीं। बर्लिन सभा (एसेम्बली) को यह और मंत्रिमण्डल द्वारा बर्लिन के पास सेना जमा करने की बातें खतरे से खाली नहीं मालूम हुईं। उसने साहसपूर्वक युद्ध-मंत्री से माँग की कि वह सभी सैनिक अफसरों को प्रतिक्रियावादी कार्यवाहियों में भाग न लेने का जबर्दस्त आदेश दे, और जिन अफसरों को यह मंजूर न हो, उन्हें इस्तीफा देने के लिए कहे। मंत्री के ऐसा करने का भी वहाँ क्या प्रभाव होनेवाला था ? पुरानी और नई दो ही शक्तियाँ थीं, बीच की बूर्ज्वा नपुंसकता कुछ करने में असमर्थ थी। यदि जनता की शक्ति से भय खाकर उसे दबाना है, तो प्रशियन सामन्तवाद के हाथ में खेलना छोड़ और कुछ नहीं हो सकता था। परिणाम यही हुआ, कि हांजेमान के बूर्ज्वा मंत्रिमंडल को बेइज्जती के साथ इस्तीफा देना पड़ा और उसकी जगह जनरल प्फुयेल ने एक शुद्ध नौकरशाही मंत्रिमण्डल स्थापित किया। बर्लिन की विधानसभा की भी वही गति हुई।

3. कोलोन जनतांत्रिकता

सितम्बर में बर्लिन और फ्रांकफुर्त में जो कुछ हुआ, उसका जबर्दस्त प्रभाव कोलोन पर भी पड़ना जरूरी था। राइनलैंड मजूरों का गढ़ था। हाथ में रखने के लिए उसे पूर्वी प्रदेशों में भरती किए गए सैनिकों से भर दिया गया। एक-तिहाई प्रशियन सेना को राइनलैंड और वेस्टफालिया में रक्खा गया। ऐसी स्थिति में छोटा-मोटा विद्रोह बेकार था। इस वक्त जरूरत थी सारी जनतांत्रिक शक्तियों को संगठित और अच्छी तरह अनुशासनबद्ध करने की।

इससे पहले ही जून में फ्रांकफुर्त में 88 संगठनों ने एक कांग्रेस की, जिसमें जनतांत्रिक संगठनों को मजबूत करने का निश्चय किया। लेकिन निश्चय के अनुसार सब जगह काम नहीं हो सका, केवल कोलोन में ही उसकी मजबूत नींव पड़ी। शेष जर्मनी में जहाँ-तहाँ छिटपुट काम होता रहा। कोलोन की जनतांत्रिकता की तीन बड़ी-बड़ी सभाएँ थीं, जिनमें से हर एक के हजारों मेम्बर थे : (1) जनतांत्रिक एसोसियेशन, जिसके नेता मार्क्स और एडवोकेट स्नाइडर थे, (2) कमकर एसोसिएशन, जिसके नेता मोल और शापर थे, और (3) मालिक-नौकर एसोसिएशन, जिसका नेता तरुण बैरिस्टर हेरमान बेकर था। जब फ्रांकफुर्त की कांग्रेस ने कोलोन को राइनलैण्ड और वेस्टफालिया का केन्द्र निश्चित किया, तो इन एसोसिएशनों ने अपनी एक संयुक्त केन्द्रीय कमेटी बनाई, जिसने राइनलैंड-वेस्टफालिया के सभी जनतांत्रिक एसोसिएशनों की कांग्रेस अगस्त के मध्य में कोलोन में बुलाई। इस कांग्रेस में सत्रह एसोसिएशनों के 40 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और उन्होंने कोलोन के तीन जनतांत्रिक एसोसियेशनों की संयुक्त केन्द्रीय कमेटियों को राइनलैंड-वेस्टफालिया की प्रदेश कमेटी मान लिया। इस संगठन के बौद्धिक नेता मार्क्स थे। उनमें नेतृत्व के गुण जितने ऊँचे परिमाण में मौजूद थे, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता था, लेकिन कुछ नीच-भावनावाले जनतांत्रिक नहीं चाहते थे, कि सारा नेतृत्व मार्क्स के हाथ में चला जाय।

19 वर्षीय विद्यार्थी कार्ल शुर्ज ने पहली बार मार्क्स को कोलेन-कांग्रेस में देखा था। पीछे उसने अपनी स्मृति से इस महापुरुष के बारे में लिखा था : "उस समय मार्क्स तीस साल का था, और समाजवादी विचारधारा का नेता माना जा चुका था। उसका शरीर गठीला, ललाट प्रशस्त और आँखें काली तथा चमकीली थीं। उसके कोयले जैसे काले बाल और घनी दाढ़ी तुरन्त लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती थी। अपने क्षेत्र में बहुत बड़े विद्वान् होने की उसकी प्रसिद्धि थी, और सचमुच वह जो कुछ कहता, वह तर्कसम्मत, वजनदार और स्पष्ट बात होती, लेकिन अपने जीवन में मैंने कभी ऐसे किसी आदमी को नहीं देखा, जिसका बर्ताव इस तरह का चोट पहुँचानेवाला तथा असह्य अभिमान का हो।" मार्क्स के मुँह से 'बूर्ज्वा' शब्द ऐसे निकलते थे, जैसे कि वह घृणा के साथ उसपर थूक रहा हो। मार्क्स को उनके पिता ने भी 'हृदयहीन' कहा था, लेकिन उस हृदय में कितना स्नेह भरा था, इसे जाननेवाले लोगों की कमी नहीं थी। जब वह पूर्ण एकाग्रता से किसी

बड़े काम में लगे होते, उस समय अपने हृदय को वात-बात में खोलकर दिखाते रहना अपने काम में बाधा पैदा करने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता था। इसी तरह फजूल की बातों और आदमियों के लिए समय बरबाद करने के वास्ते भी उनके पास समय नहीं था, जिसके कारण कितने ही जब-तब मिलनेवाले उन्हें रूखे स्वभाव का समझते थे। कोलोन के कुछ वर्षों बाद लेफ्टिनेंट तेचोफ ने मार्क्स से वार्तालाप करने के बाद लिखा था : "मार्क्स की सिर्फ अपनी साधारण बौद्धिक श्रेष्ठता ने ही नहीं, बल्कि उसके काफी बड़े व्यक्तित्व ने भी मुझपर असर डाला। अगर उसका हृदय उतना ही बड़ा होता, जितना उसका दिमाग, उसका प्रेम उतना ही बड़ा होता, जितनी उसकी घृणा, तो मैं उसके साथ आग-पानी में कूदने के लिए तैयार रहता। यद्यपि उसने कई बार मेरे बारे में तुच्छ राय प्रकट की और अन्त में विल्कुल साफ-साफ कह भी दिया। तथापि, वह हमारे बीच पहला और अकेला व्यक्ति है, जिसमें महत्त्वहीन विवरणों में विना अपने को खोये किसी बड़ी परिस्थिति पर अधिकार प्राप्त करने की योग्यता है।"

1848 ई. में फूरिये का अमेरिकन शिष्य अलवर्ट व्रिस्वेन 'न्यूयार्क-ट्रिब्यून' का संवाददाता वनकर कोलोन आया। उसके साथ पत्र-प्रकाशक चार्ल्स डाना भी था। व्रिस्वेन की राय मार्क्स के बारे में दूसरी ही थी : "मैंने जन-आन्दोलन के नेता कार्ल मार्क्स को देखा। उस वक्त उसका सितारा अभी-अभी ऊपर उठ रहा था। वह करीब तीस वर्ष का आदमी था। शरीर से हट्टा-कट्टा, चेहरा अच्छा, और घने काले बाल। उसके चेहरे से बड़ी शक्ति का पता लगता था और उसकी नरमी तथा संजीदगी के पीछे साहसपूर्ण आत्मा की जबर्दस्त आग जलती दीख पड़ती थी।"

राइनलैंड की उस स्थिति में कोई सशस्त्र कार्रवाई बेकार होती, इसलिए मार्क्स ने वैसा करने को रोका था। लेकिन प्रशियन सरकार चाहती थी कि लोग कुछ ऐसी बेवकूफी करें जिससे खून की नदी बहाने का मौका मिले और वह इस प्रकार लोगों के जोश को दबा दे। खूनी कार्रवाई का मौका न मिलने पर अब उसने जनतांत्रिक प्रदेश कमेटी के मेम्बरों और 'नोये राइनिशे जाइटुंग' के सम्पादकों के खिलाफ कानूनी और पुलिस की कार्रवाई शुरू की। लेकिन, उसके लिए भी सबूत नहीं मिल सका। मार्क्स ने अपने लोगों तथा राज्य को भी सावधान करते हुए लिखा था, "इस समय कोई ऐसा बड़ा सवाल नहीं है, जो कि सारी जनता को संघर्ष करने के लिए मजबूर करे, इसलिए बलवे का कोई भी प्रयत्न असफल होगा। इस समय कोई विद्रोह करना व्यर्थ से भी बुरी बात होगी, क्योंकि आसन्न भविष्य में हो सकता है, बड़ी घटनाएँ घटें। इसलिए जनतंत्रियों को चाहिए, कि युद्ध के दिन आने से पहले अपने को निहत्था न बनाएँ। मुकुट (राजा) अगर क्रान्ति-विरोध को संगठित करने की हिम्मत करेगा, तो जनता की ओर से एक नई क्रांति की घड़ी आ मौजूद होगी।"

सब कुछ सावधानी रखने पर भी कुछ मामूली झगड़े हुए ही, जब कि 25 सितम्बर को बेकेर, मोल, शापेर और विलहेल्म वोल्फ गिरफ्तार किए गए। जब खबर उड़ी कि सेना एक सार्वजनिक सभा को भंग करने के लिए आ रही है, तो लोगों ने सड़कों पर मोर्चे बाँध लिए। लेकिन अभी प्रशियन सेना को इतनी हिम्मत कहाँ थी ? जब लोगों का जोश अधिक ठंडा हो गया, तो सैनिक कमान्डर ने कोलोन में मार्शल-ला घोषित कर दिया। उसने 'नोये राइनिशे जाइटुंग' को बन्द करने का हुकुम निकाला और 27 सितंबर से वह बन्द हो गया। प्फुयेल मंत्रिमण्डल ने कुछ दिनों बाद मार्शल-ला उठा दिया, लेकिन 'राइनिशे जाइटुंग' की इतनी जबर्दस्त चोट लगी थी, कि वह 12 अक्टूबर से ही फिर निकलने में समर्थ हुआ।

पत्र के सम्पादकमंडल के बहुत-से सदस्यों के ऊपर गिरफ्तारी के वारंट थे, इसलिए उन्हें जेल में बन्द होने से बचने के लिए सीमा पार भाग जाना पड़ा : डोंके और एंगेल्स बेल्जियम चले गए और विलहेल्म वोल्फ पलाटिने को। उन्हें वहाँ से लौटने में कुछ देर लगी। 1849 की जनवरी के आरंभ में एंगेल्स अभी भी बेर्न (स्वीट्जरलैंड) में थे। वह बेल्जियम से फ्रांस होते वहाँ पहुँचे थे, जिसमें बहुत-सा रास्ता उन्होंने पैदल तै किया था। एक ओर पत्र के लिए आदमियों की कमी थी, दूसरी तरफ आर्थिक दशा भी खराब थी.। शेयर-होल्डरों के छोड़कर भाग जाने पर पत्र अपने बढ़े हुए ग्राहकों के बल पर जीता रहा, लेकिन मार्शल-ला के हमले से अब वह डूबने ही वाला था। इसी समय मार्क्स ने पिता से दायभाग में मिली जो कुछ थोड़ी बहुत सम्पत्ति

थी, उसे उसमें लगा दिया। मार्क्स ने इसके बारे में कभी एक भी शब्द किसी से नहीं कहा, लेकिन बीवी के पत्रों और उनके मित्रों ने जो बातें बतलाईं, उनसे मालूम है कि मार्क्स ने सात हजार डालर (7 हजार गिन्नियाँ या प्रायः 1 लाख रुपया) पत्र को जीवित रखने के लिए लगाया था। यहाँ पैसे के परिणाम का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि इस बात का कि मार्क्स ने झंडे को ऊँचा रखने के लिए अपने सर्वस्व का त्याग किया।

मार्क्स ने प्रशियन नागरिकता को त्याग दिया था। इस वक्त वह कोलोन में नागरिकता के अधिकारों से वंचित होकर रह रहे थे, जिसके कारण उन्हें आसानी से बाहर निकल जाने का हुकुम दिया जा सकता था। इससे बचने का एक ही उपाय था कि वह नागरिकता के अधिकार को फिर से प्राप्त करते। अप्रैल, 1848 में मार्क्स ने कोलोन की नगर-परिषद् को इसके लिए अर्जी दी। जब मार्क्स ने कहा कि बिना इसके मैं अपने परिवार को ट्रार से कोलोन नहीं ला सकता था तो वहाँ के पुलिस-अफसर मुलेर ने आशा के अनुरूप जवाब भी दिया। इसी बीच 'नोये राइनिशे जाइट्टुंग' फिर निकलने लगा था, और उसके लेखों से असंतुष्ट हो पुलिस प्रेसीडेंट मेजर ने अपने 3 अगस्त के पत्र में सूचित किया : अभी कोई निश्चय नहीं किया जा सकता, मार्क्स को अपने लिए विदेशी समझना चाहिए। 22 अगस्त को गृहमन्त्री के पास मार्क्स ने अपील की, लेकिन उसने भी उसे खारिज कर दिया। भविष्य अनिश्चित था, लेकिन मार्क्स का अपनी पत्नी और बच्चों के साथ असाधारण प्रेम था, इसलिए वह परिवार को कोलोन ले आए। परिवार की संख्या भी अब काफी बढ़ गई थी। पहली लड़की मई, 1844 में पैदा हुई थी, जिसका नाम माँ के ऊपर जेनी रक्खा गया था। उसके बाद दूसरी लड़की लौरा सितम्बर, 1845 में पैदा हुई और उसके बाद एकमात्र पुत्र एडगर पैदा हुआ, जो भी माता-पिता को अधिक दिनों तक प्रसन्न रखने के लिए नहीं आया था। प्रथम पेरिस के निवास के समय में ही मार्क्स के परिवार में हेलेन डेमुथ सम्मिलित हो गई थी, जो कि आजीवन परिवार के सभी दुखों और कष्टों में साथ रही। मार्क्स के स्वभाव में नहीं था कि वह हर एक नये परिचित को तुरन्त भाई या मित्र घोषित कर दें। लेकिन, अपने मित्रों के साथ उनका सम्बन्ध बहुत स्थायी और दृढ़ होता था।

4. दो साथी

एंगेल्स को मार्क्स न साथी कह सकते हैं, न मित्र ही। वह तो उनकी युगल आत्मा के थे। निर्वासन के समय ही मार्क्स को दो और ऐसे साथियों से घनिष्ठता प्राप्त करने का अवसर मिला, जिनकी मित्रता बराबर एकरस न रहते भी अन्त तक कायम रही।

(1) **फर्डीनेंड फ्राइलीग्रथ**[1]–यह जर्मन कवि मार्क्स से आठ वर्ष बड़ा था। ब्रुशेल्स के निर्वासन के दिनों में फ्राइलीग्रथ का परिचय मार्क्स से हुआ। परिचय के आरम्भिक दिनों में मार्क्स ने उसके बारे में लिखा था : "भला आदमी है, अच्छा पट्ठा, बर्ताव में दिलचस्प और सादा।" 1848 ई. के राइन के संघर्षों के समय यह परिचय घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया। एक पत्र में मार्क्स ने फ्राइलीग्रथ के बारे में वेडेमेयर को लिखा था : "वह वास्तविक क्रांतिकारी और पूरी तौर से ईमानदार आदमी है। इस तरह के प्रशंसा के शब्द मैं बहुत कम आदमियों के लिए कह सकता हूँ।" साथ ही मार्क्स ने वेडेमेयर को लिखा था : कवि को जरा श्लाघा भी देनी चाहिए, सभी कवियों को इसकी आवश्यकता पड़ती है, तभी वह अपनी बढ़िया कृतियों को प्रदान कर सकते हैं। मार्क्स उन आदमियों में नहीं थे जो कि जरा भी गलतफहमी से आदमी के गुण और कार्यक्षमता को भूल जाते हैं। उन्होंने एक समय कवि को लिखा था : "मैं तुमसे साफ कहना चाहता हूँ कि कुछ मामूली गलतफहमियों के कारण मैं ऐसे एक मित्र को खोने के लिए तैयार नहीं हूँ, जिसे कि सच्चे अर्थों में मित्र कहा जा सकता है।" एंगेल्स को छोड़कर फ्राइलीग्रथ जैसा मार्क्स का पक्का दोस्त सबसे जबर्दस्त कठिनाइयों के समय कोई नहीं था। फ्राइलीग्रथ क्रांतिकारी बना था अपनी नैसर्गिक सूझ और कवि की भावना से। वह वैज्ञानिक विचारों द्वारा क्रांतिकारी नहीं बना था। वह मार्क्स को क्रांति का अग्रदूत और कम्युनिस्ट लीग को क्रांतिकारी हरावल मानता था, लेकिन कम्युनिस्ट-घोषणापत्र में जो ऐतिहासिक युक्तियाँ दी गई थीं, वह उसे कभी भी समझ

1. Freiligrath.

में नहीं आईं। वह इन बारीकियों में घुसकर माथापच्ची करने के लिए तैयार नहीं था।

(2) **फर्डिनेंड लाजेल**[1]–लाजेल मार्क्स से सात वर्ष छोटा था। वह एक तरुण वकील के तौर पर पिता के बुरे बर्ताव और अपनी जाति के विश्वासघात से बचने के लिए कौंटेस (ठाकरानी) हर्ट्र्जफेल्ट की दर्दनाक स्थिति को देखकर दिलो-जान से जुट गया। इस मुकदमे में उसने इतनी योग्यता का परिचय दिया कि वह एक प्रसिद्ध वकील बन गया। फरवरी, 1848 में उसको इसलिए गिरफ्तार किया गया, कि उसने कौंटेस को एक डीड-बक्स (दस्तावेज की पेटी) को चुराने की प्रेरणा दी, लेकिन 11 अगस्त को कोलोन की जूरी ने उसे इस अपराध से मुक्त करके छोड़ दिया। इस समय भी तरुण लाजेल ने अपनी अनुपम तर्क-शक्ति का परिचय दिया था। इसके बाद वह क्रांतिकारी संघर्षों में अपना अधिक और अधिक समय देने लगा। इसी समय वह मार्क्स के प्रभाव में आया। मार्क्स की तरह लाजेल ने भी हेगेलीय दार्शनिक विचारधारा का अच्छी तरह अध्ययन किया था। अपनी पेरिस की एक यात्रा में उसे फ्रेंच-समाजवाद से परिचय प्राप्त करने का मौका मिला। मार्क्स की तरह लाजेल भी यहूदी सन्तान था। उसके माता-पिता धर्म से यहूदी होने के कारण उसके मन में स्वतन्त्र विचारों के अंकुरित होने में बाधा उपस्थित करते रहते थे। लाजेल में फ्राइलीग्रथ जैसी सादगी और विनम्रता नहीं थी। सात वर्ष बाद मार्क्स ने उसके बारे में कहा था : लाजेल अपने को विश्वविजयी समझता है, क्योंकि उसने एक वैयक्तिक जंजाल में निष्ठुरतापूर्वक सफलता प्राप्त की थी। मानो इस तरह के महत्त्वहीन काम में अपने जीवन के दस सालों की बलि दे देना आदमी में वास्तविक नैतिक बल पैदा कर सकता है। कई शताब्दियों बाद एंगेल्स ने कहा था कि लाजेल के प्रति मार्क्स के मन में सदा विरोधी भावना बनी रही। मार्क्स की इस भावना में एंगेल्स और फ्राइलीग्रथ भी शामिल थे। लेकिन यह सब होते हुए भी मार्क्स लाजेल के गुणों और योग्यता के महत्त्व को कम नहीं करते थे।

12 अक्तूबर (1848 ई.) में जब 'नोयं राइनिशे जाइटुंग' फिर निकलने लगा, तो उसके सम्पादकमंडल में फ्राइलीग्रथ भी शामिल हो गए। 6 अक्तूबर को बीना में फिर क्रान्ति हो गई। मार्क्स स्वयं 28 अगस्त से 7 सितम्बर तक लोगों में प्रचार करने के लिए बीना जाकर रहे थे, जिसमें उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली थी, क्योंकि अभी ऐतिहासिक भौतिकवाद की सच्चाइयों तक पहुँचना बीना के कमकरों के वस से बाहर की बात थी। हुंगरी की क्रांति को दबाने के लिए जब बीना से सेना भेजी जाने लगी, तो कमकरों ने अपनी क्रांतिकारी नैसर्गिक बुद्धि के कारण उसका विरोध किया। इसके लिए सेना की गोलियाँ हुंगरी के सामन्तों के खिलाफ खर्च होने की जगह कमकरों पर पड़ीं। लेकिन, हुंगरी के सामन्त इसके लिए क्यों कृतज्ञ होने लगे ? क्रांति-विरोधियों ने बीना को चारों ओर से घेर लिया। अक्तूबर के अंत में बर्लिन में जनतांत्रिक कांग्रेस हुई। उसने बीना के कमकरों के पक्ष में एक अपील निकाली, जो आँसू बहाने और उपदेश देने से बढ़कर कुछ नहीं थी। लेकिन, बीना के घिरे हुए कमकरों के पक्ष में एक जबर्दस्त लेख मार्क्स ने गद्य में और फ्राइलीग्रथ ने वड़े सुन्दर और शक्तिशाली पद्य में निकालकर बतलाया, कि बीना के कमकरों की सच्ची सहायता का केवल एक ही उपाय है, और वह है जर्मनी के क्रांति-विरोधियों का खातमा करना। बीना की क्रांति केवल कमकरों के बल पर सफल नहीं हो सकती थी। यद्यपि कमकरों ने, विद्यार्थियों और निम्न मध्यमवर्ग के एक भाग को साथ करके बड़ी वीरता के साथ लड़ाई लड़ी, तथापि बूर्ज्वाजी और किसान उनके साथ धोखा देने के लिए तैयार थे। इस प्रकार 31 अक्तूबर की शाम को सेना नगर में घुसने में सफल हुई, और 1 नवम्बर को सेंट स्टिफन गिर्जा के मीनार पर क्रांति-विरोधियों का काला-पीला झंडा फहराने लगा।

यूरोप के एक भाग में सफल हुए क्रांति-विरोधियों का प्रभाव दूसरी जगह पड़ना जरूरी था। बर्लिन में प्फुयेल का नौकरशाही मंत्रिमंडल टूटा और उसकी जगह शुद्ध सामन्तशाही ब्रांडेंनवर्ग-मंत्रिमण्डल आया, जिसने बर्लिन-एसेम्बली को ब्रांडेनवर्ग के कस्बे में जाने और जेनरल रेंगल को गारद की सेनाओं के साथ बर्लिन पर कूच करने का हुकुम दिया। हो हेनजोलर्न वंश का अवैध पुत्र ब्रांडेनवर्ग अभिमान में फूला नहीं समाता था और

---

1. Fredinand Lassalle.

समझता था कि मैं हाथी हूँ, जो कि क्रांति को अपने पैरों तले से रौंदकर चूर्ण-चूर्ण कर सकता है। 'नोये राइनिशे जाइटुंग' ने इसपर कहा था : "दोनों आदमी 'ब्रांडेनबर्ग और रेंगल' बिना सिर, बिना हृदय और बिना सिद्धांत के हैं। वह भड़कीली मूछों के सिवाय और कुछ नहीं हैं।"

प्रशियन सामन्तवाद ने अब क्रांतिकारी शक्तियों को पूरी तौर से दबाने का निश्चित कर लिया। उसने नागरिकों के गारद को खतम कर, मार्शल-ला घोषित कर दिया। बर्लिन में जिस वक्त वह तानाशाही इस तरह नंगा नाच कर रही थी, उस समय 'नोये राइनिशे जाइटुंग' का मुँह खुला था। उसने घोषित किया : "वह घड़ी आ गई है, जब कि प्रति-क्रांति को द्वितीय क्रांति से मुकाबला करना होगा। जनता को चाहिए कि सरकार की हिंसा का विरोध हर तरह से संभव हिंसात्मक तरीकों से करे। निष्क्रिय-प्रतिरोध को अपने आधार के तौर पर सक्रिय-प्रतिरोध की आवश्यकता है, नहीं तो वह कसाई के सामने भेड़ के संघर्ष की तरह बिल्कुल बेकार साबित होगा : प्रशियन-मुकुट पूरी तौर से अपने अधिकार के भीतर है, जबकि वह अपने गलत परमप्रभुत्व को एसेम्बली (विधान सभा) के ऊपर इस्तेमाल करता है, और एसेम्बली के रास्ते पर है, क्योंकि वह मुकुट के प्रति एक परम-प्रभुत्व सम्पन्न एसेम्बली के तौर पर काम नहीं करती। पुरानी नौकरशाही को बूर्ज्वाजी का सेवक बनने की इच्छा नहीं, क्योंकि अब तक वह बूर्ज्वाजी के लिए निरंकुश स्कूल-मास्टर रही है। सामन्ती-दल बूर्ज्वाजी की वेदी पर अपने हितों और विशेषाधिकारों की बलि चढ़ाना नहीं चाहता। और अन्ततः मुकुट (राजा) अपने वास्तविक और जन्मजात सामाजिक आधार को पुराने सामन्ती समाज के तत्त्वों में पाता है, जिस समाज का कि सर्वोच्च मुकुट (राजा) के रूप में मौजूद है। साथ ही वह बूर्ज्वाजी को एक विदेशी और कृत्रिम आधार पर समझता है, जो कि स्वयं जीर्ण-शीर्ण होने पर ही मुकुट को बर्दाश्त कर सकती है।"

(3) मार्क्स पर मुकदमा—बर्लिन-एसेम्बली ने सामन्तों के स्वेच्छाचार का जवाब टैक्स उगाहने के अधिकार से सरकार को वंचित करके दिया। उस समय कोलोन में जनतांत्रिक प्रदेश-कमेटी ने मार्क्स, शापर और स्नाइडर के हस्ताक्षर द्वारा 18 नवम्बर को एक अपील निकालकर माँग की कि राइनलैंड के जनतांत्रिक एसोसिएशनों को तुरन्त निम्न कामों को हाथ में लेना चाहिए : अधिकारी अगर बलपूर्वक कर उगाहने का कोई प्रयत्न करें, तो सभी संभव उपाय से उसका मुकाबला करना चाहिए। दुश्मन से मुकाबला करने के लिए सब जगह तुरन्त नागरिक गारद संगठित किए जाने चाहिए। म्युनिसिपैलिटी के कोष और चन्दों के पैसों से हथियार और गोला-बारूद खरीद उसे गरीबों में बाँट देना चाहिए। यदि सरकार एसेम्बली के निर्णयों को मानने से इन्कार करे, तो सब जगह सार्वजनिक सुरक्षा कमेटियाँ निर्वाचित की जाएँ, जहाँ सम्भव हो, यह काम म्युनिसिपैलिटी की सम्पत्ति से किया जाय। जो म्युनिसिपैलिटियाँ एसेम्बली का विरोध करें, उन्हें सार्वजनिक वोटों से पुनः निर्वाचित किया जाय। राइनलैंड के जनतांत्रिक एसोसियेशन ने जो काम किया, यदि वह काम बर्लिन-एसेम्बली ने किया होता, तो सभी सामन्तशाही के होश उड़ गए होते, लेकिन बर्लिन-एसेम्बली के वचन-बहादुरों में इतनी हिम्मत कहाँ थी ? उन्हें अपनी सम्पत्ति का डर लगने लगा, और वह भाग-भाग कर अपने क्षेत्रों में जा एसेम्बली के निर्णय को काम में न लाने के लिए प्रयत्न करने लगे। उनकी इस निर्बलता को देखकर सरकार को हिम्मत हुई, और उसने 5 दिसम्बर को एसेम्बली तोड़ एक नये मताधिकार को लोगों पर लादा।

इस प्रकार बर्लिन-एसेम्बली के विश्वासघात के कारण राजधानी से निश्चिन्त हो अब सरकार का ध्यान राइनलैंड की ओर गया। वहाँ उसने भारी संख्या में सेनाएँ भेजीं। 22 नवम्बर को लाजेल डुजेलडोर्फ में गिरफ्तार हुआ, लाजेल ने कोलोन की अपील का स्वागत किया था, लेकिन कोलोन में गिरफ्तार करने की हिम्मत नहीं हुई। सरकारी वकील ने अभियोग चलाया। 8 फरवरी को अपील पर हस्ताक्षर करने वाले कोलोन जूरी के सामने पेश हुए। उनपर सरकार के विरुद्ध, और राजा की सेना के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध करने का इल्जाम लगाया गया। मार्क्स ने एक जबर्दस्त भाषण द्वारा सरकारी वकील के बयान के चिथड़े-चिथड़े उड़ा दिए : "जिन्होंने सफलतापूर्वक क्रांति की थी, उनके लिए यही युक्तियुक्त था, कि वह अपने विरोधियों को फाँसी पर चढ़ा देते, न कि उन्हें अपने ऊपर जज बनाकर बैठाते। तुम अपने पराजित शत्रुओं से इस तरह पिंड छुड़ा सकते हो, लेकिन उनपर अपराधी के तौर पर मुकदमा नहीं चला सकते। एसेम्बली ने ठीक किया या मुकुट (राजा) ने,

यह एक ऐतिहासिक प्रश्न है, जिसका फैसला केवल इतिहास ही दे सकता है, जूरी नहीं।" मार्क्स ने साथ ही 6 और 8 अप्रैल के कानूनों को मानने से इन्कार करते हुए बतलाया कि मुकुट को–जिसने कि मार्च के संघर्षों में अपनी पराजय स्वीकार की थी–बचाने के लिए जिस संयुक्त डीट ने उन्हें गढ़ा था, वह आधुनिक बूर्ज्वा-समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाली सभा थी। सामन्तवादी सभा के कानूनों द्वारा उसका निर्णय नहीं किया जा सकता। यह सिद्धान्त नहीं, निरी कानूनी गप है, कि समाज कानून पर आधारित है। इसके विरुद्ध वस्तुतः कानून समाज के ऊपर आधारित हैं : "मेरे हाथ में कोड नेपोलियन (नेपोलियन विधान संहिता) है। यह बूर्ज्वा-समाज को नहीं उत्पन्न करती, बल्कि इसके विरुद्ध इसे वूर्ज्वा-समाज ने पैदा किया है, जिसने कि अठारहवीं शताब्दी के विकसित होते इस कोड (विधान संहिता) के रूप में अपना कानूनी स्वरूप प्रकट किया, इसके सिवा यह और कुछ नहीं है। जैसे ही यह कोड सामाजिक सम्बन्धों को सच्चाई के साथ प्रकट करने में असफल हुई, वैसे ही वह एक रद्दी के टुकड़े से अधिक हैसियत नहीं रखेगी। तुम पुराने कानूनों को नये समाज का आधार उसी तरह नहीं बना सकते, जैसे कि पुराने कानूनों को पुराने समाज का बनाया जा सकता है।"

बर्लिन-एसेम्बली ने गैर-कानूनी तौर से कोई काम नहीं किया, अगर उसने करों के उगाहने से इन्कार कर दिया, यह बतलाते हुए मार्क्स ने कहा : "अगर करों का उगाहना गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया, तो यह मेरा कर्तव्य हो जाता है कि गैर-कानूनी कार्रवाई को कार्य रूप में परिणत करने के लिए जो भी प्रयत्न किया जाय, उसका विरोध करूँ, जरूरत पड़ने पर बलपूर्वक भी।" यद्यपि जिन लोगों ने टैक्स अदा करने से इन्कार करने की घोषणा की, उन्होंने अपने चमड़े को बचाने के लिए क्रांतिकारी पथ ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, तथापि जनसाधारण इस घोषणा को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मजबूर है। एसेम्बली का बर्ताव जनता के लिए निर्णायक नहीं है; "एसेम्बली का अपना कोई निजी अधिकार नहीं है, जनता ने सिर्फ अपने अधिकारों की प्रतिरक्षा का कार्य एसेम्वली को सौंपा था। जब एसेम्बली इस कार्य को पूरा करने में असफल हुई, तो उसके अधिकार खतम हो गए और तब जनता अपने निजी अधिकारों से सीधी कार्रवाई करने के लिए अखाड़े में उतरी। अगर मुकुट (राजा) प्रतिक्रांति संगठित करता है, तो नई क्रांति द्वारा उसका जवाब देना जनता को उचित है।" मार्क्स ने अपने भाषण को समाप्त करते हुए बतलाया कि अभी नाटक का पहला ही अंक खेला गया है, अन्तिम अंक इसका या तो होगा प्रति-क्रांति की पूर्ण विजय, या और नई विजयी क्रांति, यद्यपि विजयी क्रांति प्रति-क्रांति की पूरी विजय हो लेने के बाद ही शायद सम्भव होगी। निर्भीक क्रांतिकारी भाषण को सुनने के बाद जूरी ने सभी अपराधियों को मुक्त कर दिया और जूरी के मुखिया ने मार्क्स को शिक्षादायक भाषण के लिए धन्यवाद दिया।

5. प्रति-क्रांति

बीना और बर्लिन में प्रति-क्रांति की विजय ने फैसला कर दिया कि जर्मनी में क्रांति ने जो भी सफलताएँ प्राप्त की थीं, वह हाथ से जाती रहेंगी। उसके चिह्न-स्वरूप अब फ्रांकफुर्त एसेम्वली–सारी जर्मनी की संयुक्त पार्लामेण्ट–बच रही थी, लेकिन उसका राजनीतिक महत्त्व कब का खत्म हो गया था और अब वह कागजी-संविधान के बहस-मुबाहिसे में पड़ी हुई थी। उसका अन्त बस या तो प्रशिया की संगीनों से होनेवाला था या आस्ट्रिया की।

इंगलैंड में चार्टिस्ट-आन्दोलन अब शक्तिशाली नहीं रह गया, इसलिए वहाँ की वूर्ज्वा सरकार कहीं भी अपने घातक शत्रुओं–मजदूरों के विद्रोह को दबाने के लिए मुक्त थी। जून (1848 ई.) के संघर्षों में फ्रेंच-मजदूरों को इतनी चोटें लगी थीं, कि वह अभी किसी नये विद्रोह करने के योग्य नहीं थे। प्रति-क्रांति ने पेरिस से अब क्रांति के दूसरे स्थानों पर धावा बोलना शुरू किया था। वहाँ से वह फ्रांकफुर्त, बीना होते बर्लिन पहुँची। यूरोप की क्रांति की लहरों के दबने की सूचना के रूप में 10 दिसम्बर (1848 ई.) को फ्रेंच गणराज्य का राष्ट्रपति नकली-बोनापार्ट निर्वासित किया गया। केवल हुंगरी में अभी भी क्रांति की ज्योति जल रही थी। एंगेल्स इसी बीच कोलोन लौट आए थे। जर्मन राइख (राज्य) की घोषणाओं ने प्रेस का गला घोंट दिया था, इसलिए 'नोये

राइनिशे जाइटुंग' का पथ कंटकाकीर्ण हो गया था। संघर्ष के समय भी इस पत्र ने जर्मन कमकरों की कार्रवाइयों को विस्तारपूर्वक नहीं छापा था, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं कि उसका भाग उसमें नगण्य था। उसने सारे जर्मनी में अपना हाथ फैलाया था, जिसमें पूर्व के एलबियन युंकरों की भूमि भी सम्मिलित थी–जहाँ सामन्तवाद नंगा नाचता आया था। मजूरों की अपनी कांग्रेसें, अपने संगठन, अपने अखबार थे, स्टिफन वोर्न जैसा योग्य नेता उनके पास था जिसमें पेरिस और ब्रुशेल्स के मार्क्स और एंगेल्स के साथ मित्रता का भाव था और बर्लिन तथा लाइपजिग से 'नोये राइनिशे जाइटुंग' में लेख लिखा करता था। बोर्न कम्युनिस्ट घोषणापत्र को अच्छी तरह समझता था, लेकिन जर्मनी के अधिकांश भाग की वर्ग-चेतना में पिछड़े हुए सर्वहारों के ऊपर घोषणापत्र के प्रोग्राम और सिद्धान्तों का लागू करना उसके बस की बात नहीं थी।

1849 ई. के बसन्त में मार्क्स और एंगेल्स ने कमकर-आन्दोलन की दिशा में पहला कदम उठाया था। 'नोये राइनिशे जाइटुंग' पहले कमकरों के आन्दोलन और कार्रवाइयों के बारे में भी अधिक ध्यान नहीं देता था, इसका कारण यही था, कि उनका कोलोन कमकर-एसोसियेशन के नाम से अपना एक संगठन था, जिसकी ओर से वह अपना अर्ध-साप्ताहिक पत्र मोल और शापर के सम्पादकत्व में निकालते थे। इसके अतिरिक्त यह भी बात थी कि 'नोये राइनिशे जाइटुंग' जनतान्त्रिकता का मुखपत्र था, इसलिए वह सामन्तवाद और निरंकुशता के विरुद्ध सर्वहारा तथा बूर्ज्वाजी के सम्मिलित हितों की वकालत करता था, जो उस समय जरूरी भी था। क्रांति के विफल और प्रति-क्रांति के सफल होने पर जनतान्त्रिकता का बूर्ज्वाजी अंग बहुत भयभीत हो जल्दी ही युद्धक्षेत्र से भाग गया। जब जनतान्त्रिक संगठन अब निराशावाद और समझौतावादी नीति का अनुसरण कर रहा था, वहाँ रहना बेकार था। इसलिए मार्क्स, विलहेल्म वोल्फ, शापर और हेरमान बेकेर ने जनतान्त्रिक प्रदेश-कमेटी से 15 मई को इस्तीफा दे दिया। इसी समय कोलोन-कमकर-एसोसियेशन ने भी रेनिश जनतान्त्रिक संगठनों के एसोसियेशनों से अपना नाम हटा लिया और सभी मजदूरवर्गीय और दूसरे संगठनों को निमन्त्रित किया कि समाजवादी जनतान्त्रिकता के सिद्धान्तों की रक्षा करनेवाले मजूरवर्गीय और दूसरे संगठनों के प्रतिनिधियों को 6 मई (1849 ई.) को होनेवाली प्रादेशिक कांग्रेस में भेजें। 20 मार्च से 'नोये राइनिशे जाइटुंग' ने सिलेसिया के करोड़पतियों के विरुद्ध विलहेल्म वोल्फ के लेख छापने शुरू किए, जिनसे देहाती सर्वहारों के भीतर बड़ी सनसनी फैली। 5 अप्रैल से पत्र ने ब्रुशेल्स में मार्क्स के दिए हुए भाषण–मजूर-श्रम और पूँजी–को छापना शुरू किया। मार्क्स ने 1848 ई. के जबर्दस्त जन-संघर्ष का हवाला देते हुए बतलाया, कि चाहे प्रत्येक क्रांतिकारी विद्रोह फैला हो, चाहे वर्ग-संघर्ष से उसका उद्देश्य कितना ही अलग हो, किन्तु मजूर वर्ग विजयी होगा। अखबार ने आर्थिक सम्बन्धों की समस्या पर रोशनी डालते हुए कहा, कि बूर्ज्वाजी और कमकरों की दासता इन्हीं आर्थिक सम्बन्धों पर आधारित है।

आन्दोलन को ठंडा पड़ते देख कायर सरकारों की हिम्मत और बढ़ जाती है। उसी के अनुसार अब जर्मन-सरकार ने भी कदम उठाया और 'नोये राइनिशे जाइटुंग' का गला घोंटने का निश्चय किया। वह राइनलैंड में मार्शल-लॉ भी घोषित करना चाहती थी, लेकिन वहाँ की फौज के कमाण्डेण्ट की हिम्मत टूट गई और उसने मार्शल-लॉ (फौजी-कानून) घोषित करने की जगह 'खतरनाक आदमी' कहकर पुलिस द्वारा मार्क्स को निर्वासित करने का निश्चय किया। लेकिन पुसिल भी ऐसा करने से घबराती थी। उसने इसके बारे में प्रादेशिक गवर्नर से पूछा, जिसने गृह-मन्त्री मन्टोफेल के पास लिखा। 10 मार्च को प्रादेशिक सरकार ने बर्लिन को सूचित किया कि मार्क्स अब भी कोलोन में है, यद्यपि विदेशी होने के कारण पुलिस की आज्ञा न होने से उसे वहाँ रहने का अधिकार नहीं है। यहाँ रहते वल्कि अपने अखबार द्वारा वह अपनी उग्र कार्रवाइयों को भी जारी रखे हुए है, वह लोगों को वर्तमान संविधान के विरुद्ध भड़काता है, एक सामाजिक गणराज्य स्थापित करने का प्रचार करता है, और मानवता जिन बातों की इज्जत करती है, जिनके प्रति प्रेम दिखलाती है, उनका वह उपहास करता है। पत्र की ग्राहक-संख्या भी बढ़ती जा रही है। पुलिस की रिपॉर्ट को पाकर गृह-मन्त्री ने राइन प्रदेश के प्रेसीडेंट आइखमान से राय पूछी। 29 मार्च को (1849 ई.) आईखमान ने बतलाया, कि मार्क्स का निर्वासन उचित है, लेकिन ऐसा करने में तब तक कठिनाई है, जब तक कि वह और अपराधों के लिए जिम्मेदार नहीं

हो जाता। 7 अप्रैल के अपने आदेश-पत्र में मन्टोफेल ने प्रादेशिक सरकार को सूचित किया, कि मैं निर्वासन के विरुद्ध नहीं हूँ, लेकिन किस समय और कैसी परिस्थिति में इसे करना चाहिए, यह प्रादेशिक सरकार के जिम्मे है। मेरी राय में निर्वासन का आदेश उसी समय निकालना चाहिए जब कि किसी खास अपराध से उसका सम्बन्ध जोड़ा जा सके।

लेकिन कोई खास अपराध न पा मार्क्स द्वारा सम्पादित पत्र की 'खतरनाक रुझान' के कारण ही मार्क्स को निर्वासन का आदेश 11 मई को दिया गया। 29 मार्च और 7 अप्रैल तक अभी प्रशियन सरकार को ऐसा कदम उठाने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन मई के मध्य में पहुँचते-पहुँचते वह अपने को काफी मजबूत समझती थी। इस निर्वासन के तुरन्त ही वाद कवि फ्राइलीग्रथ ने निम्न पंक्तियाँ लिखी थीं :

"ईमानदार के युद्ध में एक यह ईमानदार प्रहार नहीं,
बल्कि ईर्ष्या और धोखे की चाल है,
मुझे गिराया गुप्त कलंक ने,
कमीने पाश्चात्य कलमघ के।"

10

लन्दन में निर्वासित जीवन (1849 ई.)

सचमुच ही प्रशियन सरकार की कायरता और भी नंगी दीखने लगती है, जव हम यह जानते हैं कि आदेश-पत्र उस समय निकाला गया, जब कि मार्क्स कोलोन में मौजूद नहीं थे। 'नोये राइनिशे जाइटुंग' के ग्राहकों और अनुग्राहकों की संख्या यद्यपि बढ़ती जा रही थी, इस वक्त उसके छह हजार ग्राहक थे, जो कि उस शताब्दी के जर्मन पत्रों के लिए कम नहीं समझी जाती थी, तथापि आर्थिक-कठिनाइयाँ उसकी कम नहीं हुई थीं। 1846 ई. में हाम नगर के दो पूँजीपतियों ने एक कम्युनिस्ट प्रकाशन-गृह स्थापित करने के लिए पैसा देना चाहा था। उनमें से एक रेम्फेल से उसी सिलसिले में वात करने के लिए मार्क्स हाम गए हुए थे। रेम्फेल ने अपनी थैली न खोली, किसी दूसरे आदमी भूतपर्वू लेफ्टीनेंट हेज का नाम बतलाया, जिसने मार्क्स की वैयक्तिक जिम्मेदारी पर तीन सौ डालर कर्ज के रूप में दिए। हेज पीछे पुलिस का गुप्तचर साबित हुआ, लेकिन उस समय पुलिस उसपर मुकदमा चला रही थी। उसके साथ मार्क्स जव कोलोन पहुँचे, तो निर्वासन का हुकुमनामा वहाँ मौजूद मिला। अव 'नोये राइनिशे जाइटुंग' के लिए कुछ नहीं किया जा सकता था। उसके दूसरे सम्पादकों में से भी बहुत-से मार्क्स की तरह ही प्रशियन कानून की दृष्टि में 'विदेशी' थे, और जो बच रहे थे, उनपर मुकदमा चलाया जा रहा था। 19 मई को पत्र का अन्तिम अंक निकाला, जिसमें विदाई का सन्देश देते हुए मार्क्स ने सरकार के ऊपर जबर्दस्त प्रहार किए : "अपने मूर्खतापूर्ण झूठों, अपने बनावटी वाक्यों के फेर में क्यों पड़ते हो ? हम स्वयं निष्ठुर हैं। हम तुमसे दया की भिक्षा नहीं माँगते। जव हमारी बारी आएगी, तो हम अपने आतंकवाद को काम में लाने में जरा भी नहीं हिचकिचाएँगे, लेकिन राजसी आतंकवादी, भगवान् की दया और कानून के अधिकारवाले आतंकवादी व्यवहारतः पशु, घृणित और कमीने हैं, सिद्धान्त में चार मनस्यन्यद् वचस्यन्यद्वाले हैं। व्यवहार ओर सिद्धान्त दोनों में उन्हें इज्जत-प्रतिष्ठा छू नहीं गई है।" पत्र ने चलते-चलते कमकरों को सावधान किया, कि इस समय कोई भी सशस्त्र कार्रवाई करना वेकार ही नहीं, खतरनाक और मूर्खतापूर्ण भी होगी। लेख की समाप्ति में छपा हुआ था : 'कमकर-वर्ग की मुक्ति' के साथ।

मार्क्स केवल सिद्धान्तवादी और जबर्दस्त व्यावहारिक क्रांतिकारी ही नहीं थे, बल्कि उनका हृदय उच्च आदर्शवाद और त्याग से भरा हुआ था। समय-समय पर उनके रूखे वर्तावों से उनके पिता के शब्दों 'हृदयहीन के शब्द हृदयहीन' को दूसरे भी दोहरा सकते थे, लेकिन उस असाधारण पुरुष के हृदय में असाधारण उदार

और त्याग का भी भाव भरा हुआ था। यदि उस महापुरुष के केवल ऐसे ही जीवन के पहलुओं को लिया जाय, तो वह पुराणों और जातकों के किसी भी सर्वस्वत्यागी पुरुष से पीछे नहीं दिखाई पड़ते। लेकिन केवल स्वार्थत्याग और बलिदान से एक ठोस आर्थिक ढाँचे को हटाकर उसकी जगह सर्वकल्याणकारी नया ढाँचा नहीं कायम किया जा सकता, हजारों वर्षों से चले आते शोषण और उत्पीड़न को हटाकर मुक्त मानव के सुखी और समृद्ध समाज को स्थापित नहीं किया जा सकता। उसके लिए जिस चीज की आवश्यकता मानवता को थी, वह था उनका सिद्धान्त और व्यवहार का परम ज्ञान। जब तक दुनिया में वर्गहीन समाज स्थापित नहीं हो जाता, तब तक मार्क्स के जीवन के इन्हीं दोनों पहलुओं की ओर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

'नोये राइनिशे जाइटुंग' अब अस्त होने जा रहा था, लेकिन मार्क्स पत्र को अपनी वैयक्तिक जिम्मेदारी समझते थे, इसलिए उसके प्रति अपने दूसरे कर्तव्यों का भी पालन करना उन्हें आवश्यक जान पड़ा। तीन सौ डालहर हेज से मिले थे, पन्द्रह सौ डालर ग्राहकों से मिले थे। प्रेस, दूसरी चीजों तथा इन पैसों से मार्क्स ने मुद्रकों, कागज के व्यापारियों, क्लर्कों, सम्पादकों, संवाददाताओं—सबका पैसा-पैसा चुकाया। मार्क्स ने अपनी बीवी के चाँदी के बर्तनों को ही केवल अपने पास रक्खा, बाकी सबको बेचकर एक-एक पैसा बेबाक किया। जेनी के इन चाँदी के बर्तनों को फ्रांकफुर्त में बन्धक रखनेवालों के हाथ में दे, कुछ सौ गिल्डर मिले। यही अब मार्क्स-परिवार का एकमात्र अवलम्ब रह गया।

1. विदा जन्मभूमि !

फ्रांकफुर्त से मार्क्स एंगेल्स के साथ बाडेन और प्लाटिनाट में हुए विद्रोह के स्थानों को देखने गए। पहले वह कार्ल्सरूहे पहुँचे, फिर काइजरस्लाउटेर्न, जहाँ क्रांतिकारियों की अस्थायी सरकार के प्राण डा. ईस्टर से मिले। डा. ईस्टर ने मार्क्स को पेरिस में होनेवाली राष्ट्रीय एसेम्वली में जर्मन क्रांतिकारी पार्टी का प्रतिनिधित्व करने के लिए कहा। यह राष्ट्रीय एसेम्बली नकली बोनापार्ट और उसके दल 'कानून और व्यवस्था' की पार्टियों के विरुद्ध प्रहार करने के लिए तैयारी कर रही थी। लौटते समय हेसियन सेना ने सन्देह पर दोनों को गिरफ्तार कर लिया, लेकिन अन्त में छोड़ दिया। मार्क्स 7 जून से पहले पेरिस चले गए और एंगेल्स काइजरस्लाउटेर्न लौटकर एक भूतपूर्व प्रशियन लेफ्टीनेंट विलिच द्वारा संगठित स्वयंसेवक सेना में अड्जुटेंट बन गए।

पेरिस में भी भला मार्क्स को कैसे चैन से रहने दिया जाता! 19 जुलाई को पुलिस के अधिकारी (प्रिफेक्ट) ने मार्क्स के पास गृह-मन्त्री का हुकुम पहुँचाया, कि तुम्हें देपार्तमाँ मोरबियाँ (Department Morbihan) में रहना होगा। इस जिले के बारे में फ्राइलीग्रथ ने मार्क्स को लिखा था : "दानियाल कहता है कि मोरबियाँ फ्रांस का सबसे अधिक अस्वास्थ्यकर जिला है, वह दलदली है, बुखार का घर है।" मार्क्स ने तुरन्त इस आज्ञा को मान नहीं लिया, बल्कि गृह-मन्त्री से अपील करके आज्ञा को स्थगित करवाया। इस समय मार्क्स की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। फ्राइलीग्रथ और लाजेल दोनों ने सहायता के लिए पैसा जमा करने की अपील की। फ्राइलीग्रथ ने लाजेल के पैसा जमा करने के तरीके की शिकायत की। इसपर मार्क्स ने बहुत क्षुब्ध होकर 30 जुलाई को कवि को पत्र लिखते हुए कहा था : "सार्वजनिक भीख माँगने की अपेक्षा कड़ी से कड़ी आर्थिक कठिनाइयाँ मुझे ज्यादा पसन्द हैं, और मैंने ऐसा उसे लिख दिया। उसकी इस कार्रवाई से मैं बड़ा क्षुब्ध हुआ हूँ।" लेकिन लाजेल ने पीछे समझाकर मार्क्स के दिल से इस भाव को हटा दिया। 23 अगस्त को मार्क्स ने एंगेल्स को सूचित किया कि मैं फ्रांस छोड़ रहा हूँ। 5 सितम्बर (1848 ई.) को मार्क्स ने कवि को लिखा, कि इसके बाद 15 सितम्बर को मेरी बीवी भी आ जाएगी, यद्यपि मैं यह नहीं जानता कि उसकी यात्रा और फिर कहीं सिर रखने के लिए पैसा कहाँ से आएगा।

(2) नोये राइनिशे रिव्यु

पेरिस से मार्क्स ने अन्तिम पत्र में एंगेल्स को लिखा था कि लन्दन से एक पत्र निकालने की संभावना है, और

इसके लिए कुछ पैसा भी मिलनेवाला है। इसी पत्र में एंगेल्स को यह भी लिखा कि तुम तुरन्त लन्दन चले आओ। एंगेल्स बाडेन और प्लाटिनाट के विद्रोह के विफल होने के बाद स्वीट्ज़रलैंड राजनीतिक शरणार्थी थे, जब कि उन्हें यह पत्र मिला। वह गेनोवा से जहाज द्वारा इंगलैंड पहुँचे। जो पैसा पत्र के लिए मिला था, वह बहुत थोड़ा था, इसमें सन्देह नहीं। मार्क्स ने अपने सम्पादकत्व में 'नोये राइनिशे रिव्यू' के नाम से एक राजनीतिक-आर्थिक पत्रिका निकालने का निश्चय करते हुए 1 जनवरी, 1850 ई. को पत्रिका के शेयर का विवरण प्रकाशित किया, जिसमें बतलाया गया था कि दक्खिनी जर्मनी और पेरिस के क्रांतिकारी आन्दोलनों में भाग लेने के बाद नोये राइनिशे के सम्पादक पिछली गर्मियों में लन्दन पहुँचे। यहाँ से उन्होंने पत्र को निकालने का निश्चय किया। पहले यह 28 पन्नों की एक मासिक पत्रिका के तौर पर निकलेगा, लेकिन जैसे ही आर्थिक अवस्था बेहतर होगी, यह अर्ध-मासिक और फिर उसी ढंग पर शायद साप्ताहिक बन जाएगा, जैसे कि इंगलैंड और अमेरिका के साप्ताहिक निकलते हैं। जैसे ही जर्मनी लौटने का अवसर मिलेगा, पत्र फिर पहले की तरह दैनिक रूप में निकलने लगेगा। अन्त में पाठकों से पचास फ्रांकवाले शेयरों को लेने के लिए प्रार्थना की गई थी। शायद बहुत अधिक शेयर बिके नहीं।

पत्रिका हाम्बुर्ग में छापी जाती, जहाँ के एक बुकसेलर ने 50 प्रति सैकड़ा कमीशन पर उसे प्रकाशित करने और बाँटने की जिम्मेदारी ली थी। इसका तिमाही चन्दा था 25 चाँदी का ग्रोशेन। बुकसेलर बहुत कोशिश नहीं कर पाया, क्योंकि प्रशियन सेना उस वक्त हाम्बुर्ग में पड़ी हुई थी। लाजेल ने डूजेलडॉर्फ से पचास ग्राहक दिए थे, वेडेमेयर ने फ्रांकफुर्त में बेचने के लिए सौ कापियों का आर्डर दिया था, लेकिन छह महीने के बाद वह केवल 51 गिल्डर पा सका : "मैंने लोगों पर वहुत दवाव दिया, लेकिन कोई पैसा देने की जल्दी में नहीं है।" जेनी मार्क्स को सबसे ज्यादा आर्थिक चोट सहनी पड़ती थी, इसलिए वह इस प्रवन्ध-सम्वन्धी दुर्व्यवस्था पर असंतुष्ट थीं। पत्रिका के कुल छह अंक निकले, यद्यपि व्यवसाय के तौर पर वह विल्कुल असफल ही रही, तथा मार्क्स की आर्थिक कठिनाइयों को और बढ़ानेवाली थी। लेकिन उसमें जो चीजें निकलीं, वे अपना स्थायी मूल्य रखनेवाली थीं। मार्क्स की उस समय की स्थिति के बारे में जेनी ने लिखा था : "उनकी सारी शक्ति, स्वभाव की सभी शान्ति, संचित शक्ति प्रतिदिन और प्रतिघंटा विपत्तियों से घिरी हुई है।" दोनों मित्र अपनी जवानी से ही जब मार्क्स और एंगेल्स एक जगह नहीं रहते, तो बराबर पत्रों द्वारा एक दूसरे के पास सारी जानकारी भेजा करते थे। ऐसे पत्रों की संख्या हजारों थीं। यह ऐतिहासिक पत्र आज भी मार्क्स के दीर्घ जीवन के अनेक पहलुओं पर स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। मार्क्स के लिखे अनुसार एंगेल्स इंगलैंड पहुँच पत्रिका के सम्पादन में हाथ बँटा रहे थे। मार्क्स का ज्ञान और तजर्बा अगाध था, लेकिन वह अपनी आलोचना करने में बड़े निष्ठुर थे। वह और एंगेल्स आत्मवंचना को बहुत बुरा समझते थे और हर वक्त अपनी गलतियों को देखने के लिए तैयार रहते। 1849 ई. के संघर्षमय जीवन और यूरोप के अनेक देशों में क्रांतियों के निष्फल होने के बारे में मार्क्स ने अपने विचार नई पत्रिका के तीन अंकों में प्रकट किए। एक जगह आलोचना करते हुए मार्क्स ने संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त सारगर्भित शब्दों में कहा है : "जून के दिनों से पहले संविधान का जो पहला मसौदा तैयार किया गया था, उसमें काम पाने के अधिकार की माँग भी सम्मिलित थी। यह सर्वहारा की क्रांतिकारी आकांक्षाओं का पहला मोटा-सा रूप था। पीछे इसे सार्वजनिक समर्थन प्राप्त करने के अधिकार के रूप में परिवर्तित कर दिया गया, लेकिन ऐसा कौन-सा आधुनिक राज्य है, जो अपने भिखमंगों के लिए किसी-न-किसी रूप में समर्थन नहीं करता ? बूर्ज्वा दृष्टिकोण से काम पाने का अधिकार एक फजूल, दयनीय और मन के लड्डू हैं, लेकिन काम पाने के अधिकार के पीछे पूँजी पर अधिकार की माँग खड़ी है, जिसके पीछे उत्पादन साधनों के जब्त करने, और उसपर सम्मिलित मजूर वर्ग का आधिपत्य खड़ा है, जिसका अर्थ है, मजूर-श्रम और पूँजी तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का मनसूख करना।

(3) किंकेल-काण्ड

चौथे अंक (अप्रैल, 1850) में पहुँचते-पहुँचते पत्रिका का पैर लड़खड़ाने लगा था। इस अंक में मार्क्स का एक

छोटा लेख निकला, जिसमें बताया गया था कि यह लेख भावुक जुआचोरों और जनतांत्रिक भड़ाससिंहों में बड़ा क्षोभ प्रकट करेगा। इस छोटे-से लेख में अपनी सफाई में दिए हुए गोट्फ्रीट किंकेल के 7 अगस्त, 1849 के भाषण की तीव्र आलोचना थी। किंकेल विद्रोह में पकड़ा गया। रासटाट में उसपर फौजी कानून से मुकदमा चलाया जा रहा था। किंकेल के दिए हुए भाषण को अप्रैल, 1850 में बर्लिन के किसी पत्र ने छापा था। किंकेल राइख-संविधान के संघर्ष के समय विलिच की स्वयंसेवक सेना में शामिल था, जिसमें एंगेल्स और मोल भी थे। लड़ते समय उसने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। मुर्ग में जिस समय मोल शहीद हुआ, उसी समय किंकेल भी सिर से घायल होकर बन्दी बना। फौजी अदालत ने उसे किले में आजन्म कैद करने की सजा दी। किंकेल ने अपने भाषणों में चापलूसी करते हुए "तत्र महान् श्री राजकुमार हमारे सिंहासन के उत्तराधिकारी" का वाक्य प्रयोग किया था, लेकिन तत्र महान् उसकी इस चापलूसी से जरा भी नहीं प्रभावित हुआ। उसने राजा से कहा कि किंकेल के दण्ड को मनसूख कर उसपर फिर से मुकदमा चलाया जाय, क्योंकि उसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिए था। लेकिन तत्र महान् की यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। किंकेल स्पन्डो के जेलखाने में मई, 1850 को स्थानान्तरित किया गया, जहाँ उसके साथ बहुत कड़ाई का बर्ताव नहीं किया जाता था और वह 'तू' की जगह अब 'तुम' से सम्बोधित करने योग्य कैदी माना जाने लगा था। उसकी बीवी इस बात की कोशिश कर रही थी कि उसके पति को अमेरिका चले जाने के लिए जेल से मुक्त कर दिया जाय। दूसरे प्रभावशाली लोग भी कोशिश कर रहे थे। किंकेल जैसे कमजोर दिल के आदमी की जेल में साँसत किए जाने की बात को लेकर शिक्षित-सम्भ्रान्त व्यक्ति के साथ ऐसा बर्ताव अत्यन्त अनुचित है। मार्क्स ने अपने लेख में लिखा था कि आगस्त राकेल जैसे और भी कितने ही उतने ही शिक्षित-सम्भ्रान्त व्यक्ति जेल में पड़े बारह वर्षों से अधिकारियों द्वारा असह्य पीड़ा से सताए जा रहे हैं, लेकिन उन्होंने क्षमा की बात भी मुँह पर लाने से इन्कार कर दिया। राकेल ने जब सरकार के भीषण अत्याचारों को सहते उसके इशारे पर भी माफी माँगकर बाहर जाने से इन्कार कर दिया, तो सरकार को निर्लज्ज होकर उसे जबर्दस्ती जेल से बाहर करना पड़ा। राकेल जैसे कितने ही स्वतन्त्रता-प्रेमी वीर जेल में सड़ रहे हैं। किंकेल ने तो पहिले मुकदमे के समय ही अपना प्रायश्चित कर लिया था। मार्क्स के इस आक्षेप को कितनों ही ने बुरा समझा। बूर्ज्वाजी ने अपनी थैली खोल दी, और नवम्बर 1850 को रिश्वत देकर कार्ल शुर्ज ने स्पन्डो जेल से किंकेल को भगाने में सफलता प्राप्त की। किंकेल ने सरकार को वचन दिया था कि मैं अमेरिका चला जाऊँगा और फिर कभी राजनीति में भाग नहीं लूँगा। लेकिन, अब वह मुक्त होकर वीर बन चुका था, इसलिए सरकार के खिलाफ फिर आन्दोलन करने को तैयार था।

(4) कम्युनिस्त लीग में फूट

किंकेल को लेकर लन्दन के कितने ही शरणार्थियों में मार्क्स और एंगेल्स के प्रति जो भाव पैदा हुआ था, उसका प्रभाव कम्युनिस्त लीग पर भी पड़ना जरूरी था। लन्दन जाने पर मार्क्स और एंगेल्स पत्रिका के संचालन के अतिरिक्त एक और काम में लगे हुए थे, क्रांति के विफल होने के बाद बहुत-से शरणार्थी विपन्नावस्था में लन्दन पहुँचे हुए थे, उनकी सहायता करना इस समय जरूरी था, इसलिए उन्होंने बावेर, फ्फाण्डर और विचिल की सहायता से एक शरणार्थी-सहायता-कमेटी संगठित की थी। स्वीट्जरलैड ने भी इस समय उदारता से काम लेना छोड़ दिया था, इसलिए इंगलैंड में भागकर आनेवाले शरणार्थियों की संख्या अधिक हो गई थी। मार्क्स और एंगेल्स इस समय कम्युनिस्त लीग को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता महसूस करने लगे थे। 1849 ई. के शरद से ही कम्युनिस्त-लीग के पुराने बहुत-से मेम्बर लन्दन में आ चुके थे। केवल मोल नहीं आया, क्योंकि वह दुश्मनों से लड़ते हुए शहीद हुआ था। शापर 1850 ई. के ग्रीष्म में आया और वर्ष के अन्त में स्वीट्जरलैंड से विलहेल्म वोल्फ भी पहुँच गया था। पुराने मेम्बरों के अतिरिक्त नये मेम्वरों को भी लीग में लिया गया, जिनमें आगस्त विलिच भी था। एंगेल्स उसके अड्जुटेंट रह चुके थे। उसने विद्रोह में स्वयंसेवक सेना का सुन्दर रीति से संचालन किया था। वैसे वह बड़े ही काम का आदमी था, लेकिन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में उसका बहुत स्पष्ट विचार नहीं था। नये लिए हुए तरुणों में थे : व्यापारी कोनंड्राड शम्म, स्कूल-मास्टर विलहेल्म पीपर और

विल्हेल्म लीवक्नेरण्ट। लीवक्नेरण्ट ने जर्मन विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। अन्त में बार्डेन के विद्रोह में उसने भाग लिया और फिर स्वीट्जरलैंड भाग गया। अगले जीवन में वह तरुण मार्क्स के घनिष्ठ सम्बन्ध में आया। वह तो आजीवन मार्क्स का परमभक्त शिष्य बना रहा। कोनड्राड शम्म तपेदिक से जवानी ही में मर गया। उसके लिए मार्क्स के दिल में काफी स्नेह था। पीपर मार्क्स के अनुसार एक अच्छा लड़का (बों गारसा) था।" गौटिंगेन के एडवोकेट योहानेस निकेल का मार्क्स से परिचय हुआ। वह कम्युनिस्त लीग में शामिल हुआ, लेकिन अन्त में पीपर की तरह वह भी नरमदली बन गया। मार्क्स कठोर यथार्थवादी थे। किसी बात का फैसला वह भावुकता से नहीं करते थे। गम्भीर सैद्धान्तिक दृष्टि और व्यापक तजर्बे ने उन्हें बतला दिया था कि सर्वहारा क्रांति–जिसे कि वस्तुतः क्रांति का नाम दिया जा सकता है–कभी मध्यवर्ग के व्यक्तियों पर विश्वास नहीं कर सकती, क्योंकि वह बालू की भीत है : जिस वक्त चारों तरफ सफलता और वाहवाही दिखलाई पड़ती है, वह घोर क्रांतिकारी और कम्युनिस्त वन जाते हैं; लेकिन जैसे ही परिस्थिति बदलती है, वह दुम दबाकर भाग खड़े होते हैं, अथवा छिपकर पार्टी और उसके उद्देश्यों को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते हैं। आज 103 वर्ष बाद भी हम इस सत्य को किसी भी देश और प्रदेश में देख सकते हैं।

कम्युनिस्त लीग के पुनः स्थापित करने के बाद मार्च, 1850 में लीग की केन्द्रीय कमेटी की ओर से मार्क्स और एंगेल्स द्वारा तैयार किया सरकुलर (परिपत्र) निकाला गया, जिसमें लिखा गया था : "क्रांतिकारी कमकर पार्टी निम्न-मध्यमवर्गीय जनतन्त्रतावादियों के साथ उस शत्रु से लड़ने में सहयोग करेगी, जिसको दोनों हटाना चाहते हैं। लेकिन, जहाँ उसका अपना हित माँग करेगा, वहाँ वह उसका विरोध भी करेगी।" निम्न-मध्यमवर्ग की अविश्वसनीयता के बारे में बतलाते हुए परिपत्र में कहा गया था कि यह वर्ग सफल क्रांति को पूँजीवादी समाज के सुधार में इस्तेमाल करेगा, जिसमें कि उसके लिए जीवन अधिक आसान और सुखमय हो, कुछ हद तक कमकरों के लिए भी इस्तेमाल करेगा। लेकिन सर्वहारा इससे इतने से सन्तुष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि जनतन्त्रतावादी निम्न-मध्यमवर्ग की माँगें बहुत सीमित हैं। जब वह प्राप्त हो जाएँगी, तो फिर वह जल्दी ही क्रांति से अपनी आँखें फेर लेगा। इसके विरुद्ध कमकरों की क्रांति को तब तक चालू रखना होगा, "जब तक कि सम्पत्तिवाले वर्ग से सभी छोटी या बड़ी राजभक्ति छीन नहीं ली जाती, और शासन सर्वहारा तथा कमकरों के संगठन के हाथ में नहीं आ जाता–यह केवल एक ही देश में नहीं बल्कि सारी दुनिया के अधिकांश महत्त्वपूर्ण देशों में–और क्रांति इतनी दूर तक सफल नहीं हो जाती, जिसमें कि उन देशों के कमकरों के बीच प्रतियोगिता बन्द न हो जाए और कम-से-कम उत्पादन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन उनके हाथ में नहीं आ जाएँ।"

सरकुलर में कमकरों को सावधान किया गया था कि निम्न-मध्यमवर्ग के शान्ति और समझौते के उपदेशों से धोखा न खाएँ अथवा बूर्ज्वा जनतान्त्रिकता के लग्गू-भग्गू न बन जाएँ। ""संघर्ष के दौरान और उसके तुरन्त बाद कमकरों को सवसे अधिक और यथासम्भव बूर्ज्वा-वर्ग के शान्ति के सभी प्रयत्नों का विरोध करना होगा, और जनतान्त्रिकतावादियों को अपने आतंकवादी शब्दों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए बाध्य करना होगा।…" राष्ट्रीय एसेम्बली के चुनाव में मजदूरों को सव जगह अपना उम्मीदवार खड़ा करना चाहिए चाहे सफलता की आशा भी न हो। इससे जनतन्त्रतावादियों और सरकारपरस्तों की पोल खोलने का अच्छा मौका मिलेगा। सरकुलर में यह भी बतलाया गया था कि सामन्ती जमींदारियों के उठा देने में जब क्रांति सफल हो जाए, तब भी महान् फ्रेंच-क्रांति का अनुकरण करते हुए इन जमींदारियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में करके किसानों की वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में नहीं बाँटना चाहिए, क्योंकि इससे देहाती सर्वहारा की श्रेणी बनी रहेगी और किसानों की निम्न-मध्यमवर्गीय मनोवृत्ति जमींदारों को पैदा करेगी। कमकरों को माँग करनी होगी कि सामन्ती इलाकों को जब्त करके उन्हें सरकार के हाथ में देना चाहिए जो उन्हें कमकर-उपनिवेशों के रूप में परिणत करे और इस सम्मिलित भूमि को सर्वहारा बड़े पैमाने की खेती में लगाएँ। इस प्रकार बूर्ज्वा सम्पत्ति-सम्बन्धों के छिन्न-भिन्न होते समय सम्मिलित मिल्कियत को एक मजबूत आधार पर कायम किया जा सकेगा।

इस सरकुलर को लेकर बावर जर्मनी गया। उसे अपने काम में बड़ी सफलता हुई। उसने वहाँ कम्युनिस्त

लीग के टूटे हुए सम्बन्धों को पुनः स्थापित किया और कितने ही नये सम्बन्ध कायम किए। कमकरों, किसानों, दैनिक मजूरों एवं खेल-कूद की सभाओं के ऊपर भी उसने प्रभाव डाला। स्टेफन बोर्न द्वारा स्थापित कमकर-विरादरी के अत्यन्त प्रभावशाली सदस्य भी लीग में शामिल हो गए। जून, 1850 की केंद्रीय कमेटी के कागज-पत्रों से पता लगता है कि जर्मनी के कितने ही शहरों में लीग के फिर पैर जम गए और कई जगह कमेटियाँ भी कायम हो गईं : हम्बुर्ग, श्वेरिन, मेकलेनबुर्ग, ब्रेस्ला (सिलेसिया), लाइपजिग, सेक्सनी, बर्लिन, नूरेम्बर्ग (बवारिया) और कोलोन (राइनलैंड-वेस्टफालिया) में उन प्रदेशों के संचालन के लिए कमेटियाँ भी कायम हो गईं। यह भी पता लगता है कि लीग का सबसे जबर्दस्त प्रभाव लन्दन में था।

लन्दन के शरणार्थियों को वहुत विश्वास था कि जर्मनी में क्रांति फिर शुरू हो जाएगी और हमें स्वदेश लौटने का मौका मिलेगा। लेकिन उसमें उन्हें 1850 ई. के ग्रीष्म तक निराश होना पड़ा। और देशों में भी क्रांति की सम्भावना नहीं दीख पड़ी। इस सबका प्रभाव लीग के ऊपर बहुत वुरा पड़ा। आपस में मतभेद और खटपट शुरू हो गई, जिससे केन्द्रीय कमेटी भी नहीं वच सकी। 15 सितम्बर, 1850 को केन्द्रीय कमेटी का जो अधिवेशन हुआ, उसमें साफ दो दल हो गए—एक दल में छह सदस्य और दूसरे में चार। मार्क्स, एंगेल्स, वावर, एकेरियस, फ्रांडेर जैसे लीग के पुराने नेता कोनड्राड शम्म के साथ एक ओर हुए और विलिच, शापर, फ्रेंकेल और लेमान दूसरी ओर—जिनमें शापर ही पुराने कम्युनिस्तों में से था। बहुमत दल ने लीग की रक्षा करने के लिए केन्द्रीय नेतृत्व को कोलोन में स्थानान्तरित करने का विचार किया। कोलोन जिला कमेटी ने इस सुझाव को स्वीकार कर एक नई केन्द्रीय कमेटी निर्वाचित भी कर ली, लेकिन अल्प मत ने बहुमत के विचार को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वह लन्दन में अपने को अधिक दृढ़ समझता था।

'नोये राइनिश रिव्यू' के पाँचवें और छठे अंकों में मार्क्स और एंगेल्स ने अपने दृष्टिकोण को रक्खा था। यह दोनों अंक इकट्ठा नवम्बर, 1850 में निकले थे, जिसके साथ पत्रिका ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। इस जोड़े अंक में मार्क्स ने एक लेख में 1525 ई. के किसान-संग्राम का ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया था। इस लेख में मार्क्स ने बड़े उत्साह के साथ लिखा था : "सर्वहारा सड़क की मोर्चाबन्दियोंवाले युद्धों को लड़ने से पहले अपने शासन के आगमन को कितनी ही बौद्धिक विजयों द्वारा घोषित करता है।" मार्क्स और एंगेल्स ने इस महत्त्वपूर्ण अन्तिम अंक में राजनीतिक क्रांति और प्रतिक्रांति के आर्थिक कारणों की बड़ी सुन्दर विवेचना करते हुए बतलाया कि क्रांति आर्थिक संकट से पैदा हुई थी, जब कि प्रति-क्रांति का आधार है उत्पादन में एक नया बढ़ाव : "चारों ओर जो आम समृद्धि इस वक्त फैली हुई है और जिसके कारण बूर्ज्वा-समाज की उत्पादक शक्तियाँ—बूर्ज्वा समाज के ढाँचे के अन्दर जहाँ तक सम्भव है, उतनी तेजी से बढ़ रही हैं, उसमें किसी वास्तविक क्रांति का प्रश्न नहीं उठ सकता। ऐसी क्रांति केवल उसी काल में सम्भव है, जब कि दो बातें आपस में भिड़ जाएँ, जब कि आधुनिक उत्पादक शक्तियों की बूर्ज्वा उत्पादन के ढंग से भिड़न्त हो जाये।…एक नये संकट के परिणामस्वरूप ही एक नई क्रांति सम्भव है। लेकिन यह उतनी ही निश्चित है, जितना कि स्वयं आर्थिक संकट का आना।"

1 नवम्बर, 1850 ई. को पत्रिका का अंतिम अंक लिखा गया और उसके साथ वह खतम हो गई। उसके साथ ही दो शताब्दियों के लिए उसके दोनों लेखों का सीधा और तुरन्त का सहयोग खतम हो गया। एंगेल्स अपने बाप के फर्म एरमेन में काम करने चले गए और मार्क्स ने लन्दन में रहकर अपना सारा समय और शक्ति वैज्ञानिक अध्ययन तथा अपनी महान् कृतियों की तैयार में लगा दिया।

(5) आर्थिक कठिनाइयाँ

नवम्बर, 1850 ई. में मार्क्स अपने जीवन का आधा भाग खतम कर चुके थे, वह अब 32 वर्ष के थे। फरवरी, 1851 में मार्क्स को पत्र लिखते हुए एंगेल्स ने कहा था : "आदमी इसे और भली तरह देख सकता है कि निर्वासन एक ऐसा जीवन है, जिसमें हर एक आदमी अवश्य बेवकूफ, गदहा, कमीना, नीच और पाजी बन जाता है। अगर वह अपने को उससे पूर्णतया अलग न कर एक स्वतन्त्र लेखक बनने में सन्तोष नहीं करता,

अपने दिमाग को किसी वात के लिए, यहाँ तक कि तथाकथित क्रांतिकारी पार्टी के लिए भी परेशान नहीं करता।" इसके जवाब में मार्क्स ने लिखा था : "मैं सार्वजनिक तौर से इस अलग-अलग रहने को—जिसमें कि हम दोनों अपने को पा रहे हैं—वहुत पसन्द करता हूँ। यह विल्कुल हमारे मनोभाव और सिद्धान्तों के अनुसार है। पारस्परिक समझौतावादी दिखावे के लिए अधकचरे काम को सहन करने का ढंग और जनसाधारण की आँखों में उन सभी गदहों के साथ जिम्मेवारी में हिस्सेदार बनने की आवश्यकता अव खतम हो गई है।" इसपर एंगेल्स ने लिखा था : "हमें अब फिर एक वार बहुत दिनों बाद पहली बार यह दिखलाने का अवसर मिला है कि हमें जनख्याति की आवश्यकता नहीं; और न किसी देश की किसी पार्टी से समर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता है। इन छोटी-छोटी बातों से हमारी स्थिति बिल्कुल स्वतन्त्र है। अब से हम अपने-आपके प्रति जिम्मेदार हैं। ... वर्षों तक हम ऐसे कार्यरत रहे कि मानो क्रेथी और प्लेपी हमारी पार्टी है, यद्यपि हमारी कोई पार्टी और लोग नहीं थे, जिन्हें कि हम अपने दल, कम-से-कम कायदे के तौर पर मानते, और जो हमारे उद्देश्य के प्रारम्भिक नियमों को भी समझते।"

इसके बाद मार्क्स और एंगेल्स अव अलग रहने लगे। लेकिन इस अवस्था में भी वह पूर्णतया एकान्तवासी हो गए थे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इंग्लैंड के चार्टिस्ट पत्रों में वह लेख लिखा करते थे। वह यह भी चाहते थे, "नोये राइनिशे रिव्यू' सदा के लिए न मर जाय, इसके लिए बार्जल (स्वीट्ज़रलैंड) के प्रकाशक शोबेलित्ज ने जिम्मेदारी भी ली, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इसी तरह और जगहों पर भी किया प्रयत्न सफल नहीं रहा। कोलोन के पत्र 'वेस्ट-डाशे जाइटुंग' के सम्पादक हेरमान बेकर ने इच्छा प्रकट की, कि मार्क्स की कृतियों की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय, लेकिन मई, 1851 में बेकर गिरफ्तार कर लिया गया और मार्क्स की 'संचित ग्रंथावली' की एक छोटी-सी पुस्तक ही निकल पाई। चार-चार सौ पृष्ठों की दो जिल्दों में ग्रंथावली निकालने की योजना थी। वह दस भागों में निकलनेवाली थी और 15 मई तक ग्राहक बन जानेवालों को प्रत्येक भाग का एक दाम आठ (चाँदी का) ग्रोशेन निश्चित किया गया था। वैसे आम बिक्री का दाम एक डालर और पन्द्रह (चाँदी का) ग्रोशेन प्रति जिल्द रक्खा गया था। पहला भाग निकलते ही बिक गया था। योजना बनाते हुए मार्क्स को केवल अपनी कृतियों को संगृहीत कर देने का ही ख्याल नहीं था, बल्कि उस वक्त उनके लिए जीविका का भारी प्रश्न था। मार्क्स-परिवार भारी दरिद्रता में पड़ा हुआ था। नवम्बर, 1849 में मार्क्स दम्पति का चौथा बच्चा (पुत्र) गीडो पैदा हुआ, जिसपर उसकी माँ ने लिखा था : "बेचारा छोटा-सा फरिश्ता इतनी तकलीफों और चिन्ताओं में पाला गया, जिससे वह सदा वीमार और रात-दिन भीषण यंत्रणा में पड़ा रहता था। जव से वह दुनिया में आया, एक रात भी वह ठीक से नहीं सो सका और सोया भी तो एक समय दो या तीन घंटे से अधिक नहीं।" जन्म के एक वर्ष बाद यह लड़का मर गया। वह गरीबी पर बलिदान हुआ, इसे माता-पिता जानते थे। दुनिया को गरीबी के जीवन से निकालकर सुखी बनाने के प्रयत्न करनेवाले को स्वयं अपने कंधे पर गरीबी का भार उठाना आवश्यक था।

अब परिवार में दाने-दाने के लाले पड़ रहे थे, चीजें बन्धक रख या वेचकर अन्न का दाना मुँह में डालने की भी कितनी बार नौबत नहीं थी। चेल्सिया में जिस घर में पहले-पहल मार्क्स-परिवार रहने लगा था, उसके मालिक ने उन्हें अत्यन्त निष्ठुरता और बर्बरतापूर्वक घर से निकलवा दिया, यद्यपि मार्क्स ने वस्तुतः किराया बाकी नहीं रक्खा था। उन्होंने मूल किरायेदार को किराया दे दिया था, लेकिन उसने भूमिपति को अदा नहीं किया। बहुत दौड़-धूप करने पर लसेस्टर-स्क्वायर के पास लीसेस्टर-स्ट्रीट में एक जर्मन होटल में उन्हें कुछ समय के लिए शरण मिली, फिर वहाँ से गरीबों के मोहल्ले सोहो-स्क्वायर की 28 डीन स्ट्रीट में चले गए। अगले छह वर्षों के लिए डीन स्ट्रीट के ये दो कमरे परिवार को सर्दी-गर्मी से बचाते रहे। मार्क्स केवल अपने आदर्श और विचारों के लिए मारे-मारे फिरते रहे; लेकिन उन्होंने इसके लिए कभी अफसोस नहीं किया। वह जानते थे कि यह मूल्य हमें अदा करना ही होगा, सर्वहारा के सगे भाई-वन्द बनने के लिए इस जीवन की आवश्यकता है।

सिर के ऊपर छत तो मिल गई, लेकिन आर्थिक विपत्तियाँ बढ़ती ही गईं। अक्टूबर, 1850 के अन्त

में मार्क्स ने वेडेमेयर के पास फ्रांकफोर्ट (माइन) में लिखकर कहा कि "वहाँ खानदान के चाँदी के बर्तन और दूसरी चीजें जो बन्धक रक्खी हुई हैं, उन्हें अच्छी कीमत पर बेच दो, केवल छोटी जेनी के चम्मच आदि की एक छोटी-सी सन्दूकची को रख छोड़ो। इस समय मेरी स्थिति ऐसी है, कि मुझे जैसे भी हो पैसा प्राप्त करना चाहिए जिसमें कि मैं अपने काम को जारी रख सकूँ।" और काम क्या था, सर्वहारा के लिए 'कपिटाल' (पूँजी) जैसे अमर अनमोल रत्न के लिखने के लिए सामग्री-संचय करना। इसी समय अपने बन्धु की इस स्थिति को देखकर एंगेल्स ने भी निश्चय कर लिया कि चाहे नरक में जाना पड़े, लेकिन मार्क्स की आर्थिक सहायता के लिए मुझे अब कुछ करना जरूर है। वह अब तक अपने पिता के कपड़े की मिल के व्यवसाय को एक आदर्शवादी साम्यवादी के तौर पर बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे, लेकिन अब उन्होंने उस घृणा को घोलकर पी लिया और उस 'नरक व्यवसाय' में पड़ने के लिए वह मान्चेस्टर के लिए चल पड़े। इस विपत्ति में एंगेल्स को छोड़कर दूसरे सहायता देनेवाले मित्र बहुत कम मिले। 1850 ई. में जेनी ने वेडेमेयर को लिखा था : "जो चीज मुझ पर सबसे अधिक चोट पहुँचाती है, मेरे हृदय को वेधकर लहूलुहान कर देती है, वह यही है कि मेरा पति कितनी ही छोटी-छोटी कठिनाइयों के लिए परेशान है।। उसकी सहायता के लिए थोड़ी-सी चीज भी पर्याप्त है, लेकिन जो दूसरों की हमेशा खुले दिल से सहायता करता रहा, वह अब स्वयं असहाय छोड़ दिया गया है। कृपया हेर वेडेमेयर, तुम यह न सोचो कि हम किसी से कुछ माँग रहे हैं, लेकिन कम-से-कम मेरे पति ने जिनको इतने विचार और समय पर सहायता दी है, उन्हें उनकी पत्रिका में कुछ अधिक व्यावसायिक उत्साह और दिलचस्पी तो दिखानी चाहिए।··· इससे मेरा दिल दुखता है, लेकिन मेरा पति और ही तरह सोचता है। उसका विश्वास भविष्य के प्रति कभी भी–सबसे भयंकर क्षणों में भी–नहीं उठा, वह हमेशा सुमन रहता है और बहुत आनन्द अनुभव करता है, जब कि मुझे प्रसन्न और हमारे प्यारे बच्चों को मेरे साथ मचलते देखता है।" जेनी के यह कष्ट कुछ क्षणों, कुछ घड़ियों, कुछ दिनों के नहीं थे, बल्कि वर्षों उस तपस्विनी ने इसी तरह परिवार के कष्टों में घुलते हुए बिताया। चार-चार बजे रात तक जागकर लिखा-पढ़ी करनेवाले पति और अपने विचारों के कारण उसके सोने के संसार को मिट्टी करनेवाले पति के लिए उसे कभी भी पछतावा नहीं हुआ। वह हमेशा कोशिश करती रही कि मार्क्स अपने महान् काम को निर्बाध रूप से पूरा करें। सारे मित्र जिस वक्त हाथ छोड़ बैठे थे, उस वक्त भी जेनी छाया की तरह अपने पति के दुःखों और चिन्ताओं के अधिक भाग को अपने सिर पर वहन करती थी, जब शत्रु मार्क्स को चारों ओर से प्रहार करके जर्जर करते, उस वक्त भी वह पति की ढाल बनती।

अगस्त, 1851 में मार्क्स ने फिर वेडेमेयर को लिखा था : "तुम्हें मालूम होगा कि मेरी स्थिति कितनी निराशापूर्ण है। यदि यही अवस्था देर तक रही, तो मेरी स्त्री की हालत बहुत बुरी हो जाएगी। अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दिन-प्रतिदिन जिन संघर्षों और कठिनाइयों का सामना लगातार करना पड़ रहा है, उसके कारण वह कृश और निर्बल होती जा रही है। इस सबके ऊपर मेरे विरोधियों की नीचता अपना प्रभाव डाल रही है। वह मेरे ऊपर किसी सच्चाई से आक्रमण करने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि अपनी क्षमता के कारण मेरे प्रति सन्देह पैदा करते, मेरे बारे में बड़े ही अवर्णनीय कलंकों को फैलाते, बदला लेने की कोशिश करते हैं।··· जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इन सारी बातों पर हँस सकता हूँ, उनसे मैं अपने काम में जरा भी बाधा नहीं पड़ने देता। लेकिन तुम सोच सकते हो, कि इससे मेरी स्त्री का भार हल्का नहीं होगा। वह बीमार है। उसके ज्ञानतन्तु दुर्बल हो गए हैं, वह सवेरे से शाम तक भयंकर दरिद्रता से लोहा लेने के लिए मजबूर है।"

इसके कुछ महीने पहले (मार्च में) मार्क्स को एक लड़की–फ्रांजिस्का–पैदा हुई। यद्यपि प्रसव में कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन प्रसूता बहुत बीमार थी–"शारीरिक कारणों से उतना नहीं जितना कि मानसिक कारणों से।" मार्क्स ने विकल हो बड़ी खिन्नता के साथ उस दिन एंगेल्स को लिखा था कि घर में एक पैसा भी नहीं है।

इन कठिनाइयों और चिन्ताओं का भार मार्क्स जैसे स्वस्थ पुरुष के लिए भी बर्दाश्त से बाहर की चीज

हो जाता है, यदि वैज्ञानिक अध्ययन और भविष्य की शुभाशाएँ उन्हें समाहित न करतीं। वह रोज 9 बजे सवेरे उस समय की दुनिया के सवसे वड़े पुस्तकालय और संग्रहालय–ब्रिटिश म्यूजियम–में बैठते और 7 बजे शाम को उठते। इन सब घंटों में सचमुच ही पुस्तक-पाठ के अतिरिक्त गला तर करने की कोई चीज उनको नहीं मिलती होगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। किंकेल, विलिच जैसे कितने ही उस समय और आज के भी क्रांतिकारी समाजवादी थे और हो सकते हैं, जो कि अपने ज्ञान को गहरा करने के लिए कोई माथापच्ची करना नहीं चाहते। मार्क्स ने वर्षों तक इस गम्भीर अध्ययन को जारी रखते हुए ऐसे लोगों के बारे में लिखा था–"यह स्वाभाविक है कि जनतान्त्रिकतावादी बुद्धुओं को इस तरह की किसी चीज की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उनको प्रेरणा 'ऊपर से' आती है। इन विचारों को अर्थशास्त्र और इतिहास से माथापच्ची करने की क्या आवश्यकता ? जैसा कि योग्य विलिच मुझसे कहा करता था–'सभी बातें इतनी आसान हैं।" शायद यह उनके गड़बड़घोटालेवाले दिमागों में, क्योंकि वे वस्तुतः महान् बुद्धू हैं।" इस समय मार्क्स को अपने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' को कुछ सप्ताहों में समाप्त कर देने की आशा थी और उसके लिए किसी प्रकाशक को ढूँढ़ रहे थे, जिसमें उन्हें निराश होना पड़ा।

मई, 1851 में मार्क्स का पूर्ण विश्वासपात्र और सच्चा मित्र फर्डिनांड फ्राइलीग्रथ लन्दन आया। अगले कुछ वर्षों तक दोनों एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में रहे, लेकिन फिर एक के बाद एक बुरे समाचार आने लगे। 10 मई को लाइपजिग में कम्युनिस्ट लीग के प्रतिनिधि के तौर पर आन्दोलन के लिए गया दर्जी नोथयुंग पकड़ा गया। उसके पास जो कागज-पत्र मिले, उनसे पुलिस को लीग के विद्यमान होने का भेद मिल गया और थोड़े ही समय बाद कोलोन में केन्द्रीय कमेटी के मेम्बर पकड़ लिए गए। इसी समय कवि फ्राइलीग्रथ वहाँ से भाग निकला। जब वह लन्दन में आया, तो जर्मन निर्वासितों के भिन्न-भिन्न दलों ने उसे अपनी तरफ खींचने के लिए एड़ी से चोटी तक का जोर लगाया। वह समझते थे कि प्रसिद्ध कवि को अपने में लाकर हमें बहुत फायदा रहेगा। लेकिन कवि ने उनको साफ कह दिया, मैं तो मार्क्स और उनकी मंडली का हूँ। 14 जुलाई को (1851) आपसी झगड़े को मिटाने के लिए जो सभा हुई थी, उसमें भी कवि ने शामिल होने से इन्कार कर दिया। इस सफलता ने कितने ही और भी नये मतभेद पैदा कर दिए। 20 जुलाई को रूगे के बौद्धिक नेतृत्व में आन्दोलन क्लब स्थापित हुई, और 27 जुलाई को किंकेल के बौद्धिक नेतृत्व में प्रवासी क्लब बनाई गई। ये दोनों क्लबें जल्दी ही जर्मन-अमेरिकन पत्रों के कालमों में आपस में गुत्थमगुत्था करने लगीं। मार्क्स इस मेढक और मूस के युद्ध को घृणा की दृष्टि से देखते, यह स्वाभाविक था। मार्क्स किंकेल की करतूतों को बड़े ध्यान से देख रहे थे। स्पण्डो के जेल से भागने के बाद किंकेल ने लन्दन में क्रांति वीर का पार्ट अदा करना शुरू किया था। कवि मजाक करते हुए उसके बारे में कहता था : 'कभी पब (भट्ठीखाना) और कभी क्लब में।' किंकेल ने विलिच की सहायता से एक भारी जाल का तानाबाना तैयार किया। 14 सितम्बर (1851 ई.) को किंकेल जर्मन राष्ट्रीय कर्ज जमा करने के उद्देश्य से न्यूयार्क में उतरा। जर्मनी में गणराज क्रांति करने के लिए पहले वह बीस हजार डालर एकत्र करना चाहता था। कर्ज के उगाहने के लिए प्रचार करते समय दोनों गुरु-चेले उत्तरी राज्यों में दासता के विरुद्ध और दक्षिणी राज्यों में उसके पक्ष में उपदेश देते रहे। जिस समय किंकेल अमेरिका की सोने की खानों में लूट के लिए पहुँचा था, उसी समय मार्क्स का अमेरिका के साथ दूसरी तरह से आय का सम्बन्ध स्थापित हुआ था। न्यूयार्क ट्रिब्यून उत्तरी राज्यों में उस वक्त सबसे अधिक छपनेवाला दैनिक था, जिसके प्रकाशक डाना से मार्क्स का कोलोन में परिचय हो गया था। न्यूयार्क ट्रिब्यून ने मार्क्स को बरावर लेख देने के लिए नियमित पारिश्रमिक देने का निश्चय किया। अभी मार्क्स की अंग्रेजी अच्छी नहीं थी, इसलिए जर्मनी में क्रांति और प्रतिक्रांति के बारे में मार्क्स ने जो लेख लिखे, उनकी अंग्रेजी ठीक करने का काम एंगेल्स ने अपने ऊपर लिया। कई साल तक मार्क्स अपने लेखों को न्यूयार्क ट्रिब्यून में देते रहे।

(6) अठारहवाँ वर्ष[1]

मार्क्स का पुराना मित्र ब्रुशेल्स का योजेफ वेडेमेयर सारे क्रांति के वर्षों में फ्रांकफुर्त-आम-मैन में एक जनतंत्रतावादी अखबार के सम्पादक के तौर पर बड़ी हिम्मत के साथ काम करता रहा। लाइपजिग में जो कागज मिले थे, उनसे पता लग गया, कि वेडेमेयर भी कम्युनिस्ट लीग का सक्रिय सदस्य है। इसपर खुफिया पुलिस उसके पीछे पड़ी। पहले वेडेमेयर ने साखजेन हाउजेन नामक एक छोटी एकान्त सराय में शरण ली, समझा कुछ दिनों में तूफान उतर जाएगा। इस समय वह राजनीतिक अर्थशास्त्र पर एक सरल पुस्तक लिखने में लगा हुआ था। लेकिन तूफान दबने की जगह और जोर पकड़ता गया। वेडेमेयर दो छोटे-छोटे बच्चों का बाप था। उसने स्वीट्ज़रलैंड या लन्दन में जीविका कमाने की आशा न होने से अमेरिका जाने का निश्चय किया। मार्क्स और एंगेल्स दोनों ऐसे मित्र को हाथ से खोना नहीं चाहते थे। मार्क्स ने वहुत सोचा कि कहीं उसे इंजीनियर रेंलवे सर्वेयर या और कोई नौकरी मिल जाय। लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। जव वेडेमेयर के अमेरिका जाने को छोड़कर और कोई रास्ता नहीं रहा, तो एंगेल्स ने कहा : हमें न्यूयार्क में एक विश्वासपात्र आदमी की आवश्यकता है। आखिर, न्यूयार्क भी दुनिया से बाहर नहीं है और हम जानते हैं कि जब आवश्यकता होगी, तो वेडेमेयर तैयार रहेगा। वेडेमेयर 19 सितम्बर को हार्वे से जहाज पर बैठा और चालीस दिनों बाद तूफानी समुद्र में होते उसका जहाज न्यूयार्क पहुँचा। 31 अक्टूबर को मार्क्स ने चिट्ठी लिखकर वेडेमेयर से कहा कि न्यूयार्क में पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक का काम शुरू करो, और नोये राइनिशे जाइटुंग तथा नोये राइनिशे रिव्यू से अच्छे-अच्छे लेखों को जमा करके उन्हें प्रकाशित करो। वेडेमेयर ने अपने गुरु के सुझाव को स्वीकार करते हुए लिखा कि यद्यपि बनियापन का मनोभाव जितना अधिक अमेरिका में है, उससे मुझे इस व्यवसाय से घृणा होती है; तथापि मुझे आशा है कि जनवरी (1852 ई.) से एक साप्ताहिक डी रिवोल्यूशन (क्रांति) के नाम से निकालना चाहता हूँ, उसके लिए जितना जल्दी हो सके, आप लेख भेजें। मार्क्स ने अपने सभी लेखक मित्रों को प्रेरित किया। एंगेल्स ने भी लेख लिखे। फर्डिनांड फ्राइलीग्रथ ने एक कविता तैयार की, एकेरियस, वीर्थ और दोनों वोल्फों ने भी कलम चलाई। स्वयं अपने लिखने के लिए मार्क्स ने लुई बोनापार्ट का 18वाँ ब्रूमेर अर्थात् 2 दिसम्बर को हुए बोनापार्टी कूप-दे-ता (राजविराजी) पर लेख लिखने का निश्चय किया। इस राजविराजी पर फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक विक्तर ह्यूगो और प्रूधों ने भी कलम चलाई थी; लेकिन वह उसकी गहराई तक नहीं पहुँच सके थे।

मार्क्स की इस पुस्तक की भाषा अत्यन्त सजीव है। इतिहास की अपनी भौतिकवादी दृष्टि के कारण वह इस समसामयिक घटना की तह तक पहुँचने में सफल हुए। जैसा ही इसकी भाषा में चमत्कार है, वैसा ही विषय भी सुन्दर और ज्ञानवर्द्धक है। पहले अध्याय में तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है : अठारहवीं शताब्दी जैसी बूर्ज्वा-क्रांतियाँ एक के बाद एक सफलताएँ प्राप्त करती नये किले दखल करती आगे वढ़ती गईं। उनका नाट्कीय प्रभाव एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर है। मनुष्य और चीजें ज्वाला की जगमगाहट में जड़ी हुई-सी मालूम होती हैं। प्रतिदिन और सर्वत्र आत्मविभोरता-सी फैली दिखाई पड़ती है, लेकिन क्षणिक ही। जल्दी ही वह अपने मध्याह्न पर पहुँचती हैं, फिर अपनी तूफानी कार्रवाइयों के परिणामों को विचारपूर्वक आत्मसात् कैसे करें, इसे सीखने के पहले समाज में एक दीर्घव्यापी अवसाद आ पड़ा है। किन्तु 19वीं शताब्दी की सर्वहारा क्रांतियाँ लगातार अपनी आलोचना करती हैं, अपने रास्ते में बराबर अपने को रोकती रहती हैं, जो पहले ही पूरा किया जा चुका है, मानो उसे फिर से शुरू करने के लिए पुनः उसी जगह लौट आती हैं। पहले प्रयत्नों में अपनी बेमनता, निर्बलता और हीनता दिखलाने की पूरी निष्ठुरता के साथ निन्दा करती हैं। जान पड़ता है, वह अपने शत्रु को इसलिए धरती पर पटकती हैं, कि वह पृथ्वी से नई शक्ति प्राप्त करके और अधिक शक्तिशाली बन उनके सामने खड़ा होकर फिर भिड़न्त करे और अपने निजी उद्देश्यों के अनिश्चित और जवर्दस्त स्वरूप के कारण तब तक पुनः और पुनः भिड़न्त करें, जव तक वह ऐसी स्थिति न पैदा कर दे, जव कि पीछे हटना असम्भव

---

1. The Eighteen Brumeire.

हो जाय और परिस्थितियाँ चिल्लाकर कहने लगें : चाहे जो कुछ हो ! Hic Rhodues, hic Sapta···अगर सम्राज्ञी चादर लुई बोनापार्ट के कन्धों पर पड़ी तो नेपोलियन की काँसे की मूर्ति वाँदोम के खम्भे से गिरकर चूर-चूर हो जाएगी।

यह अद्‌भुत पुस्तक मार्क्स ने उस समय लिखी थी, जब कि पैसे की कमी के कारण वेडेमेयर को अपना साप्ताहिक बन्द करने के लिए मजबूर होना पड़ा : "शरद के आरम्भ से ही जो भीषण बेकारी यहाँ फैली है, उसके कारण कोई भी नया अध्यवसाय आरम्भ करना बहुत कठिन है। इसके ऊपर हाल में कमकरों को भिन्न-भिन्न तरीके से लूटा गया है, पहले किंकेल ने ऐसा किया, फिर कौमुत (हंगेरियन) ने। दुर्भाग्य से अधिकांश मजूर अपने विरोधी प्रचार के लिए एक डालर दे सकते हैं, जब कि अपने हितों की रक्षा के लिए एक सेन्ट। अमेरिका की स्थितियाँ लोगों पर असाधारण बुरा भ्रष्टाचारिक प्रभाव डालती हैं, और उसके साथ ही इस अहंकार को भी पैदा करती हैं, कि पुरानी दुनिया के उनके साथियों से अमेरिकन बेहतर हालत में हैं।" तब भी वेडेमेयर ने अभी हिम्मत नहीं छोड़ी, और दो सौ डालर हाथ में आ जाने पर वह एक मासिक निकालने की फिकर में पड़ा।

इस तरह अवस्था निराशापूर्ण थी, जब कि मार्क्स की लेखनी अठारहवीं 'ब्रुमेर' लिख रही थी। इसी समय जनवरी के आरंभ में मार्क्स बीमार हो गए। वह बड़ी मुश्किल से कलम चला सकते थे : "वर्षों से मुझे किसी चीज ने इतनी बुरी तौर से नहीं पछाड़ा जैसा कि यह अभागी बवासीर, इतना तो भीषण फ्रेंच असफलता के समय भी नहीं हुआ था।" 27 फरवरी को उन्होंने लिखा था : "मेरी स्थिति अब उस स्थान पर पहुँच चुकी है, जब कि मैं घर से बाहर नहीं निकल सकता, क्योंकि मेरे कपड़े बन्धक रक्खे हुए हैं और साख न रह जाने के कारण मैं मांस नहीं खा सकता।" फिर भी 25 मार्च को वह अपनी पुस्तक के हस्तलेख के अन्तिम भाग को वेडेमेयर के पास भेजने में सफल हुए, साथ ही वेडेमेयर के नये पुत्र के जन्म के बारे में मार्क्स ने अभिनंदन करते हुए लिखा : "वह ऐसे समय आया, जिस क्षण को छोड़कर और अच्छा समय दुनिया में आने के लिए प्राप्त करना असम्भव है। (वह समय आनेवाला है) जब कि लन्दन से क़लकत्ता सात दिन में पहुँचना सम्भव होगा, जब कि हमारे सिर कट चुके होंगे या वह बुढ़ापे के कारण काँपते रहेंगे। आस्ट्रेलिया, कैलिफोर्निया और प्रशान्त महासागर ! नई दुनिया के नागरिक यह समझने में असमर्थ होंगे, कि हमारी दुनिया कितनी छोटी है।" अपनी भीषण कठिनाइयों के बीच में भी मार्क्स अपने सिर को पानी से ऊपर रखने का प्रयत्न करते थे। उनके हृदय और दिमाग में भव्य भविष्य के प्रति पूर्ण आस्था थी, और मानव विकास की अपार संभावनाएँ उनके चित्त को आह्लादित करती रहती थीं। 16 अप्रैल को मार्क्स के एक बच्चे को कब्र में लिटाया गया। विलहेल्म वोल्फ ने उस वक्त लिखा था : "प्रायः हमारे सारे ही मित्र दुर्भाग्य के सताए और भीषण संकट से दबे हुए हैं।" यह ईस्टर का त्यौहार का दिन था, जब कि एक ही वर्ष पहले पैदा हुई मार्क्स की सबसे छोटी लड़की मर गई। जेनी ने उस समय के भीषण दृश्य का बड़ा ही मार्मिक वर्णन अपनी डायरी में किया है : "1852 ई. के ईस्टर में हमारी छोटी-सी बिटिया फ्रांजिस्का फेफड़े की सूजन से जबर्दस्त बीमार पड़ गई। तीन दिनों तक बेचारी बच्ची मृत्यु से लड़ते अपार यंत्रणा सहती रही। उसका छोटा-सा निष्प्राण शरीर हमारे पीछेवाले छोटे-से कमरे में रक्खा था, जब कि हम सब सामनेवाले कमरे में चले गए। रात आई, तो हमने धरती पर अपना बिस्तरा बिछाया। तीन बचे हुए बच्चे (सभी लड़कियाँ) हमारे साथ लेटे थे, और हम उस बेचारी छोटी-सी फरिश्ते के लिए रो रहे थे, जो कि दूसरे कमरे में ठंडी और निर्जीव पड़ी थी। मैं पड़ोसी फ्रेंच शरणार्थी के पास गई, जो कि कुछ पहले हमारे घर आया था। उसने बड़े सौहार्द और सहानुभूति के साथ बर्ताव किया और दो पौंड दिया। इस पैसे से हमने उस शवाधानी का दाम चुकाया; जिसमें मेरी बच्ची शान्तिपूर्वक विश्राम करेगी। पैदा होने पर उसे हिंडोला नहीं मिला, और अन्तिम छोटी-सी सन्दूकची भी काफी समय तक उसे मुयस्सर नहीं हुई। हमारे लिए वह भीषण घड़ी थी, जब कि छोटी-सी शवाधानी अपने अन्तिम विश्रामस्थान पर ले जाई गई।" उसी दिन वेडेमेयर का निराशापूर्ण पत्र मार्क्स को मिला था।

इन्हीं दुःख की घड़ियों में समुन्दरपार से एक नया पत्र आया, जिसपर 9 अप्रैल की तिथि लिखी हुई

थी : "अप्रतीक्षित सहायता ने अन्त में उन कठिनाइयों को दूर कर दिया, जिनके कारण कुछ पम्पलेटों का प्रकाशन रुका हुआ था। पिछली चिट्ठी भेज देने के बाद फ्रांकफुर्त से आए हमारे एक कमकर से भेंट हुई। वह दर्जी है, और हमारी ही तरह गर्मियों में यहाँ आया। उसने अपने बचे हुए सारे पैसे–चालीस डालर–मेरे हाथ में दे दिए।" यदि इस सर्वहारा ने अपना सर्वस्व त्याग नहीं किया होता, तो बहुत सम्भव है 'अठारहवीं ब्रूमिये' प्रकाशित न हो पाई होती। उस महात्यागी का नाम लिखना भी वेडेमेयर भूल गया था। लेकिन नाम से क्या ? सर्वहारा अपनी वर्गचेतना से प्रेरित होकर क्या-क्या कुर्बानियाँ नहीं कर सकता ? वह क्रांति की बलिवेदी पर हँसते-हँसते प्राणों की बलि देना जानता है।

वेडेमेयर ने अब अपने मासिक 'रेवोल्यूशन' (क्रांति) को प्रकाशित करना शुरू किया, जिसके पहले अंक में मार्क्स की यह अमर कृति निकली। दूसरे तथा अन्तिम अंक में फ्राइलीग्रथ की दो कविताएँ वेडेमेयर के पास चिट्ठी के रूप में छपीं, जिनमें बड़े व्यंग और चमत्कारपूर्ण शब्दों में किंकेल के जर्मन राष्ट्रीय ऋण उगाहने के प्रयत्न का उपहास किया था। वेडेमेयर ने 'अठारहवीं ब्रूमिये' की एक हजार कापियाँ छापी थीं, जिनमें से एक-तिहाई यूरोप में मित्रों और सहानुभूतिकारों में बाँटने के लिए भेजी गईं। उग्रवादी पुस्तक विक्रेताओं ने भी उसे बेचने में हाथ नहीं लगाया। पीपर द्वारा अनुवादित और एंगेल्स द्वारा पालिश की गई उसके अनुवाद को छापने के लिए कोई अंग्रेज प्रकाशक नहीं मिला।

इसी समय कोलोन में पकड़े गए कम्युनिस्टों पर अभियोग चलाया जाने लगा था।

7. कोलोन का कम्युनिस्त-मुकदमा

मई, 1851 में कोलोन में कम्युनिस्त साथियों की गिरफ्तारी के समय से ही मार्क्स की आँखें वहाँ होती सारी कार्रवाइयों की ओर लगी हुई थीं। पुलिस कोई पक्का सबूत नहीं पा रही थी, इसीलिए मुकदमा रुका पड़ा था। उनके बारे में जो सबूत मिल सका, उससे यही साबित किया जा सकता था कि वह एक गुप्त प्रचारक संस्था के मेम्बर हैं, लेकिन फौजदारी कानून में उसके लिए कोई दण्ड नहीं था। प्रशिया के राजा ने अपने आदमी स्टीबेर को इस मुकदमे पर लगाना चाहा। वह जैसे भी हो, सबूत जमा करने लगा। उसके एक चर ने विलिच के संगठन के एक आदमी ओजवाल्ड डीट्ज के लिखने के डेस्क का ताला तोड़कर कागज चुराए। उन कागजों तथा फ्रेंच अधिकारियों की सहायता से स्टीबेर ने 'फ्रेंच-जर्मन षड्यन्त्र' गढ़ा और फरवरी, 1852 में पेरिस की अदालतों ने कितने ही अभागे जर्मन कमकरों को भिन्न-भिन्न मियाद की सजाएँ दीं। लेकिन स्टीबेर अब भी पेरिस-षड्यन्त्र को कोलोन के अभियुक्तों के साथ जोड़ने में असमर्थ था। पेरिस के षड्यन्त्र से कोलोन के मुकदमे में सहायता देनेवाली कोई चीज हाथ नहीं लगी। इसी समय 'मार्क्स पार्टी' और 'विलिच-शापर पार्टी' के मतभेद और उग्र हो गए। विलिच ने अमेरिका से लौटने के बाद किंकेल से मिलकर जो कार्रवाई करनी शुरू की, उसके कारण 1852 के ग्रीष्म में दोनों दलों का विरोध और भी उग्र हो गया। यद्यपि किंकेल दो लाख डालर जमा करने में सफल नहीं हुआ, तथापि उसे एक लाख डालर के करीब हाथ लगा। उसके सामने यह एक समस्या थी कि पैसे को कैसे खर्च किया जाय। साथ ही रुपए की गन्ध पाकर अब उसके साथियों की भी लार टपकने लगी। अन्त में किंकेल ने एक हज़ार पौंड प्रथम अस्थायी सरकार के नाम से वेस्टमिन्स्टर बैंक में जमा कर दिया और बाकी सारी करीब दो लाख की रकम सैर-सपाटे और प्रबन्ध में खर्च की। बैंक में जमा की हुई रकम पन्द्रह बरस बाद जर्मन समाजवादी जनतंत्र का पत्र निकालने में सहायक हुई।

कोलोन में सरकारी अधिकारी ने सबूत जुटाने के लिए काफी समय तक मुकदमे को बन्द रक्खा। अन्त में अक्टूबर, 1852 को नाटक आरम्भ हुआ। फ्रेन्च-जर्मन षड्यन्त्र के साथ अभियुक्तों का सम्बन्ध किसी तरह भी नहीं स्थापित किया जा सकता था। जिस पार्टी के षड्यन्त्र के साथ पुलिस सम्बन्ध जोड़ना चाहती थी, अभियुक्त उसके मेम्बर ही नहीं थे। यही नहीं, बल्कि वह उस दल के विरोधी थे। अन्त में स्टीबेर ने 'मार्क्स पार्टी' की मूल कार्यवाही-बही पेश की, जिसमें मार्क्स और उनके साथियों की उन मीटिंगों की कार्यवाही दर्ज थी, जिनमें उन्होंने विश्व-क्रांति की योजना पर विचार प्रकट किया था। यह 'कार्यवाही-बही' सरकारी एजेंट

चार्ल्स फ्लोरी और विल्हेल्म हर्श द्वारा पुलिस-अंफसर ग्राइफ की देख-रेख में जाली बनाई गई थी। स्टीबेर को बहुत विश्वास था कि मैंने मैदान मार लिया; लेकिन, मार्क्स ने उसके विरुद्ध जो सबूत संचित कर दिए थे, उसके कारण स्टीबेर की सफलता की आशा कम हो गई। जिस समय मार्क्स कोलोन के अपने साथियों के अभियोग में दत्तचित्त और परेशान थे, उस समय उनके घर की हालत कितनी बुरी थी, यह एंगेल्स के नाम लिखे उनके 8 सितम्बर के पत्र से मालूम होगा : "मेरी स्त्री बीमार है, नन्ही जेनी बीमार है; लैनचेन को एक तरह का स्नायविक बुखार है, और मैं डाक्टर नहीं बुला सकता, क्योंकि मेरे पास फीस के लिए पैसा नहीं है। करीब आठ या दस दिन से अब तक हम रोटी और आलू पर गुजारा कर रहे हैं, और अब इसमें भी सन्देह है कि वह हमें मिल सकेगा। मैंने डाना के लिए कुछ नहीं लिखा, क्योंकि मेरे पास अखवारों के खरीदने के लिए पैसा नहीं है। अब सबसे बढ़िया बात यही हो सकती है कि घर की मालकिन अपने घर से हमें बाहर निकाल दे, क्योंकि ऐसी अवस्था में बकाया किराये के बाईस पौंड का बोझ मेरे दिमाग से उतर जायगा; लेकिन मुझे इसकी उम्मीद नहीं है कि इतनी दयावान होगी। इसके ऊपर रोटीवाले, दूधवाले, मोदी, सागवाले और गोश्तवाले के भी हम कर्जदार हैं। कैसे इस शैतानी आफत से मैं बाहर निकल सकता हूँ ? पिछले सप्ताह मैंने कमकरों से कुछ शिलिंग क्या कुछ पेन्स तक उधार लिए हैं। यह मेरे लिए भयंकर कृत्य था, लेकिन ऐसा करना अनिवार्य था, नहीं तो हम भूखे मरते।" इस स्थिति में भी अपने कोट तक को बेचकर कोलोन के अभियुक्तों की सहायता करने के लिए मार्क्स प्रयत्न कर रहे थे।

अभी अनुकूल फैसले के बारे में कोई निश्चय नहीं था, इसी समय फ्राउ मार्क्स (श्रीमती जेनी मार्क्स) ने एक अमेरिकन मित्र को लिखा था : "जालसाजी के सारे सबूत वहाँ से तैयार करके भेजने हैं, जिसके लिए मेरे पति को सारे दिन और रात में भी बहुत देर तक काम करना पड़ता है। फिर इस लिखी हुई सामग्री की छह या सात कापियाँ हमें करनी पड़ती हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न तरीकों से फ्रांकफुर्त आदि के रास्ते जर्मनी भेजना पड़ता है; क्योंकि मेरे पति के पास आनेवाले तथा उनके जर्मनी के लिए भेजे जानेवाले सारे पत्र खोलकर जब्त कर लिए जाते हैं। अव सारा मामला पुलिस और मेरे पति के बीच संघर्ष के रूप में परिणत हो गया है, और मेरा पति हर एक बात के लिए, मुकदमे की पैरवी के लिए भी जवाबदेह बनाया गया है। मेरी घबराहट के लिए तुम माफ करना, क्योंकि उस मामले में मेरा भी कुछ भाग है। मैं तब तक कापी करती रहती हूँ जब तक मेरी अँगुलियाँ दुखने नहीं लगतीं।"हमारा घर एक बाकायदा आफिस बन गया है। दो या तीन आदमी लिखते, दूसरे सन्देश लेकर दौड़ते, और बाकी पैसे-पैसे जुटा रहे हैं, जिसमें कि हम जीवित रह सकें और दुनिया के अत्यन्त लज्जाजनक सरकारी दुराचार के खिलाफ सबूत तैयार कर सकें। इस सारे समय तक मेरी तीनों जिन्दादिल बच्चियाँ गाती और सीटी बजाती रहती हैं, जिसके लिए उन्हें कभी-कभी अपने बाप की कड़ी फटकार भी खानी पड़ती है। कैसा जीवन !"

अन्त में स्टीवेर की जालसाजी का भंडाफोड़ हो गया, और मार्क्स विजयी हुए। जाली 'कार्यवाही-बही' को सरकारी वकील ने छोड़ दिया, लेकिन यदि अभियुक्त को सजा नहीं दी जाती तो प्रशियन सरकार का मुँह काला होता, इसलिए उसकी सहायता के लिए जीहजूरीवाले भी ईमानदारी खोने के लिए तैयार थे। 11 में से 7 अभियुक्तों को देशद्रोह के प्रयत्न का अपराधी माना गया। सिगार बनानेवाले रोजेर, लेखक बुरगेर्स्क और फेरीवाले दर्जी नोथयुंग को किले में साथ साल की कैद की सजा हुई और कमकर राइख, रासायनिक ओटो और भूतपूर्व बैरिस्टर बेकर को किले में पाँच साल की कैद की सजा हुई, फेरीवाले दर्जी लेसनर को तीन साल की सजा। क्लर्क एरहार्ट और तीन डाक्टर डानियल, याकोधी और क्लाइन छोड़ दिए गए। डानियल को अठारह महीने के हवालाती जीवन में तपेदिक लग गई, जिसके कारण वह कुछ वर्षों बाद मर गया। मार्क्स ने उसकी मृत्यु पर जो सहानुभूतिपूर्ण पत्र उसकी बीवी को भेजे थे, उनके लिए उसकी विधवा ने बड़े करुण शब्दों में धन्यवाद दिया था।

इन अभियुक्तों में से कितने ही पीछे अपने अतीत को छोड़ पथभ्रष्ट हो गए। बुरगेर्स राइखस्टाग (पार्लियामेंट) का मेम्बर चुना गया, बेकर पीछे कोलोन म्युनिसिपैलिटी का लार्ड मेयर और प्रशियन पार्लियामेंट के उच्च-सदन

का सदस्य बना। नोथयुंग और रोजेर अपने पथ पर अचल रहे। लेसनेर मार्क्स और एंगेल्स के मरने के बाद भी निर्वासित जीवन बिताते हुए अन्तिम समय तक उनका परमभक्त बना रहा।

कोलोन-कम्युनिस्त अभियोग के बाद कम्युनिस्त-लीग ने अपने को खतम कर दिया जिसका अनुसरण विलिच के संगठन ने भी किया। पीछे विलिच अमेरिका में प्रवासी हो गया, जहाँ उसने गृह-युद्ध के समय उत्तरी सेना के एक जनरल के तौर पर काफी प्रसिद्धि हासिल की। शापर पश्चात्ताप करके फिर अपने पुराने साथियों के साथ आ गया।

इस सफलता के बाद भी मार्क्स प्रशियन-सरकार को चैन लेने-देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने इस अभियोग के बारे में पुस्तक लिखकर उसे स्वीट्जरलैंड और सम्भव हो तो अमेरिका में प्रकाशित करने का निश्चय किया था : "इस पम्पलेट के विनोदी अंश को, मैं समझता हूँ, तुम और अच्छी तरह समझ सकोगे, यदि मैं बतला दूँ, कि उसका लेखक अपने पैरों और पीठ को पर्याप्त न ढाँक सकने के कारण बिल्कुल घर में बन्द-सा है। इसके ऊपर से उसका परिवार पहले और अब भी भयंकर तकलीफ से संत्रस्त है। यह भी अभियोग की कार्रवाइयों का ही एक आंशिक परिणाम है, क्योंकि जिन पाँच सप्ताहों में सरकार की चालों के विरुद्ध पार्टी के बचाव के लिए मैं अपनी सारी शक्ति लगाने के लिए मजबूर था; उस समय मैंने जीविका कमाने के लिए कुछ नहीं किया। यही नहीं, मुकदमे ने जर्मन पुस्तक-विक्रेताओं को पूरी तौर से मेरे खिलाफ कर दिया है, जिनसे कि राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अपनी पुस्तक के प्रकाशन का प्रवन्ध करने की आशा रखता था।"

जो भी हो, 11 दिसम्बर को शाबेलित्ज के लड़के ने—जिसने कि अपने पिता के कारवार को अपने हाथ में सँभाल लिया था, ब्राजेल (स्वीट्जरलैंड) से मार्क्स के पास लिखा कि मैं किताब की पहली गेलियों को देख रहा हूँ : "मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक जबर्दस्त सनसनी पैदा करेगी, क्योंकि यह एक मास्टरपीस है।" शाबेलित्ज ने प्रस्ताव किया था कि दो हजार कापियाँ छापी जाएँ और दाम चाँदी का दस ग्रोशन रक्खा जाए, क्योंकि कितनी ही पुस्तकें सरकार पकड़कर जब्त करने में जरूर सफल होगी। दुर्भाग्य समझिए, गुप्त रीति से भेजने के लिए बाडेन के एक सीमांती गाँव में पुस्तकें भेजवाकर छह हफ्ते तक अवसर की तलाश में पड़ी थीं, वहीं संस्करण की सारी प्रतियाँ सरकार के हाथों में पड़कर जब्त कर ली गईं।

कितनी दुश्चिन्ता और दुर्भाग्य की बात थी, 'विषाद् विपदमनुसरति' का कितना निष्ठुर उदाहरण था। जब 10 मार्च को यह बुरी खबर एंगेल्स को मिली, तो उन्होंने बहुत दुःखी होकर लिखा : "इस तरह का दुर्भाग्य फिर आगे लिखने के उत्साह को आदमी से छीन लेना चाहता है। क्या हम सदा प्रशिया के राजा के लिए काम करते रहें ?" इसी चिन्ता में पड़े हुए थे कि तीन महीने बाद शाबेलित्ज के भागीदार अम्बेरगेर ने 424 फ्रांक छपाई का मार्क्स से माँगा, जिससे उनकी परेशानी और बढ़ गई।

स्वीट्जरलैंड की असफलता का कष्ट कुछ हल्का तब हो पाया, जब अमेरिका में कुछ सफलता दीख पड़ी। 'नो-इंग्लैंड जाइटुंग' बोस्टन से प्रकाशित होता था। उसने कोलोनवाले पम्पलेट को छापा। एंगेल्स ने अपने खर्च पर उसकी 440 कापियाँ अलग छपवा लीं। लाजेल की सहायता से उन्होंने इन्हें राइन प्रदेश में बँटवाने का प्रस्ताव किया। फ्राउ मार्क्स (जेनी) ने लाजेल के पास इसके बारे में लिखा। लाजेल ने उत्साह भी दिखलाया, लेकिन पता नहीं काम में कहाँ तक सफलता हुई। कोलोन-अभियोग के रहस्योद्घाटक पम्पलेट की अमेरिका के जर्मन-पत्रों में काफी चर्चा रही, विशेषकर विलिच ने उसके खिलाफ खूब लिखा। इसपर छोटा-सा जवाब मार्क्स ने 'उच्च हृदय का वीर' के नाम से लिखा।

कम्युनिस्त-लीग खतम हो गई थी। जर्मनी के सार्वजनिक जीवन से नाता रखने के तार टूट चुके थे। अब मार्क्स का निर्वासित घर ही सदा के लिए उनका घर हो गया।

11
मार्क्स और एंगेल्स

मार्क्स युगप्रवर्तक पुरुष थे, अब इससे विरोधी भी इन्कार नहीं कर सकते। इतिहास में किसी एक पुरुष को एक समय में मानवता की इतनी संख्या और इतने प्रतिशत ने अपना मार्गप्रदर्शक नहीं माना। मार्क्स का जीवन बड़ी गहरी और तीव्र बौद्धिकता–पुराने शब्दों में ज्ञानमार्ग का था। उसके साथ दूसरे ज्ञान को व्यवहार में लाने की ओर भी उनका उतना ही अधिक जोर था, जिसे पुरानी परिभाषा के अनुसार ज्ञान और कर्म का समन्वय कह सकते हैं। साथ ही दोनों बन्धुओं में आदर्शवाद और त्याग की वह भावना देखी जाती है, जो कि केवल जातक की कहानियों में ही हमें मिलती है। लेकिन जातकों में भी त्याग दुःख की जड़ के उच्छेद के लिए उतना नहीं देखा जाता, जितना कि मार्क्स और एंगेल्स में। मार्क्स ने स्वेच्छापूर्वक कष्ट का जैसा जीवन बिताया, शायद ही धर्म के पैगम्बरों और अनुयायियों में किसी ने उतना दुःख उठाया हो। आलंकारिक भाषा में हम कह सकते हैं कि मानवता के दुःखों से मुक्त करने के लिए उन्होंने स्वयं मानव की सहिष्णुता-शक्ति से परे के दुःखों को सहा। ईसाई किसी के पापों को अपने सिर पर उठाने के लिए सूली पर नहीं चढ़े, यह तो केवल उनके अनुयायियों का प्रचार भर है, अधिक-से-अधिक उनके लिए यही कह सकते हैं कि वह गरीबी देखकर द्रवित हो जाते थे। बुद्ध में यह भावना ईसा से कहीं बढ़-चढ़ करके थी, और वह मूढ़ बुद्धि के नहीं, बल्कि अपने समय के प्रखर बुद्धिवाद के प्रवर्तक थे। किन्तु मार्क्स के सर्वथा मानव-जीवन के इस पहलू को ही अगर लेकर जीवन लिखी जाय, तो वह किसी महान् तपस्वी और पैगम्बर के जीवन से कम मधुर और करुणारस-प्लावित नहीं होगी। खैर, अभी जब तक कि सारी दुनिया मार्क्स की चिकित्सा द्वारा स्वस्थ नहीं हो जाती, आधी बची हुई मानवता मार्क्स के पथ पर आरूढ़ होकर सुख-संतोष, निश्चिन्तता और संस्कृति-कलायुक्त जीवन बिताने नहीं लगती, तब तक उसके लिए मार्क्स का ज्ञान और व्यवहार (कर्म) ही अत्यन्त प्रिय और हितकर होना चाहिए। भावी पीढ़ियाँ सारे विश्व में मार्क्स के बनाए मार्ग पर आरूढ़ हो सुखी जीवन बिताते मार्क्स के जीवन के इस तीसरे पहलू की ओर विशेष ध्यान देंगी, तब वह मार्क्स के करुणरसपूर्ण काव्यमय किन्तु वास्तविक जीवन को बड़े प्रेम से पढ़ेंगी।

1. अद्‌भुत प्रतिभा

मार्क्स ने अपने आधे जीवन को इंग्लैंड की राजधानी लन्दन में बिताया। इंग्लैंड लोभी और कंजूस बनियों का राज्य था, और जर्मनी, फ्रांस और बेल्जियम उसकी बनियाशाही की अपेक्षा अधिक उदार सामन्तशाही देश थे, लेकिन इन बनियों ने मार्क्स के प्रति अधिक मानवोचित बर्ताव किया था। दूसरी सरकारें मार्क्स के प्राणों की गाहक बन गई थीं। उन्हें कितने समय तक एक देश से दूसरे देश में मारा-मारा फिरना पड़ा। इंग्लैंड की बनियाशाही सरकार से भी अधिक वहाँ की जनता को इसका श्रेय देना चाहिए, क्योंकि यदि वह इतने उदार न होते, तो लन्दन की बनिया सरकार शायद कुछ अनिष्ट करने के लिए तैयार हो जाती। आगे हम देखेंगे कि मार्क्स ने इंग्लैंड की पूँजीशाही की निर्भीक आलोचना करने में हिचकिचाहट नहीं की, दुनिया के बाजारों की लूट से मालामाल इंग्लैंड के पूँजीपतियों और उनकी पत्तल चाटनेवाले मजदूर-नेताओं से उनको कम आशा थी कि वहाँ अदूर भविष्य में क्रांति होनेवाली है, इसी लिए तुरन्त क्रांति लाने की दृष्टि से उन्होंने इंग्लैंड में काम नहीं किया। यह भी एक कारण था जिससे इंग्लैंड की सरकार को तुरन्त वैसा कोई बहाना नहीं मिल सकता था, जिससे कि वह मार्क्स को वहाँ से भगाने के लिए उतारू हो जाती।

प्रतिभाओं की अवहेलना वर्गसमाज में हमेशा ही होती आई है, विशेषकर उस प्रतिभा की तो वहाँ कोई पूछ नहीं हो सकती, जो वर्गभेद की जड़ काटने के लिए असली हथियारों का आविष्कार करती है। फाँसूट के शब्दों में :

जिन थोड़ों ने देखा-समझा और फिर,
अज्ञानता से अपने हृदय को पूरा खोल दिया,
और जनगण को अपनी भावनाएँ दिखलाईं,
वह हमेशा बलिखूँटे या सलीव पर मरे।

अपनी आत्मा को बेचनेवाली या अपने चारों तरफ होते अतिचारों और अत्याचारों के प्रति आँख मूँदनेवाली प्रतिभाओं के लिए जीवन कंटकाकीर्ण नहीं था। शासकवर्ग उन्हें सिर पर उठाने के लिए तैयार था। लेकिन, क्रांतिकारी प्रतिभाएँ उनकी कृपा ही नहीं, सहिष्णुता से भी वंचित थीं। 19वीं शताब्दी ही नहीं, बल्कि सारे इतिहास में कार्ल मार्क्स जैसी प्रतिभा बहुत ही कम पैदा हुई। उन्हें कार्य-क्षेत्र में पैर रखने के बाद एक दशाब्दी तक दूसरे संघर्षों के साथ गरीबी से भी संघर्ष करना पड़ा। जब वह लन्दन में निर्वासित जीवन बिताने के लिए सपरिवार आए, तो जीवन की वह कठोर विपत्तियाँ सामने आईं, जिनमें सबसे पहले मार्क्स और जेनी को अपनी कई सन्तानों की बलि देनी पड़ी। साल-भर की बच्ची के मरने की घटना हम देख चुके हैं। वह केवल गरीबी की बलि हुई, इसमें सन्देह नहीं। असह्य शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं से भरे जीवन को बिताते हुए मार्क्स ने कैसे अपने अध्ययन, अनुसन्धान और आविष्कारों को जारी रक्खा, यह सोचकर आश्चर्य होता है।

मार्क्स चतुरस्र महापुरुष थे, बुद्धि के क्षेत्र में भी एकांगिता इनमें छू नहीं गई थी। कितनी ही प्रतिभाएँ होती हैं, जिनकी महानता में कोई सन्देह नहीं, लेकिन उनमें निरंतर काम करने की लगन और उत्साह नहीं होता, जिसके कारण वह मानवता के लिए बहुत काम नहीं कर पातीं। पर मार्क्स जितने ही प्रतिभाशाली थे, उतने ही कठोर परिश्रमी भी। दिन ही नहीं, रात से भिनसार तक बैठे काम करना, दसियों बरस तक दस-दस घंटे रोज ब्रिटिश म्युजियम में देश-विदेश के मानव-जीवन के हर एक पहलुओं पर लिखे गए अनमोल रेकार्डों की धूलियों को पोंछकर उन्हें तन्मय होकर अध्ययन करना विल्कुल अनहोनी-सी बात मालूम होती है। लेकिन मार्क्स के लिए वह अनहोनी बात नहीं थी। वह मानवता के सबसे अधिक उत्पीड़ित और सबसे अधिक संख्यावाले जनगण को बन्धन से मुक्त करना चाहते थे। इस महान् काम के महत्त्व को बड़ी तीव्रता से वह अनुभव करते और उससे भी कहीं खेद के साथ देखते थे! एक जीवन क्या, अगर उन्हें सौ जीवन भी मिलता, तो वह इसी काम में लगाते। मार्क्स की प्रतिभा और तपस्या विफल नहीं गई, बल्कि कह सकते हैं, कि वह बहुत जल्दी सफल हुई, जब कि उनकी आँखों के मूँदने से चौंतीस साल बाद ही उनका अनुयायी बन पृथ्वी के छठे भाग ने युगों की दासता से मुक्ति पाई, और दो शताब्दियों से कुछ और अधिक बीतने पर आधी मानवता से पुराने नर्क को ढाकर नये स्वर्ग की भव्य इमारत निर्माण करनी शुरू की। मार्क्स का जीवन कर्ममय था। उन्होंने स्वयं कहा था, कि कर्म करने की अक्षमता किसी ऐसे मानव के लिए मृत्युदंड है, जो कि सचमुच पशु नहीं है। एक बार कई सप्ताह तक वीमार रहने के समय उन्होंने एंगेल्स को लिखा था : यद्यपि मैं काम करने के लिए बिल्कुल असमर्थ हूँ, लेकिन मैंने कारपेण्टरी 'फिजियालोजी' (शरीरशास्त्र), कोलिकेर की 'गवेबेलेर', स्पुर्जहाइम की 'अनटोमी डेज हर्न्स उंड नेरवेनसिस्टम' और श्वान एवं श्लाइडेन की 'उइबेर की जेलेन्श्मीरे' पढ़ी। उनका मस्तिष्क शरीर के अस्वस्थ रहने पर भी गम्भीर अध्ययन को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। वह इतना काम करने में इसलिए भी समर्थ हुए क्योंकि उनका शरीर लोहे का था, तभी तो वह इतने परिश्रम और विपदाओं के बोझ को बर्दाश्त कर सका था। शरीर और बुद्धि दोनों से इतने मजबूत पुरुष बहुत कम मिलते हैं।

लन्दन के इस समय के जीवन में 1851 ई. से करीब दस साल तक अमेरिकन पत्र 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' का पारिश्रमिक उनके लिए सबसे बड़ा सहारा था। आज तो पत्रों की ग्राहक-संख्या आधे-आधे करोड़ तक जा पहुँचती है, इसलिए ट्रिब्यून की उस समय की दो लाख की ग्राहक-संख्या आज के लिए कोई असाधारण बात नहीं। किन्तु, उस समय संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का वह सबसे बड़ा और शक्तिशाली अखबार था। उसके मालिकों की फूरिये के समाजवाद के साथ कुछ सहानुभूति भी थी, जिसमें कुछ कारण पत्र के अधिक जनप्रिय होने एवं अधिक पैसा कमाने का ख्याल भी था। पत्र-मालिकों ने मार्क्स के साथ समझौता किया था कि वह प्रति-सप्ताह दो लेख लिख दिया करेंगे और ट्रिब्यून प्रत्येक लेख का दो पौंड दिया करेगा। इस प्रकार उन्हें दो सौ पौंड

वार्षिक की आमदनी का एक रास्ता निकल आया था। इसे कहने की तो आवश्यकता नहीं कि उस समय के मापदण्ड से भी जिस तरह के लेख मार्क्स ट्रिब्यून में भेजा करते थे, उनके लिए यह पारिश्रमिक अत्यंत अपर्याप्त था। पत्र का प्रकाशक डाना अपने को फूरिये के समाजवाद का अनुयायी मानता था, लेकिन एंगेल्स के अनुसार डाना का समाजवाद लोभ तथा निम्न-मध्यम वर्ग की ठगी से बढ़कर कुछ नहीं था। वह मार्क्स के लेखों के मूल्यों को जानता था, लेकिन मालिक होने के कारण अपने वेतनभोगी सेवक को शोषित करने से अपने को कैसे रोक सकता था। सबसे बुरी बात जो मार्क्स को असह्य थी, वह थी अपने लेखों की मनमाना कतर-ब्योंत, और पसन्द न आने पर उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंक देना। पत्र की ग्राहक-संख्या के कम होने की जरा-सी भी संभावना होने पर डाना ने पारिश्रमिक कम करने में भी आनाकानी नहीं की। जो देता भी था, वह भी उन्हीं लेखों के लिए, जिन्हें वह छापता था। रद्दी की टोकरी में फेंके उन लेखों की कोई कीमत नहीं थी, जिनके लिखने में मार्क्स को ब्रिटिश म्युजियम की पुस्तकों और दूसरी सामग्री के अध्ययन में दिनों लग जाते थे। एक बार तो तीन सप्ताह तक और कभी-कभी छह सप्ताह तक, जो भी लेख मार्क्स भेजते रहे, उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंका जाता रहा। 'डी-प्रेस' (वीना) जैसे जर्मन अखबारों का भी बर्ताव इससे बेहतर नहीं था।

1853 ई. में मार्क्स की कुछ महीनों की शान्ति पाने की वड़ी लालसा थी जिसमें कि निश्चिन्त हो वह अपने वैज्ञानिक अध्ययन को जारी रख सकें। "पर मालूम होता है, मुझे वह नहीं मिलनेवाली है। अखबारों के लिए यह लगातार गड्डियों को छाँटना मेरे लिए दुर्भर हो गया। चाहे तुम कितने स्वतन्त्र विचारों के हो, लेकिन लेख तो अन्त में अखवार और उसके पाठकों के पास जाना है।" ऐसी स्थिति में शुद्ध वैज्ञानिक कार्य करना बिल्कुल कठिन है।" कुछ सालों तक डाना के लिए काम करने के वाद एक बार उन्होंने लिखा था : "यह बिल्कुल जुगुप्सनीय है कि ऐसे दरिद्र की मेहरवानी का नाज उठाया जाय, जो कि कृपा करके अपनी डोंगी में बैठाने के लिए सहमत है। दरिद्रालय के भिखमंगों की तरह हड्डी पीसकर उसका सूप वनाना जैसा ऐसे पत्र के लिए राजनीतिक लेख लिखना है, तो भी मुझे उसे पूरे परिमाण में करना पड़ता है।" मार्क्स ने केवल सर्वहारा के दुःखों और चिन्ताओं का ही कालकूट घूँट दीर्घकाल तक नहीं पिया, बल्कि आधुनिक सर्वहारा की तरह ही उनका भी मालिकों द्वारा शोषण होता रहा। उन्होंने कितना कष्ट सहा, यह एंगेल्स के नाम लिखे हुए उनके पत्रों से मालूम होता है : एक समय वह घर के भीतर बन्द रहने के लिए मजबूर हुए, क्योंकि उनके पास बाहर जाने के लिए न कोट था, न जूता। दूसरे समय उनके पास इतना पैसा नहीं था कि लिखने का कागज या अखबार खरीद सकें। फिर एक समय अपने लेख को प्रकाशक के पास भेजने के लिए डाक के टिकटों के वास्ते अपने परिचितों के पास हाथ पसारे दौड़ना पड़ा। मोदी, सब्जीवाले, रोटीवाले का दाम ठीक समय पर चुकता न होने से उनकी झिड़क भी खानी पड़ती थी। उससे भी असह्य था घर के मालिक का वर्ताव—जरा भी किराया बाकी रहता कि वह उनको निकालकर सड़क पर पटकने के लिए तैयार हो जाता।" ऐसी स्थिति में यदि घर में कभी थोड़ी कड़वाहट आ जाए, तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। लेकिन मार्क्स को दूसरे विद्वानों की तरह 'कटही' वीवी नहीं, बल्कि जेनी जैसी अनुपम देवी मिली थी, जो शायद ही कभी खीजती थी, और खीजने पर भी तुरन्त अपने को दोषी मान पति को शान्त और संतुष्ट करने की हर प्रकार से कोशिश करती थी। लेकिन गरीवों में परिवार का बोझ वहुत भारी होता है, इसीलिए मार्क्स ने अपनी राय दी थी : "जो लोग मानवता की सेवा एकान्त मन से करना चाहते हैं, उनके लिए विवाह से बढ़कर कोई बेवकूफी नहीं हो सकती, क्योंकि इसके कारण उन्हें वैयक्तिक जीवन की छोटी-छोटी चीजों के लिए मरना-खपना पड़ता है।" घर के अभावों के लिए जेनी कभी शिकायत करती, तो मार्क्स हमेशा उसके पक्ष का समर्थन करते कहते कि मेरी अपेक्षा तुम्हें अधिक कष्ट और अवर्णनीय अपमान, चिन्ता और आशंका का सामना करना पड़ता है। मार्क्स तो दस-दस घंटे ब्रिटिश म्युजियम में गुजार देते थे, कभी और जगह भी जाकर मनवहलाव कर सकते थे, लेकिन जेनी तो कई वच्चों की माँ थी जिनके भोले-भाले सूखे चेहरों को देखकर उसका कलेजा फटता रहता था। उसका भी अपना बचपन था। कितनी निश्चिन्तता और आनन्द से उसने उसे विताया था ! लेकिन अव वह अपने बच्चों को उनसे सर्वथा वंचित देखती थी। दूसरे कितने ही राजनीति-कर्मियों की तरह मार्क्स भी चाहते,

तो अपनी इज्जत पर बिना धब्बा लगाए बूर्ज्वा-लोगों के कामों में से एक को अपना सकते थे। लेकिन मार्क्स का कहना था : "चाहे जो भी हो, मुझे अपने लक्ष्य का अनुसरण करना है। मैं अपने को बूर्ज्वा-समाज की पैसा कमानेवाली मशीन बनने नहीं दूँगा।"

वह सर्वथा मानव थे और जीवन के कष्टों को एक मानव-हृदय के तौर पर ही महसूस करते थे। अपने जिस पत्र में अपने मित्र एंगेल्स को तुरन्त सिर पर पड़े दुःख के पहाड़ के बोझ का जहाँ वर्णन करते होते, उसी पत्र में आगे चलकर वह उसे बिल्कुल भूल जाते, जब कि वह अपने अनुसन्धान और जीवन के लक्ष्य के बारे में वर्णन करने लगते। अपने 50वें वर्ष को पूरा करते समय उन्होंने कहा था : "आधी शताब्दी का बोझ मेरी पीठ पर है और अब भी मैं अकिंचन हूँ !" एक जगह वह लिखते हैं कि इस तरह के जीवन से हजार पोरसा समुद्र के नीचे जाना बेहतर है, और दूसरे समय कहते हैं : मैं अपने सबसे भयंकर शत्रु के लिए भी नहीं चाहूँगा, कि वह ऐसा जीवन बिताए। एक समय जीवन की छोटी-छोटी चिन्ताओं ने उन्हें इतना पीस दिया था कि वह आठ सप्ताह तक अपना बौद्धिक कार्य करने लायक नहीं रह गए।

यह था पारितोषिक, जिसे जीवन में उस अद्भुत प्रतिभा को तत्कालीन समाज दे रहा था।

2. अनुपम मित्रता

यदि मार्क्स की प्रतिभा को लौहमय शरीर मिला था, जो कि असाधारण परिश्रम और कष्टों को सहन कर सकता था, तो उनको समाज में एक बाहरी शरीर भी एंगेल्स के रूप में मिला था। 'एक प्राण दो शरीर' या 'बहिश्वर प्राण' की कहावत इन दो मित्रों पर बिल्कुल ठीक घटती है। उनके बौद्धिक कार्यों में हाथ बँटाने के लिए एंगेल्स जिस तरह तैयार रहते थे, और उनके लिए सक्षम भी थे; उसी तरह उनके कष्टों को बाँटने में बड़ा आनन्द आता। एंगेल्स ने एक तरह से अपने सारे बौद्धिक और शारीरिक जीवन को इस मित्रता पर बलि चढ़ा दी। दोनों मित्रों के बीच लिखे गए हजारों पत्र इसके साक्षी हैं। इतिहास में इस तरह की सर्वांगीण अभिन्न मित्रता दूसरी कोई भी देखी नहीं जाती। इस मित्रता में किसी तरह के स्वार्थ की भावना न थी। मार्क्स को दुःख होता था, जब सोचते थे कि एंगेल्स जैसा प्रतिभाशाली पुरुष सिर्फ मेरे लिए मन मारकर, अपनी प्रतिभा को बेकार करके व्यापार में लगा हुआ है।

एंगेल्स कद में लम्बे-चौड़े ब्लौंड (गौर) केशोंवाले थे। वह हमेशा अपनी पोशाक बिल्कुल बाकायदा पहनते थे। फौजी बारेक तथा आफिस में उन्होंने जो अनुशासन का जीवन बिताया था, उसके कारण वह काम में सदा बड़े मुस्तैद रहते थे। उन्होंने एक मर्तबे कहा था कि छह क्लर्कों की मदद से मैं शासन-प्रबन्ध को उससे कहीं अधिक योग्यता और सीधे-सीधे ढंग से चला सकता हूँ, जिसे कि साठा प्रीवी-कौंसिलर (राजामात्य) भी नहीं कर सकते—वह प्रीवी-कौंसिलर, जो ठीक से लिख भी नहीं सकते, और जिनकी चिन्हारियों की सिर-पूँछ का कोई पता नहीं लगा सकता। पिता के व्यापार के कारण व्यवसाय-क्षेत्र उनका कार्यक्षेत्र बना था। वह मान्चेस्टर शेयर-बाजार के एक बहुत ही सम्मानित सदस्य थे। बूर्ज्वा-वर्ग के जीवन की ऊपरी वेशभूषा को उन्हें कायम रखना पड़ा था, यहाँ तक कि लोमड़ी के शिकार और बड़े-दिन की पार्टियों में भी वह शामिल होते थे। उनका अधिक समय नगर से बाहर एक छोटे-से एकान्त बँगले में बीतता था, वहाँ वह बूर्ज्वा-समाज के घृणित वातावरण से निकलकर शुद्ध हवा में साँस लेते अपने अध्ययन, मनन या लेखन में लगे रहते।

मार्क्स गठीले और मजबूत शरीर के आदमी थे। उनका कद साधारण से अधिक ऊँचा और यूरोपियन तुलना में उन्हें साँवला कहा जा सकता था। उनकी आँखें चमकीली तथा काली थीं। इनके साथ घने कोयले जैसे काले बाल बतलाते थे कि वह सामीय जाति के हैं। उनके कपड़े-लत्ते या रहन-सहन में बड़ी बेपर्वाही थी। उनकी उन्हें जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि नगर के भद्र समाज में सम्मिलित होने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। उसके लिए समय भी नहीं निकल सकता था, क्योंकि अपने बौद्धिक श्रम के बाद मुश्किल से थोड़ा-सा समय मिलता था, जब कि वह जल्दी-जल्दी शरीर की गाड़ी चलाने के लिए कुछ ग्रास अपने मुँह में डाल लेते और फिर बहुत रात तक काम में जुट जाते। विचारणा उनके लिए परम आनन्दकारी बात थी, विचार करते

वह थकते नहीं थे। वह थे भी तो परम विचारकों की श्रेणी में। वह बड़ी प्रसन्नता के साथ हेगेल के वाक्यों को दोहराते : "एक गुण्डे का अपराधपूर्ण विचार करना स्वर्ग के सभी आश्चर्यों से कहीं उच्च और भव्य है।" लेकिन मार्क्स जिस विचार को निरन्तर किया करते, वह था कार्य को पूरा करना। छोटी-छोटी बातों में बिल्कुल व्यवहारपटु नहीं थे, लेकिन बड़ी बातों में कहीं अधिक व्यवहारपटु थे। एक छोटे-से परिवार का चलाना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी, लेकिन एक भारी सेना को तैयार कर सारी दुनिया के रूप को बदलने के लिए उसे लेकर आगे बढ़ने में उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी।

मार्क्स और एंगेल्स दोनों कलम के धनी थे, दोनों ही की अपनी अलग-अलग शैली थी, दोनों ही अद्भुत भाषाविद् थे—उन्होंने बहुत-सी भाषाओं और बोलियों पर अधिकार प्राप्त किया था। एंगेल्स बल्कि इस विषय में मार्क्स से भी आगे बढ़े हुए थे। एंगेल्स की भाषा बड़ी भावपूर्ण और सीधी-सादी होती थी। शब्दाडम्बर को वह पसन्द नहीं करते थे। वह बड़े सुगम और सुन्दर ढंग से लिखते थे। उनकी लेखनी में प्रवाह और प्रसाद दोनों पूरे रूप में पाए जाते हैं। जिस तरह वह अपनी पोशाक के बारे में बाकायदगी करते थे, वैसे ही वह लिखने में भी देखे जाते।

लेकिन, मार्क्स के लिखने में उतनी सावधानी नहीं थी। उनके दिमाग के भीतर से गम्भीर विचारों की इतनी प्रखर धारा फूटती रहती, जिसके कारण उनका लिखना भी सुगमता से नहीं होता था। उनके पहले के पत्रों में मालूम होता है कि वह अपने विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दों के ढूँढ़ने का भारी प्रयत्न कर रहे हैं। इंग्लैंड चले जाने के बाद के पत्रों में तो उनकी शैली और भी दुरूह हो जाती है। अपने भावों को प्रकट करने में, जर्मन में लिखे पत्रों में भी वह अंग्रेजी या फ्रेंच शब्दों और मुहावरों को बेधड़क इस्तेमाल करते हैं। उनकी कृतियों में आवश्यकता से अधिक विदेशी शब्दों की भरमार देखी जाती है—उनमें अंग्रेजी और फ्रेंच की मात्रा से बहुत अधिक पुट होती है। लेकिन जर्मन भाषा पर उनका इतना अधिक अधिकार था, कि उनके ग्रंथों का मूल के भावों को सुरक्षित रखके दूसरी भाषा में अनुवाद करना बहुत मुश्किल है। मार्क्स के जिन ग्रंथों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं, वह मूलतः जर्मन में थे, उन्हें अंग्रेजी से अनुवाद किया गया है। दो भाषाओं से गुजरकर हुआ अनुवाद मूल से कितना भिन्न होगा, इसे सहज समझा जा सकता है। इसके लिए यह जरूरी है, कि मार्क्स के ग्रंथों का सीधे जर्मन भाषा से हमारी भाषाओं में अनुवाद हो। मार्क्स के अंग्रेजी अनुवादों के बारे में एंगेल्स ने स्वयं कहा है : जिन अनुवादों की पालिश स्वयं मार्क्स ने बड़े ध्यान से की थी, उनमें भी मूल की आत्मा बहुत विकृत हो गई है। मार्क्स उपमाओं का प्रयोग अपनी भाषा में बहुत अधिक करते हैं। आखिर भाषा भावों का वास्तविक चित्रण नहीं, बल्कि संकेत मात्र है। यह संकेत उपमा और उदाहरण द्वारा अधिक तीव्रता के साथ किए जा सकते हैं, इसी लिए मार्क्स उनका बहुत सफलतापूर्वक इस्तेमाल करते थे। लेकिन, वही उनके ग्रंथों के भाषान्तर करने में सबसे बड़ी कठिनाई पैदा करते हैं। भाषा और भाव पुरुष और स्त्री का सुखमय विवाह है। यदि विवाह दुःखमय हुआ, तो जीवन फीका हो जाता है। भाषा और भाव का सामंजस्य न रहने पर लेखक की कृति कुरूप बन जाती है। मेरिंग ने लिखा है : मार्क्स सदा समस्याओं को इस तरह पेश करते हैं मानो वह अपने पाठक के लिए लाभदायक विचार करने के लिए भोजन रख देते हैं। उनकी भाषा गहरे नीचे सागर के ऊपर लहरों की क्रीड़ा जैसी मालूम होती है।

एंगेल्स सदा मार्क्स की प्रतिभा को अपने से श्रेष्ठ मानते थे, और सदा उनका अनुयायी रहने की इच्छा थी। लेकिन, एंगेल्स मार्क्स के केवल सहायक या भावानुवादक नहीं, बल्कि उनके स्वतन्त्र सहयोगी थे और अपनी प्रतिभा में वह मार्क्स के जैसे ही तथा योग्य भागीदार थे। अपनी मित्रता के आरम्भ में एंगेल्स ने जितना मार्क्स से पाया, उससे कहीं अधिक प्रदान किया। बीस साल की गम्भीर मित्रता के बाद मार्क्स ने स्वयं उनको लिखा था : "तुम इसे जानते ही कि पहले तो मैं किसी तत्त्व पर धीरे-धीरे पहुँचता हूँ, और दूसरे यह कि मैं तुम्हारे कदमों पर चलता हूँ।" इससे मालूम होता है कि एंगेल्स किसी तत्त्व की तह पर बड़ी जल्दी पहुँच जाते थे। मार्क्स के देर से पहुँचने का कारण यह था कि वह द्वन्द्वात्मक दृष्टि का सर्वतोभावेन उपयोग करते, हर एक बात को पक्ष-विपक्ष की कसौटी पर कसते, आगे किसी निष्कर्ष को घोषित करने के लिए तैयार होते थे।

मार्क्स ने अपने जीवन में किसी बड़े राजनीतिक निर्णय को तब तक नहीं किया, जब तक कि एंगेल्स से पूछ न लिया। इसी से मालूम होगा कि एंगेल्स मार्क्स की छाया नहीं थे, बल्कि दोनों यमल प्रतिभाएँ थीं, जिनका उदाहरण हमें मार्क्स-एंगेल्स के उत्तराधिकारियों लेनिन और स्तालिन में ही मिलता है।

राजनीतिक बातों में मार्क्स सदा एंगेल्स की राय लेते, यद्यपि सैद्धान्तिक प्रश्नों में वह एंगेल्स से कहीं अधिक क्रान्तदर्शी थे। मार्क्स अपने कामों को कभी जल्दी या फुर्ती से करने के विरोधी थे। एंगेल्स को इसके लिए अनकुस मालूम होता था। वह समझते थे कि मार्क्स जो भी लिख देंगे, वह बहुमूल्य होगा और उसके जल्दी प्रकाशित होने पर फल भी जल्दी प्राप्त होने लगेगा। उन्होंने एक बार मार्क्स को लिखा था : "अपनी कृति के बारे में इतनी अधिक सावधानी मत रखिए। साधारण जनता के लिए वह हर तरह से बहुत ही अच्छी होगी। सबसे बड़ी बात यह है कि इसे समाप्त करके प्रकाशित कर दीजिए। उसकी कमियों को जो आप देख सकेंगे, उनका पता गदहे किसी तरह भी नहीं पा सकेंगे।" जिस तरह एंगेल्स अपनी राय को इस तरह दोहराते रहते, मार्क्स भी उसी तरह उनके मानने से इन्कार किया करते। दिन-प्रतिदिन के काम के लिए एंगेल्स कहीं अधिक सक्षम थे। मार्क्स ने एक बार उनके बारे में कहा था : "एक बिल्कुल गम्भीर विश्वकोश, दिन या रात के किसी घंटे में काम करने के लिए तैयार, लिखने में तेज और शैतान की तरह सक्रिय।"

1850 ई. की शरद में 'नोए राइनिशे रिव्यू' के बन्द हो जाने पर लन्दन में दोनों मित्र एक नई योजना बना रहे थे। मार्क्स ने दिसम्बर, 1853 में एंगेल्स को लिखा : "अगर हमने लन्दन में अंग्रेजी संव्यवहार (पत्र-व्यवहार) का काम ठीक समय पर शुरू कर दिया होता, तो इस समय तुम्हें मैन्चेस्टर में रहकर व्यवसाय के जंजाल में न पड़ना पड़ता और न मुझे कर्जों के नीचे पिसना पड़ता।" एंगेल्स ने बाप की फर्म में जाना ही पसन्द किया था, यद्यपि यह ख्याल करने कि अनुकूल स्थिति होने पर मैं फिर उस 'सारे व्यापार' को सदा के लिए छोड़कर लिखने-पढ़ने के काम में लग जाऊँगा। 1854 ई. के वसन्त में एंगेल्स ने काम छोड़कर लन्दन जाने के लिए विचार भी किया, लेकिन मार्क्स की आर्थिक स्थिति को देखकर यह निर्णय करने में जरा भी आनाकानी नहीं की कि मुझे अपने मित्र और उनके अनमोल कार्य में सहायता करने के लिए इस जूये को बराबर के लिए अपने कन्धे पर रखना होगा। एंगेल्स ने इस महान त्याग का अन्तिम और पक्का संकल्प इसी समय किया।

आगे चलकर एंगेल्स अपने फर्म में पार्टनर (भागीदार) बन गए, किन्तु अभी वह फर्म के एक नौकर भर थे और जितना चाहते थे, उतनी मार्क्स की सहायता नहीं कर पाते थे। लेकिन, पाँच पौंड के नोट वह बराबर मार्क्स के पास भेजा करते थे। पीछे तो उनकी सहायताएँ सौ पौंड के नोटों में बराबर मैन्चेस्टर से लन्दन आया करती थीं। जब दोनों ही एक प्राण और दो शरीर थे, तो मार्क्स या जेनी को उनसे अपनी स्थिति छिपाए रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उस समय ये पत्र दिन-प्रतिदिन चलते उनके दुःख और चिन्ता के बाह्य प्रकाश थे, लेकिन आज वह हमारे लिए सबसे ठोस ऐतिहासिक अभिलेख हैं। मार्क्स जीवन की छोटी-छोटी बातों में 'व्यवहारपटु' नहीं थे, यह हम बतला आए हैं। इसके कारण भी कष्टों की परम्परा कम नहीं हो पाती थी। एक समय मार्क्स ने समझा कि हमने परिवार की स्थिति को ठीक-ठाक कर लिया, लेकिन वस्तुतः जेनी ने चिन्ता न होने के लिए कुछ उधारों को छिपा रक्खा था। फिर एकाएक एक दिन वह सामने चले आए, और फिर चिन्ता बढ़ चली। इसे मार्क्स अपने मित्र से कहते, 'स्त्रियों की बेवकूफी' जिन्हें हमेशा एक पगहे की जरूरत होती है।

एंगेल्स अपनी कमाई के पैसों की ही बलि देने के लिए तैयार नहीं थे, बल्कि दिनभर के आफिस और शेयर-बाजार के काम से चूर होकर जब वह शाम को घर लौटते, तो फिर रात को बहुत देर तक 'ट्रिब्यून' के लिए मार्क्स के लेखों को ठीक करते, क्योंकि मार्क्स का अंग्रेजी भाषा पर अधिकार नहीं था। सैनिक विज्ञान एंगेल्स का अपना विषय था, भाषाओं के अध्ययन की ओर भी उनकी विशेष रुचि थी, लेकिन वह 'विद्या विद्या के लिए' के ख्याल से नहीं, बल्कि जिस महान् कार्य के लिए उन्होंने अपना जीवन दे रक्खा था, उसमें उनका उपयोग था, इसी लिए वह उनके सदा गम्भीर विद्यार्थी बने रहे। जब उन्होंने रूसी आदि स्लाव भाषाओं का

पढ़ना आरम्भ किया था, तो इसका कारण बतलाते हुए कहा था : हममें से कम-से-कम एक आदमी को उन जातियों की भाषाओं, इतिहास, साहित्य और सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करना चाहिए, जिससे हमें शायद जल्दी ही काम पड़े। इसी तरह सुदूर पूर्व के काम के लिए उन्होंने अरबी और फारसी पढ़ी। अरबी की चार हजार धातुओं ने उन्हें डरा दिया, लेकिन फारसी उनके लिए लड़कों का खेल थी और उन्होंने उसमें हाथ लगाते ही कह दिया, कि तीन सप्ताह में मैं इसपर अधिकार कर लूँगा। फिर वह जर्मानिक भाषाओं के ऊपर टूट पड़े। उन्होंने उस समय लिखा था : "अब मैं उलफिलस (गाथ पादरी) में आँखों तक डूब गया हूँ। मुझे इस सौरी गाथिक को सचमुच ही बहुत पहले ही खत्म कर लेना चाहिए था।"मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है, कि मैं इसे उससे कहीं अधिक जानता हूँ, जितना कि मैं समझता था। एक अच्छे कोश के सहारे दो हफ्ते में मुझे इसके बहुत भीतर पहुँच जाना चाहिए। फिर मैं प्राचीन नार्डिक और प्राचीन सैक्सन की ओर जाऊँगा, जिसके साथ सदा से ही मेरा कुछ परिचय था।" जब आयरलैंड का प्रश्न उठ खड़ा हुआ, तो उनका ध्यान उसकी भाषा गैलिक की ओर गया। इण्टरनेशनल के युग में अधिवेशनों के समय भाषाओं का ज्ञान उन्हें बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। इसी से कोई कह उठा, "एंगेल्स बीस भाषाएँ हकला सकता है।" जब बहुत उत्तेजित हो जाते, तो एंगेल्स के बोलने में थोड़ी-थोड़ी हकलाहट आ जाती थी।

सैनिक विज्ञान के अध्ययन के प्रति जो उनका शौक था, इसके कारण लोगों ने उन्हें 'जनरल' का नाम दे दिया था। सैनिकों की संयुक्त भावना के वह प्रशंसक नहीं थे और कहते थे कि भीड़ का यह बहुत ही जुगुप्सनीय रूप है। उन्होंने यह भी कहा था : "ये सैनिक एक-दूसरे से विष की तरह घृणा करते हैं, और जरा भी विशेषता होने पर स्कूली लड़कों की तरह एक-दूसरे के साथ ईर्ष्या करते हैं। लेकिन जहाँ तक असैनिकों का सम्बन्ध है, उनके विरुद्ध वह एक आदमी की तरह खड़े हो जाते हैं।" सैनिक विज्ञान और सैनिक संगठन का उन्होंने बड़े विस्तार के साथ गम्भीर अध्ययन किया था, सैनिक और नवीनतम सैनिक टेकनीक को भी हृदयंगम किया था। प्रारम्भिक दाँव-पेंच, मोर्चाबन्दी, पुल-निर्माण, खाई खोदना, हर तरह के हथियारों का इस्तेमाल, भिन्न-भिन्न प्रकार के हथियारों का विवरण, सेना के लिए सप्लाई (पूर्ति) व्यवस्था, अस्पताल-व्यवस्था तथा दूसरी बहुत-सी बातों का अध्ययन किया था। उन्होंने नेपियर (अंग्रेज), जोमिनी (फ्रेंच), क्लाउचेवित्ज (जर्मन) जैसे महान् सैनिक इतिहासकारों के ग्रंथों का भी आद्योपांत परायण किया था।

इतनी प्रतिभा और योग्यता रखते हुए भी एंगेल्स ने अपने को पीछे रक्खा। वह इसे ही अपना सबसे बड़ा सौभाग्य मानते थे, कि चालीस वर्षों तक वह अपने प्रिय मित्र मार्क्स के साथ-साथ अभिन्न तौर से रहे। मार्क्स के बाद एक दशाब्दी से ऊपर दुनिया के मजदूर-वर्ग के आन्दोलन में उन्होंने अपनी प्रतिभा का पूरा इस्तेमाल किया, और इस वक्त वह विश्व के मजदूरों के सर्वोपरि नेता माने जाते थे।

3. भारत पर मार्क्स

'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में मार्क्स ने भारत के बारे में जो लेख लिखे और एंगेल्स के लिए लिखे पत्रों में भारत का जिस तरह वर्णन किया, उससे पता लगता है कि मार्क्स का भारत-सम्बन्धी अध्ययन कितना गम्भीर था और भारत की परतन्त्रता से वह कितने खिन्न तथा उसके भविष्य के प्रति कितने आशावान् थे। इन्हें लिखने में मार्क्स ने स्याही-कलम और जहाँ-तहाँ से सुनी-सुनाई बातें पर्याप्त नहीं समझीं थीं, बल्कि ब्रिटिश म्युजियम में अंग्रेजों ने जो सामग्री भारत के बारे में जमा कर रखी थी, उसका पूरी तौर से इस्तेमाल किया था।

आज भी हमारे यहाँ मौके-बेमौके गाँव के गणराज्य की या पंचायती राज्य की महिमा पाई जाती है, लेकिन उस गणराज्य की क्या रूपरेखा थी, इसका हमें पता नहीं है। मार्क्स ने अपने 25 जून, 1853 के 'ट्रिब्यून' में छपे लेख में पार्लियामेन्ट में पेश होनेवाली रिपोर्ट पर लिखा था :

(अ) ग्राम गणराज्य का स्वरूप–गाँव भौगालिक तौर पर, देखने पर कुछ सौ या हजार एकड़ आबाद या परती जमीन का टुकड़ा है। राजनीतिक तौर से देखने पर वह कस्बा या संगठित नगर-सा मालूम होता है। उसके बाकायदा निम्न नौकर और अफसर होते हैं :

पटेल (या गाँव का मुखिया)—गाँव के कामों का साधारण तत्त्वावधान इसके ऊपर रहता है। वह गाँववालों के झगड़ों का फैसला करता, पुलिस की देख-भाल करता, और गाँव के भीतर कर वसूल करने का काम करता है। यह काम ऐसा है, जिसे अपने वैयक्तिक प्रभाव, व्यक्ति तथा परिस्थिति से सूक्ष्म परिचय के कारण उसमें बहुत अच्छी तरह से करने की क्षमता है।

पटवारी (कर्णम)—खेतों तथा उससे सम्बद्ध हर बात का लेखा रखता है।

चौकीदार—गाँव के जुर्मों, अपराधों का सुराग लगाता है और जानेवाले यात्रियों की रक्षा करते हुए एक गाँव से दूसरे गाँव में पहुँचाता है।

प्रहरी का काम ज्यादातर गाँव के भीतर से सम्बद्ध है। उसके कामों में फसल की रखवाली और उसके तौलने में सहायता देना है।

सीमापाल गाँव की सीमा की रक्षा करता है और विवाद होने पर उसके बारे में गवाही देता है।

जलपाल तालाब और नहरों की देखभाल करता है, और खेती के लिए पानी बाँटता है।

ब्राह्मण गाँव के लिए पूजा करता है।

अध्यापक गाँव में बच्चों को बालू के ऊपर लिखना-पढ़ना सिखाता है।

ज्योतिषी साइत बतलाता है, आदि।

आम तौर से ये नौकर और कर्मचारी हर गाँव के संगठन में मिलते हैं, लेकिन देश के किसी-किसी भाग में इनकी संख्या कम होती है, और ऊपर बतलाए कर्तव्यों और अधिकारों में से एक से अधिक एक ही आदमी के ऊपर होते हैं। और कहीं-कहीं उपर्युक्त व्यक्तियों की संख्या और अधिक होती है। इस तरह की सीधी-सादी सरकार के अधीन देश के निवासी अज्ञात काल से रहते चले आए हैं। गाँव की सीमा शायद ही कभी बदली हो। यद्यपि कभी-कभी गाँवों को चोट पहुँची, युद्ध, अकाल या महामारी ने उन्हें बरबाद किया है, किन्तु वही सीमा, वही स्वार्थ और बल्कि वही परिवार युगों से चलते आ रहे हैं। राज्यों के टूटने-फूटने की ग्रामीणों को कोई पर्वाह नहीं। जब तक गाँव अखंड हैं, तब तक उन्हें इसकी चिन्ता नहीं कि वह किस शासक के हाथ में हस्तान्तरित किया गया अथवा कौन उसका राजा बना—उसकी आन्तरिक अर्थनीति अछूती बनी रहती है। पटेल अब भी गाँववालों का मुखिया है और वह अब भी गाँव का छोटा मुंसिफ, मजिस्ट्रेट और कलेक्टर—लगान जमा करनेवाला है।

आज से 100 वर्ष पूर्व, गदर से चार साल पहले 'भारत में ब्रिटिश शासन' नामक अपने लेख में 'न्यूयार्क ट्रिब्यून', 25 जून, 1853 में उपर्युक्त पंक्तियों को उद्धृत करते हुए मार्क्स ने लिखा था : "यह छोटा अचल सामाजिक संगठन अब बहुत अंशों में नष्ट हो चुका या हो रहा है, किन्तु इसका कारण ब्रिटिश कर उगाहनेवाले और ब्रिटिश सिपाही उतने नहीं हैं, जितने कि ब्रिटिश भाप-इंजन और ब्रिटिश मुक्त व्यापार।

(ब) ग्राम गणराज्य के कारण अकर्मण्यता—उसी सन् के 14 जून के अपने एक पत्र में मार्क्स ने भारत के ग्राम-संगठन के बारे में एंगेल्स को लिखा था :

"एशिया के इस भाग में इस तरह की जो गति-शून्यता—बाहरी राजनीतिक सतह पर जो लक्ष्यरहित कुछ गति-सी भले ही दिखलाई पड़ी हो—एक दूसरे पर अवलम्बित दो परिस्थितियों के कारण हैं : (1) सार्वजनिक काम (तालाब, नहर आदि का बनाना) केन्द्रीय सरकार के जिम्मे था, (2) इसके अतिरिक्त सारा साम्राज्य कुछ थोड़े-से शहरों को छोड़कर ऐसे गाँवों से बना है, जिनका अपना एक बिल्कुल अलग संगठन है, और उनकी अपनी एक खुद छोटी-सी दुनिया है।

ये काव्यमय गणराज्य, जो पड़ोसी गाँवों से सिर्फ अपने गाँव की सीमाओं की ही तत्परता से रक्षा करना जानते थे, अब भी हाल में अंग्रेजों के हाथों में आए उत्तरी भारत के कितने ही भागों में काफी सुरक्षित रूप में पाए जाते हैं। मैं नहीं समझता, एशियाई निरंकुशताएँ, गति-शून्यता के मजबूत कारण ढूँढ़ने के लिए किसी और चीज की जरूरत है।··अंग्रेजों द्वारा इन पुराने अचल रूपों का तोड़ा जाना भारत के यूरोपीकरण के लिए

आवश्यक बात थी। उगाहनेवाला अकेला इसमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता था। गाँवों के अपने स्वावलम्बी स्वरूप को दूर करने के लिए उनके पुराने उद्योग-धन्धे का बरबाद होना जरूरी था।"

भारतीय मानव-समाज की सहस्राब्दियों से चली आती इस तरह की निश्चलता, प्रवाह-शून्यता—जो पहली सदी तक पाई जाती थी—ही वह कारण है, जिससे भारतीय मानव ग्रामभक्ति से उठकर देशभक्ति तक नहीं पहुँच सका और न सामूहिक तौर से बाहरी दुश्मनों का मुकाबिला कर सका। इस ग्राम-पंचायत ने शिल्पियों को सहस्राब्दियों पूर्व के बसूलों, रूखानियों से, किसानों को हँसुओं-फालों से चिपटा रहने दिया। शासकवर्ग जानता था कि यह ग्राम-संगठन भारतीय समाज का मर्म-स्थान है, वहाँ पर पड़ी चोट को वह सहन नहीं कर सकता, मुकाबिला किए बिना नहीं रह सकता, इसलिए उसने उसे नहीं छेड़ा, जैसे का तैसा रहने दिया और इसी पर भारतीय ग्रामीण बोल उठे :

कोउ नृप होई हमें का हानी।

(तुलसीदास)

यदि वह भारतीय ग्राम्य-गणराज्य पहले ही टूटकर विस्तृत संगठन में बद्ध हुआ होता, तो निश्चित ही साधारण जनता शासकों की निरंकुशता का मुकाबिला करने की ज्यादा क्षमता से सम्पन्न होती, फिर जिस स्वेच्छाचारिता को हम भारत के पिछले दो हजार वर्षों के इतिहास में देखते हैं, क्या वह रह पाती ?

(स) सामाजिक परिवर्तन का आरम्भ : (क) आक्रमणों की क्रीड़ाभूमि—सहस्राब्दियों से भारतीय समाज मुक्त-प्रवाह नहीं, प्रवाह-शून्य नदी का छाड़न हो गया है। आज भी धार्मिक हिन्दू गंगा की छाड़न में नहाना बुरा समझता है, वह उसके लिए मुर्दा के साथ स्नान, पुण्य छीननेवाला स्नान है। वैसे भी ऐसे पानी के पास से गुजरने पर नाक में सड़ाँद की बू आने लगती है। भारतीय मानव समाज 19वीं सदी तक ऐसा ही छाड़न था। उसे अपने पुराणपन पर अभिमान रहा। उसने वहते पानी को समाज में लाने की ओर ध्यान तक नहीं दिया।

मार्क्स के शब्दों में "सारे गृहयुद्ध, विदेशी आक्रमण, क्रांतियाँ, विजय, अकाल—चाहे जितने ही तीव्र और नाशकारी रहे हों, पर वह (भारत में) सतह से भीतर नहीं घुस सके।"

जिस परिवर्तन से दुनिया बहुत पहिले गुजर चुकी थी, भारत को उसे अपनाने के लिए मजबूर करना अंग्रेजों का काम था। अंग्रेज उन विजेताओं की भाँति भारत में नहीं आए थे जो भारत में आकर भारतीय बन भारत के हो गए—वह यूनानियों, शकों, तुर्कों, मुगलों की भाँति हिन्दू नहीं बन गए। अंग्रेजों में पहले के विजेताओं से अनेक विशेषताएँ थीं। दूसरे विजेता विजेता जरूर थे, किन्तु साथ ही वह सभ्यता में उस तल पर नहीं पहुँचे हुए थे, जिसपर हिन्दू पहुँच चुके थे; इसलिए इतिहास के सनातन नियम के अनुसार राजनीतिक विजेता विजित जाति की श्रेष्ठ सभ्यता द्वारा पराजित हो गए। अंग्रेज हिन्दू सभ्यता से कहीं ऊँची सभ्यता के धनी थे, इसलिए हिन्दू विजित जाति उन्हें अपने में हजम नहीं कर सकते थे। पीढ़ियों तक वह यही कोशिश कर सकते थे कि विजेता की सभ्यता से दूर-दूर रहें; लेकिन, यह मूढ़ हठ कितने दिनों तक चल सकता था ? आज हम देख रहे हैं, भारत का वह पुराणपन कितना हटता जा रहा है।

(ख) अंग्रेज विजेताओं की विशेषता—एक और बात भी है, अंग्रेज भारत में अंग्रेज राजवंश कायम करने नहीं आए थे। विजय करके भारत के शासन को पहले-पहल अपने हाथ में लेनेवाला कोई राजा या उसका सेनापति नहीं था, वह तो था ऐसे सौदागरों का गिरोह, जो अपनी पूँजी पर अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाना चाहते थे। वह बिल्कुल ही नई तरह की विजय थी, जिसमें विजेता राजवंश स्थापित नहीं करना चाहता था। ईस्ट इंडिया कम्पनी चाहती थी, और भारत पर इसलिए शासन कर रही थी कि वह अपने भागीदारों को अधिक-से-अधिक नफा बाँटे। इससे और अधिक यदि कोई उसका मतलब था, तो यही कि भारत से अधिक-से-अधिक अंग्रेजों का भरण-पोषण हो। यह काम मुगलों और शकों की कर उगाहने की नीति से नहीं हो सकता था। मुगलों-शकों के अपने खर्च के लिए लिया रुपया भी फिर भारत में ही जीवनोपयोगी चीजों के खरीदने में बँट जाता था, इसलिए वह एक तरह से देश के भीतर विनिमय के रूप में चक्कर काटता रहता था। अंग्रेजों द्वारा एक बार ली गई सम्पत्ति फिर लौटकर यहाँ आनेवाली न थी। इसके लिए जरूरी था कि

अंग्रेज स्वदेशी हो गए विजेताओं से धन का ज्यादा शोषण करें।

संक्षेप में अंग्रेजों को अपने सारे शासकवर्ग-पूँजीपतिवर्ग के स्वार्थ के लिए भारत का दोहन करना था–पहिले व्यापार से, फिर व्यापार और शासन से, फिर व्यापार, शासन और पूँजीवादी शोषण (कच्चे-पक्के माल के क्रय-विक्रय) से। इस भारी शोषण में ग्रामीण गणराज्य बचाया नहीं जा सकता था; चाहे उसका कवित्वमय रूप तत्कालीन और आधुनिक कितने ही भावुक व्यक्तियों को बहुत आर्काक मालूम होता रहा हो, और कौन-सा अतीत है, जो आकर्षक नहीं होता ?

(ग) अंग्रजी शासन का परिणाम–सामाजिक क्रांति–हाँ, तो हजारों वर्षों के इस भारतीय छाड़न के लिए अंग्रेजों ने जो सबसे बड़ा काम किया, वह था उसका बाँध तोड़ना। उन्होंने भारतीय चर्खे को तोड़ डाला, पुराने कर्घे को विदा कराया, अपने यहाँ और यूरोप से भी पुराने चर्खों-कर्घों को निकाल बाहर किया, फिर गंगा को उलटी बहाया और मार्क्स के शब्दों में : "कपास की मातृभूमि में कपास के कपड़ों की बाढ़ ला दी।" 1818 से 1836 ई. में ग्रेट ब्रिटेन से भेजा जानेवाला कपड़ा 5200 गुना बढ़ गया। 1830 ई. में भारत में आया अंग्रेजी मखमल मुश्किल से दस लाख गज था। लेकिन, इसके साथ ही ढाका की आबादी डेढ़ लाख से बीस हजार रह गई। अपने शिल्पों के लिए जगद्‌विख्यात भारतीय नगर ही नहीं बर्बाद हो गए, बल्कि ब्रिटिश भाप और विज्ञान ने सारे हिन्दुस्तान में कृषि और शिल्प-उद्योग के मेल को जड़-मूल से उखाड़ फेंका।··भारत के परिवार-समुदाय का आधार था घरेलू उद्योग–हाथ की कताई, हाथ की बुनाई, खेती में हाथ की जुताई–जिससे वह स्वावलम्बी बना हुआ था। अंग्रेजों के भीतर दखल देने का क्या फल हुआ ?–उसने कातनेवाले को लंकाशायर में ला रखा, और जुलाहे को बंगाल में या हिन्दुस्तानी कमकरों और जुलाहों दोनों ही का सफाया कर दिया। इन छोटे-छोटे अर्ध-बर्बर, अर्ध-सभ्य समुदायों को, उनकी आर्थिक नींव को उड़ाकर ध्वस्त कर दिया, और इस प्रकार सबसे बड़ी, और सच पूछिए तो एशिया में कभी भी न सुनी गई, एकमात्र सामाजिक क्रांति को पैदा किया।

(घ) ध्वंसात्मक काम जरूरी–आज मनुष्य का हृदय खिन्न जरूर होगा, जब कि वह इन अगणित पितृसत्ता को, शान्तिपूर्ण सामाजिक संगठनों को इस प्रकार तितर-बितर हो··बिखरते देखता है, उन्हें कष्टों के समुद्र में फेंके जाते, और अवयवों के साथ ही अपनी सभ्यता के पुराने रूप को खोते देखता है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि यह काव्यमय ग्राम्य-संगठन, चाहे देखने में कितना ही मासूम जान पड़े, लेकिन यही सदा से पूर्वी-स्वेच्छाचार की ठोस बुनियाद रहे हैं। इन्होंने मानव-मस्तिष्क को छोटे-से-छोटे दायरे में बन्द रक्खा, और मिथ्या-विश्वास को चुपचाप मान लेनेवाला हथियार बना उसे पुराने नियमों का गुलाम बनाया, और उसे सभी महान् ऐतिहासिक (इतिहास की प्रगति से उत्पन्न) शक्तियों से वंचित रक्खा। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि एक तुच्छ छोटी सी जमीन की टुकड़ी में केन्द्रित बार्बरिक निर्ममता साम्राज्यों के ध्वंस, अकथनीय नृशंसता के नग्न-नृत्य, बड़े-बड़े शहरों की ज़नता की हत्या का कारण हुआ। हमें नहीं भूलना चाहिए कि इस अपमानजनक कीड़े-मकोड़ों के मुर्दा जीवन, निर्जीव-से अस्तित्व ने, अपने विरुद्ध जंगली, निरुद्देश्य, सत्यानाशी असीम शक्तियों को उत्तेजना दी, और खुद मनुष्य-हत्या को हिन्दुस्तान में धार्मिक कृत्य बना दिया। हमें नहीं भूलना चाहिए कि भारत की यह छोटी-छोटी जमातें जाति-भेद और दासता के रोग में फँसी हुई थीं। उन्होंने मानव को ऊपर उठा परिस्थितियों पर विजयी बनने की जगह बाहरी परिस्थितियों का गुलाम बनाया, उन्होंने स्वयं विकसित होनेवाली सामाजिक स्थिति को अपरिवर्तनशील रख प्रकृति के हाथ की कठपुतली बना दिया, इस प्रकार प्रकृति की पाशविक प्रजा को स्थापित किया, और प्रकृति के राजा मानव का इतना अधःपतन कराया, कि वह वानर, हनुमान और कपिला गाय की पूजा में घुटने टेकने लगा।

यह सच है, कि हिन्दुस्तान में इंग्लैंड जो सामाजिक क्रांति ला रही है, उसके पीछे एक बहुत ही नीच उद्देश्य छिपा हुआ है। किन्तु सवाल यह नहीं है, सवाल तो है–क्या एशिया की सामाजिक स्थिति में क्रांति लाए बिना मानवजाति अपने ध्येय को पूरा कर सकती है ? अगर नहीं, तो इंग्लैंड ने चाहे जो भी अपराध किया हो, किन्तु उक्त क्रांति को लाने में उसने इतिहास के अनजाने हथियार का काम किया।

एक पुरातन जगत के टूट-टूटकर गिरने का दर्दनाक नजारा चाहे जितनी भी कटुता हमारे व्यक्तिगत भावों

में पैदा करे, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर हमें गोयथे के शब्द याद आते हैं :

इसका हमें सोच करना क्या लिप्सा स्वभाव ही ऐसा, बढ़ती चले अयास,
और नहीं क्यों तैमूरी तलवार बनाती कोटि जनों को क्रूर काल का ग्रास ?

(4) भारतीय समाज की निर्वलताएँ–110 वर्ष हो गए, जब कि 25 जून, 1853 ई. को मार्क्स की यह पंक्तियाँ पहले-पहल प्रकाशित हुईं। इनको पढ़ने से मालूम होता है कि इतनी दूर बैठकर ज्ञान के साधनों के बहुत अभाव के होते भी उनकी पैनी दृष्टि भारतीय समाज की सतह से भीतर कितनी घुस सकी थी। उन्होंने क्रूरता के साथ हमारे उस लुटते सोने के गढ़ के लिए दो आँसू बहाना काफी नहीं समझा, बल्कि बतलाया कि हमारी उस दयनीय दशा का कारण क्या है। उन्होंने यह भी बतलाया कि उस पुरानी सामाजिक व्यवस्था को नष्ट होने से बचाने की जरूरत नहीं है, जैसा कि कुछ वर्ष पहिले गांधी और अब गांधीवादी भावे और जयप्रकाश दिल से या दिखाने के लिए कह रहे हैं, बल्कि उससे एक प्रवाहशील उन्मुक्त समाज के निर्माण का जो अवसर मिला है, उससे हमें लाभ उठाना चाहिए।

उपर्युक्त लेख से डेढ़ महीने बाद, 8 अगस्त, 1853 को 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में मार्क्स का 'भारत में ब्रिटिश-शासन के होनेवाले परिणाम' नाम से दूसरा लेख छपा, जिसमें उन्होंने भारतीय समाज के भविष्य पर प्रकाश डाला। यहाँ उसके कुछ उद्धरण दिए जाते हैं :

"क्या बात थी, जिसके कारण भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हुआ ? मुगल सूबेदारों ने मुगल शासन-केन्द्र को तोड़ा। सूबेदारों की ताकत को मराठों ने तोड़ा। मराठों की ताकत को अफगानों ने तोड़ा। और जब यह भी सबके खिलाफ लड़ रहे थे, तब अंग्रेज दौड़ पड़े, और वह सबको दबाने में सफल हुए। भारत वह देश है, जो हिन्दू-मुसलमानों में ही बँटा नहीं है, बल्कि वह कबीलों-कबीलों, जातों-जातों में बँटा हुआ है। उसके समाज का ढाँचा एक तरह के ऐसे संतुलन पर आधारित था, जो उसके सभी व्यक्तियों के बीच साधारण बिखराव और मनमुखीपन का परिणाम था। इस तरह का देश, इस तरह का समाज, क्या पराजित होने के लिए ही नहीं बना था ? चाहे हिन्दुस्तान के अतीत इतिहास को हम न भी जानते, किन्तु क्या यह एक जबर्दस्त अविवादास्पद बात नहीं है, कि इस क्षण भी भारत अंग्रेजों की गुलामी में भारत-खर्च पर रखी एक भारतीय सेना द्वारा जकड़ा हुआ है। फिर भारत पराजित होने से बच कैसे सकता था ? उसका सारा अतीत का इतिहास अगर कोई चीज है, तो लगातार पराजयों का इतिहास है, जिनसे कि वह गुजरा है। भारतीय इतिहास, कम-से-कम ज्ञात इतिहास, कोई इतिहास नहीं। जिसे हम उसका इतिहास कहते हैं, वह उन्हीं लागतार आनेवाले आक्रमणकारियों का इतिहास है, जिन्होंने निष्क्रिय अपरिवर्तनशील समाज की निश्चेष्टता की मदद से अपने साम्राज्य कायम किए···।"

(क) अंग्रेजी शासन के दो काम–"भारत में अंग्रेजों को दो काम पूरे करने हैं–एक ध्वंसात्मक, दूसरा पुनरुज्जीवक–पुराने एशियाई समाज का ध्वंस और एशिया में पाश्चात्य समाज का भौतिक शिल्यान्यास।"

अंग्रेजों ने देशी (ग्राम्य) समाज को तोड़कर, देशी उद्योग-धन्धे को जड़-मूल से उखाड़कर देशी समाज में जो कुछ महान् और उच्च था, उसे ज़मीन के बराबर करके अपने ध्वंसात्मक काम को पूरा किया। ध्वंसों के ढेर में पुनरुज्जीवन का काम आज मुश्किल दिखलाई पड़ता है, तो भी वह आरम्भ हो गया है :

"आज महान् मुगलों के शासन से भी ज्यादा संगठित और विस्तृत भारत की राजनीतिक एकता पुनरुज्जीवन के लिए सबसे पहली आवश्यक चीज है। अंग्रेजी तलवार के द्वारा जबर्दस्ती लादी गई यह एकता अब बिजली के टेलीग्राफ द्वारा और मजबूत तथा चिरस्थायी बनाई जायगी। परेड सिखानेवाले अंग्रेज सर्जेन्ट द्वारा संगठित और शिक्षित देशी सेना भारत की स्वतः मुक्ति के लिए तथा पहिले ही आनेवाले विदेशी आक्रमणकारी का शिकार बनने के लिए आवश्यक साधन है। स्वतंत्र प्रेस–जिससे यह एशियाई समाज पहले-पहल परिचित हुआ है, और जिसका प्रबन्ध मुख्यतः हिन्दुओं और यूरोपियनों की सम्मिलित सन्तानों के हाथ में है–पुनर्निर्माण के वास्ते एक नया और बहुत ही शक्तिशाली हथियार है।··भारतीयों में से संख्या में कम ही सही कलकत्ता में अंग्रेजों की देख-रेख में शिक्षा पाकर एक ताजा वर्ग उत्पन्न हो रहा है, जो कि शासन-संचालन की कला में निपुण और

यूरोपीय विज्ञान से अभिज्ञ है। भाप ने भारत का यूरोप से यातायात नियमित और द्रुत कर दिया है, उसके प्रधान बन्दरगाहों को इंग्लैंड के दक्खिनपूर्व के बन्दरगाहों के साथ जोड़ दिया है, और उसकी उस अलग-थलगपन की स्थिति को हटा दिया है, जो कि उसकी प्रवाह-शून्यता का कारण थी। वह समय दूर नहीं, जबकि रेलों और वाष्पपोतों की सम्मिलित सहायता से इंग्लैंड और भारत के बीच की समय में मापी जानेवाली दूर घटकर आठ दिन रह जाएगी, और जब कि गाथाओं में सुना जानेवाला यह देश, इस प्रकार यथार्थतः पाश्चात्य जगत् का एक भाग बन जाएगा।

(ख) स्वार्थ से मजबूर–'ग्रेट-ब्रिटेन के शासकवर्ग का अब तक भारत की प्रगति में सिर्फ आकस्मिक चलता-फिरता एक खास तौर का स्वार्थ था। सामन्तवर्ग भारत को जीतना चाहता था, थैलीशाही उसे लूटना चाहती थी, और मिलशाही सबकी गलाकट्टी कर रही थी। लेकिन अब अवस्था बदल गई है। अब मिलशाही (पूँजीवाद) को पता लग गया है कि भारत को उत्पादक देश में परिणत करना उसके लिए आवश्यक बात है, और इसके लिए यह जरूरी हो गया है कि भारत के पास सींचने और भीतरी यातायात के साधन प्रस्तुत किए जायँ। अब मिलशाही सारे भारत में रेलों का एक जाल बिछाना चाहती है, और वह ऐसा करके रहेगी।···

मैं जानता हूँ, अंग्रेज मिलशाही भारत में रेलें सिर्फ इसलिए बिछाना चाहती है कि कम खर्च में कपास और दूसरे कच्चे माल को अपने कारखानों के लिए प्राप्त कर सके। लेकिन जब एक बार ऐसे देश में मशीनरी तुमने चला दी, जहाँ पर लोहा और कोयला है, तो उनके निर्माण (उद्योग) से तुम उसे रोक नहीं सकते।··भारतीयों की मानसिक योग्यता के बारे में केम्बेल को मानने के लिए बाध्य होना पड़ा कि भारतीयों की बड़ी-बड़ी संख्या की एक बड़ी औद्योगिक शक्ति है, वह पूँजी जमा करने की क्षमता, दिमाग में गणित-जैसी स्पष्टता, आँकड़ों और पक्के विज्ञान के योग्य विचित्र प्रतिभा रखती है। स्थापित होनेवाले आधुनिक ढंग के उद्योग-धन्धे उन खानदानी श्रम-विभाग को उठा देंगे, जिसके ऊपर भारतीय जाति-पाँति आश्रित है, और जो कि भारतीय प्रगति में निश्चय ही जबर्दस्त बाधा है।

अंग्रेजी बूर्ज्वा (पूँजीवादी) जो कुछ भी करने के लिए मजबूर होंगे, उससे न जनता मुक्त होगी, और न ही वह उसकी सामाजिक अवस्था को आर्थिक तौर से सुधारेगा।··· क्या पूँजीवाद (बूर्ज्वाजी) ने कभी भी ऐसी कोई प्रगति होने दी, जिसमें व्यक्तियों और जनता को खून और कूड़े-कर्कट में से, कष्ट और अधःपतन में से न घसीटा गया हो ?

(5) भविष्य उज्ज्वल–अंग्रेज-बूर्ज्वा ने भारतीयों के बीच समाज के जिन नवीन तत्त्वों को बोये हैं, उनके फल का उपभोग भारतीय तब तक नहीं कर सकेंगे, जब तक खुद ग्रेट-ब्रिटेन में आज के शासकवर्ग को हटाकर कारखानों के सर्वहारा आगे न आ जाएँ अथवा हिन्दू खुद ही इतने मजबूत हो जाएँ कि अंग्रेजी जूये को उतार फेंकें। चाहे कुछ भी हो, कम या बेशी सुदूर काल में यह जरूर देखने में आएगा, जब कि उस महान् और मनोहर देश का पुनरुज्जीवन होगा··जिसके कोमल प्रकृतिवाले निवासियों को··· अधीनता-स्वीकृति में भी एक तरह का शान्त स्वाभिमान है, जिन्होंने अकर्मण्यता के रहते भी अपनी बहादुरी से अंग्रेज अफसरों को चकित कर दिया, जिनका देश हमारी जबानी हमारे धर्मों का स्रोत रहा, और जो अपने जाटों में प्राचीन जर्मनों और अपने ब्राह्मणों में प्राचीन यूनानियों के प्रतिनिधि हैं।

12
यूरोपीय स्थिति (1853-58 ई.)

जिस वक्त मार्क्स विलिच के लड़कपन जैसे काम के विरुद्ध लिख रहे थे, उसी समय यूरोपीय राज्यों में एक जबर्दस्त संघर्ष उपस्थित हुआ। रूसी जार की शक्ति से भयभीत होकर फ्रांस और इंग्लैंड ने अपने भेदभाव को

भुला जार को खर्व करने का निश्चय कर लिया। जारशाही काकेशस, क्रिमिया और दन्यूब की भूमि में पैर पसारते हुए तुर्की भूमि को दबा रही थी। क्रिमिया का शासक सुलतान के अधीन था। तुर्की अब इतना निर्बल हो गया था कि जारशाही का मुकाबला नहीं कर सकता था। खतरा पैदा हो गया था कि कहीं रूसी भालू कालासागर को अपनी झील न बना ले। सुलतान के हार पर हार खाने को देखकर दोनों पश्चिमी बड़ी शक्तियों को सीधे जारशाही के विरोध में खड़ा होना पड़ा। लेकिन जारशाही केवल पश्चिमी पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए खतरे की चीज नहीं थी, बल्कि प्रतिक्रियावादियों की सबसे बड़ी समर्थक और पोषक थी। हंगरी में क्रान्ति को असफल कराने में रूस का हाथ था, प्रशिया के युंकर भी जारशाही बल पर फुदक रहे थे। ऐसे सामन्तवादी शक्तिशाली राज्य को यदि सर्वहारा-क्रांति के समर्थक मार्क्स और एंगेल्स फूटी निगाह से न देखते हों, तो आश्चर्य क्या ? सर्वहारा-क्रांति किन परिस्थितियों में और कैसे देश में होगी, इसके बारे में मार्क्स के विचार बिल्कुल ठीक थे, लेकिन उन्हें यह समझने में गलती हुई कि उन्हीं के सिद्धान्तों के अनुसार पूँजीवाद की कड़ी सबसे निर्बल फ्रांस और इंग्लैण्ड में नहीं, बल्कि रूस में सिद्ध होगी, और वहाँ के सर्वहारा तथा उनके नेता अधिक कर्मठ और दूरदर्शी सिद्ध होंगे। मार्क्स को इस वक्त जीविका चलाने के लिए 'ट्रिब्यून' को लेख लिखते रहना पड़ता था, जिनके लिए विश्व की किसी महत्त्वपूर्ण घटना की तह तक पहुँचने के लिए उन्हें ब्रिटिश म्युजियम की पुस्तकों के पन्ने उलटना पड़ता था। अभी हम देख चुके हैं कि उन्होंने इन पन्नों के बल पर भारत की स्थिति के बारे में क्या समझा था। जर्मनी में जो क्रांति और प्रति-क्रांति हुई थी, उसके बारे में कितने ही लेख ट्रिब्यून में मार्क्स के नाम से छपे थे, लेकिन मार्क्स और एंगेल्स के आपसी पत्रों द्वारा यह मालूम है कि उनके लेखक एंगेल्स थे। चार बड़ी जिल्दों में छपे मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार पुस्तकों द्वारा लिखित और अलिखित सामग्री पर कितना प्रकाश डालते हैं, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। 'ट्रिब्यून' के लिए लिखे गए बहुत-से लेख छपे नहीं, और बहुत-सी सामग्री को मार्क्स प्रकाशनार्थ पूरी तौर से तैयार नहीं कर पाए थे। यह सामग्री तब तक गुमनाम पड़ी रही, जब तक कि मार्क्सवाद दुनिया के छठे हिस्से रूस में शासक नहीं बन गया, और वहाँ 'मार्क्स-एंगेल्स प्रतिष्ठान' के नाम से एक बड़ी संस्था ने इस सारी सामग्री को कई जिल्दों में प्रकाशित नहीं कर दिया। उनके लेख 'राइनिशे जाइटुंग', 'नोये राइनिशे जाइटुंग', नोये राइनिशे रिव्यू', 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' आदि एक दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े थे, जिनको मास्को के उक्त प्रतिष्ठान ने सुसम्पादित करके प्रकाशित किया। 'नोये राइनिशे जाइटुंग' ने अपने को दास बनानेवाली जारशाही के प्रति पोलों के राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संघर्ष का समर्थन किया, फिर इतालियन और हंगेरियन के स्वतंत्रता-आन्दोलन में भी उसी तरह खुलकर उनका पक्ष लिया, और साथ ही यूरोपीय प्रतिक्रांति के सबसे जबर्दस्त दुर्ग रूसी जार के खिलाफ अपने भावों को खुलकर कहा। यद्यपि पीछे जब मालूम हुआ कि इंग्लैंड सबसे ज्यादा शक्तिशाली प्रतिक्रियावादी राज्य है, तो उन्होंने इस बात की घोषणा की कि इंग्लैंड की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिए एक विश्वयुद्ध की आवश्यकता है। विश्वयुद्ध होके रहेगा, इसे वह साम्राजी विस्तार से जानते थे, और वह उनके मार्क्स के लीलासंवरण के 31 वर्ष बाद हुआ भी। प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य निर्बल जरूर हो गया, लेकिन उतना नहीं कि यह छिन्न-भिन्न हो जाए। उस समय भारत जैसे उसके दास देश अभी राजनीतिक चेतना में इतने आगे नहीं बढ़े थे कि ब्रिटिश साम्राज्य की इस कमजोरी से फायदा उठा अपने को स्वतन्त्र कर लेते। लेकिन अन्त में पहले नहीं तो दूसरे विश्वयुद्ध ने इंग्लैंड को अत्यन्त निर्बल करके उसके राज्य को छिन्न-भिन्न करने में सफलता पाई। मार्क्स समय के बारे में वर्षों के गिनने में गलती कर सकते थे, लेकिन घटनाओं के निदान में वह कभी चूक नहीं करते थे।

क्रिमिया के युद्ध के समय मार्क्स ने 'एंग्लो-रूसी दासता' को सबसे बड़ी दासता और सर्वहारा-क्रांति के लिए सबसे बड़ी बाधा कहा था। यूरोप की प्रति-क्रांति में अपनी थुथुन घुसेड़कर जारशाही ने जो अपूर्व प्रभुत्व और शक्ति प्राप्त की थी, क्रिमिया के युद्ध से उसके कमजोर होने की आशा मार्क्स कर रहे थे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जारशाही के शत्रुओं–फ्रांस और इंग्लैंड को वह शक्तिशाली देखना चाहते थे। लाखों आदमी और करोड़ों पौंड इस युद्ध में खर्च हुए, लेकिन जहाँ तक पश्चिमी पूँजीवादी शक्तियों का सम्बन्ध था, उनको

इस युद्ध से अधिक आँच न आई; हाँ, जारशाही का मनसूबा कुछ दिनों के लिए कुंठित जरूर हो गया। सेवेस्तोपोल का दुर्ग महीनों इंग्लैंड और फ्रांस के प्रहार को सहता रहा, और जारशाही वर्दी पहने रूसी किसान अपनी परम्परागत वीरता को दिखलाते अपना खून बहाते रहे। मुश्किल से और भारी क्षति के बाद इंग्लैंड और फ्रांस ने इस ध्वस्त दुर्ग पर अधिकार किया, किन्तु उसके बाद ही उन्हें 'पराजित रूस' से वहाँ से अपनी सेना हटाने के लिए आज्ञा लेनी पड़ी। विजयी होने के बाद भी दोनों पश्चिमी शक्तियों ने क्यों जारशाही का और पीछा नहीं किया ? नकली बोनापार्ट अपनी कमजोरियों के कारण वैसा नहीं कर सकता था, लेकिन इंग्लैंड ने वैसा क्यों नहीं किया ? इस पहेली का हल मार्क्स ने पार्लियामेण्ट के ब्रिटिश म्युजियम में वर्षों से जमा होती पार्लियामेण्ट रिपोर्टों, सरकारी नीलपुस्तिकाओं और दूसरे देशों से भेजी कूटनीतिज्ञों की रिपोर्टों को पढ़कर किया। इन कागजों के देखने से पता लगा कि 18वीं सदी के प्रथम पाद में पीतर महान् के समय से ही लेकर क्रिमिया-युद्ध तक पीतर-बुर्ग और लन्दन के मन्त्रालयों में घनिष्ठ सहयोग रहा। इंग्लैंड समझता था कि जारशाही को नष्ट करके नहीं, बल्कि उसको अपने हाथ में रखकर ही हम दुनिया में आगे बढ़ सकते हैं। क्रिमिया-युद्ध के समय ब्रिटिश महामन्त्री पामर्स्टन के बारे में यह भी कहा जाता था कि जारशाही ने उसे खरीद लिया है, जो चाहे उतना सच न हो, लेकिन पामर्स्टन को अपने देश में मजदूरों के चार्टिस्ट आन्दोलन जैसे संघर्ष को देखना पड़ा था। वह समझता तो था, न जाने किस दिन उद्बुद्ध कमकर अपने इंग्लैंड के बनिया-राज्य को उखाड़ फेंकें। ऐसे गाढ़ के समय यूरोप में हर समय जारशाही ने सीधे सैनिक सहायता पहुँचाई थी। प्रतिक्रियावाद की इतनी बड़ी सहायक शक्ति का उच्छेद भला इंग्लैंड कैसे पसन्द करता ? साधारण लोगों या मजदूर वर्ग को भी चाहे इसका न पता हो, लेकिन पूँजीवादी राजनीतिज्ञ भली-भाँति समझते थे कि उनका कृष्ण पैदा हो गया है, जो एक दिन कंस को मारे बिना नहीं रहेगा।

मार्क्स देख रहे थे, कि अभी सभ्यता में बर्बर-अवस्था के अवशेषों के लिए बाल्तिक से प्रशान्त महासागर तक फैले रूस के विशाल राज्य का हाथ यूरोप के सभी मन्त्रिमन्डलों में कितना फैला हुआ है। ऐसी अवस्था में वह साफ समझ सकते थे कि पश्चिमी यूरोप में हर क्रांति के समय भीतर घुसकर सहायता देने के लिए तैयार जारशाही सर्वहारा का सबसे बड़ा शत्रु है। वह आर्थिक विकास के कारण पैदा हुई हर जगह की उद्बुद्ध शक्तियों को स्वाभाविक परिणाम पर पहुँचने में बाहर से आकर बाधा डालती है। उन्होंने यह साफ कहा था कि जब तक जारशाही खतम नहीं होती, तब तक यूरोपीय सर्वहारा की मुक्ति असम्भव है। यह बात कितनी सच हुई, यह आज हमें स्पष्ट मालूम होता है। जारशाही ने खतम होकर यूरोप के सर्वहारा के लिए मुक्ति का रास्ता खोल दिया और इसमें शक नहीं कि यदि जारशाही से भी बढ़कर बर्बर अमेरिकन थैलीशाही रास्ते में न आती, तो आज पूर्वी यूरोप की तरह पश्चिमी यूरोप का सर्वहारा भी स्वतन्त्र होता। अमेरिकन थैलीशाही जारशाही से भी कहीं अधिक बर्बर है, क्या यह हिरोशिमा और नागासाकी की सैनिक दृष्टि से बिल्कुल अनावश्यक अणुबमों की नारकीय लीला से सिद्ध नहीं है या कोरिया में कीटाणु-बमों को गिरा वहाँ अणुबम बरसाने की धमकी देते इन थैलीशाहों के आचरण से स्पष्ट नहीं है ? 19वीं सदी के मध्य में—जिस वक्त कि मार्क्स जारशाही के बारे में अपना विचार प्रकट कर रहे थे—अभी जार के राज्य में किसानों की अर्ध-दासता मौजूद थी, वहाँ की प्राचीनपंथिता भी अक्षुण्ण थी। फिर भी, केवल अपने सैनिक प्रभुत्व को कायम रखने के लिए भी जारशाही को आधुनिक विज्ञान से कितनी ही सहायता लेने की आवश्यकता पड़ी, जिससे वहाँ साइन्स और स्वतन्त्र विचार की ज्योति कुछ मात्रा में पहुँच गई। उसी के प्रभाव से काकेशस, मध्य-एशिया और साइबेरिया की एशियाई जातियों में भी काफी सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहा था। पोलों का समर्थन करते हुए भी मार्क्स रूस के इस पहलू को भूल नहीं सकते थे, इसी लिए 1851 ई. में ही एंगेल्स ने कहा था—"इतालियनों, पोलों और हंगेरियनों को साफ तौर से कह देना होगा कि जब आधुनिक प्रश्न सामने हों, तो उन्हें अपनी जबान रोक रखनी होगी।" यह भी याद रखना चाहिए कि इस समय की प्रशिया (जर्मनी) का यूरोपीय राजनीति में कोई महत्त्व नहीं था, उसकी स्थिति एक रूसी प्रदेश जैसी थी—यह हमें मालूम ही है कि पीतर महान के मरने के कुछ ही सालों बाद के रूसी जार के रूप में जर्मन राजकुमार और राजकुमारियाँ ही अपने जर्मन के कृपापात्रों की सहायता से रूस

का शासन करती थीं। जारवंश अपने उच्छिन्न होने के समय (1917 ई.) रूसी की अपेक्षा जर्मन अधिक था।

मार्च, 1853 ई. में मार्क्स यूरोपीय राजनीति के अवगाहन में लगे हुए थे। उस समय के एक पत्र में एंगेल्स ने लिखा था—"मैं आर्कहार्ट की किताब को इस समय पढ़ रहा हूँ। यह कहता है कि पामर्स्टन रूस का वेतनभोगी है। इसकी व्याख्या बिल्कुल आसान है, क्योंकि वह केल्टी स्कॉच है।" आर्कहार्ट दूसरे राष्ट्रवादी स्कॉचों की तरह अंग्रेजों का विरोधी था। हेलेनिक संस्कृति से प्रभावित होकर वह ग्रीस गया, फिर तुर्की में जाकर कितने ही समय तक रहा। तुर्क रूसियों के खिलाफ थे, इसलिए वह तुर्कों के पक्ष में और रूसियों के खिलाफ बन गया। वह तुर्कों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने एक बार लिखा था—"यदि मैं कालविन का अनुयायी न होता तो केवल मुसलमान ही हो सकता था।" एंगेल्स ने कालविन की पुस्तक पढ़ते हुए यह बात मार्क्स को लिखी थी। मार्क्स और आर्कहार्ट दोनों एक तरह पामर्स्टन के विरोधी थे। इस विरोध में मार्क्स ने 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में जो लेख लिखा था, उसे ग्लास्गो (स्कॉटलैंड) के एक पत्र ने छापा था, जिसे पढ़कर आर्कहार्ट ने फरवरी, 1854 ई. में मार्क्स से मिलकर उनका अभिनन्दन करते हुए कहा था—ऐसा लेख था मानो उसे एक तुर्क ने लिखा हो। लेकिन स्कॉच मारवाड़ी को जब पता लगा कि मार्क्स क्रांतिवादी है, तो उसे बड़ी निराशा हुई।

1. चार्टिस्ट

मार्क्स चार्टिस्टों का समर्थक था और आर्कहार्ट मुक्त व्यापार का समर्थक और बनिया होने से चार्टिस्टों का विरोधी। आर्कहार्ट को तो चार्टिस्ट-आन्दोलन में भी रूसी रूबल चमकाते दिखलाई पड़ते थे, जैसे कि उसके वंशजों को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हर जगह की क्रांति और कमकर-आन्दोलन में मास्को के रूबल दिखलाई पड़ते रहे। 10 अप्रैल, 1848 ई. की भयंकर पराजय के बाद चार्टिस्ट-आन्दोलन फिर सँभल नहीं सका, लेकिन वह उसी समय खतम नहीं हो गया। चार्टिस्ट-आन्दोलन के अवशेषों को मार्क्स और एंगेल्स का पूरा समर्थन प्राप्त था। मार्क्स और एंगेल्स उनके पत्रों में मुफ्त अपने लेख भेजते थे। जार्ज जुलियन हार्नी ने 'लाल गणतन्त्री'* नाम से एक पत्र निकाला, जिसके बाद उसने 'लोक मित्र'[1], और उसके बाद 'जनतांत्रिक आलोचना'[2] निकालीं। अर्नेस्ट जॉन्स ने इसी समय 'लोगों के लिए टिप्पणी'[3], 'लोक पत्र'[4] निकाला। 'लोक पत्र' नियमपूर्वक 1851 तक प्रकाशित होता रहा। दोनों पत्र चार्टिस्ट-आन्दोलन के क्रांतिकारी अंग से सम्बद्ध थे। बिरादराना जनतन्त्रतावादियों के अंतर्राष्ट्रीय एसोसिएशन में भी भाग लेनेवालों में हार्नी और जोन्स सबसे आगे थे। हार्नी एक नाविक का लड़का और सर्वहारा वातावरण में पला था। फ्रांस के क्रांतिकारी साहित्य से उसे प्रेरणा मिली थी और मरात उसका आदर्श था। उम्र में वह मार्क्स से एक वर्ष बड़ा था। जिस वक्त मार्क्स 'राइनिशे जाइटुंग' का सम्पादन कर रहे थे, उस वक्त हार्नी चार्टिस्ट मुखपत्र 'उत्तरी तारा'[5] के सम्पादकीय विभाग में काम करता था। एंगेल्स 1843 ई. में उसे मिले थे, जब कि, उनके बारे में हार्नी ने लिखा था—"एक पतला तरुण, पट्ठा इतना तरुण कि जान पड़ता है, लड़का है, लेकिन तब भी वह असाधारण तौर से शुद्ध अंग्रेजी बोलता है।" 1847 ई. में हार्नी का मार्क्स से परिचय हुआ और वह बड़े उत्साह से उनकी मंडली में शामिल हो गया। हार्नी ने कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र का अंग्रेजी अनुवाद अपने पत्र 'लाल गणतन्त्री' में छापा, जिसमें अपने फुटनोट में उसने यह भी लिखा था : वह परमक्रांतिकारी कृति है, जो कि आज तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई। पीछे मार्क्स के साथ उसका मतभेद हो गया। इस समय वह जर्सी के द्वीप में जाकर रहने लगा, किन्तु कुछ समय बाद संयुक्तराष्ट्र अमेरिका चला गया, जहाँ 1888 ई. में एंगेल्स ने उससे मुलाकात की थी। इस मुलाकात के कुछ ही दिनों बाद हार्नी इंग्लैंड लौटा, जहाँ काफी बूढ़ा होकर मरा।

अर्नेस्ट जोन्स जर्मनी में पैदा और सीख-पढ़कर बड़ा हुआ। जर्मनी में उसका बाप कम्बरलैंड के ड्यूक

---

* The Red Republican", 1. 'The Friends of the People', 2. 'The Democratric Review', 3. 'The Notes to the People', 4. 'The People's Paper', 5. 'The Northern Star'.

का सैनिक परामर्शदाता था—यह परम प्रतिक्रियावादी ड्यूक पीछे हनोवर के राजा अर्न्स्ट आगस्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ड्यूक ने धर्म-पिता बनकर अपना नाम जोन्स को दिया था। इस प्रकार अर्नेस्ट जोन्स का बचपन से ही घनिष्ठ सम्बन्ध उच्च सामन्त परिवार से रहा, लेकिन बचपन से ही उसका स्वतन्त्र विचार था और सामन्ती समाज के कुत्सित वातावरण में पलते हुए भी निर्लेप रहा। वह बीस वर्ष का था, जबकि इंग्लैंड लौटा और पीछे पढ़ाई करके बैरिस्टर बना। उसने अपना सारा भविष्य और आराम के जीवन को तिलांजलि दे चार्टिस्ट-आन्दोलन में प्रवेश किया। इसके लिए 1849 ई. में उसे दो साल की सजा हुई और जेल में मामूली अपराधियों की तरह रक्खा गया। 1850 ई. में जेल से वह कट्टर क्रान्तिकारी होकर निकला और उसी साल की गर्मियों में मार्क्स और एंगेल्स के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। तब से करीब बीस वर्ष तक उसका यह सम्बन्ध कायम रहा, यद्यपि फ्राइलीग्रथ का पक्षपाती होने के कारण पीछे उसका सम्बन्ध मार्क्स के साथ उतना अच्छा नहीं रहा, तो भी मार्क्स और एंगेल्स का उसकी ईमानदारी के कारण उसके प्रति सद्भाव था, यह 1869 ई. में मैन्चेस्टर में रहते हुए जोन्स के मरने के समय एंगेल्स के इन वाक्यों से मालूम होता है : "पुराने गारद में से एक और घर को चला गया।" जिसका जवाब मार्क्स ने दिया : "इस खबर से हम सभी के दिल को बहुत गहरा धक्का लगा, क्योंकि वह हमारे थोड़े-से पुराने मित्रों में से था।"

2. परिवार और मित्रमंडली

यह वह साल थे, जब कि मार्क्स राजनीतिक मंडलियों से अलग थे और उनका लोगों से सम्पर्क नहीं के बराबर था। वह अपना सारा समय अध्ययन और अनुसन्धान में लगा रहे थे, और बचे-खुचे समय को अपने परिवार में गुजारते थे। इसी बीच 1855 ई. में उनको एक लड़की एलीनोर पैदा हुई। एंगेल्स की तरह मार्क्स का बच्चों के साथ बहुत प्रेम था। किताब-कलम छोड़कर जो एक-दो घंटे की छुट्टी ले पाते, उसे मार्क्स लड़कों के साथ खेलने में बिताते। बच्चों का भी उनके साथ असाधारण प्रेम था, क्योंकि वह बाप जैसे शासन का कभी उपयोग नहीं करते थे। बच्चों के लिए वह मानो खेल के साथी थे। दूसरों की अपेक्षा अधिक साँवला तथा कोयले जैसे काले बालों के कारण बच्चे उन्हें मूर (उत्तरी अफ्रीका के अरब) कहते। मार्क्स का बच्चों के बारे में दूसरा ही विचार था, वह कहा करते थे : "बच्चों को अपने माँ-बाप को शिक्षित करना होगा।" और सचमुच ही मार्क्स के बच्चे अपने बाप को सिखाते थे। इतवार के दिन उन्होंने मार्क्स को काम करने की सख्त मनाही कर रखी थी। उस दिन उन्हें सारा समय बच्चों के लिए देना पड़ता। मार्क्स-परिवार बाहर देहात में या दूसरी जगह घूमने निकलता, रास्ते के किसी सराय में वह अदरकी बीयर पीते, पनीर और रोटी खाते। अधिकतर वह हेम्स्टेडहीथ में घूमने जाते। यद्यपि उस समय वह टेकरी नगर से बाहर थी, तथापि नगर के बीच में होने पर भी उसके कितने ही अंश को प्राकृतिक रूप में रखने की आज भी कोशिश की गई है, और इतवार की संध्या को हजारों परिवार यहाँ सैर करने के लिए जाया करते हैं। लीबक्नेख्ट ने मार्क्स के इस समय के रूप का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। जेक स्ट्राज पेसल का छोटा-सा उपाहारालय अब भी वहाँ मौजूद है, जिसकी मेज पर मार्क्स अक्सर बैठा करते थे। हीथ के दक्षिण तरफ लन्दन का घना बसा हुआ शहर है, जहाँ सेंट पाल के गिर्जे का गन्धोला और वेस्टमिनिस्टर के मीनार दूर से दिखाई पड़ते हैं।

मार्क्स का जीवन आर्थिक तौर से कष्टमय जरूर था, लेकिन बच्चों में पिता-माता अपनी सारी वेदनाओं को भूल जाते। इसी समय 1855 ई. के गुडफ्राइडे के दिन मार्क्स का एकमात्र पुत्र एडगर नौ वर्ष की अवस्था में चल बसा। पिता-माता का उसपर असाधारण प्रेम था। वह उसे प्यार से 'मुश' कहकर पुकारा करते थे। इसी अवस्था में ही उसके 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' दिखलाई पड़ रहे थे। परिवार के लिए वह कितनी दुःस्सह हृदयवेधी घटना थी, यह कवि फाइलीग्रथ को जर्मनी भेजे हुए एक पत्र की निम्न पंक्तियों से मालूम होगा : "यह इतनी बुरी और भयंकर क्षति है, इसका प्रभाव मेरे ऊपर इतना गहरा पड़ा है कि उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।" मार्क्स ने बच्चे की बीमारी और मृत्यु के बारे में उसी समय 30 मार्च को एंगेल्स को बड़े करुण शब्दों में लिखा था : "मेरी स्त्री केवल आशंका के कारण एक सप्ताह से बीमार रही, ऐसी

बीमार जितनी कि वह पहले कभी नहीं हुई थी। मैं भी बहुत व्याकुल हूँ। मेरा हृदय बोझ से दबा जा रहा है, और मेरा सिर घूम रहा है, लेकिन बाहर से मुझे अपने को निर्लेप दिखाना है। बच्चा बीमारी के समय भी वैसे ही सुन्दर स्वभाव का रहा है।" 6 अप्रैल के एक पत्र में उन्होंने फिर लिखा : "बेचारा नन्हा चला गया। आज 5 और 6 बजे के बीच मेरी गोद में सो गया। मैं इसे कभी भूल नहीं सकता कि तुम्हारी मित्रता ने कैसे इस भयंकर दिनों में हमारे सारे बोझ को हल्का किया। तुम स्वयं समझ सकते हो कि मेरे लड़के की मृत्यु के बाद मुझे कितना दुःख हो रहा है।" 12 अप्रैल के पत्र में मार्क्स ने लिखा : "लड़के के मरने के बाद से घर खाली और सूना-सा मालूम होता है। वह इसका जीवन और आत्मा था। हर समय उसके अभाव को हम कितना अनुभव करते हैं, इसका वर्णन करना असम्भव है। मैंने अनेक प्रकार के दुर्भाग्य सहे हैं, लेकिन इस वक्त मैं जानता हूँ कि वास्तविक दुर्भाग्य क्या है।" जिन भयंकर आशंकाओं और कष्टों में से मैं गुजरा हूँ, उनमें मुझे तुमने और तुम्हारी मित्रता के विचार ने बहुत शक्ति प्रदान की, और इस आशा से भी कि दुनिया में अभी भी कुछ काम की चीज हम कर सकेंगे।"

मार्क्स को पुत्र-वियोग का घाव भरने में काफी समय लगा। लाजेल के सहानुभूतिकारक पत्र का जवाब देते हुए 28 जुलाई को मार्क्स ने लिखा था : "बाको का कहना है कि वास्तविक महापुरुष प्रकृति और दुनिया की इतनी अधिक बातों में दिलचस्पी रखते हैं, इतनी अधिक चीजें उनके ध्यान को अपनी ओर खींचे रहती हैं कि कोई भी क्षति उनके लिए बहुत अधिक नहीं मालूम होती। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि मैं उन महापुरुषों में नहीं हूँ। मेरे अपने लड़के की मृत्यु ने मुझे जोर से झकझोर दिया है, मैं उसके प्रभाव को इतना जबर्दस्त महसूस करता हूँ, कि मानो यह दुर्घटना कल ही घटी है। मेरी बेचारी स्त्री तो इस चोट के मारे पूरी तौर से पस्त हो गई है।" अप्रैल में मरे लड़के के लिए जो दुःख हुआ, वह आठ महीने बाद भी कितना कड़ा था, यह 6 अक्टूबर के फ्राइलीग्रथ द्वारा मार्क्स को लिखे पत्र से मालूम होता है : "मुझे इस बात के लिए भारी अफसोस है कि आपकी वह बड़ी क्षति आज भी इतना जबर्दस्त दुःख दे रही है। दुर्भाग्य से इसके सम्बन्ध में कुछ करना या समझना एक मित्र की शक्ति से बाहर है। मैं आपके दुःख को समझता हूँ, और उसको सम्मान की दृष्टि से देखता हूँ, लेकिन अपने ऊपर आपको उसपर काबू पाने की कोशिश करनी चाहिए, यह आपके प्रिय बच्चे की स्मृति के प्रति कृतघ्नता नहीं होगी।" मार्क्स परिवार कुछ वर्षों से बीमारी का डेरा बन गया था, जिसका अन्तिम प्रदर्शन एडगर की मृत्यु के साथ हुआ। पिछले वसंत में मार्क्स स्वयं बीमार पड़ गए थे, और अभी वह अच्छी तरह स्वस्थ नहीं हो पाए थे : खास शिकायत थी पेट की, जिसे कि मार्क्स अपने पिता का दायभाग समझते थे। लेकिन इसमें घर की अस्वास्थ्यकर अवस्था तथा वैसा ही पास-पड़ोस भी कारण था, इसमें शक नहीं। 1954 ई. की गर्मियों में वहाँ भारी हैजा फूट निकला, जिससे इतने आदमी मरे कि उन्हें दफनाने के लिए 1665 के भयंकर प्लेग में मरे आदमियों की कब्रों के ऊपर नई खाइयाँ खोदी गईं। डाक्टर ने मार्क्स को सोहो-स्क्वायर के पास-पड़ोस छोड़ देने के लिए हिदायत की थी, जिसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए अब मजबूरी हुई। 1855 ई. के ग्रीष्म की गर्मियों (ग्रीष्म-वर्षा) में जेनी मार्क्स अपनी तीनों लड़कियों के साथ माँ की बीमारी के कारण उसे देखने ट्रीर चली गई। ग्यारह दिन की बीमारी के बाद जब माँ अपनी आँखों को मूँद रही थीं, उसी समय बेटी और नतनियाँ वहाँ पहुँची थीं। माँ की सम्पत्ति में से कुछ सौ डालर फ्राउ मार्क्स को भी मिले। इसी समय जेनी को अपने स्कॉच सम्बन्धियों से भी कुछ दायभाग मिला। यह दोनों आमदनी इतनी काफी थी, कि 1856 ई. की शरद में परिवार हेम्स्टेडहीथ के पास 9 ग्रेफटेन टेरेस, मेटलेंड पार्क, हेबेरस्टॉक-हिल में एक छोटा-सा घर किराये पर लेकर वहाँ चला गया, किराया 36 पौंड वार्षिक था। जेनी ने अपने एक पत्र में इस घर के बारे में लिखा था : "जिन माँदों में हम अब तक रहते रहे, उनकी तुलना में यह राजमहल-सा मालूम होता था। यद्यपि हमारे पास जो कुछ फर्नीचर (अधिकांश कबाड़ी का कूड़ा-करकट) है, उसका दाम 540 पौंड से कुछ ही अधिक होगा, तथापि आरम्भ में मैंने अपनी नई बैठक में अपने को बड़ा अनुभव किया। सभी मलमलों और पुरानी समृद्धि के दूसरे अवशेषों को मामा के हाथ से उबारी, एक बार फिर मैं आनन्द के साथ अपने पुरानी दमिश्की नेपकिनों को अपने पास देख रही थी। किन्तु यह झूठा आनन्द

देर तक नहीं रहा, जल्दी ही उनमें से एक के बाद एक पौप-शौप (काँसे की तीन घंटियों के चिह्न के कारण बन्धक रखनेवाले घर को बच्चे इस नाम से पुकारा करते थे) में पहुँच गए तो भी हम बहुत प्रसन्न थे, क्योंकि एक बार फिर हम बूर्ज्वा सुखकर वातावरण में अपने को पा रहे थे।"

मृत्यु ने उस वक्त परिवार के दूसरे मित्रों के घरों में भी फेरा दिया था। दानियाल 1855 ई. के शरद् में मरा, वीर्थ हैती में रहते जनवरी, 1856 ई. में चल बसा। 1858 ई. के आरम्भ में जर्सी द्वीप में कोनराड शम्म भी साथ छोड़ गया। मार्क्स और एंगेल्स ने अपने पुराने सहयोगी मित्रों के प्रति शोक प्रकट करते हुए छोटी सूचनाएँ प्रकाशित करने का असफल प्रयत्न किया। वह बड़ा अफसोस प्रकट करते थे कि पुराने क्रांतिकारी एक के बाद एक चलते जा रहे हैं, और उनकी जगह लेनेवाले नए नहीं आ रहे हैं।

लीबक्नेख्ट इस समय लन्दन में जब तक डीन स्ट्रीट में रहा, तब तक वह मार्क्स परिवार में प्रतिदिन जाया करता। उसे भी भीषण गरीबी का सामना करना पड़ रहा था। यही बात कम्युनिस्ट लीग के दूसरे पुराने साथियों–लेस्नेर, लाखनेर, इकेरियस और शापर की थी। दूसरे साथी बिखर चुके थे : ड्रेंके लिवरपुल और पीछे ग्लास्गो में व्यापारी बन गया था, इमण्ट डंडी में प्रोफेसर था, शिले पेरिस में एडवोकेट था, जहाँ कवि हाइने का अन्तिम वर्षों का सेक्रेटरी राइनहार्ट भी रहता था।

3. 1857 ई. का आर्थिक संकट

1857 ई. में भारत अंग्रेजी गुलामी से आजाद होने के लिए प्रयत्न कर रहा था। किसान पुत्रों और गरीबों की अपार कुर्बानियाँ सामन्तों के ईर्ष्या, लोभ और अव्यवस्थापूर्ण नेतृत्व में असफल रहीं। इसी समय पूँजीवाद के औरस पुत्र समय पर होनेवाले आर्थिक संकट ने यूरोप में अपनी भीषणता दिखलाई थी। 1850 ई. के शरद् में सार्वजनिक जीवन से अलग होते वक्त मार्क्स और एंगेल्स ने कहा : "नई क्रांति एक नये संकट के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सकेगी, और ऐसे संकट का आना भी उसी तरह निश्चित है।" तब से वह उस नये संकट की बाट जोह रहे थे। कितनी देर की प्रतीक्षा के बाद 1857 ई. में वह संकट आन मौजूद हुआ। मार्क्स ने एंगेल्स द्वारा विलहेल्म वोल्फ को कहा था : मैं साबित कर सकता हूँ, कि जिस समय इस संकट को आना चाहिए था, कुछ कारणों से वह उसके दो वर्ष बाद आया। संकट के आम आगमन का पता संयुक्त-राष्ट्र से मार्क्स को पहले-पहल तब मिला, जब कि 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' ने उनके पारिश्रमिक को आधा कर दिया। यह भारी चोट थी, क्योंकि परिवार का वह एक सबसे बड़ा सहारा था। ग्रेफ्टेन टेरेस में डीन स्ट्रीट की तरह परिवार अपने जीवन को नहीं बिता सकता था, इसलिए उनकी कठिनाइयाँ और बढ़ गई थीं। कहीं से आमदनी का कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता था, और उधर खर्च कम होने की जगह बढ़ता ही जा रहा था। 20 जनवरी (1857 ई.) को मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा था : "मुझे कुछ नहीं समझ में आता, कि इसके बाद क्या करूँ ? वस्तुतः मेरी स्थिति उससे कहीं खराब है जैसी कि पाँच वर्ष पहले थी।" एंगेल्स को यह चिट्ठी वज्र गिरने जैसी मालूम हुई। वह तुरन्त अपने मित्र की सहायता करने में लग गए और यह शिकायत करते हुए कि स्थिति के बारे में मुझे पहले क्यों नहीं बतलाया। एंगेल्स ने अभी-अभी अपने लिए एक घोड़ा खरीदा था, जिसके लिए उनके पिता ने बड़े दिन की भेंट के तौर पर कुछ पैसे दिए थे। उन्होंने लिखा था : "मैं सचमुच ही इसे बहुत बुरा समझता हूँ, कि मैं यहाँ एक घोड़ा बाँधूँ, जब कि आप और आपका परिवार लन्दन में ऐसी आफत में पड़ा है।" एंगेल्स को कुछ महीने बाद यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि डाना एक विश्वकोश की योजना में मार्क्स की सहायता लेना चाहता है। उसके पारिश्रमिक से परिवार की आर्थिक हालत सुधर जाएगी, यह विश्वास हो चला था, लेकिन अन्त में वह ख्याल हवाई किला साबित हुआ। दोनों मित्र विश्वकोश के तीसरे अक्षर तक थोड़ा-बहुत सहयोग करते रहे, जिसके बाद वह ठप्प हो गया।

1857 ई. की गर्मियों में गिल्टी की बीमारी के कारण एंगेल्स को देर तक के लिए समुद्र के किनारे जाकर रहना पड़ा। मार्क्स की स्थिति भी काफी बुरी थी। पेट की बीमारी फिर उभर आई, जिसके कारण बहुत कठिनाई के साथ वह बहुत थोड़ा-सा ही काम कर सकते थे। जुलाई में मार्क्स-पत्नी को एक मृत बच्चा ऐसी स्थिति

में पैदा हुआ, जिससे मार्क्स को बहुत दुःख हुआ। उनके पत्रों को पढ़कर एंगेल्स ने लिखा था : "आपपर भारी चोट पड़ी होगी, जभी आप इस तरह लिख रहे हैं।"

इस तरह के वैयक्तिक दुःख और चिन्ता चारों ओर से घेरे हुए थे, लेकिन जैसे ही शरद में संकट इंग्लैंड में दाखिल हुआ, फिर यूरोप में फैलने लगा; वैसे ही मार्क्स सारी बातें भूल गए और उन्होंने 13 नवम्बर को लिखा : "यद्यपि मैं स्वयं भयंकर आर्थिक कठिनाइयों में पड़ा हूँ, लेकिन 1849 ई. के बाद मैंने कभी ऐसा आनन्द अनुभव नहीं किया था, जैसा कि आज इस भूकम्प (आर्थिक संकट) के समय।" पत्र के उत्तर में अगले दिन एंगेल्स ने लिखा था : "मैं समझता हूँ, अच्छा यही होगा कि स्थायी (क्रानिक) संकट में 'सुधार' कहीं द्वितीय और निर्णायक प्रहार के पहले ही न होने लग जाय। लोगों को गरम करने के लिए थोड़ी देर के वास्ते दीर्घ स्थायी (पुराने) दबाव की आवश्यकता है, तब सर्वहारा स्थिति के बेहतर ज्ञान के साथ एकताबद्ध हो अच्छी तरह लड़ेंगे, जिस तरह कि रिसाले का हमला तभी ज्यादा जीवटवाला होता, जब घोड़े दुश्मन पर प्रहार करने की जगह से पहले पाँच सौ कदम दौड़ने का मौका पाएँ। मैं ऐसी किसी चीज को बहुत जल्दी, उस समय से पहले घटित होना नहीं पसन्द करूँगा, जब तक कि सारा यूरोप इसमें पूरी तौर से फँस न जाय; क्योंकि तब बाद का संघर्ष अधिक कठोर, अधिक मुश्किल और अधिक उतार-चढ़ाव का होगा। मई और जून का समय प्रायः बहुत पहले का होगा। लम्बे अर्से तक समृद्धि के भीतर गुजरते हुए जनगण बहुत श्लथ हो गया है। हाँ, मैं भी उसी तरह महसूस करता हूँ, जैसे आप। एक बार यदि न्यूयार्क में धोखा-धड़ी की इतिश्री हो गई, तो जर्सी में मेरे पास एक टुकड़ा भी नहीं रह जाएगा, किन्तु मैं इस आम इतिश्री का बहुत सुन्दर अनुभव कर रहा हूँ। चाहे पिछले कुछ वर्षों में बूर्ज्वा कीचड़ मुझसे भी चिपट गया है, लेकिन अब मैं उसे धोकर अपने को नंगा आदमी अनुभव करने लगूँगा। समुद्रतट निवास-सा ही यह संकट मेरे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होगा, इसे मैं अभी से अनुभव कर रहा हूँ। 1848 ई. में हम सोच रहे थे, हमारा समय आ रहा है और कुछ अर्थों में वैसा हुआ भी, लेकिन इस समय वह वस्तुतः आ रहा है और सभी चीज दाँव पर है।"

एंगेल्स ने अपने पत्र में दाँव पर सब चीजों के रखे होने की जो बात कही थी, वह गलत साबित हुई। संकट का प्रभाव उनकी सूझ के अनुसार बिल्कुल ही न पड़ा हो, यह बात नहीं, लेकिन सर्वहारा के ऊपर जो चरम प्रभाव पड़नेवाला था, और जिसके कारण इस विराट संसार में प्रलय मच जानेवाली थी, वह तब आनेवाला था, जब कि दोनों मित्र सदा के लिए आँखें मूँद चुके होंगे। 18 दिसम्बर के पत्र में मार्क्स ने अपने मित्र को लिखा था : "मैं बहुत जबर्दस्त परिमाण में काम कर रहा हूँ, 4 बजे सवेरे तक। मेरा काम दो तरह का है : (1) राजनीतिक अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों की रूपरेखा...और (2) वर्तमान संकट।

आर्थिक संकट में मार्क्स ने इस बात का पता लगाया कि दुनिया के शोषण और उत्पीड़न को खतम करने के लिए आवश्यक सबसे शक्तिशाली हरावल दस्ता सर्वहारा है। लेकिन सर्वहारा हर समय इसके लिए पूरी तौर से तैयार होकर अपना जबर्दस्त और मरणान्तक प्रहार नहीं कर सकता। मरणान्तक और निर्णायक प्रहार के लिए एकमात्र समय है आर्थिक संकट का काल। आर्थिक संकटकाल को टालने के लिए पीछे पूँजीवादियों ने युद्धों की शरण ली। आज भी हम यह साफ देख रहे हैं कि पूँजीवादी युद्ध से उतना नहीं, जितना शान्ति से काँपने लगते हैं। कोरिया में शान्ति की बातचीत करते ही वाल स्ट्रीट के सटोरियों में हलचल मच गई, चारों ओर उन्हें दिवाला ही दिवाला दिखाई देने लगा, और उनके हाथ की कठपुतली अमेरिकन सरकार किसी न किसी बहाने शान्ति की बला को टालने की कोशिश करने लगी। आर्थिक संकट को आते देख उसे सर्वहारा-क्रांति के लिए पुण्य-पर्व समझ मार्क्स के हृदय में क्यों न अधिक प्रसन्नता और उत्साह पैदा होत ? 8 दिसम्बर के अपने पत्र में जेनी मार्क्स ने मरणासन्न कोनराड शम्म के पास जर्सी में जो पत्र भेजा था, उसकी कुछ पंक्तियाँ मार्क्स के इस समय के उत्साह के ऊपर प्रकाश डालती है : "यद्यपि हम अमेरिकन संकट को अपनी पाकेट पर बुरी तरह से अनुभव करते हैं, क्योंकि कार्ल 'ट्रिब्यून' के लिए दो की जगह अब केवल एक लेख लिखता है। ट्रिब्यून ने बयार्ड हेलर और कार्ल को छोड़कर अपने सभी यूरोपियन संवादाताओं को अलग कर दिया है। लेकिन तुम समझ सकते हो कि इस समय मूर (मार्क्स) कितना प्रसन्न है ! उसकी काम करने की क्षमता और

फुर्ती इतनी ताजगी और वेग के साथ लौट आई है, जो कई वर्षों से नहीं देखी जाती थी, तब से जब कि हमारे नन्हे बेटे के उठ जाने से हमें भारी दुःख हुआ, ऐसा दुःख जो मेरे हृदय को सदा उदास बना देता है। दिन को कार्ल हमारी रोज की रोटी के लिए काम करता है और रात को राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अपनी पुस्तक समाप्त करने के लिए काम करता है। अब जब कि इस तरह की पुस्तक इतनी आवश्यक हो गई है, निश्चय ही हम किसी टुट्पुँजिये प्रकाशक को पाने में सफल होएँगे।"

लाजेल के प्रयत्न से एक प्रकाशक मिल भी गया। अप्रैल, 1857 को मार्क्स को पत्र लिखते हुए लाजेल ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि बहुत समय से उसे मार्क्स का पत्र नहीं मिला। मार्क्स को मौन देखकर लाजेल को दुःख हुआ। उसकी शिकायत करने पर जो पत्र मार्क्स ने लिखा भी, वह भी बहुत छोटा और बेमन से लिखा हुआ था।

जनवरी, 1858 ई. में लाजेल की पुस्तक 'हेराक्लितु' की एक कापी लन्दन पहुँची, जिसमें बर्लिन में उसके ऊपर हुई आलोचनाओं और सम्मतियों में से भी कुछ थीं। मार्क्स ने पुस्तक में विद्वत्ता के भारी प्रदर्शन को पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, उदाहरण पर उदाहरण भरकर पुस्तक को बड़ा बनाया और काफी पैसा होने पर उसको छपाया जा सकता है। लाजेल को अभी पता नहीं था कि मार्क्स मुझसे नाराज है। फरवरी (1858) में उसने मार्क्स को लिखा कि मैं आपके राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिए एक प्रकाशक ढूँढ़ने को तैयार हूँ। मार्क्स ने इसे स्वीकार कर लिया। मार्च के अन्त तक लाजेल ने अपने प्रकाशक फ्रांज डुंकेर से सब बात तय करके प्रतिज्ञानामा भी तैयार कर लिया और उससे कहीं अच्छी शर्त पर, जिन्हें कि मार्क्स ने माँगा था। आम तौर से पारिश्रमिक एक फार्म के दो फ्रीडरिख्सडोर (16-17 मार्क्स का उस समय का प्रशिया का सोने का सिक्का) होता था, लेकिन डुंकेर ने तीन फ्रीडरिख्सडोर देना स्वीकार किया था, पर प्रकाशक ने यह शर्त रक्खी थी कि अगर पहले भाग की संतोषजनक बिक्री नहीं हुई, तो आगे उसे प्रकाशित नहीं करेगा। 1858 ई. का बड़ा दिन आया, जिसके साथ क्रिसमस के आनन्द की जगह मार्क्स-परिवार में चिन्ता और दुःख का स्वागत था। 21 जनवरी, 1859 ई. को ग्रंथ का हस्तलेख तैयार हो गया, लेकिन एक पैसा भी घर में नहीं था कि हस्तलेख को डाक से भेजने के लिए टिकट खरीदा जा सके। मार्क्स ने एंगेल्स को डाकखर्च के लिए पैसा भेजने के लिए लिखते हुए कहा था : "मैं नहीं समझता हूँ, कभी भी किसी आदमी ने 'पैसा' के बारे में लिखा हो, और उसे स्वयं उसके अभाव के लिए इतना कष्ट हुआ हो। अधिकांश लेखक जिन्होंने इस विषय पर लिखा है, वह अपने शोध के लक्ष्य (पैसे) के साथ सबसे बढ़िया सम्बन्ध कायम रख सकते थे।"

4. 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' (1859-66 ई.)

काम में हाथ लगाने से पन्द्रह वर्ष पहले मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के ऊपर एक विस्तृत ग्रंथ लिखने की योजना बनाई थी, जिसमें वह उत्पादन के पूँजीवादी ढंग के मौलिक सिद्धान्त को बतलाना चाहते थे। फ्रांस की मार्च-क्रांति के पहले भी प्रूधों को जवाब देते समय उनके मन में इसका ख्याल आया था, लेकिन क्रांतिकारी संघर्षों में पड़कर उसके लिए वह कुछ नहीं कर सके। उनसे छुट्टी पाने के बाद 2 अप्रैल, 1851 ई. को उन्होंने एंगेल्स को लिखा था : "इस वक्त मैं इतनी दूर तक चला गया हूँ, मैंने अर्थशास्त्र के सभी नीरस झंझटों को खतम कर दिया है। इसके बाद मैं घर में बैठकर अपनी किताब को समाप्त करूँगा और म्युजियम में किसी दूसरे विज्ञान में हाथ लगाऊँगा... ऐडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो (दो अंग्रेज अर्थशास्त्री) के समय से राजनीतिक अर्थशास्त्र विज्ञान ने कोई नई मौलिक प्रगति नहीं की है।" एंगेल्स ने बहुत प्रसन्न होकर जवाब दिया : "मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि अन्त में तुम अपने राजनीतिक अर्थशास्त्र को पार कर गए। वस्तुतः यह काम बहुत देर तक लटका रहा" और साथ ही यह भी कहा : "लेकिन जब तक तुम्हारे सामने अभी भी कोई ऐसी एक पुस्तक है, जिसे तुम महत्त्वपूर्ण समझते हो और जो पढ़ी नहीं गई है, तब तक तुम अपनी लेखनी को कागज पर नहीं धरोगे।" एंगेल्स जानते थे कि और कठिनाइयों के अतिरिक्त एक बड़ी कठिनाई मार्क्स के लिए यह थी कि उन्हें एक-एक कदम को फूँक-फूँककर आगे रखने की आदत थी। फूँक-फूँककर पैर रखने

की आदत को एंगेल्स बेकार नहीं समझते थे। और यही हुआ। 1851 ई. में मार्क्स के लिखने से मालूम होता था कि उनका यह ग्रंथ समाप्त होने जा रहा है, लेकिन उसमें उन्हें अभी और आठ वर्ष लगाने पड़े। ब्रिटिश म्युजियम में इस विषय पर जो विशाल सामग्री रखी गई थी, उसका एक के बाद एक पता लगता गया और मार्क्स फिर से अपनी पुस्तक पर काम करने लगे। इस प्रकार 1857-58 ई. में ही वह पुस्तक को प्रकाशन के योग्य बनाने के लिए काम करने लगे।

ग्रंथ संक्षेप–ग्रंथ की भूमिका में और बातों के साथ मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त को संक्षेप में कहते हुए लिखा है :

"हेगेलीय विधान (कानून)-दर्शन की परीक्षा करते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, स्वयं अपने में या मानव-बुद्धि के तथाकथित आम विकास से न कानूनी सम्बन्धों को समझा जा सकता है, और न राज्य के रूपों को ही, क्योंकि उनकी जड़ जीवन की भौतिक स्थितियों में निहित है, जिसके पूर्ण योग को 18वीं शताब्दी के अंग्रेज और फ्रेंच विद्वानों के उदाहरणों का अनुगमन करते हुए हेगेल ने 'बूर्ज्वा-समाज' की परिभाषा में संक्षिप्त करके कहना चाहा। बूर्ज्वा-समाज के शारीरिक ढाँचे को राजनीतिक अर्थशास्त्र में ही ढूँढ़ना होगा।–मैं जिन सामान्य निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ, और जो मेरे आगे के अध्ययन में पथ-प्रदर्शन का काम करेंगे, उन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार कहा जा सकता है : सामाजिक उत्पादन में मानवप्राणी एक-दूसरे के साथ निश्चित और आवश्यक सम्बन्धों में प्रवेश करता है, और उसका यह प्रवेश करना अपनी इच्छा से बिल्कुल स्वतंत्र होता है। यह उत्पादक-सम्बन्ध भौतिक उत्पादन-शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुसार होते हैं। इन उत्पादक-सम्बन्धों का आकार सामूहिकरूपेण समाज के आर्थिक ढाँचा और भौतिक आधार बनते हैं, जिनके ऊपर वैधानिक (कानूनी) और राजनीतिक ऊपरी ढाँचा खड़ा है, और सामाजिक चेतना के निश्चित आकार भी उसी के अनुसार होते हैं। भौतिक जीवन का उत्पादन-प्रकार आम तौर से जीवन के सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया का निर्णय करता है। मानवप्राणी की चेतना उसके अपनेपन की निर्णायक नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निर्णय करता है। अपने विकास की एक निश्चित अवस्था में पहुँचकर समाज की भौतिक उत्पादक-शक्तियाँ तत्कालीन उत्पादक सम्बन्धों के साथ अथवा तत्कालीन साम्पत्तिक-सम्बन्धों के साथ विरोधी बन जाती हैं–तत्कालीन साम्पतिक सम्बन्ध एक उसी चीज की कानूनी अभिव्यक्ति है, जिसमें कि अब से पहले वह चलती रही। तब यह सम्बन्ध उत्पादक-शक्तियों के विकास के आकारों से उत्पादक-शक्तियों की बेड़ी के रूप में परिणत हो जाते हैं, जिससे कि सामाजिक क्रांति का एक युग आरम्भ होता है। समाज के आर्थिक आधार के इस परिवर्तन के साथ सारा ऊपरी विशाल ढाँचा कम या बेशी जल्दी से बदल जाता है। इन परिवर्तनों को देखते हुए आदमी को उत्पादन की आर्थिक स्थितियों में भौतिक परिवर्तन को वैज्ञानिक सूक्ष्मता के साथ हृदयंगम करना होगा, और वैधानिक, राजनीतिक, कलाकारिक और दार्शनिक संक्षेप में उनके वैचारिक आकारों के बीच फर्क करना होगा, जिसमें कि पहुँचकर मानवसत्ताएँ इस विरोध को महसूस करने लगती हैं। जिस तरह हम एक व्यक्ति की परख उससे नहीं कर सकते, जैसा कि वह अपने बारे में सोचता है, उसी तरह हम इस प्रकार के परिवर्तन के एक युग का उसकी अपनी चेतना द्वारा नहीं परख सकते, बल्कि हमें भौतिक जीवन के विरोधों से, सामाजिक उत्पादक-शक्तियों और उत्पादन की स्थितियों के बीच विद्यमान विरोध से इस चेतना की व्याख्या करनी होगी। समाज का कोई रूप तब तक पतनोन्मुख नहीं होता, जब तक कि उत्पादन की सारी शक्तियाँ अपने विकास की अपनी निजी अवस्था के अनुसार विकसित नहीं हो जातीं, और नये तथा ऊँचे उत्पादक-सम्बन्ध पुरानों का स्थान तब तक नहीं ग्रहण करते, जब तक कि स्वयं पुराने समाज के खोल के भीतर उनके अस्तित्व के लिए भौतिक स्थितियाँ विकसित नहीं हो जातीं। इसी लिए मानवता किसी ऐसे काम को अपने सामने नहीं रखती, जिसके पूरा करने की अवस्था में वह नहीं है। क्योंकि यदि हम वस्तु का और नजदीक से परीक्षण करें, तो हमें बराबर यही मिलेगा, कि कोई कार्य अपने को पूरा करने के लिए हमारे सामने तब तक उपस्थित नहीं होता, जब तक कि उसे पूरा करने के लिए पहले ही से भौतिक स्थितियाँ विकसित अथवा विकासोन्मुख न हों।"

"आम तौर से कहने पर (1) एशियाई, (2) क्लासिक (प्राचीन यूनानी), (3) सामन्ती और (4) आधुनिक पूँजीवादी उत्पादन के ढंग आर्थिक, सामाजिक आकारों के प्रगतिशील युगों के नाम हो सकते हैं। पूँजीवादी (बूर्ज्वा) उत्पादक-सम्बन्ध सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया का अन्तिम विरोधी आकार–वैयक्तिक विरोध के अर्थ में नहीं, बल्कि ऐसे विरोध के रूप में, जो कि व्यक्तियों के जीवन की सामाजिक स्थितियों से विकसित होता है–पैदा होता है। अस्तु, बूर्ज्वा-समाज के ढाँचे के भीतर विकसित हुई उत्पादक-शक्तियाँ साथ ही ऐसी भौतिक स्थितियाँ उत्पन्न करती हैं, जो इस विरोध को खतम करनेवाली हैं : इसलिए समाज के इस रूप के साथ मानव-समाज के प्रारम्भिक इतिहास का अन्त होता है।"

अपने इस महान् ग्रंथ के रूप में मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र को एडेम स्मिथ, डेविड रिकार्डो एवं दूसरे विचारकों द्वारा स्थापित बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र में सौदा के मूल्य का निर्धारण उसके उत्पादन में आवश्यक श्रम के समय की मात्रा द्वारा किया जाता था, वह उत्पादन के बूर्ज्वा ढंग को सामाजिक उत्पादन का सनातन और स्वाभाविक आकार मानता था, इसलिए वह समझता था कि मूल्य का सृजन मानव श्रम-शक्ति की स्वाभाविक विशेषता है, जैसा कि वह व्यक्ति की साकार श्रम-शक्ति में पाया जाता है। अपने इस निष्कर्ष के कारण उसने अनेक विरोध पैदा कर दिए, जिनका समाधान करने में वह असमर्थ रहा, लेकिन इसके विरुद्ध मार्क्स ने उत्पादन के बूर्ज्वा-ढंग को सामाजिक उत्पादन का सनातन और स्वाभाविक आकार नहीं माना, बल्कि उसे केवल अपने पहले के आकारों की परम्पराओं के उत्तराधिकारी सामाजिक उत्पादन का एक निश्चित ऐतिहासिक आकार माना। इस दृष्टिकोण से उन्होंने श्रम-शक्ति की मूल्य-उत्पादक विशेषता का पूरी तौर से परीक्षण किया कि किस तरह की श्रम-शक्ति मूल्य पैदा करती है और कैसे ? और क्यों मूल्य इस प्रकार की श्रम-शक्ति का साकार छोड़ और कुछ नहीं है।

मार्क्स के इस महान् ग्रन्थ के महत्त्व को उस समय उनके सहकारी और मित्र भी अच्छी तरह नहीं समझ सके, लेकिन धीरे-धीरे उसकी सच्चाइयाँ प्रकट होने लगीं। पैसे (Money) के सिद्धान्त के बारे में मार्क्स ने जिस तथ्य का प्रतिपादन किया, उसे बूर्ज्वा-अर्थशास्त्रियों ने भी चुपके से स्वीकार कर लिया, सात वर्ष बाद जर्मन राजनीति-अर्थशास्त्र के विश्वकोश ने भी मार्क्स का लोहा माना। आज तो आधी मानवता मार्क्स के इसी राजनीतिक अर्थशास्त्र पर चल रही है।

13
मतभेद

1. लाजेल से झगड़ा

एंगेल्स ने मार्क्स को सम्मति से 'पो और राइन' के नाम से एक पम्फ्लेट लिखा, जिसे लाजेल द्वारा फ्रांज डुंकर ने छपवाया। आस्ट्रिया के हाब्सबुर्ग राजवंश इताली की प्रसिद्ध नदी पो को राइन की प्रतिरक्षा का मुख्य स्थान कहता था। आजकल के अमेरिकनों की तरह राजवंश का भी राज्य का लोभ निस्सीम हो गया था। वह कहता था कि जब तक इताली की भूमि को दाब करके रक्खा नहीं जायगा, तब तक हम जर्मन की रक्षा नहीं कर सकते। उधर फ्रांस राइन नदी को अपनी प्राकृतिक सीमा मानता था। लेकिन प्राकृतिक सीमा ही राज्यसीमा हो, यह बहुत कम ही देखा जाता है। एंगेल्स ने अपने पम्फ्लेट में आस्ट्रिया के शासकों के दावे को गलत कहा। पुरानी जर्मन कहावत के अनुसार गदहे के मतलब से यह बोरी को पीटना था। यदि फ्रांस के लिए राइन का बायाँ तट अपने हाथ में करना आवश्यक है, तो जर्मनी पो के तट को कैसे छोड़ सकता है ? मार्क्स ने इस पम्फ्लेट को पढ़कर एंगेल्स को लिखा था : "असाधारणतया ठीक; इसका राजनीतिक पहलू भी, जो कि

सौदा बहुत कठिन है। पम्फ्लेट बहुत सफल होगा।" लेकिन लाजेल एंगेल्स के विचारों से सहमत नहीं था। उसने 'इतालियन युद्ध और प्रशिया के लिए करणीय' के नाम से तुरन्त एक पम्फ्लेट छापकर निकाल दिया, जिसमें उसने एंगेल्स के विचारों का खंडन करते हुए उल्लेख किया। अपने विचारों को रक्खा। दोनों ने एक ही तरह की स्थितियों का अपने पम्फ्लेट में मौलिक मतभेद नहीं था, बल्कि मार्क्स के एक साल बाद की राय के अनुसार "यह उन्हीं स्थितियों से परस्पर विरोधी निर्णय पर पहुँचना था।" दोनों के राष्ट्रीय या क्रांतिकारी विचार एक-से थे, दोनों ही सर्वहारा की मुक्ति को अपना अन्तिम लक्ष्य मानते थे, जिसके लिए बड़े जातीय राज्यों का निर्माण आवश्यक था। जर्मन होने के कारण दोनों की जर्मन जातीय एकता में सबसे अधिक दिलचस्पी थी, जिसके लिए जरूरी था कि जर्मनी के भिन्न-भिन्न राजवंश समाप्त कर दिए जाएँ। दोनों ही जर्मन सरकारों को पसन्द नहीं करते, उनकी हार चाहते थे। युद्ध के समय मजूर-वर्ग अपने को शासक-वर्ग के हाथ में इस्तेमाल करने के लिए दे दे, यह भाव भी उनमें नहीं था। मार्क्स लाजेल को 'मजबूत पट्ठा' कहते थे और यह भी जानते थे कि वह बूर्ज्वा पार्टी से कभी नहीं मिल सकता। लेकिन मार्क्स का सन्देह अभी पूरी तौर से दूर नहीं हुआ था।

2. डास फोल्क

दुःख्यात किंकेल फिर मैदान में उतरा और उसने 1 जनवरी, 1859 से एक साप्ताहिक 'डेर हेरनान' निकालना शुरू किया। कवि फ्राइलीग्रथ के अनुसार : "देश लौटने के लिए बेकरार वीरों" का वह बड़ा प्रिय मुखपत्र था। लेकिन सभी बूर्ज्वा निर्वासित पत्र से प्रसन्न नहीं थे। मुक्त-व्यापारवादी फोखेर ने 'डी नोये जाइट' को बचाने के लिए धन-संग्रह करने की एक कमेटी बनाई जिसमें वह सफल रहा और एलार्ड बिजकाम्प के सम्पादकत्व में वह अब 'डास फोल्क' (जनता) के नाम से निकलने लगा। बिजकाम्प 'डी नोये जाइट' में मफस्सिल से लेख लिखा करता, कहीं अध्यापकी करता था। अब उसने अपना सारा समय इस काम के लिए देने का निश्चय किया। पत्र निकलने के थोड़े ही समय बाद लीबक्नेख्ट के साथ मार्क्स से मिलकर उसने अपने पत्र के लिए लेख माँगा। 1850 ई. में जो झगड़ा हुआ था, तब से उनका कमकर शिक्षा लीग से अपना कोई सम्बन्ध नहीं था, बल्कि लीबक्नेख्ट का लीग के साथ सम्बन्ध जोड़ना भी उन्हें पसन्द नहीं था। मार्क्स लेख लिखने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन साथ ही वह नहीं चाहते थे, कि किंकेल को अखाड़े में अकेला छोड़ दिया जाय, इसलिए उन्होंने लीबक्नेख्ट के पत्र के सम्पादन में बिजकाम्प की सहायता करने में सहमति प्रकट की। अपने बारे में कह दिया कि मैं अपने और एंगेल्स के द्वारा सम्पादित पार्टी-पत्र के सिवाय और लेख नहीं लिखूँगा। 'डास फोल्क' का खर्च चलाना आसान नहीं था, यद्यपि एंगेल्स अपनी लेखनी से उसे पूरी सहायता कर रहे थे। आखिर अगस्त के अन्त में पत्र बन्द हो गया। मार्क्स ने अपनी अव्यावहारिकता से पत्र के मुद्रक की बिल की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली, जिसने मार्क्स के ऊपर पैसे के दावा करने की धमकी दी और अन्त में पाँच पौंड देकर मार्क्स ने अपना पिंड छुड़ाया।

3. हेर फोग्ट*

1 अप्रैल, 1859 को एक जर्मन निर्वासित कार्ल फोग्ट ने इतालियन युद्ध के प्रति जर्मन जनतांत्रिकता का एक राजनीतिक प्रोग्राम लन्दन के निर्वासितों के पास भेजा, जिसमें इसने स्वीट्जरलैंड से एक नये साप्ताहिक के प्रकाशन के लिए लन्दनवालों से सहयोग माँगा। फोग्ट फोलेंड बन्धुओं का भाँजा था, जिन्होंने जो कि फ्रांकफुर्त एसेम्बली के वामपक्षी नेताओं में से थे, इस तथाकथित पार्लियामेण्ट में अपने मरने के समय राइख के पाँच रिजेण्टों में से एक फोग्ट को भी बनाया था। फोग्ट इस समय जेनेवा में भूतत्त्व का प्रोफेसर था। प्रोग्राम की एक कापी कवि फ्रालीग्रथ को भी मिली और उसने फोग्ट के बारे में मार्क्स की राय पूछी। उन्होंने अनुकूल

---

* Her Vogt.

राय नहीं दी। मार्क्स ने विस्तारपूर्वक एंगेल्स को बतलाया था : "जर्मनी अ-जर्मन भूमि को त्यागती है। वह आस्ट्रिया का समर्थन नहीं करती। फ्रेंच निरंकुशता अस्थायी है, आस्ट्रियन निरंकुशता स्थायी। दोनों निरंकुश अपने को लोहूलोहान करते मरना चाहते हैं।" जर्मनी के लिए सशस्त्र तटस्थता। जर्मनी में हमारे जीवन तक किसी को क्रांतिकारी आन्दोलन नहीं सोचना चाहिए। फोग्ट ने अत्यन्त विश्वसनीय स्रोतों से सूचना पाए हैं, जिसके परिणामस्वरूप जैसे ही आस्ट्रिया को बोनापार्त ध्वस्त करेगा, पितृभूमि में कुमार-रिजेन्ट के अधीन एक उदार-राष्ट्रवादी (नरम) दल खड़ा हो जायगा और फोग्ट हो सकता है, दरबारी विदूषक बन जाए।"

जून के आरम्भ में मार्क्स अपने मित्रों और सहानुभूतिकारों से 'डास फोल्क' की सहायता के लिए धन जमा करने में मैनचेस्टर गए। उनकी अनुपस्थिति में लीबक्नेख्ट को एक पम्फ्लेट का गेली प्रूफ मिला, जिसमें फोग्ट पर आक्रमण किया गया था, और उसके बारे में ब्लिंड के दोषारोप थे। कम्पोजिटर फोगेल ने बतलाया कि पम्फ्लेट तो स्वयं ब्लिंड ने दिया था, और गेली में प्रूफशोधन भी उसी के हाथ का है। कुछ दिन बाद लीबक्नेख्ट ने उस पम्फ्लेट की छपी कापी पाकर उसे आम्सबुर्ग में 'अल्गेमाइन जाइटुंग' पत्र में भेज दिया, जिसका कि वह कितने ही वर्षों से संवाददाता रहता आया था। पम्फ्लेट के साथ भेजे गए अपने पत्र में उसने लिखा था कि यह एक सम्भ्रांत जर्मन-निर्वासित का लिखा हुआ है और इसमें उल्लिखित दोषारोप प्रमाणित किए जा सकते हैं।

'अल्गेमाइन जाइटुंग' ने उसे प्रकाशित कर दिया, जिसपर फोग्ट ने पत्र के ऊपर मानहानि का दावा कर दिया। पत्र ने लीबक्नेख्ट से सबूत माँगे। लीबक्नेख्ट ने ब्लिंड से जब इसके बारे में पूछा, तो उसने कहा कि उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, और न मैंने पम्फ्लेट लिखा है। यद्यपि उसे बाध्य होकर इतना मानना पड़ा, कि पम्फ्लेट की कुछ बातें मैंने मार्क्स को बतलाई थीं, तथा उनमें से कुछ को आर्कहर्ट के पत्र 'दि फ्रीप्रेस' में छपवाया था। आम्सबुर्ग में अभी मुकदमा खुला नहीं था, इसी समय 10 नवम्बर (1859) को जर्मन महाकवि शिलेर की शताब्दी मनाने की तैयार हुई। इसमें एक और वैमनस्य उठ खड़ा हुआ : देश के बाहर के जर्मनों ने हर जगह महोत्सव की तैयारी की थी, लन्दन में भी उसकी तैयारी हुई, जिसके प्रबन्ध को किंकेल की मंडली ने अपने हाथ में कर लिया और उसने लन्दन के प्रशियन दूतावास के लोगों को भी निमंत्रित किया, दूसरी तरफ जर्मन सर्वहारा निर्वासितों को उससे अलग रखने की कोशिश की। ऐसी स्थिति में मार्क्स और एंगेल्स की उसके साथ सहानुभूति नहीं हो सकती थी। उनको आश्चर्य हुआ जब फ्राइलीग्रथ ने किंकेल के भाषण के बाद वहाँ एक कविता पढ़ी। उसके बाद किंकेल के पिट्ठू बेटजीख उपनाम बेटा ने कवि की प्रशंसा करते हुए पत्र में एक लेख छाप दिया, जिसके अन्त में मार्क्स पर भी आक्रमण किया। मार्क्स और फ्राइलीग्रथ के बीच इस सबके कारण वैमनस्य पैदा हो गया, लेकिन दोनों की मित्रता अकस्मात् नहीं हुई थी, इसलिए दो-एक पत्रों की लिखा-पढ़ी के बाद 1859 ई. के समाप्त होने के साथ यह वैमनस्य भी खतम हो गया।

1860 ई. के नववर्ष के समय फोग्ट ने 'अल्गेमाइन जाइटुंग के विरुद्ध मेरी कार्रवाई' के नाम से एक पुस्तक छापी, जिसमें मुकदमे की सारी कार्रवाई और सबूत पूरी तौर से बड़ी शुद्धता के साथ सम्मिलित किए गए। साथ ही उसने मार्क्स पर भी आक्रमण करते हुए अपने एक पहले लेख को उद्धृत किया, जिसमें मार्क्स को गुण्डों की मंडली का नेता बतलाया था और पितृभूमि के लोगों को तंग करके उनसे पैसे ऐंठनेवाला कहने से भी आनाकानी नहीं की थी : "एक पत्र नहीं, बल्कि सैकड़ों पत्र लोगों के पास जर्मनी भेजे गए, जिनमें धमकी दी गई कि एक निश्चित रकम यदि निश्चित पते और निश्चित तिथि पर नहीं भेजेंगे, तो इस या उस क्रांतिकारी कार्रवाई में भाग लेने के लिए उनके भेद को खोल दिया जाएगा।" फोग्ट ने सच्ची बातों के साथ सोलहों आना झूठी बातों को मिलाकर मार्क्स के ऊपर ऐसे कठोर आक्षेप किए थे कि जिनमें क्या सच है, क्या झूठ है, इसका पता लगाना मुश्किल था। जर्मनी में इस पुस्तक से बड़ी सनसनी फैली और मार्क्स के विरोधी सारे बूर्ज्वा-प्रेस ने उसका स्वागत किया। 'नेशनल जाइटुंग' ने फोग्ट की पुस्तक के आधार पर दो लम्बे सम्पादकीय लेख लिखे। जनवरी के अन्त में जब पत्र की कापियाँ लन्दन पहुँचीं, तो वहाँ मार्क्स के परिवार–विशेषकर फ्राउ मार्क्स–को बहुत धक्का लगा। लन्दन में फोग्ट की पुस्तक कहीं नहीं मिली, तो मार्क्स ने फ्राइलीग्रथ से पूछा

कि तुम्हारे 'मित्र' फोग्ट ने कोई कापी भेजी होगी, उसे देना। फ्राइलीग्रथ को यह बहुत बुरा लगा और उसने कहा कि फोग्ट मेरा मित्र नहीं है और न मैंने उससे कापी पाई।

अपने ऊपर वैयक्तिक आक्रमण का जवाब देना मार्क्स पसन्द नहीं करते थे, लेकिन इस वक्त वह उसे अत्यन्त आवश्यक समझते थे, साथ ही 'नेशनल जाइटुंग' के ऊपर मानहानि का दावा करने का भी उन्होंने निश्चय कर लिया। खासकर अपनी बीवी और लड़कियों के ऊपर जो कायरतापूर्ण आक्षेप उस पत्र ने किए थे, उसके लिए कुछ करना वह पसन्द नहीं कर सकते थे। मार्क्स ने पहले ब्लिंड से फोग्ट के बारे में किए गए आक्षेप का सबूत माँगा, लेकिन उसने आनाकानी की। एंगेल्स का ख्याल था कि हेर फोग्ट पर जो दोष लगाए गए, उन्हें ब्लिंड ने स्वयं गढ़ा। इसके बारे में पूरी जाँच-पड़ताल करने के बाद 4 फरवरी को मार्क्स ने 'दि फ्री प्रेस' में एक घोषणा निकाली कि विना नाम का छपा पम्फ्लेट होलिंगर के प्रेस में नहीं छपा, यह कहना गलत है। कार्ल ब्लिंड झूठा है, अगर वह इसे अनुचित समझता हो तो मेरे ऊपर अंग्रेजी अदालत में मुकदमा कर सकता है। ब्लिंड को मुकदमा चलाने की हिम्मत कहाँ थी; हाँ, उसने 'अल्गेमाइन जाइटुंग' में अपना एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमें फोग्ट की निन्दा की, और उसके ऊपर रिश्वंत लेने का आक्षेप किया, साथ ही उक्त पम्फ्लेट का लेखक होने से इन्कार किया। मार्क्स इतने से जान छोड़नेवाले नहीं थे, उन्होंने मजिस्ट्रेट के सामने वीहे से यह वक्तव्य दिलवाया, कि वीहे ने 'डास फोल्क'* में छापने के लिए उस पम्फ्लेट को कम्पोज किया था, और गेली प्रूफ का संशोधन ब्लिंड के हाथों हुआ था, जिसे मैं पहचानता हूँ। मुझे वक्तव्य देने से होलिंगर और ब्लिंड ने पैसे का लोभ दिलाकर और दूसरे ने भविष्य में कृपा रखने के वादे से रोका। एक इजहार के बाद ब्लिंड पर मुकदमा चलाया जा सकता था, लेकिन उसके परिवार के ख्याल से मार्क्स ने वैसा नहीं किया। मार्क्स ने वीहे के इजहार की एक कापी लुई ब्लांक के पास भेज दी, जो ब्लिंड का मित्र था, कि क्यों मैंने आगे कार्रवाई करना छोड़ दिया।

इस तरह फोग्ट-कांड की जड़ तक पहुँचने के बाद अब उसका जवाब देना था, लेकिन उसके पहले फ्राइलीग्रथ के साथ मनमुटाव को दूर करना आवश्यक था। मार्क्स ने कवि के पास वीहे के इजहार और ब्लिंड के विरुद्ध अपने वक्तव्य की कापी भेजी, लेकन कवि ने उसका कोई जवाब नहीं दिया। मार्क्स ने फिर लिखा : "यदि मैंने किसी तरह तुमको नाराज किया हो, तो मैं किसी समय भी अपनी भूल को खुशी से मानने के लिए तैयार हूँ। कोई भी मानवीय बात मेरे लिए परायी नहीं हो सकती।.. हम दोनों अच्छी तरह जानते हैं, कि वर्षों तक हममें से हर एक ने अपने ढंग से अत्यन्त निःस्वार्थ भाव से अपने निजी हितों की अवहेलना करते हुए अत्यन्त दुःखपीड़ित झंडे को ढोंगियों के सिर के ऊपर रखा। इतिहास के प्रति यह एक क्षुद्र अपराध होगा, यदि हम छोटी-छोटी बातों में किसी गलतफहमी के कारण अलग-अलग बह चलें।" पत्र को समाप्त करते हुए मार्क्स ने कवि के प्रति अपनी गहरी मित्रता के भाव को प्रकट किया। फ्राइलीग्रथ ने मित्रता के लिए आगे बढ़े हाथ को अपने हाथ में लिया जरूर, लेकिन पूरी तौर से नहीं, जैसा कि उसके पत्र के अन्तिम भाग से मालूम होता है, "भविष्य में भी मैं स्वतन्त्र, केवल अपने अधीन अपनी जान में उचित काम को करने के लिए स्वतन्त्र रहना चाहता हूँ।"

फोग्ट के ऊपर मुकदमा चलाने के बारे में लाजेल की राय नहीं थी और सचमुच मुकदमा करने पर प्रशियन अदालत ने सबूत के अपर्याप्त होने के कारण उसे खारिज भी कर दिया। अपील में भी वही बात हुई। अब मार्क्स को पुस्तक के रूप में जवाब देने के सिवा और कोई चारा नहीं था। लेकिन पुस्तक लिखने तथा फोग्ट के उठाए सभी अफवाहों और दोषों को दूर करने के वास्ते दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में बिखरे हुए लोगों से लिखा-पढ़ी करके सामग्री जमा करना जरूरी था। उसमें काफी समय लगा और अन्त में 17 नवम्बर, 1680 ई. को हेर फोग्ट के नाम से मार्क्स ने अपनी पुस्तक तैयार की। मार्क्स की यह कृति तब तक पुनः प्रकाशित नहीं हुई, जब तक कि बोल्शेविक-क्रांति के (1917 ई.) सफल होने के कितने वर्षों बाद मास्को के मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन प्रतिष्ठान ने उसे प्रकाशित नहीं किया। पुस्तक छोटी नहीं, बल्कि 192 घने छपे हुए पृष्ठों में समाप्त

---

* Das Volk.

हुई थी, जिसे साधारण तौर से छपने पर दूनी जगह की आवश्यकता होगी। भाषा के चमत्कार को दिखलाने में यह एक सुन्दर साहित्यिक कृति है। पुस्तक का विषय रूखा था, लेकिन उसमें मार्क्स ने बड़ी रोचकता भर दी है, साथ ही जगह-जगह मुहावरों और उद्धरणों से पता लगता है कि मार्क्स का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य से कितना विस्तृत परिचय था। मार्क्स के इस काम में लोगों ने जगह-जगह से बहुत-सी ज्ञातव्य बातें भेजी थीं। एक-एक करके अपने ऊपर किए गए सभी आक्षेपों का मार्क्स ने जवाब दे फोग्ट के ऊपर आक्रमण किया। फ्रांस में नकली बोनापार्त के शासन के खत्म होने के बाद जो कागज-पत्र राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार ने प्रकाशित किए, उनमें अगस्त, 1859 ई. में फोग्ट के हस्ताक्षरवाली एक रसीद भी मिली, जिसमें तीस चाँदी के सिक्कों के पाने की स्वीकृति दी गई थी। मार्क्स ने अपनी पुस्तक में लिखा था, कि हेर फोग्ट को बोनापार्त ने अपने पक्ष में प्रोपेगेंडा करने के लिए पैसा दिया था। इस पुस्तक में तत्कालीन यूरोप के कई भीतरी पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। लोदर बुखेर ने पुस्तक को समसामयिक इतिहास का एक संग्रह ग्रंथ बतलाया था, लाजेल ने हर एक दृष्टि से 'मास्टरपीस' कहा था। एंगेल्स ने इसे खंडन-मंडन की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना '18वीं ब्रूमेर' से भी; यद्यपि '18वीं ब्रूमेर' का जितना स्थायी महत्त्व आज भी है, उतना 'हेर फोग्ट' का नहीं रहा। आक्षेप और खंडन-मंडन करते समय भी मार्क्स कहीं नीचे नहीं उतरे। फ्राउ मार्क्स के अनुसार "हमारा पुराना शत्रु रूगे भी मानता है, कि यह किताब एक सुन्दर प्रहसन है।" एंगेल्स ने जर्मनी में पुस्तक छपवाने की सलाह दी, लेकिन मार्क्स ने लन्दन के एक तरुण और जर्मन प्रकाशक को लाभान्वित करना चाहा और छापने के लिए भी पचीस पौंड अग्रिम दिया। पुस्तक छप तो गई, लेकिन जर्मनी में उसके बेचने का कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सका। मार्क्स के अग्रिम दिए पैसों में से कुछ नहीं लौटा। यही नहीं, बल्कि प्रकाशक के पार्टनर ने धमकी देकर छपाई के सारे खर्च को मार्क्स से वसूल किया—पचीस पौंड अग्रिम देते वक्त मार्क्स ने कोई कागज-पत्र नहीं लिखवाया था।

4. घरेलू स्थिति

फोग्ट ने फ्राउ मार्क्स (श्रीमती मार्क्स के) ऊपर जो घृणित आक्षेप किए थे, उसके कारण जेनी के हृदय को भारी आघात लगा था। कई रातें उन्हें नींद नहीं आई और स्वास्थ्य खराब होने लगा, तो भी मार्क्स के जवाब की शुद्ध कापी तैयार करने में उन्होंने भारी मेहनत की। इस काम के समाप्त होते-होते जेनी चारपाई पर पड़ गईं। डाक्टर ने चेचक की बीमारी बतलाई और बच्चों को तुरन्त घर से अलग करने के लिए कहा। बच्चे लीबक्नेख्ट के पास भेज दिए गए और मार्क्स तथा घर की अनुरक्त नौकरानी, लेनचेन देमुथ, जेनी की सेवा-सुश्रूषा करने लगे। वह ज्वाला के मारे तड़फड़ाती रहीं, लेकिन मार्क्स एक घंटे के लिए भी पत्नी के पास से हटने को तैयार नहीं थे। जेनी एक सप्ताह तक जीवन और मृत्यु के झूले में झूलती रहीं। खैरियत यही हुई, कि दो बार चेचक का टीका लगा चुकी थी, इसलिए परम अनिष्ट नहीं होने पाया। बीमारी के पंजे से छूटने के बाद भी उन्हें बहुत दिनों तक दुर्बल रहना पड़ा। डाक्टर ने बतलाया, खैरियत हुई जो बीमारी हो गई, नहीं तो जिस तरह का मानसिक परिताप और क्षोभ उनके ऊपर पड़ रहा था, उसके कारण और कोई भयंकर आफत सिर पर आती। फ्राउ मार्क्स के रोग-मुक्त होने के साथ ही अब अपनी शारीरिक और मानसिक परेशानी के कारण मार्क्स बीमार पड़ गए, जिसमें आर्थिक चिन्ता भी कारण थी, क्योंकि 'हेर फोग्ट' में घाटा ही घाटा सहना पड़ा था और उधर न्यूयार्क ट्रिब्यून अब आधा ही पारिश्रमिक दे रहा था। बीमारी से उठने के बाद मार्क्स ने इधर-उधर से कुछ पैसा लाने का निश्चय किया, जिसके बारे में उनकी पत्नी फ्राउ ने वेडेमेयर को लिखा था : "अपने बाप-दादों तथा तम्बाकू और पनीर की भूमि हालैंड तक धावा मारने जा रहे हैं, जिससे अपने चर्चा से कुछ प्राप्त करने की कोशिश करें।" यह पत्र जेनी ने 19 मार्च, 1861 को लिखा था। इन सारे कष्टों में तीनों लड़कियाँ पिता-माता के आनन्द की सबसे बड़ी साधन थीं। सात साल की जेनी अपने बाप जैसी काले बालों, काली आँखों और साँवले शरीरवाली थी। पन्द्रह साल की लोरा अधिकतर माँ जैसी थी, उसके बाल घुँघराले तथा भूरे, उसकी पुतलियाँ माँ की तरह चमकीली तथा हरे रंग की थीं। दोनों बड़ी सुरूप थीं, लेकिन उनमें किसी तरह का व्यर्थ का अभिमान छू नहीं गया था। दोनों माँ-बाप को तो प्रिय थी हीं, लेकिन सबसे छोटी

एलिनोर घर की प्रिय गुड़िया थी, जिसे प्यार से टूसी कहा जाता था। माँ ने उसके बारे में लिखा था : "यह बच्ची उस वक्त पैदा हुई, जब कि हमारा बेचारा नन्हा एडगर मरा। हमारे हृदय में उसके प्रति जो प्रेम और कोमल भाव थे; उन सबको हमने उसकी बहन के ऊपर स्थानांतरित कर दिया, और दोनों बड़ी बहनें माँ की तरह उसकी देखभाल करती हैं। साथ ही इतना प्यार के लायक, चित्र जैसा सुन्दर और स्वभाव का मधुर बच्चा पाना मुश्किल होगा।··· हम सब ऊँचे स्वर से उसके सामने परियों की कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते थक जाते हैं, लेकिन हमारी बुरी गति हो, अगर नीली चिड़िया या नन्हे हिमश्वेत की कहानी का एक शब्द भी छोड़ा जाए। इन परियों की कहानियों के सुनने के कारण लड़की ने जर्मन सीख लिया और वह उसे अत्यन्त शुद्ध तथा व्याकरणनुसार बोलती है, और साथ ही अंग्रेजी भी यों ही सीख गई है। बच्ची कार्ल को बहुत प्रिय है। उसकी हँसी, उसकी मीठी-मीठी बातें बाप की सारी परेशानियाँ दूर कर देती हैं।" फिर जेनी अपनी अनुरक्त मित्र तथा नौकरानी लेनचेन की तारीफ करती अपने पति की बात को दोहराती है : "वह कहेगा, कि इसके (लेनचेन) के रूप में तुम्हें एक भारी निधि मिलती है। वह सोलह वर्षों से हमारे साथ है, हमारे जीवन के उतार-चढ़ाव का उसने बड़ी बहादुरी से सामना किया।"

हालैंड में मार्क्स का अभियान सफल रहा। वह वहाँ अपने चचा फिलिप मार्क्स से मिले। फिर बर्लिन गए। इच्छा थी, पार्टी का मुखपत्र निकालने के लिए कुछ पैसा जमा करें। प्रशिया के तख्त पर अलहेल्म बैठा था, जिसने जनवरी 1861 में सार्वजनिक क्षमा प्रदान की घोषणा की थी, जिसके कारण मार्क्स को जर्मनी जाने का सुभीता मिला था। लाजेल ने बर्लिन में उनका स्वागत किया। बर्लिन में मार्क्स को कोई आकर्षण नहीं मालूम हुआ। लाजेल ने स्वयं पत्र निकालने का सुझाव रक्खा और सम्पादन के लिए अपने साथ मार्क्स और एंगेल्स को रखने का भी प्रस्ताव किया। लेकिन मार्क्स का लाजेल पर उतना विश्वास नहीं था। प्रशिया में उदारवाद का दिखावा चाहे कितना ही किया जाय, लेकिन वह मार्क्स जैसे आदमी को अपने भीतर पचा नहीं सकती थी। लाजेल ने भी कोशिश की कि मार्क्स को प्रशियन नागरिकता का अधिकार मिल जाय, लेकिन सरकार के जवाबदेह मंत्रियों ने उसे स्वीकार नहीं किया।

बर्लिन से प्रस्थान करके मार्क्स अपने मित्रों से मिलने कोलोन गए, खासकर बुढ़िया माँ से भेंट करना वह जरूरी समझते थे। मई के आरम्भ में फिर वह लंदन लौट गए। बर्लिन में रहते वीना के पत्र 'डी प्रेस' से उन्होंने बातचीत की, और पत्र के प्रत्येक लेख का एक पौंड और प्रत्येक रिपोर्ट का दस शिलिंग देना उसने स्वीकार किया। इसी समय 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' से भी सम्बन्ध बेहतर हो गया। इस तरह रुपयों की आमदनी कुछ बढ़ी जरूर, लेकिन पुराने कर्जे पूरी तरह अदा नहीं हो सके। बीमारी और जर्मनी की यात्रा में खर्च भी अधिक हो गया।

1862 ई. में हालत बेहतर होने की जगह और खराब हो गई। 'डी प्रेस' से जो आशा थी, वह पूरी नहीं हुई। मार्च में मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा था : "मुझे इसकी अधिक परवाह नहीं है कि वह सबसे अच्छे लेखों··· को नहीं छापते, लेकिन आर्थिक तौर से मेरे लिए यह बर्दाश्त से बाहर की बात हो जाती है, जब कि वह चार या पाँच लेखों में सिर्फ एक को छापते और उसका पारिश्रमिक देते हैं, जिससे पैसा पाँतीवाले लेखक के दर्जे से भी मुझे नीचे गिरना पड़ता है।" इसी साल 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, कारण शायद अमेरिकी गृह-युद्ध था। यद्यपि यह युद्ध मार्क्स के लिए वैयक्तिक घाटे का कारण हुआ, तथापि राजनीतिक सम्भावनाओं के बढ़ जाने के कारण वह फिर अपने वैयक्तिक कष्टों को भूल गए। मार्क्स ने अमेरिकन गृह-युद्ध के बारे में उत्तरी राज्यों की अंतिम विजय पर अपना पूरा विश्वास प्रकट किया, और सितम्बर में अपने मित्र को लिखा था, "जहाँ तक यांकियों (अमेरिकनों) का सम्बन्ध है, मेरा अब भी पूरी तरह विश्वास है, कि वे (उत्तरी राज्य) विजयी होंगे। जिस तरह वह लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं, वह इतने दिनों तक धोखा-धड़ी से शासन करनेवाले बूर्ज्वा-गणराज्य के लिए बिल्कुल स्वाभाविक है। दक्षिणी रियासतों का शासन कुलीनशाही है और युद्ध करने के लिए कुलीनशाही ज्यादा अनुकूल है, खास करके दक्षिणी रियासतों की कुलीनशाही, जहाँ पर कि सारा उत्पादक श्रम निगर (हब्शी) करते हैं, और चालीस लाख गोरे पेशे से लुटेरे हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी मैं अपने

सिर की बाजी लगाने के लिए तैयार हूँ, कि अन्त में इन पट्ठों को सबसे बुरे दिन देखने होंगे।" मार्क्स का विचार अन्त में सच निकला।

आर्थिक कठिनाइयाँ बहुत बढ़ चुकी थीं, पानी नाक तक आ गया था। मार्क्स ने 48 वर्ष की उमर में किसी रेलवे कम्पनी की नौकरी भी करनी चाही थी, लेकिन लिखावट अच्छी न होने के कारण उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। आर्थिक अवस्था जैसे-जैसे खराब होती गई, वैसे-वैसे मार्क्स को बार-बार बीमार पड़ना पड़ा। पुरानी पेट की बीमारी के अतिरिक्त अब जहरबाद के फोड़े का भी आक्रमण हुआ, जो कि कई वर्षों तक पिंड छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। बीवी का स्वास्थ्य भी बिल्कुल खराब हो चुका था। लड़कियों के पास कपड़ा और जूता नहीं था कि स्कूल पढ़ने के लिए जाएँ। उनकी सहेलियाँ उस वक्त इंग्लैंड की महान् प्रदर्शनी देखने जाया करती थीं, लेकिन अपनी गरीबी के कारण मार्क्स की लड़कियाँ मन मारे घर में बैठी रहतीं। बड़ी लड़की लोरा अब इस अवस्था की हो गई थी कि अपनी स्थिति को समझे, इसलिए वह घुल-घुलकर मरी जा रही थी, बाप-माँ को बतलाए विना एक बार उसने रंग-मंच पर जाने के लिए शिक्षा लेनी भी शुरू की थी।

अन्त में अवस्था यहाँ तक बुरी हो गई, कि मार्क्स ने अपना सारा फर्नीचर घर के मालिक के लिए छोड़ देने का निश्चय किया और यह भी कि अपने कर्जे देनेवालों को दिवालिया होने की सूचना दे दें, दोनों लड़कियों को अपने मित्रों के द्वारा किसी परिवार में गवर्नेस रखवा दें, अनुरक्त लेनचेन देमुथ को कोई और काम दिलवा दें और अपनी छोटी लड़की तथा बीवी के साथ गरीबों के लायक किसी कोठरी में चले जाएँ।

लेकिन, एंगेल्स ने मार्क्स के इस निश्चय को पूरा होने नहीं दिया। 1860 ई. के बसंत में एंगेल्स के पिता मर गए और एरमेन तथा एंगेल्स फर्म में उनको अच्छा स्थान मिल गया, जिससे आगे वह पार्टनर भी बन सकते थे। लेकिन, इस समय अमेरिकन गृह-युद्ध के हो जाने के कारण व्यवसाय की हालत अच्छी नहीं रही और उन्हें स्वयं अपना खर्च कम करना पड़ा। फिर भी एंगेल्स ने मार्क्स की सहायता करके उनको उनके इरादे से बाज रक्खा। 1863 ई. के आरंभिक महीनों में एंगेल्स को भी एक भारी दुःख का सामना करना पड़ा। दस वर्षों से वह एक आइरिश तरुणी मेरी बर्न्स के साथ पति-पत्नी के तौर पर किन्तु समाज के मुहर बिना रहते आए थे। इसी साल मेरी मर गई। एंगेल्स को भारी मानसिक आघात लगा। मार्क्स को इसके बारे में लिखते हुए उन्होंने कहा था : "मैं अपने भावों को बिल्कुल ही वर्णित नहीं कर सकता। बेचारी लड़की पूरे दिल से मुझे प्यार करती थी।" एंगेल्स को आशा थी कि मार्क्स इस के लिए सान्त्वना अधिक शब्दों में प्रकट करेंगे, लेकिन जो शब्द जवाब में मिले, वह थोड़े और निर्बल थे, जिसके बाद घर की आर्थिक कठिनाइयों का रोना था। एंगेल्स को मार्क्स का यह बर्ताव बुरा लगा। एंगेल्स ने भी पत्र का जवाब कुछ देर से ही देना अच्छा समझा और मार्क्स ने भी कुछ और दिल ठंडा हो जाने तक अपने मित्र को लिखने की जल्दी नहीं की। फिर मार्क्स ने चिट्ठी लिखते वक्त 'हृदयहीन होने' से इन्कार करते हुए यह स्वीकार किया कि मैंने उचित सहानुभूति प्रकट करने में कोताही से काम लिया। एंगेल्स को सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि श्रीमती मार्क्स ने उनके इस दुःख में एक भी सहानुभूति का शब्द नहीं लिख भेजा। इसपर मार्क्स ने लिखा : 'स्त्रियाँ' विचित्र जन्तु हैं, उनमें अत्यन्त बुद्धिमान भी। सवेरे मेरी स्त्री मेरी की मृत्यु और तुम्हारे दुःख के लिए इतनी रो रही थी कि वह अपने दुर्भाग्य को बिल्कुल भूल गई, जो कि उसी दिन ऊपर पड़ा था, लेकिन शाम को वह अनुभव करने लगी, मानो तब तक दुनिया में कोई जानता ही नहीं, दुःख क्या है, जब तक कि घर में कर्ज उगाहने के लिए अमीन न आ जाय, या बच्चों के खिलाने की चिन्ता न हो।"

एंगेल्स ने अपने सारे भावों को भूलकर तुरन्त लिखा : "कोई आदमी वर्षों तक एक स्त्री के साथ रहने के बाद हो नहीं सकता कि वह उसकी मृत्यु पर भारी दुःख न अनुभव करे। मैं अनुभव करने लगा कि उसके साथ मेरी जवानी भी कब्र में दफना दी गई। जिस समय मैंने तुम्हारा पत्र पाया, उस समय तक अभी वह दफनाई नहीं जा चुकी थी। साफ कहूँ, तुम्हारा पत्र एक सप्ताह तक मेरे सिर में चक्कर काटता रहा, मैं उसे भूल नहीं सकता था। खैर, तुम्हारे अन्तिम पत्र ने सब ठीक-ठीक कर दिया। और मैं दिल से अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि मैंने मेरी के साथ अपने सबसे पुराने और सबसे अच्छे मित्र को नहीं खो दिया।" यह प्रथम और अन्तिम

मनमुटाव था, जो कि इन दोनों मित्रों के सारे जीवन में एक-दूसरे के प्रति देखा गया।

एंगेल्स ने दौड़-धूप करके एक सौ पौंड इकट्ठा करके दिया, जिससे मार्क्स की स्थिति कुछ सुधरी और उन्हें अपने घर को छोड़ दूसरी जगह जाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़ा। इस प्रकार 1863 ई. का साल किसी तरह गुजर गया, जिसके अन्त में मार्क्स की माँ मर गई, लेकिन माँ से शायद बहुत थोड़ा ही अंश दायभाग का मिला। हाँ, विलहेल्म वोल्फ ने आठ या नौ सौ पौंड मार्क्स के लिए छोड़े थे, जिससे उनको बड़ी सहायता मिली। विलहेल्म वोल्फ 1864 ई. में मरा, जिसका मार्क्स और एंगेल्स को बहुत दुःख हुआ। मरते समय वोल्फ की अवस्था अभी 55 साल ही की थी। वह कुछ ही वर्षों के निर्वासित जीवन के बाद मैन्चेस्टर में कुछ कारबार करने में लगा था और मरने से कुछ ही समय पहले बाप की विरासत में से भी कुछ सम्पत्ति उसे मिली थी। वोल्फ ने अपने धन का उपयोग इससे बढ़कर अच्छा नहीं समझा कि उसे अपने गुरु के चरणों में भेंट कर दें। मार्क्स ने पीछे अपने अमर ग्रंथ 'डास कपिटाल' के प्रथम भाग को 'अविस्मरणीय मित्र, और सर्वहारा के बहादुर, ईमानदार भद्र अग्रदूत' कहकर विलहेल्म वोल्फ को समर्पित किया था। 1863 ई. के साथ मार्क्स के जीवन से सारी कठिनाइयाँ और चिन्ताएँ यद्यपि समाप्त नहीं हो गईं, तथापि वह फिर उसी मात्रा में कभी नहीं लौटीं। इसका एक कारण यह भी था कि सितम्बर, 1864 ई. में एंगेल्स अब अपने फर्म में पार्टनर हो गए थे और तब से वह और अधिक परिणाम में लगातार सहायता देने लगे थे।

5. लाजेल आन्दोलन

जुलाई, 1862 ई. में लाजेल लन्दन आया। यह वह समय था, जब कि मार्क्स-परिवार भीषण आर्थिक कष्ट में पड़ा हुआ था, तो भी मार्क्स-पत्नी शिष्टाचार-प्रदर्शन करने में किसी तरह पीछे नहीं रहना चाहती थीं। लाजेल को घर की स्थिति का कोई पता नहीं था। कई सप्ताहों तक लाजेल की मेहमानी होती रही और जाने के समय ही उसे वास्तविकता का पता लगा। फिर उसने वर्ष के अन्त में पन्द्रह पौंड देने की बात कहते हुए यह भी बतलाया कि एंगेल्स यां, किसी दूसरे की जमानत पर मेरे खाते से मार्क्स हुण्डी भी ले सकते हैं। मार्क्स ने बोर्कहाइम की सहायता से चार सौ डालर लेना चाहा, इसपर लाजेल ने एंगेल्स की जिम्मेदारी चाही, जिसका साफ मतलब था कि वह मार्क्स पर विश्वास नहीं करता है। मार्क्स को यह बुरा लगा, लेकिन एंगेल्स ने उन्हें समझाया और जमानत देना स्वीकार कर लिया। उस समय तो लेन-देन हो गया, लेकिन अन्त में यही मार्क्स और लाजेल में गलतफहमी का एक भारी कारण बना। राजनीतिक मतभेद भी उठ खड़ा हुआ था, जिसके कारण 1863 ई. के आरम्भ में मार्क्स ने लाजेल के साथ पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया था। लाजेल अपने गुरु मार्क्स की हर एक बात का मूल्य समझता था, लेकिन अपनी कमजोरियों के कारण वह उन्हें असन्तुष्ट कर देता। मार्क्स अतिमानव नहीं थे और दुनिया में ढोंगी ही अतिमानव हो सकते हैं। मार्क्स साफ कहते थे कि मानव के लिए सम्भव कोई भी बात मेरे लिए परायी नहीं है। लाजेल मार्क्स और एंगेल्स के जीवन में प्राप्त अनुयायियों में अत्यन्त चमत्कारिक व्यक्ति था, लेकिन वह अपने गुरुद्वय के मौलिक सिद्धांत–ऐतिहासिक भौतिकवाद–को अच्छी तरह कभी न समझ पाया। हेगेल के बारे में कहा जाता है कि शय्या पर पड़े हुए उसने अपने शिष्यों के बारे में कहा था : उनमें से केवल एक ने मुझे समझा, और उसने भी गलत समझा। लाजेल ने मार्क्स के मूल्य-सिद्धांत के एक ही अंश को स्वीकार किया, जो कि उसकी वैधानिक और दार्शनिक दृष्टि से दुनिया के देखने के लिए अनुकूल था : आम सामाजिक श्रम-समय–जो कि मूल्य का निर्णय करता है–अपनी मेहनत की पूरी उपज कमकर को प्राप्त कराने के लिए आम सामाजिक उत्पादन आवश्यक कर देता है। लेकिन मार्क्स के लिए मूल्य-सिद्धान्त उत्पादन के पूँजीवादी ढंग की सभी पहेलियों का हल था। मूल्य और अतिरिक्त मूल्य के निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया के तौर पर यह कुंजी थी, जो कि अनिवार्यतया समाज की पूँजीवादी व्यवस्था को समाजवादी व्यवस्था में बदलकर रहेगी। लाजेल उस भेद को नहीं देख सका; जो कि उपयोग-मूल्य को पैदा करनेवाली श्रम-शक्ति और विनिमय-मूल्य को पैदा करनेवाली श्रम-शक्ति के परिणामस्वरूप होती है। श्रम का सौदे के रूप में मौजूद उसका दोहरा स्वरूप मार्क्स के लिए 'मौलिक बात' थी, जिसके ऊपर ही राजनीतिक

अर्थशास्त्र का समझना निर्भर करता था।

मार्क्स और लाजेल दोनों की मृत्यु के बाद एंगेल्स ने लाजेल की ढँकी सराहना की थी। 1886-87 ई. में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सर्वहारा-आन्दोलन बढ़ने लगा, किन्तु उनके प्रोग्राम गलत-सलत थे। उसी समय एंगेल्स ने अपने मित्र सोर्ग को लिखा था : "आन्दोलन में नये-नये दाखिल होने के लिए किसी देश में सबसे पहला बड़ा कदम जो उठाना है, वह है कमकरों का एक स्वतन्त्र राजनीतिक दल के रूप में संगठित करना, जैसे भी हो उसके लिए एक निश्चित कमकर पार्टी तैयार करना।" आगे एंगेल्स ने बतलाया कि "ऐसे दल ने जिस प्रोगाम को स्वीकार किया है, अगर उसमें गड़बड़ी, बहुत त्रुटियाँ हों, तो भी कोई परवाह नहीं, क्योंकि यह अनिवार्य है और वह दोष कुछ समय के लिए ही होते हैं।" इसी समय अमेरिका के दूसरे पार्टी-मित्रों को भी उन्होंने लिखा था कि "मार्क्सवादी सिद्धान्त कैथलिक चर्च की तरह निर्भ्रान्त होने का दावा नहीं करता, बल्कि वह विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करता है। मजूर-वर्ग के प्रथम सक्रिय करने के समय विचारों की गड़बड़ी अनिवार्यतया होती है। उसे और भी जटिल बनाने के लिए ऐसे विचारों को कमकरों के गले के नीचे नहीं उतारना चाहिए जिन्हें कि उस समय वह पचा नहीं सकते और जिन्हें पीछे वह स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकार करेंगे।" अपनी बातों के समर्थन में एंगेल्स ने अपने और मार्क्स के जर्मनी के कार्यकारी वर्षों से समय के मनोभाव को बतलाते हुए कहा : "1848 ई. के वसंत में हम जर्मनी लौटकर जनतंत्रतावादी पार्टी में शामिल हो गए, क्योंकि मजूर-वर्ग के कानों में अपनी बात पहुँचाने का वही एकमात्र साधन थी। यद्यपि हम पार्टी के अत्यन्त आगे बढ़े हुए अंग थे, तथापि हम उसके एक हिस्से ही थे।" 'नोये राइनिशे जाइटुंग' जिस तरह कम्युनिस्ट घोषणापत्र का जिक्र करने से अपने को बचाता रहा, उसी तरह एंगेल्स ने अमेरिकन साथियों को भी बतलाया कि "उसे तुरन्त का अपना शास्त्र तुम्हें नहीं बना लेना चाहिए, क्योंकि मार्क्स की दूसरी कितनी ही साधारण कृतियों की तरह अमेरिकन कमकरों के लिए इस समय उसका समझना मुश्किल है। कमकर पहले-पहल आन्दोलन में आ रहे हैं। अब भी वह सैद्धान्तिक बातों में बेसूल-साल के तथा अत्यन्त पिछड़े हैं। हमें प्रतिदिन के व्यावहारिक आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए सहारा लेना चाहिए, जिसके लिए हमें एक बिल्कुल नये साहित्य की आवश्यकता है। जब एक बार अमेरिकन कमकर थोड़ा-बहुत ठीक रास्ते पर चल पड़ेंगे, तो घोषणापत्र उनपर प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा, लेकिन इस समय बहुत ही कम कमकरों पर प्रभाव डाल सकेगा।"

लाजेल का मतभेद अपने गुरुओं से रहा, लेकिन 3 सितम्बर, 1864 को लाजेल की मृत्यु की खबर पाकर फ्राइलीग्रथ ने जब एंगेल्स को 3 सितम्बर, 1864 को उसके बारे में तार दिया, तो दूसरे ही दिन एंगेल्स ने जवाब दिया : "तुम समझ सकते हो, कि इस खबर ने मुझे कितना हैरान कर दिया। निजी तौर से लाजेल कुछ भी रहा हो, साहित्यिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कुछ भी रहा हो, लेकिन राजनीतिक तौर से वह निश्चय ही जर्मनी के अत्यन्त बढ़िया दिमागों में से एक था। हमारे लिए इस समय वह अत्यन्त अनिश्चित मित्र था और यह भी बहुत-कुछ निश्चित है कि भविष्य में वह निश्चित शत्रु होता, लेकिन जो कुछ हो, यह देखकर हमें बहुत कष्ट हो रहा है कि चरमपंथी दल के कम या बेशी सक्षम पुरुषों को जर्मनी किस तरह नष्ट कर रही है। कारखानेवाले और प्रगतिशील सुअर कितना आनन्द मना रहे होंगे।—आखिर, जर्मनी में लाजेल ही एक ऐसा आदमी था, जिससे वह डरा करते थे।"

मार्क्स ने कुछ दिनों बाद 7 सितम्बर को लिखा था : "पिछले कुछ दिनों से लाजेल की मृत्यु मुझे बड़ी बुरी तरह से परेशान कर रही है। आखिर, वह पुराने गारदों में से एक था और हमारे शत्रुओं का शत्रु : जो सब कुछ होते भी मुझे इसका बहुत अफसोस है कि पिछले कुछ वर्षों में हमारे सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, यद्यपि दोष उसका था।" कौंटेस हात्ज़फेल्ट के पास सहानुभूति का पत्र लिखते हुए मार्क्स ने कहा था : वह युद्ध में अचिलेस की तरह तरुण मरा। कुछ सालों बाद लाजेल के उत्तराधिकारी श्वाइट्ज़ेर को पत्र लिखते हुए मार्क्स ने कहा था : लाजेल की सेवा अमर है।

14

प्रथम इण्टरनेशनल (1864 ई.)

1. इण्टरनेशनल की स्थापना

प्रथम इण्टरनेशनल की स्थापना के बारे में मार्क्स-एंगेल्स प्रतिष्ठान ने जो सामग्री प्रस्तुत की है, उससे निम्न बातें मालूम होती हैं :

31 फरवरी, 1864 को एक कमेटी ने पेरिस के कमकरों को लन्दन-विश्व-प्रदर्शनी में अपना प्रतिनिधि भेजने के लिए लिखा था। दो लाख कमकरों ने मिलकर सौ प्रतिनिधि चुने, जिनमें से पहला दल 19 जुलाई और अन्तिम दल 5 अक्तूबर, 1862 को पेरिस से लन्दन के लिए रवाना हुआ। 'वर्किंग मैन' (कमकर मनुष्य) पत्र के सम्पादक के सुझाव पर फ्रेंच कमकरों के स्वागत के लिए जुलाई में लन्दन में एक कमेटी बनाई गई। 5 अगस्त को वहाँ के फ्रीमेसन हॉल में एक बैठक हुई, लेकिन बूर्ज्वा बैठक होने के कारण लन्दन की मजदूर परिषद् (ट्रेड कौंसिल) ने उसमें भाग नहीं लिया। फ्रेंच-प्रतिनिधियों में से कुछ ने, जिनमें इमारती कमकर तोलें भी शामिल था, लन्दन की मजदूर सभाओं से सम्बन्ध स्थापित किया। फ्रेंच-प्रतिनिधियों के दो टुकड़े हो गए, जिनमें बोनापार्टी दल के विरोधी अलग हो गए, तोलें आदि इसी में थे। 1 जुलाई, 1863 को सेण्ट जेम्स हॉल में एक सभा हुई, जिसमें लन्दन-मजदूर सभाओं एवं अबोनापार्टी फ्रेंच कमकरों के प्रतिनिधि शामिल हुए। 23 जुलाई को लन्दन-मजदूर सभा ने फ्रेंच प्रतिनिधियों के साथ जोल्डबेली के 'बेल-इन' (घंटासराय) में एक अधिवेशन किया। पाँच सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसे फ्रेंच कमकरों के पास अपील तैयार करने का काम सौंपा गया। 10 नवम्बर को 'बेल-इन' की दूसरी बैठक में यह अभिभाषण (अपील) "स्वीकार किया गया, जो 5 दिसम्बर, 1863 में मधुच्छत्र" में प्रकाशित हुआ। फ्रेंच कमकरों का जवाब आने में आठ महीने लगे। जवाब को सेण्ट मार्टिन हॉल की एक सार्वजनिक सभा में 28 सितम्बर, 1964 को पढ़ा गया और उसपर बहस की गई। मार्क्स उस समय मंच पर मौजूद थे। लेकिन उन्होंने उसमें भाषण द्वारा भाग नहीं लिया। मार्क्स ने एकेरियस को बोलने के लिए प्रस्ताव किया। एक अस्थायी कमेटी चुनी गई, जिसमें जर्मन कमकरों की ओर से प्रतिनिधित्व करने के लिए एकेरियस और मार्क्स चुने गए। इसी सभा में अँग्रेज और फ्रेंच अभिभाषणों के आधार पर सूचना और बहस के लिए इण्टरनेशनल एसोसिएशन को एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के तौर पर निर्माण करने का निश्चय किया गया। इस एसोसिएशन के नियमोपनियम तैयार करने के लिए जो सबकमेटी बनी, उसमें मार्क्स भी रखे गए। नवम्बर, 1918 के बाद आस्ट्रियन पुलिस के दस्तावेज, कागज-पत्रों के देखने पर पता लगा, कि जार्ज एकेरियस ने आस्ट्रियन पुलिस को जनरल कौंसिल की गुप्त रिपोर्टें भेजी थीं। मार्क्स ने उस समय भी उसपर सन्देह प्रकट किया था।

इस प्रकार इण्टरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन (अन्तर्राष्ट्रीय कमकर सभा) लन्दन के सेण्ट मार्टिन हॉल की एक बड़ी सभा में लाजेल की मृत्यु के कुछ सप्ताहों बाद 28 सितम्बर, 1864 को स्थापित किया गया। इण्टरनेशनल का सर्वहारा के संघर्ष में बहुत ऊँचा स्थान है। शोषण में कोई हाथ न रखने तथा सारे शोषितों को स्वतन्त्र करने की स्वाभाविक भावना के कारण सर्वहारा में अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य और झगड़े के भावों के पैदा होने का कारण नहीं है, इसलिए खुले और साफ दिल से यदि किसी वर्ग का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एक ही उद्देश्य के लिए हो सकता है, तो सर्वहारा ही का, और यह प्रथम इण्टरनेशनल दुनिया के सर्वहारों का इस तरह का पहला संगठन था। यह देख ही चुके हैं कि फ्रांस के दो लाख कमकरों ने प्रतिनिधियों के चुनने में भाग लिया था, इसलिए इण्टरनेशनल की स्थापना के विचार आरम्भ ही से बहुत व्यापक थे। उत्पादन का पूँजीवादी तरीका विरोध का कारण नहीं, बल्कि उसका स्वरूप ही है, वह आधुनिक राज्यों को बनाने और बिगाड़ने दोनों का काम करता है। सौदे के फैलाव और बाजारों के विस्तार के लिए एक ओर वह राज्यों की सीमाओं को

नष्ट करता है, तो दूसरी ओर छोटे राज्यों की सीमाओं को नष्ट कर उन्हें नये रूप में संगठित करता है। व्यापारिक प्रतियोगिता और बाजारों की छीना-झपटी के कारण राज्यों में भीषण वैमनस्य और संघर्ष पैदा करता है। व्यापक परिमाण में इतने बड़े युद्धों को कराना उसी का काम है। जब तक उत्पादन का पूँजीवादी ढंग मौजूद रहेगा, जब तक बढ़ती हुई टेक्नीक के साथ कल-कारखाने केवल नफे के लिए बाजार के वास्ते भारी परिमाण में माल पैदा करते रहेंगे, तब तक लड़ाइयों से मुक्ति नहीं हो सकती; तथा मानव-भ्रातृभाव केवल जीभ से कहने की बात रहेगी। बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे एक ओर शान्ति और स्वतन्त्रता के गीत गाते हैं, तो दूसरी ओर राष्ट्रों को नये से नये हथियारों से सज्जित होकर खूनी लड़ाइयों के लिए तैयार करते हैं।

दुनिया में युद्ध और अशान्ति का कारण यह विरोध तभी नष्ट होगा, जब कि उत्पादन का यह ढंग खतम हो जाएगा। सर्वहारा अपनी मुक्ति का प्रयत्न अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर ही करते हैं, लेकिन सभी सर्वहारे एक नाव में बैठे हुए हैं, सबको एक तरह से शोषण से मुक्त हो स्वच्छन्द और सुखी जीवन बिताने की लालसा है, और सो भी लाभ-शुभ के आधार पर नहीं; इसलिए सर्वहारों के राष्ट्रीय संगठनों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में परिणत होने में इसके सिवाय कोई भारी रुकावट नहीं है, कि पूँजीपतियों के राष्ट्रीय दलाल सर्वहारा का नेतृत्व करते उन्हें भूल-भुलैया में डाल अपने उद्देश्य से दूर रखते हैं—जैसा कि इंग्लैंड की मजदूर पार्टी और अमेरिका के मजदूर संगठन कर रहे हैं। लेकिन सर्वहारा के लिए मुक्ति का रास्ता अपने अन्तर्राष्ट्रीय वर्ग-सहयोग से ही होकर जाता, इसलिए यह गुमराह करनेवाले चिरकाल तक सफल नहीं हो सकते। सर्वहारा की अन्तर्राष्ट्रीय भावना को पूँजीवादी और उनके समर्थक राष्ट्रीयता-विरोधी बतलाते हैं। वह कहते हैं, कि अन्तर्राष्ट्रीयतावादी अपने दिल में कभी राष्ट्रीय भावना नहीं रख सकता। विरोधों के ही समागम को वह अपने भीतर चारों ओर देखते हैं, इसी लिए उनको यह समझ में नहीं आता, कि सच्ची राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के भावों में कोई विरोध नहीं है। मानव-बंधुता का अपने देश-भाइयों के प्रेम के साथ कोई विरोध नहीं है। अगर इस तरह का भाई-चारा न हो, तो एक देश के सर्वहारों को दबाने के लिए दूसरे देश के सर्वहारों को उनके मालिक इस्तेमाल कर सकते हैं।

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र ने दुनिया-भर के सर्वहारों को एक हो जाने का सन्देश दिया था, इसलिए यदि उसके प्रकाशित होने के सोलह वर्ष बाद इण्टरनेशनल की स्थापना हो, तो यह कोई विचित्र बात नहीं थी। घोषणा के प्रकाशित होने के आस-पास ही फ्रांस में क्रांति, इंग्लैंड में चार्टिस्ट-आन्दोलन जैसा जबर्दस्त संघर्ष, और जर्मनी तथा इताली में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र विद्रोह हुए। उसके बाद ही सर्वहारा एक स्वतन्त्र शक्ति के तौर पर युद्ध के मैदान में उतरे। सभी जगह यह संघर्ष असफल रहे, लेकिन उसी अर्थ में, जिस तरह कि प्रथम साल बढ़कर जमीकन्द अपने को धरती के भीतर सड़ा असफल-सा जान पड़ता है, पर अगले साल वह और अधिक शक्ति दिखलाते हुए दूना-तिगुना रूप धारण करता है। सर्वहारों का कोई प्रयत्न विफल नहीं कहा जा सकता बल्कि यह असफलताएँ उसको आगे के लिए और शक्ति प्रदान करती हैं, अपनी भूलों से सीख लेने का मौका देती हैं। फ्रांस में क्रांति के असफल होने के बाद कमकर-वर्ग में जो निराशा और अवसाद पैदा हुआ उसके कारण समूहरूपेण कुछ करना असम्भव था। लेकिन अपने विरोधियों के प्रति तीव्र रोष तो उनमें था ही। उनके एक भाग को लुई ब्लांक ने अपनी ओर खींचा। उसके सामने कोई वास्तविक समाजवादी प्रोग्राम नहीं था। वह आतंकवादी के तौर पर षड्यंत्र और अतिसाहस द्वारा राजशक्ति पर अधिकार करना चाहता था। प्रूधों भी कमकरों को उटोपियन हवाई किला दिखलाकर वास्तविक संघर्ष से पथभ्रष्ट करना चाहता था। '18वीं बूमेर' में मार्क्स ने लिखा था, कि किस तरह प्रूधों का आन्दोलन पुराने संसार को बदलने के वास्तविक सामुदायिक प्रयत्नों को छोड़ वैयक्तिक प्रयत्न और हृदय-परिवर्तन द्वारा सर्वहारा को मुक्त करना चाहता था—जैसा कि उससे सौ वर्ष बाद आज भी कुछ गाँधीवादी करना चाहते हैं, चाहे वह प्रयत्न तजर्बे द्वारा हजार बार असफल साबित हुए हों। गुमराह करने के लिए जनता की क्षीण स्मृति से फायदा उठाने में चालाक कब पीछे रह सकते हैं ? इंग्लैंड में चार्टिस्ट-आन्दोलन के खतम हो जाने पर वहाँ भी फ्रांस की तरह ही पथभ्रष्टता देखी गई। राबर्ट ओवेन जैसा महामना युटोपियन समाजवादी अब भी वहाँ जिन्दा था। यद्यपि वह बहुत बूढ़ा था, किन्तु उसके

अनुयायी क्रमशः एक स्वतंत्र-विचारक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में परिणत हो गए, जैसा कि गाँधी के अनुयायी आजकल दीख रहे हैं। ओवेन के अनुयायियों के साथ-साथ किंग्स्ले और मौरिस का ईसाई समाजवाद भी फैलने लगा। अंग्रेज मजदूर सभाएँ भी अपने तुरन्त के हितों की ओर ध्यान देतीं, राजनीतिक संघर्षों से अलग रहना चाहती थीं। पीछे तो जब इंग्लैंड के मजदूर-संगठनों और मजदूर-सभाओं की बागडोर वहाँ की हिजड़ी भ्रष्ट नेताशाही के हाथ में चला गया, तो उसने उन्हें और गुमराह करके दुनिया के सफल सर्वहारों के विरोधी नहीं तो तटस्थ रखने का पूरा प्रयत्न किया।

लेकिन, जैसा कि मार्क्स ने बतलाया है, आर्थिक संकट सर्वहारा को प्रबुद्ध तथा लड़ाकू बनाने के लिए मुख्य कारण होते हैं, जिस साल 1857 ई. में भारत में स्वतंत्रता-युद्ध लड़ा जा रहा था, उसी समय दुनिया में एक जबर्दस्त व्यापारिक संकट आया था। उसके दो साल बाद 1860 ई. में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकन राज्यों के गृह-युद्ध ने भी इस संकट में आग में घी का काम किया। 1857 ई. के व्यापारिक संकट ने फ्रांस में मजदूरों को बेकार और किसानों को अनाज की सस्ती के कारण पामाल करना शुरू किया। इसे वह चुपचाप सह नहीं सकते थे। पूँजीवादी सरकार को भय लगा कि कहीं इस क्रोधाग्नि की बलि हम न चढ़ जायँ। ऐसे समय हमेशा पूँजीवादी भीतर से लोगों का ध्यान हटाने, तथा असाधारण राजनीतिक स्थिति पैदा करने के लिए अपने विरोध में लगनेवाली क्रांति की शक्ति को विदेशी युद्ध में डालने की कोशिश करते हैं। साथ ही बा. नापार्टी सरकार ने देश में भी कमकरों के भावों को दमन द्वारा दबाना चाहा। यद्यपि उसने मजदूर सभाओं के संगठित करने की अनुमति दे रक्खी थी, लेकिन वह कोई भी राजनीतिक अधिकार देने के लिए तैयार नहीं था। राजनीतिक संगठनों के विरोधी कानून बनाकर फ्रेंच सरकार ने 1853 से 1866 के बीच में 3909 मजदूरों को सजा दी, और 749 संगठनों के ऊपर संगठन-विरोधी-कानून का प्रयोग किया। फ्रेंच बूर्ज्वाजी ने साम और दाम दोनों से काम लिया—कैद किए हुए कमकरों में बहुतों के दंड उसने माफ कर दिए, और 1862 ई. में लन्दन में होनेवाली महान् प्रदर्शनी में फ्रेंच कमकरों द्वारा प्रतिनिधियों के भेजे जाने का समर्थन भी किया।

हम देख चुके हैं कि फ्रेंच मजूरों ने अपने दो सौ प्रतिनिधि चुनकर लन्दन भेजे थे। इसके लिए एक सौ पचास देशों के पचास पोलिंग (वोट देने के) स्टेशन कायम किए गए थे। जो प्रतिनिधि लन्दन गए, उनकी यात्रा का खर्च कुछ तो चन्दे से पूरा किया गया और कुछ सरकारी और म्युनिसिपैलिटी के खजाने से दिया गया—सरकारी खजाने और म्युनिसिपैलिटी में से प्रत्येक ने बीस-बीस हजार फ्रांक प्रदान किए थे। इस उदारता से फ्रांस के बूर्ज्वा समझते थे कि मजदूर हमारे कृतज्ञ होंगे। लेकिन मजदूरों ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया, जब कि 1863 ई. के चुनावों में सरकारी उम्मीदवारों को केलव 82 हजार वोट मिले, और उनके विरोधियों को 1 लाख 53 हजार—इससे पहले 1857 ई. वाले चुनाव में सरकारी उम्मीदवारों को 1 लाख 11 हजार और उनके विरोधियों को 96 हजार वोट मिले थे। संगठन-विरोधी कानून को ढीला करने से मजदूरों के भावों में कुछ परिवर्तन आए, इसके लिए बोनापार्ट ने मई, 1864 में एक कानून बनाया। इंग्लैंड में इस तरह का एक कानून 1825 ई. में ही पास हो चुका था। इंग्लैंड के मजदूरों ने जब अधिक मजूरी और काम के घंटे की कमी की माँग की, तो वहाँ के पूँजीपतियों ने फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी और दूसरे देशों से सस्ती विदेशी श्रम-शक्ति (मजूरों) को ले आने की धमकी दी। इसी समय अमेरिकन गृह-युद्ध के छिड़ जाने से कपास की आमदनी रुक गई और मैन्चेस्टर तथा लंकाशायर के कपड़ों में कारखानों के मजदूरों में भारी बेकारी फैल गई। इंग्लैंड का प्रधानमन्त्री पामर्स्टन नहीं चाहता था कि अमेरिकन गृहयुद्ध में दास-प्रथा के जबर्दस्त हामी तथा सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी दक्षिणी रियासतें हार खाएँ, इसलिए वह उनके पक्ष में होकर युद्ध में दखल देना चाहता था, लेकिन इसी समय सेन्ट जेम्स हॉल में जान ब्राइट की अध्यक्षता में एक जबर्दस्त सभा हुई, जिसने पामर्स्टन के इरादे का जबर्दस्त विरोध किया। 1864 ई. के वसंत में इताली का मुक्तिदाता गेरीबाल्दी जब लन्दन में आया, तो उसका जबर्दस्त स्वागत किया गया। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि कमकरों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना जग रही थी। 1862 ई. के महान् प्रदर्शनी में समय अंग्रेज कमकरों और फ्रेंच कमकर-प्रतिनिधियों का जो मेल-मिलाप हुआ, वह उसी अन्तर्राष्ट्रीय भावना का सूचक था।

जैसा कि हम बतला चुके हैं, 28 सितम्बर, 1864 ई. को प्रोफेसर बीसली[1] की अध्यक्षता में फ्रेंच प्रतिनिधियों का स्वागत करने के लिए लन्दन के सेण्ट मार्टिन हाल में एक सभा हुई। दोनों देशों के कमकर वर्ग ने आपस में भाई-चारा स्थापित किया। इसी सभा में इण्टरनेशनल (अन्तर्राष्ट्रीय) कमकर एसोसिएशन (सभा) के नियमोपनियम बनाने के लिए एक कमेटी बनाई गई, इसका भी जिक्र हम कर चुके हैं। इस कमेटी में कार्ल मार्क्स भी सम्मिलित हुए थे, जिनका नाम तत्कालीन अखबारों ने सभी मेम्बरों के अन्त में छपा था। मीटिंग में मार्क्स ने सक्रिय भाग नहीं लिया था, लेकिन भाषण करनेवालों में उन्होंने इकेरियस का नाम दिया था। अभी मार्क्स को अपना वैज्ञानिक कार्य अधिक महत्त्व का मालूम होता था, तब भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की इस प्रथम भावना को वह बिल्कुल महत्वहीन नहीं समझते थे। उसी समय उन्होंने वेडेमेयर और अपने दूसरे मित्रों को लिखा था : "हाल में जो इण्टरनेशनल कमकर-कमेटी बनाई गई, वह महत्त्वहीन या बेमहत्त्व की नहीं है। इसके अंग्रेज मेम्बर मुख्यतः मजदूर सभाओं के मुखिया हैं, अर्थात् लन्दन के मजदूर-स्वामी, जिन्होंने गेरीबाल्दी के स्वागत के लिए जबर्दस्त संगठन किया और सेंट जेम्स हॉल में विशाल सभा की, जिसने पामर्स्टन को उत्तरी राज्यों के विरुद्ध लड़ाई घोषित करने के इरादे से बाज रक्खा। जहाँ तक फ्रांसीसियों का सम्बन्ध है, कमेटी के मेम्बर बहुत महत्त्व नहीं रखते, लेकिन वह पेरिस के कमकरों के साक्षात् प्रतिनिधि हैं। उन इतालियन एसोसिएशनों से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है, जिन्होंने कि हाल ही में नेपल्स में अपनी कांग्रेस की थी। यद्यपि मैं बराबर किसी संगठन में भाग लेने से इन्कार करता रहा हूँ तथापि इस बार इसलिए स्वीकार किया, कि यहाँ कुछ वास्तविक भलाई करने की संभावना है।"

मार्क्स का नाम कम महत्त्व का समझकर अंग्रेज अखबारों ने कमेटी के मेम्बरों की सूची के अन्त में छापा था, लेकिन वही इस संगठन के प्रधान नेता बन गए और बिल्कुल स्वाभाविक रीति से यह इसीलिए हुआ कि मजदूरों के दर्शन का प्रधान-आचार्य और उनके संगठन और संघर्ष के श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक वही हो सकते थे। कमेटी ने नये मेम्बरों को भी जोड़ा और इस प्रकार उनकी संख्या पचास हो गई। इनमें आधी संख्या अंग्रेज कमकरों की थी, बाकी में सबसे मजबूत टोली जर्मनों की थी, जिनमें मार्क्स, इकेरियस, लेस्नेर, लाखनेर, प्फाण्डर थे, जो सभी विलुप्त कम्युनिस्ट लीग के मेम्बर रह चुके थे। कमेटी में फ्रांस के 9, इताली के 6, पोलैंड और स्वीट्जरलैंड में से प्रत्येक के 2-2 मेम्बर थे। कमेटी ने प्रोग्राम और नियमोपनियम बनाने के लिए एक सब-कमेटी नियुक्त की, जिसमें मार्क्स भी चुने गए, लेकिन बीमारी तथा निमंत्रणों के पीछे पहुँचने के कारण वह इस सब-कमेटी की बैठकों में शामिल नहीं हो सके। सब-कमेटी ने मार्क्स के बिना अपने काम को करना चाहा। मेजिनी के प्राइवेट-सेक्रेटरी मेजर वोल्फ, अंग्रेज बेस्टन और फ्रांसीसी लुबेज कोशिश करके हार गए, पर काम करने में सफल नहीं हुए। अन्त में मार्क्स को हस्तावल देना पड़ा। उनके दिमाग में तो यह सभी बातें पहले से ही सोची और स्पष्ट थीं। उन्होंने दूसरे मसौदे को बेकार और उनकी बातों से पूरी तौर से मुक्त कर मजदूर-वर्ग के लिए एक अभिभाषण तैयार किया, जिसका ख्याल सेंट मार्टिन हाल की मीटिंग में नहीं आया था। इस अभिभाषण द्वारा 1848 ई. में प्रकाशित कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र के बाद के मजदूर-वर्ग के इतिहास पर प्रकाश डाला गया। इस अभिभाषण में 1848 ई. के बाद के सोलह वर्षों के मजदूर वर्ग के इतिहास को भूमिका के तौर पर रक्खा गया। सब-कमेटी ने मार्क्स के तैयार किए अभिभाषण को तुरन्त स्वीकार कर लिया; हाँ, केवल जहाँ-तहाँ अधिकार और कर्तव्य, सत्य, नैतिकता और न्याय जैसे कुछ वाक्य जोड़ दिए गए। लेकिन जैसाकि एंगेल्स के पास भेजे अपने पत्र में मार्क्स ने लिखा था : मैंने इन शब्दों को ऐसी जगह रख दिया है, कि जहाँ यह कोई नुकसान न कर सकते। मार्क्स ने उद्घाटन-अभिभाषण और अस्थायी नियम तैयार किए थे, उन्हें कमेटी ने भी बड़े उत्साह के साथ स्वीकार कर लिया। मार्क्स के इस अभिलेख के बारे में पीछे प्रोफेसर बीसली ने घोषित किया था कि मध्य-वर्ग के विरुद्ध मजदूर-वर्ग के पक्ष का एक दर्जन पन्नों में इतना अत्यन्त जबर्दस्त और प्रभावशाली प्रतिपादन इससे पहले कभी नहीं लिखा गया। आरंभ में ही इसमें इस बात का उल्लेख किया

1. Beesly.

गया था कि 1864 ई. के बीच के सोलह वर्षों में मजदूर-वर्ग के दुःख और कठिनाइयाँ कम नहीं हुईं, यद्यपि इन्हीं सोलह वर्षों में औद्योगिक विकास और व्यापारिक प्रसार जितना हुआ, उतना कभी नहीं देखा गया। अभिभाषण में अपनी बात की पुष्टि सरकारी नील-पुस्तिकाओं और वित्तमन्त्री (ग्लेड्सटन) के भाषणों में दिए हुए आँकड़ों से की थी। ग्लेड्सटन के अनुसार 'धन और शक्ति को मतवाला बनानेवाली वृद्धि' का फायदा केवल सम्पत्तिवाले वर्ग ने उठाया। इसका एक ही अपवाद यह था कि इंग्लैंड के कमकरों का एक बहुत छोटा-सा भाग कुछ अधिक वेतन पाने लगा, यद्यपि चीजों के दाम बढ़ जाने के कारण उसका वास्तविक मूल्य उतना नहीं बढ़ा, जितना कि दिखलाया जाता था। आगे कहा था : सभी जगह मजदूर-वर्ग का भारी जनसमूह दुःखों और कष्टों में उससे कहीं अधिक गहरा और व्यापक रूप में डूबा, जितने कि ऊपरी वर्गवाले सामाजिक स्तर में ऊपर उठे। यूरोप के सभी देशों को देखने से इस अकाट्य सत्य से कोई पक्षपातहीन शोधकर्ता इन्कार नहीं कर सकता। इसे सिर्फ वही लोग इन्कार कर सकते हैं, जिसका कि दूसरों के दिल में धोखेवाली आशा जगाने में अपना स्वार्थ सधता है। मशीनों की पूर्णता और उद्योग तथा कृषि में साइंस के उपयोग, अथवा संचार-यातायात के साधन और उपाय, नये उपनिवेश और प्रवासन, नये बाजारों पर विजय अथवा मुक्त-व्यापार, ये सभी बातें मिलकर भी मजदूरवर्ग के कष्ट को खतम करने में सफल नहीं हो सकतीं, बल्कि इसके विरुद्ध स्थितियों के झूठे आधार पर श्रम की सृजनात्मक शक्ति का हर एक नया विकास सामाजिक विरोध को बढ़ाता तथा सामाजिक झगड़ों को तीव्रतर करता है। आर्थिक प्रगति के मतवाला बनानेवाले इसी काल में भुखमरी ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी में एक सामाजिक प्रतिष्ठा के दर्जे पर पहुँच गई। यह काल इतिहास के पन्नों में 'पूँजी के' बहुत तीव्र गति से लौटने तथा औद्योगिक एवं व्यापारिक संकट के नाम से मशहूर सामाजिक महामारी के विस्तृत प्रहार और भार के प्रभाव का काल है।

"अभिभाषण में 1850 ई. के बादवाली शताब्दी में मजदूर वर्ग के आन्दोलन की असफलताओं का भी जिक्र किया गया था, लेकिन साथ ही उसकी असफलता का, दो सफलताओं का भी जिक्र किया गया था : इंग्लैंड में दस घंटे के काम के लिए कानून का बनाना, जिसका कि प्रभाव अंग्रेज सर्वहारों पर पड़ा", इसलिए दस घंटा बिल (विधेयक) केवल एक बड़ी व्यवहारोपयोगी सफलता ही नहीं थी, बल्कि वह सैद्धान्तिक विजय भी थी, क्योंकि यहाँ पहली बार बूर्ज्वाजी के राजनीतिक अर्थशास्त्र को मजदूर-वर्ग की राजनीतिक अर्थनीति ने पराजित किया। "इससे भी बड़ी विजय कोआपरेटिव (सहयोगी) आन्दोलन की हुई। मजदूरों ने सहयोग के सिद्धांत के आधार पर कल-कारखाने खोले और उन्हें सफलतापूर्वक चलाया। इस महान् सामाजिक तजर्बे का मूल्य बहुत भारी है।" बहस करने की जगह इन सहयोगी (सहकारी) कल-कारखानों ने "सिद्ध कर दिया कि कमकरों के एक वर्ग को काम देनेवाले मालिकों के एक वर्ग के न रहने पर भी बड़े पैमाने पर आधुनिक साइंस के कानूनों के अनुसार उत्पादन सम्भव है। धन उत्पादन करने के लिए मजदूरों के हथियारों को कमकरों के ऊपर शोषक प्रभुता के हथियारों के तौर पर इजारेदारी की आवश्यकता नहीं। मजूरी-श्रम भी दास-श्रम तथा किसानी अर्धदासता सर्प (Seoydorm) की तरह एक अस्थायी तथा गौण रूप है, जिसे कि सहकारी श्रम के सामने लुप्त होने के लिए बाध्य होना पड़ेगा—यह सहकारी श्रम अपने कठिन काम को स्वेच्छा से खुशी के साथ बिना दिक्कत के कर सकता है।" फिर भी सहकारी श्रम, जो कि समय-समय के प्रयत्नों तक ही अपने को सीमित रख सकता है—पूँजी की इजारेदारी को तोड़ नहीं सकता। "शायद इसी लिए उच्च वर्ग अपने विचारों के लिए हृदय से।" (?)

आगे अभिभाषण में लिखा गया था, कि कमकरों में फिर चेतना बढ़ी है, जिसको हम इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और इताली में मजदूर वर्गीय-आन्दोलन के पुनर्जागरण के रूप में देख रहे हैं और साथ ही मजदूरों का राजनीतिक तौर से पुनः संगठित करने के प्रयत्न के रूप में देख रहे हैं। "मजदूरों के पास सफलता की एक कुंजी-संख्या मौजूद है। लेकिन तराजू में संख्या का वजन भारी होता है, जब कि वह एक संगठन में एकजुट तथा एक सचेतन लक्ष्य की ओर ले जाएँ। पिछले तजर्बे से मालूम होता है कि सभी देशों के कमकरों के बीच भाई-चारे की जो आवश्यकता है, उसकी उपेक्षा और अपनी मुक्ति के लिए किए जानेवाले सभी संघर्षों में कन्धे से कन्धा

मिलाकर उनके खड़े होने के उत्साह को रोकने का फल सदा उनके अपने एक-दूसरे से असम्बद्ध प्रयत्नों में आम तौर से असफल होने का कारण बनता। इसी विचार ने सेण्ट मार्टिन हॉल की मीटिंग को इण्टरनेशनल कमकर एसोसिएशन के कायम करने की प्रेरणा दी। अभिभाषण का अन्त भी 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' की तरह ही निम्न वाक्यों द्वारा किया गया था : "सभी देशों के सर्वहारो, एक हो जाओ !"

इण्टरनेशनल के अस्थायी नियमों का भी इसी तरह गम्भीरतापूर्वक गुम्फन किया गया था : मजूर-वर्ग की मुक्ति स्वयं कमकरों का अपना करणीय है। मजूर-वर्ग की मुक्ति का संघर्ष विशेषाधिकार रखनेवाले एक नये वर्ग को स्थापित करने का संघर्ष नहीं है, बल्कि यह वर्ग-शासन को बिल्कुल उठा देने का संघर्ष है। कमकरों की आर्थिक पराधीनता उन लोगों के कारण है, जो कि श्रम के हथियारों, जीवन के स्रोतों पर एकाधिकार रखते हैं। इसका परिणाम सब तरह की गुलामी, सामाजिक कष्ट, बौद्धिक सुखंडीपन और राजनीतिक पराधीनता है। इसलिए मजदूर-वर्ग की आर्थिक मुक्ति वह बड़ा लक्ष्य है, जिसके साधन सभी राजनीतिक आन्दोलन को पास रखने चाहिए। अब तक इस लक्ष्य को प्राप्त करने के सारे प्रयत्न इसलिए विफल हुए कि प्रत्येक देश के भिन्न-भिन्न मजदूर-वर्ग के समूहों और भिन्न-भिन्न देशों के मजदूर-वर्गों के बीच एकता का अभाव था। मजदूरों की मुक्ति न स्थानीय कृत्य है, और न राष्ट्रीय, बल्कि यह सामाजिक कृत्य है। यह एक ऐसा कृत्य है जो कि उन सभी देशों के सामने है, जहाँ आधुनिक समाज मौजूद है। इसको सफलतापूर्वक तभी पूरा किया जा सकता है, जब कि सभी देशों के बीच बाकायदा सहयोग हो।

इण्टरनेशनल का नेतृत्व एक जनरल कौंसिल (महापरिषद्) के हाथ में थी, जिसमें भिन्न-भिन्न देशों के कितने ही मजदूर शामिल थे। लेकिन जब तक कि जनरल कौंसिल चुनी नहीं गई, तब तक सेण्ट मार्टिन हॉल की सभा द्वारा नियुक्त कमेटी ही इस काम को करती रही। जनरल कौंसिल का कृत्य था : भिन्न-भिन्न देशों के मजदूर-वर्गीय संगठनों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना, प्रत्येक देश के कमकरों को दूसरे देशों के कमकरों के कामों के सम्बन्ध में सूचना देना, भिन्न-भिन्न देशों के मजूर-वर्गों की स्थिति के सम्बन्ध में आँकड़े जमा करना, सभी मजूर-वर्गीय संगठनों के सामान्य हितों के प्रश्नों पर विचार करना, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ा उठ खड़ा होने के समय सभी सम्बद्ध संगठनों की ओर से एक ही साथ काम करना, इण्टरनेशनल के काम के बारे में नियमपूर्वक रिपोर्टें प्रकाशित करना और इसी प्रकार के और काम।

जनरल कौंसिल का निर्वाचन कांग्रेस के हाथ में था, जो कि वर्ष में एक बार हुआ करेगी, वही कौंसिल के स्थान और दूसरी कांग्रेस की जगह और समय का निर्णय करेगी। आवश्यकता पड़ने पर जनरल कौंसिल नये मेम्बर क्वाप्ट कर (जोड़) सकती थी, और जरूरत पड़ने पर अगली कांग्रेस के स्थान को बदल सकती है, किन्तु वह उसे स्थापित नहीं कर सकती। भिन्न-भिन्न देशों के मजूर-संगठन इण्टरनेशनल से सम्बद्ध होने पर भी अपनी संगठन-सम्बन्धी स्वतन्त्रता को कायम रख सकते हैं। कोई भी स्वतन्त्र स्थानीय संगठन जनरल कौंसिल से सीधे सम्बन्ध स्थापित कर सकता था, लेकिन आम तौर से यह स्वीकार किया गया था कि राष्ट्रीय आधार पर उनका संगठन अधिक उपयोगी होगा।

इण्टरनेशनल यद्यपि एक बड़े दिमाग की उपज नहीं थी, लेकिन उसके पीछे एक बड़ा दिमाग—मार्क्स का दिमाग—काम कर रहा था, इसमें सन्देह नहीं।

2. प्रथम कान्फरेंस लन्दन

यद्यपि मार्क्स इस समय बार-बार बीमारी का कष्ट भोग रहे थे और अपने वैज्ञानिक कार्य को पूरा करने के लिए भी वह अधीर थे, तथापि तब भी वह इण्टरनेशनल के लिए समय और शक्ति देने में कभी कमी नहीं करते थे। जल्दी ही यह सबको मालूम होने लगा कि इण्टरनेशनल के वास्तविक 'मुखिया' मार्क्स हैं। इसके लिए उन्हें अपने को आगे बढ़ाने की जरूरत नहीं थी। मार्क्स को सस्ती प्रसिद्धि के प्रति अपार घृणा थी। पर इस अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन को ठीक से संचालित करने के लिए आवश्यक सभी गुण असाधारण मात्रा में मार्क्स के ही पास मौजूद थे। ऐतिहासिक विकास के कानून को बड़ी गहराई तक और साफ-साफ देखने की क्षमता

उनमें थी, और वह पूरी शक्ति के साथ लक्ष्य की ओर बिना इधर-उधर भटके उस महान् संगठन को ले जा सकते थे। लेकिन साथ ही उनका रास्ता कंटकाकीर्ण था। मेम्बरों में वैयक्तिक झगड़े और वाद-विवाद उठ खड़े होते थे, विशेषकर इतालियन और फ्रेंच मेम्बरों में, जिनके दूर करने में मार्क्स को बड़ी परेशानी उठानी पड़ती थी। अंग्रेज मेम्बरों के साथ उन्हें कम कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उस वक्त के अंग्रेज कमकर काफी आगे बढ़े हुए थे। उन्होंने अमेरिकन गृह-युद्ध में दक्षिणी रियासतों का पक्ष लेने से अपनी सरकार को बाज रक्खा, और जब अब्राहम लिंकन दुबारा अमेरिका का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ, तो उसके पास उन्होंने अभिनन्दन भेजा। मार्क्स ने इस अभिनन्दन को तैयार किया, जिसमें नये प्रेसीडेण्ट लिंकन को 'मजूर वर्ग का (ऐसा) पुत्र' सम्बोधित किया गया था, जिसे एक दासतावद्ध जाति की मुक्ति के लिए भव्य संघर्ष करने का काम सौंपा गया था। लिंकन ने भी इस अभिनन्दन का ऐसी गर्मजोशी के साथ जवाब दिया, जिसे सुनने के लिए लन्दन के पूँजीवादी पत्र तैयार नहीं थे।

26 जून, 1865 को जनरल कौंसिल के सामने मार्क्स ने एक अभिभाषण 'मूल्य, दाम और लाभ' के नाम से पढ़ा, जिसका वैज्ञानिक मूल्य कहीं अधिक था। उसका उद्देश्य था कौंसिल के कितने ही मेम्बरों के इस विचार का खंडन करना कि मजूरी की आम वृद्धि मजूरों के लिए किसी वास्तविक काम की नहीं होगी, इसलिए मजूर-सभाएँ हानिकारक हैं। इस विचार का आधार यह गलत धारणा थी कि सौदे का मूल्य मजूरी के ऊपर निर्भर करता है, और यदि पूँजीपति आज चार की जगह पाँच शिलिंग मजूरी देगा, तो कल वह बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए माल को चार की जगह पाँच शिलिंग में बेचेगा। मार्क्स ने बतलाया कि यद्यपि वह बहुत ही उथले किस्म का तर्क है, और वह वस्तुओं के बिल्कुल अप्रधान रूप को लेता है, तथापि तब भी इसमें जो अर्थशास्त्रीय प्रश्न आते हैं, उनकी व्याख्या करना आसान नहीं है। लेकिन मार्क्स ने एक घंटे के भीतर इस गम्भीर प्रश्न की बड़ी सुन्दर व्याख्या कर दी।

इण्टरनेशनल की पहली सफलता दिखलाने का मौका मताधिकार के सुधार के लिए बढ़ते हुए आन्दोलन के सम्बन्ध में प्राप्त हुआ। 1 मई, 1865 को मार्क्स ने एंगेल्स को सूचित किया : "सुधार लीग हमारा काम है। बारह (छह मजूर-वर्ग और छह मध्य-वर्ग के प्रतिनिधियों) मेम्बरों में से सारे मजूर-वर्गीय प्रतिनिधि हमारी जनरल-कौंसिल के मेम्बर हैं, जिनमें इकेरियस भी है। हमने मजूरों की आँखों में धूल झोंकने के सारे प्रयत्न को निष्फल कर दिया। अगर इस प्रयत्न द्वारा इंग्लैंड में राजनीतिक मजूर-वर्गीय आन्दोलन के पुनर्जन्म में सफलता हुई, तो हमारे एसोसिएशन (इण्टरनेशनल) ने यूरोपियन मजूर-वर्ग के लिए उससे कहीं अधिक काम कर लिया, जो कि किसी दूसरे तरीके से सम्भव हो सकता था, और सो भी अपने बारे में हल्ला-गुल्ला किए बगैर। यहाँ इसमें सफलता की पूरी संभावना है।" 3 मई को एंगेल्स ने जवाब दिया : "बहुत थोड़े से समय में और बहुत थोड़ा प्रयत्न करके इण्टरनेशनल एसोसिएशन ने वस्तुतः एक जबर्दस्त स्थान अपने लिए बना लिया।"

1865 ई. में ब्रुशेल्स में इण्टरनेशनल की प्रथम कांग्रेस करने की बात सोची गई थी। फ्रांस के मेम्बर अपनी सारी शक्ति वैयक्तिक झगड़ों में लगा रहे थे। डर था कि ब्रुशेल्स की कांग्रेस में भी वही रागिनी न अलापी जाय। बड़ी मुश्किल से मार्क्स को इसमें सफलता प्राप्त हुई, कि ब्रुशेल्स में सार्वजनिक कांग्रेस करने की जगह लन्दन में एक आन्तरिक कान्फरेंस की जाय, जिसमें मुख्य-मुख्य कमेटियों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों और जिसका काम भावी कांग्रेस के लिए प्रारम्भिक विचार-विनिमय करना हो। कान्फरेंस 25-29 सितम्बर, 1865 को लन्दन में हुई। इसमें जनरल कौंसिल के प्रतिनिधि, उसके सभापति ओड्गेर[1], जनरल सेक्रेटरी क्रेमर[2] मार्क्स और इण्टरनेशनल के दो सहायक इकेरियस और युंग (लन्दन में रहनेवाला एक स्विस घड़ीसाज, जो कि अंग्रेजी, फ्रेंच, और जर्मन एकसमान बोल सकता था) शामिल हुए। फ्रांस के प्रतिनिधि तोलें, फ्रांबुर्ग और लिमूसिन थे, जो कि सभी आगे इण्टरनेशनल को छोड़ देनेवाले थे, लेकिन उनके साथ 1848 ई. का मार्क्स का पुराना मित्र शिली[3] और एक दूसरा फ्रेंच कमकर वर्लिन[4] भी थे—वर्लिन पीछे पेरिस-कमून के समय शहीद हुआ। इसी तरह

1. Odger, 2. Cremer, 3. Schily, 4. Varlin.

से स्वीटजरलैंड, बेल्जियम के भी प्रतिनिध आए। कान्फरेंस के सामने सबसे पहले खर्च चलाने के लिए पैसा का सवाल था। पता लगा, इण्टरनेशनल की प्रथम वर्ष की कुल आमदनी 33 पौंड थी। मेम्बरी चन्दे के बारे में कोई निश्चय नहीं हो सका, लेकिन यह स्वीकार किया गया कि प्रचार तथा दूसरे खर्चों के लिए एक सौ पचास पौंड फंड उगाहा जाय, जिससे अस्सी पौंड इंग्लैंड में, चालीस पौंड फ्रांस में और दस-दस पौंड बेल्जियम तथा स्वीट्जरलैंड में जमा किया जाय। इंग्लैंड की स्थिति पर जनरल सेक्रेटरी क्रेमर ने अपनी रिपोर्ट दी। फ्रांबुर्ग और तोलें ने बतलाया कि फ्रांस में इण्टरनेशनल का अच्छा स्वागत हो रहा है। बेकेर और दुपले ने स्वीट्जरलैंड के बारे में संतोषजनक रिपोर्ट दी। जनरल-कौंसिल की ओर से मार्क्स ने प्रस्ताव किया कि इण्टरनेशनल की पहली कांग्रेस 1866 के सितम्बर या अक्तूबर में जनेवा में की जाए। स्थान के बारे में सभी एकमत हुए, लेकिन समय के बारे में फ्रेंच प्रतिनिधियों के जोर देने पर उसे मई का अन्तिम सप्ताह रक्खा गया।

कान्फरेंस की निजी बैठकें पूर्वाह्न में युंग की अध्यक्षता में हुआ करतीं और अपराह्न में अड्गेर की अध्यक्षता में बहुत कुछ सार्वजनिक बैठकें होतीं। पूर्वाह्न में जिन प्रश्नों पर ऊहापोह करके कोई निर्णय किया जाता, उनके ऊपर शाम की सभाओं में बहस होती। इन सभाओं में मुख्यतः कमकर शामिल होते।

3. आस्ट्रिया-प्रशिया-युद्ध (1865 ई.)

आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों ही जर्मन (ड्वाश) जातियाँ हैं। जर्मनी अभी पूरी तौर से एक राष्ट्र नहीं बन पाया था और भिन्न-भिन्न राजवंशों के सुभीते के लिए वह अलग-अलग राज्यों में बँटा हुआ था। प्रशिया जर्मन-राज्यों में सबसे शक्तिशाली और बड़ा था। उसकी इच्छा रहती थी कि सारे जर्मनी को एक राज्य में बदल दिया जाय, लेकिन आस्ट्रिया का राजवंश हाब्सवर्ग अपने को पवित्र रोमन साम्राज्य का उत्तराधिकारी और सभी जर्मन जातियों का संरक्षक मानता था, इसलिए वह नहीं चाहता था कि प्रशिया का होहेनूज़ुलर्न जैसा हल्का राजवंश सभी जर्मनों का मुखिया बन जाए, इसलिए वह बराबर प्रशिया के मनोरथ को विफल करने का प्रयत्न किया करता था। ऐसी स्थिति में आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। इस संघर्ष के बारे में कहने से पहले मार्क्स की घरेलू कठिनाइयों के बारे में कुछ कहना जरूरी है।

(मार्क्स परिवार) 31 जुलाई (1865 ई.) को मार्क्स ने एंगेल्स को सूचित किया कि पिछले दो महीनों से हमारा परिवार बन्धक रहकर जी रहा है : "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इस चिट्ठी को लिखने की जगह मुझे अपनी अँगुली काट डालना अधिक अच्छा था। यह सचमुच ही असह्य है, कि आदमी अपने जीवन का आधा परवशता में बिताए। मेरे दिल को सिर्फ यही समझकर संतोष है कि तुम और मैं दोनों भागीदार हैं–मेरा काम है अपना समय सिद्धान्त तथा पार्टी-सम्बन्धी कामों के लिए देना। मुझे मालूम होता है कि इस घर में रहना हमारी औकात से बाहर है। इस साल और सालों की अपेक्षा हम कुछ अच्छी तरह रहे, लेकिन अपने बच्चों का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इसके सिवा अवसर देने का कोई ऐसा रास्ता नहीं था, जिसमें कि वह अपना भविष्य सुरक्षित कर सकें। यह कहने की आवश्यकता नहीं, उन्होंने जो कुछ अब तक भुगता है, उसको देखते इससे थोड़ा-सा संतोष हुआ। मैं समझता हूँ, तुम मेरी इस बात से सहमत होगे कि शुद्ध कारबार की दृष्टि से देखने पर भी पूरी तौर से सर्वहारा जैसा पारिवारिक जीवन उपयुक्त न होगा, यद्यपि जहाँ तक मेरी स्त्री और मेरा सम्बन्ध है, यह अच्छा होता, अथवा यदि लड़कियाँ नहीं, हमारे लड़के होते।" एंगेल्स ने तुरन्त अपने मित्र के पास सहायता भेजी। लेकिन कई वर्षों तक मार्क्स आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त नहीं हो सके।

उसी साल (1865 ई.) के 5 अक्तूबर को लादेर बुखेर[1] का एक पत्र मिला, जिसने मार्क्स की आर्थिक कठिनाई दूर करने के लिए एक नया रास्ता बतलाया। बुखेर पहले राजनीतिक निर्वासित था, जो पीछे जर्मनी लौटकर प्रशियन सरकार का नौकर हो गया। उसने प्रस्ताव किया कि 'स्टाटसान्जाइगेर'[2] नामक मासिक पत्र में मार्क्स लेख लिखें, खास तौर से मालबाजार की गतिविधि के सम्बन्ध में मासिक रिपोर्ट दिया करें, जिसके

1. Lother Bucher. 2. Staatsanzeiger.

लिए काफी पारिश्रमिक दिया जायगा। बुखेर ने फ्राउ मार्क्स और तरुण महिलाओं, विशेषकर सबसे नन्ही का अभिनन्दन करते पत्र को समाप्त करते हुए लिखा था : "तुम्हारा आज्ञाकारी और सम्मानपूर्ण सेवक।" मार्क्स ने अपना सारा क्रांतिकारी जीवन प्रशियन सरकार से भिक्षा माँगने के लिए नहीं बिताया था। उन्होंने बुखेर के प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। कहा जाता है, बुखेर ने यह प्रस्ताव महामंत्री बिस्मार्क की राय से किया था। यह मालूम ही है कि प्रशिया के नेतृत्व को आगे बढ़ाते हुए सारी जर्मनी को एक राज्य में परिणत करने का काम बिस्मार्क ने किया था। बुखेर मार्क्स को इस प्रलोभन द्वारा खरीदना चाहता था। मार्क्स से निराश हो बुखेर ने डॉ. डूरिंग के सामने वही प्रस्ताव रक्खा, जिसने उसे मंजूर किया।

आर्थिक कठिनाइयों से भी ज्यादा परेशानी की बात यह थी कि इण्टरनेशनल के कामों में फँसे रहने के कारण मार्क्स का कार्य रुक गया था, साथ ही स्वास्थ्य अधिक और अधिक खराब होता जा रहा था। 10 फरवरी, 1866 को एंगेल्स ने उन्हें लिखा था : "तुम्हें सचमुच कुछ ऐसा करना चाहिए, जिसमें इस कारबंकल (जहरबाद) से छुट्टी मिले।··· कुछ समय के लिए अपने रात के काम को बन्द कर दो और अधिक नियमित जीवन बिताओ।" 13 फरवरी को मार्क्स ने अपने मित्र को जवाब देते हुए लिखा : "कल मैं फिर एक बुरे फोड़े के मारे पीठ के बल पड़ गया, जो कि उरुसंधि में निकला है। अगर मेरे पास अपने परिवार के लिए पर्याप्त पैसा होता और मेरी पुस्तक खतम हो गई होती, तो मैं इसकी बिल्कुल पर्वाह नहीं करता, कि मैं आज कब्रिस्तान में पहुँचूँ या कल।" एक सप्ताह बाद दूसरी भयंकर सूचना मिली, जिसे सुनकर एंगेल्स ने अपने मित्र को जोर देकर कहा कि कुछ सप्ताह काम से विश्राम लेकर मारगेट चले जाओ। मारगेट में पहुँचकर मार्क्स बहुत जल्दी प्रकृतिस्थ हो गए। उन्होंने अपनी लड़की लोरा को लिखा था : "मैं वस्तुतः इस बात से बहुत खुश हूँ, जो कि होटल में न जा मैं एक निजी घर में ठहरा हूँ। होटल में रहने पर मुझे स्थानीय राजनीति, घरेलू दुराचार-कथाओं और पड़ोसियों को ऊटपटाँग बातों से परेशान होना पड़ता। फिर भी मैं नहीं कह सकता हूँ कि मैं किसी की परवाह नहीं करता और कोई मेरी परवाह नहीं करता, क्योंकि आखिर यहाँ मेरी घर-मालकिन है, जो कि खम्भे की तरह बहरी है, और उसकी लड़की की आवाज सदा फटी-फटी-सी रहती है। जो भी हो, ये अच्छे लोग हैं, मेरा ध्यान रखते हैं और बीच में दखल नहीं देते। मैंने चहलकदमी करने की आदत डाल ली है। दिन का अधिक भाग मैं खुली हवा में घूमता रहता हूँ, और 10 बजे सो जाता हूँ। मैं कुछ नहीं पढ़ता, लिखता भी कम, धीरे-धीरे मैं निर्वाण की स्थिति में पहुँचने की कोशिश कर रहा हूँ, जिसे कि बौद्ध धर्म मानव-आनन्द की पराकाष्ठा मानता है।" इस पत्र के नीचे एक छोटा-सा चुटकी लेने का वाक्य लिखा हुआ था, जिससे आनेवाली घटना की पूर्वसूचना मिलती है : "यह छोटा शैतान लाफार्ग अब भी मुझे अपने प्रूधोंवाद से परेशान कर रहा है। मैं समझता हूँ, वह तब तक संतुष्ट नहीं होगा, जब तक कि मैं उसकी खोपड़ी में कुछ समझ की बात नहीं डाल देता।" मार्क्स अभी मारगेट ही में थे, इसी समय जर्मनी के ऊपर मँडराते युद्ध-बादलों में पहली बिजली चमकती दिखाई पड़ी। 8 अप्रैल को बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध इताली के साथ आक्रमणात्मक मित्रता की संधि की; और दूसरे दिन उसने **गेरमानिक-डीट** (जर्मन जातियों की पार्लियामेण्ट) से कहा कि आम मताधिकार के आधार पर निर्वाचित एक जर्मन पार्लियामेण्ट बुलाई जाय, जो कि जर्मन सरकारों के पास रखने के लिए लीग के एक सुधार पर विचार करे। मार्क्स ने इसके बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था : "मालूम होता है जर्मन बूर्ज्वाजी थोड़ा-सा विरोध करने के बाद विस्मार्क के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी, क्योंकि आखिर बूर्ज्वाजी का वास्तविक धर्म तो बोनापार्टवाद है।"

इसी समय अपने नये मित्र हनोवरवासी डॉ. कुगेल्मान को लिखे पत्र में भी उन्होंने इन्हीं विचारों को प्रकट किया। बहुत तरुणाई से ही कुगेलमान मार्क्स और एंगेल्स का समर्थक था। उसने बड़े प्रयत्न से उनकी सारी कृतियों का संग्रह किया था, लेकिन उसका मार्क्स के साथ साक्षाद् परिचय 1862 ई. में ही हो पाया, जिसमें फ्राइलीग्रथ का हाथ भी था। कुगेल्मान जल्दी ही मार्क्स का विश्वासपात्र हो गया। उसके नाम मार्क्स ने बहुत-से ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक महत्त्व के पत्र लिखे।

किसी भी वास्तविक परिस्थिति को अच्छी तरह देखे विना किसी भी निर्णय का प्रकट करना बहुत मुश्किल

है। मार्क्स और एंगेल्स का संबंध इस समय जर्मनी से टूट चुका था और वर्षों से वहाँ की घटनाओं का पूरा पता नहीं था। इसी लिए एंगेल्स प्रशिया की सैनिक योग्यता का ठीक से मूल्यांकन नहीं कर पाए। जब प्रशिया की विजय की खबर उन्हें मिली, तो उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध वास्तविकता को स्वीकार करना पड़ा। 25 जुलाई को एंगेल्स ने इसी बात को स्वीकार करते हुए लिखा था : "जर्मनी की स्थिति इस समय मुझे बिल्कुल सीधी-सी मालूम होती है। जब से बिस्मार्क ने प्रशियन सेना के साथ अपनी योजना को पूरा किया, और इतनी जबर्दस्त सफलता प्राप्त की, तब से जर्मन में 'घटनाओं का विकास' इतने निर्णायक रूप से हुआ कि दूसरों की तरह हम भी चाहे पसन्द करें या न करें, इन तथ्यों को पक्के होने को स्वीकार करना होगा।··· कम से कम इसकी एक अच्छी पहल भी है, वह यही कि स्थिति को आसान बना देती है, और छोटी-छोटी बकवासों को हटाकर क्रांति को अपना काम करने के लिए आसानी पैदा कर देती है। जो भी हो, जर्मन पार्लियामेण्ट, प्रशियन चेम्बर (भवन) से बिल्कुल अलग चीज है। अब सभी छोटे-छोटे राज्यों की विशेषताएँ आन्दोलन में घिसट आएँगी, निकृष्टतम स्थानीयता को मजबूत करनेवाले प्रभाव नष्ट कर दिए जाएँगे, और पार्टियाँ केवल स्थानीय होने की जगह वस्तुतः राष्ट्रीय बन जाएँगी।"

कोयनिग्ग्रात्ज[1] युद्ध ने आस्ट्रिया के खिलाफ अपना फैसला दे दिया, जर्मनी अब एक शक्तिशाली बूर्ज्वा-सामन्तशाही राज्य था।

4. जेनेवा-कांग्रेस (1866 ई.)

मई में इण्टरनेशनल की प्रथम कांग्रेस के लिए किए जाने का निश्चय किया गया था, लेकिन उस समय जर्मनी और आस्ट्रिया के युद्ध के कारण उसे सितम्बर तक के लिए स्थगित करना पड़ा। अपने अस्तित्व के दूसरे वर्ष में इण्टरनेशनल ने और तेजी से प्रगति की। जेनेवा उस समय यूरोप के आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। स्वीट्जरलैंड के जर्मन-भाषाभाषी तथा फ्रेंच-इतालियन भाषाभाषी दोनों भागों के कमकरों ने अपने पार्टी-संगठन कायम किए थे। जर्मन-स्विस 'डेर वोरबोटे' नामक एक मासिक प्रकाशित होता था, जिसका सम्पादक तपा हुआ क्रांतिकारी बेकर था। इस पत्र में प्रथम इण्टरनेशनल के बारे में जानने की बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री मौजूद है। पत्र जनवरी, 1866 में निकलना शुरू हुआ। बेल्जियम से 'ला ट्रिब्यून दु पिल्प' नामक एक दूसरा पत्र निकाला जाता था, जिसे मार्क्स जेनेवा के दोनों पत्र की तरह ही इण्टरनेशनल का अपना पत्र मानते थे। फ्रांस में भी इण्टरनेशनल ने काफी प्रगति की थी। मार्क्स और एंगेल्स रूसी जारशाही को प्रति-क्रांति का जबर्दस्त और शक्तिशाली गढ़ मानते थे, इसलिए वह रूस के प्रभाव का विरोध करते थे। फ्रेंच प्रतिनिधि इससे सहमत नहीं थे। फरवरी, 1866 में इण्टरनेशनल के फ्रेंच भाग ने जनरल-कौंसिल के पोलिश प्रश्न को कांग्रेस के कार्यक्रम में रखने का जबर्दस्त विरोध किया। वह कहते थे : कैसे पोल एकता को पुनः स्थापित करने के द्वारा कोई रूसी प्रभाव के विरोध करने की बात सोच सकता है, जब कि एक ओर रूस अपने यहाँ किसान अर्ध-दासों को मुक्त कर रहा है, जब कि पोल में अभिजात्य-वर्ग और पादरी वैसा करने से इन्कार करते हैं ? आस्ट्रिया-प्रशिया की लड़ाई में भी इण्टरनेशनल के फ्रेंच मेम्बरों ने जनरल-कौंसिल में बड़ी कठिनाइयाँ पैदा कीं। इसी सिलसिले में उन्होंने मार्क्स 'बड़े अच्छे मित्रों' लाफार्ग और लांगों[2] के ऊपर भी व्यंग्य किया था। ये दोनों पीछे मार्क्स के दामाद बने, यद्यपि उस समय वह 'प्रूधों के धर्मदूत' बने हुए थे।

लेकिन इण्टरनेशनल की शक्ति का सबसे बड़ा आधार फ्रांस नहीं, बल्कि अंग्रेज मजूर-संघ थे। मार्क्स को अंग्रेज मजदूरों की उस विशाल सभा से बड़ी प्रसन्नता हुई, जो कि सेण्ट मार्टिन हॉल की बैठक से कुछ सप्ताह पहले इण्टरनेशनल के नेतृत्व में मतदान के सुधार के पक्ष में हुई। मार्च, 1866 में ह्विग (उदार) ग्लेड्सटन के उदार मंत्रिमंडल ने सम्पत्ति-दान के सुधार के सम्बन्ध में एक बिल (विधेयक) उपस्थित किया, लेकिन वह सुधार ग्लेड्सटन के अपने दल के कुछ आदमियों को बहुत उग्र मालूम हुआ और वह टोरियों की ओर चले गए जिसके

1. Koniggratz. 2. Longuet.

कारण उदार सरकार टूट गई और उसके स्थान पर डिजराइली का टोरी मंत्रिमंडल कायम हुआ। डिजराइली ने उक्त सुधारों के सवाल को अनिश्चित काल के लिए स्थगित रखना चाहा, जिसपर जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हो गया। 7 जुलाई को मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा था : "लन्दन में मजदूरों के प्रदर्शन बड़े अद्‌भुत हैं। हमने 1849 ई. के बाद अब तक इंग्लैंड में जो देखा, उनसे तुलना करने पर यह केवल इण्टरनेशनल का काम है। उदाहरणार्थ, ट्रेफलगार स्क्वायर के प्रदर्शन का नेता लुकरेफ्ट हमारी कौंसिल का मेम्बर है। 'ट्रेफलगार स्क्वायर' में बीस हजार आदमियों की सभा में लुरेफ्ट[1] ने ह्वाइटहाल गार्डेन्स में एक प्रदर्शन करने का प्रस्ताव किया, "जहाँ हमने एक बार राजा के सिर को काट फेंका था।" थोड़े ही समय बाद साठ हजार आदमियों का एक बड़ा प्रदर्शन हाइड पार्क में हुआ, जिसने कि करीब-करीब विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

इंग्लैंड की मजदूर सभाओं ने अपने आन्दोलन को आगे बढ़ने में इण्टरनेशनल की सेवाओं को स्वीकार किया, वह दिल खोलकर इण्टरनेशनल की आर्थिक सहायता भी करती थीं। पाँच हजार मेम्बरोंवाली चमारों की सभा पाँच पौंड वार्षिक चन्दा देती थी, नौ हजार मेम्बरोंवाली बढ़इयों की सभा दो पौंड और तीन से चार हजार मेम्बरवाले ईंट जोड़नेवाले एक पौंड वार्षिक देते थे।

लेकिन, इंग्लैंड में सुधार-आन्दोलन ने मजदूरों की लड़ाकू प्रवृत्ति का दम घोंट दिया। 'दि वर्कमेन्स एडवोकेट' (कमकरों का वकील) साप्ताहिक 1865 ई. में इण्टरनेशनल का पत्र माना गया था, लेकिन अब फरवरी में उसने अपना नाम The Commonwealth (दि कामनवेल्थ) ही नहीं बदल दिया, बल्कि बूर्ज्वा मतदान सुधारों की सहायता प्राप्त करने के लिए उसने इण्टरनेशनल को भी भुला दिया।

मार्क्स जेनेवा-कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि उस वक्त वह अपने शोधकार्य में बहुत व्यस्त थे। उन्होंने लन्दन से जानेवाले प्रतिनिधियों के लिए एक वक्तव्य तैयार किया, जिसमें कमकरों के बीच में तुरन्त के सहयोग एवं वर्ग के तौर पर मजदूरों के संगठन की तुरन्त की आवश्यकताओं के लिए काम करने पर जोर दिया। इस वक्तव्य (मेमोरेंडम) का महत्त्व प्रोफेसर बीसली के 'उद्‌घाटन अभिभाषण' के बारे में कहे गए शब्दों में था : इसमें थोड़े-से पत्रों में पहले से भी अधिक अच्छे ढंग और पूरी तौर से अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा की तुरन्त की माँगों को संक्षेप में कहा गया है। जनरल-कौंसिल के अध्यक्ष ओड्गेर, उसके जनरल-सेक्रेटरी क्रेमर तथा एकेरियस और युंग कौंसिल के प्रतिनिधियों के तौर पर जेनेवा-कांग्रेस में सम्मिलित हुए।

कांग्रेस 3-8 सितम्बर को हुई। उसमें साठ प्रतिनिधि आये थे। मार्क्स ने इस कांग्रेस के काम को आशा से अधिक बेहतर कहा था, यद्यपि 'पेरिस के भद्रपुरुषों' के बारे में उनकी भारी शिकायत थी : "उनके दिमाग खोखले प्रूधोंनी वाक्यों से भरे हुए हैं। वह माइन्स की बातें बघाड़ते बिल्कुल ही अज्ञ हैं। वह सभी क्रांतिकारी कार्रवाइयों अर्थात् वर्ग-संघर्ष में उत्पन्न होनेवाले एकताबद्ध सामाजिक आन्दोलनों—जो राजनीतिक साधनों (उदाहरणार्थ काम के दिन की कानूनी सीमा) द्वारा किए जा सकते हैं—को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। स्वतन्त्रता और सरकार-विरोध अर्थात् अधिकारीय व्यक्तिवाद के विरोध के बहाने ये भद्रपुरुष—जिन्होंने कि घोर अन्धाधुन्धी स्वेच्छाचार को सोलह वर्षों तक सिर झुकाकर सहन किया और अब भी सहन कर रहे हैं, एवं वस्तुतः एक भद्दे बूर्ज्वा आर्थिक-व्यवस्था प्रूधोंवाद का उपदेश करते हैं।"

प्रतिनिधियों में इन फ्रेंचों की संख्या एक-तिहाई होने से काफी मजबूत थी। यद्यपि अन्त में उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ, लेकिन बात बघाड़ने में वह पीछे नहीं रहे। उन्होंने प्रस्ताव रक्खा कि केवल शारीरिक काम करनेवाले कमकर ही इण्टरनेशनल के मेम्बर स्वीकार किए जाएँ, और दूसरे हटा दिए जाएँ, किन्तु वह स्वीकृत नहीं हुआ। उनके धार्मिक प्रश्नों-सम्बन्धी प्रस्ताव को भी नहीं स्वीकार किया गया। सबसे ज्यादा खराब तथा तोलें और फ्रांबुर्ग द्वारा उपस्थिति जो प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था, उसमें 'भ्रष्टता का सिद्धान्त' घोषित करते हुए स्त्रियों का स्थान घर के भीतर बतलाया गया था। उसका विरोध बर्लिन तथा दूसरे फ्रेंच प्रतिनिधियों ने स्वयं किया। लेकिन उनके साथ जनरल कौंसिल का भी एक प्रस्ताव स्वीकार करके उसके विषदंत तोड़ दिए

1. Luerft.

गए। इसमें शक नहीं कि फ्रेंच प्रतिनिधियों ने प्रूधोंवाद की कुछ बातें घुसाने में सफलता पाई। जनरल-कौंसिल पर नया चुनाव हुआ। उसका हेडक्वार्टर लन्दन में रक्खा गया। कांग्रेस ने कौंसिल पर सारी दुनिया के मजूर-वर्ग की स्थिति के विवरण-सहित आँकड़े तथा इण्टरनेशनल की दिलचस्पी की सभी बातों पर क्षमतानुसार रिपोर्ट निकालने का काम सौंपा था। खर्च के लिए निश्चय किया गया था कि इण्टरनेशनल का प्रत्येक मेम्बर 30 सॉंतीम (3 फ्रांक) वार्षिक चन्दा दे, एक अथवा डेढ़ पेंस सभी मेम्बरों को अपनी सदस्यता-कार्ड के शुल्क के अतिरिक्त देना चाहिए। प्रोग्राम-सम्बन्धी उसके निर्णय महत्त्वपूर्ण थे, जिनमें मजूरों की रक्षा और मजूर-सभाओं के बारे में निर्णय किया गया था। वयस्क स्त्री-पुरुष (18 वर्ष से ऊपर के) कमकरों के लिए अधिक से अधिक प्रतिदिन आठ घंटा काम होना चाहिए। रात के काम का विरोध किया गया। स्त्रियों को सिर्फ रात के ही काम से नहीं, बल्कि उनके स्वास्थ्य और सदाचार के लिए हानिकारक सभी कामों से अलग रहने की माँग की गई। मजूर-सभाओं के बारे में कहा गया कि उनका काम केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक है। मजदूर-सभाएँ (ट्रेड यूनियन) सर्वहारा की एकमात्र शक्ति, अर्थात् पूँजीवाद की केन्द्रीकृत सामाजिक शक्ति के विरुद्ध इस्तेमाल करने की एकमात्र साधन है, और जब तक कि उत्पादन का पूँजीवादी ढंग मौजूद है, तब तक मजदूर सभाओं के बिना कोई काम करना सम्भव नहीं। यही नहीं, बल्कि मजदूर-सभाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को स्थापित करके अपनी कार्रवाइयों को समष्टित कर सकती हैं।

सब मिलाकर जेनेवा-कांग्रेस के निर्णयों से मार्क्स को बहुत आशा बँधी। 13 अक्तूबर, 1866 को कुगेल्मान को उन्होंने लिखा था : "लन्दन मजूर-परिषद[1] (जिसका मन्त्री हमारा प्रेसीडेंट ओड्गर है) इस समय एक सुझाव पर विचार कर रही है, कि वह अपने को इण्टरनेशनल का अंग घोषित करे। यदि इस प्रस्ताव को उसने स्वीकार कर लिया, तो एक वर्ष में यहाँ का मजदूर-वर्ग हमारे नियंत्रण में आ जाएगा, और हम आन्दोलन को और ज्यादा अच्छी तरह से आगे ले चल सकेंगे।" लेकिन कौंसिल ने इस प्रस्ताव को ठुकरा इण्टरनेशनल के साथ बहुत मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम करने को स्वीकार किया।

अपने जन्म के प्रथम वर्ष में भी इण्टरनेशनल के नेता आगे के लिए बड़ी सफलता की आशा रख सकते थे, लेकिन साथ ही वह यह भी समझ सकते थे कि ये सफलताएँ कुछ निश्चित सीमाओं के भीतर ही हो सकती हैं। मार्क्स को तब भी एक व्यवहारवादी आदर्शवादी के तौर पर कांग्रेस के कामों से संतोष हुआ। जेनेवा-कांग्रेस के समय ही बालटिमोर में अमेरिकन मजदूरों की कांग्रेस हुई, जिसने आठ घंटे काम के दिन की माँग घोषित करते हुए कहा : पूँजीवाद की बेड़ी से पूर्ण तौर से मजदूरों को मुक्त करने के लिए इस माँग का पूरा होना सबसे जरूरी और पहला काम है।

15
कपिटाल (1866-78 ई.)

1. प्रसव-वेदना

मार्क्स वर्षों से अपने अमर ग्रंथ 'डास कपिटाल' (पूँजी) के लिखने में लगे हुए थे। इसके लिए उन्हें वर्षों तक करीब-करीब रोज दस-दस घंटे ब्रिटिश म्युजियम में संगृहीत ग्रंथों, विवरणों और आँकड़ों में डूबा रहना पड़ता था। अब वह समय नजदीक आ गया था, जब कि इस दीर्घकाल-व्यापी श्रम के प्रथम फल को प्रकट किया जाय। इसी व्यस्तता के कारण वह जेनेवा-कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि वह कमकरों के हित के लिए

1. Trade council.

कांग्रेस से भी अधिक इस ग्रंथ के महत्त्व को समझते थे। इस समय वह 'कपिटाल' के प्रथम जिल्द की प्रेस-कापी अन्तिम तौर से तैयार कर रहे थे। इसकी सामग्री यद्यपि वर्षों से जमा की जा रही थी, लेकिन लिखना 1 जनवरी, 1866 से शुरू हुआ। इतनी अधिक 'प्रसव-वेदना' के कारण लिखने का काम बड़ी तेजी से हुआ। यह प्रसव-वेदना साधारण मनुष्य की गर्भावस्था के महीनों से दूने वर्षों तक चलती रही और कैसी-कैसी आर्थिक तथा दूसरी कठिनाइयों के बीच मार्क्स ने इस काम को जारी रक्खा, यह हम बतला चुके हैं। कई बार मार्क्स ने ग्रंथ-समाप्ति का काल निश्चित किया, लेकिन हर समय अवधि बढ़ती गई। 1851 ई. में 'पाँच सप्ताह' में समाप्त होने की बात कही, लेकिन 1859 ई. में अभी भी 'छह सप्ताह' की देरी थी। मार्क्स अपनी कृति के स्वयं जबर्दस्त आलोचक थे, इसलिए उसमें जान-बूझकर कोई त्रुटि नहीं रहने देना चाहते थे। एंगेल्स जल्दी समाप्त करने के लिए कितना ही जोर देते, लेकिन उसका कोई फल न होता। 1865 ई. के अन्त में काम यद्यपि खतम हो गया, तथापि जो हस्तलेख अभी तैयार हुआ था, उसे केवल मार्क्स ही प्रेस में देने लायक बना सकते थे, यह काम एंगेल्स के मन का भी नहीं था। जनवरी, 1866 से मार्च, 1867 तक लगकर मार्क्स ने 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द को प्रेस के लिए सुन्दर ढंग से उसी रूप में तैयार किया, जिस रूप में वह आज हमारे सामने है। करीब दो दशाब्दियों के परिश्रम-स्वरूप जो प्रचुर सामग्री जमा हुई थी, उसका प्रथम भाग इस जिल्द के रूप में सर्वतोभद्र-रूपेण मार्क्स ने तैयार किया। सवा वर्ष में लगकर पालिश करने का काम जिस वक्त पूरा कर रहे थे, उसी समय मार्क्स का स्वास्थ्य ही नहीं खराब था, बल्कि (फरवरी, 1866 ई.) वह भयंकर बीमारी में भी पड़ गए थे। कर्जे के बोझ के कारण चिन्ताएँ अलग बहुत बढ़ी हुई थीं और इसी बीच में उन्हें इण्टरनेशनल की जेनेवा-कांग्रेस के लिए भी कठोर परिश्रम करना पड़ा।

नवम्बर, 1866 में हस्तलेख का पहला बंडल हाम्बुर्ग में प्रकाशक ओटो माइज्नेर के पास भेजा गया, जिसने इससे पहले प्रशियन सैनिक अवस्था के ऊपर एंगेल्स की एक छोटी-सी पुस्तक को प्रकाशित किया था। अप्रैल, 1867 में पुस्तक के बाकी हस्तलेख को मार्क्स अपने साथ हाम्बुर्ग ले गए। मार्क्स को माइज्नेर 'भला आदमी' मालूम हुआ। थोड़ी-सी बातचीत के बाद सब शर्तें निश्चित हो गईं। मार्क्स तब तक जर्मनी में रहने के लिए उत्सुक थे, जब तक कि लइापजिग (जहाँ पुस्तक छप रही थी) से प्रथम प्रूफ आ जाएँ। इसी बीच में वह अपने मित्र कुगेल्मान से मिलने हनोवर गए, जहाँ उनका बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। कुगेल्मान-परिवार में उन्होंने कुछ सप्ताह बड़े आनन्द के साथ बिताए, जिसके बारे में उन्होंने लिखा था : "जीवन के रेगिस्तान में एक अत्यन्त आनन्दमय और अनुकूल हरियावल।"

हनोवर के शिक्षित लोगों ने मार्क्स के साथ जिस तरह का सम्मान और सहानुभूति दिखलाई, वैसी अभी तक उन्हें नहीं मिली थी, इसलिए 49 वर्ष की अवस्था में मार्क्स को उससे बहुत प्रसन्नता होनी ही चाहिए थी। 24 अप्रैल के पत्र में उन्होंने एंगेल्स को लिखा था, "तुम जानते हो, शिक्षित बूर्ज्वाजी के बीच हम दोनों की प्रसिद्धि उससे कहीं अधिक है, जितना कि हम सोचते हैं।" 27 अप्रैल के पत्र में एंगेल्स ने जवाब देते मार्क्स की अमर कृति का जिक्र करते हुए लिखा था : "मैं हमेशा अनुभव करता था कि यह सारी किताब, जिसपर कि तुम इतने लम्बे अर्से से काम कर रहे थे, तुम्हारे सभी दुर्भाग्यों का कारण है कि उन दुर्भाग्यों पर काबू पाने में तुम तब तक समर्थ नहीं होगे, जब तक कि तुमने इस भार को हटा नहीं दिया। इसके न पूर्ण करने से शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक तौर से तुम्हें बहुत नीचे की ओर घसीटा। मैं अच्छी तरह से समझता हूँ, कि अब जब कि अन्त में उससे मुक्ति ले ली, तो तुम अपने को एक दूसरा ही आदमी समझो। विशेषकर अब जब तुम दुनिया में फिर लौटोगे, तो देखोगे, कि यह उस तरह की अवसाद करनेवाली चीज नहीं है, जैसा कि पहले थी।" इसी पत्र में एंगेल्स ने अपने बारे में लिखा कि मैं जल्दी 'सारे व्यवसाय' से अपने को मुक्त करने में सफल हूँगा, क्योंकि अब फर्म में पार्टनर होने के बाद जिम्मेवारियाँ बहुत बढ़ जाने से मेरी हालत मुश्किल हो गई है।

7 मई की चिट्ठी में मार्क्स ने लिखा था : "मुझे पक्की आशा और विश्वास है, कि इस वर्ष के अन्त तक मैं आदमी बन जाऊँगा, कम से कम इस अर्थ में, कि अपनी आर्थिक स्थिति को पूरी तौर से सुधार करने

में समर्थ हो, मैं अन्त में अपने पैरों पर खड़ा हो सकूँगा। तुम्हारे बिना मैं कभी अपनी कृति को पूरा नहीं कर सकता था। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी आत्मा पर सदा यह ख्याल एक बड़े बोझ की तरह रहता है कि तुम अपनी अद्भुत योग्यता को बनियापन में बरबाद कर रहे हो, उसे मेरे लिए बेकार रख रहे हो और इस सबके ऊपर मेरी सारी दुखदायक परेशानियों के लिए कष्ट उठा रहे हो।" लेकिन मार्क्स अपने पत्र के अनुसार वर्ष के अन्त में क्या अपने जीवन-भर अपने को आर्थिक तौर से निश्चिन्त नहीं बना सके। हाँ, अब विपदाओं ने जैसे कठोर रूप में उनका पीछा करना छोड़ दिया।

मार्क्स को उनका पिता 'हृदयहीन' कहता था, दूसरे कितने ही मिलनेवाले भी उन्हें रूखे स्वभाव का समझते थे। लेकिन, इस हृदयहीन पुरुष के पास कितना महान् हृदय था, यह अपने एक समर्थक खान-इंजीनियर सिगफ्रीड मेयर–जो कि किसी समय अमेरिका चला जानेवाला था–के नाम लिखे उनके एक पत्र से मालूम होगा : "तुम मेरे बारे में बहुत बुरे तौर से सोच रहे होगे, और खास करके इसलिए जब मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम्हारे पत्र मेरे लिए बड़े आनन्द की चीज ही नहीं थे, बल्कि जिन कठिनाइयों से भरे समय में वह मिले थे, उन्होंने मुझे वास्तविक सान्त्वना दी। यह ज्ञान मेरी बड़ी क्षतिपूर्ति करनेवाला था कि हमारी पार्टी के लिए एक योग्य तथा उच्च सिद्धान्तोंवाला आदमी प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पत्र मेरे लिए वैयक्तिक तौर से मित्रता के ऐसे गर्मागरम शब्दों में सदा लिखे होते थे। ऐसे आदमी के लिए, जो कि सरकारी दुनिया के कठोर संघर्ष में लगातार लगा हुआ हो। अच्छा तो, तुम पूछोगे कि तब मैंने क्यों नहीं तुम्हें जवाब दिया ? इसी लिए कि मैं लगातार कब्र के किनारे मँडरा रहा था जब कि अपने में काम करने की क्षमतावाले समय के एक-एक मिनट को मैं अपनी उस पुस्तक को समाप्त करने में लगाने के लिए मजबूर था, जिसके लिए मैंने अपने स्वास्थ्य, अपने आनंद और अपने परिवार को बलिदान कर दिया। मैं आशा करता हूँ, कि इस व्याख्या को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। तथाकथित 'व्यावहारिक' पुरुषों और उनकी बुद्धि पर मैं हँसता था। अगर मेरा चमड़ा बैल के जैसे (मोटा) होता, तो भी यह स्वाभाविक था, कि मैं मानवता के दुःखों की तरफ से पीठ फेरकर केवल अपने चमड़े का ख्याल न करता। लेकिन, मेरी वह अवस्था नहीं है, इसलिए अगर अपनी पुस्तक को कम से कम हस्तलेख के रूप में बिना पूरा किए मैं मर जाता, तो मैं अपने को अत्यन्त अव्यावहारिक समझता।" मार्क्स को किन भावनाओं ने, 'कपिटाल' (पूँजी) को पूरा करने के लिए अठारह वर्षों तक घोर तपस्या का जीवन बिताने के लिए मजबूर किया, यह उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है।

हनोवर में रहने के समय वहाँ के एक एडवोकेट वार्नेबोल्ड[1] ने यह सूचना उनके पास पहुँचाते बतलाया, कि बिस्मार्क आपकी महान् प्रतिभा को जर्मन जनता के उपयोग के लिए इस्तेमाल करना चाहता है। मार्क्स का ख्याल था : "इस पट्ठे के बौद्धिक क्षितिज में अपने सोचने के तरीके की यह विशेषता है, जो कि हर एक आदमी को अपने जैसा समझता है।"

विस्मार्क से तो कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका, लेकिन जब मार्क्स जर्मनी से लन्दन लौट रहे थे, तो स्टीमर में उन्हें एक जर्मन-तरुणी मिली, जो विस्मार्क की सम्बन्धी थी। लड़की मरदाना, करीब-करीब सैनिक रोब-दाब की थी। जब उसे मालूम हुआ कि उसका सहयात्री भी लन्दन जा रहा है, तो उसने उनसे रेलवे-ट्रेन के बारे में जानकारी हासिल करनी चाही। मालूम हुआ, उसे अपनी ट्रेन पाने के लिए कुछ घंटों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मार्क्स ने उसका दिल बहलाने के लिए इन घंटों को साथ में हाइड-पार्क में टहलते बिताने की इच्छा प्रकट की। कुगेल्मान को उन्होंने इसके बारे में लिखा था : "मालूम हुआ कि उसका नाम एलिजाबेथ फान पुटकामर[2] था, और वह विस्मार्क की भांजी थी, जिसके साथ अभी बर्लिन में वह कुछ सप्ताह रही थी। उसे सारी सेना-सूची कंठाग्र थी, क्योंकि उसका परिवार हमारी सेना को सम्मानित भद्र-पुरुषों को प्रदान करता है।...वह बहुत बड़ी आनन्दी और सुशिक्षिता लड़की थी, लेकिन अन्तस्तल तक आभिजात्यवर्गीय थी। उसे यह जानकर कम आश्चर्य नहीं हुआ कि वह लाल हाथों में पड़ गई है।" लेकिन तरुणी को जान पड़ता है, इस

---

1. Warnebold. 2. Puttkamer.

जानकारी से कोई खेद नहीं हुआ। उसने मार्क्स की इस कृपा के लिए उन्हें अपने पत्र में दिल से धन्यवाद दिया। यही नहीं, उसके माता-पिता ने भी अपनी लड़की के प्रति इस 'हृदयहीन' की विशाल-हृदयता की बात सुनकर उन्हें बहुत धन्यवाद भेजा।

लन्दन पहुँचकर मार्क्स अपनी पुस्तक के प्रूफ शोध कर भेजते रहे, लेकिन मुद्रक की सुस्ती से उनको कई मर्तबे झुँझलाना पड़ता था। 16 अगस्त, 1867 के भिनसार के दो बजे एंगेल्स को मार्क्स ने अभी-अभी अन्तिम प्रूफ देखकर समाप्त करने की सूचना देते हुए लिखा था : "सां यह जिल्द अब समाप्त हो गया। यह सम्भव हो सका, इसके लिए मैं केवल तुम्हें धन्यवाद दूँगा। तुम्हारे बलिदानों के बिना तीनों जिल्दों के लिए विशाल मात्रा में जो कार्य करना पड़ा, उसे मैं शायद कभी नहीं कर सकता था। मैं हृदय से धन्यवाद देते हुए तुम्हारा आलिंगन करता हूँ। अभिननद, प्रेमपूर्वक प्रिय मित्र !"

2. प्रथम जिल्द

'कपिटाल' मार्क्स की अमर और वैज्ञानिकतापूर्ण कृति है, जिसे पढ़ने का धैर्य बहुत कम लोगों को होता है। उसके प्रथम भाग को संक्षेप में यहाँ देना भी वांछनीय नहीं है, लेकिन कुछ शब्द उसके बारे के यहाँ लिखने जरूरी हैं। 1859 ई. में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' मार्क्स ने लिखी थी, जिसमें मालों (पण्यों) और पैसे के स्वभाव के बारे में लिखा गया था। 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द के अध्याय में उसी को संक्षेप में लिखा गया है। जर्मन प्रोफेसर प्रथम अध्याय को 'रहस्यवाद की बात' कहकर नाक-भौं सिकोड़ते थे। मार्क्स ने यहाँ कहा था : "पहली नजर डालने पर माल[1] आसानी से समझी जानेवाली एक मामूली-सी चीज मालूम होती है। किन्तु, इसका विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि यह अत्यन्त दुरूह वस्तु अतिभौतिक सूक्ष्मताओं और धर्मशास्त्रीय चालाकियों से भरी हुई चीज है। जहाँ तक उपभोगमूल्य के रूप में यह पाई जाती है, इसमें कोई भी रहस्यवाद जैसी बात नहीं है।··· काष्ठ का आकार बदल जाता है, जब हम उसकी एक मेज बनाते हैं, तो भी मेज काष्ठ ही, एक साधारण तौर से प्रत्यक्ष देखी जानेवाली चीज रहती है। पर जैसे ही यह माल (सौदा) के रूप में प्रकट होती है, वैसे ही यह सर्वातिरिक्त[2] तथा साथ ही अप्रत्यक्षकरणीय बन जाती है। वह अपने चारों पैरों के बल पृथिवी पर दृढ़तापूर्वक केवल खड़ी ही नहीं होती, बल्कि दूसरे मालों के सम्बन्ध में उलटे सिर खड़ी होती है, और अपरिचित के लिए उसका काष्ठ का सिर उससे कहीं विचित्र मनमानापन विकसित करता है, जितना कि बिना मानवी सहायता के वह नाचना आरम्भ करके करता है।"

पहली जिल्द के पहले अध्याय के वर्णविन्यास और लिखावट लेखनकला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। मार्क्स पहले माल के बारे में कहते हैं, फिर आगे यह बतलाते हैं कि किस तरह पैसा[3] पूँजी (कपिटाल) के रूप में परिणत होता है। अगर समान मूल्यों को माल के परिचार (परिभ्रमण) में समान मूल्य पर विनिमय किया जाता है, तो कैसे पैसेवाला आदमी उनके मूल्य पर मालों को खरीदकर उन्हीं के मूल्य पर बेचते भी अपने दिए मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त करता है ? इसलिए वर्तमान सामाजिक सम्बन्धों में वह माल को माल के बाजार में ऐसे विचित्र स्वभाव का पाता है कि उसका उपभोग नये मूल्य का स्रोत बन जाता है। यह माल है श्रम-शक्ति, जो जीवित कमकर के रूप में मौजूद है। कमकर के अपने जीवन और परिवार को कायम रखने के लिए कुछ मात्रा में खाद्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है–उसका परिवार कमकर के मर जाने के बाद आगे भी सजीव श्रम-शक्ति के बने रहने की गारंटी करता है। खाद्य वस्तु आदि की इस मात्रा के पैदा करने के लिए जो श्रम-समय आवश्यक है, वही श्रम-शक्ति का मूल्य है तथापि, मजूरी के रूप में यह मूल्य जो दिया जाता है, वह उस मूल्य से बहुत कम है, जिसे कि श्रम-शक्ति का खरीदार कमकर से निचोड़ने में समर्थ होता है। उसकी मजूरी के रूप में मूल्य की जगह लेनेवाले आवश्यक श्रम-समय के ऊपर और अधिक जो कमकर का अतिरिक्त श्रम है, वही अतिरिक्त-मूल्य का ऐसा स्रोत है, जो कि लगातार बढ़ते हुए पूँजी-संचयन का स्रोत है। कमकर का

1. Commodities. 2. Trancendental. 3. Money.

मुफ्त में लिया यह श्रम समाज के सभी श्रम न करनेवाले मेम्बरों में बाँटा जाता है, और वह सारी सामाजिक व्यवस्था इसी पर आधारित है, जिसमें हम रहते हैं।

(अ) **पूँजीवाद**–बिना मजूरी दिए (मुफ्त का) श्रम निश्चय ही आधुनिक बूर्ज्वा समाज का केवल अपना गुण (विशेषता) नहीं है। जब तक दुनिया में सम्पत्तिमान और सम्पत्तिहीन वर्ग मौजूद हैं, तब तक सम्पत्तिहीन वर्ग को हमेशा मुफ्त का श्रम करना पड़ेगा; जब तक कि समाज के एक भाग के हाथ में उत्पादन के साधनों की इजारादारी है, तब तक कमकर चाहे स्वतन्त्र हो या अस्वतन्त्र, उसे उससे कहीं अधिक समय तक काम करना पड़ेगा, जितना कि उत्पादन-साधनों के स्वामियों से खाद्य-वस्तु आदि को प्राप्त कर अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए समय की आवश्यकता है। मजूरी-श्रम उस मुफ्त श्रमव्यवस्था का केवल एक विशेष ऐतिहासिक रूप है, जो कि समाज के वर्गों के रूप में विभाजित होने के समय से मौजूद रहती चली आई है, और जिसे ठीक से समझने के लिए इसी रूप में उसकी परीक्षा करनी होगी।

अपने पैसे को पूँजी के रूप में परिणत करने के लिए पैसेवाले आदमी को बाजार में स्वतन्त्र कमकरों को प्राप्त करना होगा–स्वतन्त्र दोहरे अर्थों में, सबसे पहले यह कि वे अपनी श्रम-शक्ति को माल के तौर पर बेचने में स्वतन्त्र हैं, और दूसरे यह कि उनके पास देखने के लिए और कोई चीज नहीं है। स्वतन्त्र इस अर्थ में भी कि स्वतन्त्र रूप से अपनी श्रम-शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक कोई साधन उसके पास मौजूद नहीं है। यह ऐसा सम्बन्ध है, जिसका आधार प्राकृतिक नियम नहीं है, क्योंकि प्रकृति न एक ओर मालों, पैसे के स्वामियों को पैदा करती, और न दूसरी ओर उनको पैदा करती है, जिनके पास अपनी श्रम-शक्ति के सिवा और कुछ नहीं है। इसके साथ ही यह बात भी है कि इतिहास के सभी कालों के लिए एक-सा सामाजिक सम्बन्ध नहीं है, बल्कि वह ऐतिहासिक विकास के एक लम्बे काल का परिणाम अनेक आर्थिक परिवर्तन और सामाजिक उत्पादन के पुराने रूपों की सारी परम्पराओं के पतन और विलोप की उपज है।

पूँजी का आरम्भ-स्थान है माल का उत्पादन। माल-उत्पादन, माल-परिभ्रमण और विकसित माल-परिभ्रमण, व्यापार–ये उन स्थितियों को पैदा करते हैं, जिनके भीतर पूँजी विकसित होती है। आधुनिक पूँजी का इतिहास आधुनिक-विश्वव्यापार और आधुनिक विश्व-बाजार के पैदा होने से सोलहवीं सदी में शुरू होता है। गँवार अर्थशास्त्रियों का यह समझना केवल भ्रम मात्र है कि अत्यन्त प्राचीन काल में एक समय परिश्रमी पुरुषार्थी पुरुषों की एक छोटी-सी मंडली थी, जिन्होंने धन को जमा किया और दूसरी ओर आलसी और निठल्ले आदमियों का एक भारी समुदाय था, जिनके पास बेचने के लिए अपना देह छोड़ और कोई चीज नहीं रह गई थी–यह बेकार की बात है। इसी तरह अधकचरे ज्ञान के साथ बूर्ज्वा-इतिहासकार अर्थ-उत्पादन के सामन्तवादी ढंग के विलोप और कमकर की स्वतन्त्रता का वर्णन करते हैं, लेकिन साथ ही सामन्तवादी ढंग के विकास का पूँजीवादी ढंग से विकसित होना नहीं बतलाते। उनका यह आदिम धन-संचय का वर्णन गप्प से बढ़कर नहीं है। दास और अर्धदास की तरह कमकर न अब उत्पादन-साधन की वस्तुओं में परिगणित किया जाता है, न वह अपने लिए काम करनेवाले किसान या शिल्पकार की तरह उत्पादन-साधन का रखनेवाला ही रह जाता है। अंग्रेजी इतिहास के आधार पर मार्क्स बतलाते हैं कि कैसे बहुसंख्यक जनसमूह को लगातार कितने ही हिंसात्मक और पाशविक उत्पीड़नों द्वारा उत्पादन साधनों, भूमि और अन्न से वंचित किया गया। उन्होंने इसे प्रारम्भिक संचयनवाले अध्याय में बतलाया है। इस प्रकार आहार आदि में स्वावलम्बी बनानेवाले सारे साधनों से वंचित करके ऐसे स्वतन्त्र कमकरों की सृष्टि की गई, जिनको पूँजीवादी उत्पादन-शैली की आवश्यकता थी। पूँजी इस प्रकार रोम-रोम में खून और कीचड़ से लथपथ होकर संसार में आई; जैसे ही वह अपने संसार में खड़ी हुई, वैसे ही उसने अपनी श्रम-शक्ति के उपयोग के लिए आवश्यक साधनों से कमकर के विलगाव को केवल कायम ही नहीं रक्खा, बल्कि इस बिलगाव को लगातार बढ़ते हुए पैमाने पर पुनः उत्पन्न किया।

मुफ्त श्रम के पुराने रूपों से इस श्रम-शक्ति का भेद इसी बात का परिणाम है कि पूँजी का गमानागमन असीम है और अतिरिक्त श्रम के लिए पूँजी की जठराग्नि कभी न तृप्त होनेवाली है। जिन समाजों में किसी माल का उपभोग-मूल्य उसके विनिमय-मूल्य से अधिक महत्त्व रखता है, उनमें आवश्यकताओं के विस्तृत चक्कर

के भीतर कम या बेशी अतिरिक्त-श्रम सीमित रहता है, लेकिन उत्पादन के इस ढंग की प्रकृति परिणामतः अतिरिक्त-श्रम के लिए असीम माँग नहीं पैदा करती। जब माल का विनिमय-मूल्य उपभोग-मूल्य से अधिक महत्त्व का है तब स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है। परायी श्रम-शक्ति द्वारा माल-उत्पादन करने के अतिरिक्त श्रम का शोषण करने में पूँजीशक्ति निष्ठुरता और प्रभुता की दृष्टि से सीधे जबर्दस्ती लिए गए बेगार-श्रम पर आधारित उत्पादन के सभी पुराने ढंगों की बात करती है। पूँजी के लिए मुख्य वस्तु न श्रम की प्रक्रिया और न उपभोग-मूल्यों का उत्पादन, बल्कि उसका मुख्य लक्ष्य है उपभोग, विनिमय-मूल्यों का उत्पादन, जिनसे कि लगे मूल्य से अधिक मात्रा में मूल्य निचोड़ा जा सके। पूँजीपति की अतिरिक्त-मूल्य की प्यास कभी नहीं तृप्त हो सकती। विनिमय-मूल्यों का उत्पादन ऐसी किसी सीमा को नहीं स्वीकार करता, जो कि तुरन्त की आवश्यकताओं की पूर्ति के द्वारा उपभोग-मूल्यों के उत्पादन से बनाई जाती है।

जिस प्रकार माल उपभोग और विनिमय-मूल्यों का सम्मिश्रण है, उसी तरह माल उत्पादन की प्रक्रिया, श्रम-प्रक्रिया और मूल्य-सृजन करनेवाली प्रक्रिया का सम्मिश्रण है। मूल्य-सृजन करने की प्रक्रिया उस जगह तक चलती रहती है, जहाँ मजूरी के रूप में चुकाए गए श्रम-शक्ति के मूल्य का स्थान समान मात्रावाला मूल्य लेता है। इस स्थान से परे वह अतिरिक्त-मूल्य उत्पादन करने की प्रक्रिया उपभोग करने की प्रक्रिया के रूप में विकसित होता है। वह श्रम-प्रक्रिया और उपभोग करने की प्रक्रिया के सम्मिश्रण के तौर पर पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया, माल-उत्पादन का पूँजीवादी रूप बन जाता है। श्रम-प्रक्रिया में श्रम-शक्ति और उत्पादन-साधन दोनों मिलकर काम करते हैं। वही उपभोग करने की प्रक्रिया में पूँजी का अंश स्थिर और चल पूँजी के रूप में प्रकट है। स्थिर-पूँजी उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन साधनों, कच्चे मालों, सहायक सामग्री, उत्पादन के हथियारों के रूप में परिणत हो अपने मूल्य को नहीं बदलती। चल-पूँजी उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम-शक्ति के रूप में परिवर्तित होती है, और उसका मूल्य बदल जाता है : वह अपने निजी मूल्य को पैदा करती है, फिर मूल्य से अधिक और ऊपर अतिरिक्त-मूल्य पैदा करती है, जो कि परिस्थितियों के अनुसार मात्रा में बड़ा या छोटा हो सकता है।

(ब) अतिरिक्त-मूल्य–इस तरह विवेचन करने के बाद मार्क्स ने अतिरिक्त-मूल्य के परीक्षण में हाथ लगाया। अतिरिक्त-मूल्य दो रूपों में प्रकट होता है, सापेक्ष-अतिरिक्त-मूल्य और परम-अतिरिक्त-मूल्य। इन दोनों प्रकार के मूल्यों ने पूँजीवादी उत्पादन के ढंग के इतिहास में भिन्न-भिन्न किन्तु निर्णायक पार्ट अदा किए हैं।

परम-अतिरिक्त-मूल्य उस समय पैदा होता है, जब कि पूँजीपति कमकर से उस समय से आगे काम करवाता है, जिसकी उसे अपनी श्रम-शक्ति के पुनरुत्पादन में आवश्यकता होती है। अगर पूँजीपति का बस चलता, तो वह अपने काम का दिन चौबीस घंटों का रखता, क्योंकि जितना ही बड़ा काम का दिन होगा, उतना ही अधिक अतिरिक्त-मूल्य पैदा किया जा सकेगा। लेकिन दूसरी ओर कमकर का यह समझना बिल्कुल उचित है, कि अपनी मजूरी के उत्पादन की आवश्यकता से अधिक और ऊपर जितने भी घंटे हमें काम करने के लिए मजबूर किया जाता है, वह अन्यायपूर्वक हमारा निचोड़ना तथा अत्यधिक श्रम-समय के लिए अपने स्वास्थ्य का खोना है। पूँजीपति और कमकर के बीच में काम के दिन की लम्बाई के सम्बन्ध में संघर्ष उसी दिन से आरम्भ हुआ, जब कि ऐतिहासिक तौर से प्रथम बार स्वतन्त्र कमकर बाजार में दीखे जाने लगे। वह संघर्ष आज तक चला जा रहा है। पूँजीपति लाभ-शुभ के लिए लड़ता है, चाहे वह व्यक्तिगत तौर से भलेमानुस हो या गुण्डा। अपने सहयोगी दूसरे पूँजीपतियों के साथ उसकी जो प्रतियोगिता है, वह उसे मजबूर करती है कि मनुष्य की बर्दाश्त की सीमा जहाँ तक है, वहाँ तक काम के दिन को बढ़ाने के लिए हर एक तरह की सम्भव कोशिशें करे। दूसरी ओर कमकर अपने स्वास्थ्य को कायम रखने तथा काम करते, खाने, सोने के अतिरिक्त दूसरे मानवीय जीवन के कामों में लगाने के लिए प्रतिदिन कुछ स्वतन्त्र घंटों को बचाने के लिए लड़े। मार्क्स ने बड़े शक्तिशाली शब्दों में इंग्लैंड के मजदूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के पचास साल तक चलते बड़े पैमाने के उद्योग के पैदा होने के समय से गृह-युद्ध का वर्णन किया है। प्रकृति और रीति-रिवाज, आयु और पुरुष-स्त्री भेद तथा दिन और रात ने सर्वहारा के शोषण के ऊपर जितनी रोक लगा रक्खी थी, उन्हें तोड़ फेंकने के लिए बड़े पैमाने के उद्योग धंधे ने पूँजीपतियों को तब तक मजबूर किया, जब तक कि दोनों का

संघर्ष इस तरह चलता रहा, जब तक कि दस घंटा-बिल ने कानून का रूप नहीं धारण कर लिया। इस कानून को पूँजीपतियों के साथ संघर्ष करके मजदूर वर्ग ने जीता। पूँजी अत्यन्त शक्तिशाली सामाजिक बाधा है, वह अपने साथ स्वतन्त्र ठेका करके कमकरों को अपने और अपनी जातिवालों को मृत्यु और दासता के रूप में बेचने के लिए मजबूर करती है।

सापेक्ष-अतिरिक्त-मूल्य उस समय पैदा होता है, जबकि श्रम-शक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-समय कम करके उसे अतिरिक्त-श्रम में लगाया जाता है। श्रम-शक्ति का मूल्य उन उद्योग-धन्धों में श्रम-शक्ति की उत्पादकता की वृद्धि द्वारा किया जाता है, जिनकी उपज श्रम-शक्ति के मूल्य को निर्धारित करती है। इस मतलब से उत्पादन-शैली में लगातार भारी परिवर्तन, श्रम-प्रक्रिया की टेक्नीक और समाजवादी स्थितियों से क्रांति उपस्थित करना आवश्यक है। इसके आगे मार्क्स बड़े पैमाने के उद्योग के भीतर की बहुत-सी बातों–सहकारिता, श्रम और माल-निर्माण के विभाजन, मशीन आदि का कितने ही अध्यायों में वर्णन करते हैं।

मार्क्स ने सिर्फ यही नहीं बतलाया कि मशीन और बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे ने पहले के इतिहास में पाए जानेवाले पहले के उत्पादन के ढंगों की अपेक्षा अधिक दुःख और दारिद्र्य ही पैदा किया, बल्कि वह साथ ही पूँजीवादी समाज के लगातार भारी परिवर्तनों के कारण और अधिक ऊँचे सामाजिक रूप के लिए रास्ता तैयार करते हैं। फैक्टरी-सम्बन्धी कानून उत्पादन-प्रक्रिया के अप्राकृतिक रूप के प्रति समाज की प्रथम सचेतन और बाकायदा प्रतिक्रिया थी। जब समाज कारखानों और फैक्टरियों में श्रम को कानूनबद्ध करता है, उस समय यह केवल पूँजी के शोषण-सम्बन्धी अधिकारों में दखल देना जैसा मालूम होता है। लेकिन परिस्थितियाँ जल्दी ही समाज को इसके लिए मजबूर करती हैं कि वह घरेलू श्रम को भी कानूनबद्ध करे, माता-पिता के अधिकारों में दखल दें। इस प्रकार बड़े पैमाने का उद्योग-धन्धा पुरानी पारिवारिक व्यवस्था तथा तदनुकूल पारिवारिक श्रम के साथ पुराने पारिवारिक सम्बन्धों को खतम कर देती है। "पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा पुरानी पारिवारिक व्यवस्था का विलोपन चाहे कितना ही भयंकर और घृणास्पद कृत्य क्यों न जान पड़े, किन्तु उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया में स्त्रियों, तरुणों और बच्चों को घरेलू क्षेत्र से बाहर निकल एक निर्णायक पार्ट अदा करने का अधिकार दे बड़े पैमाने का उद्योग परिवार के उच्चतर रूप तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के बारे में एक नया आर्थिक आधार पैदा करता है। वस्तुतः यह उसी तरह बेवकूफी की बात है, जैसे कि खिस्तानी-जर्मनिक परिवार के रूप को परम मान लिया जाय या प्राचीन रोमन रूप अथवा प्राचीन ग्रीक रूप अथवा उसके प्राच्य रूप को परम सत्य मान लिया जाय। यह रूप विकास की ऐतिहासिक सीढ़ियों को बतलाते हैं। यह भी उसी तरह स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुषों और भिन्न-भिन्न आयुवाले मजूरों का इस प्रकार एकताबद्ध होना उपयुक्त स्थितियों में मानव-प्रगति के स्रोत के रूप में परिणत हो सकता है, यद्यपि अपने अनियंत्रित पशुतापूर्ण पूँजीवादी रूप में (जिसमें कि कमकर उत्पादन प्रक्रिया के लिए जीते हैं, न कि उत्पादन-प्रक्रिया कमकरों के लिए) वह भ्रष्टाचार और दासता का गन्दा स्रोत है। कमकर को नीचे गिराकर जो मशीन अपना पुछल्ला बनाती है, वह साथ ही ऐसी सम्भावनाओं को भी पैदा करती है, जिसमें कि समाज की उत्पादक-शक्तियाँ इतनी हद तक बढ़ जायँ, कि बिना किसी अपवाद के समाज के सभी व्यक्ति मानव प्राणी के योग्य विकास की एक-सी सम्भावनाओं का उपभोग कर सकें। यह एक ऐसी बात है, जिसे कार्यरूप में परिणत करने में सभी पुराने समाज असमर्थ थे।"

परम-अतिरिक्त-मूल्य और सापेक्ष-अतिरिक्त-मूल्य के उत्पादन का परीक्षण करने के बाद मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के इतिहास में पहले-पहल आए मजूरी के बुद्धिवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। माल का दाम उसका पैसे के रूप में प्रकट किया जानेवाला मूल्य है, और मजूरी श्रम-शक्ति का दाम है। श्रम स्वयं माल के बाजार में नहीं आता, बल्कि वह सजीव साकार कमकर के रूप में जाता है। कमकर अपनी श्रम-शक्ति को बेचने के लिए रखता है, और श्रम माल की श्रम-शक्ति के उपभोग के रूप में ही केवल प्रकट होता है। श्रम-मूल्यों का द्रव्य और आन्तरिक परिमाण है। लेकिन वह स्वतः अपना कोई मूल्य नहीं रखता। फिर भी, श्रम मजूरी के रूप में अपना पारिश्रमिक पाते दिखाई पड़ता है, क्योंकि कमकर अपनी मजूरी को श्रम पूरा कर लेने के बाद ही पाता है। जिस रूप में मजूरी मिलती है, वही अपने भीतर काम के दिन से विभाजन के चिह्नों

को मुफ्त या नमुफ्त श्रम-समय रूप में भलीभाँति छिपाए रखता है। दासों के लिए इससे बिल्कुल उलटी बात थी। दास सभी समय, उस समय भी जब कि वह अपनी खाद्य-वस्तु के मूल्य के उत्पादन के लिए काम करता होता था—अपने मालिक के लिए काम करता होता था। जान पड़ता था, उसका सारा श्रम मुफ्त का है। लेकिन मजूर दास-श्रम के प्रति इस धारणा के विरुद्ध मजूरी-श्रम का सारा श्रम—जिसमें मुफ्त श्रमवाला अंश भी शामिल है—नमुफ्त-सा मालूम होता है। दास-श्रम के बारे में सम्पत्ति-सम्बन्ध इस तथ्य को ढाँक देता है, कि दास अपने श्रम के कुछ समय में अपने लिए काम करता है। मजूरी-श्रम-व्यवस्था में यह पैसे का सम्बन्ध ही है, जो कि इस तथ्य को ढाँक देता है, कि मजूरी पानेवाला कमकर कुछ समय मुफ्त में काम करता है। इसलिए हम मूल्य तथा श्रम-शक्ति के दाम के मजूरी के रूप में या स्वयं श्रम के मूल्य और दास के रूप में परिणत होने के निर्णायक महत्त्व को समझ सकते हैं। इसी दिखलावे के ऊपर पूँजीपतियों और कमकरों दोनों की सारी कानूनी धारणाएँ आधारित हैं। उत्पादन के पूँजीवादी ढंग के सभी रहस्योद्घाटन तथा पूँजीवादी उत्पादन द्वारा स्वतन्त्रता का भ्रम पैदा करना और गँवारू राजनीतिक अर्थशास्त्र की कमकरों के प्रति सभी बेहूदगियाँ यही वे चीजें हैं, जो कि वास्तविक अवस्था को छिपाकर हमें उल्टी दिशा में भटकाना चाहती हैं।

मजूरी के दो मुख्य रूप हैं : समय के अनुसार मजूरी और काम के अनुसार मजूरी (खंड-मजूरी)। काम के दिन में अस्थायी तौर से काम करने पर मजूरी कम हो जाती है, लेकिन स्थायी तौर से उसे कम करने पर मजूरी बढ़ जाती है। जितना ही बड़ा काम का दिन होगा, उतनी ही मजूरी कम होगी। काम के अनुसार मजूरी या खंड-मजूरी समयानुसार मजूरी का ही एक परिवर्तित रूप है। पूँजीवादी उत्पादन-प्रक्रिया के लिए यही सबसे अनुकूल मजूरी का रूप है। यह पूँजीपतियों के वास्ते इसलिए अधिक सुभीते का है, क्योंकि तब उन्हें देख-रेख की आवश्यकता नहीं रह जाती, और साथ ही मजूरी काटने के लिए कई बहाने उन्हें मिल जाते हैं। दूसरी ओर काम के अनुसार मजूरी का ढंग कमकरों के लिए बहुत असुविधाएँ पैदा करता है। अधिक काम करने की लालच से अधिक परिश्रम करके कमकर अपने को बुरी तौर से थका देता है। इस प्रयत्न में उसकी मजूरी के कम होने की नौबत आती है। मजूरों के भीतर अधिक पैसा कमाने के लिए जो होड़ होती है, उसके कारण उनकी एकता को नुकसान पहुँचता है। इसके कारण पूँजीपतियों और कमकरों के बीच भेंट—सरकार आदि जैसी जोंके आ मौजूद होती हैं, जो कि कमकरों की मजूरी का काफी भाग अपने पाकेट में डालती हैं।

अतिरिक्त-मूल्य और मजूरी के बीच के आपसी सम्बन्ध, उत्पादन की पूँजीवादी शैली पूँजीपति के लिए केवल पूँजी को ही नहीं, बल्कि कमकरों के लिए गरीबी को भी लगातार पुनरुत्पादित करती रहती है। एक ओर पूँजीपति-वर्ग है, जिसके पास सभी खाद्य-सामग्री, सभी कच्चा-माल और सभी उत्पादन-साधन हैं, और दूसरी ओर कमकर-वर्ग मानवता का विशाल जनसमूह है, जो कि अपनी श्रम-शक्ति को पूँजीपतियों के हाथ में खाद्य की उस मात्रा के वास्ते बेचने के लिए मजबूर है, जो कि अधिक से अधिक इतना ही कर सकती है, कि कमकर को काम करने की स्थिति में कायम रक्खे और सर्वहारों की एक नई पीढ़ी को पैदा कराने में सहायक हो, लेकिन पूँजी केवल अपने को फिर से उत्पन्न ही नहीं करती, बल्कि वह अपने परिमाण को लगातार बढ़ाती भी जाती है।

(स) पूँजी संचयन—मार्क्स ने पहली जिल्द के अन्तिम भाग में 'संचयन की प्रक्रिया' की व्याख्या की है। पूँजी से केवल अतिरिक्त-मूल्य ही नहीं पैदा होता, बल्कि अतिरिक्त-मूल्य से पूँजी भी पैदा होती है। जो अतिरिक्त-मूल्य पैदा किया जाता है, हर साल उसका एक भाग सम्पत्तिमान वर्गों में बाँटा जाता है, जिसे वह अपनी आय के तौर पर उपभोग करते हैं। लेकिन, इस विभाजित अतिरिक्त-मूल्य का दूसरा भाग पूँजी के रूप में भी संचित होता रहता है। इस प्रकार जो मुफ्त-श्रम लाभ-शुभ के रूप में कमकरों से छीना गया है, वह आगे उनसे और भी मुफ्त-श्रम छीनने के लिए साधन बन जाता है; और उत्पादन के प्रवाह में आरम्भ में जो पूँजी लगाई गई थी, वह प्रत्यक्षतः संचित पूँजी की तुलना में एक नगण्य मात्रा में रह जाती है; अर्थात् अतिरिक्त-मूल्य अथवा अतिरिक्त-उपज, जो कि फिर से ऐसी पूँजी के रूप में परिणत की जाती है (जो चाहे आरम्भ में संचित करनेवाले के हाथ में काम कर रही हो, या दूसरे के हाथ में), वह साक्षात् तौर से संचित की हुई पूँजी की तुलना में नगण्य-सी मालूम होती है। माल-उत्पादन और माल-परिभ्रमण के आधार पर स्थापित वैयक्तिक सम्पत्ति

का कानून अपने को बिल्कुल उलटे रूप में अपने आन्तरिक और अनिवार्य द्वन्द्वात्मकता के कारण परिणत कर देता है। माल-उत्पादन के कानून वैयक्तिक श्रम में सम्पत्ति-अधिकार को उचित बतलाते जान पड़ते हैं। समान अधिकारवाले मालिक एक-दूसरे के मुकाबिले में खड़े होते हैं। दूसरे माल को केवल अपने माल की बिक्री से ही वह प्राप्त कर सकते हैं और अपना माल केवल श्रम द्वारा ही उत्पादित करा सकते हैं। पूँजीपति के पक्ष में सम्पत्ति अब दूसरे के मुफ्त-श्रम या उसकी उपज को मार लेने का अधिकार दीख पड़ती है, और कमकरों की तरफ देखने पर उनकी उपज के उड़ा लेने की असंभवनीयता-सी दीख पड़ती है।

पूँजीवादी संचयन का साधारण नियम निम्न प्रकार है : पूँजी की वृद्धि में इसका चल अंश अर्थात् वह भाग भी शामिल है जो कि श्रम-शक्ति में बदला है। अगर पूँजी की बनावट अपरिवर्तित रहे, यदि उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा को सदा गतिशील रखने के लिए उतनी ही मात्रा में श्रम-शक्ति की उसे आवश्यकता हो, तो यह स्पष्ट है कि श्रम-शक्ति की आवश्यकता पूँजी की वृद्धि के अनुपात से बढ़ेगी, जितनी ही जल्दी पूँजी बढ़ेगी, कमकरों के जीवनयापन के लिए धन की आवश्यकता भी उतनी ही जल्दी बढ़ेगी। जिस प्रकार सीधा-सादा पुनरुत्पादन स्वयं लगातार पूँजी-सम्बन्ध को पुनरुत्पादित करता है, इसी प्रकार पूँजी का संचयन बड़ी मात्रा में पूँजी-सम्बन्ध को पुनरुत्पादित करता है। एक ओर पूँजीपति अथवा बड़े पूँजीपति बढ़ते हैं तो दूसरी ओर अधिक संख्या में मजूरी-कमकर बढ़ते हैं। इस प्रकार पूँजी के संचयन का अर्थ है, सर्वहारा की भी वृद्धि। मान लो, यह वृद्धि कमकरों के लिए अत्यन्त अनुकूल अवस्था में होती है : उनकी अपनी अतिरिक्त उपज का अधिक भाग—जो कि बराबर बढ़ता हुआ पूँजी के रूप में परिवर्तित होता है—उनके पास वेतन के साधनों के रूप में लौटता है, और इस प्रकार वह अपने-अपने भोग की वस्तुओं को बढ़ा सकते हैं; कपड़ा, सामान, आदि अधिक उदारता से अपने लिए खरीद सकते हैं। तथापि किसी तरह भी पूँजीपतियों की तरफ उनकी परतंत्रता का सम्बन्ध नहीं बदलता, उसी तरह जैसे एक दास को कितनी ही अच्छी तरह खिलाया-पहनाया जाय, वह दास छोड़ और कुछ नहीं हो सकता। कमकरों को हमेशा कुछ परिमाण में मुफ्त का श्रम देना ही पड़ेगा। हो सकता है, मुफ्त-श्रम की मात्रा कम होती जाय, लेकिन यह मात्रा उतनी दूर तक कम नहीं हो सकती, जिसमें कि वह उत्पादन की प्रक्रिया के पूँजीवादी रूप को भारी खतरे में डाल दे। अगर मजूरी इस सीमा से ऊपर उठी, तो लाभ-शुभ का आकर्षण बोझिल हो जायगा और पूँजी का संचयन सुस्त होते-होते वह यहाँ तक पहुँच जायेगा, कि मजूरी पुनः उसके उपयोग की आवश्यकताओं के अनुकूल तल पर गिर जाएगी।

तथापि तभी, जब पूँजी का संचयन अपने स्थिर अंशों और चल अंशों के बीच के सम्बन्ध में बिना किसी परिवर्तन के होता है, तो वह ऐसी सोने की जंजीर होगा, जिसे कि मजूरी-कमकर अपने लिए स्वयं गढ़ते हैं। वास्तविक तौर से देखने पर संचयन की प्रक्रिया के साथ-साथ पूँजी की सजीव बनावट में एक बड़ी क्रांति पैदा होती है। श्रम की बढ़ती हुई उत्पादकता उत्पादन-साधनों के समूह को उससे अधिक शीघ्रता के साथ बढ़ाती है, जितनी शीघ्रता से कि श्रम-शक्ति का समूह उनमें सम्मिलित होता है। पूँजी के संचयन के अनुपात से श्रम-शक्ति की माँग बढ़ती नहीं, बल्कि अपेक्षाकृत घटती है। जो पूँजी का संचयन होता है, वह अपने संचयन से पृथक् एक दूसरे रूप में उसी प्रभाव को पैदा करता है, क्योंकि पूँजीवादी प्रतियोगिता के कानून के कारण बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपतियों को निगलते जाते हैं। तब संचयन की प्रक्रिया से जो अधिक पूँजी तैयार हुई है, उसे अपनी मात्रा की अपेक्षा बराबर कम से कम कमकरों की आवश्यकता होती है। उसी समय पुरानी पूँजी जो कि नई बनावट में पुनरुत्पादित हुई है—अपने पहले के रक्खे हुए कमकरों में से अधिकाधिक की छँटनी करती है। इस प्रकार वहाँ कमकरों का एक सापेक्ष अतिरिक्त समूह पैदा होता है—सापेक्ष पूँजी के उपयोग की आवश्यकता के ख्याल से—और इस प्रकार औद्योगिक रिजर्व-सेना तैयार हो जाती है, जिसे बुरे या मंदी के समय अपनी श्रम-शक्ति के मूल्य से कम मजूरी मिलती है, साथ ही, उसे लगातार नौकरी भी नहीं मिलती, और जो काम न मिलने के समय सार्वजनिक सहायता की मुहताज होती है ! इसके साथ ही वह हर समय काम में लगे कमकरों के प्रतिरोध को निर्बल बनाने में सहायता करती उनकी मजूरी के तलों को नीचे गिराती है।

(द) **सर्वहारा**—यह औद्योगिक रिजर्व-सेना (बेकार मजूर) पूँजी संचयन की इस प्रक्रिया अथवा पूँजीवादी आधार

पर धन की वृद्धि की आवश्यक उपज है, जो साथ ही इस उत्पादन के पूँजीवादी ढंग के रक्षक पुर्जे का काम करती है। श्रम की उत्पादकता के विकास के साथ तथा पूँजी के संचयन द्वारा श्रम के उत्पादन के विकास के साथ पूँजी के एकाएक विस्तार की शक्ति भी बढ़ती है, जिसके लिए तुरन्त नये बाजारों अथवा उत्पादन की नयी शाखाओं में काम पर लगाने के लिए दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन के काम में बाधा डाले बिना कमकरों के भारी समूह की जरूरत होती है। आधुनिक उद्योगधन्धे की उल्लेखनीय धारा छोटे-छोटे टूटनों के साथ औसत कार्यप्रवणता, बड़े जोर के साथ उत्पादन, तेजी और मन्दी के दसवार्षिक चक्कर का रूप, औद्योगिक रिजर्व-सेना के लगातार निर्माण और उसके कम या बेशी काम में खपने और पुनर्निर्माण पर आधारित है। सामाजिक ढंग, काम में लगी पूँजी का परिमाण, उसकी वृद्धि का विस्तार और शक्ति, और इसलिए कमकर जनता के परम विस्तार और उसके प्रेम की उत्पादकता जितनी ही बढ़ती है, उसी के अनुसार अपेक्षाकृत मात्रा से अधिक जनसंख्या अथवा औद्योगिक रिजर्व सेना बढ़ती है, इसका तुलनात्मक आकार-प्रकार धन की वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है। कार्यरत औद्योगिक सेना की अपेक्षा जितनी ही अधिक औद्योगिक रिजर्व-सेना (बेकार मजदूर) होगी, उतने ही अधिक कमकरों के वह भाग होंगे जिनकी गरीबी अपने श्रम के उत्पीड़न के उलटे अनुपात में है। और अन्त में जितना ही अधिक मजदूरवर्ग का बेकार भाग अधिक होगा, उतनी ही बड़ी औद्योगिक रिज़र्व-सेना और उनकी संख्या अधिक होगी, जिनको कि सरकारी तौर से भिखमंगा या दरिद्र बतलाया जाता है। पूँजीवादी संचयन का यह परम सामान्य कानून है।

उपर्युक्त कानून के अनुसार पूँजीवादी संचयन के विकास का ऐतिहासिक झुकाव देखा जाता है। पूँजी के संचयन और केन्द्रीकरण के साथ-साथ दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते हुए पैमाने पर श्रम-प्रक्रिया के सहकारी रूप की निम्न प्रकार वृद्धि होती है : उत्पादन-सजग हो साइंस के टेकनीकों का उपयोग, जमीन का संगठित और सम्मिलित कर्षण, उत्पादन के साधनों का उस रूप में परिवर्तित करना, जिसमें कि वह केवल मिलकर ही लोगों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें, और सामाजिक श्रम के संयुक्त उत्पादन-साधनों के रूप में इस्तेमाल करके उत्पादन-साधनों के खर्च को कम करना। अब उन महासेठों की संख्या लगातार कम होती जाती है, जो कि इस औद्योगिक परिवर्तन की प्रक्रिया के सभी लाभों पर हाथ साफ करते इजारादारी करते हैं। महासेठों की संख्या की कमी के अनुसार ही दरद्रिता, उत्पीड़न, दासता, पतन और शोषण का परिमाण बढ़ता है, लेकिन उसके साथ मजदूर वर्ग का क्षोभ अपने परिमाण में बढ़ता मजूर वर्ग को ही उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया की बनावट की सहायता से प्रशिक्षित, एकजुट और संगठित करता है। अंततः पूँजी की इजारादारी उसके नीचे बढ़े उत्पादन के ढंग के लिए बेड़ी बन जाती है। उत्पादन-साधनों का केन्द्रीकरण और समाजीकरण बढ़ते-बढ़ते उस सीमा पर पहुँच जाता है, जब कि वह पूँजीवादी खोल के भीतर अपने को बन्द नहीं रख सकता। उसी समय पूँजीवादी वैयक्तिक सम्पत्ति की अन्तिम घड़ी आ जाती है और लूटनेवाला स्वयं लुट जाता है।

वैयक्तिक श्रम के आधार पर वैयक्तिक सम्पत्ति पुनः स्थापित होती है, लेकिन वह पूँजीवादी युग की सफलताओं के आधार पर ही स्वतन्त्र कमकरों के सहयोग और भूमि तथा उत्पादन-साधनों में उनकी सम्मिलित सम्पत्ति के रूप में श्रम द्वारा उत्पादित आधार पर। यह स्वाभाविक है, कि उत्पादन के सामाजिक ढंग पर आधारित पूँजीवादी सम्पत्ति का सामाजिक सम्पत्ति के रूप में व्यवहारतः परिवर्तित करना उतना कठिन और दुष्कर काम नहीं है, जितना कि वैयक्तिक श्रम पर आधारित बिखरी हुई सम्पत्ति का पूँजीवादी सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित करना। पहली अवस्था में विशाल जनसमूह को थोड़े-से लुटेरों ने लूटकर अपनी सम्पत्ति बनाई, दूसरी अवस्था में विशाल जनसमूह थोड़े-से लुटेरों की हस्तगत सम्पत्ति को अपनी बनाएगा।

3. द्वितीय और तृतीय जिल्द

यह बतला चुके हैं कि मार्क्स ने अपने महान् ग्रंथ की तीनों जिल्दों का हस्तलेख अपने जीवन में ही तैयार कर लिया था, लेकिन उसके एक भाग को प्रथम जिल्द के रूप में प्रेस के लिए तैयार करने में उनका एक वर्ष से अधिक का समय लगा था। बिना प्रेस कापी तैयार किए ही वह दूसरी और तीसरी जिल्द के हस्तलेख

को छोड़ गए थे। यदि एंगेल्स जैसा योग्य सहकारी और उत्तराधिकारी न मिलता, तो बाकी दोनों जिल्दों को छापे का मुँह देखना—विशेषकर मार्क्स की इच्छा के अनुरूप—नहीं हो सकता था। इसमें शक नहीं, यदि मार्क्स स्वयं अपने हाथ से इस काम को कर जाते, तो यह बाकी दोनों जिल्दें भी प्रथम जिल्द की तरह ही सर्वतोभद्र रूप से हमारे सामने होतीं। लेकिन मार्क्स का जीवन आगे के सोलह वर्षों में एक ओर जहाँ अध्ययन तथा दूसरे कामों में व्यस्त था, दूसरी ओर उनका स्वास्थ्य सुधरने की जगह गिरता ही जा रहा था, जिसके कारण वह इस काम को नहीं कर सके। मार्क्स की छोड़ी हुई सामग्री कितने ही स्थलों पर अस्त-व्यस्त और संकेत रूप में थी। इसे 1861 ई. से 1878 ई. तक के समय में बीच-बीच में विराम लेते हुए मार्क्स ने जमा किया था। मार्क्स का कभी अपने महान् ग्रंथ के बारे में यह ख्याल नहीं था, कि वह एक निर्भ्रान्त कम्युनिस्ट बाइबिल का स्थान लेगा। उन्हें यही आशा थी कि इसको देखकर आगे आनेवाले मनीषी और भी वैज्ञानिक अनुसन्धान करते सत्य के पास पहुँचने की कोशिश करेंगे। दूसरी और तीसरी जिल्दें वस्तुतः पहली जिल्द के आवश्यक परिशिष्ट तथा विकास हैं, तो भी सारी मार्क्सीय शास्त्रशैली को समझने के लिए उनकी अनिवार्य आवश्यकता है! पर, बाकी दोनों जिल्दों तक न पहुँच सकनेवाले पहली जिल्द के सहारे मार्क्सीय तत्त्व से वंचित नहीं रहते। पहली जिल्द में मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूल प्रश्न—धन की उत्पत्ति कैसे, लाभ का स्रोत क्या—की विवेचना की है। मार्क्स के अनुसन्धान के पहले इस प्रश्न का उत्तर परस्पर-भिन्न दो तरीकों से दिया जाता था। पूँजीवादी दुनिया के 'वैज्ञानिक' समर्थक पूँजीवादी धन की व्याख्या करते सत्य पर पर्दा डालने की कोशिश करते कहते हैं : हर एक मालिक को अपनी पूँजी को खतरे में डालने की क्षतिपूर्ति, कारबार के 'बौद्धिक प्रबन्ध', इनाम आदि उत्पादक कामों के लिए पूँजी देने की उदारता की क्षतिपूर्ति, मालों के दामों में बराबर वृद्धि का परिणाम यह धन है। इन व्याख्याकारों का उद्देश्य सदा यही रहा है कि भगवान या पुनर्जन्म के माननेवालों की तरह मुट्ठीभर लोगों को धनाढ्यता और विशाल जनसमुदाय की गरीबी को उचित ठहराया जाए।

मार्क्स के पहले के बूर्ज्वा-समाज के आलोचक जितने भी समाजवादी सम्प्रदाय थे, वह पूँजीपतियों के धन को धोखाधड़ी, कमकरों से चोरी आदि से प्राप्त कहकर छुट्टी ले लेते थे।

प्रथम जिल्द में मुख्यतः मूल्य के कानून और उसके कारण पैदा हुई मजदूरी और अतिरिक्त-मूल्य अर्थात्—इस बात की व्याख्या की गई है कि कैसे मजूरी-श्रम की उपज अपने को स्वाभाविकरूपेण बिना हिंसा या जालसाजी के एक ओर मजूरी-कमकर की कौड़ियों में और दूसरी ओर पूँजीपतियों के लिए अप्रयास लब्ध अपार धन के रूप में परिणत करती है। 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द का सबसे बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है, यह दिखलाना कि शोषण केवल तभी खतम किया जा सकता है, जब कि श्रम-शक्ति की बिक्री अर्थात्, मजूरी-व्यवस्था का खातमा कर दिया जाय।

(क) द्वितीय जिल्द—'कपिटाल' की दूसरी जिल्द में मार्क्स प्रसंगवश बतलाते हैं कि पूँजीवादी जीवन का अत्यावश्यक अंग है पावना[1]। यही उत्पादन और माल के बाजार, पूँजी के इन दो रूपों के बीच एक वैयक्तिक पूँजी के अनियमित से दिखाई पड़नेवाले संचार के बीच जोड़नेवाली शृंखला है। यही समाज में उत्पादन और उपभोग का स्थायी परिचार (परिभ्रमण) सारे समाज के तौर पर वैयक्तिक पूँजियों की गड़बड़ी में एक स्थायी परिचार को बराबर गतिशील बनाए रखता है। वह इस प्रकार काम करता है कि पूँजीवादी उत्पादन के लिए आवश्यक स्थितियाँ खतरे में न पड़ें : उत्पादन के साधनों का उत्पादन, कमकर-वर्ग को कायम रखने और पूँजीपति वर्ग के बराबर अधिकाधिक धनी होने के लिए कायम रखा जाये—अर्थात् समाज की सभी पूँजी के अधिक बढ़ते हुए संचयन और कार्यरत होने के लिए कायम रखा जाए। दूसरी जिल्द में मार्क्स इस बात की खोज करते हैं कि कैसे वैयक्तिक पूँजी की असंख्य विपर्यस्थ गतियों से एक सम्पूर्ण पूँजी विकसित होती है, कैसे सम्पूर्ण पूँजी को इस गमनागमन, बाजार की तेजी के वर्षों के अतिरिक्त धन और आर्थिक संकट के वर्षों के ध्वंस के बीच वह आगा-पीछा करता, पुनः-पुनः ठीक अनुपात में पहुँचता है। किन्तु उसका यह काम और अधिक जबर्दस्त और भारी परिमाण में लौटकर उसी तरफ चल पड़ता है। किस तरह इससे और भी अधिक शक्तिशाली और भारी आकारों में उस चीज का विकास होता है, जो कि आजकल के समाज के लिए—समाज के अपने

अस्तित्व को कायम रखने और अपनी आर्थिक प्रगति का केवल साधनमात्र है ? वह उसको भी विकसित करता है, जो कि इसका लक्ष्य है, अर्थात् पूँजी का लगातार बढ़ता हुआ संचयन। मार्क्स ने अन्तिम हल यहाँ नहीं बतलाया है, लेकिन अर्थशास्त्री ऐडम स्मिथ के बाद के दो सौ वर्षों में पहली बार उन्होंने सम्पूर्ण पूँजी को निश्चित नियमों की मजबूत नींव पर स्थापित किया है।

ऐसा होने पर भी पूँजीपति अपने कंटकाकीर्ण मार्ग को पूरी तौर से नहीं पार कर सकता, क्योंकि यद्यपि लाभ पैसे के रूप में लगातार बढ़ते हुए परिमाण में बन रहा है, तो भी समस्या उठ खड़ी होती है कि लूट को बाँटा कैसे जाय ? पूँजीपतियों के बहुतेरे भिन्न-भिन्न समुदाय लूट पर अपना-अपना दावा पेश करते हैं। कारखाना-मालिक के अतिरिक्त व्यापारी अपना दावा रखता है, ऋण देनेवाला पूँजीपति भी इसमें हिसा बँटाना चाहते हैं। हर एक ने मजूरी-कमकर के शोषण और उसके मजूरों द्वारा पैदा किए मालों के बेचने में हाथ बँटाया है, इसलिए उनमें से प्रत्येक लाभ-शुभ में अपना हिस्सा माँगता है। यह बँटवारा जितना देखने में सीधा-सादा लगता है, व्यवहार में वह उससे कहीं अधिक पेचीदा है, क्योंकि कारखानेवालों में स्वयं कारखानों से तुरन्त प्राप्त लाभों के अनुसार भारी मतभेद है। उत्पादन की एक शाखा में माल पैदा किए जाते और तुरन्त बेचे जाते हैं, तथा थोड़े से समय के भीतर पूँजी और उसके साथ सामान्य अतिरिक्त-मूल्य व्यवसाय में लौट आता है। ऐसी स्थिति में कारबार और लाभ बड़ी तेजी से होते हैं। लेकिन, उत्पादन की दूसरी शाखाओं में उपज वर्षों तक रुकी रहती, लम्बे समय के बाद ही लाभ देती है–जैसे भारी उद्योग-धन्धे में। उत्पादन की कुछ शाखाओं में मालिक को अपनी पूँजी के अधिकतर भाग को उत्पादन के निर्जीव साधनों, इमारतों, कीमती मशीनों आदि–अर्थात् ऐसी चीजों में लगाना पड़ता है, जो कि लाभ बनाने के लिए चाहे कितनी ही आवश्यक क्यों न हों, लेकिन स्वयं लाभ नहीं प्रदान करतीं। उत्पादन की दूसरी शाखाओं में ऐसी शाखाएँ भी हैं, जिनमें ऐसी चीजों में मालिक को अपनी बहुत थोड़ी-सी पूँजी लगानी पड़ती है और उसका अधिकांश भाग वह उन कमकरों के काम में लगाने में खर्च करता है, जिनमें से हर एक पूँजीपति के लिए सोने का अण्डा देनेवाली परिश्रमी बत्तक है।

इस प्रकार वैयक्तिक पूँजीपतियों के बीच लाभ कमाने की प्रक्रिया में भारी मतभेद खड़ा हो उठता है। बूर्ज्वा-समाज की दृष्टि में यह मतभेद पूँजीपति और कमकर के बीच होनेवाले विलक्षण 'विनिमय' की अपेक्षा बहुत अधिक तुरन्त का 'अन्याय' (अनौचित्य) है। उनके सामने केवल यही समस्या है कि कैसे ऐसा प्रबन्ध किया जाए, जिसमें लूट का विभाजन 'उचित' रूप से हो सके और हर एक पूँजीपति 'अपने भाग' को पा ले। सबसे बढ़कर बात यह एक ऐसी समस्या है, जिसे बिना किसी सजग और व्यवस्थित योजना के अनुसार हल करना है, क्योंकि आजकल के समाज में उत्पादन जैसे ही वितरण में भी अराजकता है। सामाजिक उपाय के अर्थ में वस्तुतः यहाँ कोई 'वितरण' है ही नहीं, और जो कुछ होता है, वह है केवल विनिमय, माल का परिभ्रमण, क्रय और विक्रय।

(ख) तृतीय जिल्द–'कपिटाल' की तीसरी जिल्द में मार्क्स इस सवाल का जवाब देते हैं कि कैसे अनियमित माल का विनिमय प्रत्येक वैयक्तिक शोषक को और शोषकों के प्रत्येक भिन्न समुदाय को सर्वहारा की श्रम-शक्ति द्वारा उत्पादित धन में भाग प्राप्त करने देता है, जो कि पूँजीवादी समाज की दृष्टि में पूँजीपति या पूँजी का 'अधिकार' माना जाता है। प्रथम जिल्द में मार्क्स ने पूँजी की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए लाभ कमाने के रहस्य को खोला। दूसरी जिल्द में उन्होंने कारखाने और बाजार के बीच समाज के उत्पादन और उपभोग के बीच पूँजी के गमनागमन का वर्णन किया। इस तीसरी जिल्द में उन्होंने सारे पूँजीपति-वर्ग के बीच लाभ के वितरण का विवेचन किया है। वह हर वक्त पूँजीवादी समाज के तीन मौलिक सिद्धान्तों को आधार मानते हुए ऐसा करते हैं : प्रथम यह कि पूँजीवादी समाज में जो कुछ घटित होता है, वह स्वेच्छाचारी शक्तियों के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि निश्चित तथा नियमपूर्वक काम करनेवाले नियमों के अनुसार होता है, चाहे वह नियम स्वयं पूँजीपतियों को अज्ञात हों। द्वितीयतः यह कि पूँजीवादी समाज के आर्थिक सम्बन्ध हिंसा, लूट और धोखा-धड़ी

---

1. Credit.

पर आधारित नहीं हैं, और तृतीयतः सारे समाज की गतिविधि पर नियंत्रण करनेवाली यहाँ कोई सामाजिक बुद्धि काम नहीं कर रही है। पूँजीवादी अर्थशास्त्र की सभी घटनाओं और सभी सम्वन्धों को पूँजीवादी समाज के विनिमय-तंत्र के आधार पर—अर्थात्, उससे उत्पन्न होनेवाले मूल्य और अतिरिक्त मूल्य के कानून के आधार पर—मार्क्स एक के बाद एक सुव्यवस्थित रूप से नंगा करके रख देते हैं।

तीनों जिल्दोंवाले इस महान् ग्रंथ को पूरी तौर से लेने पर पहली जिल्द ने मूल्य, मजूरी और अतिरिक्त-मूल्य के कानून का प्रतिविवेचन तथा आजकल के समाज के आधार को नंगा करके रख दिया है और दूसरी तथा तीसरी जिल्दों ने इन आधारों के ऊपर खड़ी इमारत को दिखलाया है। दूसरी तरह से कहने पर पहली जिल्द ने सामाजिक शरीर के हृदय का दिखाया है, जो कि सजीव रस को पैदा करता है। दूसरी तथा तीसरी जिल्दों ने सामाजिक शरीर में किस तरह रक्त का संचार और शोषण होता है, इसे बतलाया है। दूसरी और तीसरी जिल्दों ने पूँजीवादी दुनिया में नियमपूर्वक होनेवाली तेजी-मन्दी के संकट के बारे में पूरी अर्न्तदृष्टि देने का प्रयत्न किया।

4. 'कपिटाल' का स्वागत

एंगेल्स ने प्रथम जिल्द के तैयार हो जाने के बाद मार्क्स के बारे में जो आशा प्रकट की, कि अब "तुम बिलकुल दूसरे ही आदमी बन जाओगे" वह आंशिक रूप से ही पूरी हुई। मार्क्स के स्वास्थ्य में जो सुधार हुआ, वह भी स्थायी नहीं था। आर्थिक परेशानी अब भी कम नहीं हुई। इसी समय बल्कि मार्क्स ने जेनेवा में जाकर रहने का विचार सिर्फ इस ख्याल से किया था, कि वहाँ सस्ते में रहा जा सकता है। लेकिन वह लन्दन के ब्रिटिश-म्युजियम को कैसे छोड़ सकते थे ? उनको आशा थी कि शायद 'कपिटाल' का अंग्रेजी अनुवाद यहाँ रहते प्रकाशित हो सके, इससे भी उन्होंने लन्दन से जाने का ख्याल छोड़ दिया। परिवार के व्यक्तियों के जीवन में जो परिवर्तन हुए, उनसे उन्हें संताप जरूर हो सकता था। 1866 ई. के अगस्त में मार्क्स की द्वितीय कन्या लोरा का ब्याह चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थी पावल लाफार्ग के साथ होना निश्चित हो गया, लेकिन यह तय कर लिया गया था कि ब्याह से पहले लाफार्ग को अपनी मेडिकल कालेज की पढ़ाई खतम कर देनी होगी। लीयेग[1] में विद्यार्थी-कांग्रेस में भाग लेने के कारण पेरिस युनिवर्सिटी ने लाफार्ग को दो साल के लिए निकाल दिया था। इण्टरनेशनल के सम्बन्ध में वह लन्दन आया। पहले वह प्रूधों का अनुयायी था और तोलें के कार्ड को वहाँ रख आने के शिष्टाचार के अतिरिक्त मार्क्स के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था, लेकिन होनी कुछ दूसरी ही थी, जैसा कि मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा था : "पहले इस नौजवान ने मेरे साथ सम्बन्ध स्थापित किया, लेकिन देर नहीं हुई कि उसने बाप की अपेक्षा बेटी को अधिक आकर्षक पाया। वह एक भूतपूर्व प्लास्टर-परिवार की एकमात्र सन्तान है और उसकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी है।" मार्क्स के वर्णनानुसार लाफार्ग सुन्दर, बुद्धिमान, कर्मठ, शरीर से सुविकसित और सुहृदय, किन्तु थोड़ा-सा बिगड़ा हुआ था। लाफार्ग क्यूबा-द्वीप के सन्तियागो शहर में पैदा हुआ था, लेकिन जब अभी वह नौ वर्ष का ही था, तभी उसके पिता-माता उसे फ्रांस ले आए। उसकी दादी मुलाटो थी, अर्थात् दादी के द्वारा निग्रो-रक्त उसके शरीर में बह रहा था, जिसे लाफार्ग खुले तौर से स्वीकार करता था। लेकिन इसका असर उसके चमड़े पर बहुत हल्का था, तथा आँखों में अधिक सफेदी के सिवा और कुछ नहीं था। उसमें कुछ जिद्दीपन भी था, जिसके कारण कभी-कभी मार्क्स कुछ रंज और मजाक करते हुए उसे 'निग्रो खोपड़ी' कह देते थे। ससुर-दामाद का सम्बन्ध हमेशा बहुत अच्छा रहा। मार्क्स के लिए लाफार्ग केवल उनकी प्रिय पुत्री लोरा के आनन्द में सहायक दामाद ही नहीं था, बल्कि वह उनके बौद्धिक दायभाग का विश्वासपात्र रक्षक तथा योग्य और मेहनती सहायक भी था।

इस समय मार्क्स की मुख्य परेशानी अपनी किताब के बारे में थी। 2 नवम्बर, 1867 ई. को उन्होंने एंगेल्स को लिखा था : "मेरी पुस्तक के भाग्य में क्या है, यह मुझे खिन्न कर देता है। मैं कुछ नहीं सुन और

---

1. Liege.

देख पाया। जर्मन बड़े अच्छे पट्ठे हैं। अंग्रेजों, फ्रेंचों और बल्कि इतालियनों के भी लग्गू-भग्गू के तौर पर इस क्षेत्र में उनकी सफलताओं से निस्सन्देह उनको मेरी कृति की उपेक्षा करने का अधिकार है। वहाँ के हमारे मित्र नहीं जानते कि कैसे आन्दोलन करना चाहिए। इस बीच हमें रूसी चाल को देखते प्रतीक्षा करनी होगी। रूसी कूटनीति और सफलता का रहस्य धैर्य है, लेकिन हम केवल एक बार ही जिन्दगी पानेवाले गरीब प्राणी हैं, इस बीच में भुखमरी के शिकार हैं।" 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द को प्रकाशित हुए दो ही महीने हुए थे। इतने ही बीच में पुस्तक की वास्तविक और पूरी समालोचना करना संभव नहीं था, तो भी एंगेल्स और कुगेल्मान ने भरसक उसके बारे में प्रचार करने की हर एक कोशिश की। कितने ही पत्रों में 'कपिटाल' के बारे में पहले ही से सूचना प्रकाशित करने में भी उन्होंने सफलता पाई। एक जीवनी-सम्बन्धी विज्ञापन छापने का भी प्रबन्ध किया गया, जिसको रोकते हुए मार्क्स ने लिखा था : "मैं समझता हूँ, इस तरह की बात हित की जगह अनिष्ट ज्यादा कर सकती है। जो भी हो, मैं इसे साइंस के आदमी की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझता हूँ। उदाहरणार्थ, बहुत दिन पहले मेजर के विश्वकोश ने मुझसे जीवनी-सम्बन्धी नोट माँगे थे, अपेक्षित सूचना देने की बात तो अलग रही, मैंने उनके पत्र का जवाब तक नहीं दिया। हर एक आदमी की अपनी रुचि होती है।" एंगेल्स ने जो जीवनी-सम्बन्धी लेख लिखा था, अन्त में वह योहान याकोबी के पत्र 'डी जूकुन्फ्ट' में प्रकाशित हुआ, उसे पीछे लीबक्नेख्ट ने 'डेमोक्राटिशेस वोखेन्वलाट'[1] में पुनः प्रकाशित किया।

पीछे 'कपिटाल' की कुछ अच्छी समालोचनाएँ छपीं, जिनमें एक लीबक्नेख्ट के उक्त पत्र में छपी। लाजेल के शिष्य श्वाइट्जेर ने 'सोजियाल डेमोक्राट'[2] में अपनी आलोचना प्रकाशित की, योजेफ डीट्जगेन ने भी एक आलोचना छपाई। श्वाइट्जर की आलोचना से मार्क्स को यह संतोष हुआ कि उसने किताब को पूरी तौर से पढ़ा और उसके महत्त्व को समझा था। डीट्जगेन का नाम मार्क्स ने यहाँ पहली बार सुना और उसके सक्षम दार्शनिक दिमाग को उन्होंने पसन्द किया।

1867 ई. में एक 'विशेषज्ञ' ने भी मार्क्स के इस ग्रंथ पर कलम चलाई और यह था प्रोफेसर युगेन डूरिंग[3], मार्क्स से निराश होने के वाद जिसे विस्मार्क ने अपनी नौकरी में रक्खा था। डूरिंग ने मेयर्स के विश्वकोश के एक परिशिष्ट में 'कपिटाल' की आलोचना छपाई। मार्क्स इस आलोचना से असंतुष्ट नहीं हुए। एंगेल्स डूरिंग की आलोचना को उतनी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। पीछे डूरिंग ने ग्रंथ को बुरी तरह से लथाड़ा।

कवि फ्राइलीग्रथ से 1859 ई. से मार्क्स का मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था, यद्यपि कभी-कभी उसमें मामूली गड़बड़ी भी हो जाती थी। कवि ने बहुत सालों तक एक जर्मन बैंक की लन्दन शाखा में काम किया था। प्रायः साठ वर्ष की अवस्था में बैंक के बन्द हो जाने पर बुढ़ापे में उन्हें अपने मित्रों और साहित्य-प्रेमियों द्वारा संचित की जानेवाली निधि से जीवनयापन के प्रबन्ध होने की आशा थी और वह जर्मनी जाने के लिए तैयार थे। 'कपिटाल' की प्रति पाकर कवि ने उसके लिए धन्यवाद तथा तरुण लाफार्ग के साथ लोरा के ब्याह का हृदय से अभिनन्दन भेजा। पुस्तक को पढ़कर भी उसने हर्ष प्रकट किया, और कहा कि इसकी सफलता यद्यपि तुरन्त और सनसनी पैदा करनेवाली नहीं होगी, लेकिन वह बहुत गहरी और स्थायी वस्तु होगी। मार्क्स का पुराना साथी रूगे कम्युनिज्म का अब जवर्दस्त विरोधी था। मार्क्स के साथ भी उसका सम्बन्ध बहुत दिनों से बिगड़ा हुआ था, लेकिन उसने ग्रंथ को युगप्रवर्तक, बड़ी चामत्कारिक और आँखों को चौंधिया देनेवाली कृति कहने में संकोच नहीं किया। मार्क्स ने उसकी विद्वत्ता, गम्भीरता और उसकी कुशाग्र बुद्धि की सराहना की।

'कपिटाल' जर्मन भाषा में लिखा गया और उसी में वह पहले-पहले प्रकाशित हुआ। इसे शायद आकस्मिक घटना नहीं कहना होगा, कि प्रथम जिल्द के छपने के दूसरे ही साल उसके रूसी अनुवाद के तैयार होने के बारे में 12 अक्टूबर, 1867 को कुगेल्मान ने मार्क्स को सूचित किया : पितरवुर्ग के एक प्रकाशक ने रूसी अनुवाद को छपना शुरू किया है, वह उसमें देने के लिए मार्क्स का फोटो माँग रहा है। रूस, उसके शासन

1. Demo Kratishes Wochenblatt. 2. Sozial demokrat. 3. Eugene Duhring.

और समाज की मार्क्स हमेशा बड़ी आलोचना किया करते थे और एक तरह वह रूसियों से निराश-से थे, लेकिन रूसी ही उनकी इस महान् अमरकृति के प्रथम कदरदान निकले। मार्क्स के दिखलाए मार्ग के अनुसार उन्होंने ही पहले-पहल दुनिया में कम्युनिस्ट राज्य कायम किया। 'कपिटाल' ही नहीं, बल्कि मार्क्स की पुस्तक 'अर्थशास्त्र की आलोचना' की बिक्री भी रूस जितनी अधिक कहीं नहीं हुई। रूसी 'कपिटाल' 1872 ई. में प्रकाशित हुआ। अनुवादक दानियाल्सन अपने उपनाम 'निकोलाई-ओन' के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध था। 'कपिटाल' के महत्त्वपूर्ण अध्यायों के अनुवाद में एक साहसी तरुण क्रान्तिकारी लोपातिन ने मदद की थी, जिसका मार्क्स से 1870 ई. में परिचय हुआ। यद्यपि मार्क्स के राजनीतिक विचार रूसी शासकों को मालूम थे, तथापि उन्होंने पक्के वैज्ञानिक ढंग से लिखे होने के कारण ग्रंथ को प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी। 27 मार्च, 1872 को पुस्तक प्रकाशित हुई और 25 मई तक तीन हजार के संस्करण की एक हजार कापियाँ बिक गईं। इसी समय फ्रेंच अनुवाद छपने लगा था और द्वितीय संस्करण में जर्मन मूल-ग्रंथ भी दो भागों में निकाला जाने लगा था। फ्रेंच अनुवाद में ज. राय (?) को मार्क्स ने स्वयं काफी सहायता करते शिकायत की थी : अनुवाद सुधारने से कम समय लगता, यदि मैं स्वयं उसे फ्रेंच में कर डालता। इससे एक बात जरूर हुई कि 'कपिटाल' का फ्रेंच अनुवाद उतना ही प्रामाणिक है, जितना कि जर्मन मूल। जर्मनी, रूस और फ्रांस की अपेक्षा इंग्लैंड में 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द को कम सफलता मिली। सिर्फ एक छोटी-सी आलोचना 'सटर्डे रिव्यू'[1] में निकली, जिसमें कहा गया था कि मार्क्स में अत्यन्त रूखी अर्थशास्त्रीय बातों को भी सुन्दर रूप से रखने की प्रतिभा है। दूसरी लम्बी आलोचना एंगेल्स ने एक और पत्रिका[2] के लिए लिखी, लेकिन 'अत्यन्त रूखा' कहकर उसे सम्पादक ने लौटा दिया। पीछे प्रोफेसर बीसली के प्रयत्न से पत्रिका ने उसको स्वीकार किया। मार्क्स अपने जीवन में 'कपिटाल' के अंग्रेजी अनुवाद को नहीं देख सके।

16

इण्टरनेशनल का मध्याह्न

'कपिटाल' के प्रथम जिल्द के प्रकाशित होने के थोड़े ही समय बाद 2-8 सितम्बर 1867 को लोजान[3] में इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, लेकिन जेनेवा की प्रथम कांग्रेस के मुकाविले में यह नीचे स्तर की साबित हुई।

1. पश्चिमी यूरोप में

इण्टरनेशनल को कार्यक्षेत्र में आए तीन साल हो रहे थे, लेकिन जुलाई में जनरल कौंसिल ने कांग्रेस में काफी संख्या में प्रतिनिधियों के भेजने की जो अपील की थी, उसमें पहले जैसी बात नहीं थी। अपने यहाँ की प्रगति की रिपोर्ट करने में भी कितने ही देशों ने ढिलाई की। सिर्फ स्वीट्जरलैंड और बेल्जियम ने इसमें तत्परता दिखलाई थी। बेल्जियम में मार्शियान[4] में हड़तालियों की हत्या की गई थी, जिसके कारण वहाँ के सर्वहारा में उत्तेजना फैली हुई थी। 1848 ई. से पहले सामाजिक समस्याओं के बारे में जर्मनी की अधिक दिलचस्पी थी, लेकिन अब उसका सारा ध्यान राष्ट्रीय एकता की ओर लगा हुआ था। फ्रांस में भी इण्टरनेशनल की प्रगति नहीं हो पाई; लेकिन 1876 ई. के वसन्त में पेरिस के पीतल के कमकरों में उत्तेजना फैली, जब कि मालिक ने तालाबन्दी की, किन्तु कमकर अपने संघर्ष में अन्त में विजयी हुए। अपील में और देशों की स्थिति का वर्णन करते हुए इंग्लैंड के मजदूर-आन्दोलन की शिथिलता की शिकायत की गई, तो भी जनता के दबाव के कारण अनुसार

1. The Saturday Review. 2. The fortnightly Review. 3. Lausanne. 4.Marcienne

प्रधानमंत्री डिजराइली के अपने पूर्वगामी ग्लेडस्टोन के विग (उदार) मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत मताधिकार देने के लिए मजबूर होना पड़ा। अब नगर के हर एक घर का प्रत्येक भाड़ेदार भाड़े की रकम का कुछ ख्याल किए बिना वोटर स्वीकार किया गया था। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का जिक्र करते हुए इस बात पर सन्तोष प्रकट किया गया, कि वहाँ के कमकरों ने कितनी ही रियासतों में आठ घंटे के कार्यदिन मनवाने में सफलताई पाई।

जनरल-कौंसिल के प्रतिनिधि के तौर पर इकेरियस और दुपों कांग्रेस में शामिल हुए। युंग की अनुपस्थिति में कांग्रेस की अध्यक्षता दुपों ने की। प्रतिनिधियों की संख्या 71 थी, जिनमें जर्मन प्रतिनिधि थे कुगेल्मान, एफ. ए. लांगे[1], लुडविग बुखनेर और लाडेनडोर्फ–लाडेनडोर्फ अच्छा बूर्ज्वा-जनतन्त्रतावादी, लेकिन कम्युनिज्म का सख्त विरोधी था। जर्मनों से कहीं अधिक संख्या फ्रेंच और इतालियन प्रतिनिधियों की थी, जिनमें प्रूधों के अनुयायी की प्रधानता थी। कांग्रेस में मार्क्स ने कोई भाग नहीं लिया। उसके प्रस्ताव और निर्णय भी परस्पर-विरोधी हुए। सैद्धांतिक निर्णयों की अपेक्षा कांग्रेस के व्यावहारिक कार्य अधिक लाभदायक थे। इसी समय 'शान्ति और स्वतन्त्रता लीग' के नाम से एक बूर्ज्वा-संगठन कायम हुआ था, जिसकी प्रथम कांग्रेस इण्टरनेशनल की कांग्रेस के थोड़े ही समय बाद होने जा रही थी। उसने कमकरों का सहयोग भी माँगा था, जिसके बारे में कांग्रेस का सीधा-सादा जवाब था : जहाँ-कहीं भी उसके द्वारा हमारे हितों को आगे बढ़ाया जा सकता है, हम खुशी से तुम्हारा समर्थन करेंगे।

कांग्रेस के समाप्त होने के कुछ ही दिनों बाद एक घटना घटी, जिसका परिणाम बहुत व्यापक हुआ। 8 सितम्बर (1867 ई.) के दोपहर को हथियारबन्द सिनफिनों (आयरलैंड के देशभक्तों) ने एक जेलखाने की गाड़ी को घेर लिया, जिसमें दो सिनफिन बन्दी ले जाए जा रहे थे। गाड़ी के दरवाजे को तोड़कर पुलिस के एक सिपाही को गोली मार अपने साथियों को छुड़ा लिया। असली आदमी को पकड़ने में अंग्रेज सरकार कभी सफल नहीं हुई। कानून और व्यवस्था के नाम पर कितने ही दूसरे निरपराध आदमियों को पकड़कर उनपर हत्या का मुकदमा चलाया गया। कोई ठीक सबूत नहीं मिल सका, फ़िर भी उन्हें मृत्युदंड देकर फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इसके कारण इंग्लैंड में बड़ी सनसनी फैली और दिसम्बर में कमकरों और निम्न-मध्यम-वर्ग के मोहल्ले क्लेर्केनवेल के जेलखाने की दीवार को सिनफिनों ने उड़ा दिया, जिससे बारह आदमी मारे गए और सैकड़ों घायल हुए। इण्टरनेशनल का इससे कोई सम्बन्ध नहीं था। उसने क्लेर्केनवेन की दुर्घटना को एक बेवकूफी की बात कहकर सिनफिनों के लिए अधिक हानिकारक बतलाया, क्योंकि इसके कारण अंग्रेज मज़दूरों की सहानुभूति वह खो सकेंगे। लेकिन अंग्रेज सरकार ने सिनफिनों के साथ उसी तरह साधारण चोर-डाकू-अपराधियों की तरह बर्ताव किया, जिस तरह हम भारत में अभी थोड़े ही दिनों पहले देख चुके हैं। इस अमानुषिक बर्ताव को देखकर मार्क्स को जो क्षोभ हुआ, उसे जून, 1867 के एंगेल्स को लिखे पत्र में उन्होंने प्रकट किया : "यह जुगुप्सनीय सुअर अपनी अंग्रेज मानवता की शेखी बघाड़ते हैं जबकि वह अपने राजनीतिक बन्दियों के साथ हत्यारों, जालसाजों, अप्राकृतिक व्यभिचारियों की अपेक्षा बेहतर बर्ताव नहीं करते।" एंगेल्स को आयरलैंड के क्रान्तिकारियों के प्रति और भी अधिक सहानुभूति थी, जिसका एक कारण यह भी था कि उनका मृतप्रिया मेरी की बहन एलिजाबेथ बर्न्स (एंगेल्स-पत्नी) एक जबर्दस्त आइरिश देशभक्त थी।

आयरलैंड की स्वतन्त्रता के प्रति मार्क्स की भी जबर्दस्त सहानुभूति थी। बिना काफी अध्ययन और मनन के मार्क्स की कोई प्रवृत्ति हो नहीं सकती थी। आयरलैंड की परतन्त्रता के इतिहास का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर वह इस नतीजे पर पहुँचे थे कि आयरलैंड की स्वतन्त्रता के बिना इंग्लैंड का मजूर-वर्ग स्वतन्त्र नहीं हो सकता; जिसका स्वतन्त्र होना यूरोपीय सर्वहारा की स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है। इंग्लैंड में सामन्ती जमींदारों और पूँजीवादी बनियों का अजब गठबन्धन था, आयरलैंड की भूमि का बहुत बड़ा भाग और अंग्रेज जमींदारों के हाथ में था, जिनका जमा हुआ पैर उखाड़ना सर्वहारा-स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक था। उनको विश्वास

1. Lange.

था, कि आइरिश लोगों को जैसे ही स्वतन्त्रता मिलेगी, जैसे ही वह अपनी विधान-सभाएँ और सरकार निर्वाचित करेंगे, वैसे ही विदेशी अंग्रेज जमींदार दूध की मक्खी की तरह वहाँ से निकाल दिए जाएँगे; क्योंकि इन विदेशी जमींदारों के प्रति आइरिश जनता की जबर्दस्त घृणा थी। अंग्रेज पूँजीपतियों के लिए आयरलैंड कारखानों के लिए सबसे सस्ते दाम में ऊन और दूसरी चीजें प्रदान करता था, और अपने सस्ते मजदूरों को देकर इंग्लैंड के मजदूरों की माँगों की कमजोर करने में सहायता करता था। उनकी गरीबी, निरक्षरता और सस्तेपन के कारण अंग्रेज मजदूर उनके साथ समानता का बर्ताव नहीं करते। उन्हें सफेद चमड़ेवाला नीगर समझते थे। यह भेदभाव अमेरिका तक में दोनों देशों से गए मजदूरों में मिलता था, जहाँ आइरिश उतनी हीन अवस्था में नहीं थे। इंग्लैंड में सर्वहारा-क्रान्ति के सूत्रपात के लिए यह आवश्यक था कि आइरिश लोगों को इंग्लैंड के जुए से निकाला जाय। इसी लिए इण्टरनेशनल हमेशा खुलकर आयरलैंड का पक्ष लेता और इंग्लैंड के मजदूरों पर जोर देता कि वह अपने पड़ोसी देश की स्वतन्त्रता को सहानुभूति की दृष्टि से देखें और उसमें सहायता करें।

पिछले वर्षों में मार्क्स ने आयरलैंड के प्रश्न पर बराबर ध्यान दिया। जब तीन सिनफिनों को मैन्चेस्टर में मृत्युदण्ड दिया गया, तो इण्टरनेशनल की जनरल-कौंसिल ने अंग्रेज सरकार के पास आवेदन-पत्र भेजने के लिए संगठन किया, लेकिन अंग्रेज शासक क्यों उसे मानने लगे ? उन्होंने उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया। इसपर इण्टरनेशनल ने उसके विरुद्ध जबर्दस्त सभाएँ कर इस फाँसी को कानूनी हत्या घोषित की, जिसके कारण अंग्रेज सरकार नाराज हो गई और मौके से फायदा उठाकर फ्रेंच सरकार ने भी इण्टरनेशनल पर आक्रमण किया। इससे पहले तीन साल तक बोनापार्ट ने इण्टरनेशनल के मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं किया था। वह चाहता था कि इण्टरनेशनल के आन्दोलन द्वारा फ्रांस के पूँजीपति उसके प्रतिकूल घबरा जायँ। पेरिस में इण्टरनेशनल का अपना ब्यूरो था। जेनेवा-कांग्रेस ने अपनी कार्यवाही बही का स्वीट्जरलैंड में उत्पन्न किन्तु इंग्लैंड के नागरिक बन गए एक स्विस पुरुष के हाथ जनरल-कौंसिल के पास भेजा था। फ्रांस की सीमा पर उसे छीन लिया गया और विरोध करने पर फ्रेंच-सरकार कान में तेल डाले पड़ी रही। इसपर अंग्रेज विदेश-विभाग ने अपनी प्रजा के साथ ऐसे बर्ताव के लिए विरोध प्रकट किया, तब लुटेरों को कागज-पत्र लौटाने के लिए मजबूर किया गया। बोनापार्ट को इण्टरनेशनल कैसे पसन्द आ सकता था ? 1866 ई. में मजदूरों ने अनेक हड़तालें कीं और उत्तरी जर्मनी लीग के साथ लुग्जम्बुर्ग को लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उस समय पेरिस के मजदूरों ने बर्लिन के मजदूरों के साथ भाईचारा का सम्बन्ध स्थापित किया। यह सब बातें थीं, जिससे बोनापार्ट अब इण्टरनेशनल के खिलाफ कुछ करने के लिए तैयार हो, सिनफिन-षड्यंत्र का उसे केन्द्र कहा। सिनफिन अंग्रेजी के लिए कड़वा घूँट थे। इस बहाने बोनापार्ट ने एक ओर इण्टरनेशनल को ध्वस्त करना चाहा और दूसरी ओर अंग्रेजों को खुश करना। बिना वारंट के रात को इण्टरनेशनल के ब्यूरो के बीस मेम्बरों के घरों पर पुलिस ने छापा मारकर गिरफ्तार किया। 6-20 मार्च का मुकदमा चलाकर पन्द्रह मेम्बरों को अपराधी करार दे उनमें से हर एक को सौ फ्रांक का जुरमाना कर ब्यूरो को बन्द कर दिया गया। फैसले की अपील बेकार साबित हुई। मुकदमे के फैसले के बाद नये मेम्बरों का ब्यूरो स्थापित किया गया, लेकिन 22 मई को नये ब्यूरो के नौ मेम्बर भी अदालत में पेश किए गए, जिनके मुकदमे की पैरवी बर्लिन ने बड़ी योग्यता से की, किन्तु उन्हें तीन महीने की सजा मिले बिना नहीं रही। फ्रेंच सरकार की यह तत्परता बतलाती है कि पेरिस के मजदूरों में इण्टरनेशनल का प्रभाव बढ़ चला था।

बेल्जियम में भी वहाँ की सरकार ने मजदूरों पर प्रहार का मौका हाथ से जाने नहीं दिया। वहाँ के न्याय-मन्त्री दे बार[1] ने पार्लियामेण्ट में इण्टरनेशनल के खिलाफ जहर उगलते हुए उसे दबाने की धमकी देते कहा कि इण्टरनेशनल की अगली कांग्रेस ब्रुशेल्स में नहीं होने पायेगी। लेकिन बेल्जियम के मेम्बर उसकी धमकी से नहीं डरे और उन्होंने खुला पत्र लिखकर मन्त्री को जवाब दिया कि चाहे न्याय-मन्त्री पसन्द करें या न करें, इण्टरनेशनल की अगली कांग्रेस ब्रुशेल्स में होके रहेगी।

---

1. De Bara.

2. मध्य-यूरोप में

1866 ई. में जो मन्दी और आर्थिक संकट पूँजीवादी देशों में आया था, उसके कारण वहाँ चारों ओर हड़तालें होने लगी थीं। इन हड़तालों का संगठन करने में यद्यपि जनरल-कौंसिल का साक्षात् हाथ नहीं था, तथापि उसकी सहानुभूति हड़तालियों के साथ थी और जहाँ तक होता था, सलाह-मशविरे और दूसरी तरह से वह उनकी सहायता करती थी। सबसे बड़ी बात उसने यह की थी कि भिन्न-भिन्न देशों के मजदूरों में एकता स्थापित करके हड़ताल तोड़नेवाले सस्ते मजूर पूँजीपतियों को विदेश से पाने नहीं दिया था। उन्होंने मजदूरों को बतलाया कि तुम अपनी मजूरी को ठीक स्तर पर तभी कायम रख सकते हो, जब कि अपने विदेशी साथियों के मजूरी-सम्बन्धी संघर्ष में सहायता करो। इसके कारण जहाँ हड़ताल तोड़ने में पूँजीपतियों को कठिनाई हो रही थी, वहाँ इस अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे से कमकरों की हिम्मत बढ़ी हुई थी। इसलिए सच हो या झूठ, शासक सबकी जिम्मेदारी इण्टरनेशनल पर थोपते थे। प्रत्येक हड़ताल इण्टरनेशनल द्वारा चालित हड़ताल मानी जाती, और हर एक हड़ताल के बाद इण्टरनेशनल की शक्ति बढ़ जाती।

बूर्ज्वाजी ने हड़तालों को तोड़ने तथा मजदूरों को पस्तहिम्मत करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। उन्होंने कमकर-परिवारों को उनके क्वार्टरों से निकाल बाहर किया, दुकानों को उधार सौदा देने से रोका। स्वीट्जरलैंड के पूँजीपतियों ने तो यहाँ तक धृष्टता की, कि अपने आदमी लन्दन भेजकर पता लगाया कि इण्टरनेशनल को पैसे कहाँ से मिलते हैं। मार्क्स ने व्यंग करते हुए कहा था : "अगर यह भले तथा पक्के क्रिस्तान यदि ईसाइयत के आरम्भिक दिनों में रहते, तो उन्होंने रोम में धर्मदूत पाल के बैंक-एकाउंट के बारे में जाँच करवाई होती।" लाजेल के सारी कोशिश करने पर भी स्वीट्रजरलैंड में मकान बनानेवाले मजदूरों ने जो हड़ताल की थी, वह टूट नहीं सकी और मजूर इण्टरनेशनल के पक्षपाती बने रहे। अन्त में जब उनकी विजय हुई तो उन्होंने एक बड़ा जुलूस निकाला और बाजार के चौरस्ते पर बड़ी सभा करके अपना विजयोत्सव मनाया। उन्हें सभी देशों से सहायता मिली थी। उनके संघर्ष का प्रभाव एटलाण्टिक पार संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में भी दिखाई पड़ा, जहाँ पर एफ. ए. सार्गे[1] द्वारा इण्टरनेशनल अपनी जड़ जमा रही थी। सार्गे 1818 ई. में देश से राजनीतिक शरणार्थी हो निकला और अब न्यूयार्क में संगीत का अध्यापक था।

हड़ताली आन्दोलन ने जर्मनी में भी इन्टरनेशनल के लिए रास्ता साफ किया। अभी तक वहाँ की छिटपुट टुकड़ियाँ इण्टरनेशनल को मानती थीं। लाजेल के बाद उसके अनुयायियों का नेतृत्व धीरे-धीरे श्वाइट्जेर के हाथ में गया, जो कि उत्तरी जर्मन पार्लियामेंट के लिए एल्बरफेल्ट बर्मेन[2] से मेम्बर चुना गया, जब कि उसका पुराना प्रतिद्वन्द्वी तथा मार्क्स का एक योग्य शिष्य लीबक्नेक्ट स्टोलबेर्गश्नीबेर्ग[3] से चुना गया। 1856 ई. की शरद में लीबक्नेख्ट ने सेक्शन जनता पार्टी कायम करने में भाग लिया था। लीग ने समाजवादी नहीं, बल्कि उग्रवादी-जनतांत्रिक प्रोग्राम स्वीकार किया था और 1868 ई. से लाइपजिग से 'डेमोक्राटिशे वोखेनब्लाट'[4] के नाम से अपनी पार्टी का मुखपत्र निकालना शुरू किया था। श्वाइट्जेर 'अल्गेमाइनेर ड्वाशेर अर्बाइटेर्वेराइन'[5] नाम के अपने दल के पत्र का सम्पादक था। श्वाइट्जे और लीबक्नेख्ट में बराबर नोंक-झोंक रहती थी। यद्यपि उसके गुरु लाजेल का मार्क्स के साथ बहुत अच्छा सम्बन्ध नहीं था, तथापि लाजेल मार्क्स के काम के महत्त्व को समझता था। श्वाइट्जेर ने जर्मन कमकरों में 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द का प्रचार करने में लीबक्नेख्ट से भी अच्छा काम किया था। अप्रैल, 1868 ई. में उसने मार्क्स से भी कुछ सलाह माँगी थी। यद्यपि निजी तौर से श्वाइट्जेर का सम्वन्ध उतना अच्छा नहीं कहा जा सकता, तथापि मार्क्स ने श्वाइट्जेर के मजदूर-आन्दोलन के 'समझदारी और जोर' के साथ नेतृत्व करने की सराहना की, और जनरल-कौंसिल में सदा वह श्वाइट्जेर का जिक्र पराये आदमी की तरह नहीं करते थे। उसे जर्मनी के मजदूर नेताओं में सबसे अधिक योग्य और कर्मठ

---

1. Sorge. 2. Elberfeld-Barmen. 3. Stollberg Schneeberg. 4. Demokratise hes Wochenblat. 5. Allgemeiner Dentschar Arbeiter verein.

मानते थे। 1868 ई. के अगस्त के अन्त में हाम्बर्ग में अल्गेमाइनेर ड्वाशेर अर्बाइटेर्वेराइन (श्वाइट्जेर का मजूदर संगठन) का बड़ा अधिवेशन हुआ, जिसमें इण्टरनेशनल से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव श्वाइट्जेर ने स्वयं रक्खा। उसका संगठन इण्टरनेशनल के उद्देश्यों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर सकता था, उससे सम्बन्ध करने में उसे गैर-कानूनी होना पड़ता। अधिवेशन ने मार्क्स को मजदूर वर्ग के लिए उनकी वैज्ञानिक सेवाओं के लिए जर्मन कमकरों का धन्यवाद स्वीकार करने के लिए निमंत्रित किया, लेकिन मार्क्स ब्रुशेल्स-कांग्रेस की तैयारी में व्यस्त होने से नहीं आ सके। इस प्रकार लाजेल के समय से चले आते बिलगाव की खाई श्वाइट्जेर के प्रयत्न से बहुत कुछ मिट गई, लेकिन मार्क्स के शिष्य लीवक्नेख्ट[1] और श्वाइट्जेर की प्रतिद्वंद्विता अब भी उसी तरह जारी रही। मार्क्स ने श्वाइट्जेर को कई पत्र लिखे, विशेषकर 13 अक्तूबर, 1868 के पत्र में इसी बात का समर्थन मिलता है। बड़े अधिवेशन के कुछ दिनों बाद नूरेम्बर्ग में जर्मन कमकर संगठनों के एसोसिएशन की कांग्रेस हुई और इसने भी बहुमत से इण्टरनेशनल के नियमों को अपना राजनीतिक प्रोग्राम स्वीकार किया, और 'डेमोक्राटिशे वोखेन्ब्लाट' को उसका पत्र स्वीकार किया। कुछ सप्ताह पीछे 'डेमोक्राटिशे वोखेनब्लाट' ने बड़े-बड़े अक्षरों में घोषित किया कि स्ट्रटगार्ट में जर्मन जनता-पार्टी की कांग्रेस ने नूरेम्बर्ग के प्रोग्राम को स्वीकार करने का निश्चय किया है। श्वाइट्जेर और लीवक्नेख्ट के संगठन नियमों और प्रोग्राम में एक-दूसरे के बहुत नजदीक आ गए, और मार्क्स ने दोनों के बीच में पड़कर जर्मन मजदूर-वर्ग के आन्दोलन को एक करने की कोशिश भी की, किंतु उसमें सफलता नहीं हुई। आन्दोलन जितना ही बढ़ता गया, उतना ही मार्क्स की संगठन की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी, आपसी फूट को अधिक बढ़ने से वही रोक सकते थे।

3. वकुनिन

हम बतला चुके हैं कि किस तरह रूगे के सम्बन्ध से रूसी क्रांतिकारी मिखाइल बकुनिन का मार्क्स से परिचय हुआ। आगे चलकर बकुनिन ने अराजकतावाद का दूसरा रास्ता लिया, पीछे निराश हो जार और जारशाही का खुशामदी बनकर जान छुड़ाने की कोशिश करनेवाले बकुनिन का प्रभाव कमकरों के एक भाग पर उस समय और पीछे भी रहा। 6-13 सितम्बर, 1868 को ब्रुशेल्स में इण्टरनेशनल की तीसरी कांग्रेस हुई। पहले और पीछे भी होनेवाली कांग्रेसों की अपेक्षा इस कांग्रेस में सबसे अधिक प्रतिनिधि आए थे, जिनमें अधिक संख्या बेल्जियनों की थी। फ्रेंच प्रतिनिधि पंचमांश थे, इंग्लैंड के 11, जिनमें जनरल कौंसिल के 6 सदस्यों में एकेरियस, युंग, लेसनेर[2] तथा मजूर-संघी लुक्राफ्ट भी थे। स्वीट्जरलैंड से 8 प्रतिनिधि आए थे, लेकिन जर्मनी अपने 3 ही प्रतिनिधि भेज सकी थी, जिनमें कोलोन से आनेवाला मोजेज हेस था। श्वाइट्जेर[3] को भी निमंत्रण मिला था, लेकिन अपने किसी मुकदमे के काम से वह जर्मनी नहीं छोड़ सका, पर एक सन्देश भेजकर उसने इण्टरनेशनल के उद्देश्यों के साथ अपने संगठन की सहानुभूति घोषित की, और बतलाया कि कानूनी बाधा के कारण हम इण्टरनेशनल के साथ अपनी संस्था को सम्बन्धित नहीं करा सकते। अपनी आयु के चौथे साल में इण्टरनेशनल की शक्ति और धारा पहले से भी ज्यादा बढ़ गई थी। यद्यपि मार्क्स ने इस कांग्रेस के प्रस्तावों को तैयार करने में भाग नहीं लिया था, तथापि कांग्रेस की कार्रवाई से उनको असंतोष नहीं था। हाम्वर्ग और नूरेम्बर्ग की कांग्रेसों की तरह इस कांग्रेस ने भी अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा की ओर से अपने लिए किए मार्क्स के वैज्ञानिक कार्य की सराहना करते हुए धन्यवाद दिया। जेनेवा के प्रतिनिधियों के जोर देने पर इण्टरनेशनल ने युद्ध के बादलों को सिर पर मँडराते देख उसके विरुद्ध आम हड़ताल का प्रस्ताव स्वीकार किया था, जिसे मार्क्स ने मूर्खतापूर्ण बतलाया, पर 'शान्ति स्वातंत्र्य लीग' से सम्बन्ध विच्छेद करने के निर्णय को पसन्द किया। लीग की द्वितीय कांग्रेस कुछ ही समय पहले बर्न (स्वीट्जरलैंड में) हुई थी, जिसमें उसने इण्टरनेशनल से मित्रता करने का प्रस्ताव किया था, लेकिन इण्टरनेशनल ने उसको कड़ा जवाब देते हुए प्रस्ताव किया कि लीग को बन्द कर देना चाहिए और उसके मेम्बरों को इण्टरनेशनल के भिन्न-भिन्न भागों में सम्मिलित हो जाना चाहिए। बकुनिन लीग की प्रथम

---

1. Liebknecht. 2. Lessner. 3. Schweitzer.

कांग्रेस में सम्मिलित हुआ था, ब्रुशेल्स की कांग्रेस के कुछ ही महीने पहले इण्टरनेशनल में शामिल हुआ था। जब इण्टरनेशनल ने लीग के खिलाफ अपना प्रस्ताव पास कर दिया, तो उसने लीग की बर्न-कांग्रेस में अब सभी राज्यों के खतम करने का प्रस्ताव करते हुए उसके ध्वंस पर सभी देशों के 'स्वतन्त्र उत्पादन एसोसियेशनों (सभाओं) के फेडरेशन (संघ)' की स्थापना करने का समर्थन किया। लेकिन वहाँ उसकी बातचीत नहीं चली। अब बकुनिन ने योहान फिलिप, बेकेर तथा दूसरे कितने ही अल्पमत में रहे व्यक्तियों के साथ मिलकर 'समाजवादी जनतंत्रता (अंतर्राष्ट्रीय मैत्री)'[1] के नाम से एक दूसरा इंटरनेशनल खड़ा किया, जिसने बिना किसी शर्त के इण्टरनेशनल में सम्मिलित होने का निश्चय किया। बकुनिन के एलांएस (मैत्री) की स्थापना की घोषणा बेकर ने 'डेर फारबोटे' के सितम्बर अंक में प्रकाशित कर इसका उद्देश्य घोषित करते हुए कहा कि फ्रांस, इताली और स्पेन में–जहाँ कि 'मैत्री' का प्रभाव है–वह इण्टरनेशनल का अंग बनकर रहेगी। तीन महीने बाद 15 दिसम्बर, 1868 को बेकर ने जनरल-कौंसिल से प्रार्थना की कि 'मैत्री' को इण्टरनेशनल स्वीकार कर ले। लेकिन, इसी बीच में फ्रेंच और बेल्जियन फेडरल कौंसिल ने इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था। एक सप्ताह बाद 22 दिसम्बर को बकुनिन ने जेनेवा से मार्क्स को लिखा : "मेरे प्रिय मित्र, मैं इस समय सदा से अच्छी तरह और साफ तौर से जानता हूँ कि तुम आर्थिक क्रांति के महान् पथ का अनुसरण करते हमें अपने साथ चलने के लिए निमंत्रित करते उन लोगों की निंदा करते हुए कितने ठीक रास्ते पर थे, जो कि अंशतः और कभी-कभी पूरी तौर से राजनीतिक साहसों की पगडंडियों में हमारी शक्तियाँ बरबाद कर रहे थे। इस वक्त मैं अब वही काम कर रहा हूँ, जो कि तुम पिछले बीस साल से कर रहे थे। बर्न कांग्रेस में बूर्ज्वाजी के साथ मेरे पक्के और सार्वजनिक सम्बन्ध-विच्छेद के बाद से कमकरों की दुनिया के सिवाय मेरा अब न कोई दूसरा समाज है और न कोई दूसरा वातावरण। मेरी पितृभूमि अब इण्टरनेशनल है, जिसके प्रधान-संस्थापकों में तुम हो। इस प्रकार मेरे प्रिय मित्र, तुम देखते हो कि मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, जिसका मुझे अभिमान है : मेरे अपने मनोभाव और वैयक्तिक सम्मतियों के बारे में यह बात है।" हो सकता है, उस समय यह शब्द बकुनिन के हृदय से निकले हों।

बकुनिन ने कितने ही सालों बाद प्रूधों और मार्क्स के बीच में तुलना करते हुए लिखा था : "मार्क्स एक बहुत गम्भीर और संजीदा अर्थशास्त्रीय विचारक है। प्रूधों की अपेक्षा उसको एक सबसे जबर्दस्त सुभीता यह भी है कि वह वस्तुतः एक भौतिकवादी है। प्रूधों ने पुराने विज्ञानवाद की परम्पराओं से अपने को मुक्त करने की बहुत कोशिश की, तो भी वह अपने सारे जीवन में वैसा ही विज्ञानवादी बना रहा, किसी क्षण वह बाइबिल की ओर झुकता तो दूसरे क्षण रोमन कानून की ओर (जैसा कि मैंने उसकी मृत्यु से दो महीने पहले कहा था), वह सदा सिर से पैर तक एक शास्त्रान्ती (वेदान्ती) रहा। उसका यह बड़ा दुर्भाग्य था कि उसने कभी प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन नहीं किया और न उसके ढंग को अपनाया। उसके पास एक मजबूत नैसर्गिक बुद्धि थी, जो उड़ती हुई उसे ठीक रास्ता बतला जाती, लेकिन अपनी बुद्धि के बुरी और विज्ञानवादी आदतों के कारण वह अब पथभ्रष्ट हो पुनः-पुनः अपनी पुरानी गलतियों में पड़ जाता। इस प्रकार प्रूधों एक स्थायी परस्पर-विरोधों का समूह बन गया, यद्यपि एक शक्तिशाली प्रतिभावान् और क्रान्तिकारी विचारक के तौर पर वह लगातार विज्ञानवाद के मायावाद से लड़ता रहा, तथापि उस हटाने में सफल नहीं हुआ।" बकुनिन ने मार्क्स के बारे में लिखा था : "विचारक के तौर पर मार्क्स ठीक रास्ते पर है। उसने इस सिद्धान्त को जमा दिया कि इतिहास में सभी धार्मिक, राजनीतिक और वैधानिक विकास आर्थिक विकासों के कारण नहीं, बल्कि उसके कार्य हैं। यह बहुत बड़ा और लाभदायक विचार है, लेकिन इसका सारा श्रेय मार्क्स को नहीं है। उससे पहले भी बहुतों ने इसका कुछ पता पाया था और अंशतः इसको व्यक्त भी किया था, लेकिन इसका अन्तिम श्रेय मार्क्स को देना ही पड़ेगा, क्योंकि उसने इस विचार को वैज्ञानिक तौर से विकसित किया और इसे अपने सारे आर्थिक विचारों का आधार बनाया। दूसरी ओर मार्क्स की अपेक्षा प्रूधों स्वतन्त्रता के विचार को अच्छी तरह

1. Alliance.

समझता और पसन्द करता था। जिस समय सिद्धान्तों और शेखचिल्ली शाहियों के आविष्कार में नहीं लगा रहता था, उस समय प्रूधों के पास क्रांतिकारी की प्रामाणिक निसर्गज बुद्धि होती थी। वह शैतान को मानता और अराजकता की घोषणा करता था। यह बिल्कुल सम्भव है कि मार्क्स प्रूधों की अपेक्षा भी बेहतर बुद्धिपूर्वक स्वातन्त्र्य व्यवस्था को विकसित करे, लेकिन उसके पास प्रूधों जैसी निसर्गज बुद्धि नहीं है। एक जर्मन और यहूदी होने के कारण वह सिर से पैर तक अधिकारवादी है।"

बकुनिन ने प्रूधों के अराजकतावाद में मार्क्सवादी ऐतिहासिक भौतिकवाद की पुट डालकर अपना एक नया पंथ खड़ा किया। प्रूधों से बकुनिन का अध्ययन अधिक विस्तृत था, वह मार्क्स को उसकी अपेक्षा अच्छी तरह जानता था, लेकिन उसने जर्मन-दर्शन का अध्ययन नहीं किया था और न पश्चिमी यूरोप के वर्गसंघर्ष का गहराई से अध्ययन किया था। अर्थशास्त्र में तो वह पूरा भकुवा था, जो कि उसके लिए प्रूधों के प्राकृतिक विज्ञान के अज्ञान से भी अधिक हानिकारक थे।

1848 ई. की गर्मियों में—जब कि बकुनिन के साथ मार्क्स का परिचय अभी बहुत दिनों का नहीं था, 'नोये राइनिशे जाइटुंग' में बकुनिन पर आक्षेप किया गया कि वह रूसी सरकार का एजेण्ट है। यद्यपि इसका पूरा प्रमाण न होने के कारण यह आक्षेप हटा लिया गया और पीछे बर्लिन में मिलने पर मार्क्स और बकुनिन की पुरानी मित्रता फिर कायम हो गई, और प्रशियन सरकार द्वारा निष्कासित होने पर 'नोये राइनिशे जाइटुंग' ने उसका पक्ष भी लिया था; तथापि बोल्शेविक-क्रांति के बाद जारशाही के दफ्तर जब खुले, तो मालूम हुआ कि 'नोये राइनिशे जाइटुंग' का 1848 ई. वाला आरोप गलत नहीं था। ग्राफ ओर्लोफ के सुझाव पर बकुनिन ने जार के पास उस समय अपना 'प्रायश्चितनामा' भेजा था, जब कि आस्ट्रियन सरकार ने उसे पकड़कर जारशाही पुलिस के हाथ में दे दिया। इस प्रायश्चित-पत्र को 15 सितम्बर, 1851 को बकुनिन ने लिखकर खतम कर तुरन्त ही जार के पास भेज दिया था। जार ने अपने युवराज को उसे पढ़ने के लिए दे दिया और फिर दुःख्यात ओखराना (खुफिया पुलिस) के दफ्तर में दाखिल कर दिया गया। लेनिनग्राद में केन्द्रीय अभिलेखागार में 1919 ई. में मिलने पर 'प्रायश्चित' को तुरन्त ही प्रकाशित कर दिया गया। 14 फरवरी, 1857 ई. का लिखा जार के नाम बकुनिन का एक पत्र भी मिला था, जिसे भी प्रकाशित कर दिया गया। इन दोनों अभिलेखों द्वारा बकुनिन नहीं चाहता था कि उसको कड़ा दण्ड न दिया जाय। उसने अपराध स्वीकार करनेवाले पापी के तौर पर अपनी प्रार्थना जार के सामने रखी। 14 फरवरी, 1857 वाला पत्र तो 'प्रायश्चित' से भी भद्दा है : "किस नाम से मैं अपने अतीत जीवन को पुकारूँ ? मृगतृष्णा और निष्फल प्रयत्नों से आरम्भ करके उसका अन्त अपराधों में हुआ।···मैं अपनी भूलों, अपनी कुदृष्टियों और अपने अपराधों पर लानत भेजता हूँ···।" जारशाही के चरणों में पड़े इस पुराने पापी का दिखलाया राजनीतिक मार्ग किस तरह का होगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं, लेकिन जिस तरह त्रोत्स्की, राय या दूसरे पथपतितों के अनुयायी आज भी मिल सकते हैं, उसी तरह बकुनिन के भक्तों का भी अभाव नहीं है।

1867 ई. की शरद् में बकुनिन जेनेवा में जाकर रहने लगा। वहाँ उसने अपनी स्थापित की हुई गुप्त सभा के पक्ष में 'शान्ति-स्वातन्त्र्य लीग' को करने की कोशिश की। उसमें असफल होने के बाद इण्टरनेशनल के साथ सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की। मार्क्स के दिल में अब भी क्रांतिकारी बकुनिन के लिए सहानुभूति थी। वह दूसरों के आक्षेपों से उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करता था। बकुनिन ने समाजवादी जनतंत्रता मैत्री (एलायन्स) के लिए जिस दिन जनरल-कौंसिल को पत्र लिखा, उस समय तक उसने बेकेर की भेजी हुई प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था और इस अस्वीकृति में मार्क्स का बड़ा हाथ था।

बकुनिन ने अब भी आशा नहीं छोड़ी और 22 जून को उसके संगठन ने घोषित किया, कि अब मैत्री को बन्द कर इसके भिन्न-भिन्न विभागों को इण्टरनेशनल का विभाग बन जाना चाहिए। जेनेवा-विभाग, जिसका नेता बकुनिन था, इण्टरनेशनल के जनरल-कौंसिल में एकमत से ले लिया गया। बकुनिन ने अपनी गुप्त सभा को भी तोड़ देने की बात की थी, लेकिन वह किसी-न-किसी रूप में मौजूद रही। 1868 ई. की शरद् तक बकुनिन कभी जेनेवा-सरोवर, कभी जेनेवा और कभी वेवे अथवा क्लारेन्स में रहता था। फ्रेंच-इतालियन भाषी

स्विस कमकरों पर उसका काफी प्रभाव था। जनवरी 1869 में बकुनिन की प्रेरणा से उन्होंने एक संयुक्त फेडरल कौंसिल बनाई और उसकी ओर से काफी प्रभावशाली 'ला एगालेते' (समानता) नामक एक साप्ताहिक निकाला, जिसमें बकुनिन, बेकेर, एकेरियस, बर्लिन तथा इण्टरनेशनल के दूसरे प्रमुख सदस्यों के लेख निकला करते थे।

4. चौथी कांग्रेस (1869 ई.)

इण्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस 5 और 6 सितम्बर (1869 ई.) को बाजेल[1] में हुई, जिसमें इण्टरनेशनल के पाँचवें वर्ष के कामों का लेखा-जोखा लिया गया। इस समय भी यूरोप में कमकरों का वर्ग-संघर्ष चल रहा था, इण्टरनेशनल की शक्ति और प्रभाव कम होने की जगह बढ़ता जा रहा था। बूर्ज्वाजी और उनकी सरकारों ने अब इण्टरनेशनल को खूनी पंजे से दबाने का निश्चय कर लिया। इंग्लैंड में भी हड़ताली खनकों और सेना के साथ खूनी मुठभेड़ हुई। ल्वार की खानवाले इलाके में शराबी सिपाहियों से रिकामेरी[2] के पास खून की होली खेली और बीस आदमियों को मार डाला, जिनमें दो स्त्रियाँ और एक बच्चा भी था। बेल्जियम की सरकार इंग्लैंड की सरकार से भी आगे थी, जिसके बारे में मार्क्स ने लिखा था : "पृथ्वी अपनी कक्षा पर अपनी वार्षिक यात्रा को उससे अधिक निश्चिततापूर्वक नहीं पूरा करती, जितना कि बेल्जियम सरकार अपने कमकरों के वार्षिक खून की होली को।" 1868 ई. के बसंत में नये मताधिकार के अनुसार इंग्लैंड में प्रथम चुनाव हुआ, लेकिन थैलीशाहों के सामने एक भी कमकर पार्लियामेण्ट के लिए नहीं चुना गया। ग्लेड्स्टोन का मंत्रिमण्डल फिर शासनारूढ़ हुआ, लेकिन उसके दल ने निर्वाचन के समय की बातों का कुछ भी न ख्याल कर आयरलैंड के साथ समझौता या मजदूरों की शिकायतों को दूर करने की कोशिश नहीं की। 1869 ई. में बर्मिंघम में इंग्लैंड की मजदूर-सभाओं (ट्रेडयूनियनों) की वार्षिक कांग्रेस हुई, जिसमें अपील की गई, कि ब्रिटेन के सभी मजूर-संगठनों को इण्टरनेशनल के साथ हो जाना चाहिए, यह इसी लिए नहीं कि वह मजूर-वर्ग के हितों का समर्थक है, बल्कि इसलिए भी कि इण्टरनेशनल के सिद्धान्त ही दुनिया के लोगों के बीच स्थायी शान्ति कायम कर सकते हैं। 1896 की गर्मियों में इंग्लैंड और संयुक्तराष्ट्र के राष्ट्रीय मजदूर संघ के लिए एक अभिभाषण तैयार किया, जिसमें लिखा था : "युद्ध का रोकना अब यह तुम्हारी बारी है। युद्ध का अनिवार्य परिणाम होगा अटलाण्टिक के दोनों किनारों के बढ़ते हुए मजदूर-वर्गीय आन्दोलनों का पीछे हटना।" फ्रांस में मजदूर-वर्ग की गतिविधि से परेशान हो पुलिस इण्टरनेशनल के नये समर्थकों का दमन कर रही थी। जर्मनी में अवस्था कुछ भिन्न थी, क्योंकि राष्ट्रीय प्रश्न को लेकर वहाँ मजूरों में फूट पड़ गई थी। 1866 ई. के बाद आस्ट्रिया-हंगरी में मजूर-आन्दोलन जड़ पकड़ता आगे भी बढ़ रहा था।

सब मिलाकर बड़ी अच्छी स्थिति थी, जब कि सितम्बर के प्रथम सप्ताह में बाजेल में इण्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस बैठी। उसमें 78 प्रतिनिधि नौ देशों से आये थे। जनरल-कौंसिल के चार प्रतिनिधि थे—एकेरियस[3], युंग[4], एपलर्थ[5] और लुक्रफूट। फ्रांस के 26, बेल्जियम के 5, जर्मनी, के 12, आस्ट्रिया के 2. स्वीट्जरलैंड के 23, इताली के 3, स्पेन के 4 और संयुक्तराष्ट के 1 प्रतिनिधि थे। लीबक्नेख्ट और मोजेल हेस भी थे, और बकुनिन भी। सभापति का पद युंग ने सँभाला। कांग्रेस के सामने सबसे बड़ी सैद्धान्तिक समस्या थी, जमीन की सम्मिलित मिल्कियत, तथा दायभाग के अधिकार का प्रश्न। पहला प्रस्ताव ब्रुशेल्स-कांग्रेस ने तै कर लिया था, इसलिए उसके बारे में बहुत बहस-मुबाहिसे की जरूरत नहीं पड़ी। 24 वोटों से कांग्रेस ने निश्चय किया, कि समाज को भूमि पर सम्मिलित मिल्कियत कायम करने का अधिकार है, और 53 वोटों से यह भी तै किया कि सारे समाज के हित के लिए ऐसी कार्रवाई की जरूरत है। दायभाग के उत्तराधिकार के बारे में जनरल-कौंसिल ने एक रिपोर्ट तैयार की थी, जिसमें मार्क्स की समर्थ लेखनी का थोड़े-से शब्दों में बहुत-से भावों को प्रकट करने का चमत्कार देखने में आता है : दूसरे सारे बूर्ज्वा-विधानों की तरह उत्तराधिकारी के विधान (कानून) भी उत्पादन-साधनों में निजी सम्पत्ति पर आधारित समाज के आर्थिक संगठन का कानूनी परिणाम है। उत्तराधिकारी-सम्बन्धी कानून कारण नहीं बल्कि कार्य—आर्थिक संगठनों का कानूनी परिणाम है। दासों को दायभाग

1. Basle. 2. Ricamarie. 3. Eccarius. 4. Gung. 5. Applearth.

में पाने का अधिकार दासता का कारण नहीं था, बल्कि दासता दासों के दायभाग में पाने के अधिकार का कारण भी। यदि उत्पादन-साधनों को निजी सम्पत्ति की जगह सम्मिलित सम्पत्ति बना दिया जाय, तो सामाजिक महत्त्व के तौर पर दायभाग का अधिकार लुप्त हो जायगा, क्योंकि तब आदमी अपने उत्तराधिकारियों को उतना ही दायभाग के तौर पर छोड़ सकेगा, जो कि अपने जीवन में उसके पास है। इसलिए मजूर-वर्ग का प्रधान लक्ष्य है, उन संस्थाओं को तोड़ देना, जो कि बहुतों के श्रम के फल को लूटने के लिए आर्थिक शक्ति को चन्द हाथों में देती हैं। किन्तु उससे पहले सामाजिक क्रांति के आरम्भ करने के तौर पर दायभाग के कानून को उठा देने की घोषणा उसी तरह फजूल की होगी, जिस तरह खरीदारों और विक्रेताओं के बीच शर्तनामे के कानून को तब उठा देने की घोषणा, जब कि आजकल की माल-विनिमय की व्यवस्था जारी है। ऐसी घोषणा सिद्धान्त में गलत और व्यवहार में प्रति प्रतिक्रियाकारी होगी। दायभाग के अधिकार में तभी फेर-फार उसी सक्रांतिकाल में किया जाता है, जब कि एक ओर समाज का वर्तमान आर्थिक आधार हटाया नहीं गया है, और दूसरी ओर समाज को पूरी तौर से रूपान्तरित करने के लिए आवश्यक कार्रवाइयों को पूरा करने के वास्ते मजूर-वर्ग के पास काफी शक्ति आ चुकी है। संक्रांतिकालीन कार्रवाई के तौर पर जनरल-कौंसिल मृत्यु-कर के बढ़ाने और दायभाग के अधिकारों को सीमित करने को परिवार के दायभाग के अधिकार से अलग सिफारिश करती है।

लेकिन जिस कमीशन को यह सवाल सुपुर्द किया गया था, उसने दायभाग अधिकार के उठा देने को मजूर वर्ग की मौलिक माँग घोषित की। इसका समर्थन बकुनिन ने किया। वस्तुतः बकुनिन का ही यह प्रस्ताव भी था। लेकिन अन्तिम फैसला इसके बारे में कुछ नहीं हो सका, क्योंकि उसके पक्ष में काफी प्रतिनिधि नहीं थे। फिर भी इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए गए थे, उनसे भूमि-सम्बन्धी प्रस्ताव का प्रभाव भिन्न-भिन्न देशों में देखा गया। प्रस्ताव को फ्रेंच, इतालियन, स्पेनिश, पोलिश और रूसी भाषाओं में अनुवादित करके खूब बाँटा गया। लन्दन में 'भूमि और श्रम-संघ की' एक बड़ी सभा में स्थापना करते नारा लगाया गया–'भूमि लोगों के लिए !'

मार्क्स बाजेल-कांग्रेस की कार्रवाइयों से बहुत संतुष्ट हुए। उस समय वह अपनी बड़ी लड़की जेनी के साथ स्वास्थ्य-सुधार के लिए जर्मनी में यात्रा कर रहे थे। 25 सितम्बर को उन्होंने हनोवर से अपनी लड़की लोरा को लिखा : "मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बाजेल-कांग्रेस समाप्त हो गई। उसके निष्कर्ष अपेक्षाकृत अच्छे हैं।" बकुनिन भी कांग्रेस की कार्रवाई से मार्क्स से अधिक निराश नहीं हुआ। कहा जाता है, बकुनिन अपने दायभाग के उत्तराधिकारवाले प्रस्ताव द्वारा मार्क्स को हराना चाहता था, लेकिन यह बात समसामयिक अभिलेखों से अलग साबित होती है।

बकुनिन की आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी। उसकी बीवी को बच्चा होनेवाला था। उसने लोकार्नो में बसकर वहाँ से मार्क्स के 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द का रूसी में अनुवाद करने का निश्चय किया। उसके एक भक्त ने एक रूसी प्रकाशक को भी ठीक कर लिया और अनुवाद के पारिश्रमिक के तौर पर निश्चय किए गए बारह सौ रूबलों में से तीन सौ बकुनिन के पास पहुँच भी गए। बकुनिन को रूसी एजेण्ट कहनेवालों की अब भी कमी नहीं थी, जिसका जवाब वह भी 'जर्मन यहूदी' कहकर देता था, यद्यपि लाजेल और मार्क्स को वह अपवाद बतलाता था। रूसी क्रांतिकारी विचारक हेर्जेन बकुनिन के पक्ष में था, लेकिन वह यह पसन्द नहीं करता था कि छोटे-मोटे 'जर्मन यहूदियों' पर आक्रमण किया जाय और मार्क्स को अछूता रक्खा जाय। 28 अक्तूबर को बकुनिन ने इसका कारण बतलाया कि मैं क्यों मार्क्स पर आक्रमण करने से अपने को रोकता हूँ : "चाहे कितनी ही बुरी चालें उसने हमारे साथ चलीं, कम-से-कम मैं समाजवाद के लिए उनकी जबर्दस्त सेवाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता, जिसे कि उसने अन्तर्दृष्टि, शक्ति और निःस्वार्थ भाव से प्रायः पचीस वर्षों तक किया है। इसमें निस्सन्देह वह हम सबसे आगे बढ़ा-चढ़ा है। वह इण्टरनेशनल का एक संस्थापक, बल्कि मुख्य संस्थापक और मेरी दृष्टि में यह एक ऐसी जबर्दस्त सेवा है, जिसको मैं सदा स्वीकार करूँगा, चाहे मार्क्स ने हमारे खिलाफ कुछ भी किया हो।" लेकिन बकुनिन का मार्क्स के ऊपर सीधे आक्रमण न करने का एक कारण यह भी था कि इण्टरनेशनल के तीन-चौथाई लोग मार्क्स के ऊपर आक्षेप करने पर उसके विरोधी हो जाते।

बकुनिन और मार्क्स के अनुयायियों का झगड़ा बढ़ता ही गया। 18 फरवरी, (1870 ई.) के एक पत्र में बकुनिन पर कुछ पैसे-कौड़ी के मामले में सन्देह प्रकट किया गया, जिसका सबूत बकुनिन के एक अनुयायी कतकोफ के आधार पर दिया गया था। कतकोफ अपनी जवानी में बकुनिन का अनुयायी रह चुका था, लेकिन पीछे प्रतिक्रियावादियों के दल में मिल गया। मार्क्स ने इस आक्षेप को ठीक न कहकर लिखा : "पैसा उधार लेकर काम चलाना रूसियों में साधारण-सी बात है।" बकुनिन का विरोध यद्यपि बढ़ रहा था, तथापि मार्क्स को इसका सन्तोष था कि इण्टरनेशनल अब रूसी क्रान्तिकारियों में जड़ पकड़ रही है–यह भी उल्लेखनीय बात है, कि इसी समय (1870 ई. में) लेनिन ने जन्म लिया था, कि उन्हें मार्क्स का सबसे योग्य उत्तराधिकारी होने का सौभाग्य प्राप्त होनेवाला था।

इसी साल 4 अप्रैल को ला सो-दे-फोंद[1] में फ्रेंच-इतालियनभाषी स्विस फेडरेशन की द्वितीय वार्षिक कांग्रेस हुई। बकुनिन मैत्री की जेनेवा शाखा जो इण्टरनेशनल से सम्बद्ध थी, उसने कांग्रेस से माँग की कि फेडरेशन इण्टरनेशनल को स्वीकार करे और हमें भी फेडरेशन में दो प्रतिनिधि भेजने की आज्ञा दी जाय। ऊतिन[2] ने इसका विरोध करते हुए आक्षेप किया कि यह सब बकुनिन की चाल है। इसके कारण कांग्रेस में फूट पड़ गई। बकुनिन के पक्ष में 18 वोट और विपक्ष में 21 आये। अल्पमत पक्ष ने निर्णय को स्वीकार नहीं किया, जिसके कारण दो कांग्रेस बन गईं।

5. आयरलैंड और फ्रांस

1869-70 ई. के जाड़ों में फिर मार्क्स का स्वास्थ्य खराब हो गया, लेकिन अब लगातार पीछा करनेवाली आर्थिक कठिनाइयाँ नहीं रह गई थीं। 30 जून (1869) को एंगेल्स ने 'सारे व्यवसाय' से छुट्टी ले ली थी; इससे छह महीने पहले उन्होंने मार्क्स से पूछा था कि 350 पौंड वार्षिक से काम चल जाएगा या नहीं। एंगेल्स ने अपने फर्म के साथ ऐसा बन्दोबस्त किया था कि जिसमें पाँच-छह वर्षों तक यह रकम मार्क्स को बराबर मिलती रहे। एंगेल्स के इस प्रबन्ध से पाँच-छह ही वर्ष नहीं, बल्कि अपने अन्तिम समय तक के लिए मार्क्स की आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो गई थीं। इस समय दोनों मित्रों का ध्यान आइरिश-समस्या में लगा हुआ था। एंगेल्स ने आइरिश-आन्दोलन के ऐतिहासिक विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया था। मार्क्स ने इण्टरनेशनल की जनरल-कौंसिल पर जोर दिया था कि वह आइरिश-आन्दोलन का समर्थन करे, अनियमित तौर से दंडित सिनफिनों की आम माफी की माँग करे, जिनके साथ कि जेल में बहुत बुरा वर्ताव किया जा रहा था। जनरल-कौंसिल ने आइरिश जनता की अपने अधिकारों के लिए लड़ने में दृढ़ता, उदारता और हिम्मत की सराहना की। उसने ग्लेड्स्टोन की नीति की निन्दा की, जिसने कि निर्वाचन के दिये हुए वचन को तोड़कर आइरिश देशभक्तों को आम माफी देने से इन्कार कर दिया, और उसके लिए ऐसी शर्तें पेश कीं, जो कि आयरलैंड वालों के लिए अपमानजनक थीं। आइरिश-आंदोलन में मार्क्स की सबसे बड़ी लड़की जेनी भी भाग ले रही थी। उसकी सफलता को देखकर मार्क्स को बड़ी खुशी हुई। इंग्लिश पत्र आयरलैंड-वासियों के ऊपर होते वर्वरतापूर्ण अत्याचारों पर मौन रहना चाहते थे। जेनी मार्क्स ने बंदी सिनफिनो के ऊपर होते अत्याचारों का वर्णन कई लेखों में लिखकर विलियम के नाम से रोकफोर्ट के पत्र 'मार्सेई' में छपाया–1850 वाली दशाब्दी में मार्क्स ने भी विलियम के नाम से लेख लिखे थे। जेनी के लेख बड़े जोरदार थे। वह फ्रेंच पत्र में निकलकर यूरोप में इंग्लैंड की भारी बदनामी कर रहे थे। इस पर ग्लेड्स्टोन को मजबूर हो सिनफिनों को जेल से मुक्त करना पड़ा। 'मार्सेइ' नकली बोनापार्ट का जबर्दस्त विरोधी था। बोनापार्ट इण्टरनेशनल के मेम्बरों से बहुत नाराज था। उसने बम-षड्यंत्र में भाग लेने का दोष लगाकर उन्हें फँसाना चाहा। लेकिन षड्यन्त्र सावित करना जब असम्भव हो गया तो वह दोष तो हटा लिया गया। पुलिस ने इण्टरनेशनल के मेम्बरों के पास एक गुप्त-संकेतवाले कागज-पत्र पकड़ने की घोषणा की। शातें ने इस अदालत के सामने अपने साथियों की ओर से जवर्दस्त सफाई दी। तब

1. Chauxde Fonds. 2. Utin.

भी 9 जुलाई को बोनापार्टी सरकार एक साल के जेल और एक साल नागरिक अधिकार से वंचित करने का दंड दिलाने में सफल हुई, यद्यपि उसके थोड़े समय बाद वह सरकार सदा के लिए खतम हो गई। शातें ने पीछे पेरिस-कम्यून के मेम्बर के तौर पर बहुत काम किया।

17
पेरिस कम्यून

1. सेदाँ की पराजय (1870 ई.)

1848 ई. की जर्मन-क्रान्ति के असफल होने के बाद प्रशियन सरकार ने जनता की शक्ति को दूसरी ओर करने के लिए सभी जर्मनों की एकता के आन्दोलन को बढ़ाना शुरू किया। वस्तुतः यह एकता का प्रयत्न नहीं, बल्कि सभी जर्मन राज्यों पर प्रशिया का प्रभुत्व कायम करना था। जहाँ तक सारे जर्मन भाषाभाषियों की एकता का सवाल है, इसमें मार्क्स और एंगेल्स, लाजेल और श्वाइट्जेर, लीबक्नेख्ट और बेबेल पूरी तौर से सहमत थे। लेकिन कोनिग्रात्ज[1] में आस्ट्रिया को हराकर प्रशिया ने जिस जबर्दस्त शक्ति को प्राप्त कर लिया था, उसे वह अब प्रतिक्रान्ति के लिए इस्तेमाल करने को तैयार थी। उसे देखकर उन्हें यह मानना पड़ा, कि ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय क्रांति की सम्भावना नहीं है। उन्होंने यह भी समझा कि प्रशिया की इस सफलता से वर्ग-संघर्ष के लिए स्थिति और अनुकूल होगी, इसलिए मार्क्स और एंगेल्स, तथा लाजेल के उत्तराधिकारी श्वाइट्जेर ने 'उत्तर-जर्मन-लीग' को स्वीकार किया, जिसे कि प्रशिया ने स्थापित किया था। लेकिन लीबक्नेख्ट और बेबेल उत्तर-जर्मन-लीग की अपेक्षा बृहत्तर जर्मनों के ही समर्थक रहे, 1866 ई. के बाद भी उत्तर-जर्मन-लीग के ध्वंस के लिए काम कर रहे थे।

इस निष्कर्ष के बाद 1870 ई. में फ्रांस और प्रशिया के बीच होनेवाली लड़ाई के प्रति भी उनका दृष्टिकोण निश्चित हो चुका था। उन्होंने इस युद्ध के तुरन्त के उन कारणों के बारे में अपनी कोई राय नहीं दी, जो कि थे : विस्मार्क स्पेन के सिंहासन पर एक होहेनजोलेर्न राजकुमार को बैठाना चाहता था और बोनापार्ट अपने वंश के राजकुमार को, अथवा बोनापार्ट जर्मनी के खिलाफ फ्रांस-आस्ट्रिया-इताली का एक संयुक्त मोर्चा बनाना चाहता था। बोनापार्ट आस्ट्रिया को अपनी ओर खींचकर जर्मनी की राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध काम कर रहा था, इसलिए वह मानते थे कि जर्मनी जो कार्रवाई कर रही है, वह अपनी प्रतिरक्षा के लिए है। 23 जुलाई को इण्टरनेशनल की जनरल-कौंसिल की ओर से प्रकाशित होनेवाले अभिभाषण को मार्क्स ने तैयार किया था, जिसमें कि घोषित किया गया कि 1870 ई. की युद्ध-योजना 1851 ई. के कूप-द-एता (राजविराजी का) एक सुधरा हुआ रूप है, लेकिन यह द्वितीय साम्राज्य (नकली बोनापार्टी वंश) के लिए मौत की रस्सी होगी, जिससे वह उसी तरह खतम होगा, जिस तरह कि उसका आरम्भ हुआ। फिर भी यह भूलना नहीं चाहिए, कि यह यूरोप की सरकारें तथा शासक वर्ग ही थे, जिन्होंने कि बोनापार्ट के एक पुनः स्थापित साम्राज्य के लिए अठारह वर्षों तक पाशविक प्रहसन खेलना सम्भव कर दिया। जहाँ तक जर्मनी का सम्बन्ध है, यह युद्ध प्रतिरक्षात्मक है, लेकिन जर्मनी को इस स्थिति में डालने में किसने मजबूर किया ? किसने लुई बोनापार्ट को जर्मनी से युद्ध करने के लायक बनाया। प्रशिया के कोनिग्रात्ज के युद्ध से पहले विस्मार्क ने बोनापार्ट के साथ मिलकर षड्यंत्र रचा और कोनिग्रात्ज के बाद विस्मार्क ने कठोर दासता में पड़े फ्रांस के विरुद्ध स्वतन्त्र जर्मनी की स्थापना नहीं, बल्कि द्वितीय साम्राज्य की सारी घृणित चालों और धोखाधड़ियों को इस तरह इस्तेमाल किया, कि बोनाप्रार्टीय शासन-व्यवस्था राइन के दोनों किनारों पर स्थापित हो गई। इसका परिणाम युद्ध छोड़कर और क्या हो सकता

1.Koniggratz.

था ? यदि जर्मन मजदूर-वर्ग वर्तमान युद्ध के पक्के प्रतिरक्षात्मक रूप को छोड़कर उसे फ्रेंच जनता के विरुद्ध युद्ध के रूप में परिणत होने देता है, तो विजय और पराजय दोनों एक समान खतरनाक होगी और तथाकथित स्वतन्त्रता के लिए युद्धों के कारण जर्मनी की भोगी सारी तकलीफें और दुःख और भी जवर्दस्त रूप में बढ़ेंगी। इसमें मार्क्स ने यह भी लिखा था कि बोनापार्टी आक्रमण के विरुद्ध अपनी रक्षा के लिए अपने अधिकार के तौर पर जर्मन जो भी सहानुभूति पाने की आशा रखते हैं, वह उन्हें नहीं मिल सकेगी; यदि उन्होंने प्रशियन सरकार को कसाकों (जारशाही सैनिकों) से सहायता माँगने का अवसर दिया।

इस अभिभाषण से दो दिन पहले 21 जुलाई को उत्तर-जर्मन राइखस्टाग (पार्लियामेण्ट) ने बारह करोड़ डालर युद्ध के खर्च के लिए स्वीकार किए। लाजेल के अनुयायियों ने पार्लियामेण्ट में इसके पक्ष में वोट दिया, लेकिन लीबक्नेख्ट और बेबेल ने किसी ओर वोट नहीं दिया। अपने लोगों में भी कितनों ने उनके इस आचरण को पसन्द नहीं किया।

प्रशिया की सेनाओं का प्रतिरोध बोनापार्ट की सेना नहीं कर सकी, और सेदाँ की लड़ाई में इसकी घोर पराजय हुई। लुई बोनापार्ट बन्दी बना और द्वितीय साम्राज्य ध्वस्त हो गया। पेरिस में बूर्ज्वा गणराज्य की घोषणा हुई। पेरिस के पहले के देपुतियों (पार्लियामेण्ट सदस्यों) ने गणराज्य की बागडोर अपने हाथ में ले अपने को राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सरकार घोषित किया। जर्मनों के लिए अब यह लड़ाई राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का युद्ध नहीं रह गई। प्रशिया के राजा ने उत्तर-जर्मन-लीग के नेता के तौर पर अनेक बार घोषित किया था कि हम फ्रेंच जनता के विरुद्ध नहीं, बल्कि फ्रेंच सम्राट् की सरकार के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। पेरिस की नई सरकार जर्मनी को क्षतिपूर्ति देने के लिए तैयार थी, लेकिन विस्मार्क इससे सन्तुष्ट नहीं था, वह तो फ्रांस की भूमि अलसेस और लोरेन को चाहता था, जिसके लिए उसने युद्ध को जारी रखना जरूरी समझा। इण्टरनेशनल ने बेकार ही इतने दिनों तक प्रयत्न नहीं किया। उसका प्रभाव कमकर जनता पर होना जरूरी था। 5 सितम्बर को बुन्सविक कमेटी ने मजदूर-जनता को फ्रेंच गणराज्य के साथ सम्मानसहित शान्ति के पक्ष में तथा अलसेस और लोरेन के हड़पने के विरुद्ध प्रदर्शन करने की अपील की। इस अपील में कमेटी के नाम लिखे मार्क्स के पत्र का कुछ अंश भी उद्धृत किया गया था। अपील पर दस्तखत करनेवाले सैनिक अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार हो बेड़ी डालकर 9 सितम्बर को लोत्जेन के किले में पहुँचाए गए। योहान याकोबी को भी राजबन्दी बनाकर वहीं भेज दिया गया, क्योंकि उसने कोनिग्सबेग में फ्रेंच भूभाग के हड़पने का विरोध किया था : "कुछ दिनों पहले हम लोग प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ रहे थे, अपनी प्रिय पितृभूमि के लिए धर्मयुद्ध लड़ाई कर रहे थे, लेकिन आज यह विजय का युद्ध यूरोप में जर्मनिक जातियों की सर्वप्रभुता स्थापित करने का युद्ध है।" प्रशिया के सैनिक अधिकारियों ने चारों ओर अत्याचार और दमन का राज्य स्थापित कर दिया। जिस दिन बुन्सविक कमेटी के मेम्बरों को जर्मनी में गिरफ्तार किया गया, उसी दिन इण्टरनेशनल की जनरल-कौंसिल ने मार्क्स और कुछ अंश में एंगेल्स द्वारा तैयार किए अभिभाषण को प्रकाशित किया, जिसमें प्रशिया को अनुचित महत्त्वाकांक्षा और देश-विजय की भावना की सख्त निन्दा की गई। प्रशिया का दावा था कि अलसेस और लोरेन पुराने समय में जर्मन साम्राज्य के अंग थे। इसपर अभिभाषण में लिखा था : "यदि पुराने ऐतिहासिक अधिकारों के साथ यूरोप के नक्शे को फिर से बनाया जाय, तो हमें यह न भूलना चाहिए कि जहाँ तक कि उसके प्रशिया के भूभाग का सम्बन्ध है, ब्रांडेनवर्ग का निर्वाचक (शासक) किसी समय पोलिश गणराज्य का सामन्त था।" अभिभाषण में उन लोगों को भी मुँहतोड़ जवाब दिया गया था, जो कहते थे कि प्रशिया की भौतिक गारंटी के लिए अलसेस और लोरेन का हमारे हाथ में रहना आवश्यक है। एंगेल्स ने सैनिक दृष्टि से इसपर विवेचना करते हुए बतलाया था कि "यदि राष्ट्रों के भीतर सीमाओं के निर्धारित करने में सैनिक सुभीते का ध्यान रक्खा गया, और इस सिद्धान्त को मान लिया गया, तो आस्ट्रिया को नेनिस के प्रदेश तथा मिनसियो रेखा[1] तक को लेने का अधिकार होगा और फ्रांस को पेरिस की रक्षा के लिए राइन नदी की माँग करने का हक होगा। पेरिस को निश्चय ही उत्तर-पश्चिम से आक्रमण

1. Mincio Line.

होने का उससे कहीं ज्यादा खतरा है, जितना कि बर्लिन को दक्षिण-पश्चिम से। अगर सैनिक ख्याल से राष्ट्रीय सीमान्त निर्धारित किए जान लगे, तो भिन्न-भिन्न दावों का अन्त नहीं होगा, क्योंकि हर एक सैनिक स्थिति अवश्य कहीं पर कमजोर होती है, और उसके लिए और अधिक भूभाग को अपने में मिलाकर सदा मजबूत करने की इच्छा की जा सकती है। अन्त में इस तरीके से स्थापित की गई सीमाएँ कभी अन्तिम नहीं हो सकतीं, क्योंकि उन्हें विजेताओं द्वारा पराजितों पर जबर्दस्ती लादा जायगा, और इस प्रकार वह नये युद्धों का बीज बोएँगी।"

अभिभाषण में फ्रांस के बारे में लिखते हुए कहा गया था कि "गणराज्य ने सिंहासन को फेंका नहीं, बल्कि केवल खाली उसकी पीठ को अपने हाथ में ले लिया है। सामाजिक सफलता के तौर पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के उपाय के तौर पर घोषित किया गया है। गणराज्य एक स्थायी सरकार के हाथ में है, जिसमें दुःख्यात ओर्लियाती पक्षी और कितने ही बूर्ज्वा गणवादी सम्मिलित हैं। उनके वह लोग भी मौजूद हैं, जिन्होंने कि 1848 ई. के जून के विद्रोह का विरोध किया था। विभागों का बँटवारा भी बुरी तरह से हुआ है। सेना और पुलिस जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग ओर्लियातियों के हाथ में हैं और बात करनेवाले विभाग नामधारी गणवादियों के हाथ में। नई सरकार ने जो पहले कदम उठाए हैं, उनसे साफ है कि उसने द्वितीय साम्राज्य से उसकी ध्वंसराशि को नहीं, बल्कि उसके मजदूर-वर्ग के प्रति भय को दायभाग में पाया है।

"इस प्रकार फ्रेंच मजदूर-वर्ग अत्यन्त कठिन स्थिति में है। शत्रु के दरवाजों पर होने के समय नई सरकार को उखाड़ फेंकना दुस्साहसपूर्ण मूर्खता होगी। फ्रेंच कमकरों को अपने नागरिकता के कर्तव्य-पालन करने होंगे, लेकिन उन्हें 1792 ई. की राष्ट्रीय स्मृतियों को अपने पर काबू नहीं करने देना चाहिए, धोखा नहीं खाना चाहिए, जैसा कि फ्रेंच किसानों ने प्रथम साम्राज्य की राष्ट्रीय स्मृतियों में धोखा खाया था। उन्हें अतीत को दोहराना नहीं, बल्कि भविष्य का निर्माण करना है। उन्हें धैर्य और दृढ़तापूर्वक गणराज्य ने स्वतन्त्रता प्रदान की है, उसके साधनों को अपने वर्ग को अच्छी तरह संगठन करने में लगाना चाहिए। उन्हें फ्रांस के पुनरुद्धार और हमारे संयुक्तकरणीय–सर्वहारा की मुक्ति के लिए भीम जैसी शक्ति प्रदान करना होगा। गणराज्य का भाग्य उनकी शक्ति और बुद्धि पर निर्भर करता है।"

इस अभिभाषण ने फ्रेंच कमकरों में एक नया जोश पैदा किया। उन्होंने अस्थायी सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने का ख्याल छोड़ अपने नागरिकता के कर्तव्य पालन किए, विशेषकर राष्ट्रीय गारद के रूप में संगठित पेरिस के सर्वहारों ने फ्रेंच राजधानी की वीरतापूर्ण प्रतिरक्षा के लिए मुख्य तौर से भाग लिया। 1792 ई. की राष्ट्रीय स्मृति से उन्होंने अपने को अन्धा नहीं होने दिया और वर्ग के तौर पर बड़ी तत्परता से अपना संगठन किया। जर्मन कमकरों ने भी अपने करणीय को पूरा करने में कम योग्यता का परिचय नहीं दिया। दमन और जबर्दस्त खतरे की पर्वाह न करके लाजेली और आइजेनाख दोनों कमकर-समूहों ने फ्रेंच गणराज्य से सम्मानपूर्ण सन्धि करने की माँग की। जब दिसम्बर में उत्तर-जर्मन-पार्लियामेण्ट फिर युद्ध के नये खर्च पर वोट देने के लिए इकट्ठा हुई, तो दोनों समूहों के प्रतिनिधियों ने अपना वोट खिलाफ दिया। लीवक्नेख्ट और बेबेल ने विशेष तौर से बड़ी निर्भरता का परिचय दिया, जिसके कारण पार्लियामेण्ट के सत्र के खतम होने पर दोनों को भारी देशद्रोह के मुकदमे में फँसा दिया गया।

उस साल के जाड़ों में मार्क्स के ऊपर फिर कामों की भीड़ थी। अगस्त में डाक्टरों ने उन्हें समुद्र के किनारे भिजवाया था, लेकिन वहाँ उन्हें जबर्दस्त काम का सामना करके चारपाई पर पड़े रहना पड़ा। उस महीने के अन्त में जब लन्दन लौटे, तो उनके स्वास्थ्य में बहुत सुधार नहीं हुआ था। जनरल-कौंसिल के अधिकांश लोग पेरिस चले गए थे, इसलिए उसकी अन्तर्राष्ट्रीय लिखा-पढ़ी की सारी जिम्मेदारी मार्क्स ने अपने ऊपर ले ली थी। 14 सितम्बर के अपने पत्र में उन्होंने कूगेल्मान को लिखा था कि 3 बजे सवेरे से पहले मुझे चारपाई पर जाने का मौका नहीं मिलता, लेकिन साथ ही यह आशा प्रकट की थी कि एंगेल्स लंदन में बसने के लिए जा रहे हैं, इसलिए मुझे कुछ आराम मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं कि मार्क्स आशा रखते थे कि फ्रेंच गणराज्य प्रशिया की विजय के युद्ध के साथ सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकेगा। 13 दिसम्बर को मार्क्स ने कूगेल्मान को लिखा था : "जान पड़ता है जर्मनी ने केवल बोनापार्ट, उसके जनरलों और उसकी सेना को ही नहीं, बल्कि

उसके साथ सारी साम्राज्यवादी व्यवस्था को भी निगल लिया, जो कि राइन के वृक्षोंवाले देश के हर एक गाँवों और··· घर कर रही है।" प्रशियन विजेता जिस तरह का कठोर बर्ताव पराजित फ्रेंच लोगों के साथ कर रहे थे, उससे बड़ा क्षोभ हो रहा था। यह ठीक है कि अंग्रेजों ने यही काम भारत, जमैका आदि में किया है, लेकिन फ्रेंच, हिन्दू-चीनी या निग्रो (हब्शी) नहीं हैं और न प्रशियन भगवान के भेजे अंग्रेज। "यह होहेनजुलेर्न वंश का विचित्र विचार है कि अपनी स्थायी सेना के हारकर भिन्न-भिन्न हो जाने पर जो लोग अपनी प्रतिरक्षा का प्रयत्न जारी रखते हैं, वह अपराधी हैं।" फ्रेडरिक विलियम को भी यही विचार प्रथम नेपोलियन के युद्ध में सता रहे थे।

विस्मार्क ने पेरिस पर बमबारी करने की धमकी दी थी, जिसे मार्क्स ने झूठी चाल बतलाई : "सम्भवता के सभी कानूनों के अनुसार इस तरह की कार्रवाई पेरिस का बहुत ज्यादा बिगाड़ नहीं कर सकती। मान लो कुछ बाहर के मोर्चे उड़ा दिए गए, कुछ जगहों पर प्रतिरक्षा की पंक्ति टूट गई, तो इससे कितना फायदा होगा, जब कि हम जानते हैं कि घिरे हुए लोगों की संख्या घेरनेवालों से कहीं अधिक है ? पेरिस को पराजित करने के लिए एक ही वास्तविक उपाय है और वह है उसे भूखे मारना।" मार्क्स कोई सैनिक विशेषज्ञ नहीं थे, लेकिन पेरिस की बमवारी के बारे में जो बात उन्होंने कही थी, वही सलाह रून[1] छोड़कर विस्मार्क के सभी प्रधान जनरलों ने दी थी। जब विस्मार्क ने बहुत उदारता का नाटक करते हुए कहा कि फ्रेंच सरकार प्रेस और पार्लियामेण्ट में विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करने में बाधा डाल रही है, तो मार्क्स ने 16 जनवरी, 1871 ई. के 'डेली न्यूज' में इसे 'वर्लिन का व्यंग्य' कहते हुए बतलाया था कि पुलिस-राज्य द्वारा गला घुटते जर्मनी से यह आवाज निकल रही है : "फ्रांस और सौभाग्य से उसकी सारी आशाएँ अपने लिए खतम नहीं हो चुकी हैं–इस समय केवल अपनी ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए नहीं, बल्कि जर्मनी और यूरोप की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहा है।" सेदाँ की पराजय के बाद अब इस लड़ाई के बारे में मार्क्स और एंगेल्स का क्या रुख था, यह ऊपर के वाक्य से मालूम होगा।

2. फ्रांस में गृह-युद्ध

28 जनवरी, 1871 ई. को पेरिस ने आत्मसपर्मण किया। विस्मार्क और जूले फार्वे[2] ने मिलकर आत्मसमर्पण की शर्तों के बारे में समझौता तैयार किया था, उसमें यह साफ तौर से मंजूर कर लिया गया था कि पेरिस की राष्ट्रीय गारद को अपना हथियार रखने का अधिकार होगा। राष्ट्रीय एसेम्वली का जो निर्वाचन हुआ, उसमें राजवादी-प्रतिगामियों का बहुमत था। उसने पुराने षड्यंत्री थियेर[3] को गणराज्य का राष्ट्रपति चुना। अलसेस और लोरेन को हाथ से देने और पाँच मिलियार्डन (अरब) फ्रांक क्षतिपूर्ति स्वीकार करने के बाद राष्ट्रीय एसेम्बली ने पेरिस को निःशस्त्र करने का निश्चय किया, क्योंकि बूर्ज्वा थियेर और प्रतिक्रियावादी जमींदार हथियारबद्ध पेरिस को क्रांति से कम भयंकर नहीं समझते थे। 18 मार्च को थियेर ने राज्य की सम्पत्ति का बहाना करके राष्ट्रीय गारद की तोपों को जब्त करना चाहा, यद्यपि उन्हें राष्ट्रीय गारद ने घिरावे के समय अपने खर्च पर डाला था और 28 जनवरी को उन्हें राष्ट्रीय गारद की सम्पत्ति स्वीकार किया गया था। बनिये थियेर के प्रयत्न को गारद स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ, उसके खिलाफ जो सेना भेजी गई, वह बिगड़कर जनता की ओर हो गई, और इस प्रकार गृह-युद्ध आरम्भ हो गया।

3. कम्यून की स्थापना

पेरिस अब दो दलों में विभक्त हो गई : एक ओर थियेर की सरकार हथियार चमकाने लगी, जिसकी पीठ पर जर्मन विजेता थे, और दूसरी ओर पेरिस की साधारण जनता थी, जिसने 26 मार्च (1871 ई.) को कम्यून के नाम से अपनी सरकार स्थापित की। कम्यून के अधीन पेरिस के कमकरों ने अद्भुत साहस और बलिदान का परिचय दिया, जब कि थियेर के वेरसाई दल ने कानून और व्यवस्था के नाम पर कायरतापूर्ण पाशविकता दिखलाने में हद कर दी।

---

1. Roon. 2. Gules Farve. 3. Thiers.

मार्क्स ने 12 अप्रैल को कूगेल्मान को लिखा था : "कैसा पक्का और जवर्दस्त उत्साह, कैसी ऐतिहासिक आत्मप्रेरणा और कैसा आत्मत्याग ये पेरिसवाले दिखला रहे हैं। छह महीने की भुखमरी और ध्वंस के बाद—जिसको लाने में प्रकट शत्रु की अपेक्षा भीतरी विश्वासघातियों का हाथ ज्यादा रहा—वह विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए, मानो फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई लड़ाई ही नहीं हुई है, मानो प्रशिया की संगीनों का अस्तित्व नहीं, मानो शत्रु पेरिस के फाटकों पर मौजूद नहीं हैं। इतिहास में इतने भव्य रूप का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अगर पेरिसवाले पराजित होंगे, तो अपनी 'भलमनसाहत' के कारण ही। जब सेना और राष्ट्रीय गारद के प्रतिक्रियावादी अंश मैदान छोड़कर हट गए, तो उन्हें तुरन्त वेरसाई के ऊपर कूच करना चाहिए था, लेकिन उनकी सदाशयता की भावना ने उन्हें गृह-युद्ध छेड़ने नहीं दिया। मानो पेरिस को निहत्था करने का प्रयत्न करके थियेर ने वैसी कोशिश नहीं की। चाहे पेरिसवाले विद्रोह में पराजित भी हों, तो भी जून के विद्रोह के बाद से हमारी पार्टी का अत्यन्त यशस्वी काम यही होगा। तुलना करो इन स्वर्ग पर आक्रमण करनेवाले तीनों की प्रशिया-जर्मन पवित्र-रोमन-साम्राज्य के भक्त दासों से।"

मार्क्स ने यहाँ पेरिस कम्यून को 'अपनी पार्टी' का काम बतलाया है। उनका यह कहना अयुक्त नहीं था, क्योंकि कम्यून का मेरुदण्ड पेरिस का मजदूर-वर्ग था, विशेषकर इण्टरनेशनल के पेरिस के सदस्य कम्यून के सबसे निर्भय और योग्य योद्धा थे, यद्यपि कौंसिल में वह अल्पमत में थे। बूर्ज्वाजी उस समय इण्टरनेशनल के नाम से चिढ़ती थी, और यूरोप से सभी देशों में सभी गड़बड़ियों और संघर्षों का कारण उसे मानती थी। पेरिस के पुलिस के अखबार ने 19 मार्च को एक पत्र छपाकर यह दिखलाने की कोशिश की, कि इण्टरनेशनल को कम्यून का श्रेय नहीं देना चाहिए, जिसपर मार्क्स ने 'टाइम्स' में पत्र छपवाकर कहा कि उक्त पत्र झूठी जालसाजी का नतीजा है। मार्क्स जानते थे कि इण्टरनेशनल ने कम्यून को नहीं बनाया, लेकिन उसके आरम्भ से ही इण्टरनेशनल उसका अभिन्न अंग हो गया था। कम्यून की कौंसिल में ब्लांके के अनुयायियों का बहुमत था। उसके बाद अल्पमत यद्यपि इण्टरनेशनल से सम्बद्ध था, तथापि उसके विचार अधिकतर प्रूधों के थे। इस प्रकार दोनों ही पक्ष मार्क्स के समर्थक नहीं थे। कम्यून के काल में मार्क्स ने उसके अल्पमत के साथ सम्बन्ध कायम रखने की कोशिश की। मार्क्स के पत्र के जवाब में (जो कि लोक-कार्य-विभाग के एक प्रतिनिधि ल्यूफ्रांकेल के पास सुरक्षित रहा) 25 अप्रैल को लिखा गया, "मुझे बड़ी खुशी होगी, यदि आप यथासम्भव मुझे अपनी सलाह से सहायता करें, क्योंकि इस समय लोक-कार्य-विभाग में जो भी सुधार मैं करना चाहूँ, उसके लिए मैं पूरी तौर से जिम्मेदार हूँ। तुम्हारे पिछले पत्र की एक या दो पंक्तियाँ इस बात को बतलाने के लिए काफी थीं, कि तुम सभी लोगों और सभी कमकरों, खास कर जर्मन कमकरों को यह समझाने के लिए हर सम्भव तरीके से प्रयत्न करोगे कि पेरिस कम्यून की बाबा आदम के जमानेवाली जर्मन-कम्यून से कोई समानता नहीं है। जो भी हो, इसके बारे में हमारे उद्देश्य के लिए आप अच्छी सेवा करेंगे।" मार्क्स ने इस पत्र का क्या जवाब, क्या सलाह दी थी, इसका पता नहीं। फ्रेंकल और वर्लिन द्वारा भेजा गया दूसरा पत्र भी खो गया, लेकिन उसके जवाब में 13 मई को मार्क्स ने जो लिखा था, उसके कुछ अंश निम्न प्रकार हैं : "पत्रवाहक से मैंने बात की है। क्या यह अच्छा विचार नहीं होगा, कि वेरसाई के लुच्चे[1] के लिए ऐसे विश्वासघाती कागजों को एक सुरक्षित स्थान में रख दिया जाय ? इस तरह की सावधानी की कार्रवाई से कोई हानि नहीं हो सकती। बोर्दों से एक पत्र मुझे मिला है, जिससे मालूम होता है कि पिछले म्युनिसिपल चुनाव में इण्टरनेशनल के चार मेम्बर विजयी हुए। अब मुफस्सिल में भी घटनाएँ घटने लगी हैं, यद्यपि दुर्भाग्य से उसका प्रभाव स्थानीय तथा शान्तिपूर्ण है। हमने दुनिया के सभी कोनों में जहाँ पर भी हमारे सम्बन्ध हैं—कितने ही सौ पत्र आपके बारे में लिखे हैं। अस्तु आरम्भ से ही मजूर-वर्ग कम्यून के पक्ष में हैं। अंग्रेज बूर्ज्वा अखबार भी प्रारंम्भिक शत्रुओं के भाव को अब छोड़ चुके हैं। समय-समय पर उनके कालमों में एकाध अनुकूल लेख घुसेड़ने में मैं सफल हुआ हूँ। मुझे जान पड़ता है कि कम्यून महत्त्वहीन विवरणों और वैयक्तिक झगड़ों में अपना बहुत-सा समय

1. **Canaile.**

बरबाद कर रही है। यह स्पष्ट है कि उसमें सर्वहारा के अतिरिक्त दूसरों के प्रभाव भी काम कर रहे हैं। लेकिन इससे कोई हर्ज नहीं, यदि अंतिम समय तुम अपने को ठीकठाक कर सको।" अन्त में मार्क्स ने इस जल्दी कार्रवाई को करने की आवश्यकता पर यह कहते जोर दिया कि तीन दिन पहले फ्रांकफोर्त (माइन-तटीय) में जर्मनी और फ्रांस के बीच सन्धि हो चुकी है। कम्यून को दबा देने के लिए अब विस्मार्क भी थियेर की तरह ही उत्सुक है, विशेषकर इस ख्याल से कि सन्धि पर हस्ताक्षर होने के साथ ही युद्ध की क्षतिपूर्ति की अदायगी का काम शुरू हो जायगा। मार्क्स ने कम्यून के पास अपने सलाह-मशविरे, पत्रों द्वारा दिए, लेकिन कम्यून के भीतर सीधे भाग लेने की इच्छा नहीं प्रकट की, जैसा कि उन्होंने पीछे कम्यून की असफलता के बाद किया। कम्यून की जिम्मेवारी उन्होंने अपने ऊपर ली, लेकिन वह चाहते थे कि स्वयं जा वहाँ अधिनायक बनने का ख्याल छोड़ स्थानीय लोगों को सब काम अपनी इच्छानुसार करने देना चाहिए

28 मई को कम्यून के अन्तिम योद्धा मैदान में गिरे। मार्क्स कम्यून के रोज-रोज के जीवन को कितनी बारीकी से देख रहे थे, यह इसी से मालूम होगा कि उसके दो दिन बाद उन्होंने जनरल-कौंसिल के सामने 'फ्रांस में गृह-युद्ध' के नाम से एक अभिभाषण पेश किया। यह मार्क्स की लेखनी से निकली अत्यन्त चमत्कारिक कृतियों में से है, और आज तक कम्यून के बारे में जितनी जिल्दें निकली हैं, उसके भीतर यह हीरे की तरह चमकता है। जंगल के बीच से अपने पथ को ढूँढ़ निकालना, कूड़े-करकट के बीच से वास्तविक तत्त्व को चुनना मार्क्स का ही काम था। अभिभाषण के दो, चौथे और अन्तिम अनुच्छेद में पहले घटनाक्रम का वर्णन किया गया है, उसमें उन सच्चाइयों का प्रकाश किया गया है, जिसके एक वाक्य का भी पीछे कभी खंडन नहीं हुआ। पेरिस कम्यून को मार्क्स मानव-इतिहास की अद्वितीय घटना मानते थे। इतिहास में यही पहली बार सर्वहारों ने एक बड़े नगर के शासन को हाथ में लेकर अपनी सूझ और साधनों के अनुसार भीषण शत्रुओं से लड़ते हुए राज्य चलाने की कोशिश की थी। 26 मार्च से 28 मई तक अद्भुत वीरता और निःस्वार्थता के साथ इस ऐतिहासिक और महान् शासन तजर्बे को उन्होंने कर दिखाया था। भविष्य में सर्वहारा के स्थायी शासन दुनिया के बड़े-बड़े देशों में कायम होंगे। एक समय सारे विश्व में वर्गहीन समाज स्थापित करके सर्वहारा अपना शासन स्थापित करेंगे, लेकिन यही हमेशा कहना पड़ेगा कि दो महीने के पेरिस कम्यून का शासन इतिहास की इस प्रकार की पहली घटना है। अपने इस निबन्ध द्वारा मार्क्स का काम कम्यून के विस्तृत इतिहास लिखने का नहीं था। वह अपनी लेखनी द्वारा कम्यून के सम्मान की प्रतिरक्षा करना चाहते थे, जिसे कि शत्रु कलंकित करने का प्रयत्न करते थे। इसे खंडनात्मक रूप में कम्यून के वकील के तौर पर मार्क्स ने लिखा था। "प्रत्येक क्रांति में क्रांति के वास्तविक प्रतिनिधियों से बिल्कुल भिन्न आचरणवाले लोग अपने को दूसरों की पंक्ति में घुसेड़ देते हैं। इनमें से कुछ पहिले की क्रांतियों के अवशेष हैं, जिनके साथ उनका पूरा गठबन्धन है। ऐसे लोग वर्तमान क्रांति को समझने में असमर्थ हैं, लेकिन अपनी प्रसिद्ध हिम्मत और उच्च चरित्रबल या शायद केवल परम्परा के कारण साधारण जनता पर उनका अब भी काफी प्रभाव है। दूसरे ऐसे लोग भी होते हैं, जो कि केवल हल्ला-गुल्ला करनेवाले हैं, जो विद्यमान सरकार के विरुद्ध वर्षों उसी तरह की बकवास दोहराते रहते हैं। इस प्रकार झूठे ढोंगों से उन्हें प्रथम श्रेणी के क्रांतिकारी होने की ख्याति मिल जाती है। 18 मार्च के बाद ऐसे लोग भी वहाँ प्रकट हुए। कितनी ही बार इन्होंने प्रधान पार्ट भी अदा किया। जहाँ तक उनसे हो सका, उन्होंने उसी तरह मजूर-वर्ग की वास्तविक कार्रवाई में बाधा डाली, जैसा कि पहले की सारी क्रांतियों के पूरे विकास में डाला था।" मार्क्स ने बतलाया कि ये लोग अनिवार्यतया मौजूद होनेवाली बुराइयाँ थीं। अगर समय मिला होता, तो ऐसे लोगों से कम्यून ने छुट्टी ले ली होती, लेकिन उसे तो केवल दो महीने का समय मिला था।

अभिभाषण के तीसरे अनुच्छेद में कम्यून के ऐतिहासिक रूप की विवेचना की गई थी, जिसका खास महत्त्व है। मार्क्स ने सूक्ष्मदर्शिता के साथ कम्यून और उस जैसी मालूम होनेवाली दूसरी ऐतिहासिक संस्थाओं के बारे में मध्ययुगीन कम्यून से प्रशिया की पौर (म्युनिसिपल) व्यवस्था के भेद को बतलाया : "केवल एक विस्मार्क···केवल (उसके जैसे) मनोभाव पेरिस कम्यून को 1791 ई. के पुराने फ्रेंच म्युनिसिपल संविधान के अनुकरण

करने की चाह रखने का श्रेय देने की बात कह सकते हैं। प्रशियन पौर (म्युनिसिपल) व्यवस्था ने अपने पौर शासन प्रबन्ध में केवल प्रशियन राज्य-मशीन का एक मामूली-सा पुर्जा बनने का रूप लिया था।" मार्क्स ने बतलाया कि यह कम्यून वस्तुतः एक राजनीतिक ढाँचा था, जो कि आसानी से अपने को बढ़ा सकता था, जब कि सभी शासन के ढाँचे का केवल मुख्यतः दमनकारी रूप था : "इसका वास्तविक रहस्य यह था कि वह सारतः मजूर-वर्ग की सरकार थी और उत्पादक और हड़पक वर्गों के बीच के संघर्ष से पैदा हुई थी। यह अन्तिम राजनीतिक ढाँचा आविष्कृत हुआ था, जिसके अधीन श्रम की आर्थिक मुक्ति हो सकती थी।"

यद्यपि कम्यून के प्रोग्राम और कार्रवाइयाँ विस्तारपूर्वक नहीं तैयार हुई थीं, तथापि उसने अपने दो महीने के जीवन में व्यवहारतः राज्य-संचालन के लिए जो कुछ किया था, उसके आधार पर मार्क्स ने बतलाया कि कम्यून ने ऐसी नीति का अनुसरण किया, जिसका एक मुख्य उद्देश्य राज्य का ध्वंस था—राज्य अपने अत्यन्त भ्रष्टाचारपूर्ण (द्वितीय साम्राज्य के) रूप में समाज के शरीर पर एक 'जोंक-सी बुद्धि' से अधिक कुछ नहीं था, जो कि समाज की शक्ति को चूसकर उसके स्वतन्त्र विकास में बाधा डाल रहा था। कम्यून की पहली डिग्री (घोषणा) द्वारा स्थायी सेना को हटाकर उसकी जगह हथियारबन्द जनता को स्थापित किया गया। कम्यून ने अब तक सरकार की केवल हथियार से बनी पुलिस-शक्ति को सभी राजनीतिक अधिकारों से वंचित करके उसे कम्यून के लिए जवाबदेह औजार के रूप में परिणत कर दिया। पुरानी सरकार के भौतिक हथियार-स्वरूप स्थायी सेना और पुलिस को खतम करने के बाद कम्यून उसके दमन के आध्यात्मिक हथियार—पादरियों की शक्ति को तोड़ने चली। उसने अपनी घोषणा द्वारा सम्पत्ति के मालिक के तौर पर सभी चर्चों को खतम कर उनकी सम्पत्ति छीन ली। उसने सभी शिक्षा संस्थाओं को जनता के लिए निःशुल्क खोल दिया, और राज्य तथा चर्च की ओर से ऐसी संस्थाओं में होनेवाली सारी बाधाओं से हटा दिया। अन्त में कम्यून ने पुरानी नौकरशाही को जड़-मूल से खतम कर दिया, जब कि उसने जजों (न्यायाधीशों) सहित सभी सरकारी अफसरों को निर्वाचित तथा किसी समय भी बर्खास्त कर देने का नियम बना राज्य के नौकरों का सर्वाधिक वेतन छह हजार फ्रांक (वार्षिक) निश्चित कर दिया। कम्युनिस्ट-घोषणापत्र में मार्क्स ने यद्यपि सर्वहारा-क्रांति द्वारा बूर्ज्वा-राज्य की राजनीतिक संस्थाओं और शासन-तंत्र के खतम करने, उठा देने की बात लिखी थी, लेकिन वहाँ उन्होंने इसे धीरे-धीरे होने की बात कही थी। पेरिस कम्यून के तजर्बे ने बतला दिया कि क्रांति की सफलता के लिए पुराने शासन-यन्त्र का—पुरानी नौकरशाही का—तुरन्त खातमा बहुत जरूरी है। क्रांति की बात तो छोड़िए, हमारे भारत जैसे देश में कुछ अधिक सुधार करने में भी अंग्रेजों के समय से चली आती नौकरशाही आज सबसे जबर्दस्त बाधा दीख पड़ रही है। क्रांति के लिए इस शासन-यंत्र का तुरन्त उखाड़ फेंकना जरूरी है, यही समझकर जून, 1872 ई. में कम्युनिस्ट-घोषणापत्र के नये संस्करण के प्राक्कथन में मार्क्स और एंगेल्स को अपनी पुरानी राय बदलनी पड़ी और कहना पड़ा कि विजयी कमकर राजशक्ति पर अधिकार करके पहले ही से तैयार राज्य-यन्त्र का अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते। इस बात को जार की नौकरशाही को हटाकर सोवियतों (जन-निर्वाचित पंचायतों) के रूप में नये शासन-यन्त्र को स्थापित करके रूसी-क्रांति ने सफलता पाई, इसे आज सभी जानते हैं।

अपने अभिभाषण का उपसंहार करते हुए मार्क्स ने लिखा था : "कमकरों और उनके कम्यून की पेरिस हमेशा नये समाज के यशस्वी सन्देशवाहक के तौर पर याद की जायगी। उसके शहीद मजदूर-वर्ग के विशाल हृदय में प्रतिष्ठापित रहेंगे। उसके ध्वंसकर्ता अभी ही इतिहास द्वारा घृणास्पद साबित हो गए हैं। वह ऐसे अभिशाप से अभिशप्त हैं, जिस अभिशाप से उनके पादरियों और पुरोहितों की प्रार्थनाएँ उन्हें मुक्त नहीं कर सकतीं।" अभिभाषण का प्रभाव तुरन्त देखा गया, जब कि चारों ओर से मार्क्स पर वाक्‌बाण की वर्षा होने लगी। मार्क्स ने कूगेल्मान को इसके बारे में लिखा था : "इस (अभिभाषण) ने शैतान के कूल्हे पर ठोकर मारी है। इस क्षण लन्दन में सबसे अधिक गाली खानेवाले और धमकाए जानेवाले आदमी होने का सम्मान मुझे प्राप्त है। यह मेरे लिए अच्छा है, बीस साल के लम्बे और उबा देनेवाले दलदल में रहनेवाले मेढ़क जैसे बेकार से एकान्तवास के बाद इसने मेरे लिए अच्छा किया। सरकारी पत्र 'ऑब्जर्वर' मुझपर मुकदमा चलाने की धमकी तक दे रहा है। आवें वह यह भी कोशिश करके देख लें।" जैसे ही यह बवंडर शान्त हुआ, मार्क्स ने घोषित किया कि

अभिभाषण का लेखक मैं हूँ। आगे चलकर मार्क्स के ऊपर आक्षेप किया गया कि उन्होंने कम्यून की सारी जिम्मेवारी लेकर इण्टरनेशनल को खतरे में डाल दिया, लेकिन मार्क्स कम्यून को इण्टरनेशनल से अलग करके देख नहीं सकते थे, और न वह इतिहास को झुठलाना चाहते थे।

4. इण्टरनेशनल और पेरिस कम्यून

पेरिस कम्यून के बाद इण्टरनेशनल के शत्रुओं की संख्या और बढ़ गई। दुनिया में चारों ओर के प्रतिक्रियावादी उसे खुलकर गालियाँ देने लगे, जिसका एक यह फायदा जरूर हुआ कि उसके कारण इंग्लैंड के अखबारों में जनरल-कौंसिल को जवाब देने का मौका मिला, जो घाटे का सौदा नहीं था। इण्टरनेशनल के लिए एक बड़ी समस्या और उठ खड़ी हुई थी, कम्यून के नष्ट कर दिए जाने पर उसके लिए काम करनेवाले बहुसंख्यक लोग बेल्जियम, स्वीट्जरलैंड, विशेषकर लन्दन में भाग गए। इण्टरनेशनल के पास पैसे की शक्ति नहीं थी और इन शरणार्थियों को सहायता करने के लिए पैसे जमा करने के वास्ते बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। कई महीनों तक उसका सारा प्रयत्न इसी ओर लगा रहा। अब सरकारों ने भी इण्टरनेशनल को खतम करने का बीड़ा उठाया। यूरोप के सभी देशों में उसके खिलाफ सरगर्मी से काम होने लगा। कोशिश यह की गई, कि सभी देशों की सरकारें मिलकर एकसाथ हमला कर दें, और वर्ग-चेतना रखनेवाले सर्वहारों को दबा दें, लेकिन आपस के विरोधी स्वार्थों के कारण सभी सरकारें एकताबद्ध नहीं हो सकीं। 7 जून, 1871 ई. को फ्रेंच सरकार की ओर से जूले फार्वे ने दूसरी सरकारों के पास परिपत्र भेजा था, लेकिन विस्मार्क तक ने भी उसकी ओर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि वह जानता था कि जर्मन समाजवादी जनतांत्रिकता के लाजेलीय और आइजेनाख दोनों दल कम्यून के समर्थक थे। कुछ समय बाद स्पेन की सरकार ने भी इसके लिए सरगर्मी दिखलाई, और उसके विदेश-मन्त्री ने सभी सरकारों के पास परिपत्र भेजकर कहा : "यह काफी नहीं कि सरकारें अलग-अलग इण्टरनेशनल के विरुद्ध आवश्यक कड़े उपाय काम में लाएँ, और अपने-अपने देशों में उसके विभागों के खिलाफ बड़ा कदम उठाएँ। सभी सरकारों को एकताबद्ध हो इस पाप को खतम करने के लिए एकताबद्ध होना चाहिए।" शायद इसका कुछ प्रभाव पड़ता, लेकिन अंग्रेज सरकार ने इसका उत्तर बड़े उपेक्षापूर्वक दिया और लार्ड ग्रेनविल ने कहा : "इस देश में इण्टरनेशनल ने अपने कामों को मुख्यतः हड़ताल में सलाह देने तक सीमित रक्खा है, और ऐसी कार्रवाई का समर्थन करने के लिए उसके पास बहुत ही सीमित फण्ड है। इण्टरनेशनल की क्रांतिकारी योजनाएँ केवल उसके विदेशी मेम्बरों की राय हैं। ब्रिटिश कमकरों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, जिसका कि ध्यान मुख्यतः मजूरी के सम्बन्ध में रहता है। विदेशी का इंग्लैंड में देश के कानून की दृष्टि से वही अधिकार है, जो कि ब्रिटिश प्रजाजन का, इसलिए उनके खिलाफ बिना दूसरे कारणों के कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।"

यद्यपि शत्रुओं ने मिलकर इण्टरनेशनल के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ने का मौका नहीं पाया, लेकिन यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में उसकी शाखाओं को दमन का सामना करना पड़ा था। इस दमन से भी ज्यादा इण्टरनेशनल के लिए बुरी बात यह हुई कि इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के जिस मजदूर-वर्ग पर उसका बहुत ज्यादा भरोसा और अभिमान था, उसमें अब शिथिलता पैदा होने लगी थी। फ्रांस में थियेर और फार्वे की राजवादी-प्रतिगामी राष्ट्रीय एसेम्बली ने इण्टरनेशनल के विरुद्ध जबर्दस्त कानून पास किया, जिसने फ्रेंच मजदूर-वर्ग को लुंज बना दिया। वह इस कारण भी कि इससे पहले ही खून की होली खेलकर उसे दबाया जा चुका था। इन कसाइयों ने इतने ही से सन्तोष नहीं किया, बल्कि स्वीट्जरलैंड और इंग्लैंड की सरकारों से वहाँ भागकर शरण लेनेवाले कम्यूनियों को लौटाने की माँग की। इसके बाद इण्टरनेशनल के जनरल-कौंसिल का सम्बन्ध फ्रेंच कमकरों से टूट गया। उसने उनके प्रतिनिधि के तौर पर कम्यून में भाग लेनेवाले इण्टरनेशनल के पुराने मेम्बरों तथा कुछ नये व्यक्तियों को भी ले लिया। लेकिन यद्यपि इसका उद्देश्य था कम्यून को सम्मानित करना, तथापि इसके कारण आपस में जो संघर्ष उठ खड़ा हुआ, उसके कारण इण्टरनेशनल को बहुत नुकसान पहुँचा। नवम्बर, 1871 तक फ्रेंच शरणार्थियों के इस तू-तू, मैं-मैं से परेशान होकर मार्क्स को लिखना पड़ा : "उनके पक्ष में अपने करीब पाँच महीनों को खर्च करने और अभिभाषण में उनके सम्मान के लिए लड़ने का मुझे यह पारितोषिक मिल रहा है।"

एक तरफ फ्रेंच शरणार्थियों की यह दशा थी, दूसरी तरफ अंग्रेज कमकरों ने भी इण्टरनेशनल से अपना हाथ खींच लिया। लुक्राफ्ट, ओडगेर जैसे जरनल-कौंसिल के प्रमुख मेम्बरों ने मार्क्स के फ्रांस में गृह-युद्धवाले अभिभाषण के कारण कौंसिल से इस्तीफा दे दिया। अब अंग्रेज मजूर-सभाओं का लक्ष्य था, पूँजीवादी समाज के आधार पर मजूरों की हालत में सुधार करना, जिसके लिए वह कोई उग्र क्रांतिकारी संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे; इंग्लैंड का मजूर-वर्ग इण्टरनेशनल की सहायता तब तक ही चाहता था, जब तक कि उसके दबाव से सुधार-बिल पास हो जाए। जब सुधार-बिल पास हो गया, तो मजूर-नेताओं ने पार्लियामेण्ट में अपने लिए जगह बनाने के लिए उदार-दलियों की खुशामद करनी शुरू की। इंग्लैंड के मजूर-वर्ग के इण्टरनेशनल से अलग हो जाने पर मार्क्स ने साफ तौर से कह दिया था कि उन्होंने उदार-मंत्रालय के हाथ में अपने को बेच दिया। 1870-71 ई. में इंग्लैंड की मजूर-सभाओं और मजूर-वर्ग के अधिकांश भाग तथा उसके सभी नेताओं ने जो रास्ता अख्तियार किया, तो "वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है।" मजूर-सभाओं के नेता 1871 ई. में ही कहने लगे थे—जैसा कि उनमें से एक ने रायल-कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि हड़तालें कमकरों और उनके मालिकों दोनों के पैसे और शक्ति की केवल मूर्खतापूर्ण बरबादी है। इंग्लैंड के जिन कमकर संगठनों ने अब भी इण्टरनेशनल के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रक्खा था, उन्होंने भी माँग की कि हमारे लिए एक खास फेडरल कौंसिल कायम की जाए। मार्क्स को अन्त में इसे मानना पड़ा। पेरिस कम्यून के पतन के बाद नई क्रांति की सम्भावना दूर हो गई थी, इसलिए मार्क्स अब जनरल-कौंसिल के प्रति उतनी लगन नहीं दिखला सकते थे। फेडरल कौंसिल की स्थापना के बाद, जहाँ तक इंग्लैंड का सम्बन्ध था, इण्टरनेशनल का बाकी बचा असर भी खतम होने लगा। उधर बकुनिन भी अपनी नेताशाही कायम करने के लिए चालें चल रहा था।

18
इण्टरनेशनल की अवनति

1. अवसाद

1869 ई. में बाजेल की कांग्रेस ने पेरिस इण्टरनेशनल की दूसरी कांग्रेस बुलाने का निश्चय किया था, लेकिन वहाँ की राजनीतिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि पेरिस में कांग्रेस की जाती, इसलिए जुलाई, 1870 ई. में जनरल-कौंसिल ने मयेन्स[1] में कांग्रेस का अधिवेशन करने का निश्चय किया। प्रशिया और फ्रांस की लड़ाई ने मयेन्स में भी कांग्रेस को होने नहीं दिया। भिन्न-भिन्न देशों की सरकारें जो दबाव डाल रही थीं, उससे मालूम हो रहा था कि वहाँ से प्रतिनिधियों का आना सम्भव नहीं होगा। इसपर जनरल-कौंसिल ने यही निश्चय किया कि 1865 ई. की तरह लन्दन में एक निजी कान्फरेंस की जाय और सार्वजनिक कांग्रेस बुलाने का ख्याल छोड़ दिया जाय। इस कान्फरेंस में बहुत कम संख्या में लोग (कुल 23) उपस्थित हुए थे। कान्फरेंस 17-23 सितम्बर तक रही। इन प्रतिनिधियों में 6 बेल्जियम, 2 स्वीट्जरलैंड और 1 स्पेन से आए थे। इण्टरनेशनल के ऊपर जो जबर्दस्त आक्रमण शत्रुओं की ओर से हो रहे थे, उनसे कान्फरेंस को बचाना था।

लन्दन-कान्फरेस ने कार्य को जारी रखते हुए कुछ प्रस्ताव स्वीकृत किए, जिनका मतलब था, स्वतन्त्र एसोसिएशनों और स्वावलम्बी शाखाओं का जनरल-कौंसिल के हाथ में पूर्णतया केन्द्रित एक संगठन का रूप देना। जनरल-कौंसिल को यह भी अधिकार दिया गया, कि वह अगली कांग्रेस या उसकी जगह पर कान्फरेंस करने के स्थान और समय का निश्चय स्वयं करे। स्वीट्जरलैंड अब इण्टरनेशनल का प्रधान अवलम्ब रह गया

1. Mayence.

था, लेकिन वहाँ भी पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी, जब 'जर्मन-भाषी शाखा'-जेनेवा में इण्टरनेशनल के सबसे पुराने और सबसे मजबूत संगठन में फूट में पड़कर 1871 ई. में 'स्विस कमकर पार्टी का' निर्माण हुआ। 1872 ई. में मार्क्स और एंगेल्स ने इण्टरनेशनल को खतम-सा समझकर उसके साथ सहयोग देना छोड़ दिया। 1874 ई. में एंगेल्स ने स्वीकार किया, कि इण्टरनेशनल का समय अब खतम हो गया है-एक नये इण्टरनेशनल के-सभी देशों की सभी सर्वहारा पार्टियों की मैत्री-पुराने इण्टरनेशनल के स्थान पर आने के लिए मजदूर-वर्ग-आन्दोलन को ऐसी ही आम पराजय की आवश्यकता है, जैसी कि उसने 1849-1864 ई. के बीच के समय में खाई थी।

2. हेग-कांग्रेस (1872 ई.)

जनरल-कौंसिल के 5 मार्च (1872 ई.) वाले परिपत्र ने सूचित किया कि वार्षिक कांग्रेस सितम्बर के आरम्भ में होगी, किन्तु इसी बीच में मार्क्स और एंगेल्स ने तै किया कि जनरल-कौंसिल का आफिस न्यूयार्क से हटा दिया जाय। कुछ लोगों का कहना है कि मार्क्स और एंगेल्स ने इस तरह इण्टरनेशनल की अन्त्येष्टि करके छुट्टी लेनी चाही, लेकिन यह बात गलत मालूम होती है, जब कि हम देखते हैं कि आगे भी वह भरसक इण्टरनेशनल का समर्थन करके उसे जीवित रखना चाहते थे। कुगेल्मान को 29 जुलाई के पत्र में मार्क्स ने जो लिखा था, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है : "इण्टरनेशनल कांग्रेस (हेग में 2 सितम्बर को शुरू होनेवाली) इण्टरनेशनल के लिए जीवन और मरण का सवाल है। उससे अलग होने से पहले मैं कम-से-कम ध्वंसकारी शक्तियों से उसकी रक्षा करना चाहता हूँ।" यह विनाशकारी शक्तियाँ लन्दन में जनरल-कौंसिल के रहने पर बहुत खतरनाक साबित हो रही थीं, इसलिए मार्क्स और एंगेल्स ने मुख्य-कार्यालय को न्यूयार्क में ले जाने का प्रयत्न किया। इकेरियस और युंग वर्षों से मार्क्स के बहुत विश्वासपात्र सहकारी रहते चले आए थे, लेकिन अब उनका भी सम्बन्ध बिगड़ने लगा, और मई, 1872 में मार्क्स और इकेरियस का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, जब कि इकेरियस ने इण्टरनेशनल के जनरल-सेक्रेटरी के साप्ताहिक वेतन पन्द्रह शिलिंग को दूना करने की इच्छा प्रकट की। इकेरियस ने समझा था कि मेरे बिना काम नहीं चलेगा, इसलिए मजबूर होकर मेरी माँग माननी पड़ेगी। इकेरियस की जगह पर अंग्रेज जान हेल्स को जनरल-सेक्रेटरी निर्वाचित किया गया। इसी समय युंग का एंगेल्स से मनमुटाव हो गया। हेल्स यद्यपि इण्टरनेशनल के खिलाफ इकेरियस के प्रयत्नों को विफल करने में समर्थ हुआ, क्योंकि उसे अंग्रेज मजदूर-वर्ग का समर्थन प्राप्त था, तथापि पीछे वह स्वयं खुलकर जनरल-कौंसिल का विरोध करने लगा, जिसपर अगस्त में उसे अपने पद से हटा दिया गया। जनरल-कौंसिल के फ्रेंच सदस्यों पर ब्लांके की विचारधारा का अधिक प्रभाव था। मार्क्स को डर लगने लगा था कि कहीं ब्लांकीय जनरल-कौंसिल पर अधिकार न कर लें।

हेग कांग्रेस 2-7 सितम्बर, 1872 ई. को हुई, जिसमें 61 प्रतिनिधि शामिल हुए थे, और अब भी बहुमत मार्क्स के पक्ष में था। इन प्रतिनिधियों में जर्मन 8 थे : बगहार्ड बेकर (ब्रन्सविक), कुनो[1] (सटुटगार्ट), डोट्जगेन (ड्रैसडेन), कूगेल्मान (केल), मिलके[2] (बर्लिन), रीटिंगहाउजेन (मुनखेन), शो[3] (बुरटेम्बेर्ग) और शूमाखेर (सोलिंगेन)। इतालियन बकुनिनवादियों ने अपने प्रतिनिधि कांग्रेस में नहीं भेजे। उन्होंने रिमिनी[4] में अगस्त में अपनी कान्फरेंस कर जनरल-कौंसिल से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निश्चय किया। स्पेन के 5 प्रतिनिधियों में लाफार्ग को छोड़कर बाकी बकुनिन के अनुयायी थे। इस प्रकार ब्लांके, बकुनिन और मार्क्स के समर्थकों का यहाँ जो सम्मिलन हुआ, उसमें आरम्भ ही में बड़े वाद-विवाद उठ खड़े हुए, जब कि प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्र (मेंडेट) के बारे में पूछताछ हुई। लाफार्ग को प्रतिनिधि न रखने के लिए बड़ी जबर्दस्त कोशिश की गई। चौथे दिन कांग्रेस की वास्तविक कार्रवाई शुरू हुई, जिसमें जनरल-कौंसिल की रिपोर्ट पढ़ी गई। रिपोर्ट को मार्क्स ने स्वयं तैयार किया था और उन्होंने उसे जर्मन में पढ़ा। उसके अंग्रेजी अनुवाद को सेक्सटन ने फ्रेंच को लांग्वे[5] और डच (फ्लेमिश) को

1. Cuno. 2. Milke. 3. Schen. 4. Rimini. 5. Langut.

अबील ने पढ़ा। इण्टरनेशनल के विरुद्ध जो जुल्म किए गए, पेरिस कम्यून को जिस तरह खूनी हाथों से दबाया गया, जर्मनी में जिस तरह देशद्रोह के मुकदमे चलाकर कमकरों को दबाने की कोशिश की गई, इन सबकी रिपोर्ट में अच्छी खबर ली गई। इसके बाद रिपोर्ट ने संक्षेप में हालैंड, डेन्मार्क, पोर्तुगाल, आयरलैंड, स्काटलैंड के भीतर प्रवेश करने और न्यूयार्क, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और ब्रूनोआयर्स में अपने काम की प्रगति को बतलाया। रिपोर्ट को कांग्रेस ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया, और मुक्ति के लिए सर्वहारा-संघर्ष में जो शहीद या उत्पीड़ित हुए, उनके प्रति सम्मान और सहानुभूति प्रकट की। आगे मार्क्स ने एक लम्बे भाषण में जनरल कौंसिल के पहिले के अधिकारों को कम करने की जगह उसे बढ़ाने की माँग करते कहा कि जनरल-कौंसिल को केवल लेटर-बक्स बना देने की जगह उसे बिल्कुल उठा देना बेहतर होगा। मार्क्स के विचार को 6 के विरुद्ध 36 वोटों से स्वीकार किया गया, 15 ने किसी ओर वोट नहीं दिया। इसके बाद एंगेल्स ने प्रस्ताव रक्खा कि जनरल-कौंसिल का केन्द्र कम-से-कम एक साल के लिए लन्दन से न्यूयार्क में बदल दिया जाय। प्रस्ताव एकाएक रक्खा गया था, जिसपर कितने ही प्रतिनिधियों को आश्चर्य हुआ, किन्तु अन्त में जनरल कौंसिल के स्थान-परिवर्तन को 23 के विरुद्ध 26 वोटों से स्वीकार किया गया और 9 तटस्थ रहे। जब न्यूयार्क में स्थान-परिवर्तन करने का प्रस्ताव आया, तो पक्ष में 30 ने वोट दिए। कांग्रेस के अंतिम और छठे दिन तक चलनेवाली बहस में भाग लेते रॉवियेर,[1] वेलाँ[2] और दूसरे ब्लांकानुयायी जनरल-कौंसिल के न्यूयार्क में स्थानान्तरित करने के निश्चय के बाद कांग्रेस को छोड़ गए और उन्होंने एक पुस्तिका प्रकाशित करके घोषित किया कि "इण्टरनेशनल खतम हो गई, वह क्रांति के मारे अटलांटिक महासागर पार कर गई।"

बकुनिन का व्यवहार भी बहुत बुरा रहा, इसलिए कांग्रेस के अन्तिम दिन उसके ऊपर विचार किया गया, और अन्त में 7 के विरुद्ध 27 वोटों से बकुनिन को इण्टरनेशनल से निकाल देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, 9 तटस्थ रहे।

3. इण्टरनेशनल का अन्त

मार्क्स और एंगेल्स ने इण्टरनेशनल को जीवित रखने की यद्यपि बहुत कोशिश की, किन्तु हेग-कांग्रेस के साथ प्रथम इण्टरनेशनल का इतिहास खतम हो गया। अमेरिका में इण्टरनेशनल को मजबूती के साथ पैर जमाने का मौका नहीं मिला, क्योंकि वहाँ भी आपसी विवाद उठ खड़े हुए। जनरल-कौंसिल का सबसे बड़ा आधार सोर्गे था, जिसे अमेरिकन स्थिति का पूरा पता था, इसी लिए उसने न्यूयार्क में स्थान-परिवर्तन का पहले विरोध किया था। पीछे वही जनरल-सेक्रेटरी चुना गया और उसने उसके लिए काम करने का पूरा प्रयत्न भी किया। लीबक्नेख्ट भी स्थान-परिवर्तन के विरुद्ध था। उसने इसे हमेशा गलत कहा, लेकिन उस समय वह वेवेल के साथ हुबेरटुसबुर्ग[3] में बन्दी था।

जनरल-कौंसिल के न्यूयार्क में चले जाने का प्रभाव इंग्लैंड में भी बुरा पड़ा। 8 सितम्बर को हेल्स ने ब्रिटिश फेडरल कौंसिल में मार्क्स के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव यह कह करके रक्खा कि उन्होंने इंग्लिश मजूर-वर्ग नेताओं के ऊपर बुरे आक्षेप किए हैं। निन्दा का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, लेकिन इस संशोधन को स्वीकार नहीं किया गया कि मार्क्स ने खुदगर्जी के लिए ऐसा किया था। हेल्स ने मार्क्स को इण्टरनेशनल से खारिज करने का भी प्रस्ताव किया था। एक दूसरे मेम्बर ने हेग-कांग्रेस के निश्चयों को रद्द करने का प्रस्ताव रक्खा। हेल्स अब इकेरियस और युंग का जबर्दस्त सहकारी बन गया था। युंग तो कुछ समय बाद मार्क्स और एंगेल्स का जबर्दस्त विरोधी हो सब-कुछ करने के लिए तैयार था। मार्क्स और एंगेल्स के विरोधियों ने नई इण्टरनेशनल-कांग्रेस के बुलाने की असफल कोशिश की, लेकिन ब्रिटिश फेडरल-कौंसिल में भी आपस में बहुत मतभेद हो गया था।

न्यूयार्क की जनरल-कौंसिल ने इण्टरनेशनल की छठी कांग्रेस 8 सितम्बर को जेनेवा में बुलाई, जो कि इण्टरनेशनल के लिए मृत्यु का प्रमाणपत्र साबित हुई। बकुनिन ने इससे पहले 1 सितम्बर को अपनी विरोधी

1. Rauvier. 2. Vaillant. 3. Hubertusburg.

कांग्रेस का अधिवेशन किया था, जिसमें हेल्स और इकेरियस इंग्लैंड के प्रतिनिधि बनकर गए थे। उनके अतिरिक्त बेल्जियम, फ्रांस और स्पेन के 5-5, इताली के 4, हालैंड का 1 और जूरा-पार्टी के 6 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। मार्क्सीय कांग्रेस में अधिकतर स्विस प्रतिनिधि थे, जिसमें से अधिकांश जेनेवा निवासी थे। जनरल-कौंसिल स्वयं अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेज सकी। इंग्लिश, फ्रेंच, स्पेनिश, बेल्जियम और इतालियन कमकरों के कोई प्रतिनिधि नहीं थे और जर्मनी तथा आस्ट्रिया के केवल एक-एक प्रतिनिधि थे। मार्क्स ने साफ तौर से स्वीकार किया कि कांग्रेस केवल तमाशा रही। मार्क्स और बकुनिन के रास्तों का अब सीधा संघर्ष था। बकुनिन का प्रभाव अब भी रूस के कमकर-आन्दोलन में वैसा ही बना रहा, जब कि मार्क्स के आरम्भ होते प्रभाव को धक्का लगा। बकुनिन और बकुनिनवादियों के विरुद्ध एंगेल्स और लाफार्ग ने 'समाजवादी जनतांत्रिकता मैत्री तथा अन्तर्राष्ट्रीय कमकर एसोसिएशन' के नाम से एक पुस्तिका लिखी, जिसके सम्पादन तथा एक-दो अन्तिम पृष्ठों के जोड़ने-भर का काम मार्क्स ने किया था। इस पुस्तिका के कारण यद्यपि बकुनिन को हमेशा के लिए मैदान छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा, उसके अनुयायियों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बकुनिन ने मैदान छोड़ते समय लिखा था : "तरुणों को आगे बढ़ना चाहिए। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, सभी जगह विजयी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध पत्थर लुढ़काना जारी रखने के लिए मेरे पास न ताकत है, और न शायद आवश्यक विश्वास। इसलिए मैं संघर्ष से हट रहा हूँ और मैं अपने योग्य समसामयिकों से केवल एक बात माँगता हूँ : विस्मरण। अब से मैं किसी को परेशान नहीं करूँगा, और न कोई मुझे परेशान करे।" जूरा के कमकरों को सम्बोधित करके लिखे विदाई के पत्र में उसने मार्क्स पर तीव्र आक्षेप करते हुए कहा था कि मार्क्स का समाजवाद विस्मार्क की कूटनीति से कम प्रतिक्रियावाद का केन्द्र नहीं है, इसलिए उसके विरुद्ध कमकरों को भयंकर संघर्ष जारी रखना होगा। शायद बकुनिन के अनुयायी अब भी पूँजीवादी साया में पलते अपने गुरु की परम्परा को कायम रखना चाहते हैं, लेकिन इतिहास का फैसला बिल्कुल दूसरा ही है। प्रतिक्रियावाद मार्क्स के समाजवाद के पास नहीं फटक सकता; हाँ, वह मार्क्सवाद के विरोधियों को अपने लपेट में लिए बिना नहीं रह सकता। बकुनिन 1 जुलाई, 1876 को बेर्न (स्वीट्जरलैंड) में मरा। आदमी के पतन की पराकाष्ठा जितनी त्रोत्स्की के लिए कही जा सकती है, उतनी बकुनिन की नहीं, किन्तु जार के सामने घुटना टेककर प्रायश्चित करनेवाले, इस भूतपूर्व क्रांतिकारी को सिर पर उठानेवाले लोगों की संख्या तब तक कुछ बनी ही रहेगी, जब तक कि पूँजीवाद की काली छाया भूमण्डल के किसी भी कोने पर मौजूद है।

19

जीवन-संध्या

1. वीमारी

1853 ई. में कम्युनिस्ट लीग की समाप्ति के बाद मार्क्स ने अपने को लेखन और अध्ययन में लगा दिया था, जब कि सर्वहारा के लिए भारी महत्त्व का काम था। इण्टरनेशनल के भी मरणासन्न होने के बाद 1878 ई. से अब फिर उन्होंने उधर से अपना हाथ सदा के लिए खींच लिया। पेरिस-कम्यून मार्क्स के लिए बहुत आशा लेकर आई थी, लेकिन उसके पतन का प्रभाव मार्क्स के ऊपर बहुत बुरा पड़ा। 1873 ई. के शरद् में ही उनको बीमारी ने घेरना शुरू कर दिया और बाज वक्त लकवा मारने का सख्त खतरा भी पैदा हो गया था। दिमागी अवस्था ऐसी, कि उनके मन में लिखने की बिल्कुल इच्छा नहीं रह गई थी। एंगेल्स के मित्र डॉ. गम्पर्ट[1] ने मैन्चेस्टर में कई सप्ताह मार्क्स की चिकित्सा की, जिससे स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। डॉ. गम्पर्ट की सलाह

1. Gumpurt.

से वह स्वास्थ्य सुधारने के लिए कार्लस्बाड (जर्मनी) में 1874-1875 और 1876 ई. के तीन वर्षों तक जाते रहे। इसके बारे में मार्क्स की सबसे छोटी लड़की एलिनोर (टूसी) ने लीबक्नेख्ट के पास भेजे अपने पत्र में लिखा था : "…कार्लस्बाड हम पहली बार 1874 ई. में गए। उन्निद्रा और पेट की शिकायत के कारण मूर (मार्क्स) को वहाँ भेजा गया था। वहाँ के पहले निवास से उनको काफी फायदा हुआ था, इसलिए अगले साल 1875 ई. में वह अकेले वहाँ गए। फिर अगले साल 1876 ई. में मैं उनके साथ थी, क्योंकि पिछले साल मेरे न रहने का अभाव उन्हें खटकता था। कार्लस्बाड में बहुत सजग रहकर उन्होंने अपनी चिकित्सा की और डाक्टर ने जो कुछ बतलाया, उसी के अनुसार सब काम किया। वहाँ हमने बहुत से मित्र बनाए। सहयात्री के तौर पर मूर बड़े ही आनन्दी पुरुष थे, हमेशा प्रसन्न मन रहते, और चाहे कोई सुन्दर दृश्य हो या बियर का एक गिलास, हर चीज में आनन्द लेने के लिए तैयार थे। अपने विस्तृत इतिहास-ज्ञान से रास्ते में आनेवाले हरएक स्थान को अधिक सजीव और स्पष्ट करके हमारे सामने रखते थे।…1874-75 ई. में लाइपजिग में हमने एक-दूसरे को अन्तिम बार देखा। वहाँ से लौटते समय हम विंगेन का चक्कर काटते गए, जिसे मूर मुझे दिखलाना चाहते थे, क्योंकि यहाँ ही उन्होंने मेरी माँ के साथ अपना मधुमास बिताया था। इसके अतिरिक्त इन दोनों यात्राओं में हम ड्रेसडेन, बर्लिन, प्राग, हाम्बुर्ग, नूरेनबेर्ग में भी गए थे।"

1877 ई. में मार्क्स स्वास्थ्य के ख्याल से बाड नोयेनार[1] गए। कार्लस्बाड वह नहीं जा सके, क्योंकि जर्मनी और आस्ट्रिया दोनों की सरकारें उनके विरुद्ध आज्ञा निकालनेवाली थीं। पेट की तकलीफ अब भी मौजूद थी और थकावट हद दर्जे की थी, जिसके कारण सिरदर्द और उन्निद्रा की तकलीफ बराबर बनी रही। यदि मार्क्स अपने को पूर्ण विश्राम देने के लिए तैयार होते, तो शायद स्वास्थ्य में कुछ सुधार होता। लेकिन उनका दिमाग जीवित रहते कैसे निष्क्रिय रह सकता था ! एंगेल्स ने कहा था : "जिस आदमी ने हर एक चीज का उसके ऐतिहासिक आरम्भ और विकास की स्थितियों से पता लगाने के लिए परीक्षण किया, निश्चय ही उसके लिए प्रत्येक नया उठनेवाला प्रश्न नये प्रश्नों की माला खड़ी कर देता था। तृतीय जिल्द (कपिटाल) के बारे में पहले से अधिक पूर्णता के साथ विवेचन करने के लिए मार्क्स ने प्राचीन इतिहास, कृषिशास्त्र, रूसी और अमेरिकन जमींदारी-सम्बन्ध, भूगर्भशास्त्र आदि का विशेष तौर से अध्ययन किया। सभी जर्मन-वंशीय और नई-लातिनवंशीय भाषाओं को सुगमता के साथ वह पढ़ते थे। फिर उन्होंने पुरानी स्लाव, रूसी और सर्वियन भाषाओं को सीखा।" यह उनके दिल के काम का सिर्फ आधा भाग था। यद्यपि सक्रिय राजनीति से वह हट गए थे, तथापि अब भी यूरोप और अमेरिका के मजदूर-आन्दोलन में उनकी उसी तरह दिलचस्पी थी और भिन्न-भिन्न देशों के प्रायः सभी मजदूर-नेताओं के साथ उनका पत्र-व्यवहार था। लड़ाके सर्वहारा बराबर उनसे सलाह लेते और मार्क्स उन्हें निराश नहीं करते थे।

2. मित्रों की दृष्टि में मार्क्स

(अ) लाफार्ग की दृष्टि में : पावल लाफार्ग का जिक्र हम पहले कर चुके हैं। वह 15 जनवरी, 1842 ई. को कूबा में पैदा हुआ था। बचपन में ही माँ-बाप उसे पेरिस ले आए, जहाँ उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई। तब (1851 ई.) से थोड़े समय के निर्वासन के अतिरिक्त वह पेरिस में ही रहा, जहाँ 1911 ई. में उसकी मृत्यु हुई। मार्क्स की लड़की लोरा से इसका ब्याह हुआ था, यह हम बतला आए हैं। लाफार्ग पेरिस युनिवर्सिटी के मेडिकल कालेज का विद्यार्थी था, लेकिन राजनीति में भाग लेने पर उसे युनिवर्सिटी से निकाल दिया गया। अपनी डाक्टरी की शिक्षा समाप्त करने के बाद वह पेरिस लौटा और वहाँ के समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में हो 1871 ई. में पेरिस कम्यून में भी उसने भाग लिया। कम्यून के समाप्त कर देने पर वह स्पेन भाग गया, और वहाँ कितने ही समय तक मार्क्सवाद के प्रचार में लगा रहा। 1882 में वह फिर फ्रांस लौटा, और जूलग्विदे (1845-1921 ई.) के साथ उसने फ्रांस में समाजवाद का सैद्धान्तिक नेतृत्व किया और राजनीति, अर्थशास्त्र और दर्शन

1. Bad Neuenahr.

पर उसने कितनी ही स्वतंत्र पुस्तकें और पुस्तिकाएँ लिखीं। ऐतिहासिक भौतिकवाद पर उसका विशेष अधिकार था। मार्क्स और एंगेल्स की कई पुस्तकों के उसने फ्रेंच में अनुवाद किए। लेनिन की नजरों में लाफार्ग 'मार्क्सवाद के विचारों के प्रचार करनेवालों में एक बहुत ही साधन-सम्पन्न और अत्यन्त प्रतिभाशाली' पुरुष था।

लाफार्ग ने अपने ससुर का संस्मरण लिखा है, जो मार्क्स के व्यक्तित्व पर बहुत अच्छा प्रकाश डालता है। उसके कुछ अंश निम्न प्रकार हैं :

"पहली बार मैंने फरवरी, 1865 ई. में कार्ल मार्क्स को देखा। 28 सितम्बर, 1864 ई. को सेण्ट मार्टिन हॉल में इण्टरनेशनल की स्थापना हुई। मैं पेरिस से इस अभिनव संगठन के कार्य की प्रगति की खबर लेकर आया था। मेशिये तोलें···ने मुझे एक परिचयपत्र दिया था।

"मैं उस वक्त 24 वर्ष का था। पहली मुलाकात के समय जो उनका प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा, उसे मैं जीवन भर नहीं भुला सकता। उस समय मार्क्स का स्वास्थ्य खराब था, और वह 'कपिटाल' की प्रथम जिल्द के लिए कड़ी मेहनत कर रहे थे (जो दो साल बाद 1867 ई. में प्रकाशित हुआ)। उन्हें इसकी बड़ी चिन्ता थी, कि शायद वह उसे समाप्त न कर सकें। वह तरुण-जनों का बहुत स्वागत करते थे। कहा करते थे—मुझे आदमियों को सिखलाकर तैयार करना है, जिससे मेरे चले जाने पर वह कम्युनिज्म में प्रचार को जारी रख सकें।

"कार्ल मार्क्स उन दुर्लभ आदमियों में थे, जो कि विज्ञान और सार्वजनिक जीवन दोनों में प्रथम पंक्ति के योग्य होते हैं। इतनी घनिष्ठता के साथ इन दोनों क्षेत्रों में उनका सम्बन्ध था कि हम उन्हें समझ नहीं सकते, यदि एक ही साथ उन्हें साइंस के आदमी और समाजवादी योद्धा दोनों नहीं समझ लेते···(उनका कहना था) : 'साइंस (विज्ञान) स्वार्थी आनन्द के लिए नहीं होना चाहिए। जो इतने सौभाग्यशाली हैं कि अपना समय साइंस के अनुसरण और अनुसंधान में लगा सकते हैं, उन्हें सबसे पहले अपने ज्ञान को मानवता की सेवा में लगाना चाहिए।' उनका बहुत प्रिय वचन था, 'दुनिया के लिए काम करो'।···

"मार्क्स ने अपने कार्यक्षेत्र को अपनी जन्मभूमि ही तक सीमित नहीं रक्खा। वह कहा करते थे, 'मैं दुनिया का नागरिक हूँ। जहाँ भी हूँ, मैं वहीं काम करता हूँ···'

"पहली बार जब मैंने उन्हें मेट्लेन पार्क रोड में उनके अध्ययन-कक्ष में देखा, उस समय वह मुझे एक अद्वितीय और अनथक समाजवादी आन्दोलन के तौर पर नहीं, बल्कि विद्वान के रूप में मालूम हुए। सभ्य दुनिया के सभी भागों से पार्टी के साथी उनके अध्ययन-कक्ष में समाजवादी विचारधारा के आचार्य से राय लेने आते थे। वह कमरा अब ऐतिहासिक बन गया है। जो कोई मार्क्स के बौद्धिक जीवन के अन्तरंग पहलू को समझना चाहता है, उसे इस कमरे से परिचित होना चाहिए। वह पहली मंजिल पर था। बगीचे की ओर खुलनेवाले एक चौड़े जंगले से उसमें काफी प्रकाश आता था। आग जलाने के स्थान की दोनों तरफ, और जंगले के सामने भी किताबदानों से कमरा भरा हुआ था। किताबदानों के ऊपर अखबारों और हस्तलेखों के पैकेट छत तक गँजे हुए थे। जंगले की एक तरफ दो मेजें थीं, जिनपर भी उसी तरह फुटकर पत्र, अखबार और किताबें भरी हुई थीं। कमरे के बीच में सबसे अधिक प्रकाश रहता था, वहीं पर 3 फुट लम्बी, 2 फुट चौड़ी सीधी-सादी लिखने की मेज और एक लकड़ी की आरामकुर्सी थी। एक किताबदान और इस कुर्सी के बीच में जंगले की ओर मुँह किए चमड़े से ढँका एक सोफा था, जिसपर विश्राम करने के लिए समय-समय पर मार्क्स लेट जाया करते थे। आगदान के ऊपरवाले छज्जे पर और भी किताबें थीं, जिनके बीच-बीच में सिगार, दियासलाई के बक्स, तम्बाकू का डिब्बा, पेपरवेट, अपनी लड़कियों, बीवी, फ्रेडरिक एंगेल्स और विलहेल्म वोल्फ के फोटो थे।

मार्क्स बहुत ज्यादा तम्बाकू पीते थे। उन्होंने मुझसे कहा था : "कपिटाल उतना ही पैसा नहीं ले आएगा, जितने के कि इसके लिखते समय मैंने सिगार पी डाले।" दियासलाइयों के इस्तेमाल में तो वह बहुत ही फजूलखर्च थे। वह अपने पाइप या सिगार को जलाते वक्त अक्सर भूल जाते। जल जाने के बाद भी वह एक के बाद एक दियासलाइयाँ जलाकर उसे सुलगाते हुए थोड़े ही समय में एक पूरी दियासलाई की डिबिया खतम कर देते।

"वह अपनी किताबों और कागजों को ठीकठाक करके रखने के लिए किसी को कभी इजाजत नहीं देते थे—वस्तुतः वह ठीकठाक करना नहीं, बल्कि गड़बड़ी पैदा करना था। किताबें जो देखने में अस्त-व्यस्त रक्खी

मालूम होती थीं, वह सिर्फ बाहरी तौर से ही, नहीं तो हर एक चीज अपने ठीक स्थान पर थी, और बिना ढूँढ़ने का प्रयत्न किए, वह जिस किताब या हस्तलेख को चाहते, उसे हाथ में उठा लेते थे। बातचीत करते समय भी वह अक्सर स्वयं किताबों से तत्सम्बद्ध वाक्य या तस्वीर दिखाने के लिए रुक जाते। अपने अध्ययन-कक्ष से वह एक हो गए थे, वहाँ किताबें और कागज-पत्र उसी तरह उनकी आज्ञा का अनुसरण करते थे, जैसे उनके शरीरांग।

"वह अपनी किताबों को ठीक से रखने में बाहरी एकरूपता का बिल्कुल ध्यान नहीं करते थे, एक ही पाँति में पास-पास क्वार्टो (चारपेजी), अठपेजी जिल्दें तथा छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ रक्खी रहतीं। वह अपनी पुस्तकों को आकार के अनुसार नहीं, बल्कि विषय के अनुसार लगाते थे। उनके लिए किताबें शौकीनी की चीज नहीं, बल्कि बौद्धिक हथियार थीं। वह कहा करते थे, ये मेरी दासियाँ हैं, इन्हें मेरी इच्छानुसार सेवा करनी होगी। वह पुस्तकों के रूप, जिल्द, कागज या छपाई की सुन्दरता का जरा भी ख्याल नहीं रखते थे–वह पन्नों के कोने मोड़ देते, वाक्यों के नीचे पेंसिल खींच देते और हाशिये को पेंसिल के निशानों से ढाँक देते। वह अपनी पुस्तकों पर नोट नहीं लिखा करते थे, किन्तु प्रश्नचिह्न या आश्चर्यचिह्न अंकित किए बिना नहीं रहते थे।...पेंसिल के निशान करने का उनका तरीका ऐसा था, कि उससे वह बड़ी आसानी से अपेक्षित वाक्य को ढूँढ़ निकालते थे। कुछ वर्षों के अन्तर से अपनी नोटबुकों और किताबों में चिह्न किए वाक्यों को अपनी स्मृति ताजा करने के लिए फिर से पढ़ने की उनकी आदत थी–उनकी स्मृति असाधारण तीव्र और निर्भ्रान्त थी। बहुत बचपन से ही अपरिचित भाषा के पद्यों के कंठस्थ करने की हेगेल की हिदायत के अनुसार उन्होंने अपनी स्मृति को आश्वस्त किया था। हाइने और गोयथे उन्हें कंठस्थ थे और बातचीत में अक्सर उनका उद्धरण देते थे। कवियों की कृतियों को वह लगातार पढ़ा करते थे।...सभी यूरोपीय भाषाओं के कवियों की कृतियों को चुनकर वह लगातार पढ़ा करते।

"... अपने को विश्राम देते वह कमरे के एक छोर से दूसरे छोर तक टहला करते, जिसके कारण जंगला और दरवाजे के बीच का कालीन तार-तार हो एक पगडंडी बन गई थी, जो उसी तरह बिल्कुल स्पष्ट थी, जैसे किसी घास के मैदान की पगडंडी। कभी-कभी वह सोफे पर लेटकर उपन्यास पढ़ते। वह अक्सर दो या तीन उपन्यास एक साथ शुरू किए रहते और उन्हें बारी-बारी से पढ़ते–डारविन की तरह वह उपन्यास पढ़ने के बड़े प्रेमी थे। 18वीं शताब्दी के उपन्यासों को वह ज्यादा पसन्द करते थे, और फील्डिंग की 'टॉम जोन्ज' विशेष तौर से उन्हें प्रिय था। आधुनिक उपन्यासकारों में उन्हें सबसे अधिक पसन्द थे, पाल दे काक, चार्ल्स लीवर, अलेक्जांदर दूमा और सर वाल्टर स्काट–स्काट की 'ओल्ड मोर्टेलिटी'[1] को वह मास्टरपीस समझते थे। साहसयात्राओं और व्यंग्यात्मक कहानियों को पढ़ने की उन्हें विशेष रुचि थी। सेवर्ति और बालजक को वह उपन्यास के महान् आचार्य मानते थे... बालजक के साथ उनका इतना गहरा सम्मान का भाव था कि वह 'ला कमदी ऊमेन'[2] की समालोचना लिखना चाहते थे।...

"मार्क्स यूरोप की सभी प्रमुख भाषाएँ पढ़ सकते थे, और उनमें से तीन–जर्मन, फ्रेंच और इंग्लिश–में इतने सुन्दर ढंग से लिख सकते थे कि जिसे देख उन भाषाओं से परिचितों के दिल में सम्मान पैदा होता। वह कहा करते थे : 'जीवन-संघर्ष में विदेशी भाषा हथियार का काम देती है।' उनमें भाषाओं के सीखने की बड़ी प्रतिभा थी, जिसे उनकी लड़कियों ने भी दायभाग में पाया था। पचास वर्ष के हो चुके थे, जब कि उन्होंने रूसी सीखना शुरू किया।... छह महीने के भीतर उन्होंने इतनी प्रगति कर ली कि रूसी कवियों और लेखकों, खास करके पुश्किन, गोगल और श्चेदारिन की कृतियों को मूल भाषा में पढ़कर आनन्द ले सकते थे।...

"मानसिक विश्राम के लिए कविता और उपन्यास पढ़ने के अतिरिक्त मार्क्स का गणित के लिए अत्यधिक प्रेम था। अलजब्रा उन्हें हार्दिक सन्तोष देता था... अपनी पत्नी की अन्तिम बीमारी के दिनों में अपने वैज्ञानिक कार्यों को वह यथापूर्व नहीं कर सकते थे। पत्नी के दुस्सह कष्टों के विचार से अपने को बचाने के लिए वह गणित में डूब जाते थे। आंतरिक दुस्सह पीड़ा के इस काल में उन्होंने 'अनन्तलव कलन'[3] पर एक निबन्ध

1. Old Mortality. 2 La Comedie humaine. 3. Infinitisimal calculus.

लिख डाला था, जो कि जानकार गणितज्ञों के मतानुसार प्रथम श्रेणी के महत्त्व का है।···

"मार्क्स के पुस्तकालय में एक हजार से अधिक जिल्दें थीं, जिन्हें अपने अनुसंधान के जीवन में उन्होंने बड़ी मेहनत से जमा किया था और जो उनकी आवश्यकताओं के लिए अपर्याप्त थीं। अनेक वर्षों तक वह लगातार ब्रिटिश म्युजियम के वाचनालय में जाया करते थे।

"यद्यपि वह सदा बहुत देर से सोने जाते थे, तथापि सवेरे 8 और 9 के बीच सदा उठ खड़े होते। काली काफी का एक प्याला पीकर वह दैनिक पढ़ते, फिर अपने अध्ययन-कक्ष में चले जाते, जहाँ वह रात के दो-तीन बजे तक काम करते–बीच में सिर्फ खाने के समय उठते और (जब मौसम अच्छा होता) तो हेम्पस्टेडहीथ में टहलने जाते। दिन में सोफा पर एक या दो घंटे सो जाते। जवानी में सारी रात पढ़ने-लिखने में बिता देने की उन्हें आदत थी। मार्क्स के लिए काम एक बीमारी थी और वह उसमें इतने लीन हो जाते कि अपना भोजन भी भूल जाते थे। अक्सर उन्हें बार-बार बुलाया जाता, तब वह नीचे उतरकर भोजनशाला में जाते और मुश्किल से अन्तिम कौर खतम करते ही वह फिर अपनी मेज की ओर लौट पड़ते। वह अल्पभोजी थे और भूख उन्हें कम लगती थी, जिसको उत्तेजित करने के लिए वह बहुत मसालेदार, अधिक तली चीजों–हैम, भुनी मछली, मुरब्बा और अचार खाया करते थे। दिमाग की जबर्दस्त मेहनत के लिए उनके पेट को दण्ड भोगना पड़ता। सचमुच इसके लिए ही उनका सारा शरीर बलिदान हुआ। चिन्तन उनके परम आनन्द की वस्तु था। शारीरिक व्यायाम में केवल चहलकदमी वह करते थे। वह घंटों टहल सकते थे और बात करते तथा पाइप-सिगार पीते जरा भी थकावट का परिचय दिए बिना पहाड़ों पर भी चढ़ जाते थे। कहा जा सकता है, अपने अध्ययन-कक्ष में टहलते समय भी वह अपना काम करते थे। टहलने के समय जो विचार उनके दिमाग में आता, उसे कागज पर उतारने के लिए थोड़ी देर वह अपनी मेज पर बैठ जाते थे।···

"मार्क्स के हृदय को जानने और उनके प्रेम को··· अच्छी तरह देखने के लिए उन्हें अपने परिवार के बीच में इतवार की शाम को अपनी मित्रमंडली के बीच देखना चाहिए था। ऐसे समय वह बड़े ही आनन्दी साथी, हाजिर-जवाबी, अद्‌भुत मजाकी दिखाई पड़ते। उनका ठहाका हृदय के अन्तस्तल से आता था।···

"वह बच्चों के लिए भद्र, कोमल और दूसरों के भावों का सम्मान करनेवाले पिता थे। वह अक्सर कहा करते थे : बच्चों को अपने माता-पिता को शिक्षित करना चाहिए।' उनकी बेटियाँ उन्हें बहुत प्यार करती थीं, और बाप और उनके बीच के सम्बन्ध में कहीं पैतृक-शासन का चिह्न नहीं मिलता था।··उनकी लड़कियाँ उन्हें मित्र जैसा समझतीं और साथ खेल के साथी जैसा बर्ताव करतीं। वह उन्हें बापू नहीं, बल्कि 'मूर' कहकर सम्बोधित करतीं। अपेक्षाकृत अधिक श्यामल रंग और आबनूस जैसे काले बालों तथा दाढ़ियों के कारण उन्हें यह नाम मिला था। 1844 ई. में भी, जब कि 30 वर्ष के भी नहीं हुए थे, कम्युनिस्ट लीग के उनके साथी मेम्बर उन्हें 'बापू मार्क्स' कहा करते थे। वह अपने बच्चों के साथ घंटों खेला करते थे।"

(ब) लीवक्नेख्ट की नजरों में : लीबक्नेख्ट 29 मार्च, 1826 में (मार्क्स से सात साल पीछे) पैदा हुआ था। उसने अध्यापक बनने की तैयारी की थी, लेकिन तरुणाई में ही क्रांति ने अपनी ओर खींच लिया। 22-23 साल की उम्र में 1848-49 ई. की जर्मन-क्रांति में उसने भाग लिया, जिसके असफल होने पर उसे भागकर लन्दन चला जाना पड़ा, जहाँ वह मार्क्स के प्रभाव में आया। 1862 ई. में वह जर्मनी लौटकर मजदूर-आन्दोलन में जुट पड़ा। जर्मन-मजदूरों के दूसरे प्रमुख नेता आगस्ट बेबल (1840-1913 ई.) के साथ मिलकर लीबक्नेख्ट ने 1869 ई. में सामाजिक-जनतांत्रिक पार्टी कायम की और पार्टी के पत्र 'फोक्स्टाट' (जनराज्य) और पीछे 'फोरवेड्र्स' (अग्रगामी) का सम्पादन किया। दूसरे पत्र का सम्पादन करते हुए 7 अगस्त, 1900 को उसकी मृत्यु हुई। फ्रांस-प्रशिया-युद्ध के समय वह राइखस्टाग (पालियामेण्ट) का समाजवादी सदस्य था। अल्सेस-लोरेन के हड़पने के खिलाफ तथा युद्ध के खर्च के विरुद्ध वोट देने के कारण उसे विस्मार्क ने जेल में डाल दिया। वह जन्मजात जननेता, प्रतिभाशाली वक्ता और कमकरों के लिए लेखों और पुस्तकों के लिखने में दक्ष लेखक था। लीबक्नेख्ट ने 1896 ई. में कार्ल मार्क्स की जीवनी प्रकाशित की थी, जिससे मार्क्स के जीवन के वैयक्तिक पहलू पर कितना ही प्रकाश पड़ता है :

"मैं 1850 ई. की गर्मियों में स्वीट्‌जरलैंड से लन्दन पहुँचा।··· मार्क्स-परिवार से उन्हीं गर्मियों में लन्दन के नजदीक कहीं··मिला, मुझे याद नहीं ग्रीनविचम या हेम्पटनकोर्ट में।··· "

1850 ई. से 1862 ई. तक प्रायः बारह वर्षों तक लीबक्नेख्ट लन्दन में रहा। वहाँ वह मार्क्स के परिवार का एक व्यक्ति हो गया था। बच्चों के प्रति मार्क्स के प्रेम के बारे में लीबक्नेख्ट ने लिखा है : "मार्क्स मजबूत और स्वस्थ स्वभाववाले सभी व्यक्तियों से प्रेम करते थे, बच्चों से तो उन्हें असाधारण प्रेम था। वह ऐसे अत्यन्त कोमल पिता थे, जो कि अपने बच्चों के साथ घंटों बच्चा बन सकता था। रास्ते में मिलनेवाले अपरिचित बच्चों, विशेषकर असहाय और गरीब बच्चों के प्रति चुम्बक की तरह उनका मन खिंच जाता था। सैकड़ों बार गरीबों के मुहल्ले में घूमते समय अलग हो चिथड़े में लिपटे, दरवाजे पर बैठे, किसी बच्चे के छोटे-से हाथ में एक या आधा पेन्स रखने, तथा उसके बालों को सहलाने के लिए वह हमारा साथ छोड़कर चले जाते।···

"शारीरिक कमजोरी और असहायावस्था हमेशा उनके हृदय में सहानुभूति पैदा कर देती।···एक शाम को उनके साथ मैं ओम्नीबस के ऊपर सवार हो हैम्पटेड रोड की ओर जा रहा था। वहाँ··· अड्डे पर हमने लोगों की भीड़ देखी, जिसके भीतर से एक स्त्री चिल्ला रही थी–'खून ! खून !' मार्क्स बिजली की तरह नीचे उतरकर चले और मैं उनके पीछे-पीछे था। मैं उन्हें पकड़कर रोकना चाहता था, जो नंगे हाथों से बन्दूक की गोली पकड़ रखने जैसा प्रयत्न था। एक क्षण में ही हम भीड़ में पहुँच गए। लोगों की भीड़ हमारे पीछे घेरे हुई थी। 'क्या बात है ?' जो बात थी, वह जल्दी ही स्पष्ट हो गई। एक शराबी औरत ने अपने पति से झगड़ा कर लिया था। पति उसे घर ले जाना चाहता था और वह झगड़ रही थी, ऐसी चिल्ला रही थी, मानो भूत चढ़ा हुआ हो।··· हमने देखा, कि वहाँ हमारे दखल देने की कोई जरूरत नहीं है। झगड़नेवाले दम्पति ने भी इसे देखा और तुरन्त ही उन्होंने आपस में शान्ति स्थापित कर ली, फिर वह हमारी ओर टूट पड़े। चारों ओर की भीड़ 'सारे विदेशियों' के विरुद्ध भयानक कांड करने के लिए तैयार दीख पड़ी। स्त्री खास तौर से मार्क्स के खिलाफ आगबगूला हो गई थी। उसने उनकी भव्य चमकती काली दाढ़ी पर आक्रमण करना चाहा। मैंने व्यर्थ ही तूफान को शान्त करने का प्रयत्न किया। अगर लड़ाई के मैदान में उसी समय दो मजबूत कान्स्टेबल न आ गए होते, तो हम भीतर दखल देने की उदाराशयता का बहुत महँगा मोल चुकाते। जरा भी बाल बाँका हुए बिना निकल कर ओम्नीबस पर बैठ घर की ओर रवाना होते समय हमने अपने भाग्य को सराहा। इसके बाद इस तरह के दखल देने के प्रयत्न में मार्क्स अधिक सावधान रहा करते।

"यदि कोई विज्ञान के इस नायक के भावों की गम्भीरता और बचपन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहता तो मार्क्स को अपने बच्चों के भीतर देखने की जरूरत थी। अपने छुट्टी के क्षणों या टहलने के समय उन्हें वह साथ लिए-लिए फिरते और उनके साथ अत्यन्त हर्षोन्मत हो खेल खेलते, बच्चों के बीच बच्चे जैसे मालूम होते। हेम्पस्टेडहीथ में हम अक्सर 'घोड़सवार' का खेल खेलते : मैं छोटी-छोटी बच्चियों में से एक को अपने कन्धे पर उठाता और मार्क्स दूसरे को। फिर हम दोनों कदम और कुदान करते हुए एक-दूसरे से होड़ करते–कभी-कभी घोड़सवारों के बीच छोटी लड़ाई भी हो जाती। लड़कियाँ लड़कों की तरह ही अनियंत्रित स्वभाव की थीं, और बिना रोए मार सह सकती थीं। मार्क्स के लिए बच्चों का सत्संग बहुत आवश्यक था–उनके द्वारा वह अपनी थकावट भूलकर ताजगी अनुभव करते। जब उनके अपने बच्चे बड़े हो गए या मर गए, तो उनका स्थान नातियों और नातिनों ने लिया। नन्ही जेनी ने 1870 वाली दशाब्दी के आरम्भ में लांग्वे से ब्याह किया। लांग्वे पेरिस कम्यून के शरणार्थियों में से था। इनके कई मनमुखी बच्चे घर में थे। सबसे बड़ा जीन या (जानी)··अपने नाना का बहुत प्रिय था। उसके साथ वह जो चाहे सो कर सकता था, यह वह जानते थे। एक दिन जब मैं लन्दन गया हुआ था, जानी··· के दिमाग में एक चमत्कारिक विचार पैदा हुआ : मूर (मार्क्स) को ओम्नीबस (बग्गी) बनाया जाय। कोचवान की गद्दी पर अर्थात् मार्क्स के कन्धों पर स्वयं बैठा और एंगेल्स तथा मैं बग्गी के घोड़े बने। जब हम ठीक तरह से जुत गए तो मेट्लेंडपार्क रोड में मार्क्स के कुटीर के पीछे की छोटी-सी फुलवाड़ी में एक जबर्दस्त दौड़–मैं कहना चाहूँगा, भयंकर दौड़–शुरू हुई। शायद रिजेण्ट पार्क में एंगेल्स के घर में यह हुआ हो।··· घोड़े दौड़ जा-ओ ! अन्तर्राष्ट्रीय पुकार की, जर्मन में, इंग्लिश में और फ्रेंच में–गो

ऑन ! प्लि विता ![1] हुर्रा ! मूर को भी इतना दौड़ना पड़ा कि उनके चेहरे से पसीना चूने लगा। यदि एंगेल्स या मैं अपनी गति कुछ धीमी करना चाहते तो निष्ठुर कोचवान का कोड़ा तुरन्त हमारी पीठ पर पड़ता : तुम बद्‌माश घोड़े ! आँ, अवाँ[2] आदि। अन्त में ऐसी हालत हुई कि मार्क्स के लिए और आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। फिर जानी से समझौते की बात चली और अन्त में विराम-सन्धि स्वीकृत हुई।"

3. विरोधी

जीवन की अन्तिम दशाब्दियों में मार्क्स अब पहले की अपेक्षा लोगों में प्रसिद्धि और सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे, तो भी वह अलग-अलग रहना पसन्द करते थे। उनके अपने घर में अब लोगों का आना-जाना बहुत था। शरणार्थी हमेशा उनसे सहायता और सलाह पाए बिना नहीं रहते थे। शार्ल लांग्वे ने 1872 ई. में मार्क्स की लड़की जेनी से ब्याह किया था, लेकिन योग्य होते हुए भी अपने श्वसुर कुल से उसकी वैसी वैयक्तिक या राजनीतिक घनिष्ठता नहीं स्थापित हुई, जैसी कि लाफार्ग की। सबसे छोटी लड़की एलिनोर एक फ्रेंच लेखक लिजानरे को ब्याही जानेवाली थी, लेकिन मार्क्स को यह अच्छा नहीं लगता था। अन्त में कुछ आगा-पीछा करने के बाद यह ब्याह नहीं हो सका।

'कपिटाल' की बुरी आलोचना करनेवालों में डूरिंग भी एक था, जिसको अपने समाजवाद का बड़ा अभिमान था। 24 मई, 1876 को एंगेल्स ने मार्क्स को लिखा था : "यह साफ मालूम होता है कि इन लोगों के दिमाग में तुम्हारे ऊपर नीचतापूर्ण आक्रमण करने के कारण डूरिंग अजेय हो गया है। यदि हम उसकी सैद्धान्तिक खुराफातों की खिल्ली उड़ाएँ तो यह उसके ऊपर हमारा वैयक्तिक बदला छोड़ और कुछ नहीं होगा।" किन्तु अन्त में एंगेल्स को डूरिंग की ओर ध्यान देना ही पड़ा, और उन्होंने 'फोरवेड्‌र्स' में 1877 ई. के आरम्भ से कई लेख उसके विरुद्ध लिखे, जो 'कपिटाल' के बाद मार्क्सवाद का एक बड़ा ही सुन्दर और सबल ग्रंथ साबित हुआ। (मई, 1877 में) गोथा में जो पार्टी की कांग्रेस हुई, उसमें एंगेल्स के इन लेखों के विरुद्ध बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ और उनके अन्त पार्टी के मुखपत्र 'फोरवेड्‌र्स' में छापे जाने का विरोध किया गया। किन्तु अन्त में समझौता हो किसी तरह बला टली।

1877 ई. में गोथा-कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि उसी साल के सितम्बर के अन्त में होनेवाली विश्व समाजवादी-कांग्रेस में पार्टी के प्रतिनिधि बनकर लीबक्नेख्ट भेजे जायँ। इस कांग्रेस को बेल्जियम के साथियों ने बुलाया था, जिनका मन अब अराजकवाद से भर गया था और वह हेग-कांग्रेस में हुई फूट को मिटाने की कोशिश करना चाहते थे। बकुनिन के अनुयायियों ने अपनी कांग्रेसें 1873 ई. (जेनेवा) में, 1874 ई. (ब्रुशेल्स) में और 1876 ई. (बर्न) में की थीं, लेकिन प्रतिनिधियों की संख्या से मालूम हो रहा था कि उनका संगठन कमजोर होता जा रहा है। लीबक्नेख्ट कभी बकुनिन का मित्र नहीं रहा, लेकिन ब्राजेल कांग्रेस के समय वह उतना आगे नहीं बढ़ सका। दूसरी ओर जूल ग्विदे (फ्रांस), चार्ली चाफियेरो (इताली), कैसर दे पेपे (बेल्जियम) और पाल अखेलराद (रूस) हेग-कांग्रेस के समय और उसके बाद में भी देर तक बकुनिन के जबर्दस्त समर्थक रहे। पीछे जब बड़े उत्साही मार्क्सवादी बन गए, तब भी वह यह स्वीकार करते थे कि हमने मार्क्स से सहमत और बकुनिन के सम्मिलित विचारों के आधार पर प्रगति की है। बकुनिन का अराजकवाद दिन पर दिन गिरता ही गया। उसके सैद्धान्तिक विचार ही अंडबंड नहीं थे, बल्कि व्यवहारतः भी आधुनिक सर्वहारों के तुरन्त के किसी हित के प्रश्न में यह कोई सहायता नहीं दे सकते, जिसके कारण बकुनिनवाद एक आशा और विश्वासहीन सम्प्रदाय से आगे नहीं बढ़ सका। 1876 ई. में बर्न में, 1877 ई. में घेन्त में विश्वसमाजवादी-कांग्रेस का बुलाना इस बात का सबूत था, कि अराजकवाद जनता को अपनी ओर करने में बिल्कुल असफल रहा। यह कांग्रेस 9-15 सितम्बर तक घेन्त में हुई, जिसमें 42 प्रतिनिधि शामिल हुए। इसके 11 अराजकवादी प्रतिनिधियों में गुइलोम[3] और क्रोपात्किन (रूसी) भी थे। इसके पुराने समर्थकों में बहुत-से अब समाजवादी पक्ष की ओर मिल गए, जिनमें बेल्जियम प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अंग्रेज हेल्स भी था। इस पक्ष के नेता लीबक्नेख्ट, ग्रीलिच और

1. Go on ! Plus wita ! 2. En Avant. 3. Guillaume.

फ्रेंकेल थे।

अराजकवादी भी अपनी कमजोरियों को समझते थे, इसलिए उन्होंने बहस-मुबाहिसे से कड़वाहट पैदा करने की जगह अधिकतर समझौता करने का प्रयत्न किया, किन्तु समझौते का कोई परिणाम नहीं निकला।

इसी समय रूस और तुर्की की लड़ाई शुरू हो गई। मार्क्स ने अपने विचार लीबक्नेख्ट को लिखे पत्रों में दे अपनी सलाह दी थी। 4 फरवरी, 1878 के पत्र में मार्क्स ने लिखा था : "हम निश्चित तौर से तुर्कों के पक्ष में हैं, जिसके दो कारण हैं : सबसे पहले इसलिए कि हमने तुर्क-किसानों और अर्थात् तुर्क-जनसाधारण का अध्ययन करके देखा कि वह यूरोपीय किसानों के अत्यन्त सक्षम और चरित्रबल में बहुत पक्के प्रतिनिधि हैं। दूसरी बात यह कि रूस की पराजय सामाजिक परिवर्तन को बहुत जल्दी ला सकती है, क्योंकि इस सामाजिक परिवर्तन के तत्त्व रूस में सभी जगह मौजूद हैं। इस परिवर्तन द्वारा सारे यूरोप का भी परिवर्तन शीघ्र गति से होगा।" तीन महीने पहले मार्क्स ने सोर्गे को लिखा था : "यह संकट यूरोपीय इतिहास का एक नया मोड़ है। मैंने मौलिक स्रोतों, सरकारी और गैर-सरकारी दोनों (सरकारी स्रोत बहुत थोड़े-से लोगों को प्राप्य हैं, मैंने उन्हें पीतरबुर्ग के मित्रों की सहायता से प्राप्त किया) के अध्ययन से रूसी स्थितियों का अध्ययन किया है। रूसी बहुत दिनों से क्रांति के देहली पर खड़े हैं, और वहाँ सभी आवश्यक तत्त्व तैयार हैं। तुर्कों ने केवल रूसी सेना और रूसी कोष ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत तौर से रूसी राजवंश (जार, युवराज और छह दूसरे रोमनोफों) को भी लथाड़ते विस्फोट को जल्दी कर समय में वर्षों की कमी कर दी। रूसी विद्यार्थियों का मूर्खतापूर्ण खिलवाड़ अपने भीतर व्यर्थ का है, लेकिन वह एक निदान है। रूसी समाज के सभी अंग आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक तौर से छिन्न-भिन्न होने की अवस्था में हैं।"

मार्क्स की मृत्यु के पाँच साल पहले लिखी गयी इन पंक्तियों से मालूम होता है कि अधिक अध्ययन और गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद मार्क्स इस नतीजे पर पहुँचे थे कि रूस में क्रांति की सम्भावना उससे कम नहीं है, जितनी कि पश्चिमी यूरोप में। अस्तु, तुर्कों की पीठ ठोकनेवालों के विश्वासघात तथा अपनी बेवकूफियों के कारण रूस-तुर्क-युद्ध के परिणामस्वरूप रूस में क्रांति नहीं होने पाई, और न पश्चिमी यूरोप में उसका विस्तार हुआ। इसके विरुद्ध अब विस्मार्क ने जर्मनी के कमकरों पर दमन शुरू किया। संगठन की फूट और शिथिलता के कारण किसी पार्टी की ओर खिंचे बूर्ज्वा भी अपनी आदत के अनुसार इस दमन में साथ छोड़कर भागने लगे। जर्मन पार्लियामेंट में चुने गए समाजवादी मेम्बरों में घोर फूट पड़ गई। उनमें एक पक्ष का नेता मैक्स कैजर था। उसके एक भाषण पर कार्ल हर्श ने जबर्दस्त आक्रमण किया, जिसका राइखस्टाग के समाजवादी गिरोह ने विरोध किया, क्योंकि कैजर ने उनकी अनुमति से उक्त भाषण दिया था। कार्ल हर्श एक तरुण पत्रकार था, जो लीबक्नेख्ट के जेल में रहने के सालों में उस पक्ष की ओर से आगे बढ़ा था। पीछे वह पेरिस में भाग गया, जहाँ से जर्मनी में आम क्षमादान के बाद लौटा। अब उसने फिर जर्मन-पार्टी के लिए काम करना शुरू किया। 1878 के दिसम्बर के मध्य में 'डी लाटेर्ने'[1] के नाम से एक साप्ताहिक पत्र ब्रेदा (बेल्जियम) से निकालने लगा। हर्श पर मार्क्स और एंगेल्स का पूरा विश्वास था। वह उसके पत्र के लिए लेख लिखने को भी तैयार थे। पार्टी की तरफ से ज़ूरिच से पत्र निकालने का निश्चय हुआ। वहाँ रहनेवाले पार्टी के तीन मेम्बर श्रम्म, कार्ल होखबेर्ग और एडवर्ड बेर्नस्टाइन उसके संचालक नियुक्त किए गए। बहुत देर करके जुलाई 1879 में यह 'सामाजिक विज्ञान और सामाजिक राजनीतिक वर्षपत्र'[2] के रूप में निकला। वर्षपत्र के लेखों, उसमें विशेष करके होखबेर्ग[3] और श्रम्म द्वारा लिखे तथा बेर्नस्टाइन द्वारा कुछ पंक्तियाँ जोड़े 'समाजवादी आन्दोलन की आलोचना' नामक लेख को पढ़कर मार्क्स और एंगेल्स बहुत क्षुब्ध हुए। इसके बाद हर्श ने भी उसके साथ सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया। होखबेर्ग ने लन्दन जाकर मार्क्स से तो नहीं, लेकिन एंगेल्स से मुलाकात की, लेकिन उसकी विचार-संबंधी गड़बड़ी का एंगेल्स के ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। 19 सितम्बर, 1879 में मार्क्स को सोर्गे के पास पत्र लिखते हुए कहना पड़ा था कि यदि नयी पार्टी के नये पत्र की यही रफ्तार रही, तो हमें खुलकर

1. Die Laterne. 2. Das Jahrbuch fur Sozialvisenschaft and sozial pobitio. 3. Hoch berg.

उसके विरुद्ध लड़ना पड़ेगा। आगे इसकी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि वर्षपत्र को तीनों और आगे नहीं चला सके। जूरिच के 'सोजियाल डेमोक्राट' (समाजवादी जनतांत्रिक) के सम्पादन का भार वोल्मर ने ले लिया, लेकिन वह अच्छी हालत में नहीं निकल रहा था। जर्मन समाजवादियों को कितनी कठिनाई के भीतर काम करना पड़ता था, इसे मार्क्स अच्छी तरह समझते थे, इसलिए 5 नवम्बर, 1880 ई. के पत्र में उन्होंने सोर्गे को लिखा था : "जिन लोगों को दूसरे देशों में अपेक्षाकृत शान्ति और निश्चिन्तता का जीवन बिताने का अवसर मिला है, उन्हें अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में और भारी बलिदान के साथ जर्मनी में काम करनेवालों में रहना है, बूर्ज्वाजी को खुश करने का कारण बनने के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न करने का अधिकार नहीं है।"

कुछ सप्ताह बाद आपसी झगड़े खतम करके शान्ति स्थापित हुई। 21 दिसम्बर, 1880 को वोल्मर ने सम्पादक-पद से इस्तीफा दे दिया, और जर्मन पार्टी के नताओं ने उसकी जगह कार्ल हिर्श[1] को नियुक्त किया। यह मार्क्स और एंगेल्स को संतुष्ट करने का प्रयत्न था। हिर्श उस वक्त लन्दन में रहता था, उसको राजी करने तथा मार्क्स और एंगेल्स के साथ परिस्थितियों पर पूरी तौर से विचार करने के लिए बेबेल स्वयं लन्दन आया। वह अपने साथ बेर्नस्टाइन को भी लेता गया था। कार्ल हिर्श ने लन्दन में रहकर काम करने की बातें कहीं। वर्षपत्र के कारण बेर्नस्टाइन के खिलाफ जो भाव पैदा हुए थे, उन्हें दूर हटाने की कोशिश बेबेल ने की। इसमें उसे कितनी सफलता हुई, यह इसी से मालूम होगा कि बेर्नस्टाइन को पत्र का अस्थायी सम्पादक नियुक्त कर दिया गया—और अन्त में बेर्नस्टाइन स्थायी सम्पादक भी बन गया। मार्क्स और एंगेल्स के जीवित समय तक बेर्नस्टाइन का रवैया ठीक रहा, लेकिन हम जानते हैं, पीछे मार्क्सवाद के शत्रुभूत अनुयायियों में बेर्नस्टाइन का नाम सबसे पहले आया। मार्क्स के वास्तविक उत्तराधिकारी लेनिन को इस अवसरवादी समाजवादी को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए कसम उठानी पड़ी।

फ्रांस में भी बहुत उतार-चढ़ाव के बाद पार्टी के काम में सुगबुगाहट शुरू हुई। गुइदे अब काम में जुट पड़ा था। वह पेरिस से 'एगालिते' (समानता) पत्र निकालने लगा था। 1880 ई. के बसंत में गुइदे लन्दन गया। वह तरुण समाजवादी पार्टी के निर्वाचन-प्रोग्राम तैयार करने में मार्क्स, एंगेल्स और लाफार्ग से सहायता लेना चाहता था। जो प्रोग्राम तैयार हुआ, उसे मार्क्स ने फ्रेंच कमकरों की मुक्ति के लिए भारी कदम बतलाया। मार्क्स इतने संतुष्ट थे कि उन्होंने अपने दोनों फ्रेंच दामादों को आम क्षमादान के तुरन्त ही बाद फ्रांस लौटने के लिए सहमति प्रकट की। लाफार्ग ने लौटकर गुइदे के साथ काम करना शुरू किया, और लांग्वे ने एक प्रभावशाली पत्र 'ला जुस्तिस' (न्याय) को सँभाला।

रूस में स्थिति खराब थी, लेकिन मार्क्स की दृष्टि में यह अधिक आशाप्रद थी। उनके 'कपिटाल' का वहाँ ज्यादा प्रचार हुआ। उसके महत्त्व को और देशों से अधिक रूप में माना गया—विशेषकर विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में तरुणों ने उसका दिल खोलकर स्वागत किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अभी इस समय लेनिन दस वर्ष के बालक थे। उन्हें 'कपिटाल' में हाथ लगाने के लिए चार-पाँच सालों की और देर थी। तो भी वहाँ के दो प्रमुख राजनीतिक दल—जन-इच्छा पार्टी और काला-वितरण पार्टी—मार्क्स की विचारधारा को बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। दोनों पार्टियाँ अपना सबसे बड़ा लक्ष्य किसानों को अपनी ओर खींचना समझती थीं, और इसमें वह पूरी तौर से बकुनिनवादी थीं। मार्क्स और एंगेल्स ने इसपर एक मुख्य प्रश्न उठाया था : क्या रूसी किसान संगत[2]—जो कि भूमि की प्राचीन सम्मिलित प्रभुता के अत्यन्त विकृत रूप हैं—भूमि के प्रभुत्व के उच्चतम कम्युनिस्ट रूप में सीधे विकसित हो सकती है, अथवा उन्हें सबसे पहले उसी तरह के विघटन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा, जो कि पश्चिमी यूरोपीय देशों के ऐतिहासिक विकास के दौरान देखा गया है ? इसका जवाब मार्क्स और एंगेल्स ने बेरा जासुलिच द्वारा कम्युनिस्ट घोषणापत्र के नये अनुवाद में निम्न शब्दों में दिया था : "यदि रूसी क्रान्ति ने पश्चिम में कमकरों की एक ऐसी क्रांति की पूर्व-सूचना दी, जिसमें कि दोनों क्रांतियाँ एक-दूसरे की पूरक बनें, तो रूस की वर्तमान सम्मिलित सम्पत्ति का रूप कम्युनिस्ट विकास के आरम्भ

1. Hirsch. 2. Russian Peasant Community.

स्थान का काम दे सकेगा।" इन्हीं विचारों के कारण मार्क्स जन-इच्छा (नरोद्नया वोल्या) पार्टी का बहुत समर्थन करते थे, जिनकी आतंकवादी नीति के कारण जार का इधर-उधर खुलकर घूमना बन्द हो गया था और वह एक तरह का बन्दी जीवन बिताता था। मार्क्स काला-वितरण-पार्टी के जबर्दस्त विरोधी थे, क्योंकि वह सभी तरह के राजनीतिक और क्रांतिकारी कार्रवाइयों को छोड़कर अपने को प्रोपेगेंडा तक सीमित रखती थी—अखेलराद और प्लेखानोफ जैसे मार्क्सवादी प्रचारक यद्यपि काला-वितरण-पार्टी से सम्बद्ध थे, तथापि जबानी जमा-खर्च और अकर्मण्यता को मार्क्स पसन्द नहीं कर सकते थे।

मृत्यु के दो साल पहले जून, 1881 ई. में मार्क्स ने इंग्लैंड में भी कुछ नई सुगबुगाहट देखी, जब कि हिंडमेन की पुस्तक 'इंग्लैंड सबके लिए' प्रकाशित हुई, और जो जनतांत्रिक फेडरेशन के प्रोग्राम के तौर पर लिखी गई थी। फेडरेशन की शाखाएँ इंग्लैंड और आयरलैंड के कितने ही स्थानों पर स्थापित हुई थीं। वह अर्ध-बूर्ज्वा और अर्ध-सर्वहारा उग्रवादी सभाओं को मिलाकर बना था। पुस्तक के श्रम और पूँजीवाले अध्यायों में मार्क्स के 'कपिटाल' से बहुत-से सीधे उदाहरण और कितने ही विचार लिए गए थे, तो भी हिंडमेन ने मार्क्स का नाम नहीं लिया था, जिसके लिए उसका कहना था, कि मार्क्स का नाम यहाँ के लोगों को पसन्द नहीं है, और अंग्रेजी विदेशियों से सीख लेना पसन्द नहीं करते। मार्क्स ऐसे आदमी के साथ अपना सम्बन्ध कैसे कायम रख सकते थे ?

4. पत्नी-वियोग (1881 ई.)

1878 ई. के बाद स्वास्थ्य की खराबी के कारण मार्क्स कुछ काम नहीं कर सकते थे। इसी समय मार्क्स-पत्नी जेनी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चला, जिसका बड़ा बुरा प्रभाव मार्क्स पर पड़ना जरूरी था। अपनी सास (जेनी) के बारे में लाफार्ग ने लिखा था :

"मार्क्स केवल 17 वर्ष के थे, जब कि उनकी मँगनी हो गई थी, लेकिन दोनों को नौ वर्ष तक इन्तजार करना पड़ा, तब 1843 ई. में उनका ब्याह हुआ। उसके बाद वह फिर एक-दूसरे से तब तक अलग नहीं हुए, जब तक कि अपने पति से कुछ ही समय पहले फ्राउ मार्क्स का देहान्त नहीं हो गया। जेनी यद्यपि एक जर्मन सामन्त-परिवार में पैदा हो पाल-पोसकर बड़ी हुई थीं, लेकिन उनके जैसा समानता का भाव रखनेवाला व्यक्ति मिलना मुश्किल था। सामाजिक भेद और ऊँच-नीच भाव का उनके लिए अस्तित्व नहीं था। उनके घर में, उनकी मेज पर, काम के अपने मोटे-झोटे कपड़ों में कमकरों का उतनी ही नम्रता और खुले दिल से स्वागत होता था, जितना कि किसी ड्यूक या प्रिन्स का। सभी देशों के बहुतेरे कमकर उनका आतिथ्य प्राप्त करते थे। मुझे निश्चय है, उनका वह इतनी सादगी और अकृत्रिम स्नेह के साथ स्वागत करती थीं कि वह कभी ख्याल में भी नहीं ला सकते थे कि हमारा स्वागत करनेवाली महिला माता की ओर से अर्गाइल के ड्यूक की सन्तान है, उसका भाई प्रशिया के राजा का राज्य-मन्त्री रहा है। यह बातें एक क्षण के लिए भी उनके दिमाग में नहीं आ सकती थीं। सामन्ती सब बातें अपने कार्ल का अनुगमन करते समय वह छोड़ आईं। उन्होंने जो यह त्याग किया, उसका कभी उनके दिल में अफसोस नहीं हुआ—उन दिनों में भी नहीं जब कि अभाव का पहाड़ उनके ऊपर गिरता रहा।

"उनमें गम्भीरता और सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव था। अपने मित्रों के लिए उन्होंने जो पत्र लिखे हैं, वह एक सजीव तथा मौलिक दिमाग की अधिकारपूर्ण उपज तथा उनकी सुलभ लेखनी के स्वर से निकले भावोद्रेक हैं।... जान फिलिप बेकर ने इनमें से कुछ को प्रकाशित किया है। निष्ठुर व्यंग्यकार (कवि) हाइने मार्क्स के परिहासों से डरता था, लेकिन फ्राउ मार्क्स की तीक्ष्ण और भावपूर्ण बुद्धि का वह बहुत बड़ा प्रशंसक था। जब मार्क्स-दम्पतिपेरिस में रहते थे, तो वह उनके घर में बराबर अतिथि बनता था। मार्क्स अपनी पत्नी की बुद्धि और विवेक की इतनी कदर करते थे कि जैसा कि 1866 ई. में उन्होंने मुझसे कहा था, 'मैं अपने सभी हस्तलेखों को उसके सामने पेश करता हूँ और उसके फैसले को वहुमूल्यवान् समझता हूँ।' मार्क्स की कृतियों को प्रेस में भेजने से पहले वह उनकी कापी उतार लेती थीं।

"फ्राउ मार्क्स की बहुत सन्तानें हुईं। उनमें से तीन अत्यन्त छोटी उम्र में ही मर गए।... उस समय जब कि 1848 ई. की क्रांति के बाद लन्दन में शरणार्थी के तौर पर सोहो क्वायर की डीन स्ट्रीट की दो कोठरियों में रहते थे, मैं उनकी तीन लड़कियों को ही जान सका हूँ। 1865 ई. में जब मैं पहले-पहल मार्क्स से मिला, तो सबसे छोटी लड़की (आजकल श्रीमती एवलिंग) एक बड़ी आनन्दी बच्ची थी, जो देखने में लड़की की अपेक्षा ज्यादा लड़के-जैसी मालूम होती थी। मार्क्स अक्सर कहा करते थे : मेरी पत्नी ने एलिनोर को दुनिया में लाने के समय लिंग के बारे में भूल कर दी। दूसरी दो लड़कियाँ बड़ी सुन्दर और सुशीला थीं–एलिनोर से उलटी। सबसे बड़ी लड़की जेनी (आजकल मदाम लांग्वे) अपने बाप की तरह ही (अपेक्षाकृत साँवले रंग, काली आँखों और काले बालोंवाली) थी। उससे छोटी लोरा (वर्तमान मदाम लाफार्ग) अपनी माँ जैसी रंग में सफेद, गालों से लाल और सुनहले घुँघराले बालोंवाली थी।...

"मार्क्स और उनकी पत्नी पारस्परिक निर्भरता के बन्धनों से घनिष्ठतया आबद्ध थे। जेनी का सौंदर्य मार्क्स के लिए आनन्द और अभिमान की चीज थी। क्रांतिकारी समाजवादी के तौर पर उनके भिन्न-भिन्न जीवनों के साथ अटूट रूप से सम्बद्ध गरीबी को सहन करने में जेनी की कोमलता और भक्ति उनके लिए बड़ा सम्बल सिद्ध हुई। जिस बीमारी की भीषण यातना ने फ्राउ मार्क्स को कब्र में पहुँचाया, उसने उनके पति की आयु को भी कम कर दिया। उनकी दीर्घ और यातनापूर्ण बीमारी में मार्क्स शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से विशीर्ण हो गए।... उन्हें नींद नहीं आती थी !..."

1878 ई. की शरद में मार्क्स ने सोर्गे को लिखा था कि मेरी पत्नी बहुत बीमार है। एक साल बाद फिर लिखा था : "मेरी पत्नी अब भी खतरनाक रूप से बीमार है और मैं ठीक तरह से अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता हूँ।" पहले बीमारी का पता नहीं लगा, किन्तु काफी समय के बाद यह मालूम हो गया कि मार्क्स-पत्नी असाध्य नासूर से पीड़ित हैं, जो कि धीरे-धीरे भयंकर यातना के बाद मौत के मुख में डाले बिना नहीं छोड़ेगा। जेनी ने जीवन-भर मार्क्स के लिए जिस तरह अपने को भुलाकर सबकुछ सहा था, उनके जीवन की अन्तिम घड़ियों में मार्क्स ने भी उसी तत्परता से पत्नी की पाटी नहीं छोड़ी। परिवार की सारी चिन्ताओं और विपत्तियों के बोझों से दबी जाती जेनी ने हमेशा पति के सामने मुस्कुराते हुए आने का प्रयत्न किया था। इतिहास में जेनी जैसी पत्नी विरले ही महान विचारकों को प्राप्त हुई।

1881 ई. की गर्मियों में, जब कि बीमारी काफी बढ़ चुकी थी, जेनी ने हिम्मत करके अपनी विवाहिता लड़कियों से मिलने के लिए पेरिस की यात्रा की। बीमारी छूटने की आशा नहीं थी, इसीलिए डाक्टरों ने यात्रा के खतरे से रोकने की कोशिश नहीं की। मदाम लांग्वे को पत्र लिखते हुए 22 जून, 1881 को मार्क्स ने अपनी यात्रा के बारे में लिखा था : "तुरन्त जवाब दो, क्योंकि मामा तब तक यहाँ से नहीं प्रस्थान करेगी, जब तक जान न ले कि तुम लन्दन से क्या चीज लाना पसन्द करती हो। तुम तो जानती हो कि वह ऐसी बातें पसन्द करती है।" यात्रा अच्छी तरह सम्पन्न हुई, लेकिन लौटने पर मार्क्स पर पार्श्व-शूल (फुफ्फुस) की सूजन का जबर्दस्त आक्रमण हुआ, जिसके साथ खाँसी और निमोनिया भी मिल गई। यह बड़ी खतरनाक बीमारी थी, लेकिन लड़की एलिनोर और परमभक्ता लेनचेन डेमुथ के स्वार्थत्याग और सेवाओं से वह उस समय बच गए। एलिनोर के लिए वह बड़े परेशानी के दिन थे। उसने लिखा था : "1880 ई. की शरद में मेरी प्यारी माँ इतनी बीमार हो गई कि वह अपने को चारपाई से खड़ा नहीं कर सकती थी। इसी समय मूर भी फुफ्फुस-शोथ के भयंकर आक्रमण से पीड़ित हुआ। यह इतनी भयंकर इसी लिए हो उठी, कि उसने सदा अपनी बीमारी की उपेक्षा की थी। डाक्टर (हमारे श्रेष्ठ मित्र डनकिन) का विचार था कि अवस्था बिल्कुल निराशाजनक है। भयंकर समय था। सामने के बड़े कमरे में हमारी माँ पड़ी हुई थी, और पीछेवाले छोटे कमरे में मूर। वह दोनों जो एक-दूसरे के इतने घनिष्ठ थे, अब एक ही कमरे में नहीं रह सकते थे।

"हमारी भली पुरानी लेनचेन (तुम जानते हो, हमारे लिए वह क्या थी ?) और मैं दोनों की देखभाल करती। डाक्टर ने कहा था, कि हमारी सेवा-सुश्रूषा ने मूर के प्राण बचा लिए। जो भी हो, मैं अच्छी तरह जानती हूँ, कि न तो हेलेन (लेनचेन) और न मैं ही तीन सप्ताह तक कभी चारपाई पर गईं। हम रात-दिन

खड़ी रहतीं, और जब कभी पूरी तौर से अशक्त हो जातीं, तो बारी-बारी से एक-एक घंटा आराम करतीं। मूर एक बार फिर अपनी बीमारी से उठ खड़ा हुआ। मैं उस प्रातःकाल को भूल नहीं सकती, जब कि उसने माँ के कमरे में जाने के लिए अपने पास काफी शक्ति पाई। दोनों फिर एक साथ तरुण हो गए—वह एक प्यारी तरुणी और वह एक प्यारा तरुण दोनों मानो एक साथ जीवन में प्रवेश कर रहे थे। उनका यह मिलन बीमारी से कंकाल मात्र एक बूढ़े आदमी और मरती हुई एक ऐसी बुढ़िया स्त्री का मिलन नहीं था, जो दोनों अपने जीवन में एक-दूसरे से अन्तिम विदाई ले रहे थे।

"मूर का स्वास्थ्य बेहतर हो गया, यद्यपि वह अभी भी बल नहीं प्राप्त कर सका था, तथापि वह देखने में मजबूत मालूम होता था।··· इसी समय 2 दिसम्बर, 1881 ई. को माँ मर गई। उसने अपने अन्तिम शब्द—अंग्रेजी में यह उल्लेखनीय है—अपने कार्ल को सम्बोधित करके कहे थे। जब हमारे प्यारे जनरल (एंगेल्स) आए तो उन्होंने वह कहा जिसने मुझे करीब-करीब क्रुद्ध कर दिया—'मूर भी मर गया'।

"···· (मेरी माँ) एक महीने तक नासूर की भयंकर यातना को सहती मरणासन्न पड़ी रही, तो भी उसकी सुन्दर प्रकृति, असीम हाजिरजवाबी—जिसे कि तुम खूब अच्छी तरह जानते हो—'एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं हुई। उसने लड़के की तरह अधीर होकर उस समय (1881 ई.) हो रहे जर्मनी के निर्वाचन के परिणामों को पूछा, और हमारी विजयों को सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। अपने मृत्यु के समय तक वह प्रसन्न-हृदय रही और मजाक करते हुए हमारे दिल में पैदा हुई आशंकाओं को हटाने की कोशिश करती थी। भयंकर यातना में पड़ी रहने पर भी वह हँसा करती—वह डाक्टर और हम सबकी हँसी उड़ाती, क्योंकि हम बीमारी के बारे में इतनी विकलता अनुभव करते थे। करीब-करीब अन्तिम क्षण तक वह पूरी तौर से होश में रही। बोल सकने से पहले उसका अन्तिम शब्द 'कार्ल' सम्बोधित करते निकला और उसने हमारे हाथों को दबाकर मुस्कुराने की कोशिश की।"

5. मार्क्स का निधन (1883 ई.)

मार्क्स की लड़की एलिनोर ने अपने पिता के अन्तिम समय के बारे में लीवक्नेख्ट को लिखा था : "1877 ई. में मूर को फिर कार्लस्वाड जाना था, लेकिन जब पता लगा कि जर्मनी और आस्ट्रिया की सरकारें उन्हें निकाल बाहर करने का इरादा रखती हैं, तो यात्रा के लम्बेपन और खर्च का ख्याल करके वह फिर कार्लस्वाड नहीं गए।··· हम बर्लिन गए, जिसका मुख्य उद्देश्य था, मेरे पिता के विश्वासपात्र मित्र तथा मेरे मामा एडगर फान वेस्टाफालेन से मुलाकात करना। हम कुछ ही दिनों वहाँ रहे। मूर को प्रसन्नता हुई, जब कि हमने सुना कि पुलिस हमारे होटल में तीसरे दिन—हमारे स्थान छोड़ने से ठीक एक घंटा बाद—ढूँढ़ने आई थी।···"

"माँ के प्राणों के साथ मूर के भी प्राण चले गए। उसने जीवन को कायम रखने के लिए बहुत संघर्ष किया, क्योंकि वह अन्त तक का योद्धा अब जीर्ण-शीर्ण पुरुष था। उसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। अगर वह स्वार्थी होता, तो सभी चीज को छोड़ देता, किन्तु उसके लिए बाकी सभी चीजों से जो ऊपर थी—वह थी, अपने आदर्श के प्रति ईमानदारी। वह अपनी महान् कृति को पूरा करने की कोशिश कर रहा था, इसलिए अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिए उसने दूसरी यात्रा करना स्वीकार किया। 1882 ई. के वंसत में पेरिस और अर्जांत्वी[1] गया, जहाँ मैं उसे मिली और हमने जेनी और उसके बच्चों के साथ सचमुच ही कुछ सुखमय दिन बिताए। इसके बाद मूर फ्रांस के दक्षिण में और अन्त में अल्जियर की ओर गया। अल्जियर, मीस और कानेस निवास के सारे समय में उसे पूरे मौसम का सामना करना पड़ा। अल्जियर से उसने मेरे पास लम्बे पत्र लिखे, जिनमें से बहुतों को मैंने खो दिया, क्योंकि मूर के कहने पर मैंने उन्हें जेनी के पास भेज दिया, और उसने बहुत कम को मेरे पास लौटाया।

"अन्त में जब मूर घर आया, तो वह बहुत बीमार था। हमें अब अत्यन्त अनिष्ट का डर होने लगा।

---

1. Argentevil.

डाक्टर की सलाह से उसने शरद और जाड़ों को वाइट द्वीप के वेन्टनोर[1] (कस्बे) में बिताया। मैं इसका जिक्र करना चाहूँगी, कि उस समय को मूर की इच्छानुसार मैंने जेनी के सबसे छोटे लड़के जीन (जॉनी) के साथ इताली में बिताया। 1883 ई. के वसन्त में अपने साथ जॉनी को लिए मैं मूर के पास लौटी। जॉनी अब भी मूर के नातियों में विशेष प्रिय था। मुझे लौट जाना पड़ा, क्योंकि मुझे पढ़ाने के काम में लगना था।

"और अब अन्तिम भीषण प्रहार हुआ : जेनी की मृत्यु की खबर आई। जेनी पहिलौठी और मूर की प्रिया पुत्री एकाएक (8 जनवरी को) मर गई। हमें उस समय मूर के पत्र मिले थे, वह इस समय मेरे सामने हैं, उनमें वह लिखता है : 'जेनी का स्वास्थ्य बेहतर है और तुम (हेलेन और मैं) को भय खाने की जरूरत नहीं।' जिस पत्र में मूर ने उपर्युक्त बात लिखी थी, उसके एक घंटा बाद जेनी के मरने का तार हमें मिला। मैं तुरन्त वेन्टनोर गई।

"अपने जीवन में मैंने बहुत-से शोकपूर्ण घंटों का सामना किया है, लेकिन कोई इस जैसा शोकपूर्ण नहीं था। मैं महसूस कर रही थी कि मैं अपने पिता के पास मृत्युदंड लिए जा रही हूँ। उत्सुकतापूर्ण लम्बी यात्रा में मैं अपने दिमाग को यह सोचने में परेशान कर रही थी कि कैसे इस खबर को उसे दूँ। मुझे इसे कहने की जरूरत नहीं थी, चेहरे ने मेरा भेद खोल दिया—मूर ने तुरन्त कहा, 'हमारी जेनी मर गई !' और इसके बाद उसने मुझसे तुरन्त पेरिस जाकर बच्चे की सहायता करने के लिए कहा। मैं उसके साथ रहना चाहती थी—लेकिन वह किसी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं था। मैं मुश्किल से आध घंटा वेन्टनोर में रह पाई थी, फिर तुरन्त पेरिस के लिए रवाना होने के वास्ते लन्दन की शोकपूर्ण यात्रा के लिए तैयार हो गई। मूर ने जो कुछ बच्चों के बारे में कहा था, मैंने वह किया।

"मैं अपनी वहाँ की यात्रा के बारे में नहीं कहूँगी—मैं काँपते हृदय से उस समय की याद-भर कर सकती हूँ। वह मानसिक यातना, वह साँसत—और कुछ उसके बारे में नहीं। यही पर्याप्त है—मैं लौट आई और मूर घर लौटा मरने के लिए।

"अब चूँकि मूर के दक्षिण में प्रवास के बारे में कुछ और बात तुम चाहते हो। हमने—मैं और वह—1882 ई. के आरम्भ में कुछ सप्ताह जेनी के साथ अर्जांत्वी में बिताए। मार्च और अप्रैल में मूर अल्जियर में था, मई में मोतेकार्ल, नीस, कानेस में। जून के अन्त तथा सारी जुलाई वह फिर जेनी के साथ थी, उस समय लेनचेन भी अर्जांत्वी में थी। अर्जांत्वी से लोरा के साथ मूर स्वीट्जरलैंड, येवे आदि गया। सितम्बर के अन्त या अक्तूबर के आरम्भ में वह इंग्लैंड लौटा और फिर तुरन्त ही वेन्टनोर गया, जहाँ जॉनी और मैं उसके पास गए।

"और अब दूसरे बच्चों के बारे में तुम्हारे प्रश्नों के लिए—हमारा नन्हा एडगर (मूश) 1854 ई. में पैदा हुआ था—पर मैं इसे निश्चयपूर्वक नहीं कह सकती—और 1855 ई. के अन्त में मरा। नन्हा फ्रांक हाइनरिख 5 नवम्बर, 1849 को पैदा हुआ और वह जब मरा, तो दो वर्ष का था। मेरी नन्ही बहन फ्रांसिस्का 1851 ई. में पैदा हुई, और करीब 11 महीने की हो शैशव में ही मर गई।"

प्रिया पत्नी के मरने (2 दिसम्बर, 1881) के बाद मार्क्स (मृत्यु 14 मार्च, 1883 ई.) के 15 महीनों के समय में फिर दोनों मित्र अधिकतर एक-दूसरे से अलग रहने लगे। अलग रहने का एक फायदा यह हुआ, कि अब फिर उनके बीच में पहले की तरह पत्र-व्यवहार शुरू हो गया, जिसमें जीवन की दुःखपूर्ण घड़ियों का मार्मिक वर्णन मिलता है और पता लगता है कि उस शक्तिशाली पुरुष को भी सभी मनुष्यों के भाग्य में जीवन का जो निष्ठुर विघटन बदा है, उसका सामना करना पड़ा। इस समय भी अभी मार्क्स को अपनी बाकी शक्ति अपने जीवन-उद्देश्य को पूरा करने में लगाने का ख्याल था। 15 दिसम्बर, 1881 ई. को उन्होंने सोर्गे को लिखा था : "पिछली बीमारी से मैं डबल लुंज हो निकला हूँ : मानसिक तौर से लुंज अपनी पत्नी के मरने के कारण

1. Ventnor.

और शारीरिक तौर से इसलिए कि बीमारी के कारण ने फुफ्फुस-शोथ और श्वसनाली की बढ़ी हुई खरखराहट को मेरे साथ लगा दिया। अपने स्वास्थ्य को फिर से प्राप्त करने के प्रयत्न में मुझे अपने समय का कुछ भाग हाथ से खोना पड़ेगा।" लेकिन जो समय मार्क्स को देना पड़ा, वह जीवन के अन्तिम क्षणों तक का था। वह फिर अपने स्वास्थ्य का सुधार नहीं कर सके।

सितम्बर (1882 ई.) में जब वह जेनेवा-सरोवर से लौटे थे, तो काफी मजबूत मालूम होते थे और अक्सर हेम्पस्टेडहीथ टहलने जाया करते थे। वह उनके घर से 300 फुट ऊँचा था, तो भी चलने में उन्हें भारी थकावट नहीं मालूम होती थी। अब उन्होंने फिर अपने काम में लगने का इरादा किया। डाक्टरों ने उन्हें जाड़ों में लन्दन में रहने से मना कर दक्षिणी समुद्रतट पर रहने की अनुमति दी थी। नवम्बर में लन्दन की धुन्ध बढ़ने लगी, तो वह फिर वेन्टनोर गए, लेकिन वहाँ भी बदली और धुन्ध उसी तरह की मिली, जैसी कि पिछले जाड़ों में अल्जियर और मोंतेकार्लो में मिली थी, फिर उन्हें सर्दी लग गई, ताजी हवा में स्वास्थ्यकर चहलकदमी करने की जगह वह अपने घर में रहकर अधिक और अधिक कमजोर होने के लिए मजबूर हुए। अब लिखने-पढ़ने का कुछ भी काम करना असम्भव था, यद्यपि साइन्स की प्रत्येक प्रगति की ओर उनका ध्यान लगा रहता था। जब फ्रांस में तरुण कमकरों की पार्टी में फिर हलचल शुरू हुई, तो वह अत्यन्त असंतुष्ट हो अपने दोनों दामादों के बारे में कह उठे : "लांग्वे चरम प्रूधों-वादी और लाफार्ग चरम बकुनिनिस्ट। शैतान उन्हें ले जाए।" इसी समय मार्क्स के मुँह से वह वाक्य निकला था, जिसे समाजवाद के विभीषण दोहराया करते हैं : "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, निश्चय ही मैं मार्क्सवादी नहीं हूँ।' यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मार्क्स किसी तरह के रूढ़िवाद के विरुद्ध थे, और वह लकीर का फकीर किसी को देखना नहीं चाहते थे।

11 जनवरी, 1883 ई. को अपनी ज्येष्ठा पुत्री जेनी के मरने का जबर्दस्त प्रहार मार्क्स के हृदय पर पड़ा। उसके साथ ही सर्दी-खाँसी और कंठनाली की असह्य पीड़ा आरंभ हुई। अब उन्हें कुछ भी निगलना मुश्किल हो गया। "भीषण से भीषण पीड़ाओं को जो बेपर्वाही से सहन करते रहे, अब उन्होंने अधिक ठोस आहार लेने का प्रयत्न फिर न करके दूध पीना अच्छा समझा, जिसे कि वह तमाम जीवन में नापसन्द करते रहे।" फरवरी में फेफड़े में एक गाँठ निकली। कोई दवा अब काम नहीं कर रही थी—पन्द्रह महीने से दवाइयाँ लेते-लेते अब शरीर पर उनका प्रभाव नहीं पड़ रहा था। दवाओं ने बल्कि भूख को बन्द और पाचनशक्ति को कम कर दिया। वह दिन-दिन घुलते जा रहे थे, लेकिन डाक्टर निराश नहीं थे, क्योंकि पीछे गले की शिकायत और खाँसी दूर होने से निगलना आसान हो गया। लेकिन, यह केवल ऊपरी दिखावा था। मार्क्स के पास मृत्यु ढिंढोरा पीटकर नहीं आना चाहती थी। 14 मार्च, 1883 के अपराह्न में चुपचाप आरामकुर्सी पर बैठे मार्क्स को बिना किसी पीड़ा के मृत्यु ने अपने कोमल हाथों से अनंत निद्रा में सुला दिया।

एंगेल्स को अपने आजीवन बन्धु के प्रति जितना प्रेम था, उसके कारण उन्हें जो दुःख हुआ, उसे आसानी से समझा जा सकता है। बुद्ध के शब्दों में वह भी कह सकते थे 'कुतोत्य लब्भा' (वह—मृत्यु से छुटकारा—कहाँ मिलनेवाला है)। एंगेल्स ने कहा था : "डाक्टरों का कौशल शायद एक असहाय व्यक्ति के जीवन को एकाएक नहीं, बल्कि इंच-इंच करके मरने के लिए, तथा डाक्टरी पेशे के यश को बढ़ाते कुछ और सालों तक घसीटकर ले जाना सम्भव कर देता। लेकिन हमारे मार्क्स कभी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। अपने सामने इतनी मात्रा में अपूर्ण काम को देखना, उसे समाप्त करने की तरसानेवाली इच्छा का बर्दाश्त करना तथा यह समझना कि मैं कभी उसे नहीं कर सकूँगा—यह उससे हजार गुना कड़वा होता, जितना कि कोमल मृत्यु ने उन्हें लेकर किया। एपिकुरु की तरह वह कहा करते थे : 'मरनेवाले के लिए मृत्यु कोई दुःख की बात नहीं, बल्कि उनके लिए दुःख की बात है, जो बच रहते हैं।' इस महान् प्रतिभा को डाक्टरी विद्या के भारी यश··· के लिए घुलाने से हजार गुना बेहतर है, जो कि हम उन्हें उस कब्र की ओर ले जा रहे हैं, जहाँ उनकी पत्नी पड़ी हैं।"

इस प्रकार 14 मार्च, 1883 ई. को मेटलैंड पार्क में मार्क्स, लड़की के शब्दों में : "तुम जानते हो, कि मेटलैंड पार्क में अपने शयनकक्ष से अध्ययनकक्ष में गए, आरामकुर्सी पर बैठे और शान्ति के साथ सो गए।

"जनरल (एंगेल्स) ने उस कुर्सी को जीवन-भर अपने पास रक्खा, फिर अब वह मेरे पास है।"

15 मार्च, 1883 को एंगेल्स ने अपने अमेरिकन मित्र सोर्गे को लिखा था :

"कल अपराह्न में ढाई बजे उनसे मिलने के सबसे अच्छे समय में उन्हें देखने गया। सबकी आँखों में आँसू थे, जान पड़ता था प्रलय आ गई। मैंने पूछताछ करके बात की सच्चाई तक पहुँचने की कोशिश की, जिससे कि सान्त्वना दे सकूँ। हल्का-सा रक्तस्राव हुआ था, और एकाएक सर्वनाश आ मौजूद हुआ। हमारी भली पुरानी लेना, जिसने उससे कहीं बेहतर सेवा-सुश्रूषा की, जितनी कि माँ अपने बच्चे के लिए करती है—ऊपर गई और फिर नीचे आई। 'वह अर्धनिद्रित है'—उसने कहा और यह भी कि 'मैं ऊपर जा सकता हूँ।' जब हम भीतर गए, तो वह वहाँ लेटे पड़े थे, सोए थे, फिर कभी न जागने के लिए। नाड़ी और साँस बन्द हो गई थी, इन दो मिनटों के भीतर विना पीड़ा के शान्तिपूर्वक वह अनंतनिद्रा में चले गए।··· मानवता के पास अब एक सिर कम है, लेकिन सचमुच आज का वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिर था, मजदूर-वर्ग का आन्दोलन अपने मार्क्स का अनुसरण करेगा, लेकिन उसका वह केन्द्रबिन्दु चला गया, जिसकी ओर निर्णायक क्षणों में अपनी इच्छा से फ्रेंच, रूसी, अमेरिकन और जर्मन ऐसी स्पष्ट निर्भ्रान्त सलाह को पाने के लिए सदा आते थे, जिसे केवल एक प्रतिभा और पूर्ण अधिकार रखनेवाला ही दे सकता था।"

6. अन्तिम विश्राम-स्थान

मृत्यु के तीन दिन बाद 17 मार्च, शनीचर के दिन (1883 ई.) कार्ल मार्क्स को उनकी सती पत्नी जेनी की कब्र में लिटा दिया गया। एक ओर यह महान् प्रतिभा दुनिया से विदाई ले रही थी, दूसरी ओर उसी समय उसका वास्तविक उत्तराधिकारी 16 वर्ष का हो रहा था, यद्यपि अभी उसे यह नहीं मालूम था, कि मार्क्स की ज्योति हृदय और मस्तिष्क में समाने जा रही है। मार्क्स के काम को पूर्णता तक पहुँचाना उसी के हाथ में बदा था। उसी ने मार्क्स के आदर्शों को दुनिया के एक छठे हिस्से पर सजीव रूप से सफलतापूर्वक स्थापित किया, किन्तु इस दूसरी महान् प्रतिभा (लेनिन) के बारे में हम अन्यत्र[1] कहनेवाले हैं। मार्क्स की इच्छानुसार परिवार ने इस अन्त्येष्टि-क्रिया को बहुत सीधे-सादे ढंग से किया। कब्रिस्तान में मार्क्स के थोड़े-से मित्र पहुँचे, जिनमें एंगेल्स, लेसनेर, लोखनेर (कम्युनिस्ट लीग के जमाने के उनके दोस्त), फ्रांस से दोनों दामाद लाफार्ग और लांग्वे तथा जर्मनी से उनके शिष्य लीबक्नेख्ट उपस्थित थे। साइंस के दो प्रमुख अग्रदूत रसायनशास्त्री शोरलेमेर और प्राणिशास्त्री रेलेकेस्टर मौजूद थे। एंगेल्स ने अंग्रेज़ी में विदाई भाषण दिया, जो कि उसी तरह मानवता की एक मधुर थाती और पथ-प्रदर्शन के लिए भारी सहारा है, जिस तरह लेनिन की कब्र पर स्तालिन के मुँह से निकले शब्द :

"14 मार्च के अपराह्न में पौने 3 बजे जीवित महानतम चिन्तक ने चिन्तन छोड़ दिया। दो मिनट अकेला रहने के बाद जब हम भीतर गए, तो देखा कि वह कुर्सी पर आराम से, किन्तु सदा के लिए सोए हैं।

"इस क्षति का मात्रांकन करना असम्भव है, जो कि इस पुरुष की मृत्यु के साथ यूरोप और अमेरिका के लड़ाके सर्वहारा और ऐतिहासिक विज्ञान ने उठाया है। जल्दी ही हम उस विच्छेद (भेदन) को काफी अनुभव करेंगे जिसे कि इस जबर्दस्त पुरुष की मृत्यु ने पैदा किया है।

"जैसे डारविन ने प्रकृति में विकास के नियम के कानून का आविष्कार किया, उसी तरह मार्क्स ने मानव-इतिहास में विकास के कानून का आविष्कार किया : यह सीधा-सादा तथ्य, जो कि पहले वादों के जंगल में छिपा हुआ था कि मानव प्राणी को सबसे पहले खाने, पीने, वास और पहनने की जरूरत होती है, इसके पहले कि उसका ध्यान राजनीति, साइंस, कला और धर्म की ओर जाए। अतएव जीवन के नजदीक के भौतिक साधनों का उत्पादन लोगों के आर्थिक विकास की सीढ़ी या काल वह आधार है, जिसके ऊपर राज्य-संस्थाएँ, कानूनी सिद्धान्त, कला और लोगों के धार्मिक विचार भी विकसित हुए हैं।

"लेकिन इतना ही नहीं, मार्क्स ने आजकल के पूँजीवादी उत्पादन के ढंग, उससे उत्पादन और बूर्ज्वा

---

1. "लेनिन", जिसे लिखा जा चुका है।

समाज-व्यवस्था उत्पादन के विकास के लिए विशेष कानून का आविष्कार किया। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार के साथ ही उन्होंने उस अन्धकार पर एकाएक प्रकाश डाला, जिसमें कि बूर्ज्वा और समाजवादी दोनों ही प्रकार के दूसरे अर्थशास्त्री भटक रहे थे।

"इस तरह के दो आविष्कार किसी एक जीवन के लिए पर्याप्त थे। सचमुच वह सौभाग्यशाली है, जो कि इनमें से एक को ढूँढ़ निकालने में सफल हो। लेकिन मार्क्स ने जिस किसी क्षेत्र में अनुसन्धान किया (ऐसे क्षेत्र बहुत थे और उनमें से कहीं भी मार्क्स का अनुसन्धान पल्लवग्राही नहीं था।) उन्होंने स्वतन्त्र आविष्कार किए–गणित के क्षेत्र में भी।

"वह एक साइंस के पुरुष थे, लेकिन इससे ही उनका व्यक्तित्व पूरा नहीं होता। मार्क्स के लिए साइंस एक सृजनात्मक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी शक्ति थी। सैद्धांतिक साइंस के इस या उस क्षेत्र में ऐसे नये आविष्कार से उनको आनन्द जरूर प्राप्त होता था, जिसके व्यावहारिक फल शायद अभी दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। किन्तु और भी बड़ा नया आविष्कार था, जो एक क्रांतिकारी ढंग के औद्योगिक विकास को, सारे ऐतिहासिक विकास को लेते तुरन्त प्रभावित करता है; उदाहरणार्थ, बिजली साइंस के क्षेत्र में आविष्कारों के विकास और अन्तिम समय में मार्सेल देयरेज के काम को वह बहुत दिलचस्पी के साथ देख रहे थे।

"चूँकि सबसे ऊपर मार्क्स एक क्रांतिकारी थे। जीवन में उनका महान् लक्ष्य था, पूँजीवादी समाज और उसके द्वारा पैदा की गई राज्य-संस्थाओं को उलट फेंकने में सहयोग देना, और उस आधुनिक सर्वहारा की मुक्ति के प्रयत्न में सहयोग देना, जिसके लिए उन्होंने पहले-पहले उसकी मुक्ति के लिए आवश्यक स्थितियों का ज्ञान प्रदान किया। इस संघर्ष में उनका असली रूप दिखाई पड़ता था। वह बड़े उत्साह तथा ऐसी सफलता के साथ लड़ते रहे, जो कि बहुत कम को मिली है–पहले 1842 ई. में 'राइनिशे जाइटुंग', पेरिस में 1844 ई. में 'फोरवार्ड', 1847 ई. में 'ड्वाशे-ब्रूजेलेर जाइटुंग', 1848-49 ई. में 'नोये राइनिशे जाइटुंग', 1852-61 ई. में 'न्यूयार्क ट्रिब्यून'–और फिर बहुत-सी खंडनात्मक कृतियाँ, पेरिस, ब्रुशेल्स और लन्दन में संगठन संबंधी काम और अन्त में इन सबसे बढ़कर महान् इण्टरनेशनल कमकर एसोसिएशन–सचमुच यही अकेला जीवन का अभिमान करने लायक काम होता, चाहे उसके निर्माता ने और कुछ भी नहीं किया होता।

"और इसलिए मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक घृणित और अत्यधिक गाली पानेवाले पुरुष थे। निरंकुश और गणतंत्री दोनों प्रकार की सरकारों ने उन्हें अपने देश से निकाल बाहर किया, टोरी और चरम जनतांत्रिक बूर्ज्वा भी उन्हें कलंकित करने के अभिमान में होड़ लगाए रहे। उन्होंने इस सबको मकड़ी के जाले की तरह एक ओर बुहार दिया, उपेक्षित किया और मजदूर होने पर ही जवाब दिया। वह साइबेरियन खानों से यूरोप होते अमेरिका के कैलिफोर्निया के तट तक करोड़ों क्रांतिकारी कमकरों द्वारा सम्मानित स्नेहपात्र हो उन्हें शोकाकुल करते मरे। मेरी यह कहने की हिम्मत है कि यद्यपि उनके बहुत-से विरोधी थे, तथापि वैयक्तिक शत्रु मुश्किल से कोई था।

"उनका नाम शताब्दियों तक जीता रहेगा, और उसी तरह उनकी कृतियाँ भी।"

मार्क्स की समाधि लन्दन के हाईगेट की कब्रों के जंगल में है, जिसका पता लगाना आसान काम नहीं है। 1932 ई. में इन पंक्तियों के लेखक ने मानवता के उस परम पुनीत तीर्थ की यात्रा करते हुए निम्न पंक्तियों को लिखा था :

"9 नवम्बर को श्री एलिस मेरे साथ हुए। ऋषि मार्क्स की समाधि देखने जाना था। टैक्सी करके हम लोग हाईगेट के उस कब्रिस्तान पर चले, जहाँ संसार का वह महान् उद्धारक और तत्त्ववेत्ता आखिरी नींद ले रहा है। जाने पर मालूम हुआ कि वहाँ इस नाम के दो कब्रिस्तान हैं–एक रोमन कैथलिकों के लिए और दूसरा दूसरों के लिए। रोमन कैथलिक कब्रिस्तान में भला उस घोर नास्तिक को कहाँ जगह मिल सकती थी ? हम लोग दूसरे कब्रिस्तान की ओर गए। फाटक पर फूल बिक रहे थे। हम तो देवता के स्थान पर जा रहे थे, इसलिए श्री एलिस से कहा कि फूल ले लीजिए। कब्रिस्तान के सिपाही से पूछा। वह उस त्राणकर्ता की कब्र से वाकिफ नहीं था। दूसरे (आदमी) ने बतलाया–मैं जानता हूँ। थोड़ी देर में छोटी-छोटी (यानी गरीबों की)

कब्रों को पार कर हम उस कब्र के सामने पहुँच गए। गरीबों के उद्धारक को गरीबों के बीच ही सोना चाहिए, और सो भी एक गरीब ही गड्ढे में। आस-पास की कब्रों से इतना ही फर्क है कि सिरहाने किसी ने काँच जड़े गोखे में कुछ नकली फूल और शायद लाल झंडा रख दिया है। इसी चार हाथ लंबी दो हाथ चौड़ी जमीन के नीचे–जिसके ऊपरी भाग में सिर्फ गच की हुई चौकोर मेखला मात्र है–कार्ल मार्क्स, उनकी स्त्री, उनका एक नाती और हेलेन डेमुथ चार प्राणी लेटे हुए हैं। गरीबों के हित के लिए अपने जीवन में वह यातनाएँ सहता रहा, दर-बदर फिरता रहा और आज यह ऐसी गुमनाम जगह में सोया पड़ा है, जब कि मनुष्य जाति के एक पचमांश ने उसको अपना गुरु मान लिया है, और बाकी जगहों में भी यदि उसकी दवा को समझाकर पूछा जाय, तो तीन-चौथाई लोग उसी के होंगे।"

लीबक्नेख्ट ने आज से आधी शताब्दी पहले लिखा था :

"हम समाजवादी-जनतांत्रिकों के पास न संत हैं और न संतों की समाधियाँ, लेकिन करोड़ों मानव श्रद्धा और कृतज्ञता के साथ उस पुरुष की ओर देखते हैं, जो कि लन्दन के उत्तर के इस कब्रिस्तान के भीतर विश्राम कर रहा है। आज से एक हजार वर्ष बाद–उस समय जब कि मजदूर वर्ग की मुक्ति के प्रयत्न के लिए जिस बर्बरता और संकीर्ण हृदयता का मुकाबिला करना पड़ रहा है, अतीत की अविश्वसनीय कथा बन जाएगी–स्वतन्त्र और भद्र मानव उस समय भी नंगे सिर इस समाधि के पास खड़े होकर अपने बच्चों को कहेंगे : यहाँ सोया है कार्ल मार्क्स !"

मार्क्स के महान् जीवन से इतिहास में यदि दिमाग और विशालहृदयता में किसी की कुछ तुलना की जा सकती है, तो वह बुद्ध ही हो सकते हैं। उनके मृत्यु-स्थान के बारे में भी कहा गया था : "श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए यह··स्थान दर्शनीय है।··श्रद्धालु यहाँ··आवेंगे दर्शनार्थ।"

समाधि के ऊपर संगमरमर की पट्टी पर निम्न अभिलेख उत्कीर्ण हैं :

"जेनी फान वेस्टफा
प्रिया पत्नी
कार्ल मार्क्स की
जन्म : 12 फरवरी, 1814
मृत्यु : 2 दिसम्बर, 1881
और कार्ल मार्क्स
जन्म : 5 मई, 1818; मृत्यु : 14 मार्च, 1883
और हेरी लांग्वे
उनका नाती
जन्म : 4 जुलाई, 1878; मृत्यु : 20 मार्च, 1883
और हेलेन डेमुथ
जन्म : 1 जनवरी, 1823; मृत्यु : 4 नवम्बर, 1890"

7. हेलेन डेमुथ

हेलेन डेमुथ के रूप में सर्वहारा साकार बनकर मार्क्स के सामने बना रहा। हेलेन जिसे लेनचेन के नाम से भी पुकारा जाता था, आयु में मार्क्स से पाँच वर्ष और जेनी वेस्टफालेन से नौ वर्ष छोटी थी। वह एक किसान की लड़की थी और जेनी के मार्क्स से ब्याह करने से पहले ही छोटी उम्र में ही वेस्टफालेन सामन्त-परिवारों में नौकरानी बनकर आई। हेलेन का जेनी के साथ बड़ा प्रेम हो गया था। ब्याह के बाद वह फ्राउ मार्क्स को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। वह जेनी के साथ मार्क्स के परिवार में चली आई। उसके बाद से आजीवन मार्क्स परिवार का एक व्यक्ति बनकर ही और अपने सर्वस्वत्याग में वह सामन्ती युग के किसी अत्यन्त त्यागमूर्ति स्वामिभक्त स्त्री से भी बढ़कर थी। जब परिवार पेट-भर खाता, तो हेलेन भी तृप्त रहती थी। जब दाने-दाने

के लाले पड़ते, तो वह भी कभी शिकायत नहीं करती। घर की वह नौकरानी नहीं, बल्कि परिवार की वह माता और प्रबन्धिका, रसोईदारिन, घर की सेविका थी। वह बच्चों को कपड़ा पहनाती और उनके लिए फ्राउ मार्क्स की सहायता से कपड़ा सीती। वह गृह की चौकीदारिन थी और साथ ही उसकी मालिकिन भी। मार्क्स के बच्चे उसे माँ की तरह प्यार करते थे, और उसका भी अपने प्रेम के कारण उनके ऊपर माँ जैसा प्रभाव था। मार्क्स और उनकी पत्नी दोनों उसके साथ अपने प्रिय मित्र की तरह बर्ताव करते थे। मार्क्स हेलेन के साथ शतरंज खेला करते और कितनी ही बार इस किसान-पुत्री से बुरी तौर से हारते। हेलेन का परिवार के प्रति अन्धा पक्षपात था—वहाँ जो कुछ होता, वह सब ठीक था, भली बात छोड़कर वहाँ कोई दूसरी बात नहीं की जा सकती। मार्क्स की जरा भी आलोचना हुई कि भिड़ का छत्ता छू दिया। जिन लोगों का मार्क्स-परिवार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, उनके लिए हेलेन का हृदय सदा स्वागत के वास्ते तैयार था। मार्क्स और उनकी पत्नी के मरने के बाद वह एंगेल्स के पास चली गई, तरुणाई से ही उसका एंगेल्स के साथ परिचय था, और मार्क्स परिवार की तरह ही एंगेल्स के साथ उसका प्रेम था।

लीबक्नेख्ट ने लेनचेन (हेलेन) के बारे में लिखा है : "जब से मार्क्स परिवार स्थापित हुआ, तब से ही लेनचेन मार्क्स की एक लड़की के शब्दों में सर्वश्रेष्ठ अर्थों में घर की आत्मा, सभी कामों की करनहारी बन गई। क्या कोई भी ऐसी चीज थी, जो उसे न करना पड़ता हो ? क्या ऐसी कोई चीज थी, जिसे वह आनन्दपूर्वक न करती हो ? इसके लिए मैं उसकी अत्यन्त नापसन्द को भी करने के लिए मजबूर उन बहुत-सी रहस्यमय यात्राओं की याद दिलाऊँगा, जो कि वह हितकारी, तीन पीतल की घंटियों वाले 'चचा' के पास जाने के लिए करती थी। वह सदा प्रसन्न मन हँसती और सहायता करने के लिए तैयार रहती। यही नहीं वह कुछ भी हो जाती थी, और मूर के शत्रु उसे बड़ी भयंकर घृणा की दृष्टि से देखते थे।

"अगर फ्राउ मार्क्स स्वस्थ न होती, तो लेनचेन माँ की जगह काम करती। दूसरे समयों में भी बच्चों के लिए वह दूसरी माँ थी और उसका बड़ा ही मजबूत और दृढ़ मनोबल था, जिसका होना वह आवश्यक समझती थी।

"लेनचेन, जैसा कि हमने कहा, एक प्रकार से अधिनायकता का बर्ताव करती थी। घर के सम्बन्ध के बारे में ठीक तरह से बतलाने के लिए मैं कह सकता हूँ : घर में लेनचेन अधिनायक (डिक्टेटर) थी, फ्राउ मार्क्स शासक और मार्क्स मेमने की तरह इस अधिनायकता को शिरोधार्य करते थे। कहा जाता है, अपने सेवक की आँखों में कोई भी बड़ा आदमी नहीं है। निश्चय ही मार्क्स भी लेनचेन की आँखों में वैसे ही थे। लेनचेन ने उनके लिए अपने को बलिदान कर दिया। वह उनके, फ्राउ मार्क्स और प्रत्येक बच्चे के लिए आवश्यक तथा सम्भव होने पर सौ बार कुर्वान हो सकती थी, सचमुच उसने ऐसा ही किया, अपने जीवन को बलिदान किया। किंतु मार्क्स उसपर प्रभाव नहीं डाल सकते थे। वह उनके सभी मूडों और कमजोरियों को जानती थी और उन्हें अपनी कानी अँगुली पर नचाती थी। मार्क्स का मूड किसी समय चाहे कितना ही चिड़चिड़ा हो, चाहे वह ऐसे तूफानी क्रोध में पड़े हों, कि दूसरा हरएक आदमी उनसे अलग रहने में ही खैरियत समझता हो, लेकिन लेनचेन सीधे सिंह की माँद में चली जाती। अगर वह गुर्राते, तो वह जबर्दस्ती लेबिटेक्स के वाक्यों को उनके सामने पढ़ती और सिंह पालतू मेमना बन जाता।"

मार्क्स की पुत्री एलिनोर ने लेनचेन के बारे में लिखा है : "हेलेन··मेरे माता-पिता के पास उनके विवाह के तुरन्त बाद पेरिस जाने के पहले आई या पीछे, यह मैं नहीं बतला सकती। मैं इतना ही जानती हूँ, कि मेरी नानी ने इस तरुण लड़की को मेरी माँ के पास यह कहकर भेजा कि सबसे बढ़िया चीज जो भेज सकती हूँ, वह मेरी ईमानदार प्रिय लेनचेन है। और ईमानदार प्रिय लेनचेन हमारे माता-पिता के साथ सदा बनी रही। कुछ समय बाद उसकी छोटी बहन मरियम भी आ गई।"

लीबक्नेख्ट ने लेनचेन के मार्क्स और एंगेल्स की कब्र के भीतर जगह पाने का जिक्र करते हुए लिखा है : "परिवार की कब्र में केवल मृत पुत्र और नातियों ने ही स्थान नहीं, बल्कि उस भक्त लेनचेन, हेलेन, डेमुथ ने भी स्थान पाया, जो कि खून का सम्बनध न होने पर भी परिवार की थी। उसे परिवार की कब्र में रखना

होगा, इसका निर्णय फ्राउ मार्क्स ने ही कर लिया था, जिसे उनके बाद मार्क्स ने भी स्वीकार किया। एंगेल्स और एकहार्ट ने मिलकर भक्त लेनचेन के प्रति इस कर्तव्य को पूरा किया।"..."लीबक्नेख्ट के माँगने पर एलिनोर ने अपने माता-पिता के बारे में लिखते हुए कहा था : "लेनचेन को न भूलना !" इसपर लीबक्नेख्ट लिखता है : "मैं लेनचेन को नहीं भूला, उसे कभी नहीं भूल सकता। क्या वह सचमुच मेरे लिए चालीस सालों तक मित्र नहीं थी ? क्या लन्दन के शरणार्थी दिनों में सचमुच अक्सर वह मेरे लिए 'भाग्य' नहीं बनी ? कितनी बार उसने मेरा पाकेट खाली रहने पर मुझे 6 पेंस देकर नहीं सहायता की, यह ऐसे समय जब कि मार्क्स के परिवार की स्थिति बहुत हीन नहीं होती, यदि हीन होती तो लेनचेन को कुछ मिलनेवाला नहीं था। कितनी ही बार जब कि मेरी दर्जी की कला पर्याप्त नहीं होती तो वह कुछ अत्यन्त आवश्यक कपड़ों को–जिन्हें उस समय आर्थिक कठिनाइयों के कारण नया बनाने की कोई सम्भावना नहीं होती–वह बड़े कलापूर्ण ढंग से रफू करके कुछ सप्ताह और पहनने लायक बना देती।

"जब मैंने लेनेचन को पहले-पहल देखा, उस समय वह 27 वर्ष की थी। यद्यपि उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता, तथापि वह बहुत आकर्षक चेहरेवाली, हट्टी-कट्टी तथा प्रियदर्शना थी। उसके लिए प्रेमियों की कमी नहीं थी। उसे बार-बार ब्याह का अच्छा अवसर मिला, किन्तु बिना किसी तरह की शपथ लिए उसके ईमानदार हृदय के वास्ते साधारण-सी बात थी, कि वह मूर, फ्राउ मार्क्स के बच्चों के साथ बनी रहे। वह बनी रही–उसकी जवानी के वर्ष बीत गए। अभाव और दरिद्रता, सौभाग्य और दुर्भाग्य में वह बनी रही। उसका पहला विश्राम उस समय आया, जब कि मृत्यु ने उसी स्त्री और पुरुष को मार गिराया, जिनके साथ उसने अपने भाग्य को जोड़ दिया था। उसने एंगेल्स के यहाँ विश्राम पाया और उसके यहाँ ही अन्त तक अपने को बिल्कुल भूलकर वह मरी। अब वह परिवार की कब्र में आराम कर रही है।"

7. मार्क्स के सम्वन्ध में

मार्क्स के मौलिक सिद्धान्तों–दार्शनिक, भौतिकवाद, द्वन्द्ववाद, इतिहास की भौतिक व्याख्या, आर्थिक सिद्धान्त–मूल्य, अतिरिक्त-मूल्य, समाजवाद और वर्गसंघर्ष का बहुत संक्षिप्त और सुन्दर विवेचन उनके उत्तराधिकारी लेनिन ने किया है, जिसे हम 'लेनिन' में देंगे। अपनी दोनों बेटियों जेनी और लोरा के साथ पहेली के रूप में मार्क्स निम्न प्रश्नोत्तर कराते थे :

तुहारा प्रिय गुण–सादगी।
मनुष्य में तुम्हारा प्रिय गुण–शक्ति (बल)।
स्त्री में तुम्हारा प्रिय गुण–निर्बलता।
तुम्हारी मुख्य विशेषता–लक्ष्य के प्रति एकांत भक्ति।
सुख के बारे में तुम्हारा विचार–लड़ना।
दुःख के बारे में तुम्हारा विचार–आत्मसमर्पण।
अत्यन्त त्याज्य तुम्हारे लिए दुर्गुण–क्षुद्रता।
सबसे बुरा जिस दुर्गुण को तुम मानती–दास-मनोवृत्ति।
तुम्हारी घृणा की वस्तु–मार्टिन टपर।
प्रिय व्यवसाय–किताब का कीड़ा बनना।
कवि–शेक्सपियर, एशिलस, गोयथे।
गद्य-लेखक–दिदेरो।
नायक–स्पार्टेक्स केपलेर।
नायिका–ग्रेशेन।
फूल–डेफनी।
रंग–लाल।
नाम–लोरा, जेनी।

थाल–मछली।
प्रिय सूत्र–कोई मानवोचित बात मेरे लिए परायी नहीं।
प्रिय आदर्श-वाक्य–हरएक चीज पर सन्देह करो।

20
एंगेल्स (1850-59 ई.)

1. योग्य सहकर्मी

एंगेल्स के बारे में हम देख चुके हैं, कि वह मार्क्स के लिए एक प्राण दो शरीर जैसे थे। मार्क्स की लड़कियाँ उन्हें द्वितीय पिता मानतीं और प्यार से 'जनरल' कहकर पुकारतीं। वह मार्क्स के बहिश्वर प्राण थे। बहुत सालों तक जर्मनी में दोनों के नाम एक साथ लिए जाते थे और इसमें शक नहीं, इतिहास में सदा उनका नाम साथ-साथ लिया जाएगा। जब एंगेल्स ने मैन्चेस्टर से 1870 ई. में विदाई ले लन्दन में आकर रहने का निश्चय प्रकट किया, तो मार्क्स के परिवार में कई दिनों तक इसकी चर्चा रही और मार्क्स तो आगमन के दिन बच्चों की तरह अधीर होकर एक-एक घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर वह शुभ घड़ी आई, दोनों मित्रों ने सारी रात चुरुट और शराब पीने तथा बातें करने में बिता दीं। तब से 1883 ई. में मृत्यु के समय तक लन्दन में रहते शायद ही कोई दिन बीतता, जब कि एक या दूसरे के घर में दोनों न मिलते।

मार्क्स एंगेल्स की राय को सबसे ज्यादा मानते। एंगेल्स उनके लिए सबसे योग्य सहकारी थे। एंगेल्स मानो उनके लिए सारी जनता थे। यदि एंगेल्स को उन्होंने मना लिया, तो सारी दुनिया मान लेगी–मार्क्स का यह विश्वास था। एंगेल्स की राय को बदलकर अपनी बात मनवाने के लिए छोटी-छोटी बातों के वास्ते वह तथ्यों को ढूँढ़ते कितनी ही जिल्दें पढ़ जाते। मार्क्स को अपने मित्र का भारी अभिमान था। लाफार्ग ने लिखा है : "उन्होंने अपने मित्र (एंगेल्स) के सभी नैतिक और बौद्धिक गुणों को बड़ी प्रसन्नता से दोहराया और मुझे एंगेल्स को दिखलाने के लिए मैन्चेस्टर की एक विशेष यात्रा की। एंगेल्स के ज्ञान की भारी गम्भीरता की वह बड़ी प्रशंसा करते थे और उनके साथ कोई दुर्घटना न हो जाए, इसके लिए बड़े चिन्तित रहते थे। एक दिन मार्क्स ने उनसे कहा–मैं सदा काँपता रहता हूँ। देश के आर-पार पागलों जैसे घोड़ा दौड़ाने में कहीं वह नीचे न गिर जाएँ।"

2. मैन्चेस्टर में (1850 ई.)

एंगेल्स के जीवन की कुछ बातें हम पहले बतला चुके हैं। सक्रिय साहित्यिक और राजनीतिक जीवन से अलग होकर अपने पिता के व्यवसाय में लग जाने के लिए एंगेल्स का मजबूर होना मार्क्स को आर्थिक सहायता देने के ख्याल से था। वह समझते थे कि वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा को दबाकर यदि मैं इस महान् तत्त्वदर्शी को आर्थिक चिन्ता से मुक्त कर सकूँ, तो यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा काम होगा। इसी ख्याल से वह 1850 ई. में मैन्चेस्टर लौट गए और वहाँ अपने पिता की एरमेन और एंगेल्स कपड़ा मिल में क्लर्क के तौर पर काम करने लगे। उसी साल दिसम्बर में अपने बच्चे के मरने पर एंगेल्स की सहानुभूति के पत्र का जवाब देते हुए जेनी मार्क्स ने लिखा था :

"मेरा पति और हम सभी तुम्हारी अनुपस्थिति को बहुत महसूस करते हैं और अक्सर हमारे मन में चाह होती है, कि तुम हमारे साथ होते। फिर भी मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ, कि तुम चले गए और अब एक बड़े कपास-राजा बनने के रास्ते में हो।…" एंगेल्स को अपने पिता के लिए अति उपयोगी बनने की सलाह देते

जेनी ने फिर लिखा है : "अभी से अपनी कल्पना में तुम्हें ज्येष्ठ एंगेल्स के छोटे भागीदार फ्रेडरिक एंगेल्स के रूप में देख रही हूँ, लेकिन सबसे अच्छी बात यह है कि कपास के व्यापारी होते हुए भी तुम पुराने फ्रिट्ज बने रहोगे।... और स्वतन्त्रता के पवित्र उद्देश्य से मुँह नहीं मोड़ोगे।...बच्चे चचा एंगेल्स के बारे में बहुत बड़बड़ाते रहते हैं, और छोटा टिल तुम्हारे सिखाए हुए गीत को बहुत अच्छी तरह गाता है।..."

अगले बीस वर्षों के लिए एंगेल्स मार्क्स की आँखों से ओझल हो गए। दोनों मित्र कभी ही कभी कुछ समय के लिए मिलते। लेकिन इससे इतिहास को एक बड़ा फायदा उन पत्रों का हुआ, जो कि दोनों के बीच प्रायः रोज ही आते-जाते रहते थे, जिनमें तात्कालिक जीवन की कितनी ही बातों के साथ-साथ साहित्यिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, तथा दूसरे विषयों पर भी विचार-विनिमय होता रहता था। जैसे ही अर्थशास्त्र, दर्शन या किसी और विषय पर कोई विचार एक के दिल में आता, वह तुरन्त ही उसके बारे में दूसरे को लिखकर उसकी राय पूछता। इस प्रकार विचारों को स्पष्ट करने में उन्हें बड़ी सहायता मिलती।

मैन्चेस्टर में पिता के मिल में काम करते एंगेल्स ने पढ़ने-लिखने को छोड़ नहीं दिया, विशेषकर सैनिक इतिहास और विज्ञान पर उनका अध्ययन बड़ी गम्भीरता के साथ होता रहा। प्राकृतिक विज्ञान और तुलनात्मक भाषाशास्त्र भी उनके दिलचस्प विषय थे। 1852 ई. के मार्च में अपने रूसी भाषा के अध्ययन के बारे में उन्होंने कम समय निकालने की शिकायत की : "मैंने रूसी को चौदह दिनों देखा-भाला और व्याकरण काफी अच्छा हो गया। दो या तीन महीने और देने पर मुझे आवश्यक शब्दावली मालूम हो जाएगी और तब मैं कुछ दूसरी बात करना आरम्भ करूँगा। मुझे इस वर्ष स्लाव भाषाओं को अवश्य खतम कर देना है, और वह वस्तुतः उतनी अधिक कठिन नहीं है।... बकुनिन इसी लिए कुछ अधिक महत्त्व का बन गया है, क्योंकि दूसरा कोई रूसी नहीं जानता। पुरानी बृहत्तर-स्लाव की चाल को–कि पुरानी स्लाव सामूहिक सम्पत्ति-अधिकार को साम्यवाद में परिवर्तित किया जा सकता है, और रूसी किसान जन्मजात कम्युनिस्ट समझे जाने चाहिए–फिर बड़े पैमाने पर फैलाया जायगा।

हम देख चुके हैं कि इतालियन-युद्ध के समय 1859 ई. में एंगेल्स ने 'पो और राइन' नामक पुस्तिका को बिना नाम के प्रकाशित कराया था, जिसे मार्क्स ने बहुत पसन्द किया था। इतालियन-युद्ध की समाप्ति के बाद एंगेल्स ने सवाय, नाइस और राइन पुस्तिका लिखी, फिर 1865 ई. में 'प्रशियन सैनिक समस्या और जर्मन मजूर पार्टी' के नाम से एक पुस्तिका लिखी।

3. पिता के स्थान पर (1860 ई.)

1860 ई. के मार्च के अन्त में एंगेल्स के पिता मर गए। 1864 ई. के सितम्बर में अब वह पिता के फर्म में पार्टनर (भागीदार) बन गए थे, जिसका अर्थ था, उनके ऊपर काम की और जिम्मेवारी और समय की और कमी हो गई। मई, 1860 ई. में ही मार्क्स को पत्र लिखते हुए एंगेल्स ने कहा था : "मैं अपने सहभागी के साथ कंट्राक्ट को ऐसा कठिन बनाना चाहता हूँ, जिसमें वह खुशी से मुझे छोड़ दे, लेकिन वह नहीं हो सका।" पार्टनर बन जाने से अब एंगेल्स की आमदनी बढ़ गई थी, जो कि उस समय कम महत्त्व की बात नहीं थी। लेकिन एंगेल्स अपने पत्रों में इस तरह के जीवन से बराबर असन्तोष प्रकट करते थे, जिससे मार्क्स भी सहमत थे, लेकिन वैसा करना गुनाह बेलज्जत नहीं था। उन्होंने एक पत्र में लिखा था : "मुझे किसी चीज की उतनी चाह नहीं, जितना कि इस सारे व्यापार से छुट्टी पाने की, जो कि समय की बरबादी के साथ-साथ मुझे पूर्णतया पूरा भ्रष्ट कर रहा है। जब तक इसमें हूँ, मैं किसी चीज के लिए भी उपयुक्त नहीं हूँ। खासकर जब से मैं पार्टनर हो गया, तब से और बहुत बुरा हो गया, क्योंकि जिम्मेवारियाँ अधिक बढ़ गईं। यदि अधिक आमदनी का ख्याल न होता, तो मैं फिर क्लर्क होना पसन्द करता।" लेकिन जब-जब व्यवसाय से हटने का ख्याल उनके दिमाग में आता, तब-तब उनके दिमाग में वह परेशानी भी उठ खड़ी होती, कि तब मार्क्स को आर्थिक सहायता कैसे पहुँचाऊँगा। कुछ वर्षों बाद उन्होंने व्यवसाय छोड़ने का निश्चय जरूर कर लिया था, लेकिन फिर वही चिन्ता उपस्थित हुई। इसी लिए वह चाहते थे कि व्यवसाय छोड़ने से पहले मार्क्स अपने ग्रन्थों द्वारा आर्थिक

तौर से स्वतन्त्र हो जायँ।

एंगेल्स के आत्मत्याग को मार्क्स अच्छी तरह समझते थे। अपने पत्रों में वह आशा करते रहते थे, कि एकाध साल में अपने पैरों पर खड़े होने की संभावना है, किन्तु साथ ही वह यह भी कहते थे, "तुम्हारे बिना मैं अपनी कृति (कपिटाल) को नहीं पूरा कर पाया होता। मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरे दिमाग पर पहाड़ की तरह का एक भार सदा पड़ा रहता है : खासकर मेरे ही लिए तुमने अपनी अद्भुत प्रतिभा को बेकार होने और व्यापार में मुर्चा खाने दिया।"

1865 ई. में अपनी भारी आर्थिक कठिनाइयों के बारे में कहते हुए मार्क्स ने लिखा था : "इन सभी स्थितियों में एक ही ख्याल मुझे सहारा देता है, वह यह है कि हम दोनों एक व्यवसायी कम्पनी हैं जिसमें मैं सैद्धांतिक बातों के लिए समय देता हूँ...।"

एंगेल्स अपनी कमाई के पैसे से ही मार्क्स को सहायता नहीं करते थे, बल्कि 1851 ई. के आरम्भ से 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के लिए मार्क्स जो लेख लिखने लगे थे, और जिसका उद्देश्य था, कुछ पैसे कमाना, उसमें भी एंगेल्स मदद करते थे। अभी मार्क्स का इंग्लिश भाषा पर अधिकार नहीं था, इसलिए एंगेल्स उनके लेखों का अनुवाद कर देते। जब समयाभाव या किसी और कारण से मार्क्स लेख न लिख पाते, तो एंगेल्स स्वयं लेख लिख देते। अपने और कामों के अतिरिक्त वह प्रति सप्ताह एक-दो ऐसे लेख लिख दिया करते थे, जो मार्क्स के हस्ताक्षर के साथ ट्रिब्यून में भेज दिए जाते। 1857 ई. के 6 अप्रैल को अपने इकलौते पुत्र के मर जाने पर मार्क्स ने लिखा था : "बेचारा मूश (एडगर) अब नहीं रहा।...मैं कभी इसे नहीं भूलूँगा, जो कि तुम्हारी मित्रता ने इस भयंकर समय में हमारी सहायता की।..." एक सप्ताह बाद फिर मार्क्स ने लिखा था : "जब से प्रिय बच्चा मरा, घर यहाँ बिल्कुल अस्त-व्यस्त और निर्जन है।...यह कहना असंभव है, कि कैसे चारों ओर हम बच्चे के अभाव को अनुभव करते हैं। मुझे सभी प्रकार के दुर्भाग्यों को झेलना पड़ा, लेकिन केवल अभी मैं समझ पाया हूँ, कि वास्तविक दुःख क्या है।...इन दिनों जिन भयंकर यातनाओं के भीतर से मैं गुजरा हूँ, तुम्हारे और तुम्हारी मित्रता के ख्याल ने मुझे सहारा दिया और आशा दिलाई कि हम अभी भी साथ मिलकर दुनिया में कुछ बौद्धिक काम कर सकेंगे।"

1857 ई. में एंगेल्स की सख्त बीमारी की खबर पाकर मार्क्स ने लिखा था : "हमारे सभी दुर्भाग्यों के होने पर भी तुम्हें निश्चिंत रहना चाहिए, कि मैं और मेरी पत्नी तुम्हारे स्वास्थ्य की अवस्था के पिछले वर्णन को सुनकर आपबीती का बहुत कम ध्यान रखते हैं।" मार्क्स ने एंगेल्स पर जोर दिया कि स्वास्थ्य के लिए समुद्र के किनारे जाना चाहिए। एंगेल्स ने अपने मित्र की सलाह स्वीकार की। यद्यपि मार्क्स ने 'ट्रिब्यून' के लिए लेख का ख्याल छोड़ देने के लिए कहा था, तथापि समुद्रतट से भी उन्होंने मार्क्स के पास लेख लिखकर भेजते अफसोस प्रकट किया, कि मैंने तुम्हारे पास शराब का एक अच्छा बक्स नहीं भेजा। एंगेल्स शराब के प्रेमी थे। उनके तहखानों में बराबर अच्छी शराब की बोतलें भरी रहतीं और उनको बराबर ध्यान रहता कि मार्क्स के घर में चाहे और किसी चीज का अभाव हो, लेकिन शराब की कमी न होने पाए।

मार्क्स अपनी कृतियों की सबसे बड़ी कसौटी एंगेल्स को मानते। उनकी सलाहों से बराबर फायदा उठाने के लिए तैयार रहते थे। जून, 1859 ई. को उन्होंने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' के बारे में एंगेल्स को लिखा था : "सबसे पहले यह कहने दो, कि मुझे जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि तुम प्रथम भाग को पसन्द करते हो। इस विषय में केवल तुम्हारा फैसला मेरे लिए महत्त्व का है।" 1867 के जून में 'कपिटाल' की कुछ शीटों को भेजते हुए मार्क्स ने लिखा था : "मुझे विश्वास है कि इन चार शीटों से तुम संतुष्ट होगे। तुम्हारा सन्तोष...मेरे लिए बाकी सारी दुनिया से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। एंगेल्स अपनी राय हाँ-में-हाँ मिलाने के लिए नहीं दिया करते थे। उनकी आलोचना गुण-दोष को दिखलाते होती थी, जिसको पाकर मार्क्स अक्सर अपनी कृतियों में फेर-बदल करते थे।

'कपिटाल' की प्रथम जिल्द के अन्तिम प्रूफ को देख लेने के बाद 16 अगस्त, 1867 ई. को मार्क्स ने एंगेल्स को निम्न पत्र लिखा था :

"प्रिय फ्रेड, अन्तिम प्रूफ-शीट का संशोधन अभी-अभी समाप्त किया। परिशिष्ट–छोटे अक्षरों में सवा चार प्रूफ शीटों के हैं।

"प्राक्कथन को कल संशोधित कर लौटा दिया। इस प्रकार यह जिल्द समाप्त हो गई। यह केवल तुम्हारी सहायता थी, जोकि यह संभव हो सका। मेरे लिए तुमने जो आत्मत्याग किया, उसके बिना मैं तीनों जिल्दों के इस विशाल काम को कभी नहीं पूरा कर सकता था। मैं कृतज्ञतापूर्ण हो तुम्हारा आलिंगन करता हूँ।

"शोधित प्रूफ की दो शीटें यहाँ साथ हैं।

अत्यन्त सधन्यवाद पन्द्रह पौंड पाया।

अभिनन्दन, मेरे प्रिय स्नेही मित्र–

तुम्हारा, कार्ल मार्क्स।"

4. क्षणिक मनमुटाव (1863 ई.)

मार्क्स और एंगेल्स की आजीवन घनिष्ठ मित्रता के लम्बे अर्से में सिर्फ एक ही बार (जनवरी, 1863 ई.) ऐसा अवसर आया, जब कि दोनों के मन में कुछ दुर्भाव पैदा हुआ।

मैन्चेस्टर में रहते एंगेल्स का परिचय बर्न्स नामक एक आइरिश प्रिय परिवार के साथ था। परिवार की एक लड़की मेरी के साथ उनका प्रेम हो गया। दोनों कानूनी तौर से विवाह किए बिना पति-पत्नी की तरह एक साथ रहते रहे। मेरी सुन्दर तथा साथ ही बड़ी समझदार स्त्री थी। एंगेल्स पर उसका बहुत स्नेह था। वर्षों साथ रहने के बाद 6 जनवरी, 1863 ई. को एकाएक मेरी की मृत्यु हृदयरोग से हो गई। पिछली ही शाम एंगेल्स उसके साथ थे, वह बिल्कुल स्वस्थ थी। उसकी मृत्यु से एंगेल्स के हृदय को भारी धक्का लगा। एंगेल्स ने जब अपने दुःख को प्रकट करने इसके बारे में मार्क्स को लिखा, तो मार्क्स का उत्तर उस तरह का नहीं आया, जैसा कि उन्हें आशा थी। इसे कहने की आवश्यकता नहीं, कि मार्क्स के लिए अत्यधिक भावुकतापूर्ण वाक्यावली का लिखना वैसे भी कठिन था। मार्क्स ने कुछ वाक्यों में मेरी के मरने का शोक प्रकट करते हुए, फिर अपने घर की कठिनाइयों को लिख डाला। एंगेल्स को यह बात बहुत खटकी। छह दिनों तक मन में सोचते हुए उन्होंने कोई जवाब नहीं लिखा। फिर पत्र में मार्क्स के इस 'ठंडे' व्यवहार के लिए शिकायत करते हुए कहा : "मेरे सभी मित्रों ने···मेरे दुःख में उससे कहीं अधिक सहानुभूति और सौहार्द-भरी स्थिति के बारे में प्रकट की, जितना कि मैं तुमसे आशा करता था।"

मार्क्स को अब अपनी गलती पूरी तौर से मालूम हुई और उन्होंने बहुत-बहुत क्षमा माँगते हुए एंगेल्स को पत्र लिखते हुए बतलाया : "उस समय मेरे घर में अन्न नहीं था, लड़की जेनी बीमार थी और उधार देनेवाले सामान नीलाम कराने के लिए घर में पहुँचे हुए थे। यही कारण था, जो मैं एकान्तचित से मेरी के मरने पर अपने भावों को प्रकट नहीं कर सका।"

एंगेल्स के लिए मार्क्स की मित्रता प्राणों से भी अधिक मूल्यवान थी। उन्होंने तुरन्त मार्क्स को क्षमा करते हुए लिखा : "तुम्हारी सच्चाई के लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, तुम स्वयं समझ सकते हो, कि तुम्हारे पहलेवाले पत्र ने मेरे ऊपर क्या प्रभाव डाला ? कोई आदमी किसी स्त्री के साथ इतने दिनों तक जीवन बिताते हुए उसकी मृत्यु से भयंकर रूप से दुखी हुए विना नहीं रह सकता। मैंने अनुभव किया कि उसके साथ मैं अपनी जवानी के अन्तिम अवशेषों को दफना रहा हूँ। जब मुझे तुम्हारा पत्र मिला, तब अभी वह अपनी कब्र में नहीं गई थी। मैं तुम्हें बतलाता हूँ, कि तुम्हारा पत्र सारे सप्ताह-भर मेरे दिमाग में घूमता रहा, मैं उसे भूल नहीं सकता था। कोई पर्वा नहीं, तुम्हारे पिछले पत्र ने सब ठीक कर दिया और मुझे प्रसन्नता है कि मेरी के साथ-साथ मैंने अपने सबसे पुराने और सबसे अच्छे मित्र को नहीं खो दिया।"

मार्क्स ने भी अपने जवाब में उसी तरह लिखा : "अब बिना किसी बाहरी दिखलावे के तुमसे कह सकता हूँ, कि इन पिछले कुछ हफ्तों में जितनी कठिनाइयों से मैं गुजरा, उनके होते भी किसी चीज का बोझ उसे पासंग भी नहीं मालूम हो रहा था, जितना कि हम दोनों की मित्रता के टूटने का भय।"

1864 ई. के अन्त में मेरी बर्न्स की बहन लिजी एंगेल्स की पत्नी बनी और 1878 ई. में लिजी के मरने के समय तक दोनों ने बड़ा आनन्दपूर्वक जीवन बिताया। लिजी एंगेल्स बड़ी ही समझदार महिला थी। वह अपने पति के आदर्शों को मानती थी। साथ ही वह आयरिश स्वतन्त्रता के योद्धाओं–सिनफिनों–की आजन्म पक्षपातिनी रही। दोनों को कोई संतान नहीं हुई, लेकिन उन्होंने लिजी की भतीजी मेरी एलेन (पम्पस) को अपने यहाँ रखकर बेटी की तरह पढ़ाया-लिखाया था।

5. मित्र के पास

1868 ई. के अन्त में एंगेल्स को फिर व्यवसाय से भारी विरक्ति होने लगी। उनके पार्टनर गाटफ्रीड एर्मेन ने भी इस शर्त पर काफी पैसा देना स्वीकार किया, कि एंगेल्स अपने हिस्से को बेचकर अलग उसी तरह के व्यवसाय को न खोलें। एंगेल्स को इसका कोई ख्याल भी नहीं हो सकता था। उनको केवल यही चिंता थी कि पैसा इतना मिले, जिसमें वह और खर्चों के अतिरिक्त मार्क्स को प्रतिवर्ष 350 पौंड दे सकें–कम से कम पाँच-छः सालों के लिए। पाँच-छः साल के बाद क्या होगा, यह एंगेल्स को मालूम नहीं था, लेकिन उन्हें आशा थी कि तब भी कम-से-कम डेढ़ सौ पौंड वह प्रतिवर्ष दे सकेंगे। 350 पौंड वार्षिक पर्याप्त होगा या नहीं, यह पूछने पर मार्क्स ने उसे पर्याप्त कहा। अन्त में 1 जुलाई, 1863 को एंगेल्स ने अपने पत्र में लिखा : "हुर्रा ! आज मैं मधुर व्यापार से पिंड छुड़ा एक स्वतन्त्र मनुष्य हूँ।··· गाटफ्रीड (एर्मेन) ने सभी वातें मान लीं। टुसी (मार्क्स की सबसे छोटी लड़की एलिनोर, जो कि उस समय एंगेल्स दम्पत्ति के साथ कुछ सप्ताह से रहती रही थी) और मैंने अपने प्रथम मुक्ति दिवस को आज सुबह देहात में एक लम्बी चहलकदमी करते हुए मनाया।···"

"हिसाब-किताब और वकील कुछ सप्ताह और मुझे बाँधे रहेंगे–लेकिन इसका अर्थ अब पहले जैसी समय की भारी क्षति नहीं होगी।···"

मार्क्स ने इसके जवाब में लिखा था : "बन्धन से तुम्हारी मुक्ति के लिए सबसे अच्छे अभिनन्दन ! इस घटना के सम्मान में एक और गिलास पान किया, किन्तु प्रशियन सैनिकों की तरह सवेरे से पहले नहीं, बल्कि शाम को देर से···"

एंगेल्स की पत्नी लिजी के सम्बन्धी भी अन्त में राजी हो गए और 1870 ई. के सितम्बर के अन्त में अपने ससुरालवालों से विदाई ले एंगेल्स मैन्चेस्टर से लन्दन चले आए। अब दोनों मित्र आपसी सलाह से काम का बँटवारा कर काम में लग गए। मार्क्स ने अपने जिम्मे मौलिक अर्थशास्त्रीय और दार्शनिक सिद्धान्तों पर कलम चलाने का काम लिया और एंगेल्स ने इन सिद्धान्तों के प्रकाश में तत्कालीन महत्त्वपूर्ण समस्याओं के हल और खंडन-मंडन को सँभाला।

(अ) सामयिक लेख–समस्याओं पर एंगेल्स ने बहुत भारी संख्या में लेख और पुस्तिकाएँ लिखीं। उनमें से बहुतों का केवल ऐतिहासिक महत्त्व नहीं, बल्कि आजकल की समस्याओं में उपयोग हो सकता है, जैसे 'घरों का प्रश्न' जो कि 1870 ई. में कई लेखों के रूप में निकला, जिसमें प्रूधों और मूलबर्गर जैसे छोटे चिपके निम्न बूर्ज्वा अनुयायियों के विचारों का खंडन किया गया है। एंगेल्स ने लिखा है : "घरों की समस्या कैसे हल की जाय ? वैसे ही जैसे कि आजकल समाज में कोई दूसरा सामाजिक प्रश्न हल किया जाता है : माँग और पूर्ति के क्रमशः आर्थिक तालमेल द्वारा यह ऐसा हल है, जो कि नये तौर से उसी सवाल को पैदा करता है, और इसलिए वह हल नहीं है। सामाजिक क्रांति कैसे इस प्रश्न को हल करेगी ? वह प्रत्येक अवस्था में मौजूद परिस्थितियों पर ही केवल निर्भर नहीं करती, बल्कि उसका सम्बन्ध और भी दूर तक पहुँचनेवाले प्रश्नों से है, जिनमें से एक अत्यन्त मौलिक प्रश्न है, नगर और गाँव के बीच के विरोधों को खतम करना।··· एक बात निश्चित है कि यदि उनके बुद्धिपूर्वक उपयोग को स्वीकार किया जाय, तो वास्तविक घरों की कमी को तुरन्त पूरा करने के लिए बड़े शहरों में अभी भी रहने के लिए काफी मकान मौजूद हैं। यह आसानी से हो सकता है, यदि वर्तमान स्वामियों से उन्हें लेकर और बेघरवाले या पहले घरों में अत्यधिक भरे हुए कमकरों को इन घरों में बसा दिया जाय। राजनीतिक शक्ति को जैसे ही सर्वहारा अपने हाथ में ले लेंगे, तुरन्त सार्वजनिक हित के उद्देश्य

से इस तरह की कार्रवाई उसी तरह आसानी से की जा सकती है, जैसे वर्तमान राज्य द्वारा दूसरे की सम्पत्तियों को हाथ में लेना और घर में बनाना।"

मार्क्सवाद पर डूरिंग-खंडन बहुत ही सुन्दर पुस्तक है, जिसमें आक्षेपों का जवाब देते हुए मार्क्स के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस पुस्तक के दूसरे संस्करण के प्राक्कथन में एंगेल्स ने लिखा है :

"जहाँ तक इस पुस्तक में विवेचन और दृष्टिकोण की प्रणाली के विकास की व्याख्या का सम्बन्ध है, उसका श्रेय बहुत अधिक मार्क्स को है और बहुत थोड़े परिमाण में मुझे भी। हम दोनों के बीच यह बात ऐसी थी कि बिना मार्क्स के ज्ञान के मेरी एक व्याख्या प्रकाशित न हो। छपने से पहले मैंने सारे हस्तलेख को उनके सामने पढ़ा और अर्थशास्त्र पर दसवें अनुच्छेद को तो मार्क्स ने ही लिखा। मैंने इतना ही किया कि उसे थोड़ा छोटा कर दिया।···विशेष विषयों में हम एक-दूसरे की सहायता करने के आदी हैं!"

(ब) डूरिंग-खंडन (1875 ई.)–एंगेल्स की यह प्रसिद्ध पुस्तक 1875 ई. में 'फोरवेड्र्स' में वैज्ञानिक परिशिष्ट के तौर पर प्रकाशित हुई, और इसके अन्तिम भाग को 'समाजवाद : युटोपियन और वैज्ञानिक' के नाम से अलग भी प्रकाशित किया गया। 1870 ई. वाली शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी में समाजवादी जनतंत्रता का काफी प्रचार हो गया और उसकी ओर उदारवादी बूर्ज्वाजी भी खिंचने लगी। ऐसे लोगों के समाजवाद और मजदूर-संगठन में आने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, लेकिन यह जरूरी है कि उनके पुराने मनोभाव बिल्कुल दूर हो गए हों और उन्होंने सर्वहारा क्रांतिकारी आन्दोलन को अच्छी तरह आत्मसात् कर लिया हो। फैशन के लिए सर्वहारा वर्ग के संगठन में ऐसे लोगों के आने या समाजवादी बनने से हानि छोड़ लाभ नहीं हो सकता। यूगेन डूरिंग इसी तरह का एक प्रतिभाशाली बूर्ज्वा-नेता था, जिसने समाजवाद की तरफ अपने झुकाव को दिखलाकर तरुणों पर काफी प्रभाव डालना शुरू किया। उसने बहुत-से विषयों का अध्ययन किया था, जो चंचुग्राही पांडित्य से अधिक नहीं था, पर उसकी कलम में शक्ति थी। इस प्रकार वह कितनी ही बार गलत-सलत बातें कहकर लोगों को पथ-भ्रष्ट करने में सफल होता। एंगेल्स ने यद्यपि अपने इस ग्रंथ को डूरिंग के विचारों के खंडन के लिए ही लिखना शुरू किया था, तथापि अपने को उतने ही तक सीमित नहीं रक्खा और जिस विषय को भी लिया, उसपर गम्भीरतापूर्वक अपने विचारों को प्रकट करते हुए इस पुस्तक को वैज्ञानिक साम्यवाद का एक सुन्दर और स्पष्ट प्रकरण-ग्रंथ बना दिया। उन्होंने इसमें सारे आधुनिक साइंस की विवेचना मार्क्सीय भौतिकवादी दृष्टिकोण से की।

सबसे पहले इस पुस्तक में ऐतिहासिक भौतिकवाद के स्रोतों का अनुसन्धान करते हुए अपने और मार्क्स द्वारा इस्तेमाल किए गए द्वन्द्वात्मक-अनुसन्धान-प्रणाली का विवेचन कर, उसे विज्ञान तथा दर्शन के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाया। इस ग्रंथ में पुराण के भीतर नवीन के उगने के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त का उदाहरण दिया गया है, और यह भी कि इसके परिणामस्वरूप विकास अथवा परिपक्वता की एक निश्चित मंजिल में पहुँचकर पुराने का स्थान नवीन अनिवार्यतया ग्रहण करता है। एंगेल्स ने इस सिद्धान्त की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार के भौतिक, प्राकृतिक और प्राणिशास्त्रीय विज्ञानों एवं इतिहास, दर्शन आदि के क्षेत्रों के उदाहरणों से की है।

"द्वन्द्वात्मकता (द्वन्द्ववाद) वस्तुओं और उनके विचारों, उनके आपसी सम्बन्ध में सारतः अपने परिणाम में अपनी गति, अपने जन्म और मृत्यु में उपर्युक्त प्रक्रियाएँ द्वन्द्ववाद की अपनी व्यवहार-प्रणाली के उतने प्रकार के पुष्टीकरण हैं। प्रकृति द्वन्द्ववाद की कसौटी है।···

"इसी लिए विश्व, उसके विकास और मानव-जाति के विकास तथा मानव-मस्तिष्क में इस विकास के प्रक्षेपण की ठीक तौर से प्रतिमूर्ति केवल द्वन्द्वात्मक तरीके से ही आम क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं, प्रगतिशील अथवा प्रतिगतिशील परिवर्तनों के रुक जाने का लगातार ध्यान रखते ही, द्वन्द्वात्मक तरीके से निर्मित की जा सकती है।" वस्तुतः 'द्वन्द्ववाद प्रकृति' मानव-संमाज और विचार में गति और विकास के विश्वजनीन नियम के साइंस के 'सिवा और कुछ नहीं है।' आचार, सत्य और न्याय के सनातन नियमों की दुहाई देनेवालों पर आक्षेप करते हुए एंगेल्स ने लिखा है :

"हम यहाँ उस प्रयत्न की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं, जो कि हमारे ऊपर एक प्रकार के आचारिक

मतवाद को सनातन, अन्तिम, कूटस्थ, आचारिक नियम के बहाने से लादा जाता है कि आचारिक नियम विधान में वह स्थिर सिद्धांत निहित है, जो कि इतिहास और वैयक्तिक लोगों के भेदों के प्रभाव से परे है। इसके विरुद्ध हम मानते हैं, कि जहाँ तक सभी आचारिक वादों का सम्बन्ध है, वह अन्ततः किसी विशेष काल में एक समाज में प्रचलित कुछ आर्थिक स्थितियों के अस्तित्व की एक गवाही है।

"और जैसे चूँकि अब तक समाज वर्ग-विरोध में चलता जा रहा है, इसलिए आचार, नियम सदा से एक वर्ग-आचार रहा है। इसने या तो शासकवर्ग के प्रभुत्व और हितों को उचित ठहराया अथवा जैसे ही उत्पीड़ित वर्ग काफी शक्तिशाली हो गया, उसने इस प्रभुता और उत्पीड़ितों के भावी स्वार्थों के विरुद्ध विद्रोह का प्रतिनिधित्व किया।··· जो कि उनके सभी दुःख और विकास के प्रकट, दरिद्रता और समृद्धि के असह्य विरोधों के साथ श्रम की उपजों के वितरण के वर्तमान ढंग में क्रान्ति के लिए अधिक सुरक्षित होने नहीं देते, तो यह धारणा (चेतना) अन्त में फैलकर रहेगी, कि वितरण का यह ढंग न्यायोचित है, अन्याय को अन्त में हावी होना पड़ेगा, नहीं तो हम दुर्गति में पड़ वहाँ चिरकाल तक रहेंगे।

"दूसरे शब्दों में यह हुआ : आधुनिक पूँजीवादी उत्पादन के तरीके को उत्पादक शक्तियाँ तथा उसपर आधारित आधुनिक पूँजीवादी वितरण-व्यवस्था का स्वयं उत्पादन-व्यवस्था से इतना विरोध है कि उत्पादन और वितरण के ढंग में ऐसी क्रांति होनी अनिवार्य हो गई है, जो कि सभी वर्ग-विभेदों को नष्ट करे, अन्यथा सारा आधुनिक समाज पतन के खड्ड में गिरेगा। यह वास्तविक भौतिक तथ्य हैं, जो कि शोषित सर्वहारा के मन में और अधिक स्पष्ट करते जा रहे हैं कि यह उन किताबी कीड़ों के न्याय और अन्याय-सम्बन्धी ज्ञान की नहीं, बल्कि वास्तविक भौतिक तथ्यों को शोषित सर्वहारा के लिए और स्पष्ट करके आधुनिक समाजवाद की विजय के विश्वास की नींव बनते हैं।"

डूरिंग ने कितनी ही बूर्ज्वा उदारवादियों की तरह जोर देकर कहा था कि वर्ग-गुलामी का राजनीतिक शक्ति मुख्य कारण है, आर्थिक स्थितियाँ वर्ग-भेद की गौण कारण हो सकती हैं। इसके जवाब में एंगेल्स ने बतलाया कि किस तरह प्राचीन लोगों में वैयक्तिक सम्पत्ति का आरम्भ हुआ : आम तौर से जबर्दस्ती लूट द्वारा नहीं, बल्कि आरम्भिक कबीलाशाही कंम्यून (संघ) में कुछ चीजों के अभाव के कारण वैयक्तिक सम्पत्ति का आरम्भ हुआ, इसलिए विनिमय की आवश्यकता पड़ी, और उपयोग की जगह विनिमय के लिए माल का उत्पादन शुरू हुआ। इसके बाद वितरण के तरीके में भी परिवर्तन हुआ, और व्यक्तियों की सम्पत्ति में असामनता पैदा हुई। बाहरी हिंसात्मक स्वेच्छाचारिता के होते भी शताब्दियों तक पुराण-साम्यवाद कायम रहा, लेकिन महान् उद्योग की उपजों की होड़ से अपेक्षाकृत थोड़े समय में वह खतम हो गया।

बूर्ज्वा-क्रांति के बारे में एंगेल्स ने बतलाया कि उसने सभी सामन्ती बेड़ियों को तोड़ फेंका : किन्तु हेर डूरिंग के सिद्धान्त के अनुसार राजनीतिक स्थितियों के अनुकूल आर्थिक-व्यवस्था के तालमेल द्वारा नहीं··बल्कि उससे उलटे पुराने जीर्ण-शीर्ण राजनीतिक कूड़े-करकट को अलग हटाकर ऐसी राजनीतिक स्थितियों के निर्माण द्वारा हुई, जिसमें कि नवीन 'आर्थिक-व्यवस्था' मौजूद रहते विकसित हो सके। अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल राजनीतिक तथा कानूनी वातावरण में वह इतने अद्‌भुत चमत्कार के साथ विकसित हुआ, कि 1789 ई. में बूर्ज्वाजी ने करीब-करीब उस स्थान को प्राप्त कर लिया, जो कि पहिले सामन्तों का था। अब बूर्ज्वाजी केवल सामाजिक रूप से ही अधिकाधिक फजूल नहीं होती जा रही है, बल्कि वह एक सामाजिक बाधा बन रही है, उत्पादक कार्रवाइयों से अधिकाधिक अलग होती, पुराने सामन्तवर्ग की तरह अधिकाधिक केवल मालगुजारी लेनेवाला वर्ग बनती जा रही है। इस क्रांति में उसने अपनी स्थिति को ठीक करते हुए किसी तरह का बलात्कार किए बिना शुद्ध आर्थिक तरीके से एक नये वर्ग–सर्वहारा–का सृजन किया।

इस प्रकार मालूम होगा कि 'डूरिंग-खंडन' में एंगेल्स ने केवल डूरिंग का तत्कालोपयोगी खंडन-भर नहीं किया, बल्कि मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की सरल और स्पष्ट विवेचना की है।

6. मार्क्स के वाद (1883-95 ई.)

(1) कपिटाल का सम्पादन—हम देख चुके हैं कि मार्क्स ने अपने महान् ग्रंथ 'कपिटाल' (पूँजी) को तीन जिल्दों में तैयार किया था; जिनमें केवल प्रथम जिल्द को ही वह प्रेस के लिए तैयार करके अपने सामने छपा देख पाए थे, बाकी दो जिल्दें अब भी ऐसी स्थिति में नहीं थीं, कि उन्हें प्रेस में दिया जा सकता। मार्क्स की मृत्यु के समय (1883 ई.) में एंगेल्स 63 साल के हो चुके थे, लेकिन सौभाग्य से अभी उन्हें बारह साल और जीना था। दुनिया के सर्वहारा-संगठनों और नेताओं की अब एंगेल्स की ओर नजर लगी, इसलिए उनका समय उनको सलाह देने और कामों में लगता था, तो भी उन्होंने अपने अवशिष्ट जीवन का उद्देश्य रक्खा था—शत्रुओं के मार्क्सवाद पर होते प्रहार को विफल करना तथा 'कपिटाल' के बाकी दोनों जिल्दों को ठीक करके प्रकाशित करना। 1894 ई. में 'कपिटाल' की तीसरी जिल्द के प्राक्कथन में एंगेल्स ने स्वयं लिखा है :

"पहली बात यह है कि मेरी आँखों की कमजोरी है, जो कितने ही वर्षों से अल्पतम मात्रा में भी लिखने में मुझे अपने समय का उपयोग करने नहीं देती, और आजकल भी कभी-कभी कृत्रिम प्रकाशन ही लिखने का मौका देती है।··· इसके अतिरिक्त दूसरे भी काम थे, जिनसे मैं इन्कार नहीं कर सकता था, जैसे कि मार्क्स और मेरी अपनी पहले की कृतियों के नये संस्करण और अनुवाद, संशोधन, प्राक्कथन, परिशिष्ट, जिनके लिए अक्सर विशेष अध्ययन आदि की आवश्यकता पड़ती थी। सबसे ऊपर इस ग्रंथ की प्रथम जिल्द के अंग्रेजी संस्करण का सवाल था, जिसके लिए अन्तिम जिम्मेदार मैं हूँ, और जिसने मेरा बहुत-सा समय लिया। जिस किसी ने पिछले दस वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी साहित्य की प्रकांड वृद्धि, विशेषकर मार्क्स और मेरी पहले की कृतियों के बहुसंख्यक अनुवादों को देखा होगा, वह मुझसे सहमत होगा··कि कुछ परिमित संख्या में ही ऐसी भाषाएँ हैं, जिनमें कि मैं किसी अनुवादक की सहायता कर सकता हूँ। यह काम संशोधन की माँग मानने के लिए मुझे मजबूर करता है।

"किन्तु, साहित्य की यह वृद्धि स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-आन्दोलन की वृद्धि की साक्षी है, जिसने यह नई जिम्मेदारियाँ मेरे ऊपर ला दीं। हमारे सार्वजनिक जीवन के प्रथम दिनों से ही समाजवादियों के राष्ट्रीय आन्दोलन और कमकर-जनता के बीच समझौता करने का काफी भार मार्क्स और मेरे कन्धों पर पड़ा। इस बोझ को अपनी मृत्यु के समय तक मार्क्स ने उठाया। उनके बाद बराबर बढ़ते हुए काम को केवल मुझे करना पड़ा।

"इसी बीच भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय मजूर-पार्टियों के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित होना आम हो गया और सौभाग्य से वह अधिकाधिक होता जा रहा है। फिर भी मेरे सैद्धान्तिक अध्ययनों को ख्याल में रखते हुए जितना मुझसे बन सकता है, उससे कहीं अधिक सहायता अब भी माँगी जाती है।··हमारे इस उथल-पुथलवाले समय में 16वीं शताब्दी की तरह सार्वजनिक कार्यों के सम्बन्ध में थ्योरी (वाद) गढ़नेवाले केवल प्रतिक्रियावादियों के दल में ही देखे जाते हैं। इसी कारण ये भद्रपुरुष वेदवाले वैज्ञानिक नहीं, बल्कि सिर्फ प्रतिक्रियावाद के समर्थक हैं।

"चूँकि मैं लन्दन में रहता हूँ, इसके कारण जाड़ों में पार्टियों के साथ मेरा सम्बन्ध केवल पत्र-व्यवहार का रहता है, जब कि गर्मियों में मेरा अधिकांश समय वैयक्तिक भेंट-मुलाकात में चला जाता है।

"यह तथ्य तथा कितने ही देशों में दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते आन्दोलन के अनुगमन करने की आवश्यकता, और उससे भी कहीं तेजी के साथ बढ़ती पार्टी मुखपत्रों की संख्या मुझे इस बात के लिए मजबूर करती है, कि इतनी सामग्री सुरक्षित रक्खूँ, जिससे कि साल के जाड़ों के महीनों में बाधा न खड़ी हो।

"जब आदमी सत्तर से ऊपर का हो जाता है, तो उसके मस्तिष्क के जोड़नेवाले तन्तु कुछ बुरी-सी लगनेवाली सुस्ती के साथ काम करते हैं, और आदमी पहले की तरह आसानी से शीघ्रता के साथ कठिन सैद्धान्तिक समस्याओं की बाधा को सुलझा नहीं पाता है, जिसका नतीजा यह होता है कि एक जाड़े का काम यदि उस समय पूरा नहीं हुआ, तो अधिकतर अगले जाड़े में करना पड़ता है।

"यह बात खास करके अत्यन्त कठिन पंचम अनुच्छेद के बारे में हुई।"

"पाठक निम्न बातों से देखेंगे, कि तृतीय जिल्द के सम्पादन का कार्य द्वितीय जिल्द की अपेक्षा वस्तुतः भिन्न था। तृतीय जिल्द के लिए प्रथम मसौदे के सिवा और कोई चीज मौजूद नहीं थी, और वह भी बहुत अपूर्ण था।

"भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों के आरम्भिक भाग आम तौर से अच्छी तरह सावधानी के साथ विस्तारित अथवा शैली के तौर पर पालिश किए हुए भी थे, लेकिन आदमी जितना ही आगे बढ़ता, उतना ही देखता है कि वह अधिकतर ढाँचे के रूप में तथा विश्लेषण अपूर्ण था।..."

इस प्रकार हम देख रहे हैं : कि अमर ग्रंथ 'कपिटाल' की अंतिम दोनों महत्त्वपूर्ण जिल्दों का उद्धार करते उन्हें मार्क्स के विचारों के अनुसार ही रखने का महान् काम एंगेल्स ने किया, और केवल वही कर भी सकते थे, क्योंकि वही अनु-मार्क्स थे।

(2) परिवार की उत्पत्ति (1884 ई.)—मार्क्स की मृत्यु के अगले साल की गर्मियों में एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, वैयक्तिक सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' प्रकाशित हुई। मार्क्सवाद के समझने के लिए एंगेल्स का यह ग्रंथ अद्भुत सहायक है। प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में एंगेल्स ने स्वयं लिखा है : "यह एक अर्थ में एक वसीयत का कार्यरूप में परिणत करता है।...कार्ल मार्क्स ने अपने सामने यह भावी काम रक्खा था, कि मार्गन के अनुसन्धानों के परिणामों को कुछ निश्चित सीमाओं में वह अपने सिद्धान्तों के प्रकाश में... रक्खें—हमारे भौतिकवादी इतिहास-सम्बन्धी परीक्षण के प्रकाश में रक्खें, और इस प्रकार उसके पूर्ण महत्त्व को स्पष्ट करें, क्योंकि मोर्गन ने अपने तरीके से 40 वर्ष पहले मार्क्स द्वारा आविष्कृत इतिहास की भौतिकवादी धारणा का अमेरिका में नये तौर से पता लगाया, और बर्बरता तथा सभ्यता की तुलना द्वारा वह भी उन्हीं मुख्य तथ्यों पर पहुँचा, जिसपर कि मार्क्स पहुँचे।..."

मोर्गन ने अमेरिका की आदिम जातियों के समाज के गम्भीर अध्ययन के बाद अपना ग्रंथ 'प्राचीन समाज' लिखा, जिसमें उसने जन (कबीला) और परिवार के विकास को दिखलाया। एंगेल्स ने इतिहास की भौतिकवादी दृष्टि का प्रयोग करते हुए भिन्न-भिन्न मंजिलों से होते मानव-समाज के विकास को इस पुस्तक में दिखलाया और बतलाया कि सभी दूसरी सामाजिक संस्थाओं की तरह परिवार का भी अपने विकास का एक लम्बा इतिहास है, और वह विकास समाज के विकास एवं वैयक्तिक सम्पत्ति की वृद्धि के साथ हुआ है। परिवार का सबसे पुराना रूप जांगल अवस्था के अनुरूप था, जिसमें यूथ-विवाह का रिवाज था।

समाज के विकास की अपनी सीढ़ी थी बर्बर-समाज, जिसमें परिवार जोड़े का परिवार था, जिसमें प्रत्येक आदमी की एक मुख्य स्त्री और प्रत्येक स्त्री का एक मुख्य पति होता था। इस समाज में नजदीकी सम्बन्धियों के बीच में ब्याह अधिकाधिक निषिद्ध होता गया, लेकिन जब तक समाज जनता के रूप में संगठित रहा, तब तक आधुनिक अर्थों में माने जानेवाला समाज अस्तित्व में नहीं आया। उस समय परिवार साम्यवादी रूप का था, जिसमें कि सभी या अधिकांश स्त्रियाँ एक जन से आती थीं, जब कि पति भिन्न-भिन्न जनों से। इस गृहस्थी में स्त्री का पुरुष की दासी का नहीं, बल्कि प्रमुख स्थान था। एंगेल्स ने एशेर राइट का इस विषय में उदाहरण दिया है : "आम तौर से स्त्री-भाग घर का शासन करना।... भंडार सम्मिलित थे...चाहे पुरुष के कितने ही बच्चे हों अथवा जो भी सामान घर में हो, उसे किसी समय हुकुम दिया जा सकता था कि अपना कम्बल ले रास्ता नापे, और ऐसी आज्ञा के बाद वह इन्कार करने का प्रयत्न नहीं कर सकता था। घर उसके लिए काँटा बन जाता और...उसे अपने जन (कबीले) की ओर लौटना पड़ता अथवा जैसा कि अक्सर होता है, किसी दूसरे जन में जाकर नया वैवाहिक सम्बन्ध आरंभ करना पड़ता। स्त्रियाँ और सभी जगहों की तरह कबीलों (जनतों) में बड़ी शक्तिशालिनी थीं। समय की आवश्यकता होने पर 'सींग तोड़ फेंकने' में भी आनाकानी नहीं करतीं—सरदार के सिर पर सींग उसका विशेष चिह्न होता था—जिसे तोड़कर उसे भाटों की पंक्ति में लौटा देतीं।

उनके संगठन के बारे में एंगेल्स कहते हैं : "यह जन-संविधान अपनी बच्चों जैसी सादगी में एक अद्भुत संविधान है ! न सैनिक हैं, न मलिसिया, न पुलिस, न सामन्त हैं न राजा, न रिजेंट (उपराज), न दंडनायक

या न्यायाधीश, न जेल हैं न कानून के मुकदमे—और सभी बातें सुव्यवस्थित रूप से चल रही हैं। सभी झगड़े और मामले तत्सम्बन्धी सारे समूह, जनों या कबीलों अथवा जनतों द्वारा अपने भीतर ही तय कर लिए जाते हैं। केवल चरम अवस्था में और अपवादरूपेण खून के बदले खून का खतरा पैदा होता है—और हमारा मृत्युदण्ड उसी खून के बदले के सभ्य रूप के सिवा और कुछ नहीं है।''' जनों में कोई गरीब या अभावग्रस्त सामूहिक गृहस्थी नहीं हो सकती थी। वृद्ध, बीमार और युद्ध में बेकार हुए आदमी के प्रति जन अपना जिम्मेदारी को मानते थे। वहाँ सभी समान और स्वतन्त्र थें—स्त्रियाँ भी।"

लेकिन इन जन-संस्थाओं की अपने-अपने कबीले के भीतर ही ऐसी स्थिति थी। एक कबीला दूसरे कबीले का शत्रु था, और जैसे-जैसे वैयक्तिक सम्पत्ति बढ़ती जाती थी, वैसे-ही-वैसे सबसे पहले दायभाग के कानूनों में परिवर्तन हुआ, पैतृक कानून तथा बाप की सम्पत्ति पर बेटे के अधिकार का विकास हुआ, जिसके कारण विशेष परिवारों की शक्ति अधिक बढ़ी। जैसे-जैसे उत्पादन के साधन विकसित होते गए, अर्थात् धन-उत्पादन करने का तरीका और अधिक श्रम की माँग करने लगा, जन-समाज के बाद (दासता की प्रथा) प्रचलित हुई। परिवार पहले पितृसत्ता के रूप में अर्थात् आदिम साम्यवादी जन-समाज से होते तीसरी मंजिल पर पहुँचा। पितृसत्ता के समाज में श्रम की माँग के कारण आरम्भ हुई दासता ने अब दासतामूलक समाज को जन्म दिया, और उसके साथ परिवार पितृसत्ता के रूप से बहुत-कुछ वर्तमान रूप ले चला, जिसके महत्त्व के बढ़ने के साथ जन-संस्था अधिकाधिक कमजोर होती गई और उसके भीतर से आधुनिक समाज अपने प्राचीन रूप में प्रकट हुआ, जिसमें कि सम्पत्तिशाली वर्ग सम्पत्तिहीन वर्गों के शोषण पर गुजारा करता है, और समाज में शोषित का स्थान दास, अर्धदास या मजूर-दास के रूप में रह गया है। मोर्गन ने इन सभी परिवर्तनों में वैयक्तिक सम्पत्ति को मुख्य कारण माना है : "सम्पत्ति (वैयक्तिक) वह तत्त्व थी, जो कि परिवर्तन की माँग कर रही थी। और जीवन और संस्थाओं का विकास, प्राकारबद्ध नगरों में सम्पत्ति का ढेर लगना, और उसके द्वारा जीवन के ढंग में बड़े परिवर्तन वह चीजें थीं, जिन्होंने कि जन-संस्थाओं के उखाड़ फेंकने के लिए रास्ता तैयार किया।"

समाज में स्त्रियों की स्थिति, राज्य तथा और विषयों पर भी एंगेल्स ने अपनी लेखनी द्वारा बहुत-से मौलिक तथ्यों का विश्लेषण किया।

(3) फ्वारवाख (1888 ई.)—हेगेलीय दर्शन के तत्कालीन प्रतीक फ्वारबाख की विचारधारा का विवेचन और खंडन एंगेल्स ने अपनी इस पुस्तक में किया है, जो कि 1888 ई. में प्रकाशित हुई। फ्वारबाख की विज्ञानवाद की ओर रुझानों की आलोचना करने के बाद इस ग्रंथ में एंगेल्स ने बहुत ही स्पष्ट और सारगर्भित शैली में इतिहास की भौतिकवादी धारणा की व्याख्या की है।

एंगेल्स की अन्तिम कृति थी मार्क्स के '1848-50 ई. में फ्रांस में वर्ग-संघर्ष' की भूमिका। इस ग्रंथ को उन्होंने अपनी मृत्यु से केवल पाँच महीने पहले लिखा था। अब वह 75 साल (जन्म 28 नवम्बर, 1820 ई.) के हो रहे थे, लेकिन अब भी उनकी बुद्धि उसी तरह प्रखर और गम्भीर थी। उन्होंने अपनी इस कृति में 1850 ई. से 1895 ई. तक के यूरोपीय समाज के इतिहास का सिंहावलोकन किया है।

7. मृत्यु

1893 ई. में जूरिच-कांग्रेस में अन्तिम बार एंगेल्स सार्वजनिक मंच पर आए। वह भाषण से अधिक लेखनी के धनी थे। वैसे वह बीना और बर्लिन की कांग्रेसों में भी शामिल हुए थे। 1895 ई. के मार्च में उनके गले में नासूर (कैंसर) हो गया, और जैसा कि इस घातक बीमारी का स्वभाव है, पाँच महीने तक यंत्रणा देते उसने 6 अगस्त (1895 ई.) को उनके प्राण हर लिए। एंगेल्स ने प्रथम श्रेणी की प्रतिभा और योग्यता पाकर भी हमेशा अपने को पीछे रखना चाहा। मरने के बाद के लिए भी 'मेरी लाश को जलाकर राख समुद्र में फेंक देना'—कहकर उन्होंने साबित कर दिया कि उन्हें किसी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। लेकिन इतिहास उनको महत्त्वहीन नहीं समझता। मार्क्स के साथ एंगेल्स का नाम सदा के लिए जुड़ गया और आज एक के सामने

उपस्थित होने पर दूसरा स्वतः उपस्थित हो जाता है। उनकी चिता के पास उनके घनिष्ठ मित्र जमा हुए। मार्क्स की पुत्री एलिनोर उस समय एंगेल्स के प्रिय समुद्रतट ईष्टबोर्न पर पहुँची। उसने 27 अगस्त को एक नाव किराया करके महान् एंगेल्स की भस्म को ले जाकर समुद्र में डाल दिया। मार्क्स की हड्डियाँ अब भी लन्दन के हाइगेट कब्रिस्तान में मौजूद हैं, उनके शिष्य लेनिन और प्रशिष्य स्तालिन के शवों को सजीव-से रूप में आज भी मास्को के लाल मैदान के समाधि मन्दिर में देखा जा सकता है, लेकिन एंगेल्स अब केवल अपनी कृतियों में ही जीवित हैं—जो उन अस्थियों से भी अधिक मूल्यवान और अमर हैं, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

परिशिष्ट

वर्ष-पत्र

सन	स्थान	घटना-विवरण
1818 मई, 5	ट्रीर (ट्रेव्स)	कार्ल मार्क्स का जन्म
1824	ट्रीर	पिता हाइनरिख मार्क्स ईसाई बने
1835 अगस्त, 25	ट्रीर	ट्रीर कालेज की पढ़ाई समाप्त
1835-36	बोन	कानून की पढ़ाई और जेनी से सगाई
1836-41	बर्लिन	कानून-दर्शन-इतिहास के विद्यार्थी, प्रथम लेख (कविता आदि)
1838	ट्रीर	पिता मरे
1841	जेना	डाक्टर की उपाधि
1842-43	कोलोन	'राइनिशे-जाइटुंग' का संपादन
1843	ट्रीर	जेनी फान वेस्टफालेन से विवाह
1843-45	पेरिस	निर्वासित जीवन और लेखन आदि
1844	पेरिस	'जर्मन-फ्रेंच वर्ष-पत्र' का संपादन, एंगेल्स से पहली मुलाकात, अर्थशास्त्र और दर्शन का विशेष अध्ययन
1845	ब्रुशेल्स	पेरिस से निष्कासन
1845-48	ब्रुशेल्स	एंगेल्स के साथ काम : 'पवित्र परिवार', 'जर्मन विचारधारा'
1847	ब्रुशेल्स	कम्युनिस्ट लीग में सम्मिलित, कृति : 'दर्शन की दरिद्रता'
1848	ब्रुशेल्स	'कम्युनिस्ट लीग' का पुनः संगठन, ब्रशेल्स से निष्कासन, 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र का प्रकाशन।
1848-49	कोलोन	'नोये राइनिशे जाइटुंग' का संपादन
1849	कोलोन	जूरी द्वारा मार्क्स मुकदमे से बरी, कोलोन से निष्कासन
1849-83	लन्दन	निर्वासित जीवन और महान् कार्य
1850	मैन्चेस्टर	एंगेल्स व्यवसाय में लगे।
1851	लन्दन	'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में लेख शुरू (1861 तक)
1852	लन्दन	सबसे छोटी लड़की की मृत्यु
1853	लन्दन	भारत पर लेख
1855	लन्दन	एकमात्र पुत्र एडगर (मूश) की मृत्यु
1857-58	लन्दन	नवीन अमेरिकन साइक्लोपीडिया के लिए काम
1859	लन्दन	'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' का प्रकाशन

1860	लन्दन	'हेर फोस्ट' लिखना
1861-62	लन्दन	'डी प्रेस' (बीना) को लेख
1861	लन्दन	जर्मनी की यात्रा, लाजेल से भेंट (बर्लिन)
1863	लन्दन	लाजेल द्वारा कमकर पार्टी की स्थापना
1863 जनवरी	लन्दन	एंगेल्स से क्षणिक मनमुटाव
1864 सितम्बर, 28	लन्दन	प्रथम इण्टरनेशनल की स्थापना, इसी साल लाजेल के वोल्फ की मृत्यु
1865	लन्दन	लाजेल के संगठन से सम्बन्ध-विच्छेद, 'मूल्य, दाम और लाभ' पर अभिभाषण (26 जून), आस्ट्रिया-प्रशिया-युद्ध, घोर आर्थिक-कष्ट
1866	लन्दन	जेनेवा में इण्टरनेशनल की प्रथम कांग्रेस
1867	लन्दन	'कपिटाल' की प्रथम जिल्द प्रकाशित
1868	लन्दन	ब्रुशेल्स में इण्टरनेशनल की तृतीय कांग्रेस
1868-69	लन्दन	पश्चिमी और मध्य यूरोप में हड़ताल आन्दोलन की वृद्धि
1868	लन्दन	ब्रुशेल्स में इण्टरनेशनल की तृतीय कांग्रेस, बकुनिन से सम्बन्ध-विच्छेद
1868-69	लन्दन	पश्चिमी और मध्य यूरोप में हड़ताल की वृद्धि
1869 सितम्बर, 5, 6	लन्दन	बाजेल में इण्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस
1869-70	लन्दन	मार्क्स का स्वास्थ्य खराब
1869 जून, 30	लन्दन	एंगेल्स का व्यवसाय त्याग
1870 सितम्बर	लन्दन	एंगेल्स सदा के लिए लन्दन में
1870	लन्दन	फ्रेंच-प्रशियन-युद्ध
1870 अप्रैल, 22	सिम्बार्क (रूस)	लेनिन का जन्म
1871	सिम्बार्क	आत्मसमर्पण (जनवरी 28), पेरिस कम्यून (26 मार्च-28 मई), 'फ्रांस में गृह-युद्ध' का लिखना
1872 सितम्बर, 3	सिम्बार्क	हेग में इण्टरनेशनल की कांग्रेस, एम्सटर्डम में मार्क्स का भाषण, इण्टरनेशनल की जनरल कौंसिल न्यूयार्क में स्थानान्तरित
1873	सिम्बार्क	बकुनिन के खिलाफ पुस्तिका, कड़ी बीमारी
1875	सिम्बार्क	'गोथा प्रोग्राम की आलोचना'
1876	सिम्बार्क	बकुनिन की मृत्यु
1877	सिम्बार्क	'डूरिंग-खंडन' में एंगेल्स की सहायता
1878	सिम्बार्क	जर्मनी में समाजवाद-विरोधी कानून की घोषणा
1879-83	सिम्बार्क	मार्क्स सख्त बीमार
1879 दिसम्बर, 11	गोरी	स्तालिन का जन्म
1881 दिसम्बर, 2	लन्दन	जेनी मार्क्स की मृत्यु
1882	अल्जियर, फ्रांस	स्वास्थ्य के लिए यात्राएँ, प्रिय पुत्री जेनी की मृत्यु, जेनेवा सरोवर (सितम्बर)
1883 मार्च, 14	लन्दन	मार्क्स की मृत्यु
1883 मार्च, 17	लन्दन	अन्त्येष्टि-क्रिया
1884	लन्दन	एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार की उत्पत्ति' प्रकाशित

1885	लन्दन	'कपिटाल' की दूसरी जिल्द प्रकाशित
1888	लन्दन	एंगेल्स की पुस्तक 'फ्वारबाख' प्रकाशित
1894	लन्दन	'कपिटाल' की तीसरी जिल्द प्रकाशित
1895	लन्दन	एंगेल्स मार्च में बीमार और 27 अगस्त को मृत।
1917	रूस	साम्यवादी क्रांति और प्रथम कमकर राज्य की स्थापना।

लेनिन

प्राक्कथन

साम्यवाद (कम्युनिज्म) ही मानव जाति की सारी बीमारियों की एकमात्र रामबाण औषधि है, भारत का उद्धार भी उसी से है। ऐसे अवस्था में साम्यवाद के महान तत्त्वदर्शियों और प्रथ-प्रदर्शकों की अच्छी जीवनियों का हिंदी में न होना खटकता था। इसी अभाव की पूर्ति के लिए मैंने मार्क्स, लेनिन, स्तालिन और माओ त्से-तुंग की चार जीवनियां लिखने का संकल्प किया। इन जीवनियों में जीवन-घटनाओं के अतिरिक्त इन महापुरुषों के सिद्धांतों और प्रयोगों को भी रखने की कोशिश की गयी है।

यह जीवनी मुख्यतः 'मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन प्रतिष्ठान' मास्को द्वारा प्रकाशित 'व. ई. लेनिन' के आधार पर लिखी गयी है, यद्यपि कहीं-कहीं और स्रोतों से भी सहायता ली गयी है।

पुस्तकों का संग्रह करने में डा. महादेव साहा, साथी रमेश सिन्हा और साथी सच्चिदानन्द शर्मा ने बड़ी मदद की, इसलिए उनको धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। श्री मंगल सिंह परियार ने पुस्तक को टाइप करने में बड़ी मदद की, इसलिए उनका भी आभारी हूँ।

पुस्तक बहुत बढ़ न जाय इसका मैंने बहुत ध्यान रखा, लेकिन साथ ही यह भी खयाल काम कर रहा था कि काम की बातें छूटने न पायें।

राहुल सांकृत्यायन

मसूरी
जून, 1955

1

बाल्य-काल (1870-81 ई.)

1. माता-पिता और परिवार

लेनिन को कौन नहीं जानता ? लेकिन, 1870 ई. में वोल्गा की उपत्यका के सिम्बिर्स्क नगर में 22 अप्रैल को जब यह मेधावी बालक पैदा हुआ था तो उसका नाम व्लादिमिर रखा गया था। रूसी प्रथा के अनुसार पिता और गोत्र के संबंध को बतलाते हुए बहुत दिनों तक इस बालक को व्लादिमिर इलिच (इलिया-पुत्र) उलियानोफ कहा जाता था। 1871 ई. में ब्लादिमिर के जन्म ले लेने के समय ही पेरिस के सर्वहारा ने दो महीने तक अपनी कम्यून के शासन को चलाकर बतला दिया कि सर्वहारा में शासन करने की क्षमता है, उनमें अपने लिए सब तरह के स्वार्थ-त्याग करने का हृदय है। समाजवाद को धरती पर स्थापित करने में पथ-प्रदर्शन करनेवाले, युगों के स्वप्न को साकार रूप देनेवाले, वास्तविक तत्त्वदर्शी कार्ल मार्क्स थे। लेकिन, विश्व में प्रथम साम्यवादी सरकार की स्थापना करके दुनिया के छठे हिस्से से वर्ग-शासन के भीषण शोषण और उत्पीड़न को सर्वदा के लिए बन्द करने का श्रेय वोल्गा तट पर पैदा हुए इसी बालक उलियानोफ को है। व्लादिमिर जिस समय पैदा हुआ, उसके बाद भी तेरह साल तक मार्क्स जीते रहे। उनके अभिन्न साथी एंगेल्स तो उस समय तक जीते थे जब कि व्लादिमिर राजनीति में पैर रख चुका था। लेकिन उसे दोनों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, यद्यपि कार्ल मार्क्स के सफल और यशस्वी उत्तराधिकारी होने का सौभाग्य इसी बालक को प्राप्त हुआ। क्रान्ति के बाद लेनिन की जन्म-नगरी का नाम सिम्बिर्स्क से बदलकर उनके गोत्र के नाम से उलियानोव्स्क पड़ गया।

पिता इलिया निकोलायविच (निकोलाय-पुत्र) उलियानोफ अस्त्राखान के एक निम्न मध्यवर्ग परिवार में पैदा हुए थे। हाई स्कूल और कजान युनिवर्सिटी में शिक्षा समाप्त करने के बाद वह चौदह वर्ष तक पेन्जा और फिर निज्नी-नव-गरोद (वर्तमान गोर्की) में गणित और भौतिकशास्त्र के अध्यापक रहे। इसके वाद, 1869 ई. से वह सिम्बिर्स्क गुबेर्निया (प्रदेश) के प्रारम्भिक स्कूलों के इन्स्पेक्टर और फिर डाइरेक्टर रहे। लम्वी और भारी सेवाओं के लिए इलिया निकोलायविच को निम्न मध्यम वर्ग से उठाकर कुलीनों की श्रेणी में रख दिया गया। इलिया निकोलायविच उन शिक्षित और प्रगतिशील रूसियों में से थे, जिनको 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जहाँ-तहाँ देखा जाने लगा था और जो व्याधि की जड़ तक पहुँचने की कोशिश न करके शिक्षा के सार्वजनिक प्रचार को सर्वमंगल समझकर उसी में अपनी सारी शक्ति लगाते थे। अपनी इस शिक्षा-संबंधी सेवा में वह धीर, उत्साही और कर्मठ थे। वह उसे अपने सभी कामों से बढ़ा-चढ़ाकर समझते थे। अपने बच्चों में शिक्षा और ज्ञान के प्रति प्रेम पैदा करने का उन्होंने खूब प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुए। इलिया निकोलायविच की मृत्यु 12 जनवरी, 1886 को हुई। उस समय व्लादिमिर सोलह वर्ष के थे।

माता मारिया आलेक्सान्द्रोव्ना (आलेक्सान्द्र-पुत्री) ब्लांक एक डाक्टर की लड़की तथा असाधारण योग्यतावाली स्त्री थीं। वह निसर्गतः तीव्र-बुद्धि और दृढ़ संकल्प तथा उदार-हृदयता के लिए प्रसिद्ध थीं। यद्यपि

इसको ध्रुव सत्य नहीं कहा जा सकता, लेकिन आनुवंशिकता-विज्ञान में यह कुछ हद तक स्वीकार किया जाता है कि पुत्र माता की बौद्धिक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है और पुत्री पिता की। इलिया निकोलायविच भी योग्य और तीव्र-बुद्धि थे। लेकिन व्लादिमिर को विरासत अपनी माता की ओर से ज्यादा मिली थी। मारिया अलेक्सान्द्रोव्ना की शिक्षा-दीक्षा में उनके पिता ने कोई कसर उठा नहीं रखी थी। अपनी मातृभाषा (रूसी) के अतिरिक्त वह फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी बोल सकती थीं। संगीत से उनको बड़ा प्रेम था। अपने पुत्र-पुत्रियों से तो प्रेम था ही, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में बराबर प्रयत्नशील रहीं। अपने परिवार के वातावरण को उन्होंने संस्कृति, उदार-हृदयता और उच्च आदर्श से अनुप्राणित किया। इसका प्रभाव उनकी छहों सन्तानों पर पड़े बिना नहीं रहा।

छः सन्तानों में तीन बेटे और तीन बेटियाँ थीं। सबसे बड़ा पुत्र अलेक्सांद्र, दूसरा व्लादिमिर और तीसरा दूमित्री था। लड़कियाँ अन्ना, मारिया और ओल्गा थीं। छहों ने अंत में क्रान्तिकारी बनकर अपना जीवन देश और सर्वहारा की मुक्ति के प्रयत्न में लगाया। मारिया का ज्येष्ठ पुत्र आलेक्सान्द्र जारशाही के चंगुलों से जनता को मुक्त करने के लिए सर्वस्व की बाजी लगानेवाले क्रांतिकारियों के 'नरोद्नाया वोल्या' (जन-इच्छा) दल में शामिल हो गया और अंत में उसे फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ा। बाकी दो भाई और तीनों वहनें तरुणाई में ही बोल्शेविक बन गये।

व्लादिमिर को क्या बनना है, शायद इसकी भविष्य-कल्पना सुशिक्षित माता-पिता भी नहीं कर सकते थे। लेकिन, वह तीक्ष्ण मेधा का धनी, सजग और सुशील है, यह तो बचपन में ही प्रकट होने लगा था। पाँच वर्ष की उम्र का बालक व्लादिमिर लिख-पढ़ सकता था। घर में पढ़ने के बाद, नौ वर्ष की उम्र में वह सिम्बिर्स्क हाई स्कूल में दाखिल हुआ। अपनी प्रतिभा और परिश्रम के कारण वह पढ़ाई में बहुत अच्छे विद्यार्थियों में रहते हुए हर कक्षा में सबसे अधिक सम्मान के साथ उत्तीर्ण होकर आगे बढ़ता रहा। हाई स्कूल में परीक्षा खतम करने के समय वह यूरोप की आधुनिक समृद्ध भाषाओं–फ्रेंच और जर्मन के अतिरिक्त लातिन और यूनानी–का भी अच्छा ज्ञान रखता था। इतिहास और साहित्य से व्लादिमिर को बहुत प्रेम था। ऐसी कथा-पुस्तकों में उसे बड़ी रुचि थी जिनके नायक दृढ़मनस्क-धीर व गम्भीर होते थे।

2. जन्म-प्रदेश

वोल्गा प्रदेश लेनिन की जन्मभूमि थी। वोल्गा रूस की विशाल नदी–हमारी गंगा से भी बड़ी–गंगा ही की तरह युगों से लोगों के सम्मान की भाजन है। लोग उसे पिता वोल्गा कहा करते थे, और अभी भी कहते हैं। जब वोल्गा-तीरवासी दूर कहीं नौकरी-चाकरी के लिए जाते और वोल्गा को पुल या नाव से पार करते, तो 'पिता वोल्गा' के लिए उसी तरह अपनी कमाई के एक-आध पैसे वोल्गा को समर्पण करते जिस तरह राजघाट या प्रयाग के गंगा के पुलों को पार करते हुए आज भी हमारे देश के साधारण लोग करते हैं। वोल्गा की तरह ही बालक व्लादिमिर की भी दृष्टि विशाल, गंभीर और गतिशील थी। अपनी वोल्गा के लिए नास्तिक व्लादिमिर के हृदय में जीवन के अंत तक बचपन-जैसा प्रेम और आदरभाव था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। वोल्गा शताब्दियों से क्या, सहस्राब्दियों से जातियों का संगम–त्रिवेणी नहीं, चतुर्वेणी-पंचवेणी–रही है। ईसा पूर्व की शताब्दियों में, प्रागैतिहासिक काल में, वह शायद मारी जाति के पूर्वजों, फिनो-द्रविड़ जाति के लोगों की भूमि रही थी। लेकिन उससे पहले मंगोलायित चेहरेवाली कोई और भी जाति रहती थी जिसके वंशज इस्कीमो, ध्रुव-कक्षीय भूमि में अब भी देखे जाते हैं। पर आज वे वोल्गा-तट से बहुत दूर हैं। कोमी, मारी आदि पुरानी जातियों के वंशज आज भी वोल्गा या उसकी शाखाओं के पास रहते हैं। जिस वक्त फारस के महान कोरोश का राज्य पश्चिमी-एशिया के बहुत बड़े भूभाग पर था, उस समय वोल्गा-तट पर उन्हीं शक जातियों का निवास था जो पश्चिम में कारपाथीय पर्वत-माला से पूर्व में काश्गर के पर्वतों तक अधिकतर घुमन्तू जीवन बिताती थीं। लेकिन मध्य-एशिया और पूर्वी-यूरोप के उत्तर की विशाल भूमि उस समय भी घुमन्तुओं का स्वर्ग थी जिस समय भारत में गौतम बुद्ध जीवित थे। सिकन्दर की दिग्विजय के समय भी यह भूमि महान शकद्वीप के रूप में मौजूद थी। ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी में हूणों का भूचाल शुरू हुआ। वह वीर किन्तु अत्यन्त क्रूर घुमन्तू जाति, चीन के

प्रचण्ड प्रहार के कारण अपनी लीला-भूमि (मंगोलिया और उसके आस-पास के क्षेत्र) को छोड़कर प्राण बचाने के लिए पश्चिम की ओर भागने के लिए मजबूर हुई थी। जैसे तालाब या समुद्र में उठी लहर पास-पड़ोस के स्थिर जल को लहरों में परिणत किये विना नहीं रहती, वैसे ही हूणों के धक्के ने विशाल शकद्वीप में रहनेवाली शक जातियों को हिला दिया। टिड्डी दल की तरह धावा करते कितने ही शक भागकर मध्य-एशिया और पूर्वी ईरान पर टूट पड़े। और अंत में, उन्होंने अपनी विजय-वैजयन्ती पाटलिपुत्र और उसके आगे तक गाड़ दी। इन्हीं में कनिष्क और हुविष्क जैसे राजा हुए। भागे हुए शक घुमन्तुओं की भूमि में अब हूणों के तम्बू लगने लगे, उनके घोड़े और भेड़ें चरने लगीं, और कम-से-कम पूर्वी शकद्वीप–वोल्गा से गोबी तक–अब हूण-द्वीप में परिणत हो गया। अगली शताब्दियों में हूणों के ही वंशज अवार, अपने शत्रु तथा रक्त-संबंधी तुर्कों की मार के कारण वोल्गा और नीपर को पार करते हुए दुनाई (दन्यूब) के तट पर पहुँचे। उनके वंशज हंगरी गणराज्य के लोग हुंगर या मगयार के नाम से आज भी दुनाई के तट पर मौजूद हैं। अवारों का पीछा करते हुए तुर्क क्रीमिया और काला सागर के तट पर पहुँचे। इन्हीं हूण तथा तुर्क-वंशज जातियों के घोड़ों की टापों ने वोल्गा से पश्चिम के शक-वंशजों को उत्तर और पश्चिम के जंगलों में सूखे पत्तों की तरह विखेर दिया। यही प्राचीन स्लाव कहलाये। उनमें सवसे बाद तक घुमन्तू जीवन वितानेवाले वे स्लाव लोग थे जिनकी सन्तानें आज के रूसी, उक्राइनी और वेलोरूसी हैं।

व्लादिमिर इलिच उलियानोफ (लेनिन) का परिवार रूसी था। हम यह भी बतला चुके हैं कि उनके पिता का परिवार पहले वोल्गा के मुहाने तथा कास्पियन तट पर बसे ऐतिहासिक नगर अस्त्राखान में रहता था। लेकिन जो मानव टिड्डी-दल समय-समय पर पूर्व से पश्चिम को जाता रहा, उसके कारण स्लावों के पूर्वज शक बहुत समय पहले ही वोल्गा-तट छोड़कर चले गये थे। अतएव, अब वोल्गा हूण-वंशज मंगोलायित मुखमुद्रावाले लोगों की ही निवास-भूमि रह गयी थी। हमें यह भी पता नहीं कि रूसियों के मूल पूर्वज शकों के समय वोल्गा का क्या नाम था ? हूण-वंशजों ने इसका नाम इत्तिल रखा था। उनके एक कबीले–वोल्गार–का आधिपत्य मध्य और निम्न-वोल्गा उपत्यका पर शताब्दियों तक रहा और उनके ही नाम पर नदी का नाम इत्तिल से वोल्गा पड़ गया। वोल्गा का अधिक गुंजान इलाका यद्यपि मंगोलायित मुखमुद्रावाले लोगों के हाथ में था, लेकिन वोल्गा का उद्‌गम स्थान रूसियों की भूमि में मास्को से उत्तर में है। रूसी शताब्दियों तक इस बहुत लम्बे और विशाल व्यापारिक नदी-पथ का इस्तेमाल करते रहे। 15वीं शताब्दी तक शुद्ध मंगोलायित चेहरेवाले लोगों की वोल्गा तट-भूमि में रूसी लोग जहाँ-तहाँ अपनी बस्तियाँ बसाकर खेती करने लगे। हूणों की अन्तिम शाखा, मंगोल 13वीं शताब्दी में वोल्गा के स्वामी बने थे, और उसके कारण चुवाशों, तातार जैसी मंगोलायित जातियों के अतिरिक्त मंगोल भी–जिनमें अधिकांश तुर्क थे–इस भूमि में रहने लगे। इस प्रकार भाषा में कुछ भिन्नता रखते हुए मंगोलायित मुखमुद्रावाले लोग ही रूस के पूर्वाभिमुख विस्तार के समय वोल्गा प्रदेश में रहते थे। अब चावल, उड़द की तरह गंगा-जमुनी बस्तियाँ यहाँ बसने लगीं, जिनमें मंगोलायित लोग अभी भी कृषि और स्थिर-निवास की जगह पशु-चारण करते थे और तम्बुओं में बसने को अधिक पसन्द करते थे। रूस से आकर बसे लोग उनसे सांस्कृतिक तौर से ही बड़े नहीं थे, बल्कि वे बस्ती तथा नगर का जीवन विताने के आदी भी थे।

आरम्भिक शताब्दियों में अपनी चरागाहों को छिनते देख चुवाशों, तातारों तथा कजाकों (तुर्कों) ने रूसियों से जबर्दस्त लोहा लिया, और वीरता की अनेक अद्‌भुत मिसालें छोड़ीं। लेकिन, विज्ञान के बढ़ते हुए आविष्कारों से सुसज्जित रूसी विजेताओं का वे मुकाबला कब तक करते ? मंगोलायितों के संघर्ष बहुतकुछ खत्म हो चुके थे; तो भी, वोल्गा की भूमि वीरों को पैदा करने में अपनी उर्वरता को खो नहीं बैठी। साम्राज्य के स्वामी रूसी भी गरीब और अमीर, शोषक और शोषित श्रेणियों में विभक्त थे। किसान, विशेषकर गरीब किसान, यह बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे कि उनकी गाढ़ी कमाई का एक-एक कोपेक (पैसा) सफेदपोश उड़ा ले जायें और वे खुद मिट्टी चाटने के लिए मजबूर हों। आखिर, इन रूसी शोषकों की प्रभुता का बल भी उन्हीं शोषित रूसी किसानों (मूजिकों) के पुत्रों पर निर्भर था, जो कुदाल छोड़ सैनिक वर्दी पहनकर जार के सिपाही बन जाते थे। जार के लिए लड़ने की जगह कितनी ही बार इन किसानों ने अपने अत्याचारी शासकों के विरुद्ध हथियार

उठाये। वोल्गा की भूमि ने र्याजिन जैसे किसान वीर को पैदा किया। तुगाचेफ ने यहीं पर पैदा होकर 18वीं शताब्दी में जार की सेना को लोहे के चने चबवाये थे। र्याजिन और तुगाचेफ की वीर-गाथाएँ अभी भी सजीव हैं। वे व्लादिमिर इलिच को बचपन में सुनने को मिली थीं, इसमें सन्देह नहीं।

व्लादिमिर अपने पिता के साथ पन्जा या सिम्बिर्स्क में रहते समय, रूस की भिन्न-भिन्न जातियों—मोर्दावी, मारी, उदमुर्त, तातार—के सम्पर्क में आये थे; और यह समझने में व्लादिमिर को दिक्कत नहीं हुई कि जार का राज्य बहुजातिक राज्य है, कि जारशाही अपने रूसी किसान-मजदूरों का जितना शोषण और दोहन करती है उससे कहीं अधिक शोषण वह रूस की विभिन्न जातियों का कर रही है। इसके कारण विश्व के इतिहास में पहले-पहल जातियों की समस्या का सुन्दर हल निकालने में उनको और उनके सहयोगी शिष्य स्तालिन को और अधिक आसानी हुई; उनके आरम्भिक जीवन के कितने ही वर्ष रूस के जातियों के इस म्युजियम या जातियों के कैदखाने में बीते थे। बालक व्लादिमिर को अपने आस-पास जारशाही की निष्ठुर चक्की को क्रूर कार्य करते हुए देख क्रोध आता था।

2

विद्यार्थी जीवन (1881-87 ई.)

1. अध्ययन

व्लादिमिर जिस समय स्कूल में पढ़ रहे थे, उस समय प्राणों की बाजी लगाये मुट्ठी-भर क्रान्तिकारी उसी तरह बमों और पिस्तौलों के बल पर जार के तख्त को उलट फेंकना चाहते थे जिस तरह उसके तीन दशाब्दियों बाद भारत में—बहुत कुछ इन्हीं रूसी क्रांतिकारियों की प्रेरणा से—हमारे क्रांतिकारी तरुणों ने चाहा था। खुदीराम बोस जैसे शहीद रूस में और भी अधिक संख्या में अपना बलिदान दे रहे थे। अपने इन प्रतिद्वंद्वियों का मुकाबला करने के लिए जारशाही किसी भी तरह के न्याय का ढोंग रचने के लिए तैयार नहीं थी। चारों ओर खुफिया और पुलिस का राज्य था। जौ की अपेक्षा पिसनेवाले घुनों की संख्या बहुत अधिक थी। जारशाही अपनी सफलता से फूली नहीं समाती थी। लेकिन उसकी इस करनी से लोगों में असन्तोष बढ़ता ही गया। जब जारशाही पुलिस के संदेह का कोप-भाजन किसी वक्त भी बना जा सकता था, तो फिर किसके दिल में इस कठोर शासन के प्रति असन्तोष न होता ? जारशाही के नमकख्वार और उसकी सेवा में पले उलियानोफ-परिवार में भी लेनिन का बड़ा भाई अलेक्सान्द्र जब बमों और पिस्तौलों के धर्म में दीक्षित हो गया था, तो औरों की बात ही क्या ? नरोद्नाया वोल्या (जन-इच्छा) पार्टी का उस समय बहुत जोर था। उसके सिद्धान्त और विचार भी बहुत-कुछ बंगाल के क्रान्तिकारियों जैसे थे। उनके भय के मारे जातियों और जनता को कैदी बनानेवाला जार स्वयं बन्दी बन गया था, उसे हर वक्त अपने प्राणों का संकट बना रहता था। बहुत सावधानी से रहने पर भी आखिर जार अलेक्सांद्र द्वितीय को 1881 ई. में क्रांतिकारियों के बम का शिकार होना पड़ा। पर एक जार के मरने से क्या होता है ? क्या प्राणों के डर के मारे कभी राजगद्दियाँ सूनी हुई हैं ! जार मरा, लेकिन जारशाही और भी बर्बर तथा निष्ठुर बनकर दोनों हाथों से खून की होली खेलती रही।

1860 वाली शताब्दी में जार ने आँख पोंछने के लिए कुछ सुधार लागू किये थे। उसने कुछ लोगों को वोट और निर्वाचन के आधार पर कुछ छोटी-मोटी स्थानीय संस्थाएँ स्वीकृत की थीं। पर अब उन सुधारों को भी खत्म कर दिया गया। जिला-बोर्ड जैसी स्थानीय संस्थाओं को अब जेम्स्की नचाल्निक (बोर्ड संचालक) के पूरी तरह आधीन कर दिया गया और सामंतों में सबसे प्रतिक्रियावादी को संचालक नियुक्त किया जाने लगा। अखबार भी जारशाही के कोप के भाजन हुए। उनको भी रात-दिन उसी तरह के अनुभव होने लगे जैसे कि

हमारे देश के अखबारों को वर्तमान शताब्दी में हुए। खुलकर कोई बात लिखना तो दूर, शासन की छोटी-मोटी आलोचना भी वे नहीं कर सकते थे। उनपर सेंसर बैठाया जाता, जमानतें ली जातीं, सम्पादकों और लेखकों को जरा-जरा सी बात पर मुकदमा चलाकर जेल भेज दिया जाता और आर्थिक दण्ड की नंगी तलवार तो हर वक्त इस तरह लटकती रहती कि जमानत ही नहीं, प्रेस के भी जब्त होने का डर रहता। क्रान्तिकारियों के ही नहीं, रूसी कमकरों, किसानों तथा पराजित जातियों के ऊपर भी आये दिन घृणित अत्याचार होते थे। उस समय के उदारवादी, हमारे यहाँ के उदार-दलवालों की तरह ही, अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता के नाम पर शासकों के सामने पूँछ हिलाना और उनके जूते चाटना अपना परम धर्म समझते थे। इस अमानुषिक क्रूर शासन के विरुद्ध जबान हिलाने की हिम्मत उनमें नहीं थी। शुक्र है कि इन विभीषणों का रूस में अब यदि कहीं कोई नाम लेता है तो उनपर थूकते हुए ही, जबकि हमारे यहाँ के अंग्रेजों के जूते चाटनेवाले आज भी देशभक्त बनाये जा रहे हैं, उनके नाम पर दिल्ली में बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी की जा रही हैं, और पुराने देशद्रोही, गन्दे पनाले के कीड़े, आज के शासकों की छत्रछाया में हमारे सामने जनतांत्रिकता के बारे में रेडियो पर उपदेश देने की हिम्मत करते हैं।

व्लादिमिर बचपन में ही सयाने हो गये थे। वह अपने आस-पास की हरेक घटना को जिस तरह बड़े ध्यान से सुनते, उसी तरह अपने बड़ों की राजनीतिक और सरकारी अत्याचार की बातचीत को भी कान लगाकर सुनते। इन बातों को पहले वह कानों से पीते रहे, फिर उनकी पिपासा इतनी बढ़ी कि क्रांतिकारी जनतांत्रिक लेखकों की जो भी पुस्तक मिलती, उसे ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ते। अभी व्लादिमिर 14 या 15 वर्ष ही के थे, जबकि उन्होंने चेर्नीशेव्स्की के उपन्यास 'क्या करना है' को पढ़ा, जिसका उनके ऊपर बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। कवि नेक्रासोफ के युग के जनतंत्रवादी कवियों की कृतियों से वह इसी समय परिचित हो गये। पुस्तकों से भी बड़ी, एक सजीव, प्रभाव डालनेवाली चीज उनके घर में उनके अपने बड़े भाई अलेक्सान्द्र के रूप में मौजूद थी। व्लादिमिर को अपने भाई से असाधारण प्रेम था। आदर्श के पीछे पागल आलेक्सान्द्र अपने होनहार छोटे भाई में हर तरह से अपने भावों को भरने की कोशिश करते थे। अलेक्सान्द्र विद्या ही में आगे बढ़े हुए नहीं थे; आत्मानुशासन, विचारशीलता, गम्भीर मनोवृत्ति तथा कर्तव्य के प्रति तन्मयता जैसे गुण भी उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वह राजधानी पीतरबुर्ग की युनिवर्सिटी में गणित और भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी थे। गर्मियों की छुट्टियाँ वह घर आकर विताते थे। 1885 और 1886 ई. की छुट्टियों में वह अपने साथ मार्क्स की प्रसिद्ध रचना 'कपिताल' (पूँजी) को लेते आये थे। भाई की इस तरह की सौगातों को व्लादिमिर अधिक पसन्द करते थे। उस समय वह पन्द्रह-सोलह साल के ही थे, जब उन्होंने मार्क्स के इस अत्यन्त गम्भीर और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ को पढ़ना शुरू किया। लेनिन असाधारण प्रतिभा के साथ-साथ असाधारण हृदय के भी धनी थे। मानवता मनुष्य को उदार-चरित्र बनाती है; उसकी चरम परिणति दुखियों तथा उत्पीड़ितों के लिए आत्मविस्मृति और सर्वस्व त्याग की भावना में होती है। लेनिन के पास ये दोनों धन बहुत भारी परिमाण में थे, इसलिए वह अपने चारों तरफ की अंधेर-नगरी को कैसे चुपचाप देख सकते थे ? वह हाई स्कूल की ऊँची कक्षा के विद्यार्थी ही थे कि इसी समय क्रांति के अंकुर उनके मस्तिष्क में उगने लगे थे। स्कूल के हेड मास्टर ने निबन्ध लिखने को दिया। व्लादिमिर ने जो निबन्ध लिखा, उसे लौटाते हुए हेड मास्टर ने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा—"यह कौन से दलित वर्ग हैं जिनके बारे में तुमने यहाँ लिखा है ? तुम क्यों इस तरह की खुराफ़ात लिखते हो ?"

1887 ई. में सत्रह साल की उम्र में पहुँचते-पहुँचते लेनिन ने अपने सम्पूर्ण जीवन का पथ चुन लिया। वह पथ क्रान्ति का था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इसी समय उनके परिवार पर वज्र गिरा। जार अलेक्सांद्र तृतीय की हत्या के जुर्म में 1 मार्च को आलेक्सान्द्र इलिच उलियानोफ को पीतरबुर्ग में गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें जार की हत्या करने के षड्यंत्र में शामिल होने का दोषी ठहराया गया। व्लादिमिर की सबसे बड़ी बहन अन्ना भी उस समय पीतरबुर्ग में पढ़ रही थीं। उन्हें भी पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

उलियानोफ-परिवार की एक घनिष्ट मित्र व. व. कश्कदमोवा बतलाती हैं कि पीतरबुर्ग में आलेक्सान्द्र की गिरफ्तारी की खबर पाकर मैं सिम्बिर्स्क के हाई स्कूल में बालक व्लादिमिर से मिलने गयी—वह उस समय

स्कूल के अंतिम, आठवें स्टेण्डर्ड (कक्षा) में पढ़ रहा था। उससे सलाह लेनी थी कि इस भीषण समाचार को माँ मारिया आलेक्सान्द्रोव्ना के पास कैसे पहुँचाया जाय। कश्कदमोवा ने व्लादिमिर को पीतरवुर्ग से आया पत्र दिखलाया। पत्र पढ़ लेने के बाद व्लादिमिर देर तक एकदम चुप रहे, क्रोध के मारे उनकी भौंहें एक-दूसरी से मजबूती के साथ सट गयीं। "अब वह मेरे सामने बैठा एक बेपर्वाह उद्दण्ड विद्यार्थी नहीं, वल्कि भीषण समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेवाला वयस्क पुरुष था।" व्लादिमिर ने अन्त में कहा–"यह बड़ी ही गम्भीर बात है। साशा (आलेक्सान्द्र) के लिए इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।"

अन्त में, जैसे भी हो, माँ के पास इस अत्यंत दुःखद समाचार को पहुँचाना ही था। अपने ज्येष्ठ पुत्र को मौत के जबड़े में पड़ा देखकर माता के हृदय में असह्य पीड़ा होनी ही चाहिए थी। लेकिन उसने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता से छाती पर पत्थर रखकर अपने पुत्र के प्राणों को बचाने के लिए सब तरह से कोशिश की। उच्च वर्ग में अपने भी सम्बन्धी और परिचित थे, उनसे लाभ उठाया; लेकिन एक जार को अभी छः ही साल पहले मृत्यु के घाट उतारकर दूसरे जार के प्राण लेने के षड्यंत्र में भाग लेने का संदेह होनेवाले व्यक्ति को कैसे प्राण-भिक्षा दी जा सकती थी? आखिर 8 मई, 1887 को श्लूशेलवुर्ग के किले में आलेक्सान्द्र उलियानोफ को फाँसी के तख्ते पर झुला दिया गया। उलियानोफ-परिवार ने एक आलेक्सान्द्र नहीं, बल्कि अपने सारे पुत्र-पुत्रियों को क्रांति की बलि-वेदी पर चढ़ाने का संकल्प कर लिया। यही इस निष्ठुर हत्या का परिणाम हुआ–जारशाही ही नहीं, बल्कि उसकी जड़ को उखाड़ फेंकना ही उनका संकल्प था, जिसमें व्लादिमिर किस तरह सफल हुए, यह उनकी आगे की जीवनी बतलायेगी।

आलेक्सान्द्र अभी गिरफ्तार ही हुए थे; न उनका अपराध प्रमाणित हुआ था और न उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया था और तभी से तथाकथित उदार समाज के लोग सिम्बिर्स्क में उलियानोफ-परिवार का बायकाट करने लग गये। परिवार के घनिष्ट परिचित भी अब उससे दूर रहने लगे। शिक्षित, संस्कृत, राजनीति के ठेकेदार इन कायरों को व्लादिमिर अपने नंगे रूप में सामने देख रहे थे, और उसी समय से इस वर्ग के प्रति उनके हृदय में अपार घृणा पैदा हो गयी। यह वह वर्ग था जो आदर्शवाद की बातें करता था, जनतंत्र के राग अलापता था, मानवता और मानव-स्वतंत्रता के गीत गाता था। अन्त में उन्हें व्लादिमिर ने इस समय "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" के रूप में एकदम ढोंगी और घृणास्पद देखा।

आलेक्सान्द्र की शहादत व्लादिमिर के भविष्य-पथ को निर्धारित करने में बड़ी सहायक हुई। वह अपने भाई की निर्भयता और वीरता को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और ऐसे वीर सहोदर के प्रति उनका अपना बन्धु-स्नेह पहले से भी अधिक बढ़ गया था। लेकिन आगे के पथ और तत्कालीन परिस्थिति का अब उन्हें काफी ज्ञान था, जिसे प्राप्त करने में उनके शहीद भाई ने भी सहायता दी थी। व्लादिमिर भाई के खून का बदला लेने के लिए अंधे नहीं हो सकते थे। उनकी विद्या, बुद्धि और अनुभव ने अभी से बतला दिया था कि स्वेच्छाचारिता से लड़ने के लिए आतंकवाद का ढंग गलत है। इसके द्वारा उद्देश्य में सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती। व्लादिमिर को जब पहली बार मालूम हुआ था कि आलेक्सान्द्र आतंकवादी संस्था से संबंध रखता है, तो उन्होंने कहा था : "नहीं, हम इस रास्ते पर नहीं चलेंगे। यह रास्ता हमारे अनुसरण करने का नहीं है।"

व्लादिमिर ने स्कूल की पढ़ाई खत्म की। सबसे बड़े इनाम उन्हें मिले और सोने का तमगा प्राप्त हुआ। हाई स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद अब उन्हें किसी युनिवर्सिटी में प्रवेश करना था, किन्तु उससे पहले ही उनके पग राजनीति की ओर बढ़ चुके थे।

राजनीति में प्रवेश–सिम्बिर्स्क से उत्तर में वोल्गा के उसी बाँयें तट पर कजान नगर है, जो किसी समय तातार सल्तनत की राजधानी था, और साथ ही व्यापार का बड़ा केंद्र भी। उन दिनों भी कजान के आस-पास के गाँव अधिकतर तातार लोगों के थे। वहाँ की युनिवर्सिटी कुछ विशेष ख्याति भी रखती थी। व्लादिमिर के शहीद भाई पीतरबुर्ग युनिवर्सिटी के विद्यार्थी न होते तो मुमकिन है कि उनको भी वहीं पढ़ने के लिए जाना पड़ता। जो भी हो, 13 अगस्त, 1887 को व्लादिमिर कानून पढ़ने के लिए कजान युनिवर्सिटी में दाखिल हुए।

भारत की तरह रूस में भी वकील और बैरिस्टर के पेशे को उदार-पेशा कहा जाता था, अर्थात इसमें बिना सरकार पर निर्भर रहे जीविका चलाते हुए विचारों में उदारता रखी जा सकती है। कजान में विद्याध्ययन शुरू करते ही व्लादिमिर ने वहाँ के क्रांतिकारियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया और एक छात्र-मंडली में शामिल हो गये, जिसके बारे में जारशाही खुफिया पुलिस (ओखराना) का लिखना था कि वह "एक अत्यन्त अपकारक मनोभावों वाली संस्था है।" विद्यार्थियों की मण्डली में प्रमुखता हासिल करने में व्लादिमिर को देर नहीं लगी। तरुणों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उनके भीतर बहुत से गुण थे–वह क्रांतिकारी थे, कर्मठ और सुपठित थे, और अपने विचारों को बड़ी दृढ़ता और विश्वास के साथ प्रकट कर सकते थे। शहीद आलेक्सान्द्र के भाई और इस तरह के विचार रखनेवाले तरुण को पुलिस कैसे छोड़ सकती थी ? सदा खुफिया पुलिस की निगाह उनके पीछे लगी रहती थी। जारशाही को समझने में हाल ही में अंग्रेजशाही से बाहर निकले हम भारतीयों को कठिनाई नहीं हो सकती। यहीं की तरह वहाँ भी प्रोफेसर होने के लिए विद्या से भी अधिक चापलूसी, खुशामद और विश्वासघात में प्रवीण होने का गुण चाहिए था। ये जारशाही कुत्ते पुलिस से कम क्रांतिकारियों के पीछे नहीं पड़े रहते थे। विद्यार्थियों की हरेक गतिविधि को जारशाही गुर्गे देखा करते। जब संदेह पैदा करने में ही रोटी मिलती और तरक्की होती हो, तो सभी बातों में षड्यंत्र ढूँढ़ निकालने की कोशिश क्यों न की जाती ? विद्यार्थियों की मण्डलियाँ और सभाएँ ही नहीं, बल्कि उनकी पारस्परिक सहायता-सभाएँ भी राजद्रोह का बीजस्थान समझी जाती थीं। जो कोई विद्यार्थी सरकार के विरोध में अपना मत प्रकट करता, उसे काल-कोठरी में बन्द करने के लिए युनिवर्सिटी में ही कोठरियाँ बनी हुई थीं। जब जौ के साथ अधिक परिमाण में घुन पिस जाते हों, तो फिर पुलिस के प्रति विद्यार्थियों की घृणा क्यों न अधिक बढ़ जाती ? 1887 ई. में विद्यार्थियों में इस सवाल पर विक्षोभ पैदा हुआ कि '1884 ई. के युनिवर्सिटी नियमों' को वहाँ क्यों लागू किया गया था। नवम्बर, 1887 के अंत में मास्को युनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों ने उथल-पुथल मचायी, जो जल्दी ही दूसरी युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों में भी फैल गयी। 4 सितम्बर, 1887 को कजान युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों ने तूफान मचा दिया। अधिकारियों के दमन के विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए विद्यार्थियों की जो कान्फरेंसें हुई थीं, उनमें व्लादिमिर ने सक्रिय भाग लिया था और प्रदर्शन में भी वह शामिल हुए थे। अधिकारियों ने तुरंत उनके खिलाफ जबर्दस्त कार्रवाई की और उसी रात व्लादिमिर अपने वासे पर गिरफ्तार कर लिये गये। उसी तरह क्रांतिकारी छात्र-आंदोलन के कितने ही मेम्बर और संगठनकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये।

पुलिस के कांस्टेबल सत्रह वर्ष के इस तरुण व्लादिमिर को पकड़े हुए जेल की ओर ले जा रहे थे। शायद उनकी समझ में नहीं आता था कि यह क्यों ऐसा पागलपन करता है। कांस्टेबल ने व्लादिमिर से पूछा–"नौजवान, क्यों तुम इस तरह की आफतें मोल ले रहे हो ? क्या तुम नहीं देखते कि तुम दीवार से सर टकराना चाहते हो ?" व्लादिमिर ने जवाब दिया : "दीवार है ! हाँ, लेकिन नोना लगी हुई; इसे जरा-सा धक्का देने की जरूरत है और यह धराशायी हो जायगी।"

जेल में क्रांतिकारी विचारोंवाले कितने ही विद्यार्थी जमा हो गये थे। इस समय उन्हें विचार-विनिमय का और भी अच्छा अवसर मिला। वह इस बात पर वार्तालाप किया करते थे कि छूटने के बाद उन्हें क्या करना चाहिए। एक ने व्लादिमिर से पूछा : "अच्छा उलियानोफ, तुम क्या करना चाहते हो ?" व्लादिमिर का सीधा-सादा जवाब था कि उनके सामने बस एक ही रास्ता है, और वह है क्रांतिकारी संघर्ष का रास्ता।

जारशाही मुकदमा चलाकर व्लादिमिर को सजा न दे सकी। लेकिन, 5 दिसम्बर, 1887 को उन्हें युनिवर्सिटी से निकाल दिया गया और दो दिन बाद कजान गुबर्निया (प्रदेश) के कोकुशकिनो गाँव में भेज उन्हें खुफिया पुलिस की देखरेख में नजरबन्द कर दिया गया। व्लादिमिर की बहन अन्ना को गिरफ्तारी के बाद साइबेरिया में निर्वासन की सजा मिली थी, लेकिन पीछे उन्हें भी पुलिस की देखरेख में नजरबन्द कर दिया गया। कोकुशकिनो में अब दोनों बहन-भाई साथ नजरबन्द थे। इस तरह सत्रह वर्ष की उम्र में व्लादिमिर को क्रान्ति की दीक्षा मिली। तब से उनका आगे का सारा जीवन स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध और पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने में बीता।

3
क्रांति-दीक्षा (1887-93 ई.)

1. पहली नजरबंदी

ओखराना (खुफिया पुलिस) ने व्लादिमिर के क्रान्तिकारी जीवन के आरम्भ में ही उनके बारे में जो राय कायम की थी, वह गलत नहीं थी। पुलिस ने कजान के गर्वनर के पास कोकुशकिनो के नजरबन्द व्लादिमिर के बारे में लिखा था : "इसने कजान के क्रान्तिकारी छात्र-तरुणों के संगठन में सक्रिय भाग लिया है।" उसमें व्लादिमिर अब सक्रिय भाग न ले सकें, इसलिए उन्हें विद्यार्थियों से अलग तथा अध्ययन से वंचित करके यहाँ नजरबंद कर दिया गया था। 27 दिसंबर, 1887 ई. से खुफिया पुलिस सादे कपड़ों में बराबर उनके ऊपर निगाह रखती। यही नहीं, वह सारे उलियानोफ-परिवार की गतिविधि को देखा करती। व्लादिमिर की एक-एक बात की रिपोर्ट पुलिस-विभाग के पास जाती। इस छोटे-से गाँव में व्लादिमिर ने करीब एक वर्ष विताया। यद्यपि युनिवर्सिटी की परीक्षाओं से वह वंचित थे, लेकिन उन्होंने स्वयं अपने अध्ययन को बड़ी मेहनत के साथ जारी रखा। अभी से उनको पढ़ने-लिखने की बान लग गयी थी।

अध्ययन और काम—सालभर बाद, 1888 के अक्तूबर के आरम्भ में, व्लादिमिर को कजान लौटने की आज्ञा मिल गयी। उस समय उनकी माँ अपने छोटे बच्चों के साथ वहीं रहा करती थीं। परिवार में लौटने की इजाजत देने के बाद भी युनिवर्सिटी में दाखिल होने की इजाजत व्लादिमिर को नहीं मिली। व्लादिमिर ने देश से बाहर जाकर शिक्षा प्राप्त करने की इजाजत पाने के लिए अर्जी दी। लेकिन जारशाही पुलिस-विभाग ने कजान के गवर्नर को हुक्म दिया : "उसे विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट मत देना।"

कजान में युनिवर्सिटी का दरवाजा व्लादिमिर के लिए बन्द था। लेकिन, क्रांति का दरवाजा बंद करना जारशाही की शक्ति के बाहर था। व्लादिमिर ने वहाँ रहते भिन्न-भिन्न गैर-कानूनी क्रांतिकारी मंडलियों के सदस्यों से परिचय प्राप्त किया। इन मंडलियों में मार्क्स की कृतियाँ (मूल या अनुवाद) पढ़ी जाती थीं। नरोद्निकों (परोद्नाया वोल्या पार्टीवालों) के विचारों के खण्डन के रूप में लिखी गयी प्लेखानोफ की पुस्तकें भी, विशेषकर 'हमारे मतभेद' पढ़ी जातीं और उनपर गर्मागरम बहस होती। व्लादिमिर भी इनमें भाग लेते। पुलिस उसका पीछा किये रहती थी। अपनी एक रिपोर्ट में पुलिस ने लिखा था : "वह खराब रास्ते पर चल रहा है, उसका संबंध संदिग्ध आदमियों से है।"

1888 ई. की शरद में (अठारह वर्ष की उमर में) लेनिन ने मार्क्स की पुस्तक 'कपिताल' का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया। पूँजी की रहस्यमय लीला को वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा नंगा करके रख देनेवाले इस ग्रन्थरत्न ने व्लादिमिर पर भारी प्रभाव डाला, यही कहना पर्याप्त नहीं होगा; उसने तो लेनिन का मानसिक कायाकल्प कर दिया। अन्ना ने अपने संस्मरण में लिखा है :

> "वह बड़े उत्साह और भक्ति-प्रवणता के साथ मुझसे मार्क्स के मौलिक सिद्धान्तों तथा उनके द्वारा खोले गये नवीन क्षितिज (संसार) की बातें करते। ··· मालूम होता था कि दृढ़ विश्वास उनके अन्तस्तल तक व्यापा हुआ था, जिससे वह अपने श्रोताओं को भी प्रभावित कर देते थे। उस समय भी उन तथ्यों के बारे में वह अच्छी तरह से बोल सकते थे, जिनपर कि उनका विश्वास था और जिन्हें उन्होंने अपना लिया था। उस समय भी कोई नयी चीज पढ़ने तथा नया रास्ता ढूँढ़ लेने के बाद जो प्रोत्साहन उन्हें मिलता, उसमें दूसरों को भागीदार बनाने से वह अपने को रोक नहीं सकते थे और न अनुयायियों को प्राप्त करने की कोशिश से बाज आते थे। बहुत जल्दी ही उन्हें कजान के क्रांतिकारी विचारवाले तरुणों में ऐसे अनुयायी मिल गये जो मार्क्सवाद का अध्ययन करते थे।"

व्लादिमिर कजान की एक ऐसी क्रांतिकारी मार्क्सवादी मंडली में शामिल हो गये थे, जिसका संगठन

न. ई. फेदोसेयेफ ने किया था। साइबेरिया में निर्वासित जीवन बिताते समय 1898 में इस क्रांतिकारी तरुण की बड़ी शोकजनक मृत्यु हुई। फेदोसेयेफ की मंडली में शामिल होने पर महीनों व्लादिमिर ने बड़ी गम्भीरता से मार्क्सवाद को पूरी तरह समझने की कोशिश की।

उस समय रूस में मार्क्सवाद का प्रवेश हो ही रहा था। अभी उसकी कोई परम्परा नहीं बन सकी थी। वहाँ नरोद्निकों की तूती बोल रही थी, और बम, कालीमाई तथा गीता जैसे हथियार उनके भी हाथ में थे। वे इन्हीं को रूस की पवित्र भूमि की अपनी चीज मानते थे और मार्क्सवाद को परदेशी माल बतलाते थे। उस समय की अवस्था के बारे में व्लादिमिर ने लिखा था :

> "बहुतों ने नरोद्नाया वोल्या के अनुसार अपना क्रांतिकारी चिन्तन का जीवन आरम्भ किया। उनमें से करीब-करीब सभी अपनी तरुणाई में आतंकवादी वीरों की बड़े उत्साह के साथ पूजा करते थे। इन वीरतापूर्ण परम्पराओं के आकर्षक प्रभावों से पिण्ड छुड़ाना—जिसके लिए उन लोगों से वैयक्तिक संबंध भी तोड़ना पड़ता जो नरोद्नाया वोल्या के भक्त रहने का निश्चय किये हुए थे—और उनके साथ सम्बन्ध-विच्छेद करना बड़े मानसिक कष्ट की बात थी। नरोद्निकों के प्रति तरुण सामाजिक-जनवादियों के मन में भारी सम्मान भी था। संघर्ष ने उन्हें मजबूर किया कि वे अपने आपको शिक्षित करें, तथा सभी विचारों के गैर-कानूनी साहित्य का पाठ करें।..."

अभी रूस में मार्क्सवाद के अनुयायी अत्यंत कम थे। व्लादिमिर उन्हीं में से एक थे। उनकी पैनी दृष्टि ने तरुणाई में ही अच्छी तरह समझ लिया कि नरोद्वाद गलत रास्ते पर है और जारशाही से लड़ने के लिए आतंकवादी तरीका व्यर्थ ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी है। व्लादिमिर की बुद्धि जितनी तीव्र थी, उनकी जिज्ञासा भी उतनी ही बलवती थी। हरेक चीज को वह भावुकता से नहीं, बल्कि गम्भीरता से विचार और विश्लेषण करके समझने की कोशिश करते थे। उनकी कसौटी पर मार्क्सवाद खरा उतरा। उन्हें विश्वास हो गया कि वर्तमान राजनीतिक स्वेच्छाचार और जनसाधारण के पाशविक शोषण की वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष में निश्चित सफलता प्राप्त करने का जबर्दस्त साधन मार्क्सवाद है। जितना ही उनका अध्ययन और चिन्तन अधिक व्यापक और गम्भीर होता जाता, उतनी ही व्लादिमिर की यह धारणा और पक्की होती जाती थी। व्लादिमिर को मालूम हो रहा था कि जिस चीज को वह अपने प्राणपन से ढूँढ़ पाने की कोशिश कर रहे थे, मार्क्सवाद के रूप में वही उन्हें मिल गयी।

कजान में क्रांतिकारी कार्रवाइयों को बढ़ते देख जार की पुलिस परेशान थी। उसने इसका सबसे बड़ा कारण फेदोसेयेफ को समझा और उसे जुलाई, 1889 में गिरफ्तार कर लिया। व्लादिमिर जिस मंडल में सम्मिलित थे उसका भी पुलिस को पता लग गया और उसके मेम्बरों को भी गिरफ्तार कर लिया गया। सौभाग्य से व्लादिमिर उस समय गिरफ्तार होने से बच गये। इसमें शक नहीं, यदि वह इस समय गिरफ्तार हुए होते, तो पहली गिरफ्तारी से यह कहीं बुरी साबित होती। गिरफ्तारी न होने का कारण उनका उस समय कजान में न रहना था। गिरफ्तारी के दो महीने पहले, 3 मई 1889 को, व्लादिमिर अपने परिवार के साथ समारा गुबेर्निया में रहने चले गये थे। पहले, परिवारवाले समारा से 50 वर्स्त (करीब 34 मील) दूर के एक गाँव अलकयेव्का के पास के एक फार्म में रहे, फिर 1889 ई. की शरद में वे समारा नगर चले गये। यहाँ पर भी पुलिस व्लादिमिर और उनके सारे परिवार पर पूरी तरह से देख-रेख रखती थी।

समारा में पहुँचते समय अब व्लादिमिर पक्के मार्क्सवादी हो चुके थे।

उन दिनों समारा नरोद्निकों का गढ़ था। उस समय के पुलिस के कागज-पत्रों को देखने से मालूम होता है कि समारा में नजरबन्द या पुलिस की देख-रेख में रहनेवाले निर्वासितों की संख्या 40 के करीब थी, जो नरोद्वाद के अनुयायी तथा मार्क्सवाद के विरोधी थे। वे सामाजिक विकास के नियमों को नहीं समझ पाते थे। यही विचारधारा वहाँ सभी क्रांतिकारियों में देखी जाती थी। नरोद्निकों का कहना था—और वैसा कहनेवाले आज 1955 ई. में भी हमारे भारत में बहुत अधिक मिलेंगे—कि पूँजीवाद रूस में एक 'आकस्मिक' चीज है, वह रूस की पवित्र भूमि में पनप नहीं सकता। रूस की भूमि ऐसी है, जिसमें यह विदेशी पौधा जड़ नहीं जमा सकता।

पूँजीवाद के बारे में ऐसा रुख रखनेवाले क्रांतिकारी, आंदोलन में कमकर वर्ग के महत्त्व को भी नहीं समझ सकते थे। इसलिए, वे जिस समाजवाद या समता के सिद्धांत को स्थापित करना चाहते थे, उसके कमकरों द्वारा नहीं, बल्कि ग्राम-पंचायतों द्वारा स्थापित होने की आशा करते थे। हमारे यहाँ भारत में तो आज कम्युनिस्टों को छोड़कर प्रायः बाकी सभी राजनीतिक दल इसी औषधि को रामवाण समझते हैं। कहीं आचार्य भावे अपना आचार्यत्व भूदान यज्ञ से इसी क्षेत्र में दिखला रहे हैं और कहीं दूसरे सर्वोदयी महारथी आकाश में अन्धाधुन्ध इसी लक्ष्य की ओर तीर चला रहे हैं।

समारा में व्लादिमिर के आने के समय क्रांतिकारी विचारधारावाले तरुणों के कितने ही चक्र थे, जिनमें से अ. प. सकल्यारेंको द्वारा संचालित चक्र अधिक प्रमुख था। इस चक्र में ऐतिहासिक, अर्थशास्त्र संबंधी और दार्शनिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता था। किसानों के सवाल पर भी विचार-विनिमय होता। वैसे नरोद्निक विचारधारा ही का अनुसरण यहाँ भी अधिकतर होता था। सकल्यारेंको का सम्बन्ध कमकरों से, विशेषकर रेलवे-मजदूरों से था। व्लादिमिर ने वहाँ पहुँचकर अपने विचारों को प्रकट करना शुरू किया, तो उनका प्रभाव पड़ना शुरू हुआ और जल्दी ही सकल्यारेंको ने नरोद्निक विचारधारा को छोड़कर मार्क्सवाद को अपना लिया। सकल्यारेंको के चक्र तथा क्रांतिकारी तरुणों के दूसरे गुप्त-चक्रों में भी व्लादिमिर मार्क्सवाद पर लेख पढ़ते। उन्होंने वहीं प्रसिद्ध नरोद्निक लेखक व. व. (व. प. वोरोन्तसोफ) की पुस्तक 'रूस में पूँजीवाद का भविष्य' की आलोचना करते हुए एक लेख पढ़ा। एक अन्य लेख में व्लादिमिर ने नरोद्निक मिखाइलोव्स्की और यूझाकोफ के ग्रन्थों की आलोचना की। नरोद्निक निकोलाईऑन (न. फ. दनिएलसन) की पुस्तक 'पश्चात-सुधार' के बाद 'हमारे सामाजिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा' की भी खबर व्लादिमिर ने अपने एक लेख में ली। यहीं उन्होंने मार्क्स के 'दर्शन की दरिद्रता' पर एक अच्छा लेख पढ़ा। उनके इन लेखों, भाषणों और वाद-विवाद की शक्ति को देखकर उसी समय लोग इस उन्नीस-बीस वर्ष के तरुण के ज्ञान-गाम्भीर्य पर आश्चर्य करते थे। चक्रों के मेम्बर अपने पत्रों में लिखा करते थे कि समारा में आजकल पुलिस की निगरानी में रहनेवाला नजरबन्द उलियानोफ नाम का विद्यार्थी विद्या और बुद्धि में बड़ा ही चमत्कारिक पुरुष है।

समारा में रहते समय व्लादिमिर मार्क्स और एंगेल्स की पुस्तकों के अध्ययन में पूरी तरह डूब गये। अभी तक उनके बहुत कम ग्रन्थ ही रूसी भाषा में अनुवादित हुए थे, लेकिन व्लादिमिर ने जर्मन और फ्रेंच भाषाओं को यों ही नहीं पढ़ा था। वह उन भाषाओं में भी मार्क्स और एंगेल्स की पुस्तकें किसी तरह प्राप्त करके उन्हें पढ़ते। व्लादिमिर ने इसी समय 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का रूसी में अनुवाद किया, जो हस्तलिखित रूप में समारा के अध्ययन-चक्रों में पढ़ा जाता था। एक बार पुलिस ने धावा बोला तो इस अनुवाद को नष्ट कर देना पड़ा।

मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों को पढ़ने के अतिरिक्त व्लादिमिर रूस के क्रांतिकारी इतिहास का भी बड़ी गम्भीरता से अध्ययन करते और उसके बारे में समारा में नजरबन्द नरोद्नाया-वोल्या के अत्यंत प्रमुख सदस्यों से वहस भी करते। वह मार्क्सवाद के पक्षपाती थे, लेकिन मार्क्सीय सिद्धांतों के किताबी पांडित्य को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते थे। वह मार्क्सवाद को एक निर्जीव मतवाद नहीं बल्कि एक सजीव वैज्ञानिक सत्य, क्रांतिकारी काम के लिए सजीव पथ-प्रदर्शक समझते थे।

बीस वर्ष की उम्र थी, जबकि मार्क्सवाद का प्रचार करते हुए व्लादिमिर ने रूस के आर्थिक और राजनीतिक विकास का पूरी तरह अध्ययन करना शुरू किया। उन्होंने नरोद्निकों के आर्थिक अनुसंधानों का पूरी तौर से अवगाहन किया। नरोद्निकों ने जिस तथ्यभूत सामग्री के आधार पर अपने गलत निष्कर्ष निकाले थे, उसका फिर से मूल से मिलाकर, स्वतंत्रतापूर्वक परीक्षण किया। स्थानीय संस्थाओं (जेम्स्त्वों) में तथा दूसरी जगह रूस की आर्थिक स्थिति के जो आँकड़े मिल सकते थे, उनका उन्होंने बड़े ध्यान से अध्ययन किया। उनके बारे में उन्होंने उसी समय लिखा था, "यह विस्तृत किसानों की आर्थिक अवस्था सम्बन्धी ज्ञान-सामग्री बड़े विशाल परिमाण में प्रदान करती है।"

किसानी जीवन के सैद्धांतिक पहलू का अध्ययन करते हुए व्लादिमिर ने किसानों के जीवन के साथ प्रत्यक्ष

सम्बन्ध स्थापित करके जो व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किया था, उससे उन्होंने अपने हरेक विचार की परीक्षा की। गर्मियों (हमारे यहाँ की गर्मी और बरसात) के पाँच मौसमों (1889-93 ई.) को उन्होंने बराबर अलकयेव्का गाँव में बिताया जहाँ उनको किसानों के साथ बहुत घनिष्ट सम्पर्क का मौका मिला। उनके कहने पर सकल्यारेंको ने समारा उयेज्द (जिला) के तीन वोलोस्तों (तहसीलों) के आँकड़ों को जमा किया। इसके लिए प्रश्नावली व्लादिमिर ने स्वयं तैयार की थी।

'किसानी जीवन में नया आर्थिक परिवर्तन' –बड़ी गम्भीरतापूर्वक और सावधानी के साथ रूसी इतिहास का अध्ययन करने के बाद व्लादिमिर ने इस अत्यन्त सुन्दर निबन्ध को 1893 ई. के वसन्त में लिखा। व्लादिमिर की सुरक्षित कृतियों में यह सबसे पुरानी है। निबन्ध में व्लादिमिर ने व. व. पोस्तनिकोफ की पुस्तक 'दक्षिणी रूस की किसानी व्यवस्था' की गम्भीर आलोचना की है। पोस्तनिकोफ ने जेम्स्त्वों में जमा किये आँकड़ों तथा एकातेरिनोस्लाव, खेरसौन और तोरिदाकी गुवर्नियों में स्वयं अनुसन्धान करके अपनी पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक की व्लादिमिर भी तारीफ करने के लिए तैयार थे। इसमें लेखक ने आँकड़ों के आधार पर साबित किया था कि रूसी किसानों में फर्क बढ़ता जा रहा है। पर अन्त में उसने उदार-नरोद्निक निष्कर्ष निकाले थे। इनका व्लादिमिर ने खण्डन किया। उस आरम्भिक समय में भी तरुण व्लादिमिर मार्क्सवादी विश्लेषण-शैली का कितनी सफलता के साथ नये क्षेत्र में उपयोग कर सकते थे, इस किताब से इसका भलीभाँति पता चल जाता है। तत्कालीन पत्र-व्यवहार में व्लादिमिर ने अपने इस निबन्ध द्वारा निम्न निष्कर्ष निकाले थे :

> "जिन प्रस्तावों का विवेचन यहाँ किया गया है, और उनके आधार पर निबन्ध में जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, उनसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अधिक दूरव्यापी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मुझे मालूम होता है कि हमारे छोटे-छोटे उत्पादकों (किसानों और गाँव के हस्त-शिल्पियों) के बीच जो विघटन की प्रक्रिया चल रही है, वह एक ऐसा मौलिक तथ्य है जो इस देश में शहरी तथा बड़े पैमाने के पूँजीवाद की व्याख्या करता है। वह इस असत्य को छिन्न-भिन्न कर देता है कि किसानी व्यवस्था एक अपवादभूत आर्थिक व्यवस्था है (वस्तुतः वह पूँजीवादी व्यवस्था का अंश है; हाँ, वह सामन्तवादी बेड़ियों से अधिक जकड़ी हुई है)। और वह हमें यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि वह तथाकथित श्रमिक समुदाय··· उस विशाल किसान जनता का ऊपरी स्तर है, जो कि अभी ही किसानों की अपेक्षा अपनी श्रम-शक्ति को बेचकर जीविका प्राप्त करती है।"

व्लादिमिर अपने निबन्ध को उदार-नरोद्निकों की किसी कानूनी पत्रिका में छपाना चाहते थे। लेकिन, नरोद्वाद का खण्डन होने से सम्पादकों ने उसे छापने से इन्कार कर दिया। तीस वर्ष तक यह निबन्ध यों ही पड़ा रहा और 1923 ई. में ही प्रकाशित हो सका।

2. कानून का अध्ययन

1889 ई. की शरद में व्लादिमिर ने सरकार से कानूनी परीक्षा के लिए किसी कालेज में पढ़ने की आज्ञा माँगी। इस अर्जी के हाशिये पर जारशाही शिक्षा मन्त्री देल्यानोफ ने लिखा था : "पुलिस विभाग और बड़े अफसर इसके बारे में जाँच-पड़ताल करें।" जवाब में पुलिस-विभाग के मुख्य अफसर दुर्नोवो ने लिखा था : "कजान में रहने के समय उलियानोफ का सम्बन्ध राजनीतिक तौर से अविश्वसनीय व्यक्तियों के साथ देखा गया, जिनमें से कुछ के विरुद्ध राज्य के खिलाफ जुर्म करने का अभियोग चल रहा है।" व्लादिमिर की अर्जी खारिज कर दी गयी। "राजनीतिक तौर से अविश्वसनीय" कहकर जार की सरकार ने व्लादिमिर के लिए युनिवर्सिटी का दरवाजा बन्द कर दिया। बहुत कोशिश करने पर 1890 ई. के वसन्त में उन्हें पीतरबुर्ग युनिवर्सिटी में कानून की परीक्षा देने की इजाजत मिली।

पीतरबुर्ग में अध्ययन (1890 ई.)–1890 ई. के अगस्त के अन्त में परीक्षा के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए व्लादिमिर पीतरबुर्ग गये। फिर, समारा लौटकर उन्होंने परीक्षा के लिए तैयारी शुरू की। मार्क्सवाद का अध्ययन भी उनका पहले ही की तरह जारी रहा।

युनिवर्सिटी में कानून की पढ़ाई चार साल की थी, जिसे बीस वर्ष के व्लादिमिर एक वर्ष में खतम करना चाहते थे—और सो भी किसी गुरु-गड़ेरिये के पास जाकर नहीं, बल्कि अपने-आप ही पढ़कर। परीक्षा-बोर्ड के पास आवेदन-पत्र के साथ फौजदारी कानून पर एक निबन्ध और परीक्षा के विषय पर भी एक निबन्ध लिखकर भेजना जरूरी था। परीक्षा के विषय थे : रोमी-कानून, दीवानी-कानून, फौजदारी-कानून, व्यापारिक-कानून और उनके विधान-शास्त्रों एवं रूसी कानून का इतिहास, धर्मशास्त्रीय-कानून, संवैधानिक-कानून, पुलिस-कानून, राजनीतिक-अर्थशास्त्र, आँकड़ा-शास्त्र, वित्तीय-कानून, साधारण-कानून और कानून-दर्शन का इतिहास। इसके लिए भारी परिमाण में तत्सम्बन्धी साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना था। व्लादिमिर ने किस तरह तैयारी की, इसके बारे में उनकी बहन अन्ना ने अपने संस्मरण में लिखा था :

> "उस समय यह बात सुनकर लोगों को बहुत आश्चर्य होता था कि युनिवर्सिटी से निष्कासित होने पर भी एक साल के भीतर, बाहरी सहायता एवं वार्षिक या अर्ध-वार्षिक किसी भी परीक्षा को पास किये बिना, व्लादिमिर ने इतनी अच्छी तरह तैयारी की कि वह अच्छी श्रेणी में परीक्षा पास करने में सफल हुए। इस सफलता का कारण था, उनकी अद्भुत प्रतिभा और काम करने की जवर्दस्त क्षमता।"

व्लादिमिर ने जाड़ों में समारा में और गर्मियों में अलकयेव्का के अपने फार्म में रहकर अनथक परिश्रम किया। उनकी बहन अन्ना ने अलकयेव्का के अध्ययन के बारे में लिखा था :

> "उन्होंने अपने अध्ययन के लिए नींबू के वृक्षों के एक घने झुरमुट के बीच एक एकांत अध्ययन-स्थान बनाया।... प्रतिदिन नाश्ते के बाद बगल में कितनी ही पोथियों को दबाये वह ऐसी समय की पाबंदी के साथ जाते, मानो कोई कठोर अध्यापक कक्षा में उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। वहाँ पूरी तौर से अलग-थलग रहकर भोजन के समय—3 बजे—तक पढ़ने में लगे रहते। उनके काम में बाधा पड़ने के डर से हममें से कोई उस झुरमुट में नहीं जाता। सवेरे की पढ़ाई खतम करने के बाद भोजनोपरान्त वह फिर सामाजिक विषय की किसी पुस्तक को ले उसी कोने में लौट जाते। मैंने उन्हें जर्मन भाषा में एंगेल्स की पुस्तक 'इंगलैंड में मजूदर वर्ग की स्थिति' पढ़ते देखा। उसके बाद थोड़ा टहलने के लिए जाते, फिर नहाते और तदनन्तर ब्यालू करके वलोद्या (व्लादिमिर) फिर किसी पुस्तक पर डट जाते।"

व्लादिमिर ने पीतरबुर्ग युनिवर्सिटी से 1891 ई. के वसन्त और शरद् के दो सत्रों में बड़े सम्मान के साथ अपनी परीक्षा पास की। परीक्षा में 33 विद्यार्थी बैठे थे, जिनमें सभी विषयों में सबसे अधिक नम्बर व्लादिमिर को मिले थे। कानून-फैकल्टी के परीक्षा-बोर्ड ने उन्हें प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र प्रदान किया।

व्लादिमिर जिस समय वसन्त में परीक्षा दे रहे थे, उसी समय उनके लिए एक दूसरी हृदयवेधी घटना घटी। उनकी छोटी बहन ओल्गा, जो कि पीतरबुर्ग में उच्च-शिक्षा की छात्रा थी, टायफाइड (मोतीझारा) से मर गयी। व्लादिमिर अपने से अठारह महीने छोटी ओल्गा को बहुत प्यार करते थे। बहन के मरने के थोड़े ही पहले उन्होंने अपनी माँ को पीतरबुर्ग बुला लिया था। बहन के मरने के बाद माँ-बेटे साथ ही समारा लौटे। राजधानी में जिस वक्त व्लादिमिर परीक्षा के लिए गये थे, उस समय उन्होंने कितने ही मार्क्सवादियों से मुलाकात की और उनसे रूसी तथा जर्मन भाषा में मार्क्सवादी साहित्य की कितनी ही पुस्तकें प्राप्त कीं जिन्हें वह अपने साथ समारा ले गये।

समारा में वैरिस्टरी (1892-93 ई.)—जनवरी 1892 ई. में व्लादिमिर का नाम बैरिस्टरों की सूची में दर्ज हुआ। मार्च से वह वकालत में प्रैक्टिस करने लगे। उनके मुवक्किल रूसी तथा तातार गरीब किसान ही अधिक थे, जो कि उस समय वोल्गा-उपत्यका में पड़े अकाल से बहुत पीड़ित थे। उन्हें जो पहला मुवक्किल मिला था, उसपर दोष लगाया गया था : "भगवान, पवित्र कुमारी, पवित्र त्रिमूर्ति, परम भट्टारक सम्राट और उनके उत्तराधिकारी के प्रति इसने यह कहकर निन्दा के शब्द निकाले थे कि परम भट्टारक न्याय के साथ शासन नहीं करते।" यद्यपि अब व्लादिमिर वैरिस्टर थे, वह कानून की प्रैक्टिस करते थे, लेकिन तो भी वह अपने गम्भीर सैद्धांतिक अध्ययन को लगातार जारी रखे हुए थे और मार्क्सीय सामाजिक-जनवादी अध्ययन-चक्र को चलाते भिन्न-भिन्न विषयों पर लेख लिखकर पढ़ते रहते थे।

व्लादिमिर समारा में चार वर्ष से कुछ अधिक रहे। यहीं उनका मार्क्सीय दृष्टिकोण परिपक्व अवस्था में पहुँचा, और यहीं उन्होंने नरोद्निकों के खिलाफ पहली लड़ाइयाँ लड़ीं। नरोद्निकों का इतना प्रभाव था कि लोगों को उससे मुक्त किये बिना उनमें मार्क्सवाद का प्रचार करना सम्भव नहीं था। रूस के अर्थशास्त्र और इतिहास का उन्होंने यहीं गम्भीर अध्ययन किया और इनके ऊपर अध्ययन-चक्रों में अपने लेख पढ़े। यह अध्ययन और ये लेख पीछे उनके कई ग्रन्थों में काम आये, जैसे : 'जनता के मित्र क्या हैं, और वे सोशल-डेमोक्रैटों (सामाजिक-जनवादियों) से कैसे लड़ते ?' व्लादिमिर ने समारा के मार्क्सवादियों की एक मण्डली बनायी जिसने आगे चलकर क्रांतिकारी तरुणों पर काफी प्रभाव डाला। लेनिन ने वहाँ रहते हुए निज्नी-नवगरोद, व्लादिमिर और पीतरबुर्ग के मार्क्सवादियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। जेल में बन्द अपने पुराने साथी फेदोयेसेफ से भी उन्होंने पत्र-व्यवहार स्थापित किया। उस समय जबकि मार्क्सीय-आंदोलन रूस में अभी आरम्भ ही हो रहा था, वोल्गा प्रदेश व्लादिमिर और फेदोसेयेफ के अनथक परिश्रम से मार्क्सवाद के प्रचार का मुख्य केन्द्र बन गया। समारा के अध्ययन-चक्रों में मार्क्सवादी विचारों का प्रचार होता और नरोद्निकों से बहस होती जिसमें प्रतिद्वन्द्वी व्लादिमिर को कायल नहीं कर पाते थे।

समारा एशिया की सीमा के पास एक दूरवर्ती कस्बा था, जहाँ का जीवन और क्षेत्र इतना अनुकूल नहीं था कि व्लादिमिर के ज्ञान और प्रतिभा का वहाँ अच्छी तरह उपयोग हो सकता। दूसरी बात यह भी थी कि मार्क्सवाद के अनुसार क्रान्ति के आधारभूत थे औद्योगिक सर्वहारा। उनके आन्दोलन के केन्द्र वहाँ से बहुत दूर थे। राजनीतिक संघर्ष के क्षेत्र भी दूर थे। इसलिए व्लादिमिर सर्वहारा के बीच जाना चाहते थे। उस समय का उनका मनोभाव एक नोट से मालूम होता है। चेखोफ की कहानी '6 नम्बर वार्ड' को 1892-93 ई. के जाड़ों के आरम्भ में पढ़ने पर व्लादिमिर के ऊपर जो प्रभाव पड़ा था, उसके बारे में व्लादिमिर ने लिखा था : "जब मैंने कल रात यह कहानी खतम की तो मेरे दिल को उससे इतना जबर्दस्त धक्का लगा कि मैं अपने कमरे के भीतर नहीं रह सका। मुझे उठकर बाहर जाने और टहलने के लिए मजबूर होना पड़ा। मैं अनुभव करने लगा कि मैं 6 नम्बर वार्ड में बन्द हूँ।"

इससे मालूम होता है कि जो भीषण क्रूरता और हृदयहीनता चारों तरफ दिखायी पड़ रही थी, उसे चुपचाप सहने का धैर्य व्लादिमिर में नहीं था। वह विस्तृत क्रान्तिकारी संघर्ष के अखाड़े में उतरने के लिए अधीर थे।

4
पहला कदम (1893-95 ई.)

1. पीतरबुर्ग में (1893 ई.)

1893 ई. के अगस्त में व्लादिमिर इलिच उलियानोफ ने समारा छोड़ पीतरबुर्ग के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में वह दुनिया में अपने सबसे बड़े मेले के लिए मशहूर निज्नी-नवगरोद (वर्तमान गोर्की) में थोड़े समय के लिए ठहरे। एक मार्क्सीय अध्ययन-चक्र के सामने नरोद्निकों की विचारधारा का खंडन करते हुए उन्होंने एक लेख पढ़ा। वहाँ से चलकर 31 अगस्त, 1893 ई. को वह रूस की राजधानी पीतरबुर्ग पहुँचे। यह वह समय था, जब मजदूर जन-आंदोलन जोर पकड़ने ही वाला था। इससे दस वर्ष पहले प्लेखानोफ और उनके साथियों ने 'मजदूर उद्धारक गुट' नाम से एक संगठन तैयार किया था जिसने रूस में मार्क्सवाद का प्रचार शुरू करते हुए मजदूर-आन्दोलन के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पहला कदम उठाया था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रूस में पूँजीवाद का भारी विस्तार हुआ। इसके साथ कमकरों की संख्या बढ़ी और कमकर-वर्ग-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। कारखानों में इकट्ठा मजदूर, मालिकों द्वारा शोषण के प्रयत्नों को चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर

सकते थे। मार्क्सवादी प्रचार यद्यपि बहुत छोटे पैमाने पर शुरू हुआ था, लेकिन जंगल में फैलनेवाली आग भी तो एक छोटी-सी चिनगारी से ही पैदा होती है। रूस में पहले-पहल अब मार्क्सवादी मजदूर पैदा हुए। लेकिन, अभी मार्क्सीय मंडलियों का दृढ़ सम्बन्ध कमकर जनसाधारण के आन्दोलन से नहीं हुआ था। लेनिन ने 19वीं सदी की नवीं दशाब्दि के अन्त तथा दसवीं के प्रारम्भ-काल के बारे में लिखा था कि उस समय सामाजिक-जनवादी आन्दोलन की वृद्धि 'बड़ी कठिनाई से' हो रही थी। स्थिति ऐसी थी कि बहुत कम इस बात की आशा रख सकते थे कि इस समय समाजवाद का कमकर आन्दोलन के साथ संगम कराने जैसा कोई अगला बड़ा कदम उठाने के लिए पक्की भूमिका तैयार हो गयी है। अभी बहुत कम ही लोग महसूस करते थे कि अनेक असम्बद्ध मार्क्सीय चक्रों को मिलाकर उन्हें एक ऐसे संगठन के रूप में परिणत किया जा सकता है जो सम्मिलित लक्ष्यों और संघर्ष के एक जैसे तरीकों द्वारा सम्बंधित हो और जिसे मार्क्सवादी कार्यक्रम से शक्तिशाली बने मजदूर-वर्ग का राजनीतिक नेता बनाया जा सकता है।

पीतरबुर्ग में पहुँचते ही व्लादिमिर ने इस ऐतिहासिक करणीय को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न शुरू किया। अभी उनकी अवस्था 23 वर्ष की ही थी। लेकिन अब वह ज्ञानवृद्ध, सुपठित, क्रांतिकारी मार्क्सवादी हो गये थे और मजदूर वर्ग के लिए मन-प्राण से काम करने को तैयार थे।

'बाजार' नहीं—उस समय पीतरबुर्ग में कितने ही क्रांतिकारी तथा विरोधी तरुण-चक्र अपना काम कर रहे थे। व्लादिमिर ने उनमें से एक के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया। 1892 ई. में सरकार की ओर से जबर्दस्त दमन हुआ था। उससे बच निकले चक्रों में एक सामाजिक-जनवादी संगठन था जो ब्रुस्नेफ के नेतृत्व में काम कर रहा था। यह मार्क्सवादियों की एक अलग-थलग मंडली थी जिसका बहुत थोड़े-से आगे बढ़े हुए कमकरों के साथ सम्बन्ध था। वह देश के राजनीतिक जीवन से कोई सम्बन्ध न रखते हुए दूसरे देशों के लिये लिखे गये विचारों के आधार पर बिल्कुल निराकार रूप में कमकरों के बीच प्रचार करती थी। पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों द्वारा संचालित चक्र में मार्क्सवाद का अध्ययन सजीव वास्तविकता से दूर, निराकार रूप में होता था। वह मानो देश और काल के अनुसार मार्क्स के सिद्धांतों को लागू करने की आवश्यकता ही नहीं समझता था, और न आंदोलन में कमकरों के साथ एकरूपता स्थापित करने की आवश्यकता समझता था। कमकरों की भाषा और उनके समझने लायक भावों का इस्तेमाल करने की जगह वह शिक्षा के अपने तल पर उन्हें लाकर मार्क्सवाद में दीक्षित करना चाहता था। ऐसी स्थिति से व्लादिमिर कैसे सन्तुष्ट हो सकते थे ? उन्होंने 1893 ई. की शरद् में जो कदम उठाया, उसे चक्र के सदस्यों ने ठीक ही बताया कि वह जीवनदायक प्रभाव छोड़नेवाला तूफान था। व्लादिमिर ने पीतरबुर्ग की सामाजिक-जनवादी मंडली को जनता के बीच व्यावहारिक राजनीतिक कार्रवाई के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया। इस काम में उनका प्रसिद्ध लेख 'बाजार का तथाकथित प्रश्न' बड़े काम का साबित हुआ। 1893 ई. की शरद् में यह लेख पढ़ा गया। इसमें व्लादिमिर इलिच ने पीतरबुर्ग की सामाजिक-जनवादी मण्डली के एक सदस्य हेरमान क्रासिन की आलोचना की थी। बहुत दिनों तक समझा गया था कि यह लेख सदा के लिए गुम हो चुका है। लेकिन, लेनिन की मृत्यु के तेरह वर्ष बाद, 1937 ई. में वह एकाएक मिला और प्रकाशित कर दिया गया। 1893 में मार्क्सवादी चक्रों में 'बाजार' के प्रश्न पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक वाद-विवाद हुआ करता था। नरोद्निकों का कहना था कि देहाती इलाकों को ध्वस्त करके पूँजीवाद घरेलू 'बाजार' को संकुचित बना रहा है। वे इससे यह निष्कर्ष निकालते थे कि रूस में पूँजीवाद के लिए बाजार न तो है, और न कभी उसके लिए बाजार तैयार हो सकता है। उनकी धारणा थी कि हमारे देश में पूँजीवाद फल-फूल नहीं सकता। भारत में ऐसी खोपड़ियों की आज भी कमी नहीं है जो अपनी पवित्र-भूमि के लिए पूँजीवाद, आधुनिक उद्योग-धंधों और दूसरी आधुनिक चीजों को विदेशी और भारतीय जलवायु के प्रतिकूल कहकर आँख मूँदने की कोशिश करती हैं। नरोद्निक पूँजीवाद को जिस तरह यों ही घटित क्षणिक घटना मानते थे, उसी तरह औद्योगिक सर्वहारा को भी वे शरद् के मेघ की छाया-भर मानते थे। इस प्रकार बाजार के प्रश्न के ऊपर जो वाद-विवाद चल रहा था, उसका सम्बन्ध रूस में पूँजीवाद के भविष्य के प्रश्न के साथ जुड़ा हुआ था। पुरानी परम्पराओं और पिछड़ेपन के कारण कितनों को ही नरोद्निकों की यह बात उसी तरह लुभावनी

मालूम होती थी जिस तरह भारत में गांधीवाद, सर्वोदयवाद, भावेवाद, जयप्रकाश-अशोक-कृपलानीवाद दिखायी पड़ता है। नरोद्निकों के इस मकड़ी के जाले को तोड़ने की आवश्यकता थी। और यह उनके द्वारा उठाये बाजार के प्रश्न का जवाब देकर ही हो सकता था।

व्लादिमिर ने अपने लेख में पूँजीवादी विकासधारा की रूपरेखा खींची थी। उन्होंने बतलाया था कि किस तरह प्राकृतिक अर्थनीति के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया माल के उत्पादन के रूप में परिणत हुई। माल का सीधा-सादा उत्पादन छिन्न-भिन्न हुआ और हस्त-शिल्प का वैयक्तिक उत्पादन पूँजीवादी उत्पादन के रूप में परिणत हो गया। क्रासिन ने बाजारों के विषय पर एक व्याख्यान दिया था। उसने रूस में पूँजीवाद के विकास के साकार रूपों और स्वभाव का बिल्कुल खयाल छोड़कर 'साधारण रूप में' पूँजीवाद के विकास के सम्बन्ध में ऊपरी विवेचन करने तक ही अपने को सीमित रखा था। व्लादिमिर ने क्रासिन के इस ढंग की आलोचना की। उन्होंने इस बात की भी आलोचना की कि क्रासिन ने पूँजीवाद के केवल प्रगतिशील पहलू पर ही जोर दिया और पूँजीवाद के विरोधों, पूँजीवाद के नीचे दरिद्रता की वृद्धि तथा मजदूर जनसाधारण के सत्यानाश एवं सर्वहारा के वर्ग हितों के बारे में कुछ नहीं कहा। उन्होंने बतलाया कि मार्क्सवादियों को पूँजीपतियों के बाजारों के संबंध में अपनी सारी शक्ति लगाने की जरूरत नहीं है, उन्हें मजदूर वर्ग को संगठित करने, रूस में मजदूर जन-आंदोलन को विकसित और मजबूत करने की ओर ध्यान देना है। व्लादिमिर ने क्रासिन के विचारों में 'कानूनी मार्क्सवाद' की स्थूल रूपरेखा का तुरंत पता लगा लिया जिसका अभी-अभी आरंभ हो रहा था और जिसके रूप में पूँजीवादी शिक्षित जन पूँजीवाद को मजबूत करने तथा उसका यशोगान करने के लिए नरोद्निकों के खिलाफ अपने संघर्ष में मार्क्सवाद को इस्तेमाल करना चाहते थे।

व्लादिमिर ने नरोद्निकों के इस विचार का खण्डन किया कि रूस में पूँजीवाद फल-फूल नहीं सकता क्योंकि यहाँ उसके लिए 'बाजार' नहीं है। उन्होंने कहा कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में बहस-मुबाहिसे को "क्या सम्भव है और क्या होना चाहिए" की बेकार की कल्पना के क्षेत्र से हटाकर वास्तविकता के क्षेत्र में स्थानांतरित करना चाहिए। उन्होंने इस बात की मार्क्सीय व्याख्या की कि "किस तरह रूसी आर्थिक व्यवस्था नया रूप ले रही है, और क्यों दूसरा रूप न लेकर वह इसी रूप को स्वीकार कर रही है।" रूस की बहुत-सी गुबर्नियों के साकार तथ्यों और बहुतेरे आँकड़ों के आधार पर व्लादिमिर ने सिद्ध किया कि धनी और गरीब दोनों ही प्रकार के किसान 'बाजार' को तैयार करते जा रहे हैं। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि "हमारे सामने माल के उत्पादन और पूँजीवाद की वृद्धि की सजीव एकबद्ध प्रक्रिया मौजूद है।" उन्होंने साबित किया कि पूँजीवाद "रूस के आर्थिक जीवन की मुख्य पृष्ठभूमि बन चुका है।"

प्रमुख नेता—पीतरबुर्ग के मार्क्सवादियों पर व्लादिमिर की बातों ने बहुत जबर्दस्त प्रभाव डाला, क्योंकि उन्होंने नरोद्निकों से लड़ने के लिए एक जबर्दस्त हथियार उनके हाथ में दिया और बतलाया कि नरोद्वाद के खोखलेपन को किस तरह दिखलाया जा सकता है।

न. क. क्रुप्स्काया ने बतलाया है कि लेनिन के कथनों से पीतरबुर्ग के मार्क्सवादी उस समय कितने चकित हुए थे। हमारे नये मार्क्सवादी मित्र ने बाजार के प्रश्न का अत्यन्त साकार रूप में विवेचन किया। उसने इसका सम्बन्ध जनसाधारण के हितों से जोड़ा। उसकी सारी विचार-शैली में आदमी को ठीक वह सजीव मार्क्सवाद मिलता था जो कि घटनाओं के प्राकट्य को उनके साकार वातावरण और विकास में देखता है। जिन चक्रों में उन्होंने उस समय भाषण दिये थे, उनके सदस्य बाद में याद करते थे कि व्लादिमिर इलिच ने मार्क्सवाद का उस समय के रूसी जीवन के सबसे जबर्दस्त प्रश्नों पर ऐसी असाधारण योग्यता के साथ प्रयोग किया था कि हम चकित रह गये थे।

ऐसा असाधारण पुरुष जल्दी ही पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों का सर्वस्वीकृत नेता बन जाय, इसमें आश्चर्य क्या ! 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास' के अनुसार उन्होंने "मार्क्सवाद का अभूतपूर्व ढंग से गहरा अध्ययन किया था। उनमें उस समय के रूस की आर्थिक और राजनीतिक हालत पर मार्क्सवाद को लागू करने की क्षमता थी। मजदूरों के ध्येय की जीत में उनका विश्वास अटल और अडिग था। एक संगठनकर्ता

के रूप में उनकी प्रतिभा अपूर्व थी।"

सामाजिक-जनवादी पार्टी के निर्माण के मार्ग में नरोद्वाद अब भी भारी बाधा था। प्लेखानोफ और उनके 'मजदूर-उद्धारक गुट' ने मार्क्सवाद के विचारों का प्रचार करने में भारी काम किया था। उन्होंने नरोद्वाद के विचारों पर भारी प्रहार किया था जिसके कारण क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों में नरोद्निकों का प्रभाव घटने लगा था। लेकिन, नरोद्वाद की सिद्धांत रूप में पराजय अभी पूरी तौर से नहीं हुई थी। यह काम पूरी तरह से, और अन्तिम रूप में, व्लादिमिर इलिच लेनिन को करना था।

जनवरी, 1894 ई. में व्लादिमिर अपने सम्वन्धियों से मिलने मास्को गये और वहाँ दो-तीन सप्ताह रहे। उस समय वहाँ एक मेडिकल-कांग्रेस हो रही थी जिसमें कितने ही उदारवादी और उग्रवादी बुद्धिजीवी भी मौजूद थे। नरोद्निकों ने इससे फायदा उठाकर वहाँ एक गुप्त बैठक का प्रबन्ध किया। इसमें एक प्रसिद्ध उदारवादी नरोद्निक लेखक व. व. (वोरोन्तसोफ) ने व्याख्यान दिया। संयोग से व्लादिमिर भी उस बैठक में उपस्थित थे, उन्होंने बहस में भाग लिया और अपनी आलोचना से पहले वक्ता की ऐसी छीछालेदर की कि वहाँ मौजूद सभी लोगों को बहस में विजय का सेहरा इस तरुण मार्क्सवादी को बाँधना पड़ा।

व्लादिमिर की बहन अन्ना उस बैठक में मौजूद थीं। उन्होंने वहाँ के दृश्य के बारे में लिखा था कि "निर्भय और दृढ़ संकल्प, अपनी तरुणाई के सारे उत्साह और पक्के विश्वास के साथ ही नहीं, बल्कि ज्ञान से भी हथियारबन्द होकर उन्होंने नरोद्निकों के सिद्धान्तों का एक-एक करके खंडन करना शुरू किया, और उनके विचारों की इमारत की दीवार के एक पत्थर को दूसरे के ऊपर खड़ा नहीं रहने दिया। इस ढीट तरुण के प्रति विरोध का जो भाव पहले पैदा हुआ था, उसके स्थान पर धीरे-धीरे...अधिक सम्मान का भाव पैदा हो गया। उपस्थित जनता के बहुमत ने उन्हें एक जबर्दस्त प्रतिद्वंद्वी समझना शुरू किया।...जिस सद्भाव से उनके साथ बर्ताव किया गया तथा उनके विरुद्ध जो वैज्ञानिक दलीलें दी गयीं...उनसे मेरे भाई जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी अपने पक्ष का समर्थन वैज्ञानिक तथ्यों और आँकड़ों के साथ किया और अपने प्रतिद्वन्द्वी पर और भी अधिक व्यंग्य तथा उत्साह के साथ आक्रमण किया।...वहाँ मौजूद सभी लोगों ने, विशेष करके तरुण श्रोता-मण्डली ने, बड़े ध्यान के साथ उनकी बातों को सुना। नरोद्निक प्रतिद्वन्द्वी ने पीछे हटना शुरू किया, उसकी वाणी रुक-रुक कर निकलने लगी और अन्त में वह चुप हो गया।"

तरुण मार्क्सवादी मण्डली विजयी हुई।

यद्यपि बैठक गुप्त थी, लेकिन किसी तरह पुलिस का एक खुफिया उसमें पहुँच गया था। उसने अपने ऊपर के अफसरों के पास इस बहस के सार की रिपोर्ट भेजी और सूचित किया कि बहस में व्लादिमिर से पहले एक स्थानीय मार्क्सवादी ने भाग लिया था। उसने वतलाया कि वोरोन्तसोफ ने अपने तर्कों द्वारा इस मार्क्सवादी को चुप कर दिया था, इसपर उसके विचारों का समर्थन उलियानोफ नामक एक व्यक्ति ने (जिसके बारे में कहा जाता है कि वह फाँसी पर लटकाये गये एक तरुण का भाई है) ऐसे ढंग से किया, जिससे मालूम होता था कि वह विषय उसके लिए हस्तामलक है।

मार्क्सवाद की यहाँ अब तक की पुरानी नरोद्निक विचारधारा के साथ सीधी कुश्ती हुई और अखाड़े में अपने प्रतिद्वंद्वी को चारों खाने चित्त करके मार्क्सवाद ने विजय प्राप्त की। व्लादिमिर की इस विजय की चर्चा क्रांतिकारी हलकों में चारों ओर होने लगी। लेकिन, वैयक्तिक तौर से नरोद्निकों के विरुद्ध मौखिक ढंग से वाद-विवाद या भाषण करने से ही व्लादिमिर संतुष्ट नहीं हो सकते थे। वह अच्छी तरह समझते थे कि नरोद्निक विचारधारा के खोखलेपन को जब तक पूरी तौर से खोलकर रख नहीं दिया जाता, तब तक हमारा काम आगे नहीं बढ़ सकता। नरोद्निक भी जानते थे कि उनका शत्रु पैदा हो गया है; और यदि बालपन में ही उसे खतम नहीं कर दिया गया तो वह उन्हें खतम किये बिना नहीं रहेगा। 1893 ई. के अन्त से उनकी जबान और लेखनी मार्क्सवाद के खिलाफ जोरों से चल पड़ी। न. क. मिखाइलोव्स्की उस समय एक प्रभावशाली लेखक था। उसने नरोद्निकों की कानूनी तौर से खुलेआम निकलनेवाली पत्रिका 'रुस्कया बगात्स्तवो' (रूसी धन) में मार्क्सवाद के खिलाफ जेहाद बोल दिया। इसपर 1894 ई. के वसन्त और गर्मियों में लेनिन ने अपनी

प्रसिद्ध पुस्तक जनता के मित्र क्या हैं लिखी।

जनता के मित्र क्या हैं ?–पुस्तक का पूरा नाम था **जनता के मित्र क्या हैं, और वे सामाजिक-जनवादियों से कैसे लड़ते हैं ?** इस पुस्तक में अपने को "जनता के मित्र" कहनेवाले उदारवादी नरोद्‌निकों को नंगा करके उनके असली रूप में रख दिया गया। व्लादिमिर ने दिखलाया कि वे जनता के मित्र नहीं हैं, बल्कि वस्तुतः जनता के साथ शत्रुता कर रहे हैं। क्रांतिकारी संघर्ष को कब से छोड़कर वे लोग अब जारशाही सरकार के साथ समझौता करने का समर्थन कर रहे थे। लेनिन ने साबित किया कि नरोद्‌वाद का ऐसा पतन अनिवार्य था। उन्होंने यह भी बतलाया कि उदार नरोद्‌निकों का सच्चा स्वरूप कुलकों अर्थात देहाती पूँजीपतियों के हितों का समर्थन करता है; नरोद्‌निकों के सैद्धांतिक विचार प्रतिक्रियावादी हैं और उनका राजनीतिक भाषण-मंच क्रांति-विरोधी। जनता के वास्तविक मित्र नरोद्‌निक नहीं, वल्कि मार्क्सवादी हैं जो जमींदारों और पूँजीवादियों के अत्याचार को खतम करना और जारशाही को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। इस पुस्तक ने अपने को नरोद्‌वाद की आलोचना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि रूस में उदीयमान क्रांतिकारी मार्क्सवादी पार्टी की घोषणा का काम भी किया। अपनी इस कृति में व्लादिमिर ने मार्क्सवादी विश्व-दृष्टिकोण के सिद्धांतों की विवेचना की। उन्होंने संक्षेप में किन्तु बिल्कुल यथार्थ तथा आश्चर्यजनक रूप में, रूस के मजदूर-वर्ग के विकास के ऐतिहासिक मार्ग को दिखलाते हुए रूसी मार्क्सवादियों के मुख्य करणीयों को स्पष्ट रूप में सामने रख दिया। व्लादिमिर ने इस वात पर जोर दिया कि रूस की शोषित कमकर जनता के एकमात्र प्रतिनिधि के तौर पर मजदूर-वर्ग ने पूँजीवाद के खिलाफ संघर्ष का बीड़ा उठाया है। पूँजीवादी व्यवस्था को उलटने और कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करने के लिए, अन्तिम उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने के लिए, मजदूर-वर्ग का फौरी काम स्वेच्छाचारिता को उखाड़ फेंकना है। स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष करने में सर्वहारा पूँजीपतियों पर विश्वास नहीं रख सकता, क्योंकि मजदूर-आन्दोलन के खिलाफ प्रतिक्रियावाद की शक्तियों के साथ उसका मिल जाना अनिवार्य है। व्लादिमिर ने बतलाया कि सर्वहारा के अपने इस संघर्ष में उसे केवल किसानों की ही सहायता मिल सकती है। पेरिस कम्यून के असफल होने का एक बड़ा कारण था उसका किसानों की सहायता से वंचित रहना। यहाँ व्लादिमिर ने 1894 ई. में ही मजदूर-वर्ग के इस सहायक वर्ग के महत्त्व पर जोर देते हुए कहा था कि जार, जमींदारों और पूँजीपतियों को उखाड़ फेंकने के लिए मुख्य साधन हैं : कमकरों और किसानों के बीच क्रान्तिकारी मैत्री।

व्लादिमिर ने बतलाया कि किसानों की सहायता से मजदूर वर्ग का संघर्ष केवल तभी सफल हो सकता है जबकि रूसी मार्क्सवादियों के सम्मुख जो बुनियादी करणीय है, उसे पूरा किया जाय, अर्थात परस्पर-असम्बद्ध मार्क्सवादी मंडलियों को एकजुट करके उन्हें एक समाजवादी कमकर पार्टी का रूप दिया जाय। व्लादिमिर के शब्दों में : **"हमें एक निश्चय करना होगा कि जिन परिस्थितियों में काम करना है उनमें संगठन का कौन-सा रूप सवसे उपयुक्त होगा, ताकि सामाजिक-जनवाद के विचारों को फैलाया और कमकरों को एक राजनीतिक वल के रूप में एकतावद्ध किया जा सके।"**

इस पुस्तक में दूरदर्शी व्लादिमिर ने रूसी मजदूर-वर्ग के ऐतिहासिक विकास के बारे में मानो भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था : "यह मजदूर वर्ग ही है जिसके ऊपर सामाजिक-जनवादियों को अपना सारा ध्यान और अपनी सारी कार्रवाइयाँ केन्द्रित करनी होंगी। जब इस वर्ग के आगे बढ़े प्रतिनिधि वैज्ञानिक समाजवाद और रूसी कमकरों के ऐतिहासिक पार्ट अदा करने के विचारों पर अधिकार प्राप्त कर लेंगे, जव ये विचार चारों ओर फैल जायेंगे और जब कमकरों के बीच ऐसे स्थायी संगठन पैदा हो जायेंगे जो उनके आजकल के जब-तब होते युद्धों को एक समझ-बूझकर किये जानेवाले वर्ग-संघर्ष के रूप में परिणत कर देंगे, तब रूसी कमकर सभी जनतांत्रिक तत्त्वों के अगुआ बनकर निरंकुशता को उखाड़ फेंकने के लिए उठ खड़े होंगे, और रूसी सर्वहारा का (सभी देशों के सर्वहारा के साथ) विजयी कम्युनिस्ट क्रान्ति के लिए खुले राजनीतिक संघर्ष के सीधे रास्ते पर नेतृत्व करेंगे।"

व्लादिमिर की यह भविष्यवाणी 23 वर्ष बाद कितनी सच्ची साबित हुई, यह आज दुनिया को मालूम है। रूसी सर्वहारा ने सिर्फ अपने ही देश में कम्युनिस्ट क्रांति को विजयी नहीं बनाया, बल्कि आज मानवता की

तिहाई से अधिक आबादी क्रांति के सुफल को भोगते हुए नये, भव्य, समृद्ध और सुखी संसार का निर्माण कर रही है। नरोद्निकों के विचार और सिद्धान्त आज उपहासास्पद-से जान पड़ते हैं। लेकिन व्लादिमिर की प्रतिभा और लौह-लेखनी ने यदि बाहर से मजबूत दिखायी पड़ती उस दीवार को निष्ठुरतापूर्वक न ढा दिया होता तो क्या कम्युनिस्ट क्रांति का पथ प्रशस्त हो सकता था ? व्लादिमिर ने इस क्रांति की सफलता के प्रधान तत्त्व या प्रमुख नायक–सर्वहारा–के महत्त्व को तो मार्क्स के दिखलाये हुए रास्ते के अनुसार माना ही, साथ ही उन्होंने यह भी बहुत स्पष्ट और जोरदार शब्दों में कहा कि क्रांतिकारी मजदूर वर्ग को किसानों की सहायता की भारी आवश्यकता होगी और यह सहायता उनकी प्रतीक्षा कर रही है। व्लादिमिर की यह पुस्तक गुप्त रीति से हेक्टोग्राफ द्वारा 50-100 की संख्या में ही छापी गयी थी। लेकिन जल्दी ही रूस में काम करनेवाले अधिकांश सामाजिक-जनवादियों ने उससे फायदा उठाया। तिफलिस में अभी-अभी क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल होनेवाले सोसो युगशविली (स्तालिन) ने इसे पढ़ा और उससे भारी प्रेरणा प्राप्त की।

व्लादिमिर ने नरोद्निकों के खोखलेपन को तो साबित किया ही, सर्वहारा के दाहिने हाथ के तौर पर किसानों के महत्त्व को भी बतलाया। उन्होंने उन अविश्वसनीय 'सहयात्रियों' की भी खबर ली जो मार्क्सवादियों के साथ सहानुभूति दिखलाने को अपनी बड़ी कृपा समझकर उसे भारी कीमत पर बेचना चाहते थे। फैशन के लिए मार्क्सवाद की ओर झुकनेवाले लोग हमेशा अपनी चमड़ी का ध्यान रखते थे और 'कानूनी मार्क्सवादी' बनकर जग जीतने का संकल्प करते थे। किन्तु, इस तरह के मार्क्सवादी, पूँजीवादी उदारवादियों से अधिक कुछ नहीं थे। ये 'कानूनी मार्क्सवादी'–कहने की आवश्यकता नहीं कि आजकल के भारत में भी इन बहुरूपियों की कमी नहीं है–नरोद्निकों के खिलाफ मार्क्सवादियों के संघर्ष से फायदा उठाकर मजदूर आंदोलन को पूँजीवादियों के हितों के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे। मार्क्सवाद के क्रांतिकारी सार को ये पूँजीवादी सुधारवाद का रूप देना चाहते थे–जैसा कि भारत में आज कितने ही प्रजा-सोशलिस्ट कोशिश कर रहे हैं। रूस में ये 'सहयात्री' कुछ वर्षों बाद वैधानिक जनतंत्रवादी बन गये और गृह-युद्ध के काल में तो वे पूरी तौर से क्रान्ति-विरोधी सफेद गारद हो गये थे।

व्लादिमिर की गजब की पैनी दृष्टि थी, जिसने 'कानूनी मार्क्सवाद' को उसके प्रारम्भिक रूप में प्रकट होने के समय ही पकड़ लिया और बतला दिया कि यह पूँजीवादी उदारवाद का ही सिलसिला है। उन्होंने कानूनी मार्क्सवाद के विरुद्ध संघर्ष शुरू करते हुए उसके सबसे बड़े भाष्यकार पीतर स्त्रूवे की खूब खबर ली। स्त्रूवे का कहना था कि रूसी मार्क्सवादियों को स्वीकार करना चाहिए कि हममें "संस्कृति का अभाव है, और उसे हमें पूँजीवद से सीखना होगा।" 1894 ई. की शरद् में पीतरबुर्ग के मार्क्सवादियों की एक छोटी-सी सभा हुई। इसमें 'कानूनी मार्क्सवाद' के प्रतिनिधि भी मौजूद थे। इस सभा में व्लादिमिर ने 'पूँजीवादी साहित्य में मार्क्सवाद की छाया' के नाम से एक लेख पढ़ा जिसमें उन्होंने स्त्रूवे के विचारों का बड़े जोरों से खंडन करते हुए 'कानूनी मार्क्सवादियों' के उदारवादी बुर्जुवा स्वरूप को नंगा कर दिया। उन्होंने बतलाया कि कानूनी मार्क्सवादी वस्तुतः पूँजीवादी जनवादी हैं; वे नरोद्वाद को छोड़ उसका विरोध करने लगे हैं और अब नरोद्वाद से निम्न-मध्यमवर्गी अथवा किसानी समाजवाद की ओर झुके हैं। सर्वहारा समाजवाद नहीं, बल्कि पूँजीवादी उदारवाद–यह उनका लक्ष्य है।

2. 'कानूनी मार्क्सवादियों' से लोहा

उस समय व्लादिमिर ने 'कानूनी मार्क्सवादियों' के साथ यह सोचकर एक ब्लाक बनाना संभव समझा था कि नरोद्निकों के साथ लड़ने में उसका उपयोग किया जा सकता है। अस्थायी ब्लाक बनाने का जो तरीका व्लादिमिर इलिच ने उस समय बतलाया था, वह उनके आगे के जीवन में इस तरह के राजनीतिक ब्लाकों और समझौतों का संकेत था। व्लादिमिर को मार्क्सवाद और सर्वहारा की अजेय शक्ति पर पूरा विश्वास था। इसलिए, वह समझते थे कि इस तरह के अस्थायी ब्लाक बनाने से हम पथभ्रष्ट नहीं हो सकते। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सर्वहारा को अपनी सैद्धांतिक, राजनीतिक और संगठनात्मक स्वतंत्रता कायम रखनी चाहिए और अपने

अस्थायी तथा अविश्वसनीय सहयोगियों की आलोचना करने की भी पूर्ण स्वतंत्रता रखनी चाहिए। 'कानूनी मार्क्सवादियों' से इस अस्थायी समझौते के परिणामस्वरूप 1895 ई. के वसन्त में 'हमारे आर्थिक विकास के स्वरूप निर्धारण के वास्ते सामग्री' के नाम से निवन्धों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें व्लादिमिर (लेनिन), प्लेखानोफ, स्त्रूवे और दूसरों के लेख छपे थे। नाम से धोखे में आकर जारशाही सेन्सरों ने पुस्तक के छपने में बाधा नहीं डाली, लेकिन तुरन्त ही बाद असली बात का पता लग गया और सरकार ने पुस्तक को जब्त करके उसे जला देने की विशेष आज्ञा निकाली। पुस्तक का जलाना उन दिनों बहुत कम होता था और चरम दंड माना जाता था। केवल सौ कापियाँ बचायी जा सकीं, जिन्हें सामाजिक-जनवादी चक्रों और मण्डलियों ने किसी तरह अपने पास वचा रखा। इनमें से एक कापी सोसो युगशविली (स्तालिन) के हाथ में भी पड़ी। व्लादिमिर के निबंध का नाम था 'नरोद्वाद का अर्थशास्त्रीय सार और श्री स्त्रूवे की पुस्तक में उसकी आलोचना।' व्लादिमिर इलिच उलियानोफ ने अपने लेख को पुलिस की नजर से बचाने के लिए क. तूलिन के नाम से लिखा था। सोसो (स्तालिन) के उस समय के एक घनिष्ट मित्र ने कहा है कि उस निबंध को पढ़ जाने के बाद सोसो ने कहा : "जैसे भी हो, मुझे इन (व्लादिमिर) से मिलना होगा।"

निबंध-संग्रह में व्लादिमिर का निबंध सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें नरोद्वाद के समाज-शास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय विचारों का जबर्दस्त और सविस्तार खंडन किया गया था और रूस के आर्थिक विकास के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विवेचन किया गया था। एक तरह से अर्थशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली व्लादिमिर की आगे की कितनी ही कृतियों की संक्षिप्त रूपरेखा का काम इसी लेख ने किया। व्लादिमिर की पुस्तक **रूस में पूँजीवाद का विकास** के साथ तो इसका विशेष सम्बन्ध था। व्लादिमिर ने जहाँ नरोद्वाद का जबर्दस्त खंडन किया, वहाँ उसके कार्यक्रम में उन जनतांत्रिक तत्त्वों का भी उल्लेख किया जिनमें पूँजीवादी जनतांत्रिक क्रांति के काल में देहाती और शहरी निम्न-मध्यम वर्ग के हितों पर जोर दिया गया था। प्रथम रूसी क्रांति के समय जनतांत्रिक सामाजिक अंशों और पार्टियों के साथ बोल्शेविकों के दाँव-पेंच के सैद्धांतिक आधार का काम व्लादिमिर के इन्हीं विचारों ने किया।

यद्यपि निबंध-संग्रह में 'कानूनी-मार्क्सवादियों' के निबन्ध भी थे, और उनके साथ समझौते के आधार पर यह निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुआ था, तो भी व्लादिमिर 'कानूनी मार्क्सवाद' का पूरा आलोचनात्मक विश्लेषण करने से बाज नहीं आये और उन्होंने स्त्रूवे द्वारा मार्क्सवाद की मौलिक दृष्टि यानी समाजवादी क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व के परित्याग का उल्लेख किया। व्लादिमिर ने स्त्रूवे और दूसरे 'कानूनी मार्क्सवादियों' के विचारों में मुख्य दोष दिखलाते हुए बतलाया कि वे पूँजीवादी 'वस्तु-तत्त्व' पर विश्वास करते हैं, जो उन्हें पूँजीवाद के औचित्य का कायल बनाता है और वे वर्ग-विरोध को हल्का करने की कोशिश करते हैं। इसके विरुद्ध सच्चा मार्क्सवादी-भौतिकवादी इन विरोधों को नंगा कर देता है और क्रांतिकारी वर्ग–सर्वहारा–का पक्ष लेता है। व्लादिमिर ने लिखा था : "भौतिकवाद में वह पक्षपात निहित है...जो आदमी को मजवूर करता है कि घटनाओं का मूल्यांकन करने में दिल खोलकर और स्पष्ट तौर से एक निहित सामाजिक समुदाय के दृष्टिकोण को स्वीकार करे।"

अभी इस समय तक पश्चिमी यूरोप में संशोधनवाद 'बर्नस्टाइनवाद' के रूप में नहीं पैदा हुआ था। उससे पहले ही व्लादिमिर इलिच ने रूस में मार्क्सवाद को विकृत करने के आरम्भिक प्रयत्नों का बड़ी दृढ़तापूर्वक विरोध किया। नरोद्निकों और 'कानूनी-मार्क्सवादियों' के साथ संघर्ष करते हुए व्लादिमिर ने रूस में मार्क्सवादी कार्यकर्ता भी तैयार किये और उस परम्परा को स्थापित किया जिसमें मार्क्सवाद के जरा भी विकृत करने के प्रयत्नों का निष्ठुर विरोध करना आवश्यक समझा गया।

व्लादिमिर इलिच जहाँ इस तरह सैद्धांतिक कार्यों में बड़ी तत्परता के साथ काम कर रहे थे, वहाँ उन्होंने पार्टी-संगठन की ओर भी उतना ही ध्यान दिया। पीतरबुर्ग के आगे बढ़े कमकरों से सम्बन्ध स्थापित करके उन्होंने पार्टी के संगठनकर्ताओं को तैयार करने का काम भी इसी समय पूरा किया। वह कमकरों के सामने भाषण देते, उनमें से कुछ को कपिताल (पूँजी) पढ़ाते। नेव्स्काया जास्तवा मोहल्ले में बहुत-सी फैक्टरियाँ और कारखाने स्थापित थे, जिसके कारण वहाँ काफी संख्या में कमकर रहते थे। 1894 ई. की शरद् में व्लादिमिर

ने वहाँ के कमकरों के चक्रों में प्रचार शुरू किया। पीतरवुर्ग में भी कमकरों में अध्ययन-चक्र जारी किये और बाद में वासीलेव्स्की ऑस्त्रोफ के डाक-मजदूरों में भी अध्ययन चक्र चलाये।

1894 ई. के जाड़ों में ही व्लादिमिर इलिच लेनिन का पहले-पहले नादेज्दा कौन्स्तान्तिनोव्ना क्रुप्स्काया से परिचय हुआ। नेव्स्काया जास्तवा मोहल्ले में क्रुप्स्काया वयस्कों के रात्रि-स्कूल में पढ़ाती थीं। इस परिचय के बाद ही वह व्लादिमिर के क्रांतिकारी कामों में सहायक और सहकारी और बाद में सारे जीवन के लिए संगिनी बन गयीं।

बावुश्किन—सेमियान्निकोफ (आजकल लेनिन) कारखाने के कमकरों के चक्र में ई. व. बावुश्किन नाम का एक बहुत ही तत्पर और समझदार सदस्य था। वह व्लादिमिर का जबर्दस्त पक्षपाती तथा पीछे सामाजिक-जनवादी पार्टी का एक बड़ा नेता बना। 1906 ई. में जारशाही ने साइबेरिया में दंड देने के लिए जो फौजी टुकड़ी भेजी थी उसने बावुश्किन को बर्वरतापूर्वक गोली से मार दिया। व्लादिमिर बावुश्किन को "पार्टी का गर्व" समझते थे, उसे बहुत ही लगनशील और जबर्दस्त सैनिक मानते थे।

बावुश्किन ने अपने संस्मरण में बतलाया है कि उस समय व्लादिमिर इलिच किस तरह अध्ययन-चक्रों को चलाते थे। उन्होंने लिखा था : "व्याख्याता इस विज्ञान की मुँह-जबानी, बिना किसी नोट के, हमारे सामने व्याख्या करता और अक्सर हमें अपनी कही बातों के विरुद्ध आक्षेप करने या बहस आरम्भ करने की प्रेरणा देता। फिर वह बहस करनेवालों से उस विषय पर आपस में तर्क-वितर्क करवाता। इस ढंग से हमारे पाठ बहुत दिलचस्प और सजीव बन जाते।...हम उन्हें सदा बहुत पसन्द करते, अपने शिक्षक की योग्यता की प्रशंसा करते।"

इन अध्ययन-चक्रों में भाग लेते हुए व्लादिमिर ने आगे बढ़े कमकरों का स्नेह और विश्वास प्राप्त किया। व्लादिमिर इलिच उलियानोफ पीतरवुर्ग के एक बैरिस्टर थे, लेकिन जो भी कमकर उनके सम्पर्क में आते उन्हें वह अपने से भिन्न नहीं समझते। वह बिल्कुल साफ तौर से और बड़ी सीधी-सादी भाषा में मार्क्स के सिद्धांत, पूँजीवादी समाज के आधार और रूस की आर्थिक और राजनीतिक अवस्था जैसे अत्यन्त गम्भीर प्रश्नों पर बात करते। ये ऐसे विषय थे जिन्हें बहुत गहन कहा जाता था। लेकिन व्लादिमिर कमकरों के सामने उनकी व्याख्या इस तरह करते कि वे उन्हें बड़ी आसानी से समझ जाते और सोचते कि मानो इन बातों को कुछ-कुछ वे पहले ही से अपने भीतर अनुभव करते थे; हाँ, उन्हें प्रकट करने के लिए उनके पास शब्द नहीं थे। प्रथम श्रेणी के विचारक और गम्भीर तत्त्वदर्शी व्लादिमिर एक ओर शास्त्रीय भाषा में ग्रन्थों को लिखने में सिद्धहस्त थे, तो दूसरी ओर वह यह भी जानते थे कि कमकरों के सामने वह भाषा बेकार है। इसलिए, उनके सामने बोलते समय वह उनके तल पर उतरकर बड़े सीधे-सादे ढंग से बातों को समझाते थे।

किसी सिद्धांत या शास्त्र को देश-काल के अनुसार लागू करना सबसे कठिन बात है। यह काम शास्त्रों का अच्छी तरह अवगाहन कर चुके व्यक्तियों के लिए भी आसान नहीं है। व्लादिमिर जानते थे कि मार्क्स के सिद्धांत तब तक हवाई हैं, जब तक रूस की ठोस भूमि के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता। इसी ठोस सम्बन्ध को स्थापित करने का उस समय वह जबर्दस्त प्रयत्न कर रहे थे। बावुश्किन ने अपने संस्मरण में लिखा है : "व्याख्याता ने हमें कागज दिये जिनपर प्रश्नों की सूची लिखी हुई थी, जिनका जवाब देने के लिए हमें कारखाने के जीवन का निरीक्षण करने और घनिष्ठ रूप से परिचित होने की आवश्यकता थी।" आगे बढ़े हुए कमकरों को शिक्षा देने के साथ ही साथ व्लादिमिर फैक्टरी के कमकरों की स्थिति, वेतन देने के ढंग, जुर्माने, मजूरी की दर निश्चित करने के तरीके का भी अध्ययन करते थे। इसे ध्यान में रखते हुए वह कमकरों से उनके कारखानों में प्रचलित स्थितियों तथा असंतोष की बातों के बारे में भी पूछते। क्रुप्स्काया ने लिखा है कि व्लादिमिर इलिच कमकरों की स्थिति पर प्रभाव डालनेवाली छोटी-छोटी सी बातों को भी पूछते, फिर उनको जोड़कर कमकरों के सम्पूर्ण जीवन का चित्र बनाते। वह इस तरह से सभी बातों को लेकर कमकरों में सफलतापूर्वक क्रांतिकारी प्रचार करते। पीतरवुर्ग में अपने काम के आरम्भ ही में व्लादिमिर ने राय कायम कर ली थी कि अध्ययन-चक्रों में आगे बढ़े हुए थोड़े से मजदूरों के बीच प्रचार करना काफी नहीं है। वह कमकरों

के विशाल जन-समूह में आंदोलन करने को बहुत आवश्यक समझते थे। पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों की जो पहली बैठक हुई थी, उसी में उन्होंने इस सवाल को बहुत जोर से उठाया था। प्रचार के कामों से जो तजुर्बा प्राप्त हुआ, उसने व्लादिमिर को विश्वास दिला दिया कि इस तरह की कार्रवाई से आगे बढ़कर वर्तमान समस्याओं के सम्बन्ध में विस्तृत राजनीतिक आंदोलन करने की जरूरत है जिससे कि मजदूर वर्ग के फौरी हितों की रक्षा की जा सके। इस तरीके को सबसे पहले 1894 ई. के अन्त में सेमियान्निकोफ कारखाने के मजदूरों की हलचल के समय इस्तेमाल किया गया। इस कारखाने में मजदूरों को नियमपूर्वक मजदूरी नहीं मिलती थी, जिसके कारण कमकरों में बहुत असन्तोष फैल गया था। मालिकों ने डरकर उनकी उचित माँगों को तो मान लिया, लेकिन साथ ही कितने ही कमकरों को पकड़कर पीतरबुर्ग से निर्वासित कर दिया। व्लादिमिर इलिच ने इन बातों को लेकर आंदोलन खड़ा करने का निश्चय किया। उन्होंने एक लीफलेट (पत्रक) तैयार की। फिर उसपर कमकरों के चक्र में बहस-मुबाहिसा करके और अन्य बातों को भी उसमें सम्मिलित करके उन्होंने उसकी कितनी ही कापियाँ हाथ से तैयार करवायीं। उन्हें कारखाने में बाँट दिया गया। बाबुश्किन ने लिखने और प्रचार करने में सक्रिय भाग लिया। कमकरों ने इस लीफलेट को बहुत पसन्द किया। आंदोलन में यह पहली लीफलेट (पत्रक) थी जिसे पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों ने निकाला था। इसके साथ उनके काम के ढंग में एक नया परिवर्तन आरम्भ हुआ। मजदूरों में आंदोलन करने का यह तरीका इतना सफल साबित हुआ कि आगे चलकर सारे रूस के मजदूर वर्ग में इसका इस्तेमाल किया गया।

1895 की फरवरी में नवीन-बन्दरगाह में काम करनेवाले कमकरों में अशांति उठ खड़ी हुई। पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों ने व्लादिमिर के पथ-प्रदर्शन में एक पत्रक निकाला, जिसका शीर्षक था "डॉक कमकरों को क्या हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए ?" इसमें कमकरों की मांगों की एक सूची दी गयी थी। अपने उद्देश्य को बड़े स्पष्ट रूप से यहाँ प्रतिविम्बित देखकर कमकर एक होकर बड़ी मजबूती से उन माँगों पर डट गये। अन्त में, बन्दरगाह के अधिकारियों को झुकना पड़ा। यह विजय बड़े महत्त्व की थी। इसके कारण सामाजिक-जनवादियों की प्रतिष्ठा बढ़ गयी और उनका प्रभाव पक्की तरह से कायम हो गया। इस तरह के पत्रकों की कमकर बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे और मिलते ही बड़े ध्यान से पढ़ते-सुनते थे। 'फैक्टरी के कमकरों पर लगाये गये जुर्मानों से सम्वन्धित कानून की व्याख्या' नाम से व्लादिमिर ने एक और पत्रक निकाला जिसे एक गुप्त प्रेस में छापा गया था। बाहर से देखने में यह पत्रक एक कानूनी पत्रिका मालूम होता था। साधारण मजदूर पाठकों के लिए इस पुस्तिका को लिखकर व्लादिमिर को बड़ी प्रसन्नता हुई। "मेहनतकशों के लिए लिखने का अवसर पाने से बढ़कर मुझे कोई चीज पसन्द नहीं; इससे बढ़कर मैं और किसी चीज का स्वप्न नहीं देख सकता" –यह वाक्य निर्वासित जीवन बिताते हुए व्लादिमिर इलिच ने लिखा था। सीधी-सादी भाषा में लिखी इस पुस्तिका में व्लादिमिर ने बताया था कि किस तरह जारशाही सरकार और कारखानों के मालिक मेहनतकशों का शोषण कर रहे हैं और किस तरह मेहनतकशों की अपनी पार्टी के पथ-प्रदर्शन में सर्वहारा को अपने शोषकों के खिलाफ लड़ना है।

व्लादिमिर इलिच से पहले एक शताब्दी तक मार्क्सवाद का जो प्रचार हुआ था, वह केवल सैद्धांतिक स्तर का था और बहुत थोड़े से बुद्धिजीवियों तक ही सीमित था। व्लादिमिर ने इसके क्षेत्र को बढ़ाया। मार्क्सवाद के सिद्धांतों को अमली रूप में पेश करते हुए उन्होंने उसे आगे बढ़े कमकरों में व्यापक रूप से फैलाया। कमकरों की रोज-ब-रोज की कठिनाइयों को सुलझाने में मार्क्सवाद का उपयोग करते हुए उन्होंने बतलाया कि मार्क्सवाद और मार्क्सवादी पार्टी ही उनके हितों की रक्षा कर सकते हैं, उनके दुखों को दूर कर सकते हैं तथा उन्हें सुखी और समृद्ध बना सकते हैं। व्लादिमिर इलिच के इन प्रयत्नों से पीतरबुर्ग के कमकरों में एक नयी जागृति पैदा हुई; उनमें वर्ग-चेतना पैदा हुई। इस समय से दस ही वर्ष पहले, 1885 ई. में मोरोजोफ काटन मिल में एक हड़ताल हुई थी। इस हड़ताल से कमकरों ने अपनी शक्ति को पहचाना था और 1896 ई. में, जब क्रांतिकारी मार्क्सवादियों ने अनेकों बड़ी-बड़ी हड़तालों को सफलतापूर्वक चलाया, तो लेनिन के शब्दों में, लगातार उठते हुए मजदूर-आन्दोलन का युग शुरू हुआ।

तात्कालिक आर्थिक माँगों के लिए आंदोलन और हड़तालों का पक्षपात करने के साथ-साथ व्लादिमिर इलिच का ध्यान हमेशा इस बात पर भी रहता था कि विना राजनीतिक संघर्ष के कमकरों को उनकी रोजमर्रा की कठिनाइयों से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए आर्थिक समस्याओं तक ही आन्दोलन को सीमित रखना वह पसन्द नहीं करते थे। केवल आर्थिक लाभों के लिए ही मालिकों के साथ संघर्ष को माननेवाले 'अर्थवादियों' की व्लादिमिर ने खूब खबर ली। 1895 ई. के आरम्भ में व्लादिमिर को इस 'अर्थवादी' रोग का पहले-पहल पता चला जब मास्को, किएव और विलना (विलेनुस) के सामाजिक-जनवादी समूहों के प्रतिनिधियों की पीतरबुर्ग में एक कान्फ्रेंस हुई। इस कान्फ्रेंस में बड़े पैमाने पर आंदोलन का काम शुरू करने और मजदूर उद्धारक गुट के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने पर विचार किया गया। वाद-विवाद के दौरान कान्फ्रेंस में क्रांतिकारी और अवसरवादी, दो विचारधाराएँ, प्रकट हुईं। अस्तु, स्विट्जरलैंड में 'मजदूर उद्धारक गुट' के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए एक प्रतिनिधि चुनने के बारे में एक राय नहीं हो सकी; एक की जगह दो व्यक्तियों को भेजने का फैसला हुआ। पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादियों ने व्लादिमिर इलिच को अपना प्रतिनिधि चुना।

3. परदेस में पहली वार (1895 ई.)

प्लेखानोफ के दल के साथ बातचीत करने के लिए व्लादिमिर का जाना निश्चित हो गया था। लेकिन इसी समय वह निमोनिया के शिकार हुए और उन्हें एक महीने खाट पर पड़े रहना पड़ा। खाट पर पड़े रहने पर भी व्लादिमिर का दिमाग निष्क्रिय नहीं था। इसी समय उन्होंने **कपिताल** की तीसरी जिल्द को, जिसे अभी-अभी एंगेल्स ने सम्पादित करके जर्मन में प्रकाशित कराया था, पढ़ डाला। अन्त में, 25 अप्रैल, 1895 को व्लादिमिर ने स्विट्जरलैंड के लिए प्रस्थान किया।

प्लेखानोफ से भेंट—प्लेखानोफ की कृतियों को व्लादिमिर ने पहले भी पढ़ा था। प्लेखानोफ के विचारों और जीवन से भी वह परिचित थे। लेकिन व्लादिमिर की प्लेखानोफ से मुलाकात पहले-पहल स्विट्जरलैंड में हुई। कहने की आवश्यकता नहीं कि रूस में मार्क्सवाद के इस प्रथम शिक्षक से व्लादिमिर ने बड़े आदर के साथ मुलाकत की। प्लेखानोफ तथा 'मजदूर उद्धारक गुट' के दूसरे सदस्यों के साथ बड़ी सद्भावना के साथ बातचीत हुई और कार्य-नीति तथा संगठन सम्बन्धी कई बातों पर विचार-विनिमय हुआ। प्लेखानोफ के गुट ने व्लादिमिर के प्रस्ताव को स्वीकार करके अवसर मिलते ही कमकरों के लिए सीधी-सादी भाषा में पुस्तक-माला निकालने का फैसला किया। इसी निर्णय के अनुसार समय-समय पर निकलनेवाली पत्रिका 'रबोतिनक' (कमकर) आरम्भ हुई जिसके लिए व्लादिमिर ने रूस से लेख और पत्र भेजने का प्रबन्ध किया।

समझौते की बातचीत करते समय पता चला कि कुछ बातों पर व्लादिमिर और प्लेखानोफ में मतभेद हैं। स्त्रूवे की आलोचना करते हुए व्लादिमिर ने जो लेख लिखे थे उनमें उदारवादियों के प्रति व्लादिमिर का बर्ताव प्लेखानोफ को पसन्द नहीं आया। उन्होंने कहा था : "तुम उदारवादियों की तरफ पीठ फेरते हो और हम उनकी ओर मुँह फेरते हैं।" यही नहीं, व्लादिमिर जहाँ सर्वहारा के सहायक के तौर पर किसानों के महत्त्व को स्वीकार करते थे, वहाँ प्लेखानोफ उनको कोई महत्त्व नहीं देते थे। रूस में पूँजीवादी-जनवादी क्रांति की संचालन-शक्ति उदारवादी पूँजीवादियों को मानकर प्लेखानोफ उनका पल्ला पकड़ना चाहते थे। ऐतिहासिक भौतिकवाद के सम्बन्ध में भी कितनी ही बातों पर दोनों में सैद्धांतिक मतभेद थे।

व्लादिमिर स्विट्जरलैंड में करीब छः सप्ताह रहे। फिर उन्होंने पेरिस और बर्लिन में दो महीने बिताये। वहाँ उन्होंने मजदूर वर्ग के आंदोलन का नजदीक से अध्ययन किया। वह कमकरों की सभाओं में सम्मिलित हुए और पश्चिमी यूरोप के कमकरों के जीवन और स्थिति से निकट का परिचय प्राप्त किया। अपनी माँ को लिखे एक पत्र में व्लादिमिर ने कहा था : "मैं बर्लिन की सैर और परिदर्शन के लिए बिल्कुल उत्सुक नहीं हूँ। वस्तुतः मैं उसकी उपेक्षा करता हूँ और संयोग से ही कुछ देख लेता हूँ। मैं सार्वजनिक सभाओं में जाना और अजायवघरों, नाट्यशालाओं वगैरा की सैर करना ज्यादा पसन्द करता हूँ।"

एंगेल्स की मृत्यु—व्लादिमिर जिस समय परदेश में थे उसी समय एंगेल्स बुरी तरह वीमार पड़े। व्लादिमिर

उन्हें देख नहीं सके। पेरिस में उन्होंने मार्क्स के दामाद पॉल लाफार्ग से मुलाकात की जो फ्रांसीसी समाजवादियों के एक प्रमुख नेता थे। व्लादिमिर परदेश से लौटनेवाले ही थे कि अगस्त, 1895 में इंगलैंड में, एंगेल्स का देहान्त हो गया। व्लादिमिर ने शोकं प्रकट करते हुए 'फ्रेडरिक एंगेल्स' के नाम से 'रबोत्निक' (अंक 1-2)में छोटा-सा, किन्तु बहुत ही सुन्दर, लेख लिखा।

विदेश में व्लादिमिर ने मार्क्स और एंगेल्स की उन पुस्तकों को पढ़ा जो रूस में नहीं मिल रही थीं। पश्चिमी यूरोप के सार्वजनिक पुस्तकालयों का भी उन्होंने अच्छी तरह उपयोग किया।

देश लौटना—7 सितम्बर, 1895 को व्लादिमिर रूस लौट आये। सीमा-रक्षी पुलिस को सख्त हिदायत थी कि व्लादिमिर के असबाब की अच्छी तरह तलाशी ली जाय। लेकिन पुलिस को खाली हाथ रह जाना पड़ा। व्लादिमिर के ट्रंक में दोहरी पेंदी थी जिसके बीच में उन्होंने मार्क्सीय साहित्य को छिपा रखा था। नरोद्‌निक और उनकी तरह के दूसरे क्रांतिकारियों को बम और पिस्तौलों को छिपाकर लाने में बड़ी कोशिश करनी पड़ती थी। लेकिन, मार्क्सवादियों का वैयक्तिक आतंकवाद तथा बमों और पिस्तौलों पर विश्वास नहीं था। व्यक्तियों की हत्या से वे सर्वहारा को मुक्त करने की आशा नहीं करते थे। मार्क्सवादी समझते हैं कि मार्क्सवाद का ज्ञान सबसे जबर्दस्त हथियार है।

इस खतरनाक हथियार का कुछ-कुछ पता दूसरी सरकारों की तरह जारशाही सरकार को भी हो चला था।

व्लादिमिर की तलाशी लेने से ही पुलिस को संतोष नहीं हो सका था। वह पीतरबुर्ग में भी उनका 'स्वागत' करने के लिए तैयार थी। लेकिन, सीधे पीतरबुर्ग जाने के बजाय व्लादिमिर बाईस दिन तक रूस के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमते रहे। वह विलनस (लिथुआनिया) गये। लिथुआनिया बाल्तिक समुद्र के किनारे है। वहाँ जहाजियों द्वारा मार्क्सवादी साहित्य पहुँच सकता था। व्लादिमिर ने इसका इन्तजाम किया। फिर वह मास्को और ओरेखोवो-जुयेवो पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्थानीय सामाजिक-जनवादियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। व्लादिमिर देख रहे थे कि रूस के मजदूर वर्ग के सामने जो विशाल कार्य है, उसके लिए कार्यकर्ताओं की कमी है। जो कार्यकर्ता थे भी, उनमें एकता नहीं थी और वे नौसिखियों की तरह काम करते थे। इसलिए उन्होंने कमकर मार्क्सवादी पार्टी की आवश्यकता जोरों से महसूस की। उस समय इसके बारे में उनके दिमाग में कौन-कौन से विचार जन्म ले रहे थे, यह 1902 ई. में लिखी उनकी पुस्तक **क्या करें ?** की निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है :

> "मैं उस समय एक ऐसे चक्र में काम करता था जिसने अपने सामने विशाल और सर्वव्यापी कार्यक्रम रखा था। उस चक्र का प्रत्येक सदस्य यह देखकर बड़ी वेदना अनुभव करता था कि हम इतिहास के ऐसे समय में अपने को नौसिखिया साबित कर रहे हैं जब हमें यह कहने लायक होना चाहिए था... 'क्रांतिकारियों का एक संगठन हो और हम सारे रूस को उलट देंगे'।"

4. पार्टी संगठन की तैयारी

अब व्लादिमिर ने अपना सारा ध्यान संगठन के काम पर लगाया। पीतरबुर्ग में काम आगे बढ़ाने के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक-जनवादी संगठन को दृढ़ और व्यापक बनाने का बीड़ा उठाया। परदेश से रूस लौटने पर अब और भी ज्यादा तत्परता के साथ वह इस काम में जुट गये। प्रायः रोज ही वह कमकरों के मोहल्लों में जाते, वहाँ बैठकें और सभाएँ करते और मजदूरों से बातचीत करके उन्हें मार्क्सवाद समझाने का प्रयत्न करते। सामाजिक-जनवादी संगठन के मेम्बरों को शिक्षा देना भी उनका एक काम था। संगठन के असली ध्येय की ओर कदम बढ़ाते व्लादिमिर ने पीतरबुर्ग में उस समय मौजूद सभी मार्क्सवादी कमकर चक्रों—जिनकी संख्या करीब बीस थी—को मिलाकर एक संगठन का रूप दिया। इसका नाम 'मजदूर-वर्ग के मुक्ति-संग्राम का पीतरबुर्ग संघ' पड़ा। यह क्रांतिकारी मार्क्सवादी पार्टी के निर्माण का आरंभ रूप था। इस संघ को इलिच ने केंद्रवाद और कठोर अनुशासन के सिद्धांतों पर आधारित किया था। संघ का नेतृत्व एक केंद्रीय दल के हाथ में था

जिसकी कार्रवाइयों का संचालन पाँच सदस्य करते थे। उसके मुखिया व्लादिमिर थे। संघ के प्रकाशनों के सम्पादक भी ये ही लोग थे। यह संगठन मोहल्लों में बाँटा हुआ था। हरेक मोहल्ले के दल का एक संगठनकर्ता होता था जो सबसे आगे बढ़े तथा वर्ग-चेतन कमकरों में से चुना जाता था। वही जिला-मोहल्ला-दल और कारखानों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता था। स्वयं कारखानों के भीतर भी संगठनकर्ता थे। ये कारखानों के भीतर के हरेक बात से दल को परिचित रखते थे और वहाँ संघ के साहित्य को बँटवाते थे। सभी बड़े-बड़े कारखानों में कमकरों के चक्र संगठित थे जिनमें मार्क्सवाद के सिद्धांतों के अतिरिक्त तत्कालीन राजनीतिक प्रश्नों पर भी बहस होती थी। वस्तुतः ये चक्र कारखानों के भीतर सामाजिक-जनवादी सेलों का काम देते थे।

व्लादिमिर के नेतृत्व में कमकर वर्ग के जन-आन्दोलन के साथ संघ का घनिष्ट संबंध स्थापित हुआ। व्लादिमिर कारखानों के भीतर की स्थिति को बड़ी सजगता से देखते और कमकरों के मनोभावों से परिचित रहने की कोशिश करते। जब थॉर्नटन कपड़ा मिल में असन्तोष फैला तो उन्होंने वहाँ के कमकरों की स्थिति, उनपर किये गये जुर्मानों आदि सभी आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह किया। इस तरह, वह वहाँ की छोटी से छोटी बातों से परिचित हो गये। भिन्न-भिन्न कामों की मजदूरी की दर आदि ही नहीं, वहाँ बननेवाले भिन्न-भिन्न कपड़ों को भी वह जानते थे। कारखाने के भीतर की सभी बातों के साथ परिचय और कमकरों के साथ वास्तविक भाईचारा रखनेवाले नेता के प्रति मजदूरों का विश्वास भला क्यों न बढ़ता ? इसीलिए, हड़ताल-आन्दोलन के वह एक विश्वसनीय नेता बन गये। मजदूर संघ उक्त कपड़ा मिल की हड़ताल को संगठित करके हड़ताल का नेतृत्व करने में सफल हुआ। 5 नवम्बर 1895 को संघ ने एक पत्रक निकाला जिसका शीर्षक था 'बुनकरों की माँगें।' इस पत्रक का कमकरों पर इतना गहरा असर पड़ा कि दूसरे ही दिन उन्होंने हड़ताल कर दी और मिल से बाहर चले आये। कुछ दिनों बाद व्लादिमिर ने थार्नटन मिल के हड़तालियों को सम्बोधित करते हुए एक दूसरा पत्रक निकाला। इस पत्रक में थार्नटन की चाल को खोलकर रखा गया था। वह पीस-रेट को धीरे-धीरे कम करने की इच्छा से एक समय में कमकरों के एक भाग पर ही आक्रमण करना चाहता था। व्लादिमिर ने पत्रक में बताया कि कमकर अपनी स्थिति को केवल तभी सुधार सकते हैं जब वे एक होकर प्रयत्न करें। हड़तालियों ने अपने तरुण नेता की बात पर विश्वास किया। हड़ताल सफल हुई। इस हड़ताल की सफलता से केवल थार्नटन मिल के मजदूरों को ही लाभ नहीं हुआ; पीतरबुर्ग के हड़ताल-आंदोलन को भी इससे जबर्दस्त बल मिला। व्लादिमिर ने ऐसे कितने ही पत्रक निकाले जिनमें कमकरों की आर्थिक माँगों को उनकी राजनीतिक माँगों से जोड़ा गया था। ये पत्रक कमकरों की लड़ाकू भावना को बढ़ाने में सहायक हुए। इन सफलताओं को देखकर कमकर-जनसाधारण में संघ के प्रति विश्वास क्यों न बढ़ता ? उसने और भी कितनी ही हड़तालों का संचालन किया। उसका जबर्दस्त प्रभाव 1896 ई. की गर्मियों में देखने में आया जब पीतरबुर्ग की कपड़े की मिलों के मजदूरों की एक बड़ी हड़ताल हुई।

व्लादिमिर के पथ-प्रदर्शन में चलनेवाला मजदूर वर्ग का मुक्ति-संग्राम संघ रूस का पहला संगठन था जिसने मजदूर-वर्ग-आंदोलन को समाजवाद के साथ एकजुट किया और कमकरों की आर्थिक माँगों के संघर्ष का जारशाही-विरोधी राजनीतिक संघर्ष के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। बाद में लेनिन ने लिखा : "1894-95 ई. में किये गये आंदोलन और 1895-96 ई. की हड़तालों ने ही सामाजिक-जनवादियों और मजदूर वर्ग के जन-आंदोलन के बीच लगातार जारी रहनेवाले तथा मजबूत सम्बन्ध को स्थापित किया।"

पीतरबुर्ग के संघ की सफलताओं से प्रेरित हो, रूस के दूसरे नगरों और प्रदेशों में भी कमकर-चक्रों को एक साथ जोड़कर उन्हें संघों के रूप में संगठित किया गया।

लेकिन व्लादिमिर इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए। संघ का कार्यक्षेत्र केवल पीतरबुर्ग तक सीमित था। ऐसे संगठन को और भी विशाल रूप देने की जरूरत थी। व्लादिमिर ने तै किया कि संघ को पार्टी का आधार बनना चाहिए। वह जानते थे कि रूस के भिन्न-भिन्न नगरों के सामाजिक-जनवादियों को एकताबद्ध करके ही यह काम किया जा सकता है। दो वर्षों के भीतर उन्होंने इस दिशा में बहुतकुछ काम पूरा किया। संघ का संबंध अब मास्को, किएव, व्लादिमिर, यारोस्लाव्ल, इवानोवो-वज्नेसेन्स्क, ओरेखोवो-जुयेवो, निज्नी-नवगरोद,

समारा, सरातोफ, ओरल, त्वेर, मिन्स्क, विलना आदि नगरों के सामाजिक-जनवादी संगठनों के साथ भी हो गया। इस सम्बंध को और मजबूत करने की आवश्यकता थी और इस काम में एक अच्छा समाचार-पत्र ही सहायक हो सकता था। समाचारपत्र स्थानीय कामों को, या एक-एक कारखाने के मजदूरों के लिए निकलनेवाले पत्रों के काम को तो पूरा कर ही सकता था; वह मजदूर वर्ग के संघर्ष के तुरन्त के लक्ष्य तथा चरम उद्देश्य को भी ठीक रूप से रख सकता था। यही सोचकर व्लादिमिर ने 'रबोचेये-देलो' (कमकर-ध्येय) पत्र निकालने की तैयारी की। अखवार के पहले अंक के लिए उन्होंने तीन लेख लिखे। सम्पादकीय का शीर्षक था : 'रूसी कमकरों के नाम।' एक दूसरा लेख था फ्रेडरिक एंगेल्स के निधन पर शोक प्रकट करने के सम्बन्ध में। तीसरे लेख का शीर्षक था : "हमारे मंत्री क्या सोच रहे हैं ?" सम्पादकीय लेख में बतलाया गया था कि रूस के मजदूर वर्ग का ऐतिहासिक मिशन क्या है और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की आवश्यकता क्यों है। इन लेखों के अतिरिक्त 'रबोचेये-देलो' में यारोस्लाव्ल, इवानोवो-वज्नेसेन्स्क, विलना और व्येलोस्तौक के मजदूर-आन्दोलनों के बारे में रिपोर्ट भी दी गयी थी और पीतरबुर्ग के हड़ताल-आन्दोलन का सिंहावलोकन भी था। अखबार प्रकाशित करने की सारी तैयारी कर ली गयी थी।

5

बन्दी जीवन (1895-1900 ई.)

1. जारशाही कोप

जारशाही व्लादिमिर की गतिविधि से परिचित थी। वह समझती जा रही थी कि अलेक्सांद्र उलियानोफ का भाई और भी खतरनाक है। इसलिए वह अधिक देर तक चुप नहीं रही।

गिरफ्तारी (1895 ई.)–8 दिसम्बर, 1895 को जारशाही पुलिस संघ के ऊपर टूट पड़ी। बहुत-से मेम्बरों के साथ व्लादिमिर को भी उसने पकड़ लिया। कमकर और संघ के बचे हुए सदस्य इस हमले को चुपचाप बर्दाश्त न कर सकते थे। उन्होंने राजनीतिक माँगों को रखते हुए कारखानों में पत्रक बाँटे। इससे कमकरों में जहाँ जारशाही के प्रति भारी घृणा पैदा हुई, वहाँ संघ और उसके नेता के प्रति उनका सम्मान और सम्बन्ध और भी मजबूत हुआ।

दो साल का जो समय व्लादिमिर इलिच को पीतरबुर्ग के मजदूरों में काम करने को मिला था, वह उनके तथा मजदूर-आन्दोलन के जीवन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। इसी समय व्लादिमिर को कमकरों में घुलने-मिलने का मौका मिला। इस सम्पर्क ने व्लादिमिर के क्रान्तिकारी स्कूल का भी काम किया। हम देख चुके हैं कि इसी समय समाजवादी आन्दोलन को पहली बार कमकर वर्ग के आम आंदोलन के साथ जोड़ा गया और बिखरी हुई शक्तियों को मार्क्सवादी क्रांतिकारी पार्टी के अंकुर–संग्राम संघ–के रूप में संगठित किया गया। जो तजुर्बा इस समय व्लादिमिर ने हासिल किया, उससे आगे चलकर मार्क्सवादी पार्टी बनाने में उन्हें बहुत सहायता मिली। पीतरबुर्ग के सर्वहारा का व्लादिमिर ने इसी समय वर्ग-शत्रुओं के खिलाफ क्रांतिकारी संघर्ष में पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने उनकी रोजमर्रा की कठिनाइयों के खिलाफ और उनकी माँगों के लिए संघर्ष चलाने में ही उनकी सहायता नहीं की; उन्होंने उन्हें आगे के महान् संघर्ष का क-ख-ग भी इसी समय पढ़ाया। इसके साथ-साथ उन्होंने 'नरोद्‌वाद', 'कानूनी मार्क्सवाद' तथा 'अर्थवाद' से भी लोहा लिया और मार्क्सवाद के रास्ते के काँटों और कूड़ा-करकट को साफ किया। व्लादिमिर ने कार्यकर्ताओं के दल को सैद्धांतिक और व्यावहारिक शिक्षा देकर इस योग्य बनाया कि वे आगे के महान संघर्षों का नेतृत्व कर सकें तथा बोल्शेविक पार्टी के निर्माण में हाथ बँटा सकें।

19वीं सदी के अन्त के साथ-साथ, समाज के हर अंग में भारी परिवर्तन होने लगे थे। पूँजीवाद अब

साम्राज्यवाद–अर्थात् इजारेदार-पूँजीवाद–का रूप ले रहा था। मार्क्स और एंगेल्स पेरिस कम्यून के बाद जिस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, वह उनके जीवन में नहीं आया। लेकिन अब, साम्राज्यवाद के कारण दुनिया के पूँजीवादी राष्ट्रों में बाजारों को हड़पने के लिए जो जबर्दस्त संघर्ष हो रहा था, उसके कारण क्रान्ति के अनुकूल परिस्थितियाँ सामने आ रही थीं। इन परिस्थितियों से फायदा उठाने के लिए मार्क्स-एंगेल्स जैसी ही प्रतिभा की आवश्यकता थी। और, वह लेनिन में मौजूद थी। उन्होंने धीरे-धीरे मजदूरों के संगठन और शिक्षा तथा उनकी हड़तालों द्वारा एक ऐसी भौतिक शक्ति तैयार की जिसे जारशाही व्लादिमिर को जेल में बन्द करके भी नहीं रोक सकी।

जेल में–व्लादिमिर इंलिच को चौदह महीने तक जेल में विचाराधीन कैदी के रूप में रखा गया। जारशाही पुलिस ने समझा था कि जेल की कालकोठरी में बन्द करके उसने उन्हें निष्क्रिय बना दिया है। लेकिन व्लादिमिर कच्चे खिलाड़ी नहीं थे। उन्होंने अपने दैनिक कार्य का पक्का प्रोग्राम बना लिया था। वह अपनी एक-एक घड़ी का सदुपयोग करते थे।

जिसके हृदय में गरीबों और शोषितों के प्रति अपार स्नेह हो और इसी अपराध में जिसे जेल में बन्द किया गया हो, उसे अपने सहायक प्राप्त करने में कैसे कठिनाई हो सकती है ? आखिर शोषक वर्ग की जेलों में भी गरीबों और उत्पीड़ितों की संतानें ही संतरी और पहरेदार का काम करती हैं। इन संतरियों आदि के द्वारा व्लादिमिर ने बाहर के संगटनों से सम्वन्ध ही स्थापित नहीं किया, वरन् उनका पथ-प्रदर्शन भी किया। वह वहाँ से चिट्ठियाँ और पत्रक लिखकर बाहर भेजा करते। उन्होंने हड़तालों के बारे में एक पुस्तिका तथा 'सामाजिक जनवादी पार्टी के कार्यक्रम का मसौदा और टीका' भी लिखकर जेल से बाहर भेजने में सफलता पायी। पार्टी के कार्यक्रम का यह पहला मसौदा था। व्लादिमिर ने इसमें लिखा था कि सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष का लक्ष्य है : स्वेच्छाचारिता को उखाड़ फेंकना, राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करना, सर्वहारा द्वारा राज्यसत्ता पर अधिकार करना और समाजवादी उत्पादन का संगठन करना। मसौदे में उन्होंने किसानों की समस्या पर भी काफी कुछ लिखा था। वह अपनी राजनीतिक चिट्ठियों और पत्रकों को पढ़ने के लिए भेजी गयी पुस्तकों की पंक्तियों के बीच में दूध से लिखा करते थे। कोई देख न ले, इसलिए वह दूध की दवात नरम-नरम पावरोटी के टुकड़ों से बनाते थे। लिखते समय अगर खतरा दिखाई देता तो वह दवात को मुँह में डालकर खा जाते–दूध भरी रोटी कड़वी तो होती नहीं थी। व्लादिमिर इलिच ने इस सम्वन्ध में अपने एक पत्र में लिखा था : "आज मैंने छः दवातें निगली हैं।"

व्लादिमिर की 'हड़ताल' नामक पुस्तिका जिस समय एक गुप्त प्रेस में छप रही थी, उसी समय पुलिस ने धावा बोलकर उसे जब्त कर लिया और उसका फिर पता नहीं लगा। 'मसौदा' भी बोल्शेविक क्रान्ति के बाद, 1924 ई. में ही पहली बार प्रकाशित हो सका।

जेल में बन्दी व्लादिमिर केवल बाहर के मित्रों और सम्बन्धियों के साथ ही पत्र-व्यवहार नहीं करते थे; जेल के दूसरे भागों में बन्द अपने साथियों के साथ उन्होंने अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। उनके पत्रों से साथियों को बहुत प्रोत्साहन और संतोष मिलता था, क्योंकि वे सदा आशा से भरे होते थे।

भावुकतावश नहीं बल्कि दिमागी तौर से पूरा विश्वास होने के कारण व्लादिमिर को रास्ते की कोई भी कठिनाई विचलित नहीं कर सकती थी।

अपनी गिफ्तारी के तीन हफ्ते बाद व्लादिमिर ने जेल से भेजे अपने एक पत्र में लिखा था :

"मेरे दिमाग में एक योजना है जो गिरफ्तार होने के समय से ही बराबर मेरे दिमाग में चक्कर काट रही है। उसके बारे में जितना ही अधिक सोचता हूँ उतना ही अधिक उसमें मेरी दिलचस्पी बढ़ती जाती है। कुछ समय से मैं एक आर्थिक प्रश्न (माल-उद्योग के लिए घरेलू बाजार) का अध्ययन करता रहा हूँ। मैंने इस विषय पर बहुत-सा साहित्य जमा किया है। काम करने की एक योजना भी बनायी है और इस विषय पर इस इरादे से कुछ लिखा भी है कि यदि वह पत्रिका के लेख से लम्बा हो जाय तो पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा सके। इस काम का खयाल छोड़ना मुझे बुरा लगेगा। अब दो ही

रास्ते मुझे दिखायी दे रहे हैं—या तो इसे यहाँ लिखूँ या इसका खयाल ही छोड़ दूँ।"

अपने सम्बन्धियों को लिखे पत्रों में व्लादिमिर कितनी ही पुस्तकों, पत्रिकाओं और दूसरी आवश्यक सामग्री को अपने पास भेजने के लिए कहते। इन पुस्तकों को उनकी बहन अन्ना जेल में पहुँचाने का काम करतीं। व्लादिमिर ने उस समय बहुत-सी पुस्तकों का अध्ययन किया और एक बड़े परिमाण में उनसे उद्धरण लिए। यह व्लादिमिर के महान ग्रंथ 'रूस में पूँजीवाद का विकास' का आरम्भ था।

1896 ई. में व्लादिमिर को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मजदूर मुक्ति-संग्राम संघ के कामों ने फल देना शुरू किया है। पीतरवुर्ग में तीस हजार बुनकरों ने हड़ताल की। इसके बारे में 1905 ई. में व्लादिमिर ने लिखा : "यह जनसाधारण का आन्दोलन था, जिसका आरम्भ सड़क के आंदोलन से हुआ था। इसमें सामाजिक-जनवादी संगठन पूरी तौर से शामिल हुआ था।"

29 जनवरी, 1897 को संग्राम संघ के मुकदमे का फैसला सुनाया गया। व्लादिमिर इलिच को तीन साल तक पूर्वी साइवेरिया में निर्वासन का दण्ड दिया गया। उनके साथियों को भी निर्वासन की भिन्न-भिन्न सजाएँ हुईं।

पीतरवुर्ग से साइवेरिया भेजे जाने से पहले पीतरबुर्ग में तीन दिन और रहने की उन्हें मुहलत दी गयी थी। इन तीन दिनों में व्लादिमिर इलिच ने जो निजी काम किया वह यही था कि उन्होंने पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादी के कई सम्मेलन किये। साइबेरिया रवाना होने से पहले उन्होंने क्या-क्या किया था, इसके बारे में अपनी पुस्तक **क्या करें ?** में उन्होंने लिखा था कि "मैं और संघ के कितने ही पुराने मेम्बर एक निजी बैठक में शामिल हुए थे जिसमें संग्राम संघ के 'बूढ़े' और 'तरुण' सम्मिलित हुए थे।" वहाँ तुरंत ही पुराने मेम्बरों (जिन्हें पीतरबुर्ग के सामाजिक-जनवादी मजाक में 'दिसम्बरी' कहते थे) और वहुत-से 'तरुण' मेम्बरों के बीच मतभेद प्रकट हुए और उनमें गर्मागरम बहस छिड़ गयी।" 'पुराने' मेम्बरों की राय के विरुद्ध 'तरुण' अपना कार्य यह मानते थे कि हड़तालियों की सहायता और सांस्कृतिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए 'श्रमिक फंड' जमा किया जाय। वे इस विचार के विरुद्ध थे कि कमकर राजनीतिक स्वतंत्रताओं और समाजवाद के लिए संघर्ष करें। वे यह भी नहीं पसन्द करते थे कि मजदूर-वर्ग का नेतृत्व करने के लिए क्रांतिकारियों का एक संगठन कायम किया जाय। इसकी जगह वे जोर दे रहे थे कि कमकरों को केवल मजदूर सभाओं में संगठित किया जाना चाहिए। इस वहस-मुबाहिसे में व्लादिमिर ने 'अर्थवाद' के कीटाणुओं को ताड़ लिया और तुरन्त उनपर प्रहार किया।

2. शुशेन्स्कोये में निर्वासित जीवन (1897-1900 ई.)

साइबेरिया की विकट यात्रा के लिए व्लादिमिर ने 17 फरवरी, 1897 को प्रस्थान किया। माँ की प्रार्थना को मंजूर करके अधिकारियों ने अपने खर्च पर सफर करने की उन्हें इजाजत दे दी। 4 मार्च को वह क्रास्नोयार्स्क पहुँचे। अभी उनके रहने के स्थान का निश्चय नहीं हो पाया था। इसलिए साइबेरिया के इस कस्बे में उन्हें दो महीने तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस समय को व्लादिमिर इलिच ने बेकार नहीं जाने दिया। क्रास्नोयार्स्क के व्यापारी ग. य. यूदिन के पास पुस्तकों का बहुत अच्छा संग्रह था। व्लादिमिर प्रतिदिन उस पुस्तकालय में जाते और अपनी पुस्तक **रूस में पूँजीवाद का विकास** के लिए नोट्स लेते। अध्ययन और नोट्स लेने के बाद जो समय बचता उसमें वह वहाँ निर्वासित मार्क्सवादियों से मुलाकात करते। एक बार गाड़ीवान का भेस बदलकर कैदियों की चीजों को ले जानेवाली गाड़ी में बैठकर वह जेल के भीतर जा पहुँचे और वहाँ नजरबन्द अपने पुराने साथी फेदोसेयेफ से भी मिल आये।

इधर व्लादिमिर इलिच यूदिन के पुस्तक-संग्रह में अध्ययन तथा मित्रों-संबंधियों के साथ पत्र-व्यवहार में व्यस्त थे; उधर पुलिसवालों को भारी चिंता सवार थी। एक दिन येनीसेइस्क गुबर्निया (प्रदेश) के जेल-इंस्पेक्टर ने देखा कि राज-अपराधी व. इ. उलियानोफ हाल ही में आयी निर्वासितों की टोली में नहीं है। वह घबरा उठा। गुम हो गये राजबन्दी को ढूँढ़ने के लिए सारे देश में तार खटखटाये गये। मुख्य जेल-शासन, पुलिस-विभाग,

क्रास्नोयार्स्क का मुख्य कांस्टेबल, येनीसेइस्क का गर्वनर, यहाँ तक कि इर्कूत्स्क का गवर्नर-जनरल भी—सभी परेशान होकर व्लादिमिर की खोज-बीन में जुट पड़े। अन्त में, 'बगल में लड़का गाँव ढिंढोरा' वाली कहावत सिद्ध हुई। व्लादिमिर मदाम पपोवा के मकान में अपने उसी कमरे में पाये गये जिसमें वह क्रास्नोयार्स्क में आते ही ठहरे थे।

अब हुक्म हुआ कि व्लादिमिर इलिच को येनीसेइस्क गुबर्निया के मिनुसिन्स्क ओकरुग (इलाके) के शुशेन्स्कोये गाँव में अपने निर्वासन की अवधि बितानी होगी, यह गाँव रेलवे स्टेशन से 500 वर्स्त (करीब 334 मील) दूर था। व्लादिमिर ने लगभग तीन वर्ष वहाँ विताये। बहन को पत्र लिखते हुए स्थान के बारे में उन्होंने लिखा था :

"यह एक बड़ा गाँव है। कई सड़कें हैं, लेकिन सभी गंदी और धूल भरी—वैसी ही जैसी होनी चाहिए। यह गाँव एक खुली स्तेपी (चटियल मैदान) में स्थित है। यहाँ न तो एक भी बगीचा है, न किसी जगह कोई वनस्पति। गाँव चारों ओर...गोबर से घिरा हुआ है। यह गोबर या कूड़ा-करकट दूर न ले जाकर गाँव के बिल्कुल किनारे इकट्ठा कर दिया गया है। इसलिए इस स्थान से निकलने पर आदमी को अवश्य कुछ दूर तक गन्दगी से गुजरना पड़ता है।"

क्रांतिकारी कार्य से अछूते रहकर निर्वासित जीवन बिताना व्लादिमिर के लिए बड़ी कष्टकर बात थी। बेल्जियम गयी अपनी बहन मारिया को 1898 ई. के अन्त में पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा था :

"हाँ, मैं तुमसे ईर्ष्या करता हूँ। अपने निर्वासन के पहले काल में मैंने निश्चय किया था कि यूरोपीय रूस या यूरोप के नक्शे पर नजर भी न डालूँ; क्योंकि उसे खोलकर चारों ओर बिखरे काले बिन्दुओं को देखना मेरे हृदय में टीस पैदा करता था। लेकिन अब वह भावना पुरानी पड़ गयी है। मैं नक्शे को बड़ी शांति के साथ देख सकता हूँ। बल्कि कभी-कभी मैं यह कल्पना भी करने लगता हूँ कि बाद में इन बिंदुओं में से कहाँ की यात्रा करना दिलचस्प होगा। अपने निर्वासन-काल के पूर्वार्द्ध को मैं अधिकतर पीछे की ओर देखता रहा, किन्तु अब आगे की ओर देखना है। हाँ, जो जियेगा, वही तो देखेगा।"

अध्ययन—व्लादिमिर को अब अध्ययन के लिए समय मिला। 27 वर्ष के क्रांतिकारी तरुण के स्वभावतः हर्षोत्फुल्ल हृदय को उदासी कब तक घेरे रह सकती थी? उन्हें अब जो समय मिला उसको उन्होंने अपने सैद्धांतिक और वैज्ञानिक अनुसंधानों में लगाना शुरू किया। लिखने की योजना बनाकर उन्होंने अलग-अलग पुस्तकों के लिए समय बाँट लिया। सबसे पहले उन्हें 'रूस में पूँजीवाद का विकास' को समाप्त करना था। उन्होंने मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों को फिर से पढ़ा और सौभाग्य से प्राप्त मार्क्सीय साहित्य के सबसे नये संस्करणों का पारायण किया। भिन्न-भिन्न विषयों पर उन्होंने कितनी ही पुस्तकें तथा रूसी और विदेशी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ीं। उन्होंने विदेशी भाषाओं के अपने ज्ञान को बढ़ाया और कुछ पुस्तकों के अनुवाद किये। मजदूर संग्राम संघ के सम्बन्ध में ही न. क. क्रुप्स्काया को भी साइबेरिया-निर्वासन का दण्ड मिला था। बहुत कोशिश करने पर क्रुप्स्काया को व्लादिमिर के साथ निर्वासन-काल बिताने की आज्ञा मिली। मई, 1898 के आरम्भ में वह शुशेन्स्कोये गाँव पहुँचीं। क्रुप्स्काया के साथ मिलकर व्लादिमिर ने सिडनी और बीट्रिसवेब की पुस्तक **मजदूर आंदोलन का इतिहास** का रूसी में अनुवाद किया। व्लादिमिर लिखने-पढ़ने में बहुत परिश्रम करते थे; लेकिन वह मनोविनोद के भी प्रेमी थे। दूर तक टहलना उन्हें बहुत पसन्द था। शिकार का भी उन्हें बहुत शौक था। शतरंज उन्हें बहुत प्रिय था। स्केटिंग करना बचपन ही से उन्हें अच्छा लगता था। उनके पास मनोविनोद के लिए इतनी अधिक चीजें थीं; और अब उनकी प्रिया क्रुप्स्काया भी जीवन-संगिनी बनकर आ गयी थीं। इसलिए, शुशेन्स्कोये में अब पहले जैसा रूखापन नहीं महसूस होता था। पुश्किन, लेर्मन्तोफ, नेक्रोसोफ की कृतियों को व्लादिमिर बड़े चाव से बार-बार पढ़ते और पहले ही से सुपरिचित रूसी साहित्य की दूसरी अमर कृतियों का भी आनन्द लेते।

साहित्य और मनोविनोद, सैद्धांतिक अध्ययन और मनन के अतिरिक्त उनकी अनुसंधानप्रिय प्रतिभा साइबेरिया की देहातों को अछूता नहीं छोड़ सकती थी। उन्होंने वहाँ की भूमि और किसानों की हालत का नजदीक से अध्ययन किया। उनका बैरिस्टर होना यहाँ काम आया। स्थानीय धनियों और सरकारी अधिकारियों से किसानों के हकों की रक्षा करने के लिए वह मुकदमों में गरीब किसानों की पैरवी करते। बन्दी जीवन बितानेवाले इस

पुरुष का यशोगान करते ये गरीव किसान कभी नहीं थकते थे।

साइवेरिया में उस समय बहुत-से सामाजिक-जनवादी निर्वासित जीवन विता रहे थे। उसी गाँव में व्लादिमिर के अतिरिक्त दो और निर्वासित रहते थे। मिनुसिन्स्क इलाके में भी कितने ही ऐसे राज्य-निर्वासित थे जो संघवाले मुकदमे में व्लादिमिर के सह-अभियुक्त रह चुके थे। दूसरे ऐसे भी कितने ही थे जिनके साथ व्लादिमिर ने पीतरबुर्ग में क्रांतिकारी काम किया था। पुलिस की आँखों में धूल झोंककर इन साथियों की कभी-कभी बैठकें हुआ करतीं जिनमें बड़ी जिन्दादिली देखी जाती थी। सुदूर उत्तर तथा साइबेरिया के कितने ही और एकांत स्थानों में विखरे हुए सामाजिक-जनवादी निर्वासितों के साथ व्लादिमिर ने सम्वन्ध स्थापित किया। कठिनाई होने पर भी उन्होंने मजदूर उद्धारक गुट के परदेश में रहनेवाले लोगों तथा रूस के क्रांतिकारी केंद्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया और वहाँ से गैर-कानूनी पुस्तकें प्राप्त कीं। उन्होंने गैर-कानूनी तौर पर छपने के लिए लेख और पुस्तिकाएँ भी लिखकर भेजीं। परन्तु पुलिस हमेशा उनपर नजर रखती थी। एक दिन अचानक पहुँचकर पुलिस ने व्लादिमिर के घर की तलाशी ली। लेकिन इन वातों में व्लादिमिर वहुत सतर्क रहते थे। पुलिस के हाथ कोई भी चीज नहीं पड़ी।

व्लादिमिर अपने सम्वन्धियों, अपने निर्वासित साथियों, मजदूर उद्धारक गुट तथा सामाजिक-जनवादियों के साथ बरावर पत्र-व्यवहार किया करते थे। ये पत्र बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये थे, क्योंकि उनके द्वारा ही वह बाहरी दुनिया से सम्वन्ध स्थापित करके वहाँ से सूचना पाने और अपनी हिदायतें भेजने में सफल हो सकते थे। दुर्भाग्य से इस पत्र-व्यवहार का बहुत थोड़ा अंश ही सुरक्षित रहा है जो बड़े ऐतिहासिक महत्त्व का है। व्लादिमिर अपने पत्र भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखते थे—कभी वे मार्क्सवादी दर्शन और नीति पर और कभी पार्टी के काम, मजदूर-आंदोलन के नये विकास, नयी पुस्तकों और भविष्य की योजना आदि के बारे में लिखते।

दार्शनिक विषयों पर लेंगनिक के साथ उनका पत्र-व्यवहार विशेष महत्त्व का है। संघ के सम्वन्ध में लेंगनिक भी गिरफ्तार किया गया था। उसे भी साइबेरिया में निर्वासन का दण्ड मिला था। वह कांट और ह्यूम के दर्शन से बहुत प्रभावित था। व्लादिमिर ने जब सुना तो उसके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया। वे पत्र यद्यपि बाद में नहीं मिल सके, लेकिन लेंगनिक ने बतलाया है कि,

> "मेरे पत्रों के उत्तर में व्लादिमिर इलिच ने...बड़ी नर्मी किन्तु दृढ़ता से ह्यूम के संदेहवाद और कान्ट के आदर्शवाद का विरोध किया और उनके मुकावले में मार्क्स-एंगेल्स के उत्साहप्रद दर्शन को सामने रखा। बड़े जोश के साथ वहस करते हुए उन्होंने कहा था कि मानव-ज्ञान की कोई सीमा नहीं। उसे भारी प्रगति करनी होगी और क्रांतिकारी मजदूर आंदोलन जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वह आदर्शवादी-पूँजीवादी खोल को फेंकता जायगा। क्रांतिकारी मजदूर आंदोलन केवल मजदूर वर्ग के व्यवहार और विश्व-दृष्टिकोण—जो कि एकदम स्पष्ट, उत्साहप्रद तथा अपनी सादगी और सौंदर्य से आत्मविभोर कर देनेवाला है—को ही निश्चित नहीं कर देगा, वल्कि बहुत ही निश्चित परिमाण में वर्ग-विरोधियों के व्यवहार तथा विश्व-दृष्टिकोण को भी निर्धारित करेगा और उन्हें धुन्ध भरे अतिलौकिक व सिद्धांतों-सपनों की भाषा की जगह तथ्यों और बैरीकेडों की भाषा में बोलने को बाध्य करेगा।

ग्रंथरचना—शुशेन्स्कोये में बहुत-सी बातों का अभाव था, स्थितियाँ प्रतिकूल थीं। लेकिन तो भी, ग्रन्थ-रचना का जो काम व्लादिमिर ने वहाँ रहकर किया, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। तीन वर्ष के निर्वासन काल में उन्होंने तीस पुस्तकें लिखीं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं :

1. रूस में पूँजीवाद का विकास;
2. रूसी सामाजिक-जनवादियों के कर्तव्य;
3. आर्थिक रोमांसवाद के स्वरूप-निर्धारण के सम्बन्ध में;
4. वह विरासत जिसे हमने त्याग दिया;
5. कृषि-क्षेत्र में पूँजीवाद;
6. रूसी सामाजिक-जनवादियों का विरोध;

7. हमारी पार्टी के कार्यक्रम का मसौदा, आदि।

अपनी इन कृतियों में व्लादिमिर इलिच ने मजदूर-आंदोलन की मौलिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए उनका हल बताया, पार्टी का कार्यक्रम तैयार करते हुए पार्टी को दाँव-पेंच सुझाये और 'नरोद्वाद', 'कानूनी मार्क्सवाद' तथा 'अर्थवाद' की खबर ली।

इस समय व्लादिमिर ने यह आवश्यक समझा कि जो काम पहले किया जा चुका है, उसका संक्षिप्त विश्लेषण करते हुए आगे आनेवाले कार्यों के लिए आधार तैयार करें। यह इसलिए भी आवश्यक था कि जल्दी ही पहली पार्टी कांग्रेस होनेवाली थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1897 ई. के अंत में **रूसी समाजवादियों के कर्तव्य नामक प्रसिद्ध** पुस्तिका लिखी। इसमें पीतरबुर्ग के संग्राम संघ के कामों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उन्होंने रूसी क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों के राजनीतिक कार्यक्रम और दाँव-पेंचों के लिए सैद्धांतिक भूमि तैयार की। उन्होंने बताया कि समाजवादियों और मार्क्सवादी पार्टी की जनतांत्रिक कार्रवाइयों के बीच अटूट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध पूँजीवादी-जनतांत्रिक क्रांति में विरोधी तथा क्रांतिकारी पार्टियों के प्रति मजदूर वर्ग के रुख को प्रकट करता है। उन्होंने यह भी बताया कि इस क्रांति में सर्वहारा को हिरावल की भूमिका अदा करनी है, और इससे, निरंकुशता को उखाड़ फेंकने में साधन के तौर पर, सशस्त्र विद्रोह का प्रश्न उठता है। उन्होंने जोर दिया कि कमकर पार्टी के लिए मार्क्सवादी सिद्धांत का सबसे अधिक महत्त्व है। इसी पुस्तिका में पहले-पहल व्लादिमिर ने ये स्मरणीय वाक्य कहे थे : "क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना क्रांतिकारी आंदोलन सम्भव नहीं है।" रूस में काम करनेवाले सभी सामाजिक-जनवादियों का इस पुस्तिका ने पथ-प्रदर्शन किया।

देश के आर्थिक जीवन का व्लादिमिर ने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था। वह जानते थे कि औद्योगिक 'समृद्धि' के बाद आर्थिक संकट अनिवार्यतया आनेवाला है और वे यह भी जानते थे कि उस समय रूसी सामाजिक-जनवादियों के सामने जबर्दस्त कार्य होगा। उन्होंने लिखा था :

> "रूसी सामाजिक-जनवादियों को देखते रहना होगा कि जब वह भूचाल आये, उस समय रूसी सर्वहारा को अधिक वर्ग-चेतन, अधिक एकताबद्ध, रूसी मजदूर वर्ग के करणीयों को समझने में सक्षम, पूँजीपति-वर्ग–जो इस समय मुनाफों की भारी फसल बटोर रहा है और जो हमेशा नुकसान के बोझे को मजदूरों के कंधों पर डालने की कोशिश करता है–के विरुद्ध प्रतिरोध करने में समर्थ, और रूसी कमकरों तथा सारी जनता के पैरों में बेड़ी डालनेवाली पुलिस-स्वेचछाचारिता के विरुद्ध दृढ़ संघर्ष करने में रूसी जनवादियों का नेतृत्व ग्रहण करने के योग्य, होना चाहिए।"

व्लादिमिर ने अपनी इस पुस्तिका में रूस में चारों ओर बिखरे मजदूरों के चक्रों और सामाजिक-जनवादी दलों को शीघ्र एकताबद्ध होकर एक सामाजिक-जनवादी पार्टी में संगठित होने की अपील की। 1898 ई. में इस पुस्तिका को जनेवा में मजदूर उद्धारक गुट ने प्रकाशित किया। लेकिन पहली पार्टी-कांग्रेस में वह पहुँच नहीं सकी। पार्टी कार्यक्रम का जो मसौदा व्लादिमिर इलिच ने लिखा था, वह भी कांग्रेस में पेश नहीं हो सका।

'रूस में पूँजीवाद का विकास'–अपने निर्वासन के पहले दो वर्षों का अधिक भाग व्लादिमिर ने यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखने में बिताया था। इस पुस्तक के तैयार होने के साथ नरोद्निकों की सैद्धांतिक पराजय पूरी हुई। साधनों का इतना अभाव होने पर भी व्लादिमिर ने रूस के आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले सारे साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने सरकार तथा जेम्स्त्वों (स्थानीय बोर्डों) के आँकड़े जमा करनेवालों द्वारा संगृहीत विशाल सामग्री का बारीकी से परीक्षण और पुनर्वर्गीकरण किया। 1898 ई. के अगस्त महीने के आरम्भ में पुस्तक का पहला मसौदा तैयार हुआ। व्लादिमिर ने फिर से संशोधन और परिमार्जन करके पुस्तक के एक-एक अध्याय को प्रेस में भेजना शुरू किया। 30 जनवरी, 1899 को यह ग्रन्थ तैयार हुआ और उसी साल मार्च के अन्त में 'व्लादिमिर इलिन' के छद्म नाम से प्रकाशित हुआ।

मार्क्सवाद के विरोधियों पर आँकड़ों और युक्तियों द्वारा प्रहार करते हुए इस ग्रंथ में उन्होंने बताया कि 'नरोद्निकों', 'कानूनी मार्क्सवादियों' और 'अर्थवादियों' के पास कोई तथ्य और तत्त्व नहीं हैं। पहले उन्होंने 'बाजार' के प्रश्न पर नरोद्निकों के सैद्धांतिक विचारों का खोखलापन दिखलाया। फिर, पुनरुत्पादन के मार्क्सीय सिद्धांत

की संक्षिप्त, किन्तु वड़ी ही चमत्कारपूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत की। इसके बाद उन्होंने किसानी व्यवस्था की मुख्य बातों को लिया और सिद्ध किया कि किसानों में भी पूँजीवाद का विकास हो रहा है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी दिखलाया कि किस प्रकार पूँजीवाद जमींदारों के फार्मों के भीतर घुस रहा है और उद्योग (छोटे किसानों की दस्तकारी, माल-निर्माण और बड़े पैमाने के मशीन उद्योग के रूप में) विकसित हो रहा है। अन्त में लेखक ने रूस में घरेलू वाजार के निर्माण की प्रक्रिया भी बतलायी।

समारा में जिस गम्भीर अध्ययन को व्लादिमिर इलिच ने शुरू किया था, और पिछले पाँच वर्षों तक जिसे और गम्भीरता के साथ जारी रखते हुए उन्होंने सामग्री एकत्रित की थी, उसी का सुन्दर फल यह ग्रन्थ था। 1894 ई. में **जनता के मित्र क्या हैं ?** पुस्तक में व्लादिमिर ने अपने देश के मार्क्सवादियों के सामने यह सैद्धांतिक काम रखा : "उत्पादन में निश्चित संबंधोंवाली व्यवस्था के तौर पर हमारी स्थितियों का पूरा चित्र उपस्थित करना, यह दिखाना कि इस व्यवस्था के भीतर मेहनतकशों का शोषण और लूट-खसूट अनिवार्य है, और इस व्यवस्था से निकलने का वह रास्ता दिखाना जिसकी ओर आर्थिक विकास इंगित करता है।" जो लक्ष्य उन्होंने उस समय उपस्थित किया था, जो संकल्प उन्होंने अपने मन में किया था, उसी की पूर्ति व्लादिमिर ने अपने ग्रन्थ द्वारा की।

अपने इस ग्रन्थ द्वारा व्लादिमिर ने नरोद्वाद के अवैज्ञानिक सिद्धांतों की जड़ काटी। उन्होंने सावित किया कि "रूस में किसानी सम्वन्ध जमींदारी फार्मों में तथा किसानी व्यवस्था में भी, गाँव के समूहों में और उनके वाहर भी, पूँजीवादी ढंग पर विकसित हो रहे हैं। यह पहली बात है। और यह विकास अनिवार्य रूप से निश्चित कर देता है कि पूँजीवादी रास्ता छोड़ विकास का कोई दूसरा रास्ता नहीं हो सकता तथा पूँजीवादी वर्गीकरण को छोड़ वर्गों का कोई दूसरा वर्गीकरण नहीं हो सकता। यह दूसरी वात है। नरोद्निकों के साथ यह एक विवाद की वस्तु थी। इसे सिद्ध करना था और वह सिद्ध हो गयी।"

व्लादिमिर ने अपनी इस पुस्तक में रूस के भिन्न-भिन्न वर्गों के दर्जों और भूमिका को भी वतलाया—विशेषकर सर्वहारा और किसानों की भूमिका को।

1907 ई. में ग्रंथ के दूसरे संस्करण का प्राक्कथन लिखते हुए लेनिन ने कहा था :

> "आर्थिक अनुसंधान और आँकड़ों के सूक्ष्म विश्लेषण के आधार पर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का, और इसलिए रूस के वर्ग-सम्वन्धी ढाँचे का, जो विश्लेषण इस ग्रंथ में दिया गया है उसकी पुष्टि आज क्रान्ति के दौरान सभी वर्गों के सार्वजनिक राजनीतिक कार्यों से होती है। सर्वहारा को क्रान्ति में मुख्य भूमिका अदा करनी है, यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है। और यह भी स्पष्ट हो गया है कि ऐतिहासिक आन्दोलन में इसकी शक्ति सारी जनसंख्या में इसकी संख्या के अनुपात से असाधारण रूप से अधिक है। पाठकों के सामने उपस्थित की जानेवाली इस कृति में इन दोनों घटनाओं के आर्थिक आधार को दिखाया गया है।"

व्लादिमिर ने आगे वतलाया कि क्रान्ति ने किसान जनता के दोहरे दर्जे और दोहरी भूमिका को स्पष्ट किया है। एक ओर पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा के बीच किसान जनता ढुलमुलाती है और दूसरी ओर किसानों के वीच क्रान्ति की जड़ें गम्भीरता से रोप दी गयी हैं। "पाठकों के सामने उपस्थित की जानेवाली इस कृति में किसानों के इन दोनों मनोभावों के आर्थिक आधार को दिखलाया गया है।"

इस पुस्तक को समाप्त करने के बाद व्लादिमिर ने अलग-अलग आर्थिक विषयों में हाथ लगाया। उन्होंने 'कृषि के क्षेत्र में पूँजीवादी' के नाम से एक लम्वा निबंध लिखा। कितनी ही पुस्तकों की आलोचनाएँ उन्होंने 'कानूनी-मार्क्सवादियों' की पत्रिकाओं में छपवायीं। लेकिन 1899 ई. की गर्मियों में इन पत्रिकाओं में रचनाएँ भेजना उन्होंने बन्द कर दिया।

3. विभीषणों से लोहा

निर्वासन के अन्तिम वर्ष में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

घटीं। मार्क्स के सिद्धान्तों में संशोधन करने के लिए 'संशोधनवाद' अब बड़े जोर-शोर के साथ अखाड़े में उतर आया था। मार्क्स के जीवन-काल में बर्नस्टाइन उनका आशीर्वाद लेने लन्दन पहुँचा था। लेकिन 1899 ई. के आरम्भ में इसी जर्मन लेखक ने जर्मनी में अपनी बदनाम पुस्तक **समाजवाद के आधार** प्रकाशित करायी। उसी साल, जून महीने में एक फ्रांसीसी 'समाजवादी' वहाँ के पूँजीवादी मंत्रिमंडल में शामिल हुआ। फ्रांस और जर्मनी में जिस समय समाजवादी नेता ये कार्रवाइयाँ कर रहे थे, उसी समय हजारों मील दूर, सुदूर साइबेरिया के शुशेन्स्कोये गाँव में बैठे व्लादिमिर, समाजवादी आंदोलन के संसार में क्या हो रहा है, इसकी ओर बहुत सावधानी से देख रहे थे।

व्लादिमिर इलिच मार्क्सवाद की जड़ काटनेवाले तथाकथित मार्क्सवादियों की कार्रवाइयों को चुपचाप नहीं देख सकते थे। जर्मनी में बर्नस्टाइन मार्क्सवाद में 'संशोधन' के नाम पर उसकी आत्मा को नष्ट करना चाहता था। रूसी 'कानूनी मार्क्सवादी' सिद्धांत की आड़ में अपनी नपुंसकता छिपाना चाहते थे। प्लेखानोफ की लेखनी अब शिथिल हो चली थी और वह इसके सम्बन्ध में कुछ करने को तैयार नहीं दीख रहे थे। व्लादिमिर इलिच लेनिन ने अपने एक पत्र में लिखा था : "हमें मार्क्स के आलोचकों के खिलाफ वास्तविक और निष्ठुर युद्ध छेड़ना होगा।"

संशोधनवादी दर्शनशास्त्र की आड़ लेते थे। इसलिए व्लादिमिर अब दर्शनशास्त्र के समुद्र में गोता लगाने के लिए तैयार हुए। 1899 ई. की गर्मियों में क्रुप्स्काया ने व्लादिमिर की माँ को एक पत्र में लिखा था : "वलोद्या (व्लादिमिर) अब सब तरह के दर्शन—होलबाश, हेलवेशियो आदि—को बड़ी तन्मयता के साथ पढ़ रहा है। यह उसका मुख्य काम हो गया है। मैं उससे मजाक में कहती हूँ कि तू इस दर्शन में इतना रँगा जा रहा है कि जल्दी ही तुझसे बात करना भी खतरनाक हो जायगा।"

दर्शन के अब तक के अपने अध्ययन को पर्याप्त न समझ व्लादिमिर उसका सांगोपांग अध्ययन करने लगे। जून, 1899 में उन्होंने लिखा था : "दार्शनिक अध्ययन के बारे में अपनी कमियों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ और जब तक उनको दूर न कर लूँ, मैं उस विषय पर कलम नहीं उठाना चाहता।...यही काम है जिसमें इस समय मैं लगा हूँ। होलबाश और हेलवेशियो से आरम्भ करके मैं कान्ट तक पहुँचने की इच्छा रखता हूँ।" व्लादिमिर बड़ी अधीरतापूर्वक बर्नस्टाइन की किताब की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्त में वह आयी। इस किताब को आधी खतम करते-करते उनके दिल में आग लग गयी। उन्होंने बर्नस्टाइन की पुस्तक के बारे में लिखा :

> "जितना ही मैं इसे पढ़ता हूँ, उतना ही इसकी बातों पर मुझे अचरज होता है। इसका सैद्धांतिक स्तर आश्चर्यजनक रूप से कमजोर है, वह दूसरे लोगों के विचारों की पुनरोक्ति है। आलोचना की बात कही जाती है। लेकिन, किसी गंभीर या स्वतंत्र आलोचना की इसमें कोशिश भी नहीं की गयी है। इसके व्यावहारिक निष्कर्ष अवसरवादी (अथवा फाबियनवादी : बर्नस्टाइन के अधिकांश वक्तव्यों और विचारों का मूल वेब्स की सबसे नयी पुस्तकों में मिल सकता है), घोर अवसरवादी और सम्भावनावादी हैं, और सो भी पुराने कायरतापूर्ण ढंग के, क्योंकि बर्नस्टाइन खुले तौर से कार्यक्रम को छूने की हिम्मत नहीं करता।"

इसी समय 'अर्थवादियों' की कार्रवाइयों को देखकर व्लादिमिर को और भी परेशानी हुई। इसके जो पूर्व-लक्षण संघ में पहले-पहल दिखायी पड़े थे, उन पर व्लादिमिर ने जबर्दस्त आक्षेप किया था। लेकिन, अब 'अर्थवाद' एक आरम्भिक रुझान नहीं था। यह बीमारी अब स्थानीय सामाजिक-जनवादी संगठनों में बढ़ती जा रही थी।

4. पहली पार्टी कांग्रेस (1898 ई.)

रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की पहली कांग्रेस मिन्स्क में मार्च, 1898 में हुई। इसमें एक संगठित पार्टी बनाने का निश्चय किया गया। लेकिन, यह कांग्रेस बिखरे हुए मार्क्सवादी चक्रों तथा संगठनों को एक संस्था

के रूप में एकतावद्ध करने में असफल रही। पहले की तरह अभी भी काम करने में नौसिखियापन दिखायी पड़ता था। कांग्रेस के बाद स्थानीय संस्थाओं में सिद्धांत संबंधी गड़वड़ी फैलने लगी। ऐसी स्थिति मजदूर-आंदोलन के भीतर 'अर्थवाद' के फैलने के लिए बहुत उपयुक्त थी।

व्लादिमिर जानते थे कि रूसी मजदूर-आंदोलन में 'अर्थवादी' सवसे खतरनाक अवसरवादी घुन हैं। वे जानते थे कि यदि उनको दबाया नहीं गया तो इससे आंदोलन के आगे बढ़ने में भारी बाधा होगी। 1899 ई. में जब 'अर्थवादियों' ने अपना पत्र 'कीटो' (विश्वास या कार्यक्रम) निकाला, तो तुरन्त ही व्लादिमिर ने उसके खिलाफ हमला वोल दिया। उन्होंने 'रूसी सामाजिक-जनवादियों का विरोध पत्र' के नाम से एक मसौदा तैयार करके मिनुसिन्स्क इलाके में निर्वासित सामाजिक-जनवादियों के एक सम्मेलन में बहस के लिए पेश किया। सम्मेलन ने उसे स्वीकार किया। इस मसौदे में व्लादिमिर ने 'अर्थवादियों' पर आक्षेप करते हुए कहा था कि उन्होंने मार्क्सवाद को तिलाजंलि दे दी है, क्योंकि उन्होंने इस बात से इन्कार कर दिया है कि कमकर वर्ग की अपनी स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी होनी चाहिए और उन्होंने मजदूर वर्ग को पूँजीपति वर्ग की राजनीतिक पूँछ बनाने की कोशिश की है। व्लादिमिर ने लिखा था : "हमारा दृढ़ विश्वास है कि रूस में अवसरवादी दृष्टिकोण फैलाने के प्रत्येक प्रयत्न को रूसी सामाजिक-जनवादियों की वहुसंख्या के जवर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ेगा।" इसमें सामाजिक-जनवादियों से पार्टी-संगठन के काम में जी-जान से लगने के लिए कहा गया था। यह 'विरोध-पत्र' सारे रूस में और अन्य देशों में मार्क्सवादी राजनीतिक निर्वासितों के समूहों में बाँटा गया। 'अर्थवादियों' के विरुद्ध संघर्ष में इसने वड़ा काम किया। क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों को एकजुट करने में भी इससे बड़ी मदद मिली।

जिस तरह वर्नस्टाइनी विचारधारा पश्चिमी यूरोप में सामाजिक-जनवादी पार्टियों के भीतर मार्क्सवाद को विद्रूप कर रही थी, उसी तरह रूस में 'अर्थवाद' यह काम कर रहा था। इस प्रकार, रूस में व्लादिमिर का यह 'विरोध-पत्र' पश्चिमी यूरोप के अवसरवादियों के खिलाफ भी एक-सा लागू होता था।

व्लादिमिर इलिच के निर्वासन की अवधि समाप्ति पर थी। अव उन्हें फिर कार्यक्षेत्र में लौटना था। इसलिए उनका ध्यान सवसे अधिक आगे की क्रांतिकारी कार्रवाइयों पर था। उन्होंने एक क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी के निर्माण की योजना वनायी। इसकी रूपरेखा उनके 'हमारा कार्यक्रम', 'हमारा तुरन्त करणीय' और 'एक अत्यावश्यक समस्या' लेखों में खींची गयी थी। ये लेख 'रवोचेया गजेता' (मजदूर गजट) में प्रकाशन के लिए लिखे गये थे। इसे पार्टी की प्रथम कांग्रेस ने अपना केंद्रीय मुख-पत्र घोषित किया था। इन लेखों में कहा गया था कि मार्क्सवाद के तथाकथित आलोचकों से लोहा लेकर हमें उसके क्रांतिकारी सिद्धांत की शुद्धता की रक्षा करनी चाहिए। लेकिन, सिद्धांत की शुद्धता से उनका मतलब मतवाद का पोषण करना नहीं था। व्लादिमिर मजदूर-आंदोलन के व्यावहारिक अनुभवों से लाभ उठाते हुए मार्क्सवाद के सिद्धांत को और भी विकसित करने के जबर्दस्त समर्थक थे। 'हमारा कार्यक्रम' नामक लेख में उन्होंने लिखा था :

> "मार्क्स के सिद्धांत को कोई स्थिर और अनुल्लंघनीय चीज हम कभी नहीं मानते। इसके विपरीत, हमारा विश्वास है कि विज्ञान की यह केवल आधारशिला है, जिसे समाजवादियों को सभी दिशाओं में और आगे ले चलना होगा—अगर वे जीवन के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं तो। हम समझते हैं कि खास तौर से रूसी समाजवादियों को मार्क्स के सिद्धांतों को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित करना चाहिए।"

व्लादिमिर ने बतलाया कि रूसी कमकर वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने में समर्थ हो, इसके लिए जरूरी है कि वह नौसिखियापन के तरीकों को छोड़े और एक क्रांतिकारी सर्वहारा दल का निर्माण करे। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि रूसी मार्क्सवादियों को लकीर के फकीर बन कर पश्चिमी यूरोप की कमकर-पार्टियों को अपना आदर्श नहीं मान लेना चाहिए; अंतर्राष्ट्रीय और रूसी कमकर वर्ग के आंदोलनों के अनुभवों का ध्यान से विश्लेषण करके अपनी पार्टी बनाने में उन्हें स्वतंत्र तरीका अख्तियार करना चाहिए।

'हमारा तुरन्त करणीय' लेख में व्लादिमिर ने लिखा था :

"पश्चिमी यूरोप में समाजवाद और जनतांत्रिकता का इतिहास, रूसी क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास, हमारे मजदूर-आंदोलन का अनुभव—यह सब ऐसी सामग्री है, जिसे हमें पार्टी के समुचित आकारवाले संगठन और दाँव-पेचों को तैयार करने के लिए इस्तेमाल करना होगा। हमें इस सामग्री पर स्वतंत्रतापूर्वक काम करना होगा; क्योंकि पका-पकाया नमूना कहीं भी नहीं मिल सकता।"

अपने सामने जो काम थे उनके लिए व्लादिमिर इलिच को एक अखिल-रूसी राजनीतिक अखबार की जरूरत महसूस हुई। इसके बारे में उन्होंने इसी लेख में लिखा था :

"हम समझते हैं कि इस समय जो सबसे जरूरी काम हमारे सामने है, वह है इन समस्याओं को हल करने में लग जाना। और इसके लिए हमारा तुरन्त का लक्ष्य होना चाहिए एक ऐसे पार्टी मुखपत्र के प्रकाशन का प्रबंध करना जो नियमपूर्वक और सभी स्थानीय दलों के साथ घनिष्टतया सम्बद्ध रहते हुए निकले। हम समझते हैं कि निकटतम भविष्य में सामाजिक-जनवादियों की सभी कार्रवाइयाँ इसी काम पर केंद्रित होनी चाहिए।"

निर्वासन-काल के अंतिम लेखों में, 1899 ई. में लिखा गया लेख था, 'हमारी पार्टी के कार्यक्रम का मसौदा'। उनकी राय थी कि मजदूर-उद्धारक गुट के कार्यक्रम का जो मसौदा 1887 ई. में तैयार किया गया था, उसमें काफी संशोधन और परिवर्द्धन की आवश्यकता है। अपने इस 'मसौदे' में व्लादिमिर ने जोर देकर कहा कि प्रत्येक राष्ट्र (जाति) को पूँजीवादी और सर्वहारा, दो भागों में बाँट देना पूँजीवाद का मुख्य रुझान है।

"दरिद्रता, उत्पीड़न, दासता, पतन और शोषण में वृद्धि हो रही है"—मार्क्स के इन प्रसिद्ध शब्दों को व्लादिमिर ने पार्टी-कार्यक्रम के मसौदे में शामिल करने के लिए जोर दिया। उन्होंने कहा कि जब बर्नस्टाइनी तथा दूसरे 'संशोधनवादी' और मार्क्स के आलोचक उनके दरिद्रता की वृद्धिवाले सिद्धांत पर आक्षेप कर रहे हैं तब इनको शामिल करना जरूरी है। उन्होंने यह भी सुझाव रखा कि सर्वहारा वर्ग-संघर्ष का और भी स्पष्टता के साथ वर्णन करना चाहिए, उसके उद्देश्यों की व्याख्या करनी चाहिए तथा मजदूर-आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को दिखलाना चाहिए। पार्टी के कार्यक्रम को सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के राजनीतिक महत्त्व तथा उसके तुरन्त के लक्ष्य अर्थात् राजनीतिक स्वतन्त्रता पर विशेष जोर देना चाहिए।

व्लादिमिर ने यह भी जरूरी समझा कि रूसी परम-निरंकुशता के वर्ग-रूप को साफ तौर से बतलाते हुए यह भी दिखलायें कि सारे सामाजिक विकास के मार्ग को मुक्त करने के लिए उसको बलपूर्वक उखाड़ फेंकना अत्यावश्यक है। उन्होंने जोर देकर कहा कि कार्यक्रम में रूसी पूँजीवाद के विकास के विशेष आकारों और उसके साथ रूसी मजदूर वर्ग को लड़ने के लिए किन-किन राजनीतिक कामों को करना चाहिए और क्या तरीके अख्तियार करने चाहिए—इसे साफ-साफ बतलाना होगा। व्लादिमिर इलिच लेनिन ने किसान कार्यक्रम के सिद्धान्तों के मसले पर भी रूसी मार्क्सवादियों का उचित पथ-निर्देशन किया। उन्होंने बतलाया कि स्वेच्छाचारी निरंकुशता को उखाड़ फेंकने तथा अर्ध-दासता के सारे अवशेषों को मिटाने के लिए सर्वहारा पार्टी को प्रयत्नशील किसानों का समर्थन करना चाहिए।

शुशेन्स्कोये के अन्तिम महीनों के बारे में नादेज्दा क्रुप्स्काया ने अपने संस्मरणों में लिखा है :

"व्लादिमिर इलिच को अब रात में नींद लेना हराम हो गया था। वह भयंकर रूप से दुबले हो गये थे। इन्हीं निद्राहीन रातों में वह अपनी योजना के हरेक विवरण के बारे में सोचते।...जितना ही समय बीतता व्लादिमिर इलिच उतने ही अधीर होते जाते थे, उतने ही अधिक काम करने के लिए उतारू होते जाते थे।"

5. भविष्य के लिए तैयारी

आखिर 29 जनवरी, 1900 का दिन भी आया। व्लादिमिर की निर्वासन-अवधि समाप्त हुई और उन्होंने शुशेन्स्कोये से विदाई ली। एक मार्क्सवादी पार्टी तथा एक अखिल-रूसी मार्क्सवादी अखबार, इन दो चीजों को कायम करना

उनके सामने सबसे पहला काम था।

अन्त में ऐसा अखबार दिसम्बर 1900 में 'इस्क्रा' (चिनगारी) के नाम से निकला। रूस में पहुँचकर 1900 ई. का सारा वर्ष व्लादिमिर ने पत्र निकालने के प्रयत्न में लगाया। रूस में जारशाही पुलिस के कारण ऐसा पत्र निकाल सकना असम्भव था। इसलिए निश्चय हुआ कि 'इस्क्रा' को विदेश से निकाला जाय। लेकिन पत्र का निकाल देना ही तो काफी नहीं था; देश में उसका प्रचार हो, इसका भी प्रवन्ध करना था। उसके लिए सहायक तथा एजेन्ट चुनने थें और पैसे का भी प्रबन्ध करना था।

निर्वासन से व्लादिमिर मुक्त हो चुके थे। लेकिन साथ ही, पुलिस ने यह हुक्म भी निकाल दिया था कि वह मास्को, पीतरबुर्ग या और किसी औद्योगिक केन्द्र में नहीं रह सकते। खुद व्लादिमिर राजधानी के नजदीक रहना चाहते थे जिससे वह वहाँ के मार्क्सवादियों और सर्वहारा के साथ आसानी से संवंध स्थापित कर सकें। इसीलिए उन्होंने प्स्कोफ में रहना पसन्द किया। लौटते रास्ते में ऊफा, मास्को और पीतरबुर्ग के स्थानीय साथियों से उन्होंने विचार-विनिमय किया। अंत में 26 फरवरी को वह प्स्कोफ पहुँचे।

अब क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों का हेडक्वार्टर प्स्कोफ बन गया। यहीं पर अप्रैल में एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें भावी अखबार के कार्यक्रम पर व्लादिमिर द्वारा तैयार किये गये सम्पादकीय वक्तव्य पर वहस हुई। देश के भिन्न-भिन्न भागों से पार्टी-कार्यकर्ता व्लादिमिर से सलाह लेने के लिए यहीं आते थे। जब-तब व्लादिमिर यहाँ से रीगा, पदोल्स्क, निज्नी-नवगरोद, ऊफा, कजान, समारा आदि नगरों में जाते और पार्टी के मुख-पत्र के लिए सहायक और समर्थक तैयार करते। यद्यपि पीतरबुर्ग जाना निषिद्ध था, तो भी वह दो बार गुप्त रीति से वहाँ हो आये।

दूसरी बार की यात्रा में तो सारा गुड़ गोवर होने जा रहा था। उन्हें सड़क पर गिरफ्तार कर लिया गया था। इस गिरफ्तारी के बारे में व्लादिमिर ने वताया है कि "उन्होंने दोनों बाजुओं को इतने जोर से पकड़ रखा था कि अपनी जेब से किसी चीज को निकालकर फेंक देना मेरे लिए असम्भव था। और द्रोश्की (फिटन) में भी उन लोगों ने मेरे दोनों वाजुओं को पकड़ रखा था।" व्लादिमिर की जेब में अदृश्य स्याही में लिखे विदेश में रहनेवाले साथियों के पते थे। सौभाग्य से पुलिस ने उस कागज की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। व्लादिमिर को दस दिन हवालात में रखने के वाद छोड़ दिया गया। अगर पतों की यह सूची मिल गयी होती तो जारशाही सरकार उन्हें कभी अपने पंजे से वाहर नहीं जाने देती।

व्लादिमिर इलिच को जारशाही अपना सबसे खतरनाक दुश्मन समझती थी। पुलिस-अफसर कर्नल जुबातोफ ने अपनी गुप्त रिपोर्ट मं (1900 ई. में) लिखा था : "मौजूदा समय में क्रांतिकारी आंदोलन के भीतर उलियानोफ से बड़ा कोई नहीं है।" उसने तो यह सुझाव भी रखा कि इस खतरनाक आदमी की हत्या कर दी जाय : "इस सिर को क्रांतिकारी शरीर से अलग कर दिया जाय।" कहने की जरूरत नहीं कि रूस के क्रांतिकारी शरीर का यही सिर था जिसने वे सारी तैयारियाँ की जिनके कारण सत्रह वर्ष बाद जारशाही को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने में आसानी हुई।

व्लादिमिर इलिच लेनिन अच्छी तरह जानते थे कि अल्पसंख्यक निरंकुश शासक वर्ग युगों से बहुसंख्यक जनता का इसीलिए शोषण और उत्पीड़न करता आ रहा है कि उसके विरोधी एक होकर काम करना नहीं जानते। इसमें शक नहीं कि उनके सामने सवको एकतावद्ध करने के लिए कोई अकाट्य वैज्ञानिक सिद्धांत भी नहीं था। लेकिन अव, यद्यपि क्रांति का पथ-प्रदर्शन करने के लिए मार्क्सवाद मौजूद था, परन्तु जब तक संगठन नहीं हो और क्रांतिकारी बिखरे हुए हों तब तक जारशाही का वाल भी बाँका नहीं किया जा सकता था। इसलिए, सबको एकतावद्ध करनेवाली पार्टी का तुरन्त निर्माण करना अत्यावश्यक था। व्लादिमिर ने ऐसी पार्टी संगठित करने का निश्चय कर लिया था, लेकिन उन्हें जब मालूम हुआ कि कितनी ही स्थानीय कमिटियाँ पार्टी बनाने के लिए तुरन्त एक कांग्रेस बुलाना चाहती हैं, तो उन्हें यह बात गलत मालूम हुई। वह समझते थे कि सबसे पहले सैद्धांतिक और संगठन सम्बन्धी एकता आवश्यक है और इस एकता के लिए जो प्रयत्न किया जायगा उसी का चरम रूप पार्टी का निर्माण होगा। व्लादिमिर पार्टी के वास्तविक संस्थापक और नेता थे। मजदूर वर्ग

के सबसे पक्के कर्मी उनपर पूरा विश्वास करते थे। पार्टी की बाकायदा स्थापना के पहले सैद्धांतिक एकता स्थापित करने के लिए अखबार निकालना जरूरी था, सो भी परदेश जाकर।

6
विदेश (1900-05 ई.)

1. देश से प्रस्थान

देश में अखबार के लिए सारी तैयारियाँ करके 16 जुलाई, 1900 को व्लादिमिर इलिच लेनिन ने विदेश के लिए प्रस्थान किया। वह पहले भी एक बार कुछ महीनों के लिए परदेश हो आये थे। लेकिन अव उनका परदेशवास पाँच वर्षों के लिए होने जा रहा था। रूस छोड़ते समय उन्होंने अपने काम की सारी योजना बना ली थी। वह देश की सारी परिस्थिति जानते थे और यह भी जानते थे कि क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी के संगठन और संवर्धन के लिए किन-किन चीजों की आवश्यकता है।

20वीं सदी के आरम्भ के साथ पूँजीवाद ने अपने चरम रूप, साम्राज्यवाद को धारण किया था। पूँजीवादी समाज के गर्भ में जो कुछ हो रहा था, उससे व्लादिमिर इलिच परिचित थे। वे इससे भी परिचित थे कि मजदूर-आन्दोलन के अन्तस्तल में कौन-सी लहरें उठ रही हैं। पूँजीवादी आधार पर उद्योग-धंधों, कल-कारखानों का जो जबर्दस्त विकास हुआ था, उसके कारण कारखानों के माल को बेचना सबसे कठिन बात हो गयी थी। परिणामस्वरूप बाजार की मन्दी के रूप में समय-समय पर जबर्दस्त आर्थिक भूचाल आता था। सैकड़ों पूँजीपति दिवालिया होते जाते थे और सैकड़ों छोटी मछलियों को बड़ी मछलियाँ निगलती जाती थीं। इस आर्थिक भूचाल से बचने के लिए पूँजीवादी राष्ट्र अपने लिए पक्के बाजार बनाना और उन्हें बढ़ाना चाहते थे। अर्थात्, अपने माल की खपत के लिए और अपनी पूँजी लगाने के लिए वे वहाँ अपनी इजारेदारी कायम करना चाहते थे। इसीलिए साम्राज्यवादी राष्ट्र अब विश्व-युद्धों के अनिवार्य कारण बन रहे थे।

20वीं शताब्दी के आरम्भ के साथ साम्राज्यवाद की भयंकर बीमारी बड़े-बड़े प्लेगों और महामारियों से भी ज्यादा विध्वंसक साबित हुई। इस महामारी में घर और बाहर संघर्षों का तूफान उठ खड़ा होगा, व्लादिमिर यह अच्छी तरह जानते थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की दुनिया और 20वीं शताब्दी की आरम्भ की दुनिया, दोनों का भेद व्लादिमिर इलिच को स्पष्ट मालूम हो रहा था। 'इस्क्रा' के एक लेख में उन्होंने लिखा था : "तब में और अब में–अन्तिम पूँजीवादी क्रान्तिकारी आन्दोलनों के युग और बौखलाये हुए प्रतिक्रियावाद तथा सर्वहारा क्रान्ति के तुरन्त पहले सभी शक्तियों के बीच अत्यधिक तनाव के युग में–दोनों में भेद स्पष्ट है।"

समाज में हल्की से हल्की लहर और कम्पन को भी व्लादिमिर इलिच बहुत शीघ्र पकड़ लेते थे। उन्हें मालूम था कि साम्राज्यवाद के इस युग में सामाजिक भूकम्पों का–क्रांतियों का–ताँता लगे बिना नहीं रहेगा। वह यह भी देख रहे थे कि जो आर्थिक और राजनीतिक शक्तियाँ इस वक्त काम कर रही हैं, वे रूसी कमकर वर्ग को अन्तर्राष्ट्रीय कमकर-आंदोलन की पहली पंक्ति में खड़ा करने जा रही हैं। और इस प्रकार, क्रांति का जोर अब पश्चिमी यूरोप की जगह रूस की ओर ज्यादा बढ़ेगा। एक भविष्य-द्रष्टा की तरह आगे की बातों को देखते हुए व्लादिमिर ने कहा था :

> "इतिहास ने आज हमारे सामने एक फौरी काम रखा है जो सभी देशों के सर्वहारा के सामने मौजूद फौरी कामों से अधिक क्रांतिकारी है। इस काम को पूरा करना, यूरोप ही नहीं बल्कि (कहा जा सकता है) एशियाई प्रतिक्रियावाद के अत्यन्त शक्तिशाली गढ़ का भी ध्वंस करना, रूसी सर्वहारा को अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी सर्वहारा के हिरावल के रूप में परिणत करेगा।"

अपने समय की परिस्थिति में मार्क्स और एंगेल्स इस काम के लिए पश्चिमी यूरोप के सर्वहारा को हिरावल

मानते थे। इसका कारण भी था। कारण यह था कि रूस में पूँजीवाद अभी उतना विकसित नहीं हुआ था। इसी कारण वहाँ का सर्वहारा वर्ग भी संख्या तथा वर्ग-चेतना 'दोनों में' अल्पविकसित था। लेकिन 19वीं शताब्दी का अन्त होते-होते अव यह वात नहीं रह गयी थी। यूरोप और एशियायी प्रतिक्रियावाद का सबसे शक्तिशाली गढ़, जारशाही रूस, व्लादिमिर इलिच को अव ऐसी दीवार मालूम हो रहा था, जिसे धक्का देकर गिराया जा सकता था। और उसे जवर्दस्त धक्का देने के लिए, रूसी सर्वहारा के रूप में, वहाँ ऐसी शक्ति भी तैयार हो गयी थी जो मार्क्सवाद के पथ-प्रदर्शन के अनुसार आगे बढ़ने को तैयार थी। यह विश्वास हो जाने पर कि सर्वहारा क्रांति की सफलता की सवसे अधिक सम्भावना रूस में है, व्लादिमिर अब और भी अधिक तत्परता से अपने काम में जुट गये।

2. 'इस्क्रा' (चिनगारी)

उपरोक्त उद्देश्य से 'इस्क्रा' निकालने के लिए व्लादिमिर किसी तरह आँख बचाकर बाहर निकले। परदेश में भी समाजवादी विचारों के कितने ही रूसी क्रांतिकारी निर्वासित जीवन विता रहे थे। पत्र निकालने के पहले उनके साथ विचार-विनिमय जरूरी था। इसी ख्याल से अगस्त, 1900 में जनेवा के नजदीक कोरसियेर में व्लादिमिर ने पोत्रेसोफ, प्लेखानोफ, एक्सेलरोद और जासूलिच से 'इस्क्रा' के कार्यक्रम और प्रकाशन-प्रवन्ध के सम्बन्ध में बातचीत की।

यह बातचीत या बहस-मुवाहिसा कितनी ही वार इतना गर्म होने लगता कि मालूम होता कि व्लादिमिर इलिच और प्लेखानोफ समझौता नहीं कर पायेंगे, और इसका अर्थ था, 'इस्क्रा' के तुरन्त निकलने की सम्भावना का कम हो जाना। इस सम्मेलन की इस अवस्था का उल्लेख व्लादिमिर इलिच ने "कैसे 'इस्क्रा' (चिनगारी) करीब-करीव वुझ-सी गयी थी ?" नामक अपने लेख में किया है। 'इस्क्रा' निकालने की योजना कार्यरूप में परिणत नहीं की जा सकेगी–यह सोचने में भी व्लादिमिर को दुःख होता था। उन्होंने लिखा था : "उस चीज को बिल्कुल छोड़ देना जिसे मैंने एक प्यारे वच्चे की तरह वर्षों पाला-पोसा था और जिसके साथ मैंने अपने जीवन के सारे काम को अटूट संवंध से वाँध रखा था–यह एक वास्तविक नाटक था।"

खैर, बहुत कठिनाई से ही सही, अंत में समझौता हुआ। निश्चय हुआ कि 'इस्क्रा' स्विट्ज़रलैंड से नहीं–जैसा कि प्लेखानोफ और एक्सेलरोद ने कहा था–वल्कि जर्मनी से निकले। म्यूनिख में मुख्य सम्पादकों को रहना था। व्लादिमिर इलिच भी स्विट्ज़रलैंड से वहाँ चले गये। 'इस्क्रा' के अतिरिक्त 'जार्या' (उषा) नाम से एक वैज्ञानिक तथा राजनीतिक पत्रिका निकालने का भी प्रबन्ध किया गया। वस्तुतः व्लादिमिर इलिच के अनथक परिश्रम और फौलादी इरादे का ही फल था कि 'इस्क्रा' का निकलना सम्भव हो सका।

अक्तूबर, 1900 में व्लादिमिर ने 'इस्क्रा के सम्पादकों की सूचना' लिखकर प्रकाशित की जिसमें पत्र का उद्देश्य बताया गया था : रूसी सामाजिक-जनवाद की सैद्धांतिक तथा संगठनात्मक एकता को ढालना और एक पार्टी का निर्माण करना। व्लादिमिर ने बताया कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब सैद्धांतिक गड़वड़ी और संगठन-सम्बन्धी नौसिखियापन से जबर्दस्त मुकावला किया जाय; 'अर्थवादियों', बर्नस्टाइनियों और दूसरे अवसरवादियों का मुँह बन्द किया जाय। लेनिन ने कहा था : "इससे पहले कि हम अपने को एकताबद्ध करें, और इसलिए भी कि हम एकतावद्ध हो सकें, सबसे पहले हमें विभाजक-रेखाओं को साफ-साफ खींचना है।"

11 दिसम्बर, 1900 को 'इस्क्रा' का पहला अंक निकला। इसके लिए व्लादिमिर ने 'हमारे आंदोलन के अत्यावश्यक काम' नाम से सम्पादकीय लिखा था। बड़ी सीधी-सादी और स्पष्ट भाषा में पत्र के उद्देश्य को बतलाते हुए उन्होंने कहा कि हमें एक मजबूत और संगठित पार्टी का निर्माण करना है, क्योंकि बिना ऐसी पार्टी के मजदूर वर्ग अपने महान ऐतिहासिक काम में– अपने को तथा सारी जनता को राजनीतिक तथा आर्थिक दासता से मुक्त करने के काम में–सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

'इस्क्रा' उस समय प्रकाशित हुआ था जब देश में चारों ओर क्रांतिकारी आंदोलन बढ़ रहा था। जो भारी मन्दी 20वीं शताब्दी के आरम्भ में फैली थी, उसमें वेतन-मजदूरी के लिए की जानेवाली मजदूरों की हड़तालें

अब राजनीतिक हड़तालों और प्रदर्शनों का रूप ले रही थीं। मजदूर वर्ग जारशाही स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध क्रांतिकारी संघर्ष के लिए शक्ति संचित कर रहा था। 1901 ई. के वसन्त में रूस के कितने ही बड़े-बड़े शहरों में राजनीतिक प्रदर्शन हुए। 1902 ई. में हड़तालों के साथ प्रदर्शनों की भी भरमार हुई। इन्हीं प्रदर्शनों में वातुम का भी प्रदर्शन था जिसका नेतृत्व सोसो युगशविली (स्तालिन) ने किया था। रस्तोफ में भी इसी तरह का एक जबर्दस्त हड़ताली प्रदर्शन हुआ था। 1903 ई. में दक्षिणी रूस–ट्रांस काकेशिया और उक्राइन–में राजनीतिक हड़तालों की एक जबर्दस्त लहर उठी।

मजदूरों की इन क्रांतिकारी कार्रवाइयों का प्रभाव किसानों पर पड़ा। उन्होंने भी लड़ाई का बिगुल बजा दिया। 1902 ई. के वसन्त में उक्राइन, वोल्गा-प्रदेश और गुर्जी (जार्जिया) में किसान-विद्रोह उठ खड़े हुए जिनमें बहुत-से जमींदारों की 'कचहरियाँ' नष्ट कर दी गयीं।

हड़तालों, प्रदर्शनों और किसान-विद्रोहों के रूप में जो क्रांतिकारी शक्ति देश में बिखरी हुई थी, उसे एकताबद्ध करने के लिए सर्वहारा पार्टी की आवश्यकता थी। इस तरह की पार्टी के निर्माण का काम कोई आसान काम नहीं था। यही नहीं कि आपसी फूट इसमें बाधक थी; जारशाही भी ऐसी पार्टी के निर्माण के काम को सफलता का मौका नहीं देना चाहती थी। वह उन सभी क्रांतिकारियों को पकड़-पकड़कर जेलों में बन्द करती जा रही थी जो इस काम को पूरा कर सकते थे।

व्लादिमिर इलिच कठिनाइयों के सामने हथियार डालना नहीं जानते थे। ऐसे अवसरों पर उनकी प्रतिभा अद्भुत चमत्कार दिखलाती थी। उन्होंने इसी समय **क्या करें?** नामक पुस्तक लिखी। इसमें उस समय की परिस्थिति के बारे में लिखा गया था कि–"हम एक ऊँचे और कठिन रास्ते पर एक परस्पर-संयुक्त समुदाय के रूप में एक-दूसरे का हाथ मजबूती से पकड़े चल रहे हैं। हम चारों तरफ से शत्रुओं से घिरे हैं, उनकी गोलाबारी लगातार हमारे ऊपर हो रही है।"

'इस्क्रा' के सबकुछ व्लादिमिर इलिच थे। वह उनकी सन्तान था। अथ से इति तक प्रत्येक अंक का वह बड़े ध्यान से सम्पादन करते। उसके बहुत-से लेख उनके लिखे होते थे। लेखों के विषय निर्धारित करने तथा लेखकों को प्राप्त करने का काम भी उन्हें ही करना पड़ता। पत्र-व्यवहार करना और प्रूफों को देखना, गुप्त रीति से हरेक अंक को रूस में जगह-जगह भेजने का प्रवन्ध करना, पैसा जमा करना–इन सवका भार व्लादिमिर इलिच के कंधों पर था। 'इस्क्रा' ठीक समय पर नियमपूर्वक निकलता था, जो रूस की उस समय की स्थिति में एक असम्भव-सी बात थी।

'इस्क्रा' को वह काम करना था जिसके बिना रूस में सर्वहारा क्रांति की सफलता का स्वप्न नहीं देखा जा सकता था। उसने रूस में क्रांति के लिए भूमि तैयार की। उसके लेख लोगों में नयी चेतना, नयी भावना पैदा कर रहे थे और उनकी आँखें खोल रहे थे। उससे प्रेरणा पाकर कमकर अपने संघर्षों को संगठित और संचालित करते। मार्क्सवाद के नाम पर जो ऊल-जलूल बातें फैलायी जा रही थीं, उनको झाड़-बुहारकर साफ करना 'इस्क्रा' का ही काम था। 'इस्क्रा' बतलाता था कि मार्क्सवाद कैसा सिद्धांत है और क्यों उससे जरा भी इधर-उधर होना खतरा मोल लेना और असफलता के गढ़े में गिरना है। मार्क्सवाद के विरोधी 'इस्क्रा' की पंक्तियों से काँपते थे। व्लादिमिर ने बाद में लिखा था : "पुराने 'इस्क्रा' ने रूस और पश्चिमी यूरोप, दोनों देशों के अवसरवादियों की घृणा के पात्र बनने का सम्मान अर्जित किया।"

'इस्क्रा' का शायद ही कोई अंक ऐसा हो जिसमें व्लादिमिर का लेख प्रकाशित न होता हो। पार्टी, मजदूर वर्ग अथवा घरेलू तथा विदेशी राजनीति का कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं था जिसका विवेचन व्लादिमिर अपने लेखों में न करते हों। 'इस्क्रा' (चिनगारी) यथा नाम तथा गुण था। उसने एक ऐसी आग पैदा की जिसने सभी तरह के कूड़ा-करकट को जलाकर सर्वहारा क्रांति के लिए रास्ता साफ किया।

'इस्क्रा' के इन लेखों द्वारा कूड़ा-करकट को साफ करते हुए व्लादिमिर पार्टी निर्माण के काम को आसान बना रहे थे। इसी समय रूस के मजदूर-आंदोलन के भावी-पथ का निर्माण हो रहा था। इस पथ में सबसे बड़ा रोड़ा था 'अर्थवाद'। कहा जाता था कि मजदूर-आंदोलन अपने-आप होता और बढ़ता है। इसके विरोध में 'इस्क्रा'

का लक्ष्य था मजदूर-आंदोलन में वर्गचेतना और समाजवादी सिद्धांत को भरना; मार्क्सवादी पार्टी के आकार, लक्ष्य और उद्देश्य को स्पष्ट करना तथा ऐसी पार्टी के निर्माण के लिए तरीकों और साधनों को जमा करना।

शुरूआत कहाँ हो ?—'इस्क्रा' के चौथे अंक (मई 1901) में व्लादिमिर का लेख 'शुरूआत कहाँ हो ?' निकला। इसमें उन्होंने मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण करने की योजना की मोटी रूपरेखा दी। यह बहुत सीधा-सादा, स्पष्ट और अद्भुत ढंग से लिखा लेख था। इसने मतवादों के जंगल में भूले हुए सामाजिक-जनवादी आंदोलन के सभी ईमानदार समर्थकों और कार्यकर्ताओं को रास्ता दिखाने में बड़ा काम किया। इसी लेख में उन्होंने कहा था : "यह पत्र सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आन्दोलनकर्ता ही नहीं है, बल्कि सामूहिक संगठनकर्ता भी है।" 'इस्क्रा' परदेश में छपता था। जारशाही पुलिस की आँखें बचाकर वह रूस में जगह-जगह पहुँच जाता था। स्थान-स्थान पर 'इस्क्रा' के एजेण्ट थे जो खतरा मोल लेकर भी पत्र के वितरण का काम करते थे। इसीलिए, वे साधारण अखबार बेचनेवालों जैसे नहीं थे। वे सर्वहारा के क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। उन्हीं को तार बनाकर 'इस्क्रा' ने सारे देश में अपने संगठन का जाल बिछाया। वह पार्टी के ढाँचे का काम कर रहा था। जगह-जगह बिखरे संगठनों को 'इस्क्रा' के सूत्रों द्वारा एकताबद्ध किया जा रहा था और सैद्धान्तिक गड़बड़ी और अवसरवादिता को खत्म किया जा रहा था। व्लादिमिर इलिच ने 'इस्क्रा' के इस कार्य का उल्लेख करते हुए बतलाया कि इसके द्वारा पार्टी की संगठन सम्बन्धी एकता स्थापित होगी।

इस लेख ने सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ताओं पर वहुत प्रभाव डाला। पीतरबुर्ग के एक कमकर ने अपने पत्र में 'इस्क्रा' को लिखा था : "पिछले इतवार मैंने ग्यारह आदमियों को जमा करके 'शुरूआत कहाँ हो ?' को पढ़ा और हम बहुत रात गये तक वहाँ से अलग नहीं हुए। लेख में जो कहा गया है, सब सच है और उसमें सभी बातें आ गयी हैं।"

'क्या करें ?'—व्लादिमिर इलिच के अनुसार, यह लेख उनकी योजना की एक मोटी रूपरेखा थी जिसे और विस्तार के साथ वह एक पुस्तक के रूप में तैयार कर रहे थे। संपादकीय और दूसरे कामों के कारण व्लादिमिर के पास इतना समय नहीं था कि तुरन्त उस पुस्तक को समाप्त कर सकते। अन्त में, 1901 ई. शरद् में ही वह उसमें हाथ लगा सके। **क्या करें ?** के नाम से यह पुस्तक मार्च 1902 में प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक में व्लादिमिर इलिच ने बतलाया कि 'अर्थवाद' का अर्थ है मजदूर वर्ग के आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तिवाद को मानना और इस तरह मजदूर वर्ग के आन्दोलन की सामाजिक चेतना, मजदूर वर्ग की हिरावल, उसकी पार्टी की भूमिका, काम और महत्त्व को कम करना। उन्होंने बताया कि समाजवादी विचारधारा, जैसा कि 'अर्थवादी' कहते हैं, आन्दोलन से अपने-आप नहीं उत्पन्न हो सकती; वह तो विज्ञान की केवल बाहरी वृद्धि होगी। मजदूर वर्ग को समाजवादी चेतना से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता है। परन्तु इस बात से इन्कार करते हुए 'अर्थवादी' पूँजीवादी विचारधारा के लिए मैदान खाली छोड़ रहे हैं। स्वतःस्फूर्तिवाद को मानने का अर्थ है सर्वहारा के हिरावल के रूप में पार्टी की भूमिका को मानने से इन्कार करना। और पार्टी की भूमिका से इन्कार करने या उसके महत्त्व को कम करने का मतलब है कमकरों के ऊपर पूँजीवादी विचारधारा को और भी मजबूती से लादने का अवसर देना। इसलिए, यह आवश्यक है कि लगातार, सुव्यवस्थित और दृढ़ संघर्ष के द्वारा पूँजीवादी प्रभावों को मजदूर वर्ग से दूर रखा जाय और मजदूर वर्ग के आंदोलन में समाजवादी चेतना को भरा जाय।

लेनिन ने बताया कि चेतना के महत्त्व को कम करने का मतलब है पार्टी की नजरों में सिद्धांत के महत्त्व को कम करना। और इसका अर्थ होता है विजय के लिए आवश्यक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अपरिहार्य हथियार से पार्टी को वंचित रखना। "क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना क्रांतिकारी आन्दोलन नहीं चल सकता।" "पार्टी हिरावल की भूमिका तभी पूरी कर सकती है जब वह एक अग्रगामी सिद्धांत द्वारा पथ-प्रदर्शित हो।"

लेनिन ने अपनी इस कृति में दिखलाया कि 'अर्थवादियों' का स्वतःस्फूर्तिवाद का सिद्धांत राजनीति में 'पुच्छवादी' नीति की ओर ले जाता है। "मजदूर वर्ग के आन्दोलन को अपने-आप विकसित होने देना चाहिए", इसपर जोर देते हुए 'अर्थवादी' पार्टी को आन्दोलन की पूँछ बनकर चलने पर मजबूर करते हैं। इसका अर्थ

होता है पार्टी को एक निष्क्रिय शक्ति के रूप में परिणत कर देना। दूसरे शब्दों में, यह पार्टी का वस्तुतः नाश करना है, और इस प्रकार मजदूर वर्ग को बिना नेता का बनाकर, उसके हाथ-पैर बाँधकर, उसे उसके सबसे भयंकर शत्रुओं–जारशाही और पूँजीवादियों–के हाथ में सौंप देना है। लेनिन ने कहा कि मार्क्सवाद हमें यह बतलाता है कि क्रांतिकारी साधनों द्वारा परिस्थितियों को बदलना होगा और पार्टी को मजदूर वर्ग के संघर्ष में निर्णायक पार्ट अदा करना होगा। वर्ग-चेतन कमकरों द्वारा अच्छी तरह सोचे-समझे तथा सुनियोजित दाँव-पेंच, उनकी पहलकदमी और दृढ़ता, इस संघर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

सर्वहारा की क्रांतिकारी शक्ति को कुंठित करनेवाले 'अर्थवादियों' जैसे लोगों की आज भारत में कमी नहीं है। और जब तक समाजवाद के नाम पर जनता को पथभ्रष्ट करनेवाले इन लोगों को नंगा करके दिखलाया नहीं जाता, तब तक क्रांति की महाशक्ति को बेकार होने से नहीं रोका जा सकता। लेनिन ने लिखा था कि 'अर्थवादी' पार्टी तथा मजदूर वर्ग के राजनीतिक उद्देश्यों के महत्त्व को कम करके जारशाही के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष छेड़ने में सर्वहारा को अनुत्साहित कर रहे थे और उसे 'मालिकों तथा सरकार के विरुद्ध आर्थिक संघर्ष' तक ही सीमित रखना चाहते थे। इसका अर्थ था कमकरों को सदा के लिए दासता में बँधे रहने के लिए मजबूर करना। किंतु, लेनिन ने बताया, कमकर पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अपनी वर्तमान स्थितियों में केवल थोड़े से सुधारों के लिए ही नहीं लड़ना चाहते; वे पूँजीवादी व्यवस्था तथा शोषण को नष्ट कर डालना चाहते हैं। पूँजीवाद के विरुद्ध मजदूर वर्ग के आन्दोलन के आगे बढ़ने में जार सरकार रुकावट डाल रही थी। अस्तु, कमकर वर्ग को पहले अपने रास्ते से सरकार को हटाना था ताकि समाजवाद के संघर्ष के लिए रास्ता साफ हो जाय। इसलिए सरकार के विरुद्ध संघर्ष में मजदूर वर्ग को अगुवाई करनी थी।

सर्वहारा की अन्तिम विजय के लिए एक पार्टी, एक क्रांतिकारी संगठन की कितनी आवश्यकता है, इसे बतलाते हुए लेनिन ने 'अर्थवादियों' की खबर ली और कहा कि स्वतःस्फूर्तिवाद का अर्थ पार्टी के कार्य के महत्त्व तथा सर्वहारा के राजनीतिक लक्ष्यों के महत्त्व को कम करना है। इसीलिए 'अर्थवादी' मजदूर वर्ग के आंदोलन के संगठन सम्बन्धी कार्य के महत्त्व को कम करते हैं। इसका अर्थ है नौसिखियापन के तरीके को प्रश्रय देना, स्थानीय संगठन में एकता न लाने देने को प्रोत्साहन देना। पार्टी द्वारा मार्क्सवाद की शिक्षा और दिन-प्रति-दिन के तजुर्बों के जरिये ही यह नौसिखियापन दूर किया जा सकता है। इसी एक तरीके से बिखरे हुए संगठन को एकताबद्ध किया जा सकता है। लेनिन की योजना के अनुसार पार्टी दो भागों से मिलकर बनी होनी चाहिए–(1) प्रधान पार्टी कार्यकर्ताओं का, विशेषतः पेशेवर क्रांतिकारियों का, सम्बद्ध चक्र; और (2) सैकड़ों-हजारों कमकर जनता की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त बड़ी संख्या में सदस्योंवाले स्थानीय पार्टी संगठनों का एक विस्तृत जाल।

लेनिन ने कहा कि 'अर्थवादी' जिस नीति को सामने रखते हैं, उसे स्वीकार कर लिया जाय तो पूँजीवाद के ऊपर आक्रमण करने में मजदूर वर्ग का नेतृत्व करनेवाली क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण नहीं होगा, बल्कि एक ऐसी पार्टी का निर्माण होगा जो 'सामाजिक सुधार' की पार्टी होगी। इस तरह की पार्टी पूँजीपतियों के शासन को मजबूत बनाने में सहायक होगी। इसलिए वस्तुतः 'अर्थवादी' सुधारवादी थे जो सर्वहारा के मूलभूत हितों के साथ गद्दारी कर रहे थे। लेनिन ने बताया कि 'अर्थवाद' रूस में अकस्मात् नहीं उठ खड़ा हुआ था। ये 'अर्थवादी', मजदूर वर्ग में पूँजीवादियों के प्रभाव-वाहक का काम कर रहे थे। वे उसी अन्तर्राष्ट्रीय अवसरवाद के रूसी रूप थे, जिसका काम था मार्क्सवाद, क्रांति, समाजवाद और सर्वहारा के अधिनायकत्व का विरोध करना। एटली का जनतांत्रिक समाजवाद इंगलैंड में यही काम करता है, और भारत में भी कुछ तत्त्व अंग्रेजों के इसी समाजवाद का प्रचार करके पूँजीवादी शासन को बराबर कायम रखने की कोशिश कर रहे हैं।

लेनिन की इस पुस्तक का कितना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा था वह 'इस्क्रा' के एक एजेन्ट की इन पंक्तियों से मालूम हो जाता है : "सभी जगह मैंने लेनिन का दिया हुआ हल चलाया। जमीन जोतने में यह सबसे बढ़िया और सबसे उपयोगी हल है। जहाँ कहीं भी वह 'रवोचये देलो' (अर्थवादियों का मुख-पत्र) द्वारा बोये हुए अंकुरों को पाता है, उन्हें जड़-मूल से उखाड़ फेंकता है।"

पीतरबुर्ग-कमिटी ने वक्तव्य निकाला कि हम 'इस्क्रा' के साथ हैं। मास्को-कमिटी ने भी **क्या करें ?** के लेखक के लिए धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया। तुला नगर की कमिटी ने बतलाया कि व्लादिमिर की इस पुस्तक को पढ़कर ही हम 'इस्क्रा' की स्थिति और उद्देश्यों को ठीक तरह समझ सके। साइबेरिया के संगठन ने भी इसी तरह के शब्द लिखे। पार्टी की द्वितीय कांग्रेस में भी व्लादिमिर के इस ग्रन्थ के जबर्दस्त प्रभाव को स्वीकार किया गया।

सबसे बड़ी बात जो इस पुस्तक ने की वह यह थी कि इसने 'अर्थवाद' को पूरी तरह से परास्त कर दिया। **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास** में लेनिन की इस पुस्तक के बारे में लिखा गया है :

"इस प्रसिद्ध पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में है कि इसके अन्दर लेनिन ने–

1. मार्क्सवादी विचारों के इतिहास में पहली बार अवसरवाद की सैद्धांतिक जड़ों को उघारकर रख दिया और यह दिखलाया कि ये जड़ें सबसे अधिक अपने-आप चलनेवाले मजदूर आन्दोलन की पूजा करने और मजदूर आन्दोलन में समाजवादी चेतना कम करने में हैं;
2. अपने-आप चलनेवाले मजदूर आन्दोलन में सिद्धांत के, चेतना के और पार्टी के भारी महत्त्व को दिखाया कि वह क्रांतिकारी तब्दीली करनेवाली और रास्ता दिखानेवाली शक्ति है;
3. इस बुनियादी मार्क्सवादी सूत्र को बहुत सुन्दर ढंग से पुष्ट किया कि मार्क्सवादी पार्टी समाजवाद से मजदूर-आंदोलन का मेल है;
4. मार्क्सवादी पार्टी की सैद्धांतिक बुनियाद की बहुत सुन्दर व्याख्या की।"

लेनिन इस प्रकार बड़े धैर्य और सावधानी के साथ पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ताओं को शिक्षित कर क्रांति के लिए अपना सारा जीवन देनेवाले पेशेवर क्रांतिकारियों के रूप में उन्हें परिणत कर रहे थे।

'इस्क्रा' का प्रचार–बाहर से 'इस्क्रा' को रूस की सीमा के भीतर लाने तथा जगह-जगह पहुँचाने में पग-पग पर खतरा था। जो लोग पकड़े जाते उन्हें साइबेरिया के कालेपानी या जेल की सजा होती। लेकिन, इन खतरों को मोल लेनेवाले केवल अखबार के वितरण का ही काम नहीं करते थे; वे स्थानीय कमिटियों को एकताबद्ध करने में भी हाथ बँटाते थे। 'इस्क्रा' के एजेण्टों के साथ पत्र-व्यवहार का काम लेनिन स्वयं किया करते थे। हाँ, इसमें क्रुप्स्काया भी उनकी सहायता करती थीं। 1901 ई. के वसन्त में क्रुप्स्काया व्लादिमिर के पास आ गयी थीं और वह पत्र की सेक्रेटरी नियुक्त कर दी गयी थीं। अपने संस्मरण में क्रुप्स्काया ने लिखा है : "हमें इसका सविस्तार ज्ञान था कि 'इस्क्रा' का प्रत्येक एजेण्ट क्या काम कर रहा है। उनके काम के बारे में हम उनसे बातचीत करते थे। जब उनके बीच सम्बन्ध टूट जाता तो हम फिर उस सम्वन्ध को कायम करते और एक-दूसरे को उनकी गिरफ्तारी तथा दूसरी बातों की सूचना देते।"

इस प्रकार लेनिन पीतरबुर्ग, मास्को, बाकू, समारा, खारकोफ, निज्नी-नवगरोद, ओदेसा, किएव, ओरेखोवो-जुयेवो तथा दूसरे स्थानों के संगठनों से पत्र-व्यवहार रखते थे। काकेशिया में सोसो युगशविली (स्तालिन) ने 'इस्क्रा' का संगठन कायम किया था। वह 'इस्क्रा' के जबर्दस्त समर्थक थे। 'इस्क्रा' के निकलने के समय से ही स्तालिन लेनिन को पार्टी का संस्थापक और नेता मानते थे। उन्होंने लेनिन का अभिनन्दन करते हुए कहा था :

> "1890 ई. वाली दशाब्दी के अन्त में, और खासकर 1901 ई. के बाद से जवकि 'इस्क्रा' निकलने लगा, लेनिन की क्रांतिकारी कार्रवाइयों का मुझे जो पता लगा, उसने मुझमें विश्वास भर दिया कि लेनिन के रूप में हमारे बीच असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति मौजूद है। उस समय से मैं उन्हें पार्टी का केवल नेता ही नहीं, बल्कि उसका वास्तविक संस्थापक मानने लगा, क्योंकि केवल वही पार्टी के आन्तरिक तत्त्व और उसकी फौरी आवश्यकताओं को समझते थे। जब मैं उनकी तुलना अपनी पार्टी के दूसरे नेताओं से करता, तो मुझे सदा मालूम होता कि प्लेखानोफ, मारतोफ, एक्सेलरोद और उनके दूसरे सहकारी उनके कंधों तक भी नहीं पहुँचते हैं। उनसे तुलना करने पर लेनिन तमाम नेताओं में सिर्फ एक नेता ही नहीं, बल्कि उच्चतम श्रेणी के नेता, एक पहाड़ी शाहंबाज थे जो संघर्ष में भय को नहीं जानते थे। उन्होंने

रूसी क्रांतिकारी आन्दोलन के अज्ञात पथों पर पार्टी को वड़ी निर्भीकता के साथ आगे बढ़ाया।"

स्तालिन उस समय काकेशिया में काम करते थे। बाकू में अधिकतर छिपकर रहते हुए वहाँ के कमकरों के बीच काम करते थे। उन्होंने केत्सखोवेली के साथ मिलकर 'इस्क्रा' के कितने ही अंकों को गुप्त प्रेस में छपवाया और उनका प्रचार किया।

लेनिन इस बात की पूरी कोशिश करते थे कि रूस में 'इस्क्रा' के संगठनों के साथ लगातार और नियमपूर्वक सम्बन्ध बनाये रखा जाय। अपने किसी एजेण्ट की गिरफ्तारी, किसी कमिटी के ऊपर पुलिस के छापा मारने, गुप्त भेजे गये साहित्य के पुलिस के हाथ में पड़ जाने की खबर पाकर कितनी ही बार वह चिन्ता के मारे रात-रात भर जागते रहते। रूस से जो भी साथी आते उनसे वह एक-एक बात पूछकर रूस की वास्तविक स्थिति का पता लगाने का प्रयत्न करते। इन प्रश्नोत्तरों से सारे रूस की अवस्था का जितना ज्ञान व्लादिमिर इलिच को रहता उतना रूस के भीतर रहनेवाले बड़े-वड़े कार्यकर्ताओं को भी नहीं रहता था।

1902 ई. के अन्त में पीतरबुर्ग में 'अर्थवादी' फिर सर उठाने लगे थे। लेनिन ने पार्टी के कार्यकर्ता ई. बाबुश्किन को वहाँ भेजा। मास्को में भी उन्होंने 'इस्क्रा' के प्रधान एजेण्ट न. वाउमान को भेजा। व्लादिमिर के पत्र इस समय भारी काम कर रहे थे। 1902 ई. में उन्होंने एक साथी को संगठन सम्वन्धी मसलों पर एक पत्र लिखा था। यह पत्र 'संगठन-सम्बन्धी कर्तव्यों के बारे में एक साथी को पत्र' के नाम से छापा गया। उसका बहुत प्रचार हुआ। उस पत्र में पार्टी के नियमों की मोटी रूपरेखा थी। विदेश में रहकर भी लेनिन रूस की अन्दरूनी परिस्थिति को कितनी अच्छी तरह जानते थे, यह स्तालिन के संस्मरण की निम्न पंक्तियों से मालूम हो जाता है :

> "रूस में जो लोग रह गये थे उनमें से वहुत कम रूसी हलचल और देश के मजदूर-आन्दोलन से उतने घनिष्ट रूप से सम्वद्ध थे जितने लेनिन—हालाँकि परदेश में रहते उन्हें बहुत लम्बा समय बीत चुका था। 1907-1908 और 1912 में जव-जब मैं विदेश में उनसे मिला, मैंने देखा कि उनके पास रूस के कर्मठ कार्यकर्ताओं के ढेर के ढेर पत्र जमा हैं। लेनिन...रूस में रहनेवालों से भी अधिक जानकारी रखते थे।"

परदेश में रहना लेनिन को अपने लिए बड़ा भार मालूम होता था। पर किया भी क्या जा सकता था ? मजबूरी थी। एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "यह चीज उस लेखक के लिए सबसे अधिक मूल्यवान है जो गुप्त रहकर काम करता है, क्योंकि वह अपने पाठकों से असाधारण रूप से अलग-थलग रहकर काम करने पर मजबूर होता है। हरेक राय का, हरेक विचार-विनिमय का, हमारे लेखकों या पुस्तिकाओं का भिन्न-भिन्न स्तर के पाठकों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसका—प्रत्येक सूचना का—हमारे लिए बड़ा महत्त्व है।"

लेनिन अठारह महीने म्यूनिख में रहे। 'इस्क्रा' के तीन वर्ष के जीवन में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण समय था। यहीं पर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण लेख लिखे। व्लादिमिर इलिच उलियानोफ की जगह व्लादिमिर इलिच लेनिन नाम का प्रचार म्यूनिख के समय से ही होने लगा था, क्योंकि उन्होंने अब अपने कितने ही लेखों में लेनिन लिखना शुरू कर दिया था। दिसम्वर 1901 में 'जार्या' पत्रिका में 'किसान समस्या और मार्क्स के आलोचक' नामक लेख के पहले भाग में तथा 1902 ई. के वसन्त में प्रकाशित पुस्तक **क्या करें ?** में लेखक का नाम लेनिन था।

प्लेखानोफ से सम्वन्ध-विच्छेद—जारशाही और जर्मन खुफिया पुलिस 'इस्क्रा' के हेड-क्वार्टर को ढूँढ़ने में व्यस्त थी। 1902 ई. के आरम्भ में वह उसे खोज पाने में सफल हुई। अब म्यूनिख में 'इस्क्रा' का हेड-क्वार्टर रखना सम्भव नहीं था। उसे कहाँ ले जाया जाय, इस बात पर मतभेद खड़ा हो गया। प्लेखानोफ और एक्सेलरोद जेनेवा के पक्ष में थे और लेनिन लन्दन के।

सम्पादकीय विभाग के सदस्यों में मनमुटाव वढ़ता ही गया। लेनिन को सम्पादक-मण्डल की अवसरवादी ढुलमुलाहट के खिलाफ लगातार संघर्ष करना पड़ा था। जिस समय सम्पादक-मण्डल वन रहा था, उसी समय प्लेखानोफ से कुछ मतभेद हो गया था। 1901 ई. की गर्मियों में लेनिन के लेख 'जेमस्त्वों के दमनकर्ता और

उदारवादी सूरमा' को लेकर मतभेद और बढ़ गया। 1895 ई. में पहली मुलाकात के समय भी लेनिन और प्लेखानोफ के बीच उदारवादी पूँजीपति वर्ग के सम्बन्ध में मतभेद था। अपने लेख में लेनिन ने उदारवादियों पर जबरदस्त प्रहार करते हुए उनकी कायरता तथा ढुलमुल नीति की कड़ी आलोचना की थी। प्लेखानोफ और उनके समर्थक, मजदूर-उद्धारक गुट के दूसरे सदस्य, उदारवादियों के ऊपर ऐसे आक्षेप को पसन्द नहीं करते थे। यह लेख 1901 के दिसम्बर की 'जार्या' में निकला था।

अगले महीने, जनवरी 1902 ई. में, पार्टी कार्यक्रम को लेकर मतभेद और बढ़ा जिसे 'इस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल के सामने सबसे पहले लेनिन ने ही रखा था। इसके पहले जुलाई 1901 में उन्होंने एक्सेलरोद को लिखा था : "हमने रूस से खबर पायी है कि एक कांग्रेस बुलाने की बात बहुत जोर पकड़ रही है। यह हमें कार्यक्रम के बारे में सोचने के लिए पहले से कहीं अधिक मजबूर कर रही है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम एक कार्यक्रम का मसौदा प्रकाशित करें। यह अत्यन्त महत्त्व की बात होगी।"

मजदूर संग्राम संघ जब मौजूद था तभी से लेनिन ने पार्टी-कार्यक्रम तैयार करने का काम शुरू किया था। जेल और साइबेरिया में निर्वासन के काल में उन्होंने इस काम को जारी रखा था। कार्यक्रम के सम्बन्ध में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख 'इस्क्रा' में छपे थे, उन्हें लेनिन ने ही लिखा था। इन्हीं सबके आधार पर पार्टी कार्यक्रम तैयार हुआ। लेकिन 'इस्क्रा' के सम्पादन और संगठन का काम सर पर होने से लेनिन को कार्यक्रम का मसौदा खुद तैयार करने के लिए समय नहीं मिला। इसलिए, यह काम प्लेखानोफ ने किया।

प्लेखानोफ का दृष्टिकोण पूरी तरह मार्क्सवादी नहीं था। उदारवादी पूँजीपति वर्ग के प्रति उनके अत्यधिक पक्षपात और किसानों के प्रति उनके दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है। फिर भला उनका बनाया कार्यक्रम का मसौदा कैसे संतोषजनक हो सकता था ? लेनिन ने उसकी कड़ी आलोचना की।

लेनिन का कहना था कि रूसी पूँजीवाद के विरुद्ध युद्ध घोषित करनेवाले कार्यक्रम के बजाय वह कार्यक्रम पूँजीवाद पर एक आम पाठ्य-पुस्तक मालूम होता है। बड़े पैमाने के पूँजीवादी उत्पादन द्वारा करोड़ों छोटे-छोटे उत्पादकों के ध्वंस और खातमे का वर्णन इसमें बहुत ही अस्पष्ट और अनिश्चित है। मार्क्सवाद के बुनियादी तत्त्व–सर्वहारा के अधिनायकत्व–का इसमें उल्लेख तक नहीं किया गया है। मजदूर वर्ग की हिरावल की भूमिका एवं पार्टी के सर्वहारा स्वरूप पर भी जोर नहीं दिया गया है। 'प्लेखानोफ के दूसरे मसौदे पर सम्मति' लिखते हुए लेनिन ने बतलाया कि "प्लेखानोफ के मसौदे में सर्वहारा के अधिनायकत्व के स्थान पर 'पूँजीवादी शोषण की शिकार जनता के अन्य अंगों की सहायता से सर्वहारा द्वारा क्रांति' लिखा गया है और सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के स्थान पर 'मेहनतकशों और शोषित जन-साधारण' का संघर्ष लिखा गया है।"

इस विवाद ने इतना उग्र रूप धारण किया कि मालूम होता था लेनिन और प्लेखानोफ में पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा। किन्तु प्लेखानोफ और उनके समर्थक संबंध-विच्छेद में हानि समझते थे। इसलिए मसौदे में सर्वहारा के अधिनायकत्व की बात को जोड़ दिया गया और क्रांति में मजदूर वर्ग की हिरावल भूमिका का भी जिक्र कर दिया गया। लेनिन की इस बात को भी मान लिया गया कि मजदूर-आंदोलन में उनके हिरावल और नेता के तौर पर पार्टी की क्या भूमिका है। लेनिन के प्रयत्नों का फल यह हुआ कि अंत में जिस रूप में मसौदा तैयार हुआ उस रूप में वह उदारवादी झुकावोंवाला न रहकर मजदूर वर्ग की पार्टी का क्रांतिकारी प्रोग्राम बन गया। द्वितीय इंटरनेशनल से सम्बद्ध पार्टियों के अर्ध-अवसरवादी कार्यक्रमों से अब वह बहुत भिन्न था।

जिस समय पार्टी कार्यक्रम के बारे में विवाद चल रहा था उसी समय फैसला किया गया कि 'इस्क्रा' का हेड-क्वार्टर लन्दन ले जाया जाय।

3. लन्दन में (1902-03 ई.)

1902 के अप्रैल के आरम्भ में जूरिच (स्विट्जरलैंड) में कार्यक्रम के मसौदे पर अन्तिम बहस के लिए 'इस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल की बैठक हुई। लेनिन उसमें शामिल नहीं हुए। 30 मार्च को ही उन्होंने म्यूनिख से लन्दन के लिए प्रस्थान कर दिया था।

लेनिन का अब उसी लन्दन में निवास था जिसमें उनके गुरु मार्क्स ने अपने जीवन का बहुत अधिक समय बिताते हुए **कपिताल** जैसे अमर ग्रन्थ की रचना की थी। वहाँ रहते हुए लेनिन ने अंग्रेजी मजदूर आंदोलन के साथ नजदीक का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। मजदूरों के मुहल्लों में जाकर लेनिन ने उनके जीवन तथा उनकी मानसिक रुझान का अध्ययन किया और उनकी सभाओं में शामिल हुए। मार्क्स की तरह वह भी ब्रिटिश म्युजियम में सारा दिन बिताने लगे। लन्दन-निवास के शुरू के कुछ महीनों में ही 'इस्क्रा' के सम्पादक-मंडल का मतभेद बहुत तीव्र हो गया था। अस्तु, लेनिन को अपना बहुत-सा समय और शक्ति इस ओर देनी पड़ती थी। पर, अब विवाद प्लेखानोफ के मसौदे के बजाय लेनिन द्वारा लिखे 'रूसी सामाजिक-जनवादियों का किसान कार्यक्रम' पर उठ खड़ा हुआ था।

लेनिन पहले मार्क्सवादी थे जिन्होंने मार्क्स और एंगेल्स के सिद्धान्तों के आधार पर यह निर्धारित किया कि क्रांति में किसानों को अपना दाहिना हाथ बनाने के लिए सर्वहारा को सबसे अधिक जोर देना चाहिए। 19वीं सदी की अन्तिम दशाब्दी में ही लेनिन ने किसानों और कमकरों के बीच क्रान्तिकारी मैत्री स्थापित करने पर जोर देते हुए बतलाया था कि ऐसी मैत्री द्वारा ही जारशाही, जमींदारों और पूँजीपति वर्ग का बेड़ा गर्क किया जा सकता है। अब परदेश में रहते समय उन्होंने किसान-समस्या के बारे में सभी देशों के महत्त्वपूर्ण साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन किया।

'इस्क्रा'-दल के किसान कार्यक्रम को लेनिन ने लिखा था। अप्रैल, 1901 में 'इस्क्रा' में उनका लेख 'मजदूर पार्टी और किसान' प्रकाशित हुआ। इसमें सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया था कि मुक्ति-संग्राम में सर्वहारा को चाहिए कि वह किसानों को अपने पक्ष में लेकर खुद हिरावल का रूप धारण करे। उन्होंने कहा कि देहाती इलाकों में दो तरह के सामाजिक-युद्ध हो रहे हैं—एक देहाती कमकरों और देहाती पूँजीपति वर्ग के बीच, दूसरा जमींदार वर्ग और सभी किसानों के बीच। देहात में वर्ग-संघर्ष को और तेज करना चाहिए और इस बात पर पूरा जोर देना चाहिए कि किसान अर्ध-दासता के अवशेषों को झाड़-बुहारकर साफ कर दें। उन्होंने बताया कि किसान कमिटियों का निर्माण किया जाय तथा अर्ध-दासों की मुक्ति के समय जमींदारों ने उनकी जो भूमि अपने हाथों में ले ली है, उसे किसान वापस लें। जमीदारों द्वारा ली गयी ऐसी जमीन को रूसी भाषा में 'अवेज्की' (कट्टी) कहते थे। लेनिन का यह विचार 'इस्क्रा' के कार्यक्रम के मसौदे के किसानों वाले भाग का आधार है।

लेनिन बिल्कुल साफ देख रहे थे कि सर्वहारा और किसानों का दृढ़ सहयोग ही क्रांति को सफल बना सकता है। इसलिए, किसान जनता में मार्क्सवादी कार्यक्रम का अधिक-से-अधिक प्रचार करना जरूरी था। उन्होंने किसानों को अपनी ओर खींचने के लिए 1903 ई. के वसन्त में **गाँव के गरीबों से** नामक एक अद्‌भुत पुस्तक लिखी। लेनिन जैसे प्रगाढ़ विचारक की भाषा इतनी सरल हो सकती है, इसका विश्वास करना भी मुश्किल है। लेकिन अद्‌भुत प्रतिभा के लिए कोई बात असंभव नहीं ! लेनिन सर्वहारा के नेता थे, वह अपना सर्वस्व सर्वहारा पर निछावर कर रहे थे। अपने गुरु मार्क्स की इस बात पर वह विश्वास करते थे कि सर्वहारा ही वह अजेय शक्ति है जो पूँजीवाद का खात्मा कर सकती है। फिर वह सर्वहारा के लिए उनकी भाषा छोड़ दूसरी भाषा का प्रयोग करना कैसे उचित समझते ? गाँव के गरीबों को संबोधित करते वक्त लेनिन की भाषा* बिल्कुल उनकी जैसी हो जाती थी।

लेनिन ने अपनी इस पुस्तक में किसान कार्यक्रम के बारे में जिन तथ्यों को रखा था उनपर 'इस्क्रा' के सम्पादक-मंडल में जबर्दस्त विवाद उठ खड़ा हुआ। मार्च, 1902 में लेनिन ने 'रूसी सामाजिक-जनवादियों का किसान-कार्यक्रम' नामक जो लेख लिखा था, उसमें रूस के सामाजिक-जनवादियों के रुख को स्पष्ट करके रखा गया था। लेनिन ने बतलाया था कि अगर किसान क्रान्ति को आगे बढ़ाना है तो सिर्फ 'अवेज्की' को

---

* **गाँव के गरीबों से** का हिन्दी में अनुवाद करते समय इन पंक्तियों का लेखक भी भाषा की सादगी से बहुत प्रेरित और प्रभावित हुआ था और उसने उसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप अपनी पुस्तक **भागो नहीं, दुनिया को बदलो !** लिखी।—ले.

ही लौटाने की माँग नहीं करनी चाहिए; जमींदारों की जमीन दखल कर लेनी चाहिए तथा सारी भूमि के राष्ट्रीयकरण की माँग करनी चाहिए। लेख के इस विचार का प्लेखानोफ ने विरोध किया। मजदूर-उद्धारक गुट के दूसरे सदस्यों ने भी प्लेखानोफ का समर्थन किया। खास करके वे भूमि के राष्ट्रीयकरण की माँग को बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। उस समय भी सम्पादक-मंडल में फूट बढ़े जाने की सम्भावना निश्चित हो गयी थी। लेकिन वह किसी तरह उस समय टल गयी।

लन्दन में रहते हुए अपने और कामों के अतिरिक्त लेनिन को पार्टी की द्वितीय कांग्रेस की तैयारी के लिए भी बहुत-सा समय देना पड़ता था। रूस से इस समय जो खबरें मिल रही थीं, उनसे मालूम होता था कि वहाँ की राजनीतिक स्थिति गम्भीर होती जा रही है। क्रांति के लिए सभी वर्ग तैयारी कर रहे थे।

1902 ई. में निम्न-मध्यवर्गी 'समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी' की स्थापना हुई। याद रहे कि करेन्स्की इसी पार्टी का आदमी था। जारशाही के खत्म होने के बाद बोल्शेविकों से लड़नेवाला अन्तिम पूँजीवादी प्रधानमंत्री यही था। 1902 में ही 'मुक्ति गुट' का भी संगठन हुआ जो भावी संवैधानिक-जनतांत्रिक पार्टी का बीज था। रूसी पूँजीपति वर्ग की प्रमुख पार्टी संवैधानिक-जनतांत्रिक पार्टी (कांस्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी) ही थी–जिसे आगे 'कादेत' भी कहा जायगा।

लेनिन 'इस्क्रा' द्वारा मजदूर वर्ग की पार्टी को संगठित करने में पूरी तरह प्रयत्नशील थे। 1902 ई. की गर्मियों में लेनिन ने लिखा था : "1895 से पहले जो संघर्ष छिड़ा था, वह तरुग क्रांतिकारियों की छोटी सीमा के भीतर का संघर्ष था। वही संघर्ष अब परिपक्व राजनीतिक रुझानों और वास्तविक राजनीतिक पार्टियों के बीच निर्णायक संघर्ष का रूप ले रहा है।" अन्य राजनीतिक पार्टियों का मजबूत संगठन बतला रहा था कि आनेवाली क्रांतिकारी लड़ाइयों के लिए हरेक वर्ग अपने-अपने सैद्धांतिक तथा राजनीतिक हथियारों को पैना कर रहा है।

1902 ई. की गर्मियों में 'इस्क्रा' के कार्यक्रम पर एक के बाद दूसरी बहुत-सी कमिटियों ने अपनी सहमति प्रकट की। यह लेनिन के कार्यक्रम की एक बड़ी जीत थी। ऐसी स्थिति में लेनिन ने पार्टी-कांग्रेस बुलाने पर जोर दिया।

7
बोल्शेविक और मेन्शेविक (1903-05 ई.)

यद्यपि प्रथम पार्टी कांग्रेस लेनिन के साइबेरिया में निर्वासन के समय हो चुकी थी, लेकिन जहाँ तक पार्टी के निर्माण और दूसरे ठोस कामों का सम्बन्ध है, दूसरी पार्टी कांग्रेस से ही पार्टी का आरम्भ हुआ। इसी में पार्टी के निर्माण की बाकायदा घोषणा की गयी। लेनिन ने इसके लिए बड़ी तैयारी की थी। दूसरी कांग्रेस की तैयारी के सम्बन्ध में 'इस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल के सारे काम का बोझ लेनिन पर पड़ा। उन्हीं की देख-रेख में दूसरी कांग्रेस बुलाने के लिए संगठन कमिटी बनायी गयी। रूस में 'इस्क्रा' के संगठनों और एजेंटों को पत्र लिखकर लेनिन ने जोर दिया कि अत्यंत विश्वसनीय, पक्के तथा परीक्षित प्रतिनिधियों को भेजा जाय।

1. जनेवा में (1903 ई.)

अप्रैल 1903 में लेनिन लन्दन छोड़कर जनेवा के लिए चल पड़े। अब 'इस्क्रा' भी वहीं छपने लगा। जनेवा पहुँचने पर, कांग्रेस आरम्भ होने से पहले, लेनिन ने दो लेख लिखे : 'हमारे कार्यक्रम के मसौदे की आलोचना का उत्तर', तथा 'हमारे कार्यक्रम में जातियों का प्रश्न'। पहले लेख में उन्होंने 'इस्क्रा' के किसान कार्यक्रम पर किये गये आक्षेपों का जवाब दिया था। दूसरे लेख में उन्होंने उस महत्त्वपूर्ण निर्णय की सूचना दी थी जिसने बोल्शेविक

क्रांति को सफल बनाने में बहुत बड़ा काम किया। इसमें रूसी साम्राज्य के भीतर की जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार को स्वीकार किया गया था। लेनिन ने कांग्रेस के सामने आनेवाले सभी प्रश्नों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया, पार्टी के नियम बनाये और एजेंडा तथा कितनी ही अन्य बातों के संबंध में प्रस्ताव तैयार किये।

दूसरी पार्टी-कांग्रेस (1903 ई.)–कांग्रेस आरंभ होने से एक-दो महीने पहले से ही प्रतिनिधि आने लगे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि रूस से आनेवाले प्रतिनिधियों को जारशाही पुलिस और अधिकारियों से बहुत बचकर आना पड़ा था। उनके पहले आने से एक फायदा यह हुआ कि लेनिन उनके साथ दिल खोलकर हर समस्या पर बातचीत कर सके। प्रतिनिधियों से लेनिन उनके अपने-अपने इलाकों की स्थिति पूछते, फिर कांग्रेस के सामने आनेवाले प्रश्नों पर वार्तालाप करते। इस बातचीत से लेनिन को अच्छी तरह मालूम हो गया कि किस प्रतिनिधि का रुख क्या है और कांग्रेस में वह किस ओर रहेगा।

17 जुलाई, 1903 को रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस आरम्भ हुई। पहले, कांग्रेस ब्रूसेल्स में शुरू हुई थी; लेकिन जब बेल्जियम की पुलिस ने कठिनाइयाँ पैदा करनी शुरू कीं तो कांग्रेस लन्दन में हुई। पहले दिन से ही क्रांतिकारी और अवसरवादी तत्त्वों में जो घनघोर संघर्ष शुरू हुआ, वह अन्त तक जारी रहा।

लेनिन ने 'इस्क्रा' पक्ष की विजय के लिए पूरी कोशिश की। वह कांग्रेस के ब्यूरो तथा उसकी खास-खास कमिटियों–जैसे कार्यक्रम, नियम तथा प्रमाणीकरण की कमिटियों–के मेम्बर चुने गये। एजेंडा के प्रायः सभी विषयों पर लेनिन बोले। कांग्रेस तीन सप्ताह से कुछ ऊपर तक चलती रही। इस दौरान लेनिन करीब एक-सौ-बीस बार बोले। अवसरवादियों से लड़ते हुए उन्होंने 'इस्क्रा' के रुख का समर्थन किया। पार्टी कार्यक्रम, सर्वहारा के अधिनायकत्व, किसानों की माँगों के समर्थन तथा जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार जैसे सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ अपनी नीति को रखा और विरोधियों को मुँहतोड़ जवाब दिया।

लेनिन ठीक रास्ते पर थे। हरेक चीज को ठीक तरह से पेश करने और दूसरों के हृदय में उसे अच्छी तरह उतार देने की उनमें अद्भुत प्रतिभा थी। इसीलिए, अवसरवादियों की हार हुई और 'इस्क्रा' का क्रांतिकारी कार्यक्रम स्वीकृत हुआ। लेनिन जानते थे कि असंबद्ध पार्टी से क्रांति की लड़ाई सफलतापूर्वक नहीं लड़ी जा सकती; उसके लिए तो अनुशासनबद्ध तथा स्पष्ट और ठीक दृष्टिकोण रखनेवाले सैनिकों की पार्टी की आवश्यकता है। उन्होंने ऐसी ही पार्टी का निर्माण करने पर जोर दिया। पार्टी के हित के ऊपर अलग-अलग गुटों के हितों को रखने की प्रवृत्ति का उन्होंने डटकर विरोध किया। अलग-अलग जातियों के हिसाब से पार्टी मेम्बरों को विभाजित करने के प्रयत्न का जबर्दस्त विरोध करते हुए उन्होंने यह बात मनवायी कि मजदूर वर्ग का संगठन जाति के अनुसार नहीं बल्कि भू-भाग के अनुसार होना चाहिए।

लेनिन ने अपनी पुस्तक **एक कदम आगे, दो कदम पीछे** की एक टिप्पणी में लिखा था :

> "मुझे एक केन्द्रवादी प्रतिनिधि के साथ कांग्रेस के समय की अपनी बातचीत याद आती है। उसने शिकायत की थी : 'इस कांग्रेस का वातावरण कितना अशांतिपूर्ण है ! यह भयंकर झगड़ा, एक-दूसरे के खिलाफ यह आंदोलन, ये कटोर आक्षेप, साथियों के ये बुरे संबंध !'...'कितनी भव्य है यह कांग्रेस !' –मैंने जवाब दिया था। 'खुला और बेरोक संघर्ष। विचार प्रकट किये गये हैं। अलग-अलग रायें जाहिर की गयी हैं। दल उभरकर आ गये हैं। हाथ उठ गये हैं। एक निर्णय लिया गया। एक सीढ़ी पार कर ली गयी। आगे बढ़ो !–यह बात है जिसे मैं पसन्द करता हूँ। यह है जीवन। यह उबाने वाला, अन्तहीन बौद्धिक बतबनाव नहीं है जो इसलिए बन्द नहीं होता कि प्रश्न निश्चित हो चुका है, बल्कि इसलिए बन्द होता है कि लोग बात करते-करते उकता गये हैं।'...केन्द्रवादी साथी ने चकित हो आँखें फाड़कर मेरी ओर देखा और फिर अपने कन्धे उचका दिये। हम एक-दूसरे से भिन्न भाषा बोल रहे थे।"

नियमों के बारे में रिपोर्ट लेनिन ने पेश की। जो मसौदा उन्होंने पेश किया उसमें लड़ाकू, केन्द्रीकृत और अनुशासनबद्ध सर्वहारा पार्टी के संगठन के सिद्धांतों का स्पष्ट निरूपण था। नियम एक में बतलाया गया था

कि पार्टी के मेम्बर वे सभी लोग बन सकते हैं जो पार्टी के कार्यक्रम को स्वीकार करें, पार्टी को आर्थिक सहायता दें तथा पार्टी के किसी एक संगठन से सम्बद्ध हों। इस नियम का उद्देश्य पार्टी को एक दृढ़ रूप से संगठित संस्था बनाना था। यह नियम पार्टी के भीतर दृढ़ अनुशासन को सुरक्षित रखता था, उसके सर्वहारा रूप की गारंटी करता था और गैर-सर्वहारा तत्त्वों को पार्टी के भीतर घुसकर पार्टी की शुद्धता को खराब करने का मौका न देने का प्रबंध करता था। कांग्रेस में इस बारे में बोलते हुए लेनिन ने कहा :

> "हमारा कर्तव्य है कि अपनी पार्टी की दृढ़ता, एक-मनस्कता और शुद्धता को सुरक्षित रखें। हमें पार्टी सदस्य की उपाधि को और भी ऊँचे स्तर पर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

लेनिन को पश्चिमी यूरोप की मजदूर-पार्टियों की तरह सुधारवाद के लिए काम करनेवाली पार्टी की आवश्यकता नहीं थी; उन्हें पार्टी के रूप में एक ऐसे जनरल-स्टाफ की आवश्यकता थी जो निरंकुशता के जबर्दस्त गढ़—जारशाही—से सफल संघर्ष कर सके। एटली और जयप्रकाश की पार्टियों की तरह सिंहों और मेमनों, क्रांतिकारियों और अवसरवादियों को पास-पास ला बैठाने से कोई लाभ नहीं हो सकता, यह लेनिन जानते थे।

लेनिन के इस विचार का मारतोफ ने एक्सेलरोद, जासूलिच, त्रात्स्की तथा दूसरे ढुलमुलयकीनों की मदद से विरोध किया। मारतोफ ने सुझाव रखा था कि मेम्बर होने के लिए पार्टी कार्यक्रम को स्वीकार करना और पार्टी को आर्थिक मदद देना पर्याप्त समझा जाय और किसी निश्चित पार्टी संगठन का मेम्बर होना आवश्यक न बनाया जाय। यह ऐसी बात थी जिससे अवसरवादी तत्त्व आसानी से पार्टी में घुस सकते थे और फिर पार्टी का अनुशासन कायम नहीं रखा जा सकता था। अपनी आर्थिक परिस्थितियों के कारण सर्वहारा सर्वहारा रहते समय तक क्रांतिकारी छोड़ और कुछ नहीं हो सकता। लेकिन गैर-सर्वहारा के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती। लेनिन के जोर देने पर भी मारतोफ की बात थोड़े से बहुमत से पास हो गयी। अवसरवादियों को इस सफलता पर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने समझा, अब मैदान मार लिया।

इस खतरे को लेनिन समझ रहे थे। उन्होंने दूने उत्साह के साथ प्रयत्न किया और बाद में उन्हें सफलता मिली। कांग्रेस की अंतिम बैठक के समय जब पार्टी की भिन्न-भिन्न केंद्रीय कमिटियाँ और ब्यूरो आदि निर्वाचित होने लगे, उस समय गर्माहट और भी बढ़ गयी। लेनिन ने पहले ही से इस बात का निश्चय और तैयारी कर ली थी कि पार्टी की केंद्रीय कमिटी में पक्के क्रांतिकारी ही चुने जायें। लेनिन को विफल करने के लिए विरोधी बहुत निम्नतल पर उतरने से भी बाज नहीं आये और मारतोफ ने लेनिन पर झूठे व्यक्तिगत आक्षेप किये। लेनिन ने इसके जवाब में जो भाषण दिया था, वह कांग्रेस का सबसे जबर्दस्त भाषण था। उन्होंने कहा था :

> "पार्टी में मुहासिरे की स्थिति', 'व्यक्तियों और दलों के विरुद्ध अपवादात्मक नियम' और ऐसे ही अन्य खौफनाक शब्दों से मैं जरा भी नहीं डरता। हमारा यह अधिकार ही नहीं, बल्कि कर्तव्य भी है कि ढुलमुलयकीन, अस्थिर तत्त्वों के लिए हम 'मुहासिरे की स्थिति' कायम करें। और हमारे पार्टी नियम, कांग्रेस द्वारा स्थापित किया गया केंद्रवाद, राजनीतिक बिखराव के इन बहुत-से स्रोतों के खिलाफ 'मुहासिरे की स्थिति' से किसी भी तरह कम नहीं हैं। बिखराव के विरुद्ध विशेष, बल्कि अपवादात्मक विधानों का भी प्रयोग करना होगा। कांग्रेस ने जो कदम उठाया है वह ठीक राजनीतिक दिशा में है, क्योंकि वह इस तरह के नियमों और इस तरह के उपायों के लिए अच्छा आधार स्थापित करता है।"

पार्टी के केंद्रीय मुख-पत्र के सम्पादकीय विभाग और केंद्रीय कमिटी के चुनाव में भी बहुमत ने लेनिन के पक्ष में वोट दिया।

बोल्शेविक—कांग्रेस के बहुमत ने लेनिन का समर्थन किया था। बहुमत को रूसी भाषा में 'बोलशिन्स्त्वो' कहते हैं। 'बोल्श' वस्तुतः संस्कृत के 'भूरिशः' (बहुत) का ही रूपांतर है और 'त्वो' संस्कृत का 'त्व' है। बोलशिन्स्त्वो में जो रहे, उनको बोल्शेविक कहा गया। कांग्रेस में लेनिन के विरोधी अल्पमत (मेन्शिन्स्त्वो) में थे, और उन्हें मेन्शेविक कहा जाने लगा। सिद्धांतों में बोल्शेविक क्रांतिकारी थे और मेन्शेविक सुधारवादी व अवसरवादी।

कांग्रेस समाप्त हो जाने के बाद पार्टी के भीतर के झगड़े ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। मेन्शेविकों

ने दूसरी कांग्रेस के निर्णयों को असफल करने तथा पार्टी-केंद्र पर दखल जमाने का हर तरह से प्रयत्न किया। लेनिन को यह समझने में देर नहीं लगी कि पार्टी के भीतर पुराने पराजित अवसरवादी 'अर्थवादियों' का स्थान मेन्शेविकों के रूप में नयी तरह के अवसरवादी लेना चाहते हैं। मेन्शेविकों को अपना विष और अधिक फैलाने का मौका देना गलत था। इसलिए लेनिन ने उनको भी नंगा करके अलग-थलग करने का सफल प्रयत्न किया। परदेश में रहनेवाले रूसी मार्क्सवादियों में ठीक रास्ते और सिद्धांत के लिए लेनिन को केवल मेन्शेविकों से ही नहीं बल्कि उनसे भी लोहा लेना पड़ रहा था, जो समझौता कराने के वहाने मेन्शेविकों द्वारा होनेवाले नुकसान को कायम रखना चाहते थे।

'इस्क्रा' मेन्शेविकों के हाथ में–अक्तूबर, 1903 में रूसी सामाजिक-जनवादी लीग की दूसरी कांग्रेस हुई। इसमें मेन्शेविकों को बहुमत प्राप्त हुआ। मारतोफ, त्रात्स्की, एक्सेलरोद और दूसरे मेन्शेविकों ने लेनिन पर बड़े नीच आक्षेप किये। उन्होंने लीग को पार्टी-विरोधी हथियार बनाया और दूसरी पार्टी कांग्रेस के निर्णयों को मंजूर करने से इन्कार कर दिया। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक लीग-कांग्रेस छोड़कर चले गये और केंद्रीय कमेटी के प्रतिनिधि ने घोषित किया कि लीग-कांग्रेस को जारी रखना अनियमित है।

बोल्शेविकों और मेन्शेविकों का झगड़ा अव पूरी तरह से शुरू हो गया। क्रांतिकारी और अवसरवादी विचारधाराओं में समझौता हो भी कैसे सकता था ? प्लेखानोफ यद्यपि द्वितीय कांग्रेस में मेन्शेविकों के साथ नहीं थे, लेकिन उनमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि मेन्शेविकों का डटकर मुकावला करें। मेन्शेविकों और बोल्शेविकों के संघर्ष में उनका झुकाव मेन्शेविकों की ओर ही चला। उनका रुझान भी कुछ उसी तरह का था, यह हम पहले भी देख चुके हैं।

18 अक्तूबर की शाम को–जिस दिन लीग-कांग्रेस की बैठक खतम हो रही थी–'इस्क्रा' के दोनों सम्पादकों, प्लेखानोफ और लेनिन के बीच जो बातचीत हुई, उसने दोनों के दो रास्तों का फैसला कर दिया। दूसरी कांग्रेस के समय प्लेखानोफ ने लेनिन का समर्थन किया था। अब उन्होंने पैंतरा बदलते हुए कहा, "मैं अपने पक्ष की ओर गोली नहीं चला सकता।" उन्होंने माँग की कि कांग्रेस ने जिन पुराने मेन्शेविक सम्पादकों को निकाल दिया है, उन्हें 'इस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल में फिर से रखा जाय नहीं तो वह इस्तीफा दे देंगे। लेनिन कांग्रेस के निर्णय को पैरों तले रौंदने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने केंद्रीय समिति में अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए संपादक-मंडल से इस्तीफा दे दिया। प्लेखानोफ ने मारतोफ, एक्सेलरोद, जासूलिच, पोत्रसोफ–चारों मेन्शेविक संपादकों को फिर से सम्पादक-मण्डल में रख लिया।

अब 'इस्क्रा' लेनिन का 'इस्क्रा' नहीं था। उसे चिनगारी न कहकर, राख कहना ही ठीक होगा। 'इस्क्रा' का 52वाँ अंक तथा उसके वाद के सारे अंक लेनिन के सम्पादकत्व में नहीं निकले। बोल्शेविक 'इस्क्रा' अब मेन्शेविक 'इस्क्रा' बन गया।

बारह महीने तक लेनिन 'इस्क्रा' जैसे शक्तिशाली तथा अपने हाथों पाल-पोसकर बढ़ाये गये पत्र से वंचित रहे। अब पार्टी के संगठनों से संबंध कायम रखने के लिए वैयक्तिक पत्र-व्यवहार के अलावा और कोई साधन उनके पास नहीं था। लेकिन, योग्य हाथों में पहुँचकर कोई भी हथियार शक्तिशाली बन जाता है। लेनिन ने वैयक्तिक पत्र-व्यवहार के द्वारा पुराने 'इस्क्रा' का काम लेना शुरू किया। हर महीने व्लादिमिर लगभग तीन सौ पत्र लिखते थे। इन पत्रों द्वारा उन्होंने बोल्शेविकों में काम करने का उत्साह पैदा किया तथा फूट डालनेवालों के साथ जमकर लोहा लेने का उनमें उत्साह जगाया। रूस के भिन्न-भिन्न भागों से पार्टी कार्यकर्ता उनके पास पत्र भेजते थे। इन पत्रों से लेनिन को भिन्न-भिन्न स्थानों की अवस्था तथा पार्टी मेम्बरों और कमकरों के मनोभावों का पता रहता था। इससे लेनिन के मन में दूनी शक्ति और दूना उत्साह पैदा होता था।

स्तालिन का पत्र–इसी समय लेनिन को स्तालिन का पत्र मिला। इस पत्र में स्तालिन ने दिल खोलकर लेनिन का समर्थन किया। उन्होंने लेनिन को पार्टी का संस्थापक और नेता कहा। लेनिन ने इस पत्र का जो जवाब दिया वह स्तालिन को साइबेरिया में, निर्वासन-स्थान में मिला। इस पत्र के वारे में स्तालिन ने अपने संस्मरणों में लिखा था :

"लेनिन का पत्र अपेक्षाकृत छोटा था, परन्तु उसमें उन्होंने हमारी पार्टी के व्यावहारिक कार्य की बड़ी निर्भीक और जबर्दस्त आलोचना की थी। उसमें भविष्य में पार्टी के काम की सारी योजना का संक्षिप्त विवरण था। केवल लेनिन ही अत्यन्त गहन वस्तुओं के बारे में इतनी सादगी और सफाई के साथ, इतने संक्षेप में और साहस के साथ, लिख सकते थे। उस पत्र का एक-एक वाक्य, बात ही नहीं कहता था वल्कि राइफल की गोली की तरह छूटता था। इस सीधे-सादे और निर्भीक पत्र ने मेरे इस विचार को दृढ़ कर दिया कि लेनिन हमारी पार्टी के शाहबाज हैं।"

'इस्क्रा' से वंचित वैयक्तिक पत्र-व्यवहारों के द्वारा ही लेनिन ने कितनी सफलता से काम किया, यह स्तालिन की उपरोक्त पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है।

'एक कदम आगे, दो कदम पीछे' (1904 ई.)–मेन्शेविकों ने 'इस्क्रा' पर अधिकार करके अब लेनिन और बोल्शेविकों पर गोलाबारी शुरू की। कुछ समय बाद पार्टी कौंसिल भी मेन्शेविकों के हाथ में चली गयी और खुद केंद्रीय कमिटी के भीतर भी समझौतावादी रुख जोर पकड़ने लगा। मेन्शेविक लोग पार्टी के संगठन में शिथिलता, अस्त-व्यस्तता और अनुशासनहीनता का प्रचार करते हुए व्यक्तिवाद की महिमा वघारने में लगे हुए थे। बोल्शेविकों को हर क्षेत्र में उनसे लड़ना था। संगठन के वारे में उनके अवसरवाद को नंगा करना और बोल्शेविज्म के संगठन-संवंधी सैद्धांतिक आधार की पूरी व्याख्या करना जरूरी था।

यह काम लेनिन केवल पत्रों द्वारा अच्छी तरह नहीं कर सकते थे। अस्तु, जनवरी, 1904 में उन्होंने **एक कदम आगे, दो कदम पीछे** नामक अपनी ऐतिहासिक पुस्तक लिखी, जो 6 मई, 1904 को प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लेनिन ने दूसरी कांग्रेस और उसके बाद के झगड़ों का बड़े सुन्दर ढंग से विश्लेषण किया। किस तरह बहस हुई और एक-एक वात पर वोट लिये गये, यह कदम-कदम पर वतलाते हुए उन्होंने सावित किया कि दूसरी कांग्रेस में जो झगड़ा हुआ था वह सिद्धांतों का झगड़ा था, वह क्रांतिकारी और अवसरवादी दो विचारधाराओं का झगड़ा था, वह सर्वहारा क्रांतिकारियों और निम्न-मध्यवर्गी सुधारवादियों के बीच झगड़ा था।

इस पुस्तक में लेनिन ने संगठन के सवाल पर मेन्शेविकों के अवसरवाद के मुख्य-मुख्य लक्षणों को उघार कर रखा है। ये लक्षण हैं : केंद्रीयता का विरोध, अनुशासन से घृणा, संगठन के पुराने पड़ गये ढंगों का समर्थन, कमकर पार्टी के भीतर निम्न-मध्यवर्ग के अवसरवादी तत्त्वों को खुलकर आने देने की इजाजत, समाजवादी क्रांति तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए मजदूर वर्ग के संघर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन के तौर पर पार्टी संगठन को मानने से इन्कार।

एक कदम आगे, दो कदम पीछे में लेनिन ने सर्वहारा के लिए संगठनात्मक हथियार गढ़ा और मार्क्सवादी पार्टी के संगठनात्मक नियमों को तैयार किया। सर्वहारा पार्टी को कैसा होना चाहिए–इसकी मुख्य रूपरेखा मार्क्स-एंगेल्स ने तैयार की थी। उसी के आधार पर लेनिन ने मजदूर वर्ग की पार्टी के लिए सिद्धांत निश्चित किया। उसे केंद्रीकृत तथा अनुशासनवद्ध क्रांतिकारी पार्टी होना चाहिए। लेनिन ने वताया कि मार्क्सवादी पार्टी मजदूर वर्ग का मुख्य अंग है। वह उसकी अग्रगामी, वर्ग-चेतन इकाई है जो वर्ग-संघर्ष के नियमों से लैस है और इसलिए मजदूर वर्ग के संघर्ष का संचालन करने की क्षमता रखती है।

साथ ही पार्टी एक ऐसी संगठित इकाई है जिसका अनुशासन उसके सभी मेम्बरों पर लागू होता है। केवल ऐसी पार्टी ही मजदूर वर्ग के संघर्ष का पथ-प्रदर्शन कर सकती है, उसे सर्वमान्य लक्ष्य तक पहुँचा सकती है, जो एक ऐसी इकाई के रूप में संगठित है जिसके मेम्बर सम्मिलित इच्छा से तथा संयुक्त कार्रवाई और अनुशासन द्वारा एक-दूसरे के साथ घनिष्ठतापूर्वक आवद्ध हैं।

पार्टी मजदूर वर्ग के सभी तरह के संगठनों का सवसे ऊँचा रूप है, क्योंकि वह एक अग्रगामी सिद्धांत तथा क्रांतिकारी आन्दोलन के तजुर्बे से लैस है। मजदूर वर्ग के दूसरे सभी संगठनों का पथ-प्रदर्शन करना उसका काम है।

पार्टी मजदूर वर्ग के हिरावल और उस वर्ग की विशाल जनता के बीच के सम्बन्ध का साकार स्वरूप है। पार्टी चाहे कितनी ही अच्छी हिरावल हो, चाहे कितनी ही अच्छी तरह से संगठित हो, वह तव तक जीवित

नहीं रह सकती, तब तक अपना विकास नहीं कर सकती, जब तक वह गैर-पार्टी जनसाधारण से सम्बन्धित न हो और जब तक वह उनके साथ अपने सम्बन्धों को व्यापक तथा मजबूत नहीं बनाती।

ठीक तौर से काम कर सकने और सुव्यवस्थित रूप से जनता का नेतृत्व कर सकने के लिए पार्टी को केन्द्रीयता के सिद्धान्त पर संगठित होना चाहिए। उसके नियम समान, अनुशासन सम्मिलित और उसका नेतृत्व करनेवाली केवल एक कमिटी होनी चाहिए। अल्पमत को बहुमत की बात स्वीकार करनी होगी; स्थानीय संगठनों को केन्द्र की और निम्न संगठनों को ऊपरी संगठनों की वात माननी होगी। अगर पार्टी अपने भीतर एकता कायम रखना चाहती है, तो उसे अपनी व्यावहारिक कार्रवाइयों में कठोर सर्वहारा-अनुशासन लागू करना होगा। यह अनुशासन पार्टी के सभी मेम्बरों–नेताओं तथा साधारण कार्यकर्ताओं–पर एक-सा लागू करना होगा। लेनिन ने पुस्तक के उपसंहार में लिखा था :

> "राजशक्ति के लिए संघर्ष करते समय सर्वहारा के पास अपना संगठन छोड़ और कोई हथियार नहीं है। पूँजीवादी संसार के अराजकतापूर्ण प्रतियोगिता के नियमों द्वारा विभाजित, पूँजी की दासता में बँधे, मशक्कत में चूर, और चरम दरिद्रता, क्रूरता तथा पतन के निम्नतम तल पर लगातार दबाकर रखे गये सर्वहारा तभी एक अज्ञेय शक्ति हो सकते हैं–और अन्त में एक होकर रहेंगे–जब मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के चारों ओर उनकी विचार सम्बन्धी एकता ऐसी संगठन-संबंधी भौतिक एकता के साथ दृढ़ हो जायगी, जो करोड़ों मेहनतकशों को मजदूर वर्ग की सेना में एकतावद्ध करती है। न तो रूसी जारशाही का खूसट शासन इसकी सेना का वाल बाँका कर पायेगा, और न अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी का बुढ़वा शासन।"

इस पुस्तक में लेनिन ने मेन्शेविकों की जो कड़ी आलोचना की थी वह द्वितीय इन्टर्नेशनल की पार्टियों और नेताओं पर भी लागू होती थी। जिन दोषों को उन्होंने इस पुस्तक में दिखलाया वे आज के इंगलैंड, भारत तथा दूसरे देशों के तथाकथित समाजवादियों और उनके नेताओं में स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

2. पार्टी-केन्द्र

1904 ई. की गर्मियों में पार्टी की भीतरी अवस्था बहुत बिगड़ गयी थी। बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के अतिरिक्त समझौतावादियों का भी एक गुट तैयार हो गया था जिसकी मदद से मेन्शेविकों ने केन्द्रीय कमिटी पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार अब पार्टी के सभी केन्द्रीय संगठन उनके हाथ में चले गये। पार्टी के पास न अपना मुख-पत्र था और न केन्द्रीय कमिटी।

द्वितीय इन्टरर्नेशनल–मार्क्स-एंगेल्स ने सर्वहारा क्रांति की तैयारी के लिए प्रथम इन्टर्नेशनल की स्थापना की थी। उनके जीवन में ही वह चरम उत्कर्ष पर पहुँची थी। बाद में वह निर्जीव हो गयी। सुधारवादियों ने बाद में बनी द्वितीय इन्टर्नेशनल पर कब्जा कर लिया था। द्वितीय इन्टर्नेशनल के नेतागण मार्क्स के वास्तविक उत्तराधिकारी लेनिन के दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली को पसन्द नहीं कर सकते थे। लेनिन जिन प्रहारों द्वारा मेन्शेविकों की शक्ति को निर्बल और प्रभावशून्य बना रहे थे, उन्हीं से द्वितीय इन्टर्नेशनल और उसके नेताओं की भी पोल खुलती जा रही थी। द्वितीय इंटर्नेशनल अवसरवादियों का जबर्दस्त गढ़ थी। वे भला मेन्शेविकों को अपनी ओर खींचने से कैसे बाज आ सकते थे ? रोजा लुक्जेमबुर्ग द्वितीय इन्टर्नेशनल में एक बहुत ही अग्रगामी विचार रखनेवाली महिला थीं। लेकिन वह भी लेनिन के नये सिद्धांत की बातों को समझने में असमर्थ रहीं। द्वितीय इन्टर्नेशनल ने बोल्शेविकों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। लेकिन अगस्त, 1904 में एम्सटर्डम कांग्रेस में उन्होंने बोल्शेविकों के स्वतंत्र प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस में आनेवाले प्रतिनिधियों को लेनिन द्वारा सम्पादित वोल्शेविकों की रिपोर्ट की कापियाँ मिलीं जिनमें कहा गया था कि जर्मन पार्टी के कटु अनुभवों को ध्यान में रखकर ही यह नियम बनाया गया है कि पार्टी सदस्यों को किसी-न-किसी पार्टी संगठन से सम्बन्धित होना चाहिए।

नया संगठन–1904-05 ई. के रूस-जापान युद्ध में जारशाही किस बुरी तरह पराजित हुई, यह सारी दुनिया जानती है। इस लड़ाई के परिणामस्वरूप रूस की स्थिति में और भी जबर्दस्त तनाव पैदा हो गया। क्रांति की

सम्भावना अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। किन्तु इस स्थिति का उपयोग तभी किया जा सकता था जब पार्टी-मशीन को पूरी तरह तैयार कर लिया जाय। दूसरी कांग्रेस के बाद जो अस्तव्यस्तता चारों ओर दिखायी पड़ती थी, उसे दूर करने के लिए पार्टी की तीसरी कांग्रेस बुलाना आवश्यक था। यद्यपि तिकड़म से मेन्शेविकों ने पार्टी की केन्द्रीय कमिटी और दूसरे साधनों को अपने हाथ में कर लिया था, तो भी लेनिन जानते थे कि सर्वहारा और क्रांतिकारियों का बहुमत अब भी उनके साथ है। 1904 की जुलाई के अन्त में उन्होंने एक कान्फ्रेंस स्विट्जरलैंड में बुलायी। इसमें बाईस बोल्शेविक प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। कान्फ्रेंस ने 'पार्टी के नाम' एक अपील निकाली। इस अपील को लेनिन ने तैयार किया था। पार्टी-मेम्बरों के बहुमत ने मेन्शेविकों द्वारा दखल किये गये केन्द्रीय संगठनों में अविश्वास प्रकट किया और नये तथा सच्चे पार्टी-केन्द्र स्थापित किये। रूस के भीतर तीन स्थानीय कान्फ्रेंसें हुईं और बहुमत की ओर से कमिटियों का एक ब्यूरो स्थापित किया गया। इस ब्यूरो ने तीसरी कांग्रेस की तैयारी के लिए जोर-शोर से काम करना शुरू किया। जनवरी, 1904 में साइबेरिया के निर्वासन से भाग कर स्तालिन काकेशस में आ गये थे। यहाँ उन्होंने बड़ी लगन के साथ इस सम्बन्ध में काम किया। अपनी किसी पत्र-पत्रिका का न होना बोल्शेविकों के लिए बड़ी अड़चन की बात थी। लेनिन पत्र को लड़ाई का शस्त्रागार और गोला-बारूद कहते थे। उन्होंने रूस के बोल्शेविकों को एक पत्र में लिखा था : "सबकुछ इस अखबार पर निर्भर है।"

लेनिन जिस चीज का संकल्प कर लें, भला वह पूरी हुए विना कैसे रह सकती थी ! 1904 के दिसम्बर में उनके सम्पादकत्व में "व्पेर्योद" (अग्रगामी) निकला। बोल्शेविक "व्पेर्योद" सब तरह से पुराने 'इस्क्रा' का अवतार था। पत्र निकलने से लेनिन को कितनी प्रसन्नता हुई यह रूस के साथियों को लिखी उनकी इन पंक्तियों से मालूम हो जाता है :

> "सारा बहुमत इतना खुश और मग्न है, जितना वह पहले कभी नहीं था। आखिर हमने इस बड़े झगड़े को खतम ही किया। अब हम उन सभी लोगों के साथ मिलकर काम करेंगे जो महज गड़बड़ी पैदा करना नहीं, बल्कि काम करना चाहते हैं।...आफरीं ! हिम्मत न हारो, अब फिर हम उठ खड़े हो रहे हैं, और हम फिर तैयार हो जायेंगे।"

8

1905 की क्रान्ति

1. पृष्ठभूमि

लेनिन क्रान्ति के तत्त्वद्रष्टा थे। वह पहले ही समझ गये थे कि रूस-जापान युद्ध जारशाही निरंकुशता की सड़ाँध और कमजोरियों को खोलकर रख देगा, लोगों के ऊपर से जारशाही का प्रभाव उठ जायगा और क्रान्ति नजदीक आ जायगी। वह जानते थे कि इस लुटेरू लड़ाई में जार सरकार की पराजय से उसका शासन कमजोर होगा तथा क्रान्तिकारी शक्तियाँ मजबूत होंगी। 22 दिसम्बर, 1904 को 'व्पेर्योद' के प्रथम अंक में लेनिन ने 'स्वेच्छाचारिता और सर्वहारा' के नाम से एक लेख लिखा जिसमें आनेवाली क्रांति का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा : "रूस में क्रांति का आरम्भ हो चुका है।" जापानियों के पोर्ट आर्थर पर अधिकार करने की खबर सुनकर खूनी इतवार के कुछ दिन पहले उन्होंने लिखा था : "पोर्ट आर्थर का आत्मसमर्पण जारशाही के आत्मसमर्पण की प्रस्तावना है।"

क्रांति के लिए तैयारी—पेरिस कम्यून के पतन के समय से अब तक कितनी ही दशाब्दियाँ बीत चुकी थीं। तब से यूरोप की भूमि क्रांतियों और विद्रोहों से वंचित-सी रही थी। अब रूस की स्थिति इतनी तेजी से बदल

रही थी—तूफान इतनी तेजी से नजदीक आ रहा था कि लेनिन के लिए देश से बाहर रहना असह्य हो उठा। 9 जनवरी की घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए लेनिन ने लिखा था :

"सचमुच, यहाँ जनेवा में बैठकर इस कमबख्त दूरी से घटनाओं के साथ कदम मिला सकना बहुत ही मुश्किल हो रहा है। लेकिन जब तक हमें इस कम्बख्त दूरी को बर्दाश्त करने पर मजबूर होना पड़ रहा है, हमें घटनाओं के साथ क़दम मिलाकर चलने की कोशिश करनी चाहिए, उन्हें समझना चाहिए, उनसे नतीजे निकालने चाहिए, आज के इतिहास से वह अनुभव निचोड़ना चाहिए, जो कल हमारे लिए फायदेमन्द साबित होगा, उस दूसरी जगह फायदेमन्द साबित होगा जहाँ लोग 'अभी भी खामोश हैं', लेकिन जहाँ, एक-न-एक रूप में, क्रांति की लपटें निकट भविष्य में ही जल उठनेवाली हैं।"

लेनिन अब क्रांति की तैयारी में पूरी तरह जुट गये। 1848 की क्रांति तथा दूसरे विद्रोहों के बारे में मार्क्स-एंगेल्स की कृतियों का उन्होंने फिर से ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। एंगेल्स के सेना-सम्बन्धी लेखों तथा सड़कों की लड़ाई के बारे में लेखों को उन्होंने खास तौर से पढ़ा। पेरिस कम्यून की ओर उनका खास ध्यान गया। वह रूसी, अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच समाचारपत्रों को पढ़कर स्थिति की सच्ची तस्वीर अपनी आँखों के सामने तैयार कर रहे थे। उन्होंने मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया : सर्वहारा और किसानों को हथियार-बन्द करना है; सशस्त्र विद्रोह के लिए संगठन करना है; और मजदूरों तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व को रूस में कायम करना है।

फरवरी, 1905 में लेनिन ने 'नये कर्तव्य और नयी शक्तियाँ' लेख लिखा। इसी लेख में उन्होंने पूँजीवादी जनवादी क्रांति में बोल्शेविकों के मुख्य दाँव-पेंच के नारे को—सर्वहारा और किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व को—पहले-पहल सामने रखा। उन्होंने लिखा था :

"एक सामाजिक-जनवादी के लिए क्रांति का समय वैसा ही है, जैसा कि सेना के लिए युद्ध का। हमें अपनी सेना के सैनिकों को बढ़ाना होगा, उन्हें शांतिकाल की फौज से युद्ध की फौज में परिवर्तित करना होगा; रिजर्व को संचालित करना होगा तथा छुट्टी पर गये लोगों को वापस बुलाना होगा।...हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लड़ाई के समय कम शिक्षित रंगरूटों से सेना को बढ़ाने, अफसरों के स्थान पर सिपाहियों को नियुक्त करने और मामूली सैनिकों को अफसरों के दर्जे पर तरक्की देने की प्रक्रिया को जल्दी और आसान तरीके से बढ़ाने की अनिवार्य आवश्यकता होती है।"

तीसरी पार्टी-कांग्रेस (लन्दन, 1905 ई.)—लेनिन चाहते थे कि पार्टी की तीसरी कांग्रेस बिना देरी किये की जाय। वह जानते थे कि क्रान्ति शुरू होने से पहले पार्टी को मजबूत कर लेना जरूरी है। पार्टी के भीतर मेन्शेविकों के कारण बहुत अस्तव्यस्तता आ गयी थी। लेनिन कांग्रेस के लिए बड़े जोर-शोर से तैयारी करने लगे ! उन्होंने मुख्य प्रस्तावों के मसौदे बनाये, कांग्रेस की कार्रवाई की आम योजना तैयार की और 'सामाजिक-जनवाद और स्थायी क्रांतिकारी सरकार', 'किसानों और मज़दूरों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व' इत्यादि कितने ही लेख लिखे जिनमें उन्होंने कांग्रेस के सामने आनेवाली कार्यनीति सम्बन्धी समस्याओं का विश्लेषण किया। अप्रैल, 1905 में लंदन में पार्टी की तीसरी कांग्रेस शुरू हुई। यह वस्तुतः बोल्शेविकों की कांग्रेस थी। मेन्शेविकों ने इसका बायकाट करते हुए जनेवा में अपनी अलग कांफ्रेंस की।

तीसरी कांग्रेस के अध्यक्ष लेनिन चुने गये। कांग्रेस की सभी कार्रवाइयों में पूरी तरह भाग लेते हुए उन्होंने उसका संचालन किया। एजेंडा में जितनी भी बातें थीं, करीब-करीब सभी पर वह बोले। कुल मिलाकर वह सौ से अधिक बार बोले। सशस्त्र विद्रोह, अस्थायी क्रांतिकारी सरकार, किसानों के प्रति रुख आदि सभी मुख्य प्रस्तावों का मसौदा उन्होंने स्वयं तैयार किया।

इन प्रस्तावों में जोर दिया गया था कि क्रांति में सर्वहारा को अत्यंत सक्रिय भाग लेना होगा; उसे नेतृत्व करना होगा। किसानों से मैत्री करना तथा उदारवादी पूँजीवादियों को विलग करना उसका कर्तव्य होगा। पार्टी के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण काम था सशस्त्र विद्रोह की तैयारी के संगठन को कार्यरूप में परिणत करना। कांग्रेस ने घोषित किया कि पार्टी को किसानों की दिल खोलकर सहायता करनी होगी और जमींदारियों को जब्त करने

के लिए तैयार रहना होगा। क्रांतिकारी किसान कमिटियों के तुरन्त निर्माण पर भी कांग्रेस ने जोर दिया।

बोल्शेविक कांग्रेस के मुकावले मेन्शेविक कांग्रेस के प्रस्ताव और निर्णय कितने निर्बल और बेकार थे-यह इसी से मालूम हो जाता है कि पूँजीवादी क्रांति में उन्होंने उदार पूँजीवादियों के नेतृत्व का समर्थन किया था।

तीसरी कांग्रेस में 'काकेशस की घटनाओं' के सम्बन्ध में लेनिन का एक प्रस्ताव पास किया गया। स्तालिन के नेतृत्व में काकेशस क्रांति के कामों में बहुत आगे बढ़ा था। उसकी सराहना किये बिना लेनिन कैसे रह सकते थे ? प्रस्ताव में कहा गया था कि काकेशस का आंदोलन स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी विद्रोह की अवस्था तक पहुँच गया है। काकेशस के पार्टी-संगठनों का भी कांग्रेस ने अभिनन्दन किया। रूस की स्थानीय कमिटियों और केंद्रीय कमिटियों को हिदायत दी गयी कि काकेशस की स्थिति के बारे में अधिक-से-अधिक प्रचार किया जाय और शक्ति-भर सभी तरह से समय पर सहायता पहुँचायी जाय। लेनिन समझते थे कि सर्वहारा को सैनिक के तौर पर ही क्रांति में भाग नहीं लेना है; जब तक उसके भीतर से सच्चे और पक्के नेताओं को नहीं पैदा किया जाता, तव तक स्थायी नेतृत्व नहीं मिल सकता। इसीलिए उन्होंने जोर देकर कहा था :

> "हर तरह से प्रयत्न करना चाहिए कि पार्टी और मजदूर वर्ग के बीच के सम्बन्धों को मजबूत किया जाय। सर्वहारा और अर्ध-सर्वहारा के अधिकाधिक भागों को पूर्ण सामाजिक-जनवादी वर्ग-चेतना के स्तर पर उठाया जाय; उनकी स्वतंत्र क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादी कार्रवाइयों को विकसित किया जाय और कमकर-जनसाधारण के भीतर से ऐसे स्त्री-पुरुषों की भारी संख्या को ऊपर उठाया जाय जो स्थानीय तथा केन्द्रीय पार्टी संगठनों के मेम्बरों के तौर पर आंदोलन तथा पार्टी-संगठनों का नेतृत्व कर सकें।"

जब लेनिन ने कमकरों को स्थानीय पार्टी-कमिटियों में लेने में हिचकिचाहट देखी, तो वह बहुत असंतुष्ट हुए। "यह सुनकर मैं चुप नहीं रह सका कि कमकर स्थानीय कमिटियों के मेम्बर होने लायक नहीं हैं।" उन्होंने इस बात पर बल दिया कि कमिटियों को अधिकाधिक सर्वहारा रूप दिया जाय। कांग्रेस में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था : "कमिटियों में कमकरों को रखना केवल शिक्षात्मक काम ही नहीं है, बल्कि राजनीतिक काम भी है। कमकरों के पास वर्गगत नैसर्गिक बुद्धि होती है। जैसे ही उनको कुछ राजनीतिक अनुभव प्राप्त होता है, वे दृढ़ सामाजिक-जनवादी बन जाते हैं। मैं इस बात के अधिक पक्ष में रहूँगा कि हमारी कमिटियों में दो बुद्धिजीवियों पर आठ कमकर हों।" लेनिन के ये विचार बोल्शेविकों की संगठन की नीति बन गये और उनके कारण उन्होंने कमकर वर्ग का पूरा विश्वास प्राप्त किया।

कांग्रेस ने लेनिन की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय कमिटी निर्वाचित की। इसकी पहली पूरी बैठक में वह पार्टी के केन्द्रीय मुख-पत्र–'प्रोलेतारी' (सर्वहारा)–के मुख्य संपादक निर्वाचित किये गये। पत्र का पहला अंक, जिसमें तीसरी कांग्रेस पर लेनिन के लेख थे, 14 मई, 1905 को निकला।

लन्दन में कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होने के बाद लेनिन अन्य प्रतिनिधियों के साथ मार्क्स की समाधि पर गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने गुरु, और सही अर्थों में जगत्गुरु, मार्क्स की समाधि पर पहुँचने पर उनका हृदय श्रद्धा और पूजा के भाव से भर उठा था और उनके मन में उस महान तत्त्वदर्शी की तपस्या और प्रतिभा का अनुस्मरण हो रहा था।

'दो कार्यनीतियाँ'–लेनिन जनेवा लौट आये। तीसरी कांग्रेस के निर्णयों के समर्थन और मेन्शेविक कांग्रेस की आलोचना में लेनिन ने 'रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की तृतीय कांग्रेस के निर्णय की सूचना' आदि लेख लिखे और कितने ही व्याख्यान दिये। इस 'निर्णय-सूचना' को उन्होंने जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में भी प्रकाशित कराया। इस सम्बन्ध में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति **जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** थीं जो जुलाई, 1905 में प्रकाशित हुई। इस छोटी-सी पुस्तक में उन्होंने बोल्शेविक और मेन्शेविक दलों के मौलिक मतभेदों की विवेचना करके बतलाया कि क्रांति में सफलता प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा और उसमें सर्वहारा की कौन-सी भूमिका होगी और उसका क्या उद्देश्य होगा। उन्होंने यह भी बतलाया कि मेन्शेविकों की नीति में उनका यह भय साफ दिखलायी पड़ता है कि कहीं क्रांति विजयी न हो जाय, कहीं फिर पूँजीवादी-नेतृत्व

को सर्वहारा के अधीन न होना पड़े। उनका यह तरीका क्रांति के साथ विश्वासघात करनेवाला है। "चूंकि हम लड़ने के लिए कटिबद्ध हैं, इसलिए हमें जीतने की इच्छा करनी चाहिए और विजय के लिए ठीक रास्ता बतलाने के योग्य होना चाहिए।"

लेनिन द्वारा दो प्रकार के दाँव-पेंचों की तुलना के बारे में स्तालिन ने कहा था : "मेन्शेविकों की ऐतिहासिक समानताओंवाली विचारधारा की व्यर्थता को और मजदूरों के हित को पूँजीपतियों की दया पर छोड़ देनेवाली मेन्शेविकों की 'क्रांति योजना' को बिल्कुल नंगा करके लेनिन ने रूसी क्रांति की असीम सेवा की।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि लेनिन ने रूसी मेन्शेविकों को जिन अकाट्य युक्तियों से नंगा करके रख दिया था, वे दूसरे देशों के अवसरवादियों, विशेषकर द्वितीय इन्टर्नेशनल की पार्टियों और नेताओं पर भी पूरी तरह लागू होती थीं।

दो कार्यनीतियाँ में लेनिन ने हर तरह से इस बात को सिद्ध किया कि पूँजीवादी जनवादी क्रांति का नेता बनना सर्वहारा के लिए बिल्कुल सम्भव है; क्योंकि सर्वहारा ही सबसे आगे बढ़ा हुआ और लगातार क्रांतिकारी वर्ग है, और उसकी खुद अपनी राजनीतिक पार्टी है, जो पूँजीपति वर्ग से स्वतन्त्र है। चूंकि संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य समाजवाद की स्थापना करना है, इसलिए क्रांति को उसके अन्तिम लक्ष्य तक–अर्थात् जारशाही के उलटने तक–ले जाने में उसको पूरी दिलचस्पी है। क्रांति का वास्तविक नेता बनने के लिए सर्वहारा के लिए आवश्यक है कि वह किसानों को उदार पूँजीवादियों से अलग करके अपनी तरफ लाये। इस प्रकार लेनिन ने पूँजीवादी जनवादी क्रांति में सर्वहारा के नायकत्व के विचार के रूप में मार्क्सवादी पार्टी के सामने एक बिल्कुल नये ढंग की कार्यनीति रखी। यह कार्यनीति उस कार्यनीति से बिल्कुल भिन्न थी, जिसका अब तक मार्क्सवादी अनुसरण करते आये थे।

अपनी पुस्तक में लेनिन ने इसकी भी पूरी विवेचना की कि क्रांति में किन साधनों से विजय प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने सिद्ध किया कि निर्णायक विजय प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक सशस्त्र विद्रोह सबसे कारगर साधन है।

उन्होंने जनता को प्रेरित करने तथा उसे संगठित करने के लिए ये नारे पेश किये : सार्वजनिक राजनीतिक हड़तालें हों; शहरों में आठ घंटे का दिन तथा देहातों में जनतांत्रिक सुधार तुरन्त क्रांतिकारी ढंग से लागू हों; क्रांतिकारी किसान-कमिटियाँ तुरन्त संगठित की जायें; कमकर हथियारबन्द किये जायें। उन्होंने यह भी बताया कि विजय के बाद एक अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की स्थापना आवश्यक होगी और जारशाही के ऊपर सार्वजनिक विद्रोह की विजय को अन्तिम रूप से दृढ़ करने के लिए इस अस्थायी सरकार को सर्वहारा और किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व छोड़ और कुछ नहीं होना चाहिए।

दो कार्यनीतियाँ का कितना भारी महत्त्व है, यह **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास** के निम्न शब्दों से मालूम होता है :

> "इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व सबसे ज्यादा इसमें है कि लेनिन ने सैद्धांतिक रूप से मेन्शेविकों की निम्न-पूँजीवादी कार्यनीति की लाइन को चूर कर दिया। उन्होंने पूँजीवादी-जनवादी क्रांति की अगली प्रगति के लिए रूस के मजदूर वर्ग को सैद्धांतिक रूप से सशस्त्र कर दिया। जारशाही पर नये हमले के लिए उसे लैस कर दिया। उन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादियों को एक साफ रास्ता दिखाया कि पूँजीवादी क्रांति का समाजवादी क्रांति की मंजिल में प्रवेश करना जरूरी है।
>
> "लेकिन, इससे लेनिन की पुस्तक का महत्त्व खत्म नहीं होता। उसका अमूल्य महत्त्व इस बात में है कि उसने मार्क्सवाद को क्रांति के एक नये सिद्धांत से समृद्ध किया। उसने बोल्शेविक पार्टी की क्रांतिकारी कार्यनीति की नींव डाली, जिसकी मदद से 1917 में हमारे देश के सर्वहारा ने पूँजीवाद पर विजय प्राप्त की।"

अपने दूसरे लेखों में भी लेनिन ने क्रांति को सफल बनाने के लिए सही रास्ते का निर्देश किया। 'किसान आंदोलन के प्रति सामाजिक-जनवादियों का रुख' नामक लेख में उन्होंने लिखा : "वर्ग-चेतनायुक्त तथा संगठित

सर्वहारा की शक्ति के अनुसार...हम तुरन्त जनवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति की तरफ बढ़ना शुरू करेंगे। हम लगातार क्रांति के पक्ष में हैं। हम आधे रास्ते में नहीं रुकेंगे।"

2. संघर्ष का आरम्भ

1905 ई. में कमकरों का क्रांतिकारी संघर्ष उग्र राजनीतिक रूप लेने लगा। वेतन और दूसरी आर्थिक माँगों के लिए होनेवाली कमकरों की हड़तालें अब राजनीतिक हड़तालों और प्रदर्शनों का रूप लेने लगीं। जारशाही पुलिस तथा सेना के साथ जनता की हथियारबन्द भिड़न्त बहुतायत से होने लगी। 1905ई. की गर्मियों में इवानोवो-वज्नेसेन्स्क की हड़ताल बहुत जबर्दस्त थी। यह हड़ताल करीब ढाई महीने तक चलती रही। इसी हड़ताल में वहाँ के कमकरों ने अपने संघर्ष के संचालन के लिए प्रतिनिधियों की एक सोवियत (पंचायत) कायम की। यही वस्तुतः कमकर प्रतिनिधियों की पहली सोवियत थी। इसी ढाँचे और स्वरूप को आगे चलकर पूँजीवादी शासनतन्त्र के मुकाबले में सर्वहारा शासनतन्त्र का नमूना माना गया।

कमकरों की राजनीतिक हड़तालें सारे देश पर प्रभाव डालने लगीं। नगर के विद्रोह का अनुसरण देहात में होने लगा। वसन्त में जगह-जगह किसान-विद्रोह होने लगे। मध्य-एशिया, वोल्गा प्रदेश और काकेशस—विशेषकर गुर्जी (जार्जिया)—में इन विद्रोहों ने विशाल रूप धारण कर लिया।

इधर किसानों और मजदूरों का संघर्ष चल रहा था, उधर जापान ने रूसी सेनाओं को लगातार कई बार हराया। इस सबका प्रभाव सेना पर पड़ना आवश्यक था। आखिर सिपाही भी मजदूरों और किसानों के बेटे थे। जारशाही की जड़ हिलने लगी। जून, 1905 में काला सागर के जंगी बेड़े के युद्धपोत 'पोतेम्किन' ने विद्रोह कर दिया। जार की सेना में यह पहली सार्वजनिक क्रांतिकारी कार्रवाई थी। पहली बार जार की सेना की एक बड़ी संख्या अपने शासकों का साथ छोड़ क्रांति की ओर आयी। पूँजीपति वर्ग ने जार से समझौता करके शासन में अपने लिए अधिकार लेने तथा क्रांति को आगे बढ़ने से रोकने का प्रयत्न शुरू किया; लोगों को शांत करने, क्रांति की शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने तथा उन्हें रोकने के लिए पूँजीवादियों ने 'जनता' के लिए कुछ छोटे-छोटे सुधारों की माँग की। जारशाही सरकार ने यदि एक ओर कमकरों और किसानों को दबाने के कठोर तरीके अख्तियार किये, तो दूसरी ओर उन्हें फुसलाने की नीति भी अपनायी। एक ओर यदि उसने रूस की भिन्न-भिन्न जातियों को एक-दूसरे के खिलाफ भड़काया, तो दूसरी ओर राज्यदूमा (राज्य पार्लियामेंट) के रूप में उसने एक 'प्रतिनिधि संस्था' कायम करने का वचन भी दिया।

लेनिन सजग—लेनिन उस समय सुदूर जनेवा में थे। लेकिन उनकी दृष्टि क्रांति की ओर लगी हुई थी। क्रांति में सभी वर्गों के व्यवहार को वह बड़े ध्यान से देख रहे थे। रूस में होनेवाली घटनाओं का विश्लेषण करते हुए उन्होंने 'प्रोलेतारी' में कितने ही लेख लिखे और उदार पूँजीवादियों की सिद्धांतहीनता, लोभ, कायरता और विश्वासघात को नग्न करके रखा। उदारवादियों की कोई हरकत उनकी आँखों से छिपी नहीं रही। संवैधानिक जनवादियों के विरुद्ध जो लेख उन्होंने लिखे, उनमें जनतांत्रिकता का चोगा पहने इन क्रांति-विरोधियों की उन्होंने खूब छिछालेदर की। "सर्वहारा लड़ रहे हैं, पूँजीवादी चुपके-चुपके राजसत्ता पर हावी हो रहे हैं" —इन शब्दों में उन्होंने इन दोनों वर्गों के आचरण की विवेचना की।

मेन्शेविकों के होश-हवास गुम थे। रूसी क्रांति के इतने व्यापक पैमाने तथा सर्वहारा क्रांति की सफलता की सम्भावना को देखकर उनकी नींद हराम हो गयी थी। अपने एक लेख का शीर्षक लेनिन ने रखा था : 'राजवादी पूँजीवादियों की दुम के पीछे अथवा क्रांतिकारी सर्वहारा-किसान जनता की अगुवाई'। इसमें उन्होंने बतलाया था कि मेन्शेविकों और बोल्शेविकों के दाँव-पेंचों में क्या भेद है। उन्होंने सभी जिलों के पार्टी मेम्बरों का आह्वान किया कि मेन्शेविकों के खिलाफ अपने संघर्ष को वे और जोरदार बनायें। इसी समय, 1905 ई. की गर्मियों में, स्तालिन ने 'पार्टी के भीतर मतभेदों पर कुछ विचार' नामक पुस्तिका काकेशस में प्रकाशित की। इस पुस्तिका के प्रकाशन के बाद वहाँ के मेन्शेविकों के लिए मुँह दिखाना मुश्किल हो गया था। लेनिन ने उस पुस्तिका का खुलकर समर्थन किया।

लेनिन देश से बाहर रहते हुए भी बोल्शेविकों की सारी कार्रवाइयों का संचालन कर रहे थे। हथियारबन्द विद्रोह, क्रांतिकारी सेना का निर्माण तथा अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के निर्माण का नारा देकर उन्होंने बोल्शेविकों का पथ-निर्देशन किया। लेनिन ने केवल क्रांति के साधनों को सैद्धांतिक रूप से बताने का ही काम नहीं किया। उन्होंने हथियार खरीदकर रूस भेजने का भी प्रबन्ध किया। उन्होंने 'पोतेम्किन' के विद्रोहियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए आदमी भेजे। पार्टी के लोगों को उन्होंने बतलाया कि इस विद्रोह से उन्हें क्या शिक्षा लेनी चाहिए। लेनिन ने बतलाया कि नौसैनिकों के इस विद्रोह ने पार्टी के सामने क्रांतिकारी सेना के निर्माण को व्यावहारिक कर्तव्य ला खड़ा किया है :

> "क्रान्तिकारी सेना की हमें आवश्यकता है, क्योंकि महान् ऐतिहासिक प्रश्न केवल शक्ति द्वारा ही हल किये जा सकते हैं, और आधुनिक संघर्ष में संगठित शक्ति का अर्थ है सैनिक संगठन।"

लेनिन ने पार्टी मेम्बरों को सैनिक शिक्षा लेने तथा सैकड़ों-हजारों की संख्या में लड़ाकू टुकड़ियाँ तैयार करने में पूरी शक्ति लगाने पर जोर दिया। अक्तूबर, 1905 में उन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की पीतरबुर्ग कमिटी की सैनिक समिति को लिखा था :

> "सभी जगह, विशेषकर विद्यार्थियों और कमकरों आदि के बीच, लड़ाकू टुकड़ियाँ तुरन्त बनाने के लिए तरुणों से अपील करो। तीन-तीन, दस-दस, तीस-तीस आदि आदमियों की टुकड़ियाँ तुरन्त संगठित करो। उन्हें तुरन्त अपनी मर्जी से किसी-न-किसी हथियार से—रिवाल्वर, छुरे, मिट्टी के तेल में भीगे आग लगाने के चीथड़ों आदि से लैस होने दो। इन टुकड़ियों को तुरन्त अपने नेता निर्वाचित करने चाहिए और वे, यदि सम्भव हो तो, पीतरबुर्ग कमिटी की सैनिक समिति के साथ सम्पर्क स्थापित करें।...प्रति सप्ताह पाँच या दस आदमी सैकड़ों कमकर तथा विद्यार्थी-चक्रों में जायें, जहाँ भी हो सके भीतर घुसें और सब जगह इस सीधी-सादी, संक्षिप्त दो टूक और स्पष्ट योजना को प्रस्तावित करें : तुरन्त टुकड़ियाँ बनाओ, अपने को जो भी मिले उससे हथियारबन्द करो, अपनी सारी शक्ति लगाकर काम करो। जहाँ तक हो सकेगा हम तुम्हारी सहायता करेंगे, लेकिन हमारी मदद के लिए रुको मत, स्वतन्त्रतापूर्वक कार्रवाई करो।...कार्रवाई के लिए टुकड़ियों की सैनिक शिक्षा तुरन्त आरम्भ कर देनी चाहिए, तुरन्त।"

लेनिन को हरेक बात आईने की तरह साफ दिखाई दे रही थी। भिन्न-भिन्न शक्तियों के बीच जो संघर्ष छिड़े थे, साथ ही उनमें जो सहयोग हो रहे थे, उनसे आगे दूर तक उनके रास्ते को लेनिन पहले ही देख लेते थे। वे जानते थे कि क्रांति का रास्ता आगे किस ओर मुड़ेगा। राज्यदूमा बुलाने के सम्बन्ध में 6 अगस्त को जार ने कानून घोषित किया। उससे तीन-चार दिन पहले ही लेनिन ने 'बुलिगिन दूमा का बायकाट और विद्रोह' के नाम से एक लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने राजनीतिक संघर्ष की एक निश्चित योजना बनायी थी : सशस्त्र विद्रोह से नारे के साथ राज्यदूमा का सक्रिय बायकाट हो ! इस राजनीतिक संघर्ष को बोल्शेविकों ने बड़ी सफलता से चलाया। जनता जारशाही के जाल में नहीं फँसी। बुलिगिन दूमा क्रांतिकारी तूफान में बह गयी। अक्तूबर, 1905 में आम राजनीतिक हड़ताल फूट पड़ी और संघर्ष के बीच से सोवियतों (पंचायतों) का उदय हुआ। लेनिन पहले ही से जानते थे कि क्रांति का गला घोंट सकने के लिए जारशाही कुछ बातों पर दबने को तैयार होगी। जार के 17 अक्तूबर के घोषणापत्र की खबर पाने से कई घन्टे पहले ही लेनिन ने लिखा था : "जारशाही विजय प्राप्त करने में असमर्थ हो चुकी है, क्रांति अभी ऐसा करने में समर्थ नहीं हुई।" संविधान के लिए सहमति का नाटक दिखाकर जारशाही लोगों को बेवकूफ बनायेगी। सर्वहारा को जार के प्रदान किये हुए संविधान को फाड़कर विद्रोह द्वारा स्वेच्छाचारिता को उखाड़ फेंकना होगा।

क्रांति का वेग अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। आँधी की गति से बढ़नेवाली घटनाओं का दूर रहकर अनुसरण करना कठिन था। लेनिन अब रूस पहुँचने के लिए बेकरार थे। 1905 ई. के वसन्त में ही उन्होंने अपने लेखों में कमकरों और किसानों से सीधे बात करने और विशाल सार्वजनिक सभाओं में बोलने की इच्छा प्रकट की थी। अक्तूबर की सार्वजनिक हड़ताल जब अपने शिखर पर थी तब लेनिन ने लिखा था : "रूस में हमारी क्रांति वस्तुतः भव्य, सम्माननीय और यशस्वी है। हम जल्दी ही लौटने की आशा में हैं... ।" वह अब

लौटने की तैयारी करने लगे। मैक्सिम गोर्की के सहयोग से उन्होंने 'नोवाया जीस्न' (नवजीवन) नाम से कानूनी बोल्शेविक समाचारपत्र के पीतरबुर्ग में प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया और 1905 के अक्तूबर के अंत में जनेवा से रूस के लिए प्रस्थान किया।

स्टाकहोम (स्वीडन) में कितने ही दिनों उन्हें रुकना पड़ा। यहीं उन्होंने 'हमारे करणीय तथा कमकर प्रतिनिधियों की सोवियत' नाम से एक लेख लिखा जो उस समय गुम हो गया था और पैंतीस वर्ष वाद, 1940 ई. में पहली वार प्रकाशित किया गया। लेनिन ने तुरन्त कमकर प्रतिनिधियों की सोवियतों का महत्त्व समझ लिया। सर्वहारा जनसाधारण की क्रान्तिकारी सूझ ने उनका निर्माण किया था और नयी सरकार, जनता के क्रान्तिकारी तत्त्वों के अधिनायकत्व के संगठनों का वे प्रारम्भिक रूप थीं। लेनिन सोवियतों को अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार का प्रारम्भिक रूप तथा परिपक्व हो रहे विद्रोह का संगठन समझते थे। पार्टी और सोवियतों के बीच एवं सोवियतों और विशाल जनसाधारण के बीच क्या संबंध होने चाहिए, इसे बतलाते हुए उन्होंने प्रस्ताव रखा कि कमकरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सम्मिलित सोवियतें बनायी जायें। इससे क्रांति का नेतृत्व करनेवाले राजनीतिक केन्द्रों के तौर पर सोवियतों के चारों ओर सारी जनता को जमा करने में सहायता मिलेगी। उन्होंने तुरन्त अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार बनाने पर जोर दिया और लिखा कि उसका कार्यक्रम पूर्ण और सच्ची राजनीतिक स्वतंत्रता, सच्ची राष्ट्रीय संविधान सभा का वुलाना, जनता को हथियारबन्द करना, उत्पीड़ित जातियों को तुरन्त सच्ची और सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना, आठ घंटे के दिन का कानून बनाना और सारी जमीन को किसानों के हाथों में देना होना चाहिए। इस सरकार को जनता का विद्रोह के लिए आह्वान करना था।

लेनिन ने रूस पहुँचने के समय सर्वहारा पार्टी के सामने काम का यह साकार स्वरूप रखा।

पीतरवुर्ग लौटे–कई वर्षों की अनुपस्थिति के बाद 1905 के नवम्बर महीने के आरम्भ में लेनिन पीतरबुर्ग पहुँचे। जारशाही द्वारा मंजूर की गयी 'स्वतंत्रताओं' के बावजूद लेनिन को छिपकर काम करना पड़ा। कानूनी तौर से नगर में रहने के उनके प्रयत्न का फल यही हुआ कि तुरन्त ही खुफिया पुलिस के झुंड ने उनके निवास-स्थान को घेर लिया, और तब उन्हें गुप्त रूप से रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। वह अपने पासपोर्ट और रहने के स्थान को बरावर बदलते रहते। कितनी ही वार पीतरवुर्ग छोड़ वह फिनलैंड में जाकर रहे। उनके रहने के लिए यह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित स्थान था। पीतरबुर्ग पहुँचने के तुरन्त बाद 'नोवाया जीस्न' नामक दैनिक समाचारपत्र के सम्पादक-मंडल के वोल्शेविकों की एक सभा में लेनिन उपस्थित हुए। सम्पादक-मंडल में परिवर्तन किये गये और काम की एक योजना तैयार की गयी। वाद में लेनिन पार्टी की केन्द्रीय-कमिटी की बैठक में उपस्थित हुए। उसी में पार्टी-कांग्रेस बुलाने के सम्बन्ध में पार्टी संगठनों के लिए एक अपील तैयार की गयी। उसके कई दिनों वाद कमकर प्रतिनिधियों की सोवियत की एक बैठक में लेनिन ने पूँजीपतियों द्वारा की गयी तालाबन्दी के प्रश्न पर भाषण भी दिया। सोवियत की कार्यकारिणी कमिटी ने इस प्रश्न पर लेनिन द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को स्वीकार किया।

लेनिन जोर-शोर से काम में जुट गये। पार्टी संगठनों के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हुआ। वह केन्द्रीय कमिटी तथा पार्टी की पीतरबुर्ग कमिटी की वैठक में शामिल हुए, पार्टी सभाओं और कान्फ्रेंसों में उन्होंने भाषण दिये, रूस के सभी भागों से आनेवाले पार्टी-कर्मियों से बातचीत की तथा उनकी बैठकों में भाग लिया। सशस्त्र विद्रोह की तैयारी में भी उन्होंने पूरी तरह हाथ बँटाया। नवम्बर महीने के अन्त में केन्द्रीय कमिटी की एक वैठक हुई जिसमें गोर्की भी उपस्थित थे। गोर्की ने कमिटी को बताया कि मास्को के कमकरों में कैसा जोश फैला हुआ है। महान् साहित्यकार गोर्की से लेनिन का यह पहला साक्षात्कार था। गोर्की क्रान्ति के समर्थक थे। उनके विचारों के कारण कुछ ही समय वाद जारशाही ने उन्हें फाँसी की सजा देनी चाही थी। लेकिन वह तो विश्व के महान् लेखकों में गिने जाने लगे थे। दुनिया-भर के साहित्यकारों के प्रबल विरोध ने गोर्की को अकाल ही काल-कवलित होने से बचा लिया।

'नोवाया जीस्न' का संचालन लेनिन ने स्वयं अपने हाथों में लिया। 10 नवम्बर को उसमें उनका पहला लेख निकला। इसका शीर्षक था : 'पार्टी का पुनर्संगठन !' बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप पार्टी-कार्य में

जबर्दस्त पुनर्संगठन की माँग करते हुए उन्होंने लिखा था : "पार्टी के गुप्त संगठन को कायम रखते हुए यह जरूरी है कि कमकर वर्ग ने जो कानूनी सुविधाएँ जीती हैं, उनको जितने भी सम्भव हो उतने विशाल पैमाने पर इस्तेमाल किया जाय। गुप्त रहकर काम करते समय पार्टी संगठन अपने पदाधिकारियों का निर्वाचन नहीं कर सकते थे। लेकिन अब निर्वाचन के सिद्धान्तों पर चलना होगा और अपने संगठन को जनवादी केन्द्रीयता के आधार पर फिर से बनाना होगा।"

दो दिन बाद, 12 नवम्बर को, 'सर्वहारा और किसान जनता' के नाम से उनका दूसरा लेख निकला। इसमें उन्होंने क्रान्ति में मजदूर वर्ग और किसान-जनता के लक्ष्यों को बतलाते हुए जोर दिया कि इन दोनों वर्गों के बीच की लड़ाकू मैत्री को मजबूत करना चाहिए। किसान भूमि और स्वतंत्रता चाहते हैं। मजदूर वर्ग को अपनी सारी शक्ति से क्रान्तिकारी किसान-जनता का समर्थन करना चाहिए। लेकिन संघर्ष यहीं समाप्त नहीं होगा। किसानों से साफ-साफ बताना होगा कि उनके हाथ में भूमि आ जाने से और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने मात्र से ही काम खत्म नहीं होगा, कारण कि उससे पूँजी का शासन अथवा जनसाधारण की गरीबी खत्म नहीं हो जायगी। उन्होंने लिखा : "वर्ग-चेतन कमकरों का लाल झण्डा पहले इस बात का सूचक है कि पूर्ण स्वतंत्रता तथा समूची भूमि के लिए हो रहे किसानों के संघर्ष का हम दिल से समर्थन करते हैं··दूसरे यह कि हम यहीं नहीं रुकेंगे, हम और आगे बढ़ेंगे। भूमि और स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ-साथ हम समाजवाद के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं।"

लेनिन के ये लेख पार्टी के प्रतिदिन के कामों का पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। बोल्शेविक संगठनों का काम कमकर-जनसाधारण के बीच बहुत विस्तृत पैमाने पर होने लगा। देहातों में बोल्शेविक बहुत भीतर और दूर तक घुस गये। साथ ही, उन्होंने सेना और नौसेना में भी अपने मजबूत अड्डे कायम किये।

1905 के दिसम्बर के आरम्भ में तामरफोर्स (फिनलैंड) में पहली बोल्शेविक कान्फ्रेंस हुई। यहीं पर स्तालिन की पहले-पहल लेनिन से मुलाकात हुई। दोनों ही राज्यदूमा के सम्बन्ध में प्रस्ताव तैयार करनेवाली कमिटी के मेम्बर थे। इस कान्फ्रेंस में लेनिन ने वर्तमान स्थिति तथा किसान-समस्या के सम्बन्ध में दो रिपोर्टें दीं। इन रिपोर्टों के बारे में स्तालिन ने अपने संस्मरणों में कहा था :

> "लेनिन को मैंने पहले-पहले दिसम्बर, 1905 में तामरफोर्स में हुई बोल्शेविकों की कान्फ्रेंस में देखा। मैं आशा करता था कि अपनी पार्टी के पहाड़ी गरुड़, इस महान पुरुष को, राजनीतिक तौर से ही नहीं, बल्कि, आप कह सकते हैं, शारीरिक तौर से भी महान् देखूँगा, क्योंकि अपनी कल्पना में लेनिन को मैंने एक विशालकाय, भव्य और गुरु-गम्भीर पुरुष के रूप में चित्रित किया था। लेकिन सोचिए, मुझे कितनी निराशा हुई जब मैंने देखा कि वह एक साधारण से दिखायी देनेवाले आदमी, कद में औसतन आदमियों से भी कम, दूसरे मामूली इन्सानों से जरा भी अलग, कतई भिन्न नहीं हैं।...
>
> "आम तौर से 'महान् पुरुष' के लिए माना जाता है कि वह सभाओं में देर से पहुँचेगा ताकि लोग साँस रोके उसकी प्रतीक्षा करते रहें; और फिर, इस 'महान पुरुष' के प्रकट होने के ठीक पहले, चेतावनी-सूचक फुसफुसाहट दौड़ जाती है : 'हुश !··खामोश !··वह आ रहे हैं।' यह रस्म मुझे बेकार नहीं लगती थी, क्योंकि इससे एक रौब पड़ता है, लोगों में सम्मान की भावना पैदा होती है। लेकिन सोचिए, मुझे कितनी निराशा हुई जब मैंने देखा कि लेनिन प्रतिनिधियों से पहले ही कान्फ्रेंस में आ पहुँचे हैं, कि वह कहीं एक कोने में जा बैठे हैं और बड़े सादे ढंग से बातचीत कर रहे हैं, कान्फ्रेंस के सबसे साधारण प्रतिनिधियों से सबसे साधारण बातचीत कर रहे हैं। मैं आपसे छिपाना नहीं चाहता कि यह बात उस वक्त मुझे चन्द आवश्यक नियमों का उल्लंघन-सी लगी।
>
> "केवल बाद में मुझे पता चला कि लेनिन की यह सादगी और शालीनता, दिखावा न करने का यह प्रयत्न, या कम-से-कम अपने को विशेषता न देने की कोशिश करना और ऊँचे पद का प्रदर्शन न करना, नयी जनता के, सीधी-सादी और साधारण जनता के, मानवता के 'बिल्कुल मामूली' लोगों के, नये नेता के लिए सबसे महत्त्व की चीज थी।···

"लेनिन के भाषण हृदय के उद्‌गार थे। उन्होंने सारी कान्फ्रेंस में जवर्दस्त उत्साह भर दिया। उनमें दृढ़ विश्वास की असाधारण शक्ति, तर्क की सादगी और स्पष्टता थी। उनके वाक्य संक्षिप्त तथा सुगम थे। उनमें आडम्वर, बनावटी मुद्रा और प्रभाव डालने के लिए नाटकीय वचनों का अभाव था…।

"लेकिन उस समय जिस बात ने मेरे मन को हर लिया वह लेनिन के भाषणों की यह विशेषता नहीं थी। मेरे मन को हरा था उनके तर्क की अदम्य शक्ति ने, जो कुछ दुरूह जरूर थी, लेकिन जो श्रोता-मंडली पर पूरी तरह छा गयी, जिसने उसमें धीरे-धीरे विद्युत संचार किया और अन्त में उसे पूर्णतया अपने अधिकार में कर लिया।"

जिस समय तामरफोर्स में कान्फ्रेंस हो रही थी, उसी समय मास्को में हथियारबन्द बगावत शुरू हो गयी। लेनिन के कहने से कान्फ्रेंस तुरन्त समाप्त कर दी गयी। कान्फ्रेंस में आये प्रतिनिधि विद्रोह में भाग लेने के लिए चल दिये।

3. मास्को का विद्रोह

1905 ई. के आरम्भ में कमकरों की विद्रोही मनोवृत्ति से बौखलाकर जारशाही ने दमन का हथियार खूब जोर-शोर से इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। कमकरों के गुस्से को शांत करने के लिए सुधारवादी लोग उन्हें यह समझाते थे कि यह दमन तो नीचे के लोग कर रहे हैं। जार, हमारा पिता, छोटा परमेश्वर, इस सबसे निर्लेप है।

इस वर्ष के आरम्भ में जासूस पादरी गेपन ने पिता जार के लिए कमकरों की ओर से एक बहुत विनीत प्रार्थना-पत्र तैयार किया। उसे देने के लिए कमकरों के एक बहुत बड़े जुलूस को लेकर वह पृथ्वी पर भगवान के दाहिने हाथ–जार के महल की ओर चला। जुलूस में कितने ही वृद्ध पुरुष, स्त्री और बच्चे भी थे। पिता जार ने 1905 ई. की 9 जनवरी के उस इतवार को–ईसा मसीह और भगवान के पवित्र दिन–निहत्थी जनता पर अन्धाधुन्ध गोली चलवाकर जुलूस का स्वागत किया। सैकड़ों आदमियों के खून से धरती लाल हो गयी। लोगों ने उस इतवार का नाम 'खूनी इतवार' रखा। इस खूनी इतवार के बाद जार के ऊपर से कमकर-जनता का विश्वास सदा के लिए उठ गया। अब उसने प्रार्थना की जगह अपनी शक्ति से काम लेना शुरू किया। खूनी इतवार के बाद हड़तालें और विरोधी प्रदर्शन बढ़ते ही गये।

जार ने दिखावे के लिए कुछ सुधार देने और दूयूमा के बुलाने का स्वांग रचा। लेकिन अब वह लोगों की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता था। सर्वहारा की पार्टी बड़ी तत्परता के साथ सहस्राब्दियों के उत्पीड़ितों की आँखें खोल रही थी। हथियारबंद संघर्ष मास्को के कमकरों ने आरम्भ किया। उसका संचालन अब साधु गेपन जैसा कोई रँगा स्यार नहीं कर रहा था। उसका संचालन कमकर प्रतिनिधियों की मास्को सोवियत तथा उसके नेता बोल्शेविक कर रहे थे।

7 दिसम्बर से मास्को में राजनीतिक हड़ताल शुरू हुई। 9 दिसम्बर को जनता ने सड़कों पर पहली मोर्चेबंदी की। नौ दिन तक हथियारबंद कमकर बड़ी वीरता से जारशाही का मुकाबला करते रहे। अंत में पीतरबुर्ग, त्वेर तथा पश्चिमी प्रदेशों से सेना को मँगाकर ही सरकार विद्रोह को दबाने में सफल हुई।

संघर्ष के आरम्भ में ही कुछ नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे। कुछ दूसरे नेताओं को विद्रोहियों के पास पहुँचने नहीं दिया गया।

सेना ने अलग-अलग मोहल्लों में विद्रोह को छिन्न-भिन्न कर दिया।

मास्को के विद्रोह का अनुकरण क्रास्नोयार्स्क, मोतोविलिखा (पर्म), नोवोरोसिस्क, सोरमोवो, सेवास्तोपोल, क्रोन्स्तात जैसे दूसरे नगरों और इलाकों ने भी किया। जार-साम्राज्य की उत्पीड़ित जातियों ने भी हथियार उठा लिये। स्तालिन की जन्मभूमि गुर्जी ने बगावत का झंडा बुलन्द किया। उक्राइन के दौनबास इलाकों में जगह-जगह विद्रोह की आग फैलने लगी। लातविया ने बहुत जबर्दस्त संघर्ष चलाया। लेकिन मास्को की तरह विद्रोहों को सभी जगह अमानुषिक अत्याचार के द्वारा दवा दिया गया।

दिसम्बर का सशस्त्र विद्रोह असफल रहा।

धीरे-धीरे क्रांतिकारी ज्वार दबने लगा।

बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के वीच का झगड़ा अब और भी उग्र रूप धारण कर चला। मेन्शेविकों ने कमकरों से संघर्ष से हाथ खींच लेने के लिए कहा। उनके विचार में वगावत को दबा देने से क्रांति खतम हो गयी थी। लेकिन, लेनिन का कहना था : नहीं, क्रांति खतम नहीं हुई है, वह अव भी जारी है। हमें अपने हथियार नहीं रखने होंगे, बल्कि उन्हें और भी जोश के साथ इस्तेमाल करना होगा ! संवैधानिक जनतांत्रिक, समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक जनता को संवैधानिक भ्रमजाल में डालकर धोखे में डालने की कोशिश कर रहे हैं। लेनिन ने कहा—हमें उनका विरोध करना होगा।

बोल्शेविकों ने प्रथम राज्यदूमा के सक्रिय बायकाट की घोषणा की।

विद्रोह को दबा दिये जाने पर मेन्शेविक प्लेखानोफ ने कहा था : "उन्हें हथियार नहीं उठाने चाहिए थे।" साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि वह वही रुख अपना रहे हैं जो 1871 ई. में मार्क्स ने अपनाया था। लेनिन ने उपहास करते हुए उनको जवाव दिया था—क्यों न हो ! प्लेखानोफ भी तो दूसरे मार्क्स बनने की तमन्ना रखते हैं ! एक कायर और पतित की तरह प्लेखानोफ मास्को के कमकरों के वीरतापूर्ण विद्रोह की खिल्ली उड़ाते हैं जबकि मार्क्स ने पेरिस के कमकरों के अदम्य उत्साह और त्याग का वड़े सम्मान के साथ स्वागत किया था। उन्होंने कहा था कि परिस के कमकर 'स्वर्ग पर कब्जा कर लेने' के लिए तैयार थे। प्लेखानोफ ने दिसम्बर के विद्रोह पर एक 'ग्रंथ' लिखा है जो संवैधानिक-जनतांत्रिकों के लिए कुरान वन गया है, जब कि मार्क्स ने पेरिस के विद्रोही कमकरों के बारे में एक पुस्तक लिखी, जो अब भी 'स्वर्ग' पर धावा बोलने का पथ-प्रदर्शन करती है। लेनिन ने लिखा था : "रूस के कमकरों ने दिखला दिया है कि वह स्वर्ग पर धावा बोलने की क्षमता रखते हैं, और यह काम वे वार-वार करेंगे।"

'कमकर पार्टी के कर्तव्य'—जिस तरह मार्क्स ने पेरिस कम्यून के संघर्षमय जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपना अमर ग्रंथ **फ्रांस में गृह-युद्ध** लिखा था, उसी तरह लेनिन ने 1905 की क्रांति के तजुर्बों से फायदा उठाने के लिए **कादेतों की विजय और कमकर पार्टी के कर्तव्य** नाम से मार्च, 1906 में एक पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने अपने प्रहार का लक्ष्य संवैधानिक-जनतांत्रिकों (कादेतों) को बनाया। उन्होंने उनके पिट्ठू मेन्शेविकों की भी खूब खबर ली।। सर्वहारा के अधिनायकत्व के मार्क्सवादी सिद्धांत की उन्होंने व्याख्या की और प्रथम रूसी क्रांति के तजुर्बों की रोशनी में उसका स्पष्टीकरण किया। अवसरवादी मेन्शेविक कहते थे कि सोवियतें स्थानीय शासन के संगठन मात्र हैं। इसका प्रत्याख्यान करते हुए लेनिन ने कहा था कि वे सशस्त्र विद्रोह के संगठन हैं, वे नयी क्रांतिकारी शक्ति के अंकुर हैं। बाद में 1920 ई. में, लेनिन ने कहा : "सोवियतों के महत्त्व पर यह बहस अधिनायकत्व के प्रश्न से काफी सम्वन्धित थी।"

इस पुस्तक में लेनिन ने सोवियतों के बारे में लिखा था :

> "इन संगठनों को जनता के एकमात्र क्रांतिकारी अंगों ने ही स्थापित किया था। वे (सोवियतें) जनता की स्वाभाविक प्रतिभा की उपज के रूप में सभी कानूनों और प्रचलित नियमों से स्वतंत्र एकदम क्रांतिकारी ढंग से स्थापित की गयी थीं, वे उस जनता की पहलकदमी से स्थापित की गयी थीं जो पुरानी, पुलिस की बेड़ियों को तोड़ चुकी थी या तोड़ रही थी।...वे निस्संदेह नयी, जनप्रिय या कह सकते हैं, क्रांतिकारी सरकार का अंकुर थीं। अपने सामाजिक तथा राजनीतिक रूप में वे जनता के क्रांतिकारी तत्त्वों के अधिनायकत्व का अंकुर थीं।"

लेनिन ने इस पुस्तक को तुरन्त लिख डालना इसलिए भी जरूरी समझा कि तामरफोर्स कान्फ्रेंस में, कमकरों की माँग का ख्याल करके, बोल्शेविकों ने जनता के संघर्ष का संयुक्त नेतृत्व करने के लिए—मेन्शेविकों के साथ मेल करने के उद्देश्य से—कांग्रेस बुलाने का प्रस्ताव स्वीकार किया था। जनता की माँग को देखकर मेन्शेविकों को संयुक्त कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए मजबूर होना पड़ा। यद्यपि लेनिन संयुक्त कांग्रेस की माँग के समर्थक थे, तो भी वह बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच मतभेद पर पर्दा डालने के किसी भी प्रयत्न को पसन्द नहीं

करते थे। अक्तूबर, 1905 में ही उन्होंने केंद्रीय कमिटी के मेम्बरों को लिखा : "हमें दोनों भागों को एकताबद्ध करने की नीति को, दोनों भागों को एक कर देने की नीति समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। हम दोनों भागों के एकताबद्ध होने को स्वीकार करते हैं। लेकिन, उनका एक होना—हरगिज नहीं।"

इन्हीं विचारों के आधार पर लेनिन ने कांग्रेस के लिए बोल्शेविकों के पक्ष का एक मसौदा तैयार किया। 1906 ई. के फरवरी और मार्च में पहले कुओक्कला (फिनलैंड) के उपनगर वासा में, फिर मास्को में कितनी ही पार्टी कान्फ्रेंसों में उसपर विचार हुआ। लेनिन कुछ समय वासा में रहने के लिए मजबूर हुए थे। मास्को में तो गिरफ्तार होने से बाल-बाल बचे। कान्फ्रेंस की अन्तिम बैठकें पीतरबुर्ग में हुईं।

कांग्रेस की तैयारी में लेनिन ने किसान-समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया।

किसान-कार्यक्रम—लेनिन किसान कमिटी के मेम्बर थे। उन्होंने **कमकर पार्टी के किसान-कार्यक्रम का संशोधन** के नाम से एक पुस्तिका लिखी। इसमें क्रांति के विजयी होने पर जमींदारियों के जब्त करने तथा सारी भूमि का राष्ट्रीयकरण करने की माँग को रखते हुए उन्होंने उसकी व्याख्या की। चौथी कांग्रेस स्टाकहोम में होनेवाली थी। वहाँ के लिए प्रस्थान करने से पहले, लेनिन ने पीतरबुर्ग में बोल्शेविक प्रतिनिधियों की एक कान्फ्रेंस की। उस समय लुगान्स्क संगठन के प्रतिनिधि, बाद के सोवियत राष्ट्रपति वोरोशिलोफ, इस कान्फ्रेंस में मौजूद थे। यहीं उन्होंने पहली बार लेनिन को देखा। लेनिन की बातों का उनपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। प्रतिनिधियों ने अपने-अपने यहाँ की पार्टी के काम की स्थिति के बारे में रिपोर्ट दी। इसके बाद लेनिन ने आम स्थिति का संक्षेप में वर्णन किया और फिर प्रतिनिधियों से इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं। इस दृश्य का वोरोशिलोफ ने निम्न वाक्यों में वर्णन किया है :

> "व्लादिमिर इलिच उस वक्त हास-परिहास की मुद्रा में थे। किंतु हँसी-मजाक के बीच-बीच वह एक या दूसरे प्रतिनिधि पर ऐसे प्रश्नों की झड़ी लगा देते, जो कभी-कभी बड़े अप्रतीक्षित ढंग के होते थे। वह शब्दशः सभी बातों में दिलचस्पी रखते थे।...वह समान दिलचस्पी के साथ राज्यदूमा के हाल के निर्वाचनों, मेन्शेविकों की चालों के बारे में कहानियों, कादेतों, हमारी लड़ाकू टुकड़ियों को प्रशिक्षित और हथियारबंद करने के तरीकों तथा लुगान्स्क के पास-पड़ोस के स्टेशनों के कजाकों और जमींदारों की जिरातों को छीननेवाले किसानों आदि के बारे में सुन रहे थे।
>
> "कान्फ्रेंस से जाने के पहले व्लादिमिर इलिच ने कांग्रेस के बारे में और हमारी (बोल्शेविकों की) जरूरत के बारे में बातचीत की।...
>
> "हम अनुभव कर रहे थे कि हमारा लेनिन क्रांति और क्रांतिकारी सामाजिक जनवाद की प्रतिरक्षा के साधनों और उपायों को जानता है और रूस में मुक्ति के महान संघर्ष का नेतृत्व करना उसका मिशन है।"

9
एकता के प्रयत्न

1. चौथी पार्टी कांग्रेस (1906 ई.)

यह कांग्रेस 1906 के अप्रैल में स्टाकहोम (स्वीडन) में हुई। बोल्शेविक और मेन्शेविक, दोनों इसमें शामिल हुए। इसी कारण इसे 'एकता' कांग्रेस भी कहा जाता है। लेकिन यह 'एकता' नाम के लिए ही साबित हुई। बोल्शेविक और मेन्शेविक दोनों अपने-अपने दृष्टिकोणों पर जमे रहे। उन्होंने अपने-अपने संगठनों को अलग कायम रखा। कांग्रेस में दोनों दलों का जबर्दस्त संघर्ष चलता रहा। लेनिन एजेंडा की सभी मुख्य बातों पर बोले। इनमें से

कुछ बातें ये थीं : किसान कार्यक्रम; वर्तमान स्थिति तथा सर्वहारा के वर्ग-कार्य; सशस्त्र-विद्रोह; राज्यद्यूमा के प्रति रुख; और संगठन के प्रश्न। स्तालिन, कालिनिन, फ्रुंजे, वोरोशिलोफ, सोम्यान आदि लेनिन के सभी पक्के शिष्य वहाँ मौजूद थे। कांग्रेस में मेन्शेविकों का बहुत थोड़ा-सा बहुमत था। दिसम्बर विद्रोह के बाद पुलिस ने बोल्शेविकों के कितने ही संगठन तोड़ दिये थे। अस्तु, सब संगठन अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सके। परिणामस्वरूप मेन्शेविक कितने ही प्रश्नों पर अपने प्रस्तावों को पास कराने में सफल हुए। लेकिन लेनिन इससे निराश नहीं हुए। उनका दृढ़ विश्वास था कि आखिर में बोल्शेविक विजयी होकर रहेंगे। इस समय की लेनिन की अवस्था के बारे में स्तालिन ने अपने संस्मरणों में कहा था :

> "पहली बार यहाँ मैंने लेनिन को पराजित रूप में देखा। किन्तु, वह उन नेताओं से रत्ती-भर नहीं मिलते थे जो पराजित होने पर आहें-कराहें भरने लगते हैं और निरुत्साहित हो जाते हैं। इसके विपरीत, पराजय लेनिन को संचित शक्ति का केंद्र बना देती थी, जिससे उनके अनुगामियों को नयी लड़ाइयों और भविष्य में विजय के लिए प्रेरणा मिलती थी। मैंने कहा, लेनिन पराजित हुए थे। किन्तु, क्या यह पराजय थी ? आपको उनके विरोधियों, स्टाकहोम कांग्रेस के विजेताओं—प्लेखानोफ, एक्सेलरोद, मारतोफ वगैरा की तरफ देखना भर था। सच्चे विजेताओं का कोई चिह्न उनमें नहीं था। लेनिन द्वारा मेन्शेविज्म की निर्मम आलोचना ने उनके शरीर में, कहा जा सकता है, एक भी हड्डी सावुत नहीं छोड़ी थी। मुझे याद है कि हम, बोल्शेविक प्रतिनिधि, लेनिन पर टकटकी लगाये, एक-दूसरे से सटे, दल बनाये खड़े थे और लेनिन की राय पूछ रहे थे। कुछ प्रतिनिधियों की बातचीत से थकावट और खिन्नता प्रकट हो रही थी। मुझे याद है, लेनिन ने दाँत पर दाँत सटाकर बड़े तीखेपन से जवाव दिया था : 'आहें-कराहें मत भरो साथियो, जीत हमारी होगी; क्योंकि हम सही रास्ते पर हैं।' आहें भरनेवाले बुद्धिजीवी के प्रति घृणा, अपनी ताकत में भरोसा, विजय में विश्वास—लेनिन ने हमें ये बातें सिखायीं। हमें मालूम हुआ कि बोल्शेविकों की पराजय क्षणिक है, कि निकट भविष्य में उनकी विजय अवश्यम्भावी है।
>
> " 'पराजित होने पर आहें-कराहें मत भरो'—लेनिन की कार्रवाइयों का यह वह गुण था जिससे उन्हें एक ऐसी सेना गढ़ने में मदद मिली जो अन्त तक सच्ची रहे और जिसे अपनी ताकत पर भरोसा हो।"

लेनिन ने मेन्शेविकों के विरुद्ध, कांग्रेस के अवसरवादी निर्णयों के विरुद्ध और मेन्शेविक केंद्रीय कमेटी के विरुद्ध, निरन्तर लड़ते रहने के लिए बोल्शेविकों का आह्वान किया। कांग्रेस के अधिवेशन के खत्म होते ही उन्होंने बोल्शेविक प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस बुलायी। इसने लेनिन द्वारा तैयार की गयी पार्टी-अपील को स्वीकार किया। इस अपील में बोल्शेविक दृष्टिकोण से कांग्रेस के कामों का सार वताया गया था और मुख्य-मुख्य गलतियों का उल्लेख किया गया था। मेन्शेविक कार्यक्रम की मुख्य-मुख्य गलतियाँ थीं : भूमि के म्युनिसिपलीकरण का नारा; संवैधानिक भ्रम का विरोध करने से इंकार; जारशाही से जनता की मुक्ति के लिए राज्यद्यूमा को सर्वश्रेष्ठ हथियार मानना; और 1905 की अक्तूबर-दिसम्बर की लड़ाइयों के अनुभवों से शिक्षा लेने से इंकार करना।

2. पीतरबुर्ग में (1906 ई.)

कांग्रेस के बाद लेनिन पीतरबुर्ग लौट आये। यहाँ वह 1907 की जनवरी तक रहे। पुलिस के हाथों से बचने के लिए उन्हें फिर कुओक्कला के पास वासा में छिपने के लिए मजबूर होना पड़ा। किसी एक जगह रहना उनके लिए खतरे से खाली नहीं था। इसलिए, उन्हें बार-बार अपने निवासस्थान वदलते रहने पड़ते थे। अगर एक रात वह अपने सम्बन्धी के साथ रहते, तो दूसरी किसी मित्र या परिचित के यहाँ। इस सारी स्थिति में भी वह अनथक लगन से काम करते रहे। वह पार्टी और कमकरों की सभाओं में व्याख्यान देते, लेख और पुस्तिकाएँ लिखते, पार्टी के पत्रों को चलाने और जनता को संगठित करने में बोल्शेविकों के कामों की निगरानी करते। इस अज्ञातवास की अवस्था में लेनिन ने सौ से अधिक लेख और पुस्तिकाएँ लिखीं। जबर्दस्त खतरा सिर पर रहने पर भी 9 मई, 1906 को पीतरबुर्ग के पनीना (लोक) प्रासाद की एक सार्वजनिक सभा में करपोफ

के नाम से उन्होंने भाषण दिया। इस सभा में पीतरवुर्ग के सभी मोहल्लों के कमकर उपस्थित थे और सभी पार्टियों के प्रतिनिधियों के भाषण हुए थे। लेनिन अन्तिम वक्ता थे। उन्होंने अपने भाषण में संवैधानिक-जनतांत्रिकों की नीति की निन्दा की। ये लोग लोक-हित के विरुद्ध स्वेच्छाचारी शासकों से मोल-भाव कर रहे थे। संवैधानिक-जनतंत्रवादी उस समय जार के मंत्रियों से बातचीत कर रहे थे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए लेनिन ने कहा था : "बातचीत सौदा पक्का करने की आरम्भिक कार्रवाई है और सौदा पक्का करना बातचीत का व्यावहारिक परिणाम है।" उन्होंने जोर देकर कहा कि इस बात के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए कि क्रान्ति की बाढ़ के फिर उठने पर सर्वहारा विजयिनी क्रान्तिकारी सेना में मुख्य भूमिका अदा करे।

अपने संस्मरणों में इस सभा के वारे में क्रुप्स्काया ने लिखा है : "कादेत ओगोरोद्निकोफ के बोल लेने पर अध्यक्ष ने करपोफ को पुकारा। मैं भीड़ में खड़ी थी। इलिच वहुत जोश में थे। एक मिनट तक बुरी तरह से पीले पड़े वह चुपचाप खड़े रहे। सारा खून उनके हृदय की ओर बह गया था। आदमी तुरन्त अनुभव कर सकता था कि वक्ता का जोश किस तरह श्रोतृ-मंडली के पास पहुँच रहा है। एकाएक बड़े जोर की ताली बजी—पार्टी मेम्बरों ने इलिच को पहचान लिया था। मेरी बगल में खड़े एक कमकर का उत्तेजनापूर्ण चेहरा...मुझे अब भी याद आता है। वह जोर से वोल उठा : कौन है यह, कौन है यह ? लेकिन किसी ने उसको जवाब नहीं दिया। हर्षध्वनि बन्द हुई। इलिच के भाषण के समाप्त होते-होते वहाँ मौजूद सभी लोग असाधारण उत्साह में बह गये—उस समय हरेक आदमी आनेवाली अन्तिम लड़ाई के वारे में सोच रहा था।"

लेनिन द्वारा रखे गये प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद कमकर क्रांतिकारी गीत गाते हुए अपने-अपने घरों को लौटे।

दिसम्वर के असफल विद्रोह के बाद कमकर और क्रांतिकारी किसान धीरे-धीरे पीछे हटे। पर वे पीछे हटे लड़ते हुए। 1906 ई. की गर्मियों और शरद् में फिर क्रांतिकारी संघर्ष भड़क उठा। फिर राजनीतिक हड़तालों की लहर सारे देश में उठने लगी। जमींदारों के खिलाफ किसानों का संघर्ष जोर पकड़ने लगा। क्रोन्स्तात और स्वीयाबोर्ग के नौसैनिकों में वगावत शुरू हो गयी।

'नोवाया जीस्न' पर वंदिश—दिसम्बर, 1905 ई. में जार की सरकार ने वोल्शेविक कानूनी पत्र 'नोवाया जीस्न' (नवजीवन) को वन्द कर दिया। जारशाही-दमन का मुकावला करते हुए उसे 'वोल्ना' (लहर), 'व्पेर्योद' (अग्रगामी) और 'इको' (प्रतिध्वनि) आदि भिन्न-भिन्न नाम धारण करने पड़े। लेनिन उसके सम्पादक थे। राज्यदूमा में जो कुछ हो रहा था उसे वह अपने लेखों में वतलाते, जारशाही सरकार तथा संवैधानिक-जनतांत्रिकों (कादेतों) की नीति को नंगा करके रखते और किसानों को बतलाते कि तुम दूयूमा से न जमीन पाने की आशा कर सकते हो और न स्वतंत्रता पाने की। उन्होंने भविष्यवाणी की कि राज्यदूयूमा को जार तोड़ देगा। दूयूमा में संवैधानिक-जनतांत्रिकों का समर्थन करने के लिए मेन्शेविकों की वह कड़ी आलोचना करते थे। जब मेन्शेविकों ने कादेतों की 'दूयूमा-मंत्रिमंडल'—अर्थात् दूयूमा के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल की माँग का समर्थन किया तो उनसे कड़ा संघर्ष शुरू हो गया। लेनिन के पथ-प्रदर्शन में पीतरवुर्ग की पार्टी कमिटी ने इसके बारे में मेन्शेविकों के आधीन केन्द्रीय कमिटी के पास अपना विरोध-पत्र भेजा। जुलाई, 1906 में प्रथम राज्यदूयूमा को जार ने तोड़ दिया। इसके बाद उक्त घटना के सम्वन्ध में मेन्शेविक केन्द्रीय कमिटी के अवसरवादी रुख की लेनिन ने तीव्र आलोचना की। उन्होंने वतलाया कि मान्शेविकों की ढुलमुलयकीनी और हिचकिचाहट की नीति में विसर्जनवाद के कीटाणु छिपे हुए हैं। वाद में मेन्शेविक गुप्त पार्टी को खतम कर देने, अर्थात् उसको विसर्जित कर देने के भी पक्षपाती हो गये। इसीलिए, उनकी इस नीति को 'विसर्जनवाद' कहा जाने लगा।

द्वितीय दूयूमा का चुनाव (1907 ई.)—दूयूमा के नये चुनाव के समय फिर पार्टी के रुख का सवाल उठा। लेनिन हरेक प्रश्न को एक सच्चे द्वन्द्वात्मकतावादी की तरह तत्कालीन परिस्थितियों में विचारने के आदी थे। एक वार दूयूमा का वायकाट करने का मतलव यह नहीं था कि वरावर उसका वायकाट किया जाय। क्रांति की बाढ़ के समय वायकाट अच्छी चीज थी। उसके कारण दूयूमा की प्रतिष्ठा में भारी बट्टा लगा था। अब क्रान्तिकारी वाढ़ उतरती जा रही थी। इस समय दूयूमा के निर्वाचन को क्रान्तिकारी प्रचार के लिए इस्तेमाल

किया जा सकता था। मेन्शेविक संवैधानिक-जनतांत्रिकों (कादेतों) के साथ द्‌यूमा में उनके समर्थन की नीति के आधार पर निर्वाचन सम्बन्धी समझौता करना चाहते थे। बोल्शेविक जोर दे रहे थे कि निर्वाचन के समय पार्टी को बिल्कुल स्वतंत्र रहना चाहिए। हाँ, वे निर्वाचन के समय, तथा द्‌यूमा में भी, एक 'वामपक्ष' बनाने के पक्ष में थे। वामपक्ष से उनका मतलब था शहर और देहात के जनवादी निम्न-मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली तथाकथित त्रुदोविक (मेहनतकश) पार्टियों के साथ समझौता करना।

अब, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच का झगड़ा बहुत उग्र हो चला। जनवरी, 1907 में पीतरबुर्ग के रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के संगठनों की कान्फ्रेंस हुई। इसमें लेनिन ने बोल्शेविकों की नीति को स्पष्ट करके रखा। कान्फ्रेंस ने एक प्रस्ताव पास कर उनका समर्थन किया। वहाँ मेन्शेविकों का सारा प्रयत्न व्यर्थ गया और उन्हें मुँह की खानी पड़ी। लेकिन पार्टी की केन्द्रीय कमिटी अब भी उन्हीं के हाथों में थी। इसके द्वारा फूट डालने को उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। लेनिन ने बतलाया कि कमकरों के पीछे-पीछे मेन्शेविक उनके वोटों को कादेतों के हाथों बेच रहे हैं। 'पीतरबुर्ग में चुनाव और 31 मेन्शेविकों का पाखण्ड' तथा अन्य लेखों में लेनिन ने बड़े कठोर शब्दों में मेन्शेविकों की निन्दा की। मेन्शेविक केन्द्रीय कमिटी ने पार्टी अदालत के सामने लेनिन पर अभियोग चलाने का निश्चय किया। पार्टी संगठनों में इसपर भारी क्षोभ प्रकट किया जाने लगा।

लेनिन पर अभियोग चलाया गया। लेनिन उसमें उपस्थिति हुए—किन्तु, अभियुक्त की जगह अभियोक्ता के रूप में। उन्होंने मेन्शेविकों की कड़ी खबर ली। अपने भाषण में उन्होंने साफ-साफ कहा कि मेन्शेविकों की घोर निन्दा करने का मेरा उद्देश्य था : "इन लोगों के प्रति जनसाधारण में घृणा, उपेक्षा और दुर्भाव पैदा करना, क्योंकि वे संयुक्त पार्टी के मेम्बर नहीं बल्कि राजनीतिक शत्रु बन गये हैं और निर्वाचन-आन्दोलन में हमारे सामाजिक-जनवादी संगठनों के मार्ग में रोड़ा अटकाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए उस समय ऐसे राजनीतिक शत्रुओं के विरुद्ध मैंने सर्वनाशी युद्ध छेड़ा और उसके फिर दोहराये जाने तथा फूट डालने के समय सदा ऐसा युद्ध छेड़ूँगा।"

मेन्शेविक केन्द्रीय कमिटी समझ गयी कि अभियोग से उनकी पूरी हार होगी, इसलिए उसे आगे नहीं बढ़ाया। इसी बीच रूस में प्रतिक्रियावाद और भी खौफनाक रूप धारण करने लगा और पार्टी के गुप्त संगठन को मजबूत करने के लिए कोई उपाय करना या कानूनी अखबार निकालना और भी मुश्किल हो गया। 1906 की जुलाई में जारशाही ने 'इको' (प्रतिध्वनि) को बन्द कर दिया। अगस्त से बोल्शेविकों ने 'प्रोलेतारी' नाम का एक गैर-कानूनी अखबार निकालना शुरू किया। इसके सम्पादक लेनिन थे। अखबार के प्रत्येक अंक में लेनिन के लेख छपा करते थे।

1907 की फरवरी में द्वितीय राज्यद्‌यूमा का उद्घाटन हुआ। 'पोलेतारी', 'व्पेर्योद' और बोल्शेविकों के कानूनी अखबार 'नोवीलुच' (नई किरण) तथा 'नाशे ईको' (हमारी प्रतिध्वनि) में लेनिन ने द्‌यूमा की कार्रवाइयों से उद्धरण देते हुए बतलाया कि जारशाही नयी चाल चल रही है और कादेत उसके साथ सौदा करके जन-हित का बलिदान कर रहे हैं। उन्होंने अपने लेख में भविष्यवाणी की कि द्वितीय द्‌यूमा को भी सरकार उसी तरह तोड़ देगी जैसे उसने पहली द्‌यूमा को भी तोड़ा था। उन्होंने यह भी घोषित किया कि 'काले सैकड़े' ('यमराज सभा' वाले) कूप-दे-ता करने की (सत्ता पर हावी होने की) तैयारी कर रहे हैं। इस समय मेन्शेविक केवल संवैधानिक जनतांत्रिकों (कादेतों) की माँगों को दोहरा रहे थे। इस समय लेनिन उनकी अवसरवादी चालों का विरोध करते हुए निम्न-मध्यवर्गी जनतांत्रिकों और मुख्यतः किसानों को कादेतों से अलग करने का प्रयत्न कर रहे थे। द्‌यूमा में जो कमकर-प्रतिनिधि गये थे उन्हें भी वह यह सिखला रहे थे कि किस तरह द्‌यूमा के भाषण-मंच को क्रांतिकारी कामों के फायदे के लिए, अधिक-से-अधिक इस्तेमाल किया जा सकता है।

3. पाँचवीं पार्टी कांग्रेस (लंदन, 1907 ई.)

बहुत प्रयत्न करने के बाद लेनिन पार्टी के बहुमत को बोल्शेविकों के पक्ष में करने तथा पार्टी कांग्रेस बुलाने

के लिए निर्णय कराने में सफल हुए। उन्होंने उसकी भारी तैयारी की। मेन्शेविकों ने कहा कि सभी मजदूर आंदोलनों के प्रतिनिधियों की 'कमकर कांग्रेस' बुलायी जाय। लेनिन ने इसका मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा कि यह पार्टी को निम्न-मध्यवर्गी तत्त्वों की भीड़ में डुवाने का प्रयत्न है।

1907 के अप्रैल और मई के महीनों में पार्टी की पाँचवी कांग्रेस लन्दन में हुई। इस समय त्रात्स्की मेन्शेविकों से अलग होकर अपना केन्द्रवादी गुट बनाना चाहता था। कांग्रेस में रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने पूँजीवादी पार्टियों के प्रति पार्टी के रूख को बतलाया। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में बोल्शेविकों के दाँव-पेचों को स्वीकार करते हुए निर्णय किया कि 'यमराज सभावालों' और अक्तूबरियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करना, संवैधानिक जनतांत्रिकों को दृढ़तापूर्वक नंगा करते हुए किसानों को अपने हाथ में लेने के कादेतों के प्रयत्नों का विरोध करना और तथाकथित नरोद्निक अथवा त्रुदोविक (जनवादी समाजवादी, मेहनतकश गुट और समाजवादी क्रांतिकारी) पार्टियों के अपने को समाजवादी दिखाने के ढोंग का पर्दाफाश करना उनका काम होगा। निर्णय हुआ कि जहाँ तक उक्त पार्टियाँ शहरी और देहाती निम्न-मध्यवर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं, उनके साथ जारशाही तथा संवैधानिक जनतांत्रिकों के विरुद्ध संघर्ष में समय-समय पर समझौता करने की नीति को मानते हुए उनके समाजवादी होने के ढोंग का पर्दाफाश किया जायगा।

पाँचवीं कांग्रेस में बोल्शेविकों की विजय हुई। लेकिन, लेनिन विजय से सिर फिर जाने को बुरा समझते थे। इसीलिए इसके लिए उन्होंने वोल्शेविकों को सावधान किया। स्तालिन ने लेनिन के उस समय के रुख के बारे में कहा है :

> "यह पहला समय था जब मैंने लेनिन को विजेता के रूप में देखा। विजय आम तौर से नेताओं का सिर फिरा देती है और उन्हें मिथ्याभिमानी तथा घमण्डी बना देती है। वे बहुधा विजय-महोत्सव मनाने लगते हैं और अपनी सफलताओं पर फूलकर निष्क्रिय हो जाते हैं। लेनिन ऐसे नेताओं से जरा भी नहीं मिलते थे। इसके विपरीत, विजय के बाद लेनिन अत्यंत जागरूक और सावधान रहते थे। मुझे याद है कि लगातार जोर देकर लेनिन प्रतिनिधियों को समझाते थे : 'पहली बात यह है कि विजय के उल्लास में बह नहीं जाना चाहिए, मद से चूर नहीं हो जाना चाहिए; दूसरी बात यह है कि विजय को सुदृढ़ बनाना चाहिए; तीसरी बात यह है कि शत्रु को कुचल देना चाहिए, क्योंकि पराजित होने पर भी वह कुचला नहीं गया है।' वह उन प्रतिनिधियों की खूब खबर लेते थे जो हल्के दिल से कहते थे कि 'मेन्शेविक अब खतम हो गये।' यह सावित करने में उन्हें कठिनाई नहीं होती थी कि मेन्शेविकों की जड़ें अब भी मजदूर आंदोलन में जमी हुई हैं, कि उनके विरुद्ध बहुत कौशल के साथ लड़ना होगा और अपनी शक्ति का सभी तरह से अधिक मूल्यांकन, और खास तौर से शत्रु की शक्ति का सभी तरह से निम्न मूल्यांकन करने से वाज आना होगा।
>
> " 'विजय के मद में चूर नहीं होना चाहिए'—यह लेनिन के चरित्र की विशेषता थी जो उन्हें शत्रु की शक्ति को गम्भीरतापूर्वक तौलने तथा अचानक किसी आक्रामण से पार्टी की सुरक्षा करने में मदद देती थी।"

जैसा कि लेनिन ने कहा था, सरकार ने दूसरी राज्यदूमा को भी भंग कर दिया। उसने सामाजिक-जनवादी प्रतिनिधियों को गिरफ्तार कर लिया और वोट अधिकार के कानून में अपने अनुकूल संशोधन किये। इसे 3 जून का 'सत्ताहरण' कहा गया। क्रान्ति के विफल होने के वाद जारशाही दमन को बराबर जारी रखे हुए थी। इस नयी परिस्थिति में लेनिन ने पार्टी के लिए नये काम निर्धारित किये। मेन्शेविक जारशाही के डर के मारे दुम दबाये कह रहे थे कि सभी क्रांतिकारी कार्रवाइयों को छोड़कर पार्टी को कादेतों के साथ मिलकर दूमा में रचनात्मक कामों में लग जाना चाहिए। लेनिन ने मेन्शेविकों की खूब खबर ली। साथ ही उन्होंने कामेनेफ, बोग्दानोफ, आदि तथाकथित वायकाटवादियों की भी कड़ी आलोचना की जो यह कहते थे कि दूमा का बायकाट करके उसे क्रान्तिकारी प्रचार के लिए भाषण-मंच के तौर पर इस्तेमाल करना छोड़ देना चाहिए।

पीतरबुर्ग से 50 मील दूर, समुद्र के किनारे, फिनलैंड के भीतर तेरियोकी कस्बा है। यहीं पर पार्टी के

पीतरबुर्ग संगठन की एक कान्फ्रेंस जुलाई, 1907 में हुई। इसमें लेनिन भी उपस्थित थे। इस कान्फ्रेंस के बारे में एक महिला प्रतिनिधि ने अपने साथियों को लिखा था : "तेरियोकी में पीतरबुर्ग संगठन की जो कांफ्रेंस हुई उसमें मैं उपस्थित थी। वहाँ, राज्यदूमा के सम्बन्ध में हमारा क्या रुख होना चाहिए, इसपर विचार किया गया। मैंने लेनिन का भाषण सुना। उनके भाषण से मैं अत्यंत प्रभावित हुई। लेनिन इस पक्ष में थे कि दूमा के चुनाव में भाग लेना चाहिए।...हम बड़े खतरे की हालत में अपने नेताओं का भाषण सुन रहे थे। पहले हम एक सराय में जमा हुए थे। लेकिन जैसे ही लेनिन ने भाषण शुरू किया, सरायबान ने आकर कहा कि पुलिस सराय को बंद करने की धमकी दे रही है। इसपर हम लोग जंगल में चले गये—एक-एक करके, जिससे कि किसी का ध्यान हमारी ओर न जाय। फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी और हम एक प्रस्ताव पास करने में भी असमर्थ रहे।"

इस कान्फ्रेंस ने लेनिन की बात को माना। उसी साल जुलाई और नवम्बर के महीनों में पार्टी की तीसरी और चौथी कान्फ्रेंस हुई। इनमें भी लेनिन की विजय हुई।

अगस्त, 1907 में इन्टर्नेशनल समाजवादी कांग्रेस स्टुटगार्ट में हुई। लेनिन ने इसमें भी भाग लिया। कांग्रेस में क्रान्तिकारी और अवसरवादी विचारधाराओं की जबर्दस्त टक्कर हुई। रोजा लुक्जेम्बुर्ग के साथ मिलकर लेनिन ने अवसरवादियों के प्रस्ताव में ऐतिहासिक 'संशोधन' पेश करते हुए कहा कि युद्ध रोकने के लिए केवल प्रयत्न करना भर ही कमकर पार्टियों का काम नहीं है, बल्कि यदि युद्ध शुरू हो जाय तो उसके द्वारा पैदा हुए संकट से लाभ उठाते हुए उन्हें समाजवादी क्रान्ति को बढ़ाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। इसी कांग्रेस के दिनों में लेनिन ने द्वितीय इन्टर्नेशनल के अवसरवादियों और केंद्रवादियों के विरुद्ध संघर्ष करने तथा तमाम वामपंथी प्रतिनिधियों की एकता स्थापित करने के लिए एक कान्फ्रेंस भी की।

स्टुटगार्ट से लेनिन कुओक्कला (फिनलैंड) लौट आये। पुलिस उनका बड़े जोरों से पीछा कर रही थी। अस्तु, यह स्थान उनके लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। इसके बाद वह हेलसिंगफोर्स के पास एक गाँव—ओगेलबी में चले गये। लेकिन वहाँ भी वही हालत थी। जारशाही, जैसे भी हो, क्रांति के इस महान नेता को अपने पंजों में दबोचना चाहती थी। इसलिए बोल्शेविक केंद्रीय संगठन ने लेनिन के रूस से बाहर जाने का निश्चय किया और दिसम्बर में उनके विदेश जाने का प्रबंध कर दिया।

10

परदेश से काम (1907-17 ई.)

1. जनेवा में (1907 ई.)

यह लेनिन का द्वितीय परदेशवास था—और यह बहुत लम्बा साबित हुआ। वह दस साल तक रूस नहीं लौट सके। 25 दिसम्बर, 1907 को लेनिन जनेवा पहुँचे। लेनिन को काम की भरमार में ही सुख और संतोष मिलता था। जनेवा पहुँचने पर पहले दिन उन्होंने कहा था : "मुझे मालूम होता है जैसे मैं यहाँ दफन होने के लिए आया हूँ।" जनवरी, 1908 में उन्होंने लिखा था : "...इस अभिशापित जनेवा में फिर लौटकर आना पस्त बनाता है। लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं है !" पहले के परदेशवास के समय रूस में क्रांतिकारी शक्तियाँ उभर रही थीं, इसलिए वह उन्हें अखर नहीं सकता था। लेकिन अब वे दब चुकी थीं।

यद्यपि क्रान्ति की पराजय के बाद अब प्रतिक्रियावाद का बोलबाला था, क्रान्तिकारियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पकड़ा जा रहा था, पार्टी-संगठनों को पुलिस छिन्न-भिन्न कर रही थी, जनता में थकावट के चिह्न मालूम हो रहे थे और क्रान्ति के सहयात्रियों, विशेषकर बुद्धिजीवियों में से कितने ही विश्वासघाती बन गये थे और क्रान्ति तथा पार्टी को छोड़कर भागते दिखायी पड़ रहे थे—तो भी, इससे लेनिन की हिम्मत नहीं टूटी। वह और जोर-शोर

के साथ पार्टी के शत्रुओं के पीछे पड़ गये। मजदूर वर्ग के अपराजेय और अटूट शक्ति-स्रोत पर उनको पूरा विश्वास था। वह जानते थे कि दूसरी क्रांति अनिवार्य है और उसे कोई रोक नहीं सकता। जनेवा पहुँचकर जो पहला लेख व्लादिमिर इलिच ने लिखा, उसमें उन्होंने बतलाया था :

"क्रान्ति से पहले हम लम्बे अर्से तक काम करने में समर्थ हुए थे। अगर हमको दृढ़ कहा जाता था, तो यों ही नहीं। सामाजिक-जनवादियों ने एक सर्वहारा पार्टी बनायी है। वह अपने सैनिक अभियान की असफलता से न तो निराश हो सकती है, न अपनी अकल खो सकती है और न दुस्साहसी योजनाओं के चक्कर में पड़ सकती है। यह पार्टी, पूँजीवादी क्रान्ति के इस या उस काल के परिणाम के साथ अपने भाग्य को बाँधे विना, समाजवाद की ओर बढ़ रही है। यही कारण है कि वह पूँजीवादी क्रान्ति की कमजोरियों का शिकार नहीं होती।...सर्वहारा पार्टी विजय की ओर आगे बढ़ रही है।"

बोल्शेविक पार्टी के मुख-पत्र 'प्रोलेतारी' (सर्वहारा) को निकालना लेनिन को इस समय बहुत आवश्यक जान पड़ा। रूस में जारशाही वोल्शेविकों का गला घोंट देने के लिए तैयार थी। वह नहीं चाहती थी कि वहाँ से पत्र निकालकर वे अपने विचारों का प्रचार करें। एक महीने के भीतर ही पत्र निकालने का सारा प्रबंध हो गया। लेकिन, इसी समय उसके सम्पादक-मंडल–लेनिन, दुब्रोविन्स्की और बोग्दानोफ–में भारी मतभेद हो गया। पर हाथ-पर-हाथ रखकर वैठ जाना लेनिन को पसंद नहीं था। रूस में पूँजीवादी पत्रों के कालम अब धर्म, रहस्यवाद तथा दूसरी खुराफातों में रँगे रहते थे। बहुत-से पूँजीवादी लेखकों ने मार्क्सवाद के खिलाफ जेहाद बोल दिया था। मजदूर वर्ग के आंदोलन में घुस आये उनके एजेंट भी प्रतिक्रियावाद के प्रचार में लगे हुए थे। बोग्दानोफ-जैसे बोल्शेविकों के पहले के सहयोगी तथा कितने ही मेन्शेविक लेखक अब मार्क्सवाद की दुरालोचना में लगे हुए थे। वे मार्क्सवाद के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक-ऐतिहासिक तत्त्वों का खंडन करने का प्रयत्न कर रहे थे। मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की जगह उन्होंने परिमार्जित आदर्शवाद को पेश करना शुरू किया। कुछ तथाकथित 'भगवान-खोजी' और 'भगवान-निर्माता' इस बात पर भी जोर दे रहे थे कि हमें एक नये धर्म की आवश्यकता है। वे धर्म की अफीम खिलाकर कमकरों के दिमाग को सुला देना चाहते थे।

ऐसी अवस्था में मार्क्स-एंगेल्स के उत्तराधिकारी का क्या कर्तव्य था, यह आसानी से समझा जा सकता है। इसी वक्त लेनिन ने लिखा था : "ऐसे समय में जबकि जनता प्रत्यक्ष क्रांतिकारी संघर्ष के नये तथा अभूतपूर्व रूप से मूल्यवान अनुभव को आत्मसात् कर रही है, क्रांतिकारी विश्व-दृष्टिकोण–अर्थात्, क्रांतिकारी मार्क्सवाद के लिए सैद्धान्तिक संघर्ष करना आज का नारा हो जाता है।"

आस्ट्रिया के भौतिकशास्त्री और आदर्शवादी माख के सिद्धांतों को माननेवाले अनेक लेखकों के निबंध 'मार्क्सीय दर्शन का अध्ययन' नाम से 1908 ई. के आरम्भ में प्रकाशित हुए। मार्क्सवाद की रक्षा करने के बहाने यह मार्क्सवाद के कलेजे में छुरा भोंकने का प्रयत्न था। पुस्तक को देखते ही लेनिन क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने 25 फरवरी, 1908 को गोर्की के नाम लिखे एक पत्र में कहा :

"**मार्क्सीय दर्शन का अध्ययन** पुस्तक अभी-अभी निकली है। सुवारोफ के निबंध को छोड़कर (जिसे मैं इस वक्त पढ़ रहा हूँ) मैंने सभी निबंध पढ़ डाले हैं और इनमें से प्रत्येक लेख को पढ़कर मैं गुस्से से भर उठा हूँ। नहीं, यह मार्क्सवाद नहीं है। हमारे अनुभव-सिद्ध आलोचक, अनुभव-सिद्ध अद्वैतवादी औन अनुभव-सिद्ध प्रतीकवादी कीचड़ के दलदल में फिसल रहे हैं। वे पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि बाह्य जगत की वास्तविकता में 'विश्वास' करना 'रहस्यवाद' (बजारोफ) है। वे बड़े भयंकर तौर से भौतिकवाद और कान्टीयवाद को एक करके गड़बड़घुटाला मचाना चाहते हैं (बजारोफ और बोग्दानोफ)। वे एक प्रकार के अज्ञेयवाद (अनुभव-सिद्ध आलोचनावाद) और आदर्शवाद (अनुभवीय अद्वैतवाद) का उपदेश दे रहे हैं–वे कमकरों को 'धार्मिक अनीश्वरवाद' का उपदेश देते हैं और उच्चतर मानव-संभावनाओं (लूनाचार्स्की) की 'पूजा' करने के लिए कहते हैं–वे घोषित करते हैं कि एंगेल्स का द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त रहस्यवाद है (बेरमान)...। नहीं, यह अति है। हाँ, यह ठीक है कि हम साधारण मार्क्सवादी लोग दर्शन के अधिक जानकार नहीं हैं। लेकिन मार्क्सवाद के दर्शन के नाम पर इस तरह

की खुराफातों को रखकर वे क्यों हमारी बुद्धि का उपहास करते हैं ? ऐसी खुराफातों का उपदेश करनेवाले किसी पत्र या संस्था से सहयोग करने में सहमत होने के वजाय मैं फाँसी पर लटकाया जाना, घसीटा जाना और टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाना ज्यादा पसंद करूँगा।"

'मार्क्सवाद और संशोधनवाद'–अप्रैल, 1908 में लेनिन ने मार्क्स के पच्चीसवें मृत्यु-दिवस के अवसर पर इस नाम का एक लेख लिखा। इसमें उन्होंने वतलाया कि मजदूर आन्दोलन में मार्क्सवाद की विजय देखकर उसके शत्रुओं ने अव यह नयी चाल अख्तियार की है और संशोधन के वहाने वे मार्क्सवाद की जड़ काटने की कोशिश कर रहे हैं। लेनिन ने दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और राजनीति में संशोधन की विचारधारा को नंगा करके रखते हुए उसकी वर्ग-जड़ को वतलाया। उन्होंने सिद्ध किया कि संशोधनवाद के विरुद्ध लड़ना समाजवाद के लिए लड़ना है। अपने इस लेख के उपसंहार में उन्होंने निम्न स्मरणीय वाक्य लिखे :

"आज जो विवाद हम अधिकतर केवल विचारक्षेत्र में ही–मार्क्स के विचारों में सैद्धांतिक संशोधन पर मतभेदों के रूप में–देख रहे हैं...उसे मजदूर वर्ग को उस समय अत्यन्त बड़े पैमाने पर अवश्य देखना पड़ेगा जब सर्वहारा क्रांति सभी प्रश्नों को और तीव्र वना देगी और जनसाधारण के व्यवहार को निर्धारित करने में तुरंत के महत्त्व की बातों के सभी मतभेदों को केन्द्रित कर देगी। संघर्ष की गर्मी में वह यह जरूरी बना देगी कि मित्रों और शत्रुओं में भेद किया जाय और बुरे सहायकों को निकाल बाहर किया जाय ताकि शत्रु पर निर्णायक चोट की जा सके।

"उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में संशोधनवादियों के साथ क्रांतिकारी मार्क्सवाद का जो सैद्धांतिक संघर्ष शुरू हुआ था वह सर्वहारा के महान क्रान्तिकारी युद्धों की प्रस्तावना मात्र था। निम्न-मध्यवर्ग की सभी कमजोरियों और हिचकिचाहटों के वावजूद सर्वहारा अपने उद्देश्य की पूर्ण विजय की ओर बढ़ रहा है।"

अपने इस लेख द्वारा लेनिन ने संशोधनवादियों और मार्क्सवाद के सिद्धांतों को झुठलानेवालों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कॉट्स्की ने इस विचारधारा के प्रति तटस्थता की नीति अख्तियार की थी। ऐसा करना वहुतकुछ इस विचारधारा का समर्थन करना था। लेनिन उसके इस आचरण को नापसंद करते थे। प्लेखानोफ ने माखवादियों के विरुद्ध थोड़े से जो लेख आधे दिल से लिखे थे, उनसे भी वह असंतुष्ट थे।

लेकिन, इन नये शत्रुओं का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए लेनिन और तैयारी करना आवश्यक समझते थे। उन्होंने 'प्रोलेतारी' का खयाल दिल से निकाल दिया और रूसी मार्क्सवादियों के ग्रंथों का गंभीरता से अध्ययन शुरू किया। मार्च, 1908 में गोर्की के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "दर्शन के नशे में मैंने अखबार की परवाह छोड़ दी है।" इस संवंध में लेनिन ने माख, अवेनारियस, ह्यूम, वर्कले और दूसरे लेखकों के ग्रन्थ पढ़े। लेकिन इतने ही से संतोष न करके उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान, विशेषकर सैद्धान्तिक भौतिकशास्त्र के साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। मई के अन्तिम भाग में लन्दन जाकर उन्होंने ब्रिटिश म्युजियम में एक महीने तक स्वाध्याय किया। जून के अन्त में अपने संबंधियों को लेनिन ने लिखा : "बीमारी ने दर्शन-संवंधी मेरे काम को काफी रोक दिया है। लेकिन अव मैं करीव-करीव स्वस्थ हो गया हूँ और अपनी पुस्तक अवश्य लिखूँगा। मैंने माखवादियों के संबंध में काफी अध्ययन किया है।..."

'भौतिकवाद और अनुभव-सिद्ध आलोचना'–लेनिन ने फरवरी में इस पुस्तक को लिखना शुरू किया और आठ महीने बाद, अक्तूबर 1908 में उसे समाप्त कर दिया। वह इस ग्रन्थ को रूस में कानूनी तौर से प्रकाशित कराना चाहते थे। पर इस काम में काफी देर लगी। पुस्तक को प्रकाशक के पास भेजकर फरवरी, 1909 में उन्होंने अपनी बहन को लिखा था : "बस, एक–और केवल एक–चीज का ही मैं स्वप्न देख रहा हूँ। बस, एक ही चीज की प्रार्थना कर रहा हूँ। वह है : किताव के प्रकाशन में जल्दी होनी चाहिए।" एक महीने बाद इसी बात की ओर संकेत करते हुए उन्होंने फिर लिखा था : "मेरे लिए यह भयानक रूप से आवश्यक है कि पुस्तक जल्द-से-जल्द प्रकाशित हो जाय; क्योंकि इसके प्रकाशन के लिए मैं साहित्यिक ही नहीं, बल्कि महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दायित्वों से भी बँधा हुआ हूँ।"

लेनिन पुस्तक के तुरन्त प्रकाशन के लिए इसलिए भी उत्सुक थे कि 'प्रोलेतारी' के सम्पादकीय-विभाग की विस्तारित कान्फ्रेंस जून, 1909 में होनेवाली थी जिसमें बोग्दानोफ और उसके समर्थकों के विरुद्ध उन्हें एक निर्णायक लड़ाई लड़नी थी।

अन्त में, मई 1909 में लेनिन की पुस्तक **भौतिकवाद और अनुभव-सिद्ध आलोचना** प्रकाशित हुई।

अपने इस ग्रन्थ में लेनिन ने पूँजीवादी आदर्शवादी दर्शन की नवीनतम व सूक्ष्म विचारधाराओं का हर दृष्टिकोण से खण्डन किया। द्वन्द्ववादी भौतिकवाद के सिद्धांत का बड़ी गम्भीरता से विवेचन करते हुए उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान–विशेषकर भौतिकशास्त्र के नये आविष्कारों के सम्बन्ध में दार्शनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण सामने रखा। उन्होंने यह बतलाया कि माखवादी जिस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करके भौतिकवाद का खण्डन करना चाहते हैं, वह वास्तव में अवस्तुवादी आदर्शवाद के पुराने दृष्टिकोण की पुनरावृत्ति मात्र है। उदाहरण देकर लेनिन ने सावित किया कि बोग्दानोफ और दूसरे लोग जिसे 20वीं शताब्दी के प्राकृतिक विज्ञान का दर्शन बताते हैं, वह 18वीं शताब्दी के अंग्रेज दार्शनिक बर्कले के अवस्तुवादी आदर्शवाद के अलावा और कुछ नहीं है।

उन्होंने बताया कि ज्ञान-सिद्धांत की समस्या वैज्ञानिक रूप से केवल भौतिकवादी दृष्टिकोण के द्वारा ही हल की जा सकती है। विश्व, गतिपरायण तत्त्व है। प्रकृति मनुष्य के आने से पहले भी मौजूद थी। मनुष्य की चेतना अत्यन्त उच्च रूप में संगठित तत्त्व की उपज है। वस्तुएँ हमारी चेतना के बाहर तथा उससे स्वतन्त्र रूप से मौजूद हैं। "हमारे अनुभव और विचार उनके प्रतिविम्ब हैं। झूठे या सच्चे प्रतिबिम्बों के बीच भेद व्यवहार द्वारा होता है।"* भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत का सार लेनिन का उपरोक्त वाक्य है।

मार्क्सवादी ज्ञान-सिद्धांत के बारे में लेनिन ने निम्न तीन मौलिक स्थापनाएँ की हैं :

"(1) वस्तुएँ हमारी चेतना से, हमारे प्रत्यक्ष अनुभवों से स्वतंत्र, हमसे बाहर अपनी सत्ता रखती हैं।...

(2) बहिर्जगत् और वस्तु अपने में, इन दोनों के बीच सिद्धांतरूपेण निश्चय ही कोई भेद नहीं है, और न कोई ऐसा भेद हो सकता है। भेद है केवल ज्ञात और अभी तक अज्ञात के वीच।

(3) ज्ञान-सिद्धांत पर विज्ञान की दूसरी शाखाओं की तरह ही हमें द्वन्द्वात्मक रूप से विचार करना चाहिए–अर्थात् हमें अपने ज्ञान को पका-पकाया और अपरिवर्तनशील नहीं मान लेना चाहिए, बल्कि निश्चय करना चाहिए कि किस तरह अज्ञान से ज्ञान उद्‌भूत होता है, किस तरह अपूर्ण अ-सम्यक् ज्ञान अधिक पूर्ण, अधिक सम्यक बनता है।"

बाह्य-जगत् को प्रतिविम्बित करते हुए मानव-ज्ञान एक ही समय में प्रकृति तथा सामाजिक जीवन के अनन्त प्रकार के सभी प्राकट्यों को अपने भीतर सीमित नहीं कर सकता। ज्ञान अनेक आकारों और स्थितियों वाली एक प्रक्रिया है। इन आकारों और स्थितियों में से प्रत्येक का स्वभाव सापेक्ष है। लेकिन उन्हीं के बीच पूर्ण सत्य का अंश भी निहित है। "अतएव, मानव-चिन्तन स्वभावतः ही पूर्ण सत्य–जो कि सापेक्ष सत्यों के पूर्ण योग का सम्मिलित रूप है–प्रदान कर सकता है, और करता है। विज्ञान के विकास का प्रत्येक कदम पूर्ण सत्य के योग में एक नये कण को जोड़ता है। लेकिन प्रत्येक वैज्ञानिक स्थापना की सच्चाई की सीमाएँ साक्षेप हैं। ज्ञान की ये सीमाएँ उसकी वृद्धि के साथ एक समय प्रसारित और दूसरे समय संकुचित होती रहती हैं।" उदाहरणार्थ, 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक अधिकांश वैज्ञानिकों का विश्वास था कि परमाणु भौतिक तत्त्व का सबसे छोटा तथा अविभाज्य कण है। किन्तु आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि परमाणु भी कितने ही

* यहाँ इस बात का उल्लेख करना असम्बद्ध नहीं होगा कि धर्मकीर्ति ने भी परमार्थ सत् (वास्तविक तत्त्व) का लक्षण बताते हुए लिखा है : "अर्थक्रिया समर्थ यत् तदत्र परमार्थसत्।" (अर्थक्रिया में जो समर्थ है, वही वास्तविक तत्त्व है)। अर्थक्रिया व्यवहार का ही दूसरा नाम है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। लेकिन धर्मकीर्ति के वारे में यह कह देना भी आवश्यक है कि वह व्यवहारवादी द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी नहीं वल्कि व्यवहारवादी स्वातन्त्रिक विज्ञानवादी थे। उन्होंने केवल विरोधियों का मुँह वन्द करने के लिए आदर्शवाद से स्वतंत्रता अख्तियार करके वस्तुवादी दृष्टिकोण को जहाँ-तहाँ अपनाया था।–ले.

कणों से बना है और उसकी बनावट भी पेंचीदा है। "वस्तुगत, पूर्ण सत्य के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान की निकटता की सीमाएँ ऐतिहासिक तौर से निर्धारित होती हैं, लेकिन ऐसे सत्य का अस्तित्त्व विला शर्त है, और यह तथ्य भी विला शर्त ठीक है कि हम उस सत्य के अधिक निकट पहुँचते जा रहे हैं।"

19वीं शताब्दी के अन्त में तेजोद्गरण (रेडियो-क्रिया), एलेक्ट्रन (विद्युत-कण) आदि के आविष्कारों ने प्राकृतिक विज्ञान में उथल-पुथल मचाकर आम तौर से स्वीकृत पुरानी वैज्ञानिक धारणाओं को पूरी तरह उलट दिया। परन्तु बहुत-से प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता पुराने भौतिकवाद को छोड़ने तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को स्वीकार करने में असमर्थ रहे। उन्होंने अब यह आदर्शवादी निष्कर्ष निकालना शुरू किया कि भौतिक तत्त्व खतम हो जाता है और दिशा तथा काल अवस्तुवादी धारणाएँ हैं। प्राकृतिक विज्ञान में, विशेषकर भौतिकशास्त्र में हुई क्रांति का विश्लेषण करते हुए लेनिन ने दिखलाया कि नये वैज्ञानिक आविष्कार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रत्याख्यान नहीं करते। वे उसके अस्तित्त्व को सिद्ध करते हैं। आधुनिक भौतिकशास्त्र द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को जन्म दे रहा है।

प्रतिक्रियावाद की विजय के काल में बोल्शेविकों को एकजुट करने में लेनिन की इस पुस्तक ने महत्त्वपूर्ण हथियार का काम दिया। 1909 ई. में ही, लेनिन की पुस्तक पढ़ने के वाद, स्तालिन ने लिखा था, "इलिच की पुस्तक ही वह एकमात्र पुस्तक है जिसमें मार्क्सवाद के दर्शन की...स्थापनाओं का सार दिया गया है।" इस पुस्तक ने दर्शनशास्त्र को लेकर कूदनेवाले संशोधनवादियों को करारी मात दी। वे जनता को वरगलाने के काम में असफल रहे।

2. प्रथम क्रांति का मूल्यांकन

प्रथम क्रांति असफल रही। लेकिन तजुर्वो के रूप में सर्वहारा को वह एक वड़ा हथियार दे गयी। इस तजुर्बे से सर्वहारा को आगे के लिए सवक सीखना था।

लेनिन ने बताया कि क्रांति से तीन सवक सीखे जा सकते हैं। वे ये हैं : दृढ़ता और लगनपूर्वक क्रांतिकारी संघर्ष द्वारा ही जनसाधारण अपनी स्थिति में वास्तविक परिवर्तन ला सकते हैं। जारशाही शासन को निर्बल करना ही पर्याप्त नहीं है, वल्कि उसको निर्मूल करना, उसको जड़ से उखाड़कर ध्वस्त करना आवश्यक है। और तीसरे, जनता ने इस क्रांति में देख लिया कि क्रांति के समय भिन्न-भिन्न वर्ग कैसा रुख अख्तियार करते हैं। उसने यह भी जान लिया कि हमारे वास्तविक उद्देश्य क्या हैं, हम किसलिए लड़ रहे थे और कितनी दृढ़ता, लगन और जोर के साथ हम लड़ सकते हैं।

लेनिन ने प्रथम क्रांति के विफल होने के मूल कारणों को बतलाया। इन कारणों में से एक कारण यह था कि क्रांति के समय कमकरों और किसानों के बीच दृढ़ मैत्री का अभाव था; दूसरी वात यह थी कि किसानों के संघर्ष 'अकस्मात, असंगठित और अपर्याप्त रूप से आक्रमणात्मक' थे। 'क्रांति के सवक' नाम के 1910 ई. में लिखे लेख में लेनिन ने कहा :

> "पाँच वर्ष हुए जव सर्वहारा ने जारशाही स्वेच्छाचारिता के ऊपर पहला प्रहार किया था और रूसी जनता ने स्वतन्त्रता की पहली किरणों की झलक पायी। लेकिन अव जारशाही स्वेच्छाचारिता फिर से स्थापित हो गयी है। अर्धदासों के स्वामी फिर राजकाज चला रहे हैं। फिर से सव जगह कमकर और किसान क्रूरता के शिकार हो रहे हैं। सभी जगह हम फिर अधिकारियों की एशियाई निरंकुशता को और लोगों के विरुद्ध उनके घृणित अत्याचार को देख रहे हैं। लेकिन ये कठोर सवक भुलाये नहीं जा सकते। आज रूसी जनसाधारण वे ही नहीं हैं जो 1905 के पहले थे। सर्वहारा ने उन्हें सिखा दिया है कि कैसे लड़ना चाहिए। सर्वहारा उन्हें विजय तक पहुँचायेगा।"

किसान-समस्या—लेनिन ने इस क्रांति में किसान-समस्या के महत्त्व का वहुत बारीकी से अध्ययन किया। रूस में पूँजीवादी जनवादी-क्रान्ति का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने उसके आर्थिक आधार को बतलाया। रूसी क्रांति के लिए किसान-समस्या को उन्होंने मूल धुरी वतलाया और उदाहरण सहित विवेचना करते हुए दिखाया

कि संवैधानिक-जनतांत्रिक किसानों के दुश्मन हैं। उन्होंने किसान-कार्यक्रम को सामने रखते हुए बताया कि हमें क्रांतिकारी उपायों से देहातों में अर्ध-दासता के अवशेषों को उखाड़ फेंकना होगा और समाजवाद के लिए संघर्ष का रास्ता साफ करना होगा। किसान-समस्या पर उस समय लेनिन ने जो लिखा था, वह सब उसी समय नहीं छप सका। अपने निष्कर्षों को उन्होंने कुछ संक्षिप्त लेखों के रूप में गैर-कानूनी तौर से 'रूसी क्रान्ति में सामाजिक-जनवादियों का किसान-कार्यक्रम' और दूसरे लेखों में प्रकाशित किया। उनकी प्रधान कृति **1905-07 ई. की प्रथम रूसी क्रांति में सामाजिक-जनवादियों का किसान-कार्यक्रम** जब प्रेस में छप रही थी, उसी समय पुलिस ने उसको नष्ट कर दिया। **19वीं शताब्दी के अन्त में रूस में किसान-प्रश्न** भी प्रकाशित नहीं हो सकी। लेनिन की ये कृतियाँ क्रांति के बाद ही प्रकाशित हुईं।

स्तोलिपिन आतंक—जारशाही साफ देख रही थी कि केवल दमन और आतंक से लोगों के असंतोष को नहीं दबाया जा सकता। किसान मजदूरों के सहायक बनें, यह उसके लिए और भी खतरे की बात थी। अस्तु, तत्कालीन प्रधान मंत्री स्तोलिपिन ने 9 नवम्बर, 1906 को एक नया किसान-कानून लागू करके एक नयी चाल चली। किसानों को अपने गाँव के लोक-समूह से अलग हो स्वतन्त्र घरबार कायम करने का अधिकार मिल गया। अब तक गाँव की सारी जमीन गाँव की सम्मिलित सम्पत्ति समझी जाती थी। किन्तु अब, हरेक किसान उस सम्मिलित सम्पत्ति से अपने भाग को लेकर लोक-समूह से अलग हो सकता था। यही नहीं, किसानों को अपनी जमीन को बेचने का अधिकार भी दे दिया गया। लोक-समूह को इस बात के लिए भी बाध्य किया गया कि जो कोई भी समूह को छोड़ने की इच्छा करे उसे उसकी जमीन एक टुकड़े में मिलनी चाहिए।

अब तक जमीन बेचने का अधिकार नहीं था। लेकिन जैसे ही यह अधिकार मिला, गरीबों की जमीन कुलक (धनी किसान) बहुत थोड़े मूल्य पर खरीदने लगे। कुछ ही वर्षों के भीतर कई लाख किसान अपनी जमीन बेचकर भिखमंगे बन गये। उनकी जमीन लेकर देहात में कुलकों की संख्या और भी बढ़ गयी। जारशाही जानती थी कि देहात के ये कुलक ही हैं, जो उसपर मुसीबत पड़ने पर उसके सहायक होंगे। इसलिए उसने देहाती लोक-समूह को कुलकों को सबसे अच्छी भूमि देने के लिए मजबूर किया, और ऊपर से अपना फार्म खड़ा करने के लिए उन्हें काफी कर्ज दिया।

स्तोलिपिन क्या करना चाहता था, यह स्पष्ट है। वह देहात में लोक-समूह को तोड़ने और अपने विश्वासपात्र कुलकों द्वारा किसानों के विद्रोह को विफल करने की तैयारी कर रहा था।

लेनिन इस चाल को अच्छी तरह समझ रहे थे। उन्होंने कितने ही लेखों और व्याख्यानों में इस चाल का भंडाफोड़ करते हुए बोल्शेविक दृष्टिकोण रखा। विसर्जनवादियों और अत्जोवियों के विचारों का खंडन करते हुए उन्होंने बताया कि विसर्जनवादियों का यह दावा बिल्कुल गलत है कि स्तोलिपिन की नीति ने दूसरी क्रान्ति की सभी आशाओं पर पानी फेर दिया है। स्तोलिपिन के प्रयत्नों से एक ओर जहाँ कुलकों का वर्ग मजबूत हुआ, वहाँ दूसरी ओर किसानों में भारी असंतोष फैला। इस असंतोष के कारण नया क्रान्तिकारी विस्फोट अनिवार्य था। अत्जोवियों को जवाब देते हुए लेनिन ने कहा कि वे इस नये तथ्य को समझने में असमर्थ हैं कि स्तोलिपिन की नीति "निसर्गतः परस्पर-विरोधी और एक असंभव प्रयत्न है। वह एक बार फिर स्वेच्छाचारिता को ध्वंसोन्मुख बनायेगी और 1905 ई. के भव्य युद्धों की पुनरावृत्ति करायेगी। किन्तु, 1897-1903 ई. की तुलना में घटनाएँ भिन्न रास्ते पर चल रही हैं। वे 1905 ई. की तुलना में एक भिन्न ही रास्ते से लोगों को क्रांति की ओर ले जायेंगी। अब इस 'भिन्नता' को हमें समझना होगा और अपने दाँव-पेंचों को बदलना होगा।"

3. पेरिस में (1908 ई.)

नयी परिस्थिति में नये दाँव-पेंचों की आवश्यकता महसूस करके केन्द्रीय कमिटी ने अगस्त, 1908 की बैठक में कान्फ्रेंस बुलाने का निश्चय किया।

पाँचवीं पार्टी कान्फ्रेंस (1909 ई.)—कान्फ्रेंस की तैयारी करने के लिए 1908 के दिसंबर में लेनिन पेरिस चले गये। पेरिस ऐसा केन्द्र था जहाँ यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में बिखरे हुए निर्वासित रूसी क्रांतिकारी आसानी

से मिल सकते थे।

लेनिन पेरिस के उपनगर में रहते थे। वह 8 बजे सवेरे वहाँ से साइकिल पर 'बिब्लियोथेक नाशेनाल' पुस्तकालय जाते। यह दुनिया के चार बड़े पुस्तकालयों में से एक था। 2 बजे वहाँ से लौटकर वह घर के काम में लग जाते। एक दिन जब वह पेरिस के पास जूबिजी से आ रहे थे (वहाँ पर वह उस समय के लिए नयी चीज–विमान की उड़ान–देखने गये थे) कि रास्ते में एक मोटर उनकी साइकिल की ओर चढ़ दौड़ी। ऐन वक्त पर लेनिन साइकिल से कूद गये। साइकिल चूर-चूर हो गयी। लेनिन बाल-बाल बचे।

स्तोलिपिन-प्रतिक्रियावाद के काल में पाँचवीं कान्फ्रेंस, लेनिन के शब्दों में, पार्टी के इतिहास में एक नया मोड़ थी। लेनिन ने कान्फ्रेंस के सामने महत्त्वपूर्ण भाषण दिये। इनमें विसर्जनवादियों और अत्जोवियों की कड़ी आलोचना की गयी। लेनिन द्वारा तैयार किये एक प्रस्ताव को कान्फ्रेंस ने मंजूर किया। "गलोससोत्सियाल देमोक्राता" (सामाजिक-जनवादियों की आवाज) मेन्शेविकों का पत्र था। उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति, मारतोफ और पार्टी के दूसरे शत्रु, विसर्जनवादियों का बड़ी चालाकी से समर्थन कर रहे थे। त्रात्स्की और उसके अनुयायी 'मेल-मिलाप कराने की' आड़ में यह कोशिश कर रहे थे कि पार्टी अपनी सारी शक्ति को एकताबद्ध करके मजबूत न बन सके। विरोधियों का सामना करते हुए लेनिन ने यह आवश्यक समझा कि निम्न-मध्यवर्गी सहयात्रियों से बोल्शेविक संगठनों का पिंड छुड़ाया जाय और उन लोगों को निकाल बाहर किया जाय जो लड़ाई में बाधा डालते हैं और जनता से बोल्शेविकों को अलग करने की कोशिश करते हैं।

जून, 1909 में 'प्रोलेतारी' के सम्पादक-मण्डल की एक विस्तारित कान्फ्रेंस हुई। इसमें लेनिन ने 'भगवान के निर्माता' अत्जोवियों पर जबर्दस्त आक्रमण किया। कान्फ्रेंस ने अत्जोवियों की निन्दा करते हुए उन्हें बोल्शेविक संगठन से निकाल बाहर किया। लेनिन भिन्न-भिन्न अवसरवादियों के खिलाफ जो कार्रवाई करके पार्टी को मजबूत कर रहे थे, उसका रूस में जबर्दस्त समर्थन हुआ। स्तालिन सोलविचेगोद्स्क में निर्वासित नजरबन्दी के जीवन से भाग निकलने में सफल हुए थे और जून, 1909 में काकेशस जा पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने बोल्शेविकों की शक्ति को संगठित करना शुरू कर दिया था। 1909 के अगस्त में स्तालिन के नेतृत्व में बाकू पार्टी-कमिटी ने बोग्दानोफ और उसके समर्थकों के खिलाफ जबर्दस्त सैद्धांतिक संघर्ष चलाने का प्रस्ताव पास किया। इस तरह उन्होंने पार्टी का अत्यन्त आवश्यक काम पूरा करने की ओर कदम बढ़ाया।

विसर्जनवादियों के खिलाफ भी लेनिन का यही रुख था।

त्रात्स्की का रवैया–विसर्जनवादियों को भी लेनिन विभीषण समझते थे। वह उन्हें भी हटाने के लिए तैयार थे। त्रात्स्की ने अपने को केन्द्रवादी (मध्यस्थ) कहकर, अर्थात् अपने रूप को छिपाते हुए, विसर्जनवादियों की रक्षा करने की कोशिश की। जनवरी, 1910 में उनके गुप्त एजेंट कामेनेफ, जिनोबियेफ, राइकोफ और दूसरों ने लेनिन से बिना पूछे ही केन्द्रीय कमिटी की एक बैठक बुलायी। लेकिन फिर भी लेनिन ने 1908 की दिसम्बर वाली कान्फ्रेंस के निर्णयों का इस बैठक में समर्थन करवा लिया। एक प्रस्ताव में बैठक ने विसर्जनवादियों और अत्जोवियों की निन्दा करते हुए उन्हें सर्वहारा के ऊपर पूँजीवादी प्रभाव का साधन बतलाया। तो भी, त्रात्स्की और उसके गुप्त समर्थकों ने लेनिन के विरुद्ध कितने ही निर्णय पास कराये। इनमें से एक बोल्शेविक अखबार 'प्रोलेतारी' को बन्द करने और वियना से त्रात्स्की द्वारा प्रकाशित किये जानेवाले एक पर्चे को अधिक सहायता देने के बारे में था। बाद में लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी के इन निर्णयों को 'मूर्खतापूर्ण' बताया। उन्होंने बताया कि इनके कारण पार्टी का काम एक बरस तक विकसित न हो पाया।

केन्द्रीय कमिटी की इस बैठक के बाद झगड़ा और बढ़ गया। सभी विरोधियों ने मिलकर लेनिन के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया और पार्टी के विरुद्ध दिलोजान से काम करने की कोशिश शुरू कर दी। लेनिन त्रात्स्की को 'जूदास त्रात्स्की' कहा करते थे। 'जूदास' के बारे में हमें मालूम ही है कि उसने कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिए ईसा को पकड़वाकर दार में चढ़ाने में मदद की थी।

त्रात्स्की ने बोल्शेविकों और लेनिन के विरुद्ध हर तरह के सिद्धान्तहीन लोगों को मिलाकर अपना एक ब्लाक (गुट) बनाया जिसे 'पार्टी-विरोधी अगस्त-ब्लाक' कहा जाता था। द्वितीय इन्टर्नेशनल भी मेन्शेविकों की

सहायता के लिए आगे बढ़ी। बोल्शेविक और लेनिन अवसरवादियों के सबसे खतरनाक शत्रु थे। उनके कारण जनसाधारण में उनकी कलई खुल रही थी। इसलिए यूरोप के इन समाजवादियों के पत्रों ने बोल्शेविकों के खिलाफ तरह-तरह का झूटा प्रचार करने के लिए अपने मुड्ढ हाजिर कर दिये। 'सोत्सियाल देमोक्रात' में रहते हुए जिनोवियेफ और कामेनेफ ने शत्रुओं से मिलकर बोल्शेविकों के विरुद्ध षड्यंत्र में पूरी तरह हाथ बँटाया।

लेकिन, लेनिन हिम्मत हारनेवाले आदमी नहीं थे। वह सर्वहारा के हित के सच्चे समर्थक थे। उनको विश्वास था कि पार्टी के दुश्मन कभी सफल नहीं हो सकते।

उन्होंने त्रात्स्की के पार्टी-विरोधी सिद्धांतहीन ब्लाक की निन्दा की और कहा :

"त्रात्स्की उन सभी लोगों को एकताबद्ध कर रहा है जिन्हें सैद्धान्तिक गड़बड़ी प्रिय है। वह उन सभी कूप-मण्डूकों को एकताबद्ध कर रहा है जो नहीं जानते कि युद्ध किसलिए हो रहा है; वह उन लोगों को एकताबद्ध कर रहा है जो सीखना, समझना नहीं चाहते और जो हमारे मतभेदों की सैद्धांतिक जड़ों तक पहुँचना नहीं चाहते।"

'जूदास त्रात्स्की की लज्जापूर्ण मुख-लालिमा' के नाम से एक लेख में लेनिन ने त्रात्स्की के सारे पाखंडों का पर्दाफाश किया : "केन्द्रीय कमिटी की बैठक में उसने शपथ ली थी कि मैं विसर्जनवाद और अत्जोववाद के विरुद्ध हूँ। उसने 'भगवान की कसम खायी कि मैं पार्टी का पक्षपाती हूँ।' लेकिन, बैठक के बाद उसने अपने को विसर्जनवाद और अत्जोवियों के चरणों में डाल दिया और पार्टी के विरुद्ध षड्यंत्र करने में शामिल हो गया।"

पार्टी-विरोधियों के विरुद्ध लड़ने में लेनिन को रूस के पार्टी संगठनों की पूरी मदद मिली। स्तालिन उनके जबर्दस्त समर्थक थे। मारतोफ के समर्थकों के भयानक विरोध के बावजूद स्तालिन के काकेशिया से लिखे पत्र 'सोत्सियाल देमोक्रात' में, जो उस समय पार्टी का केन्द्रीय मुख-पत्र था, प्रकाशित हुए। इन पत्रों में स्तालिन ने विसर्जनवादियों की बुरी तरह खबर ली थी। इन पत्रों में तथा साइबेरिया के अपने निर्वासन-स्थान सोलविचेगोद्स्क से लेनिन के पास भेजे गये पत्र में स्तालिन ने रूस में पार्टी-संगठन के बारे में एक योजना पेश की थी। इसमें उन्होंने कहा था कि एक साधारण पार्टी कान्फ्रेंस बुलायी जाय, एक कानूनी अखबार निकाला जाय और व्यावहारिक कामों के संचालन के लिए एक गुप्त पार्टी योजना बनायी जाय। बाद में, प्राग में होनेवाली पार्टी कान्फ्रेंस में स्तालिन की योजना स्वीकार की गयी।

4. द्वितीय इन्टर्नेशनल के अवसरवादियों से लोहा

द्वितीय इन्टर्नेशनल के अवसरवादियों और केन्द्रवादियों के खिलाफ भी लेनिन ने तलवार उठायी। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में मजदूर आन्दोलन की गतिविधियों को वह देख रहे थे और समझ रहे थे कि किस तरह द्वितीय इन्टर्नेशनल में अवसरवाद बढ़ रहा है। उन्होंने बतलाया कि यह अवसरवाद मुख्यतः मजदूर-आन्दोलन के निम्न-मध्यवर्गी सहयात्रियों तथा 'मजदूर अमीरों' की ओर से पैदा हो रहा है। 'मजदूर अमीर' मजदूर वर्ग के ऊपरी स्तर के वे लोग होते हैं जिन्हें पूँजीपति रिश्वत देकर अपनी ओर कर लेते हैं। भिन्न-भिन्न देशों की पार्लामेंटों में मजदूर तथा सामाजिक-जनवादी गुट एवं मजदूर सभा के पदाधिकारी अवसरवाद के मुख्य वाहक हैं। 1905 ई. की शरद् से ही लेनिन इन्टर्नेशनल समाजवादी ब्यूरो के सदस्य थे। ब्यूरो की 1908, 1909 और 1911 की बैठकों में उन्होंने क्रांतिकारी रास्ता स्वीकार करने के लिए अवसरवादियों से बराबर लड़ाई लड़ी थी, त्रात्स्की की केंद्रवादी नीति की आलोचना की थी, हॉलैण्ड के वाम सामाजिक-जनवादियों का समर्थन किया था और जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की नेत्री, रोजा लुक्जेम्बुर्ग के पक्ष का समर्थन किया था।

अगस्त, 1910 में लेनिन द्वितीय इंटर्नेशनल की कोपनहैगेन (डेनमार्क) में होनेवाली कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उसकी कार्रवाइयों में भाग लेते हुए उन्होंने अवसरवादियों का जबर्दस्त विरोध किया। इसी समय उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन से सम्बद्ध क्रांतिकारी तत्त्वों को एकजुट करने के उद्देश्य से वामपक्षी प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस बुलायी।

11
पुनर्जागृति (1910-12 ई.)

1905 ई. की क्रांति के बाद जो अवसाद फैला था और उसके साथ ही जो घोर दमन शुरू हुआ था, उससे रूस में चारों ओर मुर्दनी-सी छा गयी थी। लेकिन, जहाँ दुःख-दरिद्रता की भीषणता अपना नंगा नाच दिखा रही हो, जहाँ सर्वहारा एक बार अपनी शक्ति की परीक्षा कर चुका हो, वहाँ निराशा और अवसाद कितनी देर ठहर सकते हैं ? फिर, सर्वहारा का नेतृत्व करनेवाली पार्टी मार्क्सवाद का हथियार लिये हर घड़ी चौकन्नी थी ही।

1910 ई. के अन्त में रूस की जनता में फिर जागृति के चिह्न दिखलायी पड़ने लगे। अब उसकी थकावट दूर हो गयी थी। वह सड़ी जारशाही के प्रहारों को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थी।

1. नये पत्र : नये बारूदखाने

लेनिन की दृष्टि जनमत के थर्मामीटर पर हर वक्त रहती थी। वह जनता और सर्वहारा के भावों के उतार-चढ़ाव को देखते रहते थे। इस जागृति से फायदा उठाने के लिए जरूरी था कि रूस के भीतर भी पत्र-पत्रिकाएँ निकाली जायें। मार्क्सवादी आतंकवादियों की तरह बमों और रिवाल्वरों पर विश्वास नहीं रखते। वे समझते हैं कि अन्त में सारे हथियार तो किसानों और कमकरों के हाथों में हैं, वे ही पलटन और पुलिस हैं। असल में उनके दिमाग को अपने वर्ग-हित के पक्ष में करने की आवश्यकता है। और इसके लिए मार्क्सवाद के सिद्धांत महामंत्र हैं। इसीलिए, मार्क्सवादी साहित्य–विशेषकर उसकी पत्र-पत्रिकाएँ–सर्वहारा के लिए बारूदखाने से भी बढ़-चढ़कर हैं।

लेनिन का ध्यान अब इसी ओर गया। उन्होंने परदेश में बोल्शेविक मुख-पत्र–'रबोचया गजेता' (कमकर गजेट) निकाला। रूस के भीतर कानूनी तौर से 'ज्वेज्दा' (तारा) अखबार और 'मिस्ल' (विचार) पत्रिका निकली। एलिजारोफ को लिखे, 20 दिसम्बर, 1910 के अपने एक पत्र में लेनिन ने कहा था : "कल मैंने रूस से 'ज्वेज्दा' का पहला अंक पाया और आज 'मिस्ल' का पहला अंक। यह अत्यन्त संतोष की बात है। मुझे आशा है तुमने देखा होगा। सचमुच, यह अत्यन्त संतोष की बात है।"

दोनों पर लेनिन का बहुत ध्यान था। उनके लेख अब इन पत्र-पत्रिकाओं में निकलने लगे। राजधानी पीतरबुर्ग में केंद्रीय कमिटी के प्रतिनिधि याकोव स्वेर्दलोफ थे। उनसे भी लेनिन का पत्र-व्यवहार शुरू हो गया। यह जानकर लेनिन को बड़ी प्रसन्नता हुई कि मजदूर वर्ग की पार्टी के नये कार्यकर्ता मैदान में आ रहे हैं। लेनिन ने उनकी शिक्षा का पूरी तरह प्रबंध किया। जब ये कार्यकर्ता यूरोप में उनके पास आते, तो वह उनके आराम का ख्याल रखते तथा रहने का प्रबंध करते। वह उनके अध्ययन को ज़ारी रखते तथा उनकी प्रगति को भी देखते।

अत्जोवियों ने भी कमकरों की जिज्ञासा से फायदा उठाने के लिए कापरी में अपना अलग स्कूल खोला था। लेनिन ने अत्जोवियों की फूट की नीति तथा पथ-भ्रष्टता को बतलाते हुए पेरिस में इन विद्यार्थियों को अपने साथ लाने में सफलता पायी। 1909 के नवम्बर और दिसम्बर में उन्होंने वर्तमान स्थिति तथा स्तोलिपिन किसान-नीति के बारे में कई भाषण दिये। 1911 ई. की गर्मियों में पेरिस के पास लौंगजूम्यो में उन्होंने एक पार्टी-स्कूल खोला। वहाँ उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र, समाजवाद के सिद्धांत और प्रयोग एवं किसान-समस्या के बारे में व्याख्यान दिये।

विभीषणों से लोहा–लेनिन जानते थे कि गलत विचारधारा कितनी हानिकारक होती है। उन्होंने विसर्जनवादी तथा अत्जोवी अवसरवादियों की खूब खबर ली। विसर्जनवादियों और अत्जोवियों के अतिरिक्त समझौतावादी भी इस वक्त संगठन को कमजोर करने में सबसे अधिक भाग ले रहे थे। उनका नेता त्रात्स्की था। लेनिन ने

समझौतावादियों को विसर्जनवादियों का गुप्तचर कहते हुए उनकी खुली निन्दा की। उनके बारे में 'समझौतावादियों का नया गुट' नाम के एक लेख में उन्होंने कहा :

"प्रतिक्रांति के समय समझौतावादियों की भूमिका निम्न चित्र द्वारा व्यक्त की जा सकती है। प्रचण्ड शक्ति लगाकर बोल्शेविक हमारी पार्टी की गाड़ी को चढ़ाई पर खींच रहे हैं। विसर्जनवादी गलोस-पक्षी अपनी सारी शक्ति लगाकर गाड़ी को ढलाव की ओर खींच रहे हैं। गाड़ी में एक समझौतावादी बैठा है जो साकार कोमलता है। उसका चेहरा इतना मधुर है कि मानो वह ईसा मसीह हो। वह सद्गुणों का अवतार दिखायी पड़ता है। नम्रता के साथ अपनी आँखों को नीचे झुकाते हुए अपने हाथ को ऊपर उठाते हुए और बोल्शेविकों और मेन्शेविकों की ओर सिर हिलाते हुए वह बोल उठता है : 'मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ भगवान कि मैं इनमें से नहीं हूँ। ये पाजी सारी प्रगति में बाधा डाल रहे हैं।' लेकिन गाड़ी धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ती है और समझौतावादी उसमें बैठा हुआ है।..."

नयी पार्टी कान्फ्रेंस के सवाल पर विवाद उठ खड़ा हुआ। केंद्रीय कमिटी ने कान्फ्रेंस की तैयारी के लिए जून, 1911 में संगठन कमिटी तथा टेकनीकल कमिटी कायम की थी। ये दोनों ही विसर्जनवादियों का समर्थन करती हुई कान्फ्रेंस के प्रबंध में बाधा डाल रही थीं। लेनिन और उनके अनुगामियों ने इसके लिए उनकी तीव्र निन्दा की।

इसी समय स्तालिन रूस के भीतर विसर्जनवादियों से लोहा ले रहे थे। स्तालिन के एक लेख "स्तोलिपिन 'कमकर' पार्टी के कैम्प से" को प्रकाशित करते हुए लेनिन ने उसके बारे में लिखा था : "साथी को. (कोवा, स्तालिन) का लेख उन लोगों के लिए बड़े ध्यान से पढ़ने की चीज है, जिनके हृदय में हमारी पार्टी की भलाई का ख्याल है।"

कान्फ्रेंस के प्रबंध के वास्ते एक संगठन कमिटी बनाने के उद्देश्य से लेनिन ने ओर्जोनिकिद्ज़े को रूस भेजा। ओर्जोनिकिद्ज़े ने खूब परिश्रम किया। कमिटी बन गयी। वहाँ कई कान्फ्रेंसें हुईं। कमिटी ने एक अपील निकालकर बतलाया कि पार्टी कान्फ्रेंस क्यों की जा रही है। किन्तु, कान्फ्रेंस करना आसान नहीं था। पार्टी की ओर से पहले पत्रक के निकलते ही पुलिस का दमन बढ़ चला। साफ मालूम होने लगा कि काम को रोकने के लिए पुलिस सभी बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं को पकड़कर जेल में बंद करने से बाज नहीं आयेगी।

जो भी हो, पुलिस दमन करती रही; लेकिन कमकरों का झण्डा फिर रूस में फहराने लगा। सारे देश में कमकर-चक्र सजीव होने लगे !

कान्फ्रेंस की तैयारी के सम्बन्ध में 1911 ई. की शरद् में लेनिन पेरिस, ज़ूरिच, बर्न, जनेवा, ब्रुसेल्स, अन्तवर्प और लन्दन के बोल्शेविकों के पास गये। वहाँ उन्होंने भाषण दिये। 1911 के दिसम्बर में पेरिस में प्रवासी बोल्शेविकों का एक सम्मेलन करके लेनिन ने पार्टी की स्थिति के बारे में रिपोर्ट दी।

छठी पार्टी-कान्फ्रेंस (प्राग, 1912 ई.)—सभी विघ्न-बाधाओं को दूर करके और शत्रुओं के हौसले पस्त करके लेनिन पार्टी कान्फ्रेंस बुलाने में सफल हुए। 1912 की जनवरी में प्राग में छठी अखिल रूसी कान्फ्रेंस हुई। लेनिन इसके मुख्य संचालक थे। उन्होंने रिपोर्ट पेश की, बहस में भाग लिया और कान्फ्रेंस के मुख्य प्रस्तावों के मसौदे तैयार किये। उन्होंने बतलाया कि सर्वहारा के अग्रगामी भाग को शिक्षित, संगठित और एकताबद्ध करने के प्रयत्न को जारी रखना पार्टी का प्रथम करणीय है। उन्होंने बताया कि राजनीतिक आंदोलन को हमें बड़े व्यापक पैमाने पर चलाना है। जन-आंदोलन को बढ़ाने के लिए हर तरह से कोशिश करनी होगी। अपने काम को सफलतापूर्वक करने के लिए हमें एक मजबूत और सुसंबद्ध गुप्त पार्टी की आवश्यकता है जो सभी तरह की कानूनी सुविधाओं का अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके। आज की स्थिति को देखते हुए छोटे, लचकदार और गति-पटु गुप्त पार्टी ग्रुपों की नितान्त आवश्यकता है। अपने सभी कानूनी (खुले) संगठनों के केन्द्र के रूप में उनकी देखभाल करते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि पार्टी की नीति का अनुसरण सभी कानूनी शाखाओं में हो रहा है या नहीं। इन्टर्नेशनल के समाजवादी ब्यूरो की कार्रवाइयों के बारे में लेनिन ने कहा कि उससे सम्बद्ध क्रांतिकारी तथा सुधारवादी तत्त्वों के बीच का झगड़ा उग्र रूप ले रहा है। सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ

समाजवादी क्रांति के एक नये युग की ओर वढ़ रही हैं तथा सर्वहारा और पूँजीपति वर्ग के वीच निर्णायव युद्ध होंगे। आर्थिक संकट तथा युद्ध-संकट इस नये ऐतिहासिक युग के आगमन की पूर्व-सूचना हैं।

प्राग कान्फ्रेंस अपने लक्ष्य में सफल हुई। उसने मेन्शेविकों को पार्टी से निकाल बाहर किया और एक नये ढंग की पार्टी–बोल्शेविक पार्टी–की नींव डाली।

2. नये ढंग की पार्टी

घर के विभीषणों को पोसते हुए किसी प्रचण्ड और कुटिल शत्रु से लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। लड़ाई के हथियार और लक्ष्य पर ही जिनका विश्वास नहीं, वे कैसे अन्तिम लड़ाई लड़ सकते हैं ? 'इस्क्रा' निकालकर लेनिन ने इस तरह की पार्टी बनाने की कोशिश की थी। उसे बहुत टेढ़े-मेढ़े उत्थान और अवसाद की भूमि से गुजरना पड़ा। 'अर्थवादी', मेन्शेविक, त्रात्स्कीवादी, अत्जोवी, अनुभव-सिद्ध आलोचक–ये सभी रास्ते के काँटे बने हुए थे। इनमें से एक-एक को उखाड़ फेंकना कोई आसान और जल्दी होनेवाला काम नहीं था। लेकिन, लेनिन ने अपनी वाणी, अपनी लेखनी और अपने दाँव-पेंचों से यह काम पूरा किया। उन्होंने इस संघर्ष में **क्या करें ?** से लेकर **भौतिकवाद और अनुभव-सिद्ध आलोचना** तक महान् ग्रन्थ लिखे। ये ग्रन्थ उस समय के लिए ही उपयोगी नहीं थे। ये ग्रन्थ सर्वत्र और सदा मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को समझने और सर्वहारा क्रांति का पथ-प्रदर्शन करने में सहायक होंगे। सामयिक कठिनाइयों और निराशापूर्ण परिस्थिति से लेनिन का साहस कभी कुंठित नहीं हुआ। वह लक्ष्य को हमेशा अपने सामने रखकर मार्क्स द्वारा जलायी गयी मशाल हाथ में लिए हुए आगे बढ़ते रहे।

12

महान् तैयारी (1912-13 ई.)

प्राग कान्फ्रेंस के साथ-साथ लेनिन के जीवन का एक बड़ा युग पूर्ण हुआ। यह युग तीव्र संघर्ष और भयंकर भूकम्पों का युग था। इस समय शत्रुओं से टक्करें लेकर उन्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ना पड़ा था। लेकिन, अब गंगा अपने उद्गम से निकलकर क्षीण धारा की जगह एक जबर्दस्त सरिता का रूप ले चुकी थी। उसके तीव्र प्रवाह में घास और तिनके क्या, बड़े-बड़े वृक्ष और शिलाएँ भी रुकावट नहीं डाल सकती थीं। प्राग कान्फ्रेंस की सफल समाप्ति से सन्तुष्ट होकर 1912 ई. के शुरू में लेनिन ने गोर्की को लिखा था : "विसर्जनवादी कमीनों की सारी कोशिशों के बावजूद भी अन्त में मैं पार्टी और उसकी केन्द्रीय कमिटी को फिर से स्थापित करने में सफल हुआ। मुझे विश्वास है कि इसके लिए तुम भी हमारे साथ खुशी मनाओगे।"

1. शक्तिशाली पार्टी संगठन

पार्टी संगठन अब अधिक सुसंगठित और एकतावद्ध हो गया था। लेकिन, उसको अपने ध्येय को पूरा करने के लिए जितनी प्रबल शक्ति की आवश्यकता थी, उसका संचय करना अब सबसे बड़ा काम था। कान्फ्रेंस में हारकर भी विरोधियों ने अभी हथियार नहीं डाले थे। उन्होंने द्वितीय इंटर्नेशनल से सहायता के लिए प्रार्थना की थी।

इस कान्फ्रेंस के विरुद्ध त्रात्स्की ने जर्मन समाजवादी पार्टी के मुख-पत्र 'फोरवर्ट्स' में अपना लेख छपवाया था। लेकिन, लेनिन ने उन लोगों की एक भी न चलने दी। उन्होंने उनके विरुद्ध इंटर्नेशनल के सामाजिक-जनवादी ब्यूरों के पास पत्र लिखा। 'फोरवर्ट्स का अज्ञात लेखक और रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की स्थिति' के नाम से उन्होंने एक लेख भी लिखा। उन्होंने कहा कि परदेश में भटकनेवाले ये फूटपरस्त वेकार का हल्ला

मचा रहे हैं; इनका रूस के भीतर के पार्टी संगठनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु 'फोरवर्ट्स' ने लेनिन का लेख प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया। इसपर लेनिन ने जर्मन भाषा में उसे पुस्तिका की शक्ल में छपवाकर 600 पतों पर भेजा और इस तरह त्रात्स्की तथा उसके जैसे दूसरों को मुँहतोड़ जवाब दिया।

लेनिन इन प्रवासी फूटपरस्तों के हो-हल्ले से बहुत परेशान न थे। वह समझते थे कि ये बिना सेना के जनरल हैं। रूस के सभी पार्टी संगठन अव बोल्शेविकों के हाथ में थे। लेनिन का सारा ध्यान उनको मजबूत और विस्तृत करने में तथा आन्दोलन को आगे वढ़ाने में लगा हुआ था।

'प्रावदा' की स्थापना (1912 ई.)—अव लेनिन को बोल्शेविक दैनिक की आवश्यकता मालूम होने लगी। उन्होंने ओर्जोनिकिद्ज़े को उसके प्रबन्ध के लिए रूस भेजा। प्राग कान्फ्रेंस ने वोलोग्दा में निर्वासित नजरबन्दी का जीवन बितानेवाले स्तालिन को केन्द्रीय कमिटी का सदस्य चुना था। लेनिन के प्रस्ताव पर उन्हें रूस में केन्द्रीय कमिटी के ब्यूरो का प्रमुख बनाया गया। ओर्जोनिकिद्ज़े स्तालिन को कान्फ्रेंस के निर्णय की सूचना देने के लिए सीधे वोलोग्दा पहुँचे और फिर लेनिन को लिखा : "मैं इवानोविच (स्तालिन) से मिलने गया था। उनके साथ मैंने सब बातों का प्रवन्ध कर लिया है।"

29 फरवरी, 1912 को स्तालिन अपने निर्वासन का जीवन समाप्त करके वोलोग्दा से फरार हो गये। लेनिन की हिदायत के अनुसार वह कानूनी वोल्शेविक अखवार 'प्रावदा' (सत्य) निकालने का प्रवन्ध करने लगे। 5 मई, 1912 को 'प्रावदा' का प्रथम अंक निकला। इसकी सारी तैयारी स्तालिन की देखरेख में हुई थी। लेकिन, दो ही दिन बाद स्तालिन गिरफ्तार कर लिए गये।

परन्तु, उससे क्या होता था ? 'प्रावदा' एक शक्तिशाली शस्त्र की तरह ऐसे समय प्रकट हुआ जब रूसी जनता में चारों ओर फिर तैयारी दिखायी देने लगी थी। नये जन-जागरण की सूचना 4 अप्रैल को लेना की सोने की खानों के भीषण गोली-कांड ने दी। लेनिन ने उसके बारे में लिखा था :

> "लेना के गोली-कांड ने शक्ति-संचार का काम किया है। उसने जनता के क्रांतिकारी रुख को जनता के क्रांतिकारी विभ्राट के रूप में परिणत कर दिया।"

जारशाही द्वारा इस भीषण हत्याकांड के विरोध में देश के भिन्न-भिन्न भागों में हड़तालें की गयीं जिनमें तीन लाख कमकरों ने भाग लिया। 1 मई की हड़ताल में तो चार लाख कमकर शामिल हुए। मजदूर आंदोलन फिर जोर से चलने लगा।

2. लेनिन क्राको में

सुदूर पेरिस में रहकर 'प्रावदा' और पार्टी के कामों का संचालन करना बहुत कठिन था। इसलिए लेनिन ने रूस के नजदीक रहने का निश्चय किया। वह क्राको (पोलैंड) चले आये। क्राको उस समय आस्ट्रिया के आधीन था। गोर्की के पूछने पर लेनिन ने लिखा था :

> "तुम मुझसे पूछते हो कि मैं आस्ट्रिया क्यों पसन्द करता हूँ ? केन्द्रीय कमेटी ने यहाँ एक ब्यूरो कायम किया है (यह बात अपने तक ही सीमित रखना); यह सीमांत के नजदीक है जिससे हम लाभ उठा रहे हैं; यह पीतरबुर्ग के अधिक नजदीक है, जहाँ के अखबार हम दो दिन के भीतर पा जाते हैं; यहाँ से पीतरबुर्ग के अखवारों के लिए लिखना भी अधिक आसान है। और भी अधिक घनिष्टता के साथ सहयोग करने का प्रवन्ध हो रहा है।"

लेनिन ने 19 जून, 1912 को क्राको के लिए प्रस्थान किया था। वह दो साल तक, अर्थात् 1914 ई. में प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध आरम्भ होने के समय तक, वहाँ रहे। जाड़ों में वह नगर में रहते थे और गर्मियों में पोरोनिनो गाँव चले जाते थे। अपने सम्वन्धियों को लिखे एक पत्र में लेनिन ने कहा था : "पेरिस की अपेक्षा यहाँ रहना हमें अच्छा मालूम होता है। हम अपने भावावेगों को विश्राम देकर यहाँ अधिक साहित्यिक काम कर रहे हैं। खटपट भी यहाँ कम है।" जनवरी, 1913 में गोर्की को उन्होंने लिखा था : "क्राको बहुत उपयोगी सावित हुआ।"

1913 ई. की गर्मियों में क्रुप्स्काया की वीमारी के कारण लेनिन उनके साथ पोरोनिनो में रहने गये। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने सम्वन्धियों को एक पत्र में लिखा था :

"कुछ दिन हुए हम गर्मियों के लिए जाकोपान से 7 किलोमीटर दूर पहाड़ पर पोरानिनो में चले आये हैं। यह तत्रा की पहाड़ियों के पास है और क्राको से दक्षिण में छः या आठ घंटे की रेल की यात्रा पर अवस्थित है—रूस और यूरोप का क्राको से यातायात सम्वन्ध है। रूस से यह कुछ अधिक दूर है, लेकिन कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है।"

क्राको में एक यह असुविधा थी कि वहाँ कोई अच्छा पुस्तकालय नहीं था। गोर्की को उन्होंने लिखा था : "खटपट नहीं है, यह सुविधा है; किन्तु यहाँ अच्छा पुस्तकालय नहीं है, यह असुविधा भी है। बिना किताबों के काम करना वहुत मुश्किल है।"

इस समय लेनिन काफी समय 'प्रावदा' के लिए लिखने में लगाते थे। 'प्रावदा' के सम्पादक-मंडल के सेक्रेटरी मोलोतोफ थे। लेनिन ठीक समय पर डाक द्वारा अखबार पाने पर जोर देते थे। अगर कुछ घंटों की भी देर हो जाती थी तो वह नाराज होते थे (डाक दिन में दो वार वाँटी जाती थी)। सम्पादकों के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

"पत्र भेजने के लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। दो बार अखवार समय पर पूँजीवादी अखबारों के साथ-साथ आये। लेकिन इन दोनों समयों के अतिरिक्त 'जा प्रावदा' ('सत्य के लिए' जो प्रावदा के दवा देने पर निकला था—ले.) पूँजीवादी पत्रों से सदा आधा दिन देर करके आता है। क्या तुम इसमें परिवर्तन नहीं कर सकते और हमेशा समय पर नहीं भेज सकते, ताकि यह पूँजीवादी अखवारों के साथ-साथ यहाँ पहुँचे ?"

क्राको में रहते हुए लेनिन 'प्रावदा' की जरा-जरा-सी गलती को ध्यान से देखते और उसे सुधारने की कोशिश करते थे। वह बराबर जोर देते थे कि पत्र के ग्राहकों की संख्या बढ़ानी चाहिए। उन्होंने एक बार लिखा था :

"तुम सीधे कारखानों में जाओ और 'प्रावदा' के लिए लड़ो। अधिक कापियों के ग्राहक वनाओ और हरेक कारखाने को 'लुच' (किरण)—विसर्जनवादियों के मुख-पत्र—से अलग करने की कोशिश करो। 'प्रावदा' के ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में कारखानों में होड़ लगनी चाहिए।...'प्रावदा' की ग्राहक-संख्या तीस हजार से पचास या साठ हजार तक बढ़ाने के लिए जद्दोजहद करो।...अगर ऐसा किया, तो हम 'प्रावदा' के आकार में वृद्धि तथा लेखों में विशेषता पैदा कर सकते हैं !"

लेनिन ने गोर्की से भी 'प्रावदा' के लिए लेख लिखने को कहा था। उन्हें लेनिन एक महान सर्वहारा लेखक मानते थे। निज्नी-नवगरोद (आधुनिक गोर्की) से पुलिस ने गोर्की को जब निर्वासित किया, तो अपने पुराने 'इस्क्रा', में लेनिन ने गोर्की का जवर्दस्त पक्ष लिया था। प्रतिक्रियावाद जव जोर पर था तब उनके माखवादी मित्रों से अलग करके गोर्की को पक्का मार्क्सवादी बनाने में लेनिन ने वड़ी सहायता की थी। गोर्की के नाम लिखे लेनिन के पत्रों में उनके क्रांतिकारी भाव बड़े शक्तिशाली और गम्भीर रूप में देखे जाते हैं। दोनों महापुरुषों में बड़ी गहरी मित्रता थी। गोर्की के जरा भी अस्वस्थ होने की खवर सुनकर लेनिन व्याकुल हो जाते, और बराबर उनके बारे में अपने पत्रों में पूछा करते थे। लेनिन को जव मालूम हुआ कि गोर्की ने माखवाद से अपना पिंड छुड़ा लिया है तो उन्होंने उन्हें वोल्शेविक पत्रों में लिखने के लिए आमंत्रित किया।

'प्रावदा' के लिए लेनिन प्रायः प्रतिदिन लेख लिखते। इन लेखों द्वारा क्रमकर आंदोलन और पार्टी का सही पथ-प्रदर्शन होता तथा समाजवादी चेतना को फैलाने में सहायता मिलती। वह भाषा के बारे में हमेशा इस बात का ध्यान रखते थे कि जिनके लिए वह लेख लिख रहे हैं, उनको उसे समझने में कोई कठिनाई न हो।

जहाँ वह सीधी-सादी भाषा में लिखे लेखों द्वारा रूस के सर्वहारा को पूँजीवाद से अन्तिम-युद्ध के लिए तैयार कर रहे थे, वहाँ देश-विदेश में जो और घटनाएँ घट रही थीं उन्हें भी वह छोड़ना नहीं चाहते थे। 1911

ई. की चीनी क्रांति का लेनिन ने जवर्दस्त समर्थन किया। तुर्की के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़नेवाली बलकान की जातियों का उन्होंने पक्ष लिया और बरावर इस ओर संकेत करते रहे कि साम्राज्यवादी युद्ध नजदीक आ रहा है। उनके लेखों में कितनी ही चुभनेवाली बातें होती थीं। एक लेख में उन्होंने लिखा था :

"हम अपने बाप-दादों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से लड़ रहे हैं। हमारे लड़के और भी अच्छी तरह लड़ेंगे और विजय प्राप्त करेंगे।

"मजदूर वर्ग नष्ट नहीं होगा; वह बढ़ रहा है; अधिक ताकत हासिल कर रहा है, परिपक्व हो रहा है, एकतावद्ध, समझदार और संघर्ष में फौलादी बन रहा है। अर्धदासता, पूँजीवाद और छोटे उत्पादन के प्रति हम निराशावादी हैं; लेकिन मजदूर आंदोलन और उसके उद्देश्यों के प्रति हम अत्यन्त आशावादी हैं। हम इस समय जिस नयी इमारत की नींव रख रहे हैं, हमारे लड़के उसे पूरा करेंगे।"

लेकिन इमारत वनाने का काम उन्होंने अपनी संतानों के लिए नहीं छोड़ा !

दैनिक 'प्रावदा' के अलावा लेनिन ने एक वोल्शेविक साहित्य-पत्रिका के भी कानूनी प्रकाशन की आवश्यकता समझी। इस उद्देश्य से उन्होंने मासिक 'प्रोशवेशचेनिये' (शिक्षा) पत्रिका की स्थापना की। पत्रिका का पहला अंक पीतरबुर्ग में दिसम्वर, 1911 में निकला। इसके सम्पादक-मंडल में भी लेनिन सक्रिय भाग लेते थे और उसके प्रायः प्रत्येक अंक के लिए लेख लिखा करते थे। इसके लिए पैसा जमा करने का काम भी उन्होंने किया। 'प्रावदा' जब अपने पैरों पर खड़ा हो गया तो उन्होंने सुझाव रखा कि मास्को से भी एक कानूनी बोल्शेविक दैनिक निकाला जाय। कितनी ही कठिनाइयों के बाद अगस्त, 1913 में लेनिन मास्को से 'नाश पुत' (हमारा पथ) निकलवाने में सफल हुए।

3. चौथी द्यूमा का चुनाव (1912 ई.)

1912 ई. में तृतीय द्यूमा की अवधि पूरी हो गयी। उसी साल चतुर्थ द्यूमा के लिए निर्वाचन हुआ। 'प्रावदा' की तरह ही द्यूमा में गये सामाजिक-जनवादी भी जन-आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते थे। इसीलिए लेनिन ने द्यूमा के निर्वाचन को उचित महत्त्व दिया। उन्होंने पार्टी का निर्वाचन का मसौदा तैयार किया और निर्वाचन-आंदोलन के समय 'प्रावदा' में कितने ही लेख लिखे। 'प्रावदा' ने निर्वाचन-संघर्ष में डटकर भाग लिया और विसर्जनवादियों की अच्छी तरह पोल खोली। निर्वाचन का समय ज्यों-ज्यों नजदीक आता, लेनिन की कलम और तेज होती जाती। सितम्बर, 1912 में उन्होंने गोर्की को लिखा था : "निर्वाचन के काम में इस समय हम कानों तक डूबे हुए हैं।··· पार्टी का निर्माण वहुत-कुछ निर्वाचन के परिणामों पर निर्भर है।"

निर्वाचन-संघर्ष जिस वक्त अपनी चरम सीमा पर था, उसी समय नरिम (साइबेरिया) से फरार हुए स्तालिन को केंद्रीय कमिटी ने पीतरवुर्ग भेजा। वहाँ पहुँचकर 'प्रावदा' और निर्वाचन-प्रचार का संचालन स्तालिन ने अपने हाथ में लिया। लेनिन ने स्तालिन के साथ इस समय तक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। स्तालिन के भाषणों और लेखों से अपने भावी उत्तराधिकारी के प्रति लेनिन का स्नेह और सम्मान अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। 'मजदूर वर्ग के अपने प्रतिनिधि को पीतरवुर्ग के कमकरों का आदेश-पत्र' स्तालिन ने तैयार किया था। इसे पढ़ने के वाद लेनिन ने उसके हाशिये पर यह लिखकर लौटाया : "बिना भूले मेरे पास लौटाना ! गंदा न करना। यह लेख सुरक्षित रखने लायक तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।" 'प्रावदा' सम्पादकों को एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "पीतरवुर्ग के प्रतिनिधियों के लिए इस आदेश-पत्र को तुम बड़े टाइप में प्रमुख स्थान पर छापना।" निर्वाचन में वोल्शेविकों को वहुत सफलता मिली। सभी मुख्य-मुख्य उद्योग-प्रधान गुवर्नियों में कमकरों ने वोल्शेविक उम्मीदवारों को द्यूमा के लिए चुना।

द्यूमा में 6 वोल्शेविक और 7 मेन्शेविक समाजवादी, कुल 13 सामाजिक-जनवादी चुने गये। उन्होंने एक संयुक्त दल बना लिया था। लेकिन, मेन्शेविक अपने एक के वहुमत को इस्तेमाल करके वोल्शेविकों के बोलने में रुकावट पैदा करते थे। वे चाहते थे कि वोल्शेविक पीछे रह जायें और कमकर जनसाधारण मेन्शेविकों को बोलने-चालने में आगे बढ़ा देखकर वाहवाही देने लगें। इसके विरोध में लेनिन ने जोरदार शब्दों में 'प्रावदा'

को भी वैसा करने को कहा। अन्त में बोल्शेविक प्रतिनिधियों को मेन्शेविकों से अलग होकर अपना स्वतंत्र दल बनाना पड़ा। लेनिन की सलाह पर इसका नाम 'रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर दल' पड़ा।

प्राग कान्फ्रेंस को हुए करीब बारह महीने बीत चुके थे। इस बीच पार्टी ने जो काम किया था, उनका लेखा-जोखा करने के लिए एक कान्फ्रेंस बुलाने की आवश्यकता थी। लेनिन ने 1912 ई. अन्त में–दूयूमा के स्थगित होने के समय केंद्रीय कमिटी और पार्टी के अधिकारियों की एक सम्मिलित कान्फ्रेंस का क्राको में प्रबंध कराया। दूयूमा से छुट्टी पाने के कारण बोल्शेविक प्रतिनिधि भी इस समय क्राको आ सकते थे।

4. क्राको कान्फ्रेंस (1912 ई.)

यह कान्फ्रेंस 28 दिसम्बर, 1912 को हुई। रिपोर्ट, एजेंडा आदि तैयार करने का काम स्वयं लेनिन ने किया। उन्होंने प्रस्ताव तैयार किये और स्तालिन की सहायता से 'प्रावदा' के नेतृत्व का फिर से संगठन किया। नये युग में पार्टी के दाँव-पेंच क्या होने चाहिए, इसकी भी रूपरेखा उन्होंने तैयार की। उन्होंने जोर देकर कहा कि पार्टी को तीन क्रांतिकारी नारे बराबर उठाते रहने चाहिए : जनतांत्रिक गणराज्य; सभी जमींदारियों को जब्त करना; और आठ घन्टे का दिन। कमकरों के साथ किसानों की शक्ति को भी संगठित करने की ओर उन्होंने ध्यान दिया। कमकरों के बारे में बतलाया कि बोल्शेविकों को आगे बढ़े कमकरों को नीचे से एकताबद्ध करने की कोशिश करनी चाहिए। कान्फ्रेंस सफल रही। लेनिन को बहुत संतोष हुआ। कान्फ्रेंस ने बतला दिया कि बोल्शेविक पार्टी विकसित हुई है तथा अधिक शक्ति-संपन्न हुई है। लेकिन लेनिन इतने से संतुष्ट होनेवाले नहीं थे। वह गुप्त बोल्शेविक संगठन को और मजबूत करना तथा कानूनी कार्रवाइयों को सभी दिशाओं से दूर तक बढ़ाना चाहते थे। जनवरी, 1913 में उन्होंने गोर्की को लिखा था : "यदि हम एक ऐसा अच्छा सर्वहारा संगठन बना सकें जो विश्वासघाती विसर्जनवादियों से बाधित न हो सके, तो नीचे से आंदोलन की वृद्धि द्वारा कितनी ही विजयों को प्राप्त कर सकते हैं।" "कितना अफसोस है, हमारे पास पैसा नहीं है। अगर पैसा होता तो उससे हम कितना अधिक काम कर सकते !"

कान्फ्रेंस के बाद ही 10 फरवरी, 1913 को स्वेर्दलोफ को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। 23 फरवरी को उसने स्तालिन को भी फिर पकड़ लिया। इससे पार्टी को एक बड़ा धक्का लगा। लेनिन के कहने पर क्रुप्स्काया ने पीतरबुर्ग को लिखा था : "अभी-अभी हमने शोकजनक खबरवाले पत्र को पाया। इस स्थिति में बड़ी दृढ़ता तथा और भी अधिक एकता की आवश्यकता है।"

लेनिन 'प्रावदा' का तो ध्यान रखते ही थे, वह दूयूमा में गये बोल्शेविक प्रतिनिधियों का भी पथ-प्रदर्शन किया करते थे। उनके लिए वह भाषण तक–विशेषकर शिक्षा-मंत्री की नीति, बजट, किसानों और जातियों के प्रश्न के बारे में लिखकर भेजा करते थे। परतंत्र जातियों के ऊपर लगी बाधाओं को उठा देने के वास्ते एक कानून का मसौदा भी दूयूमा के लिए उन्होंने तैयार करके भेजा था। दूयूमा के प्रतिनिधि अक्सर लेनिन के पास क्राको जाते और वहाँ से हिदायतें लेकर लौटते। बदायेफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि दूसरे प्रतिनिधियों की तरह वह भी नहीं जानता था कि दूयूमा में क्या करना है। लेनिन ने बातचीत में एक बार उससे कहा : "यमराज सभावाली दूयूमा कभी ऐसे कानून नहीं पास करेगी, जिनमें कमकरों की दशा में सुधार हो। दूयूमा में गये कमकर-प्रतिनिधियों का काम यमराज सभा वालों को प्रतिदिन याद दिलाते रहना है कि मजदूर वर्ग दृढ़ और शक्तिशाली है और वह दिन बहुत दूर नहीं जब क्रान्ति फिर फूटेगी और वह उन्हें तथा उनकी सरकार को बहा देगी।"

'जातीय-प्रश्न'–रूस में मध्य-एशिया, साइबेरिया और काकेशस की एशियाई जातियाँ जारशाही जुए के नीचे कराह रही थीं। हर तरह का भेद-भाव रखते हुए उनका कड़ा शोषण किया जाता था। हर तरह से कोशिश की जाती थी कि राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तौर से वे बराबर नीचे दबी रहें। इन जातियों में अब थोड़ा-थोड़ा जागरण होने लगा था। लेनिन व स्तालिन जानते थे कि इनकी समस्या हल किये बिना वे क्रांति की शक्ति को मजबूत नहीं बना सकते। जारशाही इनको क्रांति के विरुद्ध भी इस्तेमाल कर सकती थी, जैसे

फ्रांस और स्पेन मराकश (मराको) के मूरों को इस्तेमाल करते थे। क्राको में कान्फ्रेंस के समय स्तालिन भी वहाँ पहुँचे थे। उसी समय लेनिन के प्रोत्साहन पर उन्होंने अपनी अनमोल कृति **मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न** लिखी थी। यह पुस्तक लेखों के रूप में पहले 'प्रोशवेशचेनिये' में प्रकाशित हुई। लेनिन ने स्वयं भी 1913 ई. के मध्य में और बाद में भी इस विषय पर कई लेख जैसे 'जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टिप्पणी' (1913 ई.) और 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' (फरवरी, 1914 ई.) लिखे। उन्होंने इस विषय पर क्राको, पेरिस, लीग, लिपजिग, जूरिच, जनेवा और बर्न में कितने ही व्याख्यान भी दिये। पोलिश सामाजिक-जनवादियों, रोजा लुक्जेम्बुर्ग, बुंद (यहूदी सामाजिक-जनवादी लीग), उक्राइनी सामाजिक-जनवादियों तथा दूसरे निम्न-मध्यवर्गी राष्ट्रवादियों का तीव्र विरोध करते हुए लेनिन ने इसपर जोर दिया कि परतंत्र जातियों को आत्मनिर्णय का पूरा अधिकार होना चाहिए और कमकर वर्ग तथा सर्वहारा पार्टी को उनके इस अधिकार का समर्थन करना चाहिए। लेनिन ने मई, 1913 में 'प्रावदा' में एक लेख में लिखा था : "सभी जातियों के कमकरों की (स्थानीय और नीचे से) पूर्ण एकता–जिसे इतने समय तक काकेशस में सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया गया है–ही वह चीज है जो मजदूर आंदोलन के हितों और उद्देश्यों के अनुकूल है।" लेनिन ने अपने लेखों में दो टूक कहा था कि जातियों के आत्मनिर्णय का मतलब केवल सांस्कृतिक आत्मनिर्णय नहीं है, उसमें हर जाति को अपना स्वतंत्र राज्य बनाने का अधिकार, सभी जातियों और भाषाओं की पूर्ण समानता, विस्तृत स्थानीय स्वायत्त-शासन, जातीय अल्पमतों के अधिकार की गारंटी भी सम्मिलित है।

क्रांतिकारी आंदोलन का जोर–रूस में क्रांतिकारी आंदोलन का प्रवाह फिर जोर पकड़ने लगा। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 1912 ई. में 7 लाख 25 हजार कमकरों ने हड़तालें की थीं जो वस्तुतः 10 लाख से कम कमकरों की हड़तालें नहीं थीं। 1913 ई. में सरकारी आँकड़ों से 8 लाख 61 हजार और दूसरे स्रोतों से 12 लाख 72 हजार कमकर हड़ताल में शामिल हुए थे। 1914 ई. की पहली छमाही में ही 15 लाख के करीब कमकरों ने हड़ताल में भाग लिया। हड़ताल का जोर और प्रवाह बढ़ता ही गया। मालूम होने लगा कि क्रांतिकारी आंदोलन फिर जाग उठा है।

क्राको में लेनिन का छोटा-सा बासा क्रांतिकारी आंदोलन के सेना-संचालकों (स्टाफ) का सदर-मुकाम बना हुआ था। 1913 और 1914 ई. में केन्द्रीय कमिटी और पार्टी कर्मियों के कई मिलेजुले सम्मेलन हुए। 1913 के सितम्बर में पोरोनिनो में इसी तरह का एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ था जिसमें केंद्रीय कमिटी के कामों की रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने जातीय समस्या पर भी अपनी रिपोर्ट पेश की थी। दूसरे अवसरवादियों पर आक्षेप करते हुए उन्होंने त्रात्स्की के पार्टी-विरोधी 'अगस्त ब्लाक' की भी खूब खबर ली थी। इससे मालूम हो जाता है कि त्रात्स्की का अवसरवाद कितना ला-इलाज था और वह स्वयं क्रांति के लिए कितना अविश्वसनीय आदमी था। जीवन के अन्तिम दिनों में उसने जो कुछ किया, वह उसके लिए कोई आकस्मिक बात नहीं थी।

रूसी अवसरवादियों को इस तरह सब जगह बोल्शेविकों द्वारा परास्त होते देखकर द्वितीय इन्टरनेशनल के अन्तर्राष्ट्रीय अवसरवादियों ने अपने अनुयायियों की मदद करने के लिए रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन में 'समझौता' और 'एकता' लाने के बहाने मध्यस्थ बनने का प्रस्ताव किया। लेकिन, लेनिन इस तरह की लल्लो-चप्पो में आनेवाले नहीं थे।

लेनिन का दो साल तक क्राको में निवास सर्वहारा के लिए बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इसी समय उन्होंने बोल्शेविक क्रांति में सफलता के लिए साधन एकत्रित किये और तैयारियाँ कीं। पार्टी अब बहुत मजबूत तथा अत्यन्त जनप्रिय हो चुकी थी। उसका प्रभाव सारे रूस में–कमकरों, किसानों और परतन्त्र जातियों में–देखा जाता था। जून, 1914 में केन्द्रीय कमिटी की बैठक में अगली पार्टी कांग्रेस बुलाने का निश्चय हुआ। लेकिन दो ही महीने बाद अगस्त, 1914 में प्रथम साम्राज्यवादी विश्व-युद्ध शुरू हो गया। इस कारण कांग्रेस नहीं हो सकी।

13
प्रथम विश्व-युद्ध (1914-18 ई.)

1. गिरफ्तारी (1914 ई.)

विश्व-युद्ध आरम्भ होने के समय लेनिन गैलीशिया (पोलैंड) के पोरोनिनो नामक पहाड़ी गाँव में थे। रूस आस्ट्रिया का दुश्मन था, इसलिए रूसी होने के कारण 8 अगस्त, 1914 को आस्ट्रिया की पुलिस ने लेनिन को गिरफ्तार करके नोवी तार्ग के जेलखाने में भेज दिया। लेकिन उनपर जो दोष लगाया गया था वह झूठा था। अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होने के नाते लेनिन साम्राज्यवादी युद्ध में रूसी जारशाही के समर्थक नहीं थे। 19 अगस्त को उन्हें छोड़ दिया गया।

लेनिन ने आस्ट्रिया में रहना अच्छा नहीं समझा। रूसी होने के कारण किसी भी समय उनको गिरफ्तार किया जा सकता था। उनके क्रान्तिकारी कामों में भी वहाँ बहुत बाधा पड़ती थी। अस्तु, लेनिन आस्ट्रिया से स्विट्जरलैंड चल पड़े। वह पहले बर्न में, फिर जूरिच में 1917 के अप्रैल महीने के अन्त तक रहे। हाथ से निकल गयी चिड़िया की तरफ जारशाही खुफिया-पुलिस का ध्यान बरावर लगा रहता था। पुलिस विभाग ने दक्षिण-पश्चिमी मोर्चे के मुख्य सेनापति से कह रखा था कि क्राको पर अधिकार होते ही लेनिन को पकड़कर पीतरबुर्ग भेज़ दिया जाय। लेकिन पुलिस विभाग का मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ।

स्विट्जरलैंड से लेनिन युद्ध के खिलाफ युद्ध घोषित करने की बराबर अपील करते रहे। प्रथम विश्व-युद्ध साम्राज्यवाद के आंतरिक विरोधों का परिणाम था। दो बड़े-बड़े पूँजीवादी गुटों ने अपने-अपने लिए बाजार हथियाने और नफा कमाने के उद्देश्य से दुनिया का फिर से बँटवारा करने के लिए यह युद्ध छेड़ा था। इन दो गुटों में से एक में जर्मनी और आस्ट्रिया थे और दूसरे में इंगलैंड, फ्रांस और रूस। इस युद्ध का उद्देश्य आदर्शवादी या परोपकारी नहीं था। इसका उद्देश्य था दूसरी जातियों को गुलाम बनाना और उपनिवेशों की लूट-खसोट करना।

मजदूर-आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाली पार्टियों के लिए यह युद्ध एक जबर्दस्त कसौटी था। पश्चिमी यूरोप की सामाजिक-जनवादी पार्टियों में युद्ध से बहुत पहले ही अवसरवाद का बोलबाला था। मौका पाने पर वे भला मजदूर वर्ग के हितों के साथ विश्वासघात करने से कैसे बाज आ सकती थीं ? 'राष्ट्रीय रक्षा' के नाम पर पूँजीवादियों के हितों की रक्षा करने के लिए उन्होंने युद्ध का समर्थन करना शुरू किया। द्वितीय इंटरनेशनल के नेता अपनी-अपनी साम्राज्यवादी सरकारों की सहायता करने के लिए उतावले हो रहे थे। लेनिन का विचार इस विषय में साफ था। वह अपने राष्ट्रीय पूँजीवादियों की सहायता के लिए दौड़ पड़नेवालों में से नहीं थे।

2. युद्ध पर निवन्ध

5 सितम्बर, 1914 को लेनिन बर्न पहुँचे।

अगले ही दिन शहर से बाहर के जंगलों में स्थानीय बोल्शेविकों की एक बैठक हुई। इसमें युद्ध के प्रति पार्टी के रुख के बारे में लेनिन ने भाषण दिया। इस बैठक ने लेनिन के 'युद्ध पर निबंध' के ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकार किया।

लेनिन ने युद्ध के स्वरूप और मजदूर वर्ग के करणीयों का विवेचन करते हुए वतलाया कि यह युद्ध पूँजीवादी-साम्राज्यवादी युद्ध है, यह लूट-खसोट का युद्ध है। उन्होंने सर्वहारा के हित के प्रति द्वितीय इंटर्नेशनल के नेताओं के विश्वासघात की खुले शब्दों में निन्दा की और बतलाया कि द्वितीय इंटर्नेशनल का टूटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी; उसमें अवसरवाद की गलीज भर जाने का ही यह परिणाम था। उन्होंने बतलाया कि सच्चे अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों का इस समय प्रमुख कर्तव्य है समाजवादी क्रांति के लिए प्रचार करना और भिन्न-भिन्न देशों के कमकरों और किसानों को अपने हथियारों को एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी

सरकारों और अपने देश के पूँजीपतियों के खिलाफ घुमाने के लिए तैयार करना। अपने निबंध में उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि जारशाही की पराजय केवल रूसी सर्वहारा के नहीं, बल्कि सभी देशों के सर्वहारा के हित की बात होगी।

लेनिन ने 'युद्ध पर निबंध' को तुरन्त ही रूस भेजा। परदेश में रहनेवाले बोल्शेविकों में भी उसका काफी प्रचार हुआ। चारों ओर से लेनिन का समर्थन होने लगा। इन्हीं निबंधों के आधार पर लेनिन ने साम्राज्यवादी युद्ध पर केन्द्रीय कमिटी के घोषणापत्र को 1914 के सितम्बर के अन्त में लिखा। इस घोषणापत्र का शीर्षक था : 'युद्ध और रूसी सामाजिक-जनवादी।' इसमें उन्होंने आह्वान किया कि : साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में—पूँजीपतियों और जमींदारों के विरुद्ध युद्ध में—बदल दो ! 'पूँजीवादी पितृभूमि की रक्षा' के बदले उन्होंने नारा दिया : अपनी साम्राज्यवादी सरकार को हराओ ! साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि अब सड़ी हुई द्वितीय इन्टर्नेशनल के स्थान पर तृतीय इन्टर्नेशनल कायम करना आवश्यक है।

3. तैयारी

बोल्शेविक पार्टी को संगठित और मजबूत करने के लिए लेनिन और भी तत्परता से काम में जुट गये। युद्ध की स्थिति में यह काम बहुत कठिन था। वह अब रूस की सीमा से बहुत दूर चले गये थे। रास्ते की हजारों मील लंबी-चौड़ी भूमि में चारों ओर तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई देती थी। स्विट्जरलैंड से रूस को भेजे गये पत्र एक महीने से अधिक समय में पहुँचते थे। रूसी पत्र-पत्रिकाएँ तो बहुत मुश्किल से, और कभी-कभी ही मिलती थीं। हरेक चीज का बड़ी सख्ती से सेन्सर किया जाता था। पुलिस रूस में पार्टी संगठनों को छिन्न-भिन्न करने में लगी हुई थी।

कठिनाइयाँ—रूस में पार्टी के बड़े-बड़े कार्यकर्ता—स्तालिन, मोलोतोफ, स्वेर्दलोफ, स्पान्दरियान, वोरोशिलोफ, ओर्जोनिकिद्ज़े या तो जेलों में बंद थे या निर्वासन का जीवन बिता रहे थे। स्विट्ज़रलैंड यद्यपि तटस्थ देश था, तो भी वहाँ की भूमि को क्रांति के अड्डे के तौर पर इस्तेमाल किया जाना संभव नहीं था। वहाँ की पुलिस और फौज बहुत जागरूक रहती थीं।

सबसे बड़ी बाधा थी पैसों की कमी। 1914 ई. के शरद में जब पार्टी ने 'सोतिसयाल देमोक्रात' फिर से प्रकाशित करना शुरू किया तो उस समय पार्टी के कोष में 160 से अधिक फ्रांक नहीं थे। लेनिन ने लिखा था : "हमारे पास पैसा नहीं है, पैसा नहीं है ! यही सबसे बड़ी कठिनाई है !"

लेनिन का अपना जीवन भी इस समय बहुत कष्टमय था। उनका रहन-सहन हमेशा ही बहुत सीधा-सादा रहा था। परदेश में रहते समय उन्हें खास तौर से आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। लेकिन ये कठिनाइयाँ कभी उतनी ज्यादा नहीं बढ़ीं जितनी कि इस वक्त लड़ाई के समय। 1916 ई. के उत्तरार्ध में अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "जहाँ तक मेरी बात है, मैं यही कहूँगा : मुझे कुछ पैसा कमाना होगा, नहीं तो हालत खराब हो जायगी, सचमुच खराब हो जायगी ! रहन-सहन का खर्च भयंकर रूप से बढ़ गया है और हमारे पास जीविका का कोई साधन नहीं है।" उन्होंने अपने पत्रों में जोर देकर लिखा था कि उनके हस्तलेखों के शुल्क के तौर पर प्रकाशकों से कुछ जरूर भिजवाया जाय : "अगर तुम इसका प्रबंध नहीं करते, तो मैं अपने को काम पर कायम नहीं रख सकूँगा। मैं यह बात पूरी गंभीरता से कह रहा हूँ।"

इससे यह मालूम हो जाता है कि स्विट्ज़रलैंड में रहते समय लेनिन को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। लेकिन वह अपने क्रांतिकारी काम को कभी शिथिल नहीं होने दे सकते थे। लेनिन अपने हथियारों पर शान चढ़ाते रहे और अपनी सेना को कवायद-परेड द्वारा दुरुस्त करते रहे।

युद्ध के सम्बन्ध में उन्होंने स्विट्ज़रलैंड के कई शहरों में भाषण दिये। जब उन्हें मालूम हुआ कि प्लेखानोफ युद्ध के प्रति समाजवादियों के रुख के बारे में लोजान में व्याख्यान देने जा रहे हैं, तो वह वहाँ पहुँचे। बहस में उन्होंने प्लेखानोफ के युद्ध-पक्षी विचारों की धज्जियाँ उड़ा दीं।

उन्होंने स्विट्ज़रलैंड के भीतर भी बोल्शेविक साहित्य के प्रकाशन और प्रचार की कोशिश की।

लेनिन स्विट्ज़रलैंड में बड़े खतरे के वीच रह रहे थे। जैसाकि उन्होंने 1914 के सितम्बर में लिखा था : "यह मानने के लिए सभी कारण मौजूद हैं कि स्विस पुलिस और सैनिक अधिकारी (रूसी, फ्रेंच या किसी दूसरे राजदूत का पहला संकेत पाते ही) उस आदमी का कोर्ट मार्शल या निष्कासन कर देंगे जिसे वे तटस्थता भंग करने का दोषी समझते हैं।" लेनिन ने इसीलिए बड़ी सावधानी बरतने और हरेक काम को गुप्त रीति से करने की हिदायत दी थी। उन्होंने कहा था कि जो भी लिखना हो, उसे 'रसायन' में लिखा जाय; सभी छपे हुए पत्रकों, अखबारों आदि को प्रभावशाली स्विस नागरिकों के घरों में रखा जाय।

'सोत्सियाल देमोक्रात'—इन सब कठिनाइयों—विशेष रूप से आर्थिक कठिनाइयों के रहते हुए भी लेनिन 'सोत्सियाल देमोक्रात' को निकालने में सफल हुए। 'कम्युनिस्ट' (1915 ई.) को भी उन्होंने निकाला। 'स्बोर्निक सोत्सियाल देमोक्राता' (सामाजिक-जनवादी पत्रिका) के दो अंक उन्होंने 1916 ई. में निकाले। इसी तरह कितने ही पत्रक और पुस्तिकाएँ भी उन्होंने निकालीं।

इस समय 'सोत्सियाल देमोक्रात' का निकलना वहुत महत्त्व रखता था। बारह महीने वंद रहने के बाद 33वें अंक के रूप में वह 1 नवम्बर, 1914 को निकला। इसमें लेनिन द्वारा लिखा गया केंद्रीय कमिटी का युद्ध सम्बन्धी घोषणापत्र भी छपा। यह अंक गुप्त रीति से रूस में तथा परदेश में रहनेवाले सभी बोल्शेविकों में बाँटा गया। साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध प्रचार करने में इसने वड़ा काम किया। जारशाही और पूँजीवादियों के खिलाफ लोगों की भावनाओं को उत्तेजित करते हुए इसने समाजवादी क्रांति के लिए रास्ता तैयार करने में सहायता दी।

द्यूमा के बोल्शेविकों पर मुकदमा (1914 ई.)—पुलिस के दमन और अत्याचारों के बावजूद बोल्शेविक अपना काम लगातार करते जा रहे थे। बहुत-से बोल्शेविक नेता पकड़कर जेलों में वन्द कर दिये गये थे। लेकिन, द्यूमा के बोल्शेविक सदस्य अव भी वाहर थे। 6 बोल्शेविक सदस्यों में एक जारशाही खुफिया पुलिस का आदमी निकला। बाकी पाँच सदस्यों को 1914 के नवम्बर में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। अगले साल की फरवरी में मुकदमा चलाकर पुलिस ने उन्हें साइबेरिया-निर्वासन का दंड दिया। इन सदस्यों ने अदालत को अपना मंच बनाया और साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ अपने विचारों को प्रकट करते हुए सर्वहारा के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का डटकर प्रचार किया।

बोल्शेविक पार्टी के सामने अब काम करने का कोई रास्ता खुला नहीं रह गया था। उसे सारा काम गुप्त रीति से करना पड़ता था। लेकिन, लेनिन ने तो इसके लिए पार्टी को पहले से ही तैयार कर लिया था। दो वर्षों के भीतर 'प्रावदा' ने सर्वहारा पार्टी के काफी कर्मी तैयार कर लिये थे। पुलिस बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ करके भी कर्मियों के अभाव में काम को वन्द नहीं करा सकती थी। द्यूमा के बोल्शेविक सदस्यों की गिरफ्तारी की खवर सुनकर लेनिन ने लिखा था :

> "हमारी पार्टी के लिए काम करना अब सौ गुना अधिक कठिन हो गया है। तो भी, हम अपना काम करते रहेंगे। 'प्रावदा' ने हजारों वर्ग-चेतन कमकरों को तैयार किया है। सभी कठिनाइयों के बावजूद उनमें से रूस में पार्टी की केन्द्रीय कमिटी का नया नेतृत्व चुन लिया जायगा।"

रूस के सवसे नजदीक का तटस्थ देश स्वीडन था। यहीं केन्द्रीय कमिटी का विदेशी ब्यूरो स्थापित किया गया। लेनिन की हिदायतों के अनुसार रूस के भीतर के पार्टी-कर्मियों के साथ ब्यूरो ने निकट का सम्बंध कायम किया। लेनिन ने कहा था : "सवसे आवश्यक बात यह है कि स्थायी और विश्वसनीय संचार-संबंध कायम रहें।" उन्होंने जोर दिया था कि रूस में दो या तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में पार्टी-दल कायम किये जायें; रूस में केन्द्रीय कमिटी के ब्यूरो और स्वयं केन्द्रीय कमिटी को फिर से कार्य-तत्पर किया जाय; और विदेश में पार्टी-केन्द्र के साथ संबंध कायम रखने के लिए एक या दो सदस्यों को स्वीडन भेजने का प्रबंध किया जाय।

तमाम कठिनाइयों के वावजूद रूस के पार्टी संगठनों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में लेनिन सफल हुए। पीतरबुर्ग में केन्द्रीय कमिटी के ब्यूरो के साथ उन्होंने निकट का सम्बन्ध कायम रखा। उनके कहने पर इर्कुत्स्क के निर्वासन से फरार हुए मोलोतोफ ब्यूरो के काम में लग गये। स्तालिन, स्वेर्दलोफ और स्पान्दरियान को साइबेरिया

के अत्यन्त दूर के इलाकों में निर्वासित किया गया था। लेनिन ने उनके साथ भी सम्वन्ध स्थापित किया और उनके पास 'युद्ध पर निवंध' भेजा।

फरवरी, 1915 में स्तालिन ने साइबेरिया से लेनिन को लिखा था :

"मेरा अभिवादन प्यारे इलिच, हार्दिक, हार्दिक अभिवादन !··· आप कैसे हैं; आपका स्वास्थ्य कैसा है ? मैं पहले की तरह ही हूँ, रोटी चवाते, निर्वासन की आधी अवधि काट रहा हूँ। कुछ-कुछ जी ऊबने लगता है, मगर कोई चारा नहीं। आपका काम कैसा चल रहा है ? वहाँ आपके निकट तो काफी चहल-पहल होगी !···हाल ही में मैंने त्रोपोत्किन के कुछ लेख पढ़े—वह बूढ़ा बेवकूफ है, दिमाग से बिल्कुल हाथ धो बैठा है। 'रेच' में प्लेखानोफ की भी छोटी-सी वकवास पढ़ी—कैसा पुराना गप्पी है जो सुधरने का नाम ही नहीं लेता है ! अरे, हाँ··विसर्जनवादियों और उनके प्रतिनिधियों, अर्थशास्त्रीय समाज के दलालों की क्या खबर है ? अफसोस है कि उनकी तवीयत दुरुस्त करनेवाला वहाँ कोई नहीं है ! क्या सचमुच विना सजा पाये वे बच निकलेंगे ? अब तो यह खुशखवरी लिख भेजिए कि जल्दी ही एक मुख-पत्र निकलनेवाला है···।"

वोल्शेविकों की कान्फ्रेंस (1915 ई.)—1915 की फरवरी में लेनिन की देखभाल में वोल्शेविक दलों की एक कान्फ्रेंस हुई। एजेंडा के मुख्य विषय—'युद्ध और पार्टी के करणीय' पर लेनिन ने रिपोर्ट दी। इस कान्फ्रेंस में लेनिन के क्रांतिकारी दाँव-पेंचों—'साम्राज्यवादी युद्ध को गृह-युद्ध में परिवर्तित कर दो' का और इस नारे का कि 'जारशाही सरकार को हराओ,' बुखारिन ने विरोध किया। कान्फ्रेंस ने लेनिन द्वारा पेश किये गये प्रस्तावों को स्वीकार किया। केन्द्रीय कमिटी के घोषणापत्र और वर्न-कान्फ्रेंस के निश्चयों ने बोल्शेविकों के एके को और भी मजबूत बना दिया।

वोल्शेविकों का काम—युद्ध के दिनों में भी वोल्शेविकों की क्रान्तिकारी कार्रवाइयाँ बराबर जारी रहीं। उनके सामने तुरन्त हल करने के लिए नयी-नयी समस्याएँ आती रहीं। उनके पथ-प्रदर्शन के लिए लेनिन ने 1915 ई. की शरद् में 'सोत्सियाल-देमोक्रात' में एक लेख 'कुछ थीसिस' के नाम से प्रकाशित किया। 11 सूत्रों में उन्होंने पार्टी के करणीयों का निर्देश किया। उन्होंने रूस में पूँजीवादी जनवादी-क्रांति के लिए संघर्ष और उसे समाजवादी क्रांति में परिवर्तित करने के संबंध में दाँव-पेंचों और नारों की व्याख्या की। आनेवाली क्रांति के अठारह महीने पहले ही लेनिन ने बता दिया कि क्रांति के समय पार्टी का क्या होना चाहिए। उन्होंने जो बात कही थी, वह बिल्कुल ठीक साबित हुई।

कमकरों तथा जनसाधारण में काम करने के अतिरिक्त नौसेना में—विशेषकर उत्तरी मोर्चे तथा बाल्तिक प्रदेशों की सेनाओं में बोल्शेविकों ने अपनी क्रांतिकारी कार्रवाई जारी रखी। क्रांति की अवस्था परिपक्व होती जा रही थी। रूस में ही नहीं, बल्कि पश्चिम में भी क्रांति की अवस्था परिपक्व होती जा रही थी। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी क्रान्ति की मुख्य संगठनकारी शक्ति थी। केवल लेनिन और बोल्शेविक ही युद्ध-काल में सच्चे अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और पक्के क्रांतिकारी रहे। बाकी सब तो आँधी के सामने सूखे तिनकों की तरह उड़ गये। द्वितीय इंटर्नेशनल के पतन को देखकर विश्व-युद्ध के आरम्भ के समय से ही लेनिन ने नये इन्टर्नेशनल की नींव रखनी शुरू कर दी। स्तालिन के शब्दों में :

> "यह ऐसा समय था जब दूसरी इंटर्नेशनल ने पूँजीवाद के सामने अपने झंडे को झुका दिया था और प्लेखानोफ, काट्स्की, गुइदे जैसे लोग भी देशाहंकार की बाढ़ के सामने टिक नहीं सके थे। लेनिन ही उस समय केवल, अथवा प्रायः केवल, वह व्यक्ति थे जिन्होंने सामाजिक देशाहंकार और सामाजिक शान्तिवाद के विरुद्ध दृढ़ता के साथ संघर्ष करते हुए गुइदे और काट्स्की जैसों के विश्वासघात की निन्दा की...। लेनिन जानते थे कि उन्हें केवल एक नगण्य अल्पमत का समर्थन प्राप्त है। लेकिन उनके लिए यह निर्णायक बात नहीं थी। वह जानते थे कि भविष्य में सफल होनेवाली ठीक नीति एक ही है—और वह है दृढ़ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की नीति···।
>
> "हम जानते हैं कि नये इंटर्नेशनल के लिए संघर्ष में जीत लेनिन की हुई।"

4. साम्राज्यवादी युद्ध

लेनिन ने जब पहले-पहल साम्राज्यवादी युद्ध को गृह-युद्ध में परिवर्तित करने के लिए अपील की थी तो दुनिया के मजदूर-आंदोलन में उनकी यह अकेली आवाज थी। लेकिन, लेनिन प्रवाह में बह जानेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने हिम्मत से काम लिया और युद्ध के वास्तविक लक्ष्यों को नंगा करके लोगों के सामने रखा। उन्होंने साम्राज्यवादी सरकारों और पूँजीपतियों के जूते चाटनेवाले 'समाजवादी' लगुओं-भगुओं के झूठों और धोखाधड़ी को खोलकर रखा। लेनिन को सबसे ज्यादा घृणा थी काट्स्की, त्रात्स्की जैसे तथाकथित केन्द्रवादी समाजवादियों से जो मुँह से तो मार्क्स का नाम लेते थे, पर मार्क्स के सिद्धान्तों का खून कर रहे थे। काट्स्की के बारे में उन्होंने लिखा था : "काट्स्की को मैं सबसे अधिक घृणा और नाराजगी से देखता हूँ।" त्रात्स्की के बारे में उन्होंने अपने एक लेख में लिखा था : "ईश्वर ने खुद त्रात्स्की को हुक्म दिया था कि वह काट्स्की और बर्नस्टाइन के लहँगे से लिपटा रहे।" लेनिन ने अवसरवादियों के साथ पूर्णतया संबंध-विच्छेद करने के लिए कहा।

उन्होंने अवसरवादियों के सामने यह अल्टीमेटम रखने का प्रस्ताव किया :

> "यह है हमारी केन्द्रीय कमिटी का...युद्ध संबंधी घोषणापत्र। तुम इसे अपनी भाषा में छापने को तैयार हो ? नहीं ? तो फिर, राम राम ! हमारा रास्ता अलग, तुम्हारा रास्ता अलग।"

उन्होंने दृढ़तापूर्वक अवसरवादियों का विरोध किया। यद्यपि युद्धरत सरकारों ने अवसरवादियों के लिए प्रचार की सुविधाएँ बढ़ा दी थीं और वे अपने जबर्दस्त शत्रु पर बराबर प्रहार कर रहे थे, तो भी लेनिन अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों को एकताबद्ध करने की बराबर कोशिश करते रहे। सभी वामपक्षी समाजवादी नेताओं और गुटों के साथ उन्होंने संबंध स्थापित किये और अवसरवादियों से लोहा लेने के लिए उन्हें प्रभावित किया।

स्विट्जरलैंड में पहुँचते ही यूरोप और अमरीका के मजदूर-आन्दोलन की क्रान्तिकारी शक्तियों को एकजुट करने के लिए लेनिन ने पूरी ताकत से प्रयत्न शुरू कर दिया था। केन्द्रीय कमिटी के घोषणापत्र तथा बोल्शेविकों के दूसरे अभिलेखों के भिन्न-भिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद कराकर उनका वितरण करने का प्रबन्ध किया। लेनिन की प्रेरणा से 14 सितम्बर, 1914 को लुगानो में इतालवी और स्विस समाजवादियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें 'युद्ध पर निबन्ध' पर बहस हुई। इससे सम्मेलन के प्रस्तावों पर बहुत प्रभाव पड़ा। 1915 की फरवरी में अंतांत देशों के 'समाजवादियों' का एक सम्मेलन हुआ जिसमें लेनिन ने युद्ध के पक्षपाती अवसरवादी समाजवादियों की पोल खोलते हुए बतलाया कि इन लोगों ने समाजवाद के साथ विश्वासघात किया है।

बोल्शेविकों की प्रेरणा से मार्च, 1915 में अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी महिला कान्फ्रेंस का अधिवेशन हुआ। इसके अधिकांश प्रतिनिधि निम्न-मध्यवर्गी शान्तिवादी विचारों के थे। लेकिन फिर भी इसका खास महत्त्व था। इसका महत्त्व इस बात में था कि युद्ध छिड़ने के बाद समाजवादियों की यह पहली अन्तर्राष्ट्रीय बैठक थी। लेनिन के सुझाव पर बोल्शेविक प्रतिनिधियों ने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें घोषित किया गया कि द्वितीय इन्टर्नेशनल के स्टुटगार्ट (1907), कोपेनहेगेन (1910) और बासले (1912) में किये गये निर्णयों का अधिकांश समाजवादी पार्टियों ने उल्लंघन किया है। समाजवाद के प्रति उनके विश्वासघात की निन्दा करते हुए घोषणापत्र में 'वर्ग शांति' को तोड़ने का आह्वान किया गया।

इसके कुछ ही समय बाद बर्न में अन्तर्राष्ट्रीय तरुण कान्फ्रेंस हुई जिसमें बोल्शेविक प्रतिनिधियों का पथ-प्रदर्शन करते हुए लेनिन ने दूसरे देशों के आंदोलन के प्रमुख नेताओं के साथ संबंध स्थापित किये।

युद्ध जितना ही और आगे बढ़ रहा था, जनता के संकट उतने ही बढ़ते जाते थे। युद्ध तथा सामाजिक-देशाहंकार के विरुद्ध लोगों का मनोभाव दृढ़ हो रहा था।

1915 ई. की शरद् में–युद्ध छिड़ने के एक साल बाद ही–जनता युद्ध के दुष्प्रभाव का अनुभव करने लगी। लाखों आदमी मृत्यु के मुख में समाये जा रहे थे; औद्योगिक जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा था; जीवन की आवश्यक वस्तुएँ बहुत महँगी होती जाती थीं। युद्ध का ज्वार अब नीचे उतरने लगा था। साफ मालूम हो रहा था कि लेनिन का सोचना ठीक साबित हुआ। लोगों में असंतोष बढ़ रहा था। ऐसे समय में सभी देशों के वाम-समाजवादी

नेताओं का एक सम्मेलन वुलाने की आवश्यकता अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। लेनिन ने इसके लिए बड़ी सावधानी से तैयारी की।

इतालवी तथा स्विस इस समाजवादी सम्मेलन को पूँजीवादी-शांतिवादी और केंद्रवादी संगठनों का सम्मेलन बना देना चाहते थे। लेनिन ने उनकी एक न चलने दी। जुलाई, 1915 में प्रारम्भिक सम्मेलन हुआ। इसमें बोल्शेविक प्रतिनिधियों को भेजने में लेनिन सफल हुए। इसके बाद उन्होंने वामपक्षी समाजवादियों के प्रमुख व्यक्तियों पर भी सम्मेलन में जाने के लिए जोर डाला। सम्मेलन का बाकायदा उद्‌घाटन होने के समय तक लेनिन एक वाम-गुट संगठित करने में सफल हो गये। इसे बाद में जिमिरवाल्ड-वामपक्ष कहा गया। यूरोप के दूसरे कमकरों को युद्ध के बारे में बोल्शेविकों की स्थिति बतलाने के लिए लेनिन ने जिमरवाल्ड कान्फ्रेंस के ठीक पहले एक पुस्तिका **समाजवाद** और युद्ध जर्मन भाषा में प्रकाशित करायी। उन्होंने बर्न के बोल्शेविक सम्मेलन के प्रस्तावों को भी फ्रेंच भाषा में प्रकाशित कराया।

जिमिरवाल्ड कान्फ्रेंस (1915 ई.)–यह कान्फ्रेंस 5 सितम्वर, 1915 को स्विट्‌जरलैंड के एक गाँव जिमिरवाल्ड में शुरू हुई। इसमें जर्मनी, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन और हालैंड की समाजवादी पार्टियों के अल्पमतों एवं इटली, स्विट्‌जरलैंड, पोलैंड और लातविया के प्रतिनिधि तथा रूसी बोल्शेविक भी सम्मिलित हुए। वामपक्ष का नेतृत्व लेनिन ने इतनी योग्यता से किया कि काट्‌स्की के अनुयायियों का बहुमत होने पर भी कान्फ्रेंस के प्रस्तावों में उन्होंने अपनी कितनी ही वातें रखवाने में सफलता पायी। कान्फ्रेंस ने एक घोषणापत्र निकाला जो यद्यपि कितने ही परस्पर-विरोधी भावों वाला तथा अस्पष्ट था, तो भी लेनिन और उनके नेतृत्व में वामपक्षी प्रतिनिधियों ने उसके लिए वोट दिये। पर साथ ही, लेनिन और वामपक्षियों ने इस सम्मेलन की असंगतियों की आलोचना करना बंद नहीं किया। लेनिन के नेतृत्व में जिमिरवाल्ड-वामपक्ष ने 'विश्व-युद्ध और सामाजिक-जनवादियों के सामने करणीय' के नाम से अपना सिद्धांत-पत्रक निकाला और अपना 'घोषणापत्र' भी प्रकाशित किया। लेनिन जिमिरवाल्ड-वामपक्ष की इस समय की कार्रवाइयों को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे यद्यपि उस समय मजदूर-आंदोलन में रूसी बोल्शेविक तथा उनके नेतृत्व में चलनेवाले वामपक्षियों का नगण्य अल्पमत था, तो भी उनकी हिम्मत कम नहीं हुई। लेनिन ने कहा था : "इस समय हम मुट्‌ठी-भर हैं, यह तथ्य इतना महत्त्व नहीं रखता; हमारे साथ लाखों होंगे, क्योंकि वोल्शेविकों की स्थापना ही एकमात्र ठीक स्थापना है।"

5. लेखन-कार्य

जिस तरह कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और दूसरी वैठकों में भाग लेते हुए लेनिन ने बोल्शेविक विचारों और कार्यक्रम का प्रचार किया, उसी तरह उनकी लेखनी भी अविश्राम गति से चलती रही।

'कार्ल मार्क्स'–युद्ध के प्रारंभिक महीनों में ग्रांट के विश्व-शब्द-कोश के लिए लेनिन ने 'कार्ल मार्क्स' शीर्षक एक लेख मिला। मार्क्स के जीवन के बारे में वताते हुए उन्होंने मार्क्सवाद के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों का विश्लेषण किया। मार्क्स के दार्शनिक सिद्धांतों–भौतिकवाद, द्वंद्ववाद, इतिहास की भौतिकवादी विचारधारा और वर्ग-संघर्ष–की विवेचना करते हुए उन्होंने अपने इस निवंध में मार्क्स के आर्थिक सिद्धांतों, मूल्य, अतिरिक्त-मूल्य, पूँजी का संचयन, पूँजीवादी संचयन का ऐतिहासिक झुकाव, लाभ की औसत दर, भूमि-कर, कृषि में पूँजीवाद का विकास और समाजवाद तथा सर्वहारा वर्ग-संघर्ष के दाँव-पेंच जैसे मूलभूत प्रश्नों का भी सुन्दर विवेचन किया।

1914-15 में वर्न में हीगेल का अध्ययन जारी रखते हुए उन्होंने हीगेल की कृतियों–**तर्क, इतिहास-दर्शन और दर्शन का इतिहास**–पर नोट लिखे और साथ ही अरस्तू, फायरबाख जैसे दूसरे दार्शनिकों की कृतियों का भी अनुशीलन किया। ये नोट और उनके बारे में लेनिन की व्याख्या **दर्शन सम्वन्धी नोट-वुक** के नाम से प्रसिद्ध है। इसको देखने से लेनिन के सैद्धांतिक अध्ययन के वैज्ञानिक ढंग का पता लगता है। हीगेल के ग्रंथों की मूल्यवान बातों को बड़ी सावधानी से चुनते हुए उन्होंने हीगेल के आदर्शवाद के मिथ्या तत्त्व को हर जगह खोलकर रखा है। लेनिन भौतिकवादी द्वंद्वात्मकता के वैज्ञानिक आधार का निर्माण करने और उसको सूत्रबद्ध करने के काम में लगे रहे। वह मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक सिद्धान्तों की एक संक्षिप्त रूपरेखा लिखना चाहते थे। उसी के

लिए यह **दर्शन सम्बन्धी नोट-बुक** उन्होंने तैयार की थी।

वह देख रहे थे कि रूसी क्रान्ति निकट आ रही है। उसमें किसानों को बहुत महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना होगा, यह वह जानते थे। इसलिए किसान-समस्या की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था। उन्होंने किसान-समस्या का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन जारी रखा और पूँजीवादी देशों में इस समस्या का–कृषि की अवस्था और किसानों की हालत का–अध्ययन किया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा दूसरे देशों के कृषि सम्बन्धी आँकड़ों का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। इसके परिणामस्वरूप 1914-15 में उन्होंने **संयुक्त राज्य अमरीका में पूँजीवाद और कृषि** पुस्तक लिखी जो 1917 में जाकर ही प्रकाशित हो सकी। लेनिन की उस पुस्तक का यह पहला भाग था जिसे वह 'कृषि में पूँजीवाद के विकास के कानूनों के बारे में नये आँकड़े' के नाम से लिखनेवाले थे, किन्तु जिसे लिखने का उन्हें मौका नहीं मिला।

क्रान्ति से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न-भिन्न विषयों पर लेनिन का दिमाग किस तरह घूमता था, यह इसी से मालूम हो जायगा कि दर्शन और किसान-समस्या के साथ-साथ वह सैनिक विज्ञान की पुस्तकों का भी बड़ी गम्भीरता से अध्ययन कर रहे थे। 19वीं शताब्दी के इस विषय के महान विचारक क्लौजविज को वह बहुत योग्य मानते थे और उसकी इस बात की सत्यता को स्वीकार करते थे कि "युद्ध दूसरे (हिंसात्मक) साधनों से राजनीति को ही आगे जारी रखना है।" क्लौजविज ने आक्रमण और प्रतिरक्षा के पारस्परिक सम्बन्ध पर जो विचार प्रकट किये हैं, उनकी व्याख्या करते हुए लेनिन ने लिखा था : "प्रतिरक्षा और आक्रमण का भेद खतम हो जाता है" क्योंकि उसने लिखा है, "अपनी भूमि की विदेशी भूमि पर रक्षा करो।"

'साम्राज्यवाद'–19वीं शताब्दी के अन्त में पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद का जो अपना अन्तिम रूप धारण किया उसी का परिणाम प्रथम विश्वयुद्ध था। इसलिए साम्राज्यवाद के अध्ययन की ओर लेनिन का ध्यान जाना स्वाभाविक था। उन्होंने दुनिया की भिन्न-भिन्न भाषाओं में मिलनेवाले साहित्य का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन किया और बड़े आकार की बीस नोटबुकों में (कुल पृष्ठ 640) नोट लिए, जिन्हें पीछे **साम्राज्यवाद की नोटबुकें** के नाम से प्रकाशित किया गया।

इन्हीं नोट-बुकों के आधार पर लेनिन ने **साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था** 1916 के जून में लिखकर समाप्त की। लेनिन की यह कृति मार्क्सीय साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों में है। मार्क्स ने अपने **कपिताल** (पूँजी) में पूँजीवाद के आधारों का विश्लेषण किया था। लेनिन के ग्रन्थ को **कपिताल** का ही आगे का भाग समझना चाहिए। उन्होंने बाजारों की इजारेदारी तथा पूँजीवादी तरीके से उद्योग-धन्धों के भारी विकास के वाद की अवस्था का विश्लेषण करके अपने इस ग्रन्थ में सिद्ध किया कि साम्राज्यवाद मरनहाल पूँजीवाद है, कि "साम्राज्यवाद सर्वहारा सामाजिक-क्रान्ति का आरम्भ-काल है।" लेनिन ने अपने इस ग्रन्थ में साम्राज्यवाद की यह व्याख्या की :

> "साम्राज्यवाद पूँजीवाद के विकास की वह अवस्था है जिसमें इजारेदारियाँ और महाजनी पूँजी अपनी प्रधानता स्थापित कर लेती हैं; जिसमें पूँजी का निर्यात साफ तौर से महत्त्व प्राप्त कर लेता है; जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टें आपस में संसार का विभाजन आरम्भ करती हैं; और जिसमें महान पूँजीवादी राज्यों के बीच पृथ्वी के सारे भूभाग का बँटवारा पूरी तौर से कर लिया जाता है।"

लेनिन ने बतलाया कि राजनीति के क्षेत्र में साम्राज्यवाद की अपनी विशेषता है–जनवाद को छोड़कर राजनीतिक प्रतिक्रियावाद को अपनाना। लेनिन ने काट्स्की के 'चरम साम्राज्यवाद' के सिद्धान्त का पूरी तरह खण्डन किया। काट्स्की ने माना था कि साम्राज्यवाद के भीतर पूँजीवादी देशों का आपस में समझौता करना सम्भव है, इसके द्वारा युद्ध को सदा के लिए बन्द किया जा सकता है और सारे विश्व में संगठित उत्पादन की नींव डाली जा सकती है। बूढ़े काट्स्की ने अपने इस सिद्धान्त द्वारा आशा प्रकट की थी कि अब शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा पूँजीवाद के पारस्परिक विरोधों को हटाया जा सकता है और बिना सर्वहारा क्रान्ति के, सुधारों द्वारा अपने लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है।

लेनिन ने साम्राज्यवाद के विकास की विवेचना की और बताया कि पूँजीवाद की इस अवस्था की विशेषताएँ

ये हैं : (1) इजारेदारी पूँजीवाद, (2) परजीवी या विनाशोन्मुख पूँजीवाद; और (3) मरनहाल पूँजीवाद। साथ ही उन्होंने यह भी बतलाया कि मरनहाल पूँजीवाद का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि अब पूँजीवाद अपने-आप खतम हो जायगा।

इस काल में जनता का बर्वर शोषण भयंकर रूप धारण कर लेता है जिससे सर्वहारा का असंतोष बढ़ता है और हर देश में क्रान्तिकारी शक्तियाँ परिपक्व होती हैं। साथ ही, उपनिवेशों तथा आश्रित देशों की करोड़ों जनता का बेलगाम शोषण और उत्पीड़न भी बढ़ता है जिससे वहाँ साम्राज्यशाही के खिलाफ मुक्ति-संग्राम की शक्तियाँ ताकतवर बनती हैं।

साम्राज्यवाद का अध्ययन करते हुए लेनिन ने पूँजीवाद के असमान राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के सिद्धान्त का पता लगाया : पूँजीवाद का विकास इस समय अत्यन्त असमान तथा परस्पर-विरोधी स्वभाव का होता है। बाजारों तथा पूँजी लगाने के क्षेत्रों–उपनिवेशों एवं कच्चे माल के स्रोतों–को लेकर साम्राज्यवादी शक्तियों में जो घोर प्रतिद्वंद्विता पैदा होती है, वह संसार के फिर से बँटवारे के लिए समय-समय पर साम्राज्यवादी युद्धों को अनिवार्य बना देती है। साम्राज्यवादी युद्ध साम्राज्यवाद की शक्ति का क्षय करके, साम्राज्यवादी मोर्चे को उसके सबसे निर्बल स्थान पर तोड़ना सम्भव बना देता है। इसी से लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मार्क्स-एंगेल्स का पुराना सूत्र–अर्थात् यह कि समाजवाद किसी एक देश में विजयी नहीं हो सकता और उसके लिए सभी आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों में एक साथ सर्वहारा क्रांति की विजय होनी आवश्यक है–अब नयी ऐतिहासिक परिस्थिति के अनुकूल नहीं है। उसकी जगह लेनिन ने नया सूत्र उपस्थित किया : समाजवाद किसी एक देश में भी विजयी हो सकता है; एक ही साथ सभी देशों में समाजवाद की विजय असम्भव है। यह हमारे युग की सबसे बड़ी खोज थी। इस नतीजे पर पहुँचकर ही लेनिन ने एक देश में समाजवाद की विजय प्राप्त करने में सफलता पायी और इसी के अनुसार स्तालिन ने एक देश में सफलतापूर्वक समाजवादी नवनिर्माण किया।

लेनिन ने अपने इस सिद्धांत को पहले-पहल अगस्त 1915 में 'संयुक्त राष्ट्र यूरोप का नारा' नामक लेख में उपस्थित किया था :

> "असमान आर्थिक तथा राजनीतिक विकास पूँजीवाद का परम विधान है। इसलिए समाजवाद की विजय पहले कुछ या केवल एक पूँजीवादी देश में भी सम्भव है। विजयी सर्वहारा अपने देश के पूँजीवादियों को खत्म करके अपने समाजवादी उत्पादन का संगठन करने के बाद बाकी पूँजीवादी जगत का सामना करेगा, दूसरे देशों के उत्पीड़ित वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट करेगा, शोषक वर्गों तथा उनके राज्यों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करेगा और आवश्यकता पड़ने पर हथियारबन्द शक्ति के रूप में भी मैदान में उतरेगा।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मार्क्स और एंगेल्स के पुराने सूत्र को छोड़कर लेनिन ने मार्क्सवाद के पथ को नहीं छोड़ा, क्योंकि हर वक्त की बदलती स्थिति के अनुसार अपनी कार्यनीति को बदलना मार्क्सवाद का एक मौलिक सिद्धांत है। उसी के अनुसार नये सूत्र का आविष्कार करके लेनिन ने व्यवहार द्वारा उसी की सत्यता सिद्ध कर दी।

6. अभियान की तैयारी

जिमिरवाल्ड-कान्फ्रेंस में वामपक्षी समाजवादियों को एकताबद्ध करने का जो काम लेनिन ने शुरू किया था, उसे आगे भी उन्होंने जारी रखा।

द्वितीय जिमिरवाल्ड-कान्फ्रेंस (1916 ई.)–अप्रैल, 1916 में स्विट्जरलैंड के किन्थल गाँव में यह द्वितीय कान्फ्रेंस हुई। इस कान्फ्रेंस में वामपक्ष दक्षिणपक्ष से ज्यादा मजबूत रहा और कान्फ्रेंस के निर्णयों पर पहले की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालने में सफल हुआ। इसमें लेनिन ने शांतिवाद की आलोचना और इंटर्नेशनल-समाजवादी ब्यूरो की कड़ी निन्दा का प्रस्ताव पास कराया। अवसरवादियों से विच्छेद करने पर जोर देते हुए मार्च, 1916 में लेनिन ने लिखा था : "वे सभी लोग सर्वहारा के शत्रु हैं जो ऐसा करने में हिचकिचा रहे हैं। उनके सामने हरगिज झुकना नहीं होगा।" शांतिवादियों की नीति लेनिन की दृष्टि में झूठी आशा पैदा करने के सिवा और

कुछ नहीं थी। वह 'निःशस्त्रीकरण' के नारे को भी बेकार समझते थे। इसकी जगह लेनिन ने कहा कि युद्ध दो प्रकार के होते हैं : न्यायपूर्ण और अन्यायपूर्ण। बोल्शेविकों और सर्वहारा क्रांतिकारियों को सभी युद्धों का नहीं, बल्कि आक्रमणात्मक और अन्यायपूर्ण युद्धों का विरोध करना चाहिए। इन युद्धों का उद्देश्य होता है, दूसरे लोगों को जीतकर दास बनाना। लेकिन मुक्ति के युद्ध—जैसे दास बनाने के लिए प्रयत्न करनेवालों के विरुद्ध लोगों का लड़ाई करना, पूँजीवाद के जुए से लोगों को मुक्त करने के लिए लड़ना, साम्राज्यवाद के जुए से उपनिवेशों और परतन्त्र देशों की मुक्ति के लिए युद्ध करना न्यायपूर्ण युद्ध हैं। बोल्शेविकों को इन युद्धों का समर्थन करना चाहिए।

पुरोहितों और निम्न-मध्यवर्गियों के शान्तिवाद को खोखला बतलाते हुए लेनिन ने कहा कि पूँजीवाद के रहते लड़ाई के खतम हो जाने का स्वप्न देखना बिल्कुल बेकार है। युद्ध तभी सदा के लिए बन्द हो सकते हैं जब पूँजीवाद को खतम कर सारी दुनिया में समाजवाद की विजय हो जाय। सर्वहारा को शांति और अहिंसा का उपदेश देनेवालों के तर्कों की धज्जियाँ उड़ाते हुए लेनिन ने लिखा था :

> "जो उत्पीड़ित वर्ग हथियारों का इस्तेमाल सीखने की, हथियारों पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता, वह गुलामों जैसे व्यवहार के ही योग्य है।"

प्रत्येक वर्ग-समाज में उत्पीड़क वर्ग सदा हथियारबन्द रहता है। इसलिए जो शोषण के जुए को उतार फेंकना चाहते हैं, उन्हें हथियार लेकर अपने शोषकों के विरुद्ध भयंकर संघर्ष करना होगा। हमारा नारा होना चाहिए :

> "पूँजीवादियों को पराजित करने, उनके स्वत्वों को छीनने तथा उन्हें निहत्था करने के लिए सर्वहारा को हथियारबन्द करो !"

लेनिन ने बुखारिन, पेताकोफ, रादेक जैसों के चरम-वामपंथी—किन्तु वस्तुतः चरम-अवसरवादी—इस दावे का भी घोर विरोध किया कि साम्राज्यवाद के भीतर सर्वहारा को जनतांत्रिक उद्देश्यों के लिए नहीं लड़ना चाहिए।

भावी क्रान्ति—क्रान्ति आगे बढ़ती चली आ रही है, इसे लेनिन पहले ही से साफ देख रहे थे। 1916 ई. की शरद् में ही उन्होंने लिखा था :

> "यूरोप में समाजवादी क्रांति सभी तरह के उत्पीड़ित तथा असंतुष्ट तत्त्वों की ओर से सार्वजनिक संघर्ष का विस्फोट छोड़ और कुछ नहीं हो सकती। निम्न-मध्यवर्ग और पिछड़े कमकरों के कुछ भाग भी इसमें अनिवार्यतः भाग लेंगे। उनके भाग लिये बिना सामूहिक संघर्ष असम्भव है, कोई क्रान्ति सम्भव नहीं है। यह भी अवश्यम्भावी है कि ये लोग आंदोलन में अपनी मिथ्या धारणाओं, अपनी प्रतिक्रियावादी कल्पनाओं, अपनी कमजोरियों और भूलों को भी अपने साथ लायेंगे। लेकिन, वस्तुरूपेण वे पूँजी पर आक्रमण करेंगे; और क्रान्ति के वर्ग-चेतन हिरावल—अग्रगामी सर्वहारा—विविधतापूर्ण एवं बिखरे हुए, बहुरंगी और देखने में असम्बद्ध सामूहिक संघर्ष के वस्तु-सत्य को व्यक्त करते हुए इस संघर्ष को संयुक्त करके और संचालित करके सत्ता पर कब्जा करने, बैंकों पर अधिकार करने, सभी लोगों की घृणा की पात्र (भिन्न-भिन्न कारणों से) ट्रस्टों को खतम करने तथा अन्य अधिनायकत्वपूर्ण कदम उठाने में सफल होंगे, जो कुल मिलाकर पूँजीपतियों को सत्ता से हटाना और समाजवाद की विजय होगा। लेकिन··इससे निम्न-मध्यवर्गी मैल तुरन्त 'धुल' नहीं जायगा।"

लेनिन ने जातियों की समस्या पर अपने विचारों को फिर स्पष्ट रूप में रखा और आत्मनिर्णय तथा अलग होकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के जातियों के अधिकार को स्वीकार करने पर जोर दिया। उन्होंने बताया कि साम्राज्यवाद के युग में विश्व की जनता दो असमान भागों में बँटी हुई है। एक भाग में उत्पीड़क राष्ट्रों का छोटा-सा गुट है और दूसरे में उपनिवेशों, अर्ध-उपनिवेशों और परतंत्र देशों की उत्पीड़ित जनता है। मार्क्स-एंगेल्स के नारे को फिर से दोहराते हुए लेनिन ने कहा : "वह राष्ट्र कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता जो स्वयं दूसरे राष्ट्रों का उत्पीड़न करता है।" मार्च 1916 में लेनिन ने 'समाजवादी क्रान्ति और जातियों का आत्म-निर्णय का अधिकार' के नाम से एक निबन्ध लिखा। उसी साल शरद् में उन्होंने 'आत्म-निर्णय की बहस का सार' नाम का भी एक

लेख लिखा। इसमें उन्होंने जातियों के सर्वसत्ता-सम्पन्न होने के अधिकार पर जोर दिया।

कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल—कात्ट्स्की, ग्रिम तथा दूसरों ने जिमिरवाल्ड और किन्थल के घोषणापत्रों पर हस्ताक्षर किये थे। लेकिन अब वे अवसरवादियों से समझौता और मैत्री करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसपर लेनिन ने ऐलान किया कि "जिमिरवाल्ड (इंटर्नेशनल) साफ तौर से अब दिवालिया हो गयी है।" जिमिरवाल्ड के पतन के बाद लेनिन को नये इंटर्नेशनल की आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने उसके लिए अपील की।

परिस्थितियों का लेखा-जोखा—एक बार फिर लेनिन ने क्रान्ति और राज्य के बारे में मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों का गम्भीर अध्ययन किया। जो सामग्री उन्होंने जमा की, वह बाद में **राजसत्ता और क्रान्ति** के नाम से प्रकाशित हुई।

अपनी इस कृति में लेनिन ने लिखा कि राज्य के सिद्धांत के सम्बन्ध में 1905 ई. की रूसी क्रांति की महान् देन यह थी कि पुराने, पके-पकाये राज्य और पार्लमेण्ट्री (संसदीय) यन्त्रों की जगह उसने 'कमकर प्रतिनिधियों की सोवियतों और उनके प्रतिनिधियों' को स्थापित किया।

22 जनवरी, 1917 को 'खूनी इतवार' की बरसी मनाने के समय जूरिच के तरुण कमकरों की एक सभा हुई। इसमें 1905 ई. की क्रांति पर भाषण देते हुए लेनिन ने कहा :

> "आज यूरोप में जो श्मशान जैसी नीरवता छाई हुई है, उससे हमें धोखा नहीं खाना चाहिए। यूरोप क्रांति के लिए उद्यत हो रहा है। साम्राज्यवादी युद्ध की राक्षसी भीषणता और जीवनोपयोगी वस्तुओं की भारी महँगी के कारण जो कष्ट हो रहा है, वह सभी जगह क्रान्तिकारी भावनाओं को पैदा कर रहा है। शासक वर्ग—पूँजीपति वर्ग—अपने पिट्ठुओं, यानी सरकारों के साथ अन्धी गली की ओर अधिकाधिक बढ़ते जा रहे हैं जहाँ से बिना जबर्दस्त विस्फोट के वे अपने को कभी बाहर नहीं निकाल सकते।"

उक्त भाषण के एक महीने से थोड़े ही दिन बाद साम्राज्यवादी श्रृंखला की सबसे कमजोर कड़ी—रूस में क्रान्ति फूट पड़ी।

फरवरी क्रान्ति—1917 के साल की शुरुआत ही 9 जनवरी की हड़ताल से हुई। हड़ताल के दौरान पेत्रोग्राद (जर्मनी के प्रति अपने विरोधी भाव को प्रकट करते हुए रूसियों ने जर्मन शब्द 'बुर्ग' को निकालकर उसकी जगह रूसी शब्द 'ग्राद' जोड़कर अब राजधानी का नाम पेत्रोग्राद कर दिया था), मास्को, बाकू और निज्नी-नवगरोद में प्रदर्शन हुए।

18 फरवरी को पेत्रोग्राद के पुतिलोव कारखाने में हड़ताल शुरू हुई। कारखाने के मैनेजर ने धमकी दी कि हड़ताली मजदूरों को निकाल बाहर करेगा। 22 फरवरी को कारखाना बन्द रहा। दूसरे दिन पुतिलोव कारखाने के 20,000 मजदूरों ने शहर में प्रदर्शन किया। 23 फरवरी को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस था। बोल्शेविक पार्टी ने मजदूरों को हड़ताल पर निकल आने का नारा दिया। लगभग 90,000 मजदूरों ने औजार रख दिये। दिन में पेत्रोग्राद के आसपास का इलाका प्रदर्शनकारियों के हाथ में था। इनमें अधिकांश महिलाएँ थीं जो राशन की दूकानें छोड़ प्रदर्शन में भाग लेने के लिए सिमट आयी थीं।

24 फरवरी को प्रदर्शन और भी जोर-शोर से हुआ। लगभग दो लाख मजदूर हड़ताल में शामिल हुए।

25 फरवरी को जगह-जगह प्रदर्शन और पुलिस से टक्करें हुईं। मजदूरों के झण्डों पर लिखा था : "जार का नाश हो !", "युद्ध मुर्दाबाद !", "हमें रोटी दो !"

सर्वहारा को 1905 की क्रांति के सबक भूले नहीं थे। वे जानते थे कि फौज को अपनी तरफ लाना जरूरी है। मजदूर, विशेषकर मजदूर औरतें फौजियों को घेर लेतीं। उनकी संगीनें पकड़कर वे उनसे अपील करतीं कि क्रान्ति को, अपने भाइयों को, खून में न डुबाओ।

26 फरवरी को पावलोव्स्की पलटन की रिजर्व बटालियन की चौथी कम्पनी ने अपनी बन्दूकों का मुँह उन पुलिस घुड़सवारों के जत्थों की तरफ मोड़ दिया जो मजदूरों से टक्कर ले रहे थे।

26 फरवरी को केन्द्रीय समित के ब्यूरो ने जनता का आह्वान किया कि वह जारशाही के खिलाफ हथियारबन्द संघर्ष जारी रखे।

27 फरवरी को पेत्रोग्राद की फौज ने मजदूरों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। विद्रोह में शामिल होनेवाले फौजियों की संख्या शाम तक 60 हजार तक पहुँच गयी।

मजदूरों और सिपाहियों ने जार के मंत्रियों और जनरलों को गिरफ्तार करना तथा क्रान्तिकारियों को जेल से रिहा करना शुरू कर दिया।

पेत्रोग्राद में क्रान्ति की विजय का दूसरे शहरों और युद्ध के मोर्चों पर भी असर पड़ा। वहाँ भी मजदूर और सिपाही जार के अफसरों को हटाने लगे।

फरवरी की पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति विजयी हुई।

लौटने की तैयारी—लेनिन को पेत्रोग्राद के विद्रोह की विजय की खबर पहले-पहल मार्च के आरम्भ में मिली। अब वह सब कामों को छोड़ हरेक महत्त्वपूर्ण घटना का मूल्यांकन करने तथा रूस में लौटने के लिए अधीर हो गये। 4 मार्च, 1917 को उन्होंने रूस की क्रान्तिकारी घटनाओं का विश्लेषण करते हुए अपने एक निबन्ध की रूपरेखा तैयार की। अस्थायी सरकार के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए लेनिन ने कहा कि यह पूँजीवादी साम्राज्यवादी सरकार है जिसका लक्ष्य लुटेरों के इस युद्ध को अन्त तक जारी रखना है। कमकर व सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों को उन्होंने 'कमकर सरकार का गर्भांकुर' और उन तमाम गरीबों के—90 प्रतिशत जनता के—हितों का प्रतिनिधि वतलाया, जो शान्ति, रोटी और स्वतन्त्रता के लिए जद्दोजहद कर रहे थे।

बोल्शेविक पार्टी के रुख के बारे में लेनिन ने उसी समय लिखा था कि "हमारी पार्टी का अस्तित्व स्वतन्त्र और पृथक रहेगा। किसी भी दूसरी पार्टी से मेल नहीं करना—यह मेरा अल्टीमेटम है। इसके विना सर्वहारा का जनवादी क्रान्ति से कम्यून तक पहुँचना असम्भव होगा। और मैं, इसे छोड़ और किसी दूसरे उद्देश्य की सेवा नहीं करूँगा।"

लेनिन स्विट्जरलैंड में पिंजड़े में बन्द शेर की तरह तड़फड़ा रहे थे। "ऐसे समय में यहाँ रहना हम सबके लिए कैसी साँसत है!" लेकिन, स्विट्जरलैंड से निकलकर रूस पहुँचना आसान काम नहीं था। अंतांत देशों (जर्मनी-आस्ट्रिया) ने अपने भीतर से जाने की आज्ञा देने से इन्कार कर दिया था। यह भी स्पष्ट था कि इंग्लैंड, साम्राज्यवादी युद्ध के भयंकर शत्रु लेनिन को, स्विट्जरलैंड छोड़ने का मौका नहीं दे सकता।

14

रूस लौटे

1. लौटने में कठिनाइयाँ

लेनिन हताश नहीं हुए। उन्होंने रूस जाने के लिए रास्ता निकालने का प्रयत्न जारी रखा। अन्त में, स्विस मजदूर आन्दोलन के कुछ प्रमुख व्यक्तियों के प्रयत्न से निम्न शर्तों पर जर्मनी ने लेनिन को अपनी जमीन पर से देश लौटने की इजाजत दी : जिस गाड़ी में लेनिन और दूसरे राजनीतिक निर्वासित यात्रा करेंगे, उसमें उन्हें अतिभूभागीय अधिकार होगा; मुसाफिरों के पासपोर्ट तथा सामान की जाँच नहीं की जायगी; उनकी अनुमति के बिना कोई आदमी गाड़ी में दाखिल नहीं होगा। दूसरी तरफ निर्वासितों को भी मंजूर करना होगा कि देश पहुँचकर वे संख्या में अपने जितने ही रूस में नजरवन्द आस्ट्रियनों और जर्मनों की रिहाई के लिए आन्दोलन करेंगे।

स्विट्जरलैंड छोड़ते समय लेनिन ने 'स्विस कमकरों को विदाई-पत्र' लिखा। यह विदाई-पत्र बोल्शेविक निर्वासितों की एक सभा में पढ़ा और स्वीकृत किया गया। इस पत्र में लेनिन ने रूस के सर्वहारा के करणीयों को बतलाते हुए कहा कि वोल्शेविक पार्टी तुरन्त शान्ति और सभी उपनिवेशों, सभी उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति का प्रस्ताव रखेगी। पत्र के अंत में उन्होंने निम्न शब्द लिखे थे : "साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में परिवर्तित करना एक वास्तविकता वनती जा रही है। यूरोप में आरम्भ हो रही सर्वहारा क्रान्ति—जिन्दावाद !"

9 अप्रैल, 1917 को लेनिन कुछ अन्य राजनीतिक निर्वासितों सहित बर्न से रवाना हुए। जर्मनी से गुजरते हुए, 14 अप्रैल को सवेरे वह तटस्थ देश स्वीडन के स्टाकहोम नगर में पहुँचे। उसी दिन शाम को उन्होंने रूस के लिए प्रस्थान कर दिया। स्वीडन से वह फिनलैंड में दाखिल हुए, जो उस समय जारशाही के आधीन था। रेल द्वारा फिनलैंड पार करते हुए लेनिन ने सिपाहियों से बातचीत की, उनके मनोभावों को जानने के लिए कितने ही प्रश्न पूछे और 'भूमि, स्वतंत्रता तथा युद्ध की समाप्ति' के सम्बन्ध में वातचीत की।

2. स्वागत

16 अप्रैल को लेनिन बेलो-ओस्त्रोफ स्टेशन पर पहुँचे। यहीं कमकरों से उनका पहला अत्यन्त उत्साहवर्धक मिलन हुआ। वहाँ सेस्तोरेत्स्क के कमकरों ने और स्तालिन के नेतृत्व में पेत्रोग्राद के कमकरों के प्रतिनिधि-मंडल ने, लेनिन का जबर्दस्त स्वागत किया। वहाँ उपस्थित एक कमकर ने इस मीटिंग के बारे में बाद में बतलाया था :

> "जैसे ही इलिच ने गाड़ी से बाहर पैर रखा, मैंने बड़ी ऊँची आवाज में चिल्लाकर कहा : 'इलिच की जय !' और मैं उनके एक पैर से इस तरह लिपट गया कि वह अपने को न सँभाल सके और उन्होंने हाथों को मेरी गर्दन में लपेट लिया। मेरे पासवाले कुछ और साथियों ने भी पकड़ा और हमने उन्हें अपने कन्धों पर उठा लिया। जब हम ऐसा कर रहे थे उसी समय उन्होंने कहा : 'सँभाल के, भाई ! क्या इरादा है तुम लोगों का !'" लेकिन हम उन्हें कन्धे के ऊपर उठाये लिये चले। हमारी तरफ आनेवाले लोग हमें रास्ता देने के लिए अलग खड़े हो गये (प्लेटफार्म पर हमारे सिवा बहुत तरह के लोगों की भारी भीड़ लगी हुई थी)। हमने इलिच को स्टेशन ले जाकर जमीन पर खड़ा किया। वह वहाँ खड़े थे और उनके चारों तरफ खड़े हम कमकर मुँह से एक शब्द नहीं निकाल सके। आनन्द के मारे मानो हम स्तम्भित हो गये थे। मुझे अब भी याद है कि मैं अपने से पूछ रहा था : क्या सपना है ? क्या यह व्लादिमिर इलिच ही मटमैली पोशाक पहने बेलो-ओस्त्रोफ के लकड़ीवाले फर्श पर खड़े हैं ?
>
> "यह दृश्य वर्णनातीत था। मैंने देखा, इलिच भी बहुत भावावेश में आ गये हैं। लेकिन यह सब कुछ-एक क्षण तक ही रहा। उन्होंने जल्दी ही अपने को सँभाला और फिर पहले एक को, फिर दूसरे और तीसरे को छाती से लगाकर चूमा। हमारे एक साथी ने सेस्तोरेत्स्क के कमकरों की ओर से उनके स्वागत में भाषण दिया।"

16 अप्रैल की रात को 11 बजकर 10 मिनट पर लेनिन पेत्रोग्राद पहुँचे। राजधानी का फिनलैंड स्टेशन, स्टेशन का हाता, पास की सारी सड़कें लाल झंडे लिये हजारों कमकरों, सैनिकों और नौसैनिकों से भरी थीं। ट्रेन से लेनिन के बाहर निकलते ही भीड़ में एक अवर्णनीय जोश फैल गया।

सर्वहारा ने अपने नेता का जबर्दस्त हर्षध्वनि के साथ अभिनन्दन किया। लेनिन को भी अपने भावों को सँभालना मुश्किल हो गया। कमकर उन्हें कन्धे तक ऊपर उठाकर बड़े विश्राम-घर ले गये। यहाँ पर मेन्शेविक नेता उनके स्वागत में भाषण देना चाहते थे। लेकिन, लेनिन उनकी उपेक्षा करके बाहर हाते में चले गये। बाहर कमकर, सैनिक और नौसैनिक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

हाते में एक बख्तरबन्द मोटर खड़ी थी। लेनिन उसपर चढ़ गये और उन्होंने अपना प्रसिद्ध भाषण देते हुए जनता का समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिए लड़ने का आह्वान किया। अपने भाषण को उन्होंने इस ऐतिहासिक नारे के साथ समाप्त किया : "समाजवादी क्रान्ति जिन्दावाद !"

दीर्घकालीन निर्वासन के बाद पेत्रोग्राद के सर्वहारा और सैनिकों के सामने उनका यह पहला व्याख्यान था। उसी बख्तरबन्द मोटर पर लेनिन स्टेशन से बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय कमिटी के हेड-क्वार्टर को चले। पीछे-पीछे कमकर जनता का एक विशाल जुलूस चल रहा था। सर्चलाइटें सड़क पर रोशनी करती चल रही थीं और सड़क के दोनों ओर मजदूर नर-नारी पाँति बाँधे खड़े थे। लेनिन का आगमन क्रांति और बोल्शेविक पार्टी के लिए जबर्दस्त महत्त्व रखता था। दुनिया की जो अद्भुत क्रांति अब घटित होने जा रही थी, उसके

लिए लेनिन जैसा अद्भुत पुरुष ही आवश्यक था। क्रान्ति के नेता ने बागडोर अपने हाथ में सँभाली। उसी रात उन्होंने अपने मित्रों और सहकारियों से आगे के काम के बारे में अपने विचारों को बतलाया और उनकी राय ली। वस्तुतः बेलो-ओस्त्रोफ स्टेशन से ही वह स्तालिन तथा अपने दूसरे सहकारियों से हर तरह की जानकारी प्राप्त करते चले आये थे।

3. अप्रैल-थीसिस

16 अप्रैल के बाद 17 अप्रैल आया। उसी दिन सुबह तौरिदा प्रासाद में मुख्य कार्यकर्ताओं की एक बैठक में लेनिन ने युद्ध और क्रान्ति के सम्बन्ध में अपना भाषण दिया और पीछे अखिल-रूसी सोवियत कान्फ्रेंस के बोल्शेविक और मेन्शेविक प्रतिनिधियों की एक बैठक में अपना निबन्ध पढ़ा। यही प्रसिद्ध 'अप्रैल-थीसिस' थी, जिसने पार्टी का नया पथ-प्रदर्शन किया। लेनिन ने बतलाया कि आज की स्थिति की विचित्रता है दोहरी राज्यशक्ति का अस्तित्व में आना; अस्थायी सरकार के साथ-साथ सोवियतों के रूप में आज एक दूसरी सरकार भी यहाँ मौजूद है। अस्थायी सरकार पूँजीवादियों के अधिनायकत्व का शासन-यन्त्र है। सोवियतें सर्वहारा और किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व का शासन-यन्त्र हैं। यह दोहरी राज्यशक्ति क्रांति के विकास की संक्रान्तिकालीन अवस्था को बतलाती है, कारण कि दोहरी राज्यशक्ति जैसी कोई चीज देर तक नहीं टिक सकती। "रूस की वर्तमान स्थिति की विशेषता यह है कि वह क्रांति के प्रथम अवस्था से दूसरी अवस्था में संक्रमण की द्योतक है। क्रांति की पहली अवस्था में सर्वहारा की अपर्याप्त वर्ग-चेतना और संगठन के कारण सत्ता पूँजीपतियों के हाथ में चली गयी। दूसरी अवस्था में सत्ता सर्वहारा और गरीबी के स्तर के किसानों के हाथों में आयेगी।" थीसिस में लेनिन ने सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया था कि सारी राज्यशक्ति को सोवियतों के हाथ में पहुँचाकर एक सोवियत गणराज्य की स्थापना की जाय।

अब तक पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के समय समाज के राजनीतिक संगठन का सबसे अनुकूल रूप संसदीय जनतांत्रिक गणराज्य माना जाता था। लेकिन, पेरिस कम्यून के अनुभवों का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करते हुए और 1905 की रूसी क्रांति तथा 1917 की पूँजीवादी क्रांति के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए, लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सोवियत गणराज्य समाज का कहीं अधिक ऊँचा राजनीतिक संगठन है। सर्वहारा अधिनायकत्व का राज्य सोवियतों के रूप में होगा। लेनिन ने तुरंत सोवियतों के इस महत्त्व को समझा। वह जानते थे कि पूँजीवादी शासन-यन्त्र को ध्वस्त करके उसकी जगह नये शासन-यन्त्र को कायम किये बिना सर्वहारा क्रान्ति अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकती। पुराने स्वार्थों के साथ उन्हें दया-माया नहीं दिखलानी थी। इसलिए वह भारत के आज के नेताओं की तरह अंग्रेजों की पकी-पकाई नौकरशाही से काम लेने जैसी भूल नहीं कर सकते थे। यदि लेनिन ने यह महत्त्वपूर्ण कदम आरंभ में ही न उठाया होता, तो सर्वहारा की हार होती और उसके दुश्मन विजयी होते। लेनिन ने उसी समय नारा दिया : "अस्थायी सरकार की सहायता मत करो !" लेकिन साथ ही, लेनिन ने पार्टी को सावधान भी किया कि अभी अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंकने का समय नहीं आया है, क्योंकि अभी उसे सोवियतों का समर्थन प्राप्त है। सोवियतों में अभी मेन्शेविकों तथा समाजवादी-क्रांतिकारियों का प्राधान्य था। लेनिन ने बोल्शेविकों को बतलाया कि इन पार्टियों की विश्वासघाती नीति और अवसरवादिता को जनता के सामने नंगा करते हुए उन्हें उसके समर्थन से वंचित करना और सोवियतों के बहुमत को अपने पक्ष में करना हमारा मुख्य कर्तव्य है।

4. कम्युनिस्ट पार्टी (1917 ई.)

पार्टी के सम्बन्ध में लेनिन ने सुझाव रखा कि पार्टी का कार्यक्रम और नाम बदल दिया जाय। 'सामाजिक-जनवादी पार्टी'–यह नाम द्वितीय इन्टर्नेशनल से सम्बद्ध पार्टियों और रूसी मेन्शेविकों के समाजवाद के प्रति विश्वासघात और अवसरवादिता के कारण इतना बदनाम हो चुका था कि उसे और कायम रखना ठीक नहीं था। लेनिन ने प्रस्ताव रखा कि बोल्शेविक पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी रखा जाय, क्योंकि बोल्शेविक पार्टी का अंतिम

लक्ष्य कम्युनिज्म (साम्यवाद) को स्थापित करना है। मार्क्स और एंगेल्स ने भी अपनी पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी रखा था।

अन्त में, लेनिन ने तृतीय (कम्युनिस्ट) इन्टर्नेशनल को स्थापित करने का सुझाव रखा।

मई, 1938 में क्रेमलिन में भाषण देते हुए स्तालिन ने लेनिन के 'अप्रैल थीसिस' और लेनिन की नीति के बारे में कहा था :

> "मैं महान वैज्ञानिकों में से एक के बारे में–जो कि आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ पुरुष भी था–कुछ कहना चाहता हूँ। यहाँ मेरा मतलब लेनिन, हमारे गुरु, हमारे शिक्षक से है। 1917 की याद कीजिये। रूस के सामाजिक विकास और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के वैज्ञानिक विश्लेषण से लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मौजूदा परिस्थिति से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता था–रूस में समाजवाद की विजय। उस समय के कितने ही वैज्ञानिकों को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ था। लेकिन, लेनिन प्रवाह के विरुद्ध...जाने से नहीं डरते थे। और विजय लेनिन की हुई।"

जब 'अप्रैल-थीसिस' प्रकाशित हुई, तो पूँजीवादियों, मेन्शेविकों तथा समाजवादी-क्रांतिकारियों ने सिर पर आसमान उठा लिया। लेनिन के विरुद्ध उन्होंने बदतमीजी का तूफान खड़ा कर दिया। वह उन्हें मारने तक की धमकी देने लगे। पूँजीवादी पत्रों ने खुलेआम उनकी हत्या के लिए लोगों को ललकारा।

लेकिन, लेनिन ने तो बचपन ही से निर्भयता का पाठ पढ़ा था। वह कब डरनेवाले थे। उन्हें अटूट विश्वास था कि भविष्य बोल्शेविकों के हाथ में है। 'अप्रैल-थीसिस' से जनता इस नतीजे पर पहुँची कि बोल्शेविक तुरंत जनतांत्रिक संधि के पक्ष में हैं, कि वे तुरंत जमींदारी जब्त करने तथा खाद्य की कमी एवं आर्थिक दुर्व्यवस्था को हटाने के लिए उग्र उपाय करने को तैयार हैं। यही सबकुछ रूस के कमकर चाहते थे।

पेत्रोग्राद पहुँचने के बाद से ही लेनिन ने बोल्शेविक पार्टी के संगठन के कामों में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। उनकी देखरेख में पेत्रोग्राद के पार्टी संगठनों का एक सम्मेलन अप्रैल में हुआ। इसने लेनिन का समर्थन करते हुए 'अप्रैल-थीसिस' को स्वीकार किया।

5. स्थिति का पर्यवेक्षण

जिस समय उपरोक्त सम्मेलन हो रहा था, उसी समय अस्थायी सरकार की साम्राज्यवादी नीति से क्षुब्ध होकर पेत्रोग्राद के कमकरों और सैनिकों ने उसका विरोध करना शुरू किया। इससे पूँजीवादी घबड़ाने लगे। इन दिनों–3, 4 और 5 मई को–केन्द्रीय कमिटी की बैठक प्रति दिन हुआ करती थी। पेत्रोग्राद पार्टी संगठन के मुट्ठीभर चरमपंथी जोर दे रहे थे कि अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंका जाय। लेनिन ने उनका जबर्दस्त विरोध करते हुए कहा कि अभी उसके लिए अनुकूल स्थिति पैदा नहीं हुई है। अनुकूल स्थिति पैदा करने के लिए हमें जान लड़ाकर काम करना होगा और अस्थायी सरकार के साम्राज्यवादी मंसूबों को नंगा करके जनता को अपने पक्ष में लाना होगा।

'अप्रैल'-कान्फ्रेंस (1918 ई.)–पार्टी संगठन को और भी मजबूत करने के लिए लेनिन ने पार्टी कान्फ्रेंस बुलाना आवश्यक समझा। इसकी तैयारी उन्होंने बड़ी सावधानी से की। यह कान्फ्रेंस बोल्शेविक पार्टी की सातवीं (अप्रैल) कान्फ्रेंस के नाम से प्रसिद्ध है, यद्यपि वह 7 मई को पेत्रोग्राद में आरंभ हुई थी।* लेनिन कान्फ्रेंस के अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीन रिपोर्टें पेश कीं और एजेंडा में रखे सभी प्रश्नों पर भाषण दिये।

कान्फ्रेंस में लेनिन ने अपने भाषणों में क्रांति-सम्बन्धी सभी मौलिक प्रश्नों का जवाब दिया तथा बोल्शेविकों के दाँव-पेंचों को बतलाया। उन्होंने कहा कि समाजवादी क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न वर्गों को

---

* अभी तक रूस में पुराना पंचांग चला आता था, जो नये या अन्तर्राष्ट्रीय पंचांग से 13 दिन पीछे था। अतः, 7 मई को उस समय 24 अप्रैल कहा जाता था। इसीलिए इस कान्फ्रेंस का नाम अप्रैल कान्फ्रेंस और बाद में 7 नवम्बर को होनेवाली बोल्शेविक क्रांति को अक्तूबर क्रांति कहा जाने लगा था।–ले.

पहचानकर देखना होगा कि कौन हमारे साथ चल सकता है, कौन नहीं। क्रांति के जवर्दस्त नेता और झंडावरदार सर्वहारा रहेंगे। लेकिन, पेरिस-कम्यून के अनुभव से लेनिन जानते थे कि गाँव के गरीवों को साथ लिये बिना वह शत्रुओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न नहीं कर सकते। उन्होंने वतलाया कि जमींदारों के अतिरिक्त गाँव के कुलक (धनी किसान) भी क्रांति के भारी शत्रु हैं। गाँव में उनका वही स्थान है, जो शहरों में पूँजीवादियों का है। वे वस्तुतः गाँव के पूँजीवादी ही हैं। गरीब और मध्यवित्त किसानों को क्रांति की ओर लाना होगा। इसी समय उन्होंने नारा दिया : "सारी शक्ति सोवियतों को दो !"

मेन्शेविकों की ही तरह कामेनेफ, राइकोफ, बुखारिन और कितने ही दूसरे लोग लेनिन के नारे का विरोध करते हुए कहने लगे कि समाजवादी क्रांति के लिए अभी उचित अवसर नहीं आया है। लेकिन, कान्फ्रेंस ने लेनिन का समर्थन किया। स्तालिन, स्वेर्दलोफ, ओर्जोनिकिद्जे, जेर्जिन्स्की जैसे फौलादी मंसूबे वाले क्रांतिकारी लेनिन के समर्थक थे।

वक्ता लेनिन—मालूम होता था इस छोटे कद के विल्कुल साधारण शरीरवाले इंसान में शक्ति का अक्षय भण्डार भरा है। 'प्रावदा' में उनके लेख प्रायः प्रति दिन निकलते थे; कभी-कभी एक ही अंक में कई लेख। कान्फ्रेंस के दिनों में भी 'प्रावदा' के लिए उन्होंने लेख लिखे। रूस में लौटने के दिन से जुलाई तक उन्होंने डेढ़ सौ लेख और बहुत-सी पुस्तिकाएँ लिखीं। लेकिन, लेखनी से भी अधिक उस समय उनकी वाणी जादू कर रही थी। वह कमकरों और सैनिकों की सभाओं में व्याख्यान देते। पुतिलोफ, ओवूखोफ, सेमयान्निकोफ आर्डनेन्स-कारखाना, त्रोउगोल्निक रबर-कारखाना, ओख्ता, अलेक्सांद्रोफ, एवाज इन्जीनियरिंग कारखाना, स्कोरोखोद बूट फैक्टरी, रेलवे डब्बा कारखाना, निकोलायेफ (वर्तमान अक्तूबर) रेलवे और पेत्रोग्राद के बहुत-से दूसरे कारखानों के मजदूरों में जाकर लेनिन ने भाषण दिये। अखिल-रूसी किसान-प्रतिनिधि कांग्रेस, पेत्रोग्राद फैक्टरी कमिटी कान्फ्रेंस तथा प्रथम अखिल-रूसी सोवियतों की कांग्रेस में भी उन्होंने व्याख्यान दिये। लेनिन अपने भाषणों से जनता पर अद्भुत प्रभाव डालने में समर्थ थे। उनकी भाषा सरल होती थी, वाणी में नाटकीय ढंग का उतार-चढ़ाव या भाव-भंगिमाएँ नहीं के बरावर होती थीं। लेकिन उनका एक-एक शब्द नपा-तुला होता था और उनके वाक्य उनके भावों को सीधे और स्पष्ट रूप में व्यक्त करते थे। लेनिन के वाक्यों में गजव की तर्क-शक्ति रहती। उन्हें बुद्धि तुरंत आत्मसात कर लेती। लेनिन अपने श्रोताओं को भावुकता में बहाने की कोशिश नहीं करते थे। उनमें विचार-परिवर्तन कराने की शक्ति थी। गोर्की ने लेनिन के बारे में लिखा था : "उनका भाषण आदमी के दिल में हमेशा अकाट्य शक्ति की शारीरिक अनुभूति पैदा करता है।" पुतिलोफ (वर्तमान किरोफ) कारखाने की एक सभा में उपस्थित एक कमकर ने बताया है :

> "मालूम होता था कि वह भीड़ में से, चालीस हजार आदमियों के समूह में से, एकाएक भाषण-मंच पर प्रकट हो गये थे।...अपने सभी श्रोताओं को जिस चुम्बक जैसे आकर्षण से, जिस शक्ति से, उन्होंने पकड़ लिया था उसे प्रकट करने के लिए शब्द मिल सकते हैं, यह मुझे नहीं मालूम।...लेनिन की वाणी से हम अन्तःप्रेरित और आत्मविभोर हो गये। हमारा डर भाग गया, थकावट काफूर हो गयी। जान पड़ता था, केवल लेनिन ही नहीं बोल रहे हैं, बल्कि बैठे, खड़े अथवा जिस किसी चीज पर चढ़े चालीस हजार कमकर अपने अन्तस्तल के विचारों और आशाओं को प्रकट कर रहे हैं। जान पड़ता था कि कमकर जिस बात को अपने दिमाग और हृदय में रखे हुए थे, वह लेनिन की वाणी से प्रकट हो रही है। हम में से हरेक जिस चीज को सोचता और अनुभव करता था, किन्तु जिसे पूरी तौर से और स्पष्ट रूप में प्रकट करने के लिए अवसर और शब्द नहीं मिलते थे, वही एकाएक आकार प्राप्त करके उनकी वाणी से फूट पड़ी थी।"

कमकर और सैनिक अस्थायी सरकार में भी वही 'रफ्तार बेढंगी' देख रहे थे। अस्थायी सरकार की तीक्ष्ण आलोचना को और उसे हटाकर अपनी सरकार कायम करने के विचारों को वे अपने हृदय से निकला समझते थे।

मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी अस्थायी सरकार के पूँजीवादी शासन का दिल खोलकर समर्थन करते

थे। जून 1917 में प्रथम अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस हुई थी। इसमें मेन्शेविक नेता सेरेतेली ने कहा था कि बिना पूँजीवादी शासन के, विना पूँजीवादियों के साथ मैत्री किये, क्रांति का विफल होना निश्चित है। उसने ऐलान किया कि रूस में ऐसी कोई राजनीतिक पार्टी नहीं है जो अकेले ही देश के शासन को सँभाल सके। लेनिन उस कांग्रेस में मौजूद थे। उन्होंनें तुरन्त उठकर आवाज बुलन्द की : "ऐसी पार्टी मौजूद है।" लेनिन ने कहा कि बोल्शेविक पार्टी किसी क्षण भी "सारी शक्ति को लेने के लिए तैयार है।...तुम हमें अपना विश्वास दो, और हम तुमको अपना कार्यक्रम देंगे।" इसी कांग्रेस में लेनिन ने बोल्शेविक पार्टी के कार्यक्रम की रूपरेखा उपस्थित की थी।

अस्थायी सरकार की कार्रवाईयों से जनसाधारण की आँखें खुलती जा रही थीं। वे उससे दूर खिंचते जा रहे थे।

विशाल प्रदर्शन—जनता पर वोल्शेविकों का प्रभाव दिन-प्रति-दिन वढ़ता जा रहा था। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन के समय—23 जून को—प्रदर्शन करने का फैसला किया था। सारी तैयारी पूरी हो चुकी थी। लेकिन, एक दिन पहले—22 जून को—मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों के प्रभाव से उस समय की सोवियतों की कांग्रेस ने प्रदर्शन रोक देने का फैसला किया। उस समय पार्टी ने इस रोक को तोड़ना ठीक नहीं समझा। इसीलिए, 22 जून की रात को बोल्शेविक केन्द्रीय कमिटी ने प्रदर्शन न करने का निश्चय किया। पार्टी के संगठन की यह कठोर परीक्षा थी। रात को कुछ ही घन्टों में, पहले से आयोजित विशाल प्रदर्शन को बिना किसी हानि के रोकने में सफलता प्राप्त करना आसान काम नहीं था। लेकिन बोल्शेविक इसमें सफल हुए। पेत्रोग्राद की जनता उनके पथ-प्रदर्शन को सिपाही की तरह मानने को तैयार थी।

प्रदर्शन रोक दिया गया। अस्थायी सरकार के खिलाफ प्रदर्शन को मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी नेता पसंद कर भी कैसे सकते थे ? लेकिन जनता का दबाव बढ़ता जा रहा था। अन्त में यह दबाव इतना बढ़ा कि पहली जुलाई को प्रदर्शन करने के लिए स्वयं उन्हें बाध्य होना पड़ा।

उस दिन 5 लाख कमकर और सिपाही पेत्रोग्राद की सड़कों पर निकल पड़े। लेकिन, वे मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों के नहीं, बल्कि बोल्शेविकों के झंडे के नीचे थे। देश के सभी भागों से, कारखानों, खानों, खेतों और खाइयों से वधाई के संदेशों की बाढ़ आ गयी। सभी लेनिन का समर्थ करने के लिए तैयार थे। इन संदेशों में से कुछ थे : "हम कैसे युद्ध को बन्द कर सकते हैं ?" "किसान-समस्या और मोर्चे की स्थिति के बारे में तुम्हारी क्या राय है ?" कितनों ही ने बोल्शेविकों के पूरे कार्यक्रम के बारे में भी पूछा था।

कुछ सैनिकों ने लेनिन को लिखा था : "हमारे कानों में बरावर भरा जा रहा है कि तुम रूस की जनता के शत्रु हो, इत्यादि। लेकिन, सैनिक इसपर विश्वास नहीं करते और उनकी सहानुभूति तुम्हारे साथ है।"

युद्ध के मोर्चे से सैनिकों का एक पत्र मिला था, जिसमें लिखा था : "साथी, दोस्त लेनिन, याद रखना कि हम सैनिकों में से हरेक तुम्हारे पीछे कहीं भी चलने को तैयार हैं। तुम्हारे विचार सचमुच ही किसानों और कमकरों की इच्छा को प्रकट करते हैं।"

लेनिन पर रूस के जनसाधारण का, विशेषकर कमकरों और सैनिकों का, असीम विश्वास यों ही नहीं था। लेनिन क्रांति की तैयारी के लिए रात-दिन अनथक परिश्रम कर रहे थे। वह आनेवाले संग्राम की बड़ी सावधानी से तैयारी कर रहे थे। हाँ, समय से पहले उसे छेड़ने को वह तैयार नहीं थे। 16 और 17 जुलाई को पेत्रोग्राद के कमकर और सैनिक अपने-आप ही प्रदर्शन करने के लिए निकल पड़े। उनकी माँग थी : "सभी शक्ति सोवियतों को दो।" लेकिन, लेनिन अभी उस समय को आया नहीं समझते थे।

6. अज्ञातवास

जुलाई की घटनाओं से फायदा उठाकर क्रांति-विरोधियों ने हमला करना शुरू कर दिया। सरकार बोल्शेविक पार्टी को तोड़ने और उसके सक्रिय कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करने पर उतारू हो गयी। नेव्स्की प्रोस्पेक्ट (राजपथ) में वोइनाफ नामक एक वोल्शेविक कर्मी बोल्शेविक अखवार 'लिस्तोक प्रावदी' बेच रहा था। कादेतों ने उसे

दिनदहाड़े मार डाला। 17 जुलाई की रात को उन्होंने 'प्रावदा' के सम्पादकीय कार्यालय पर हमला किया और उसे तहस-नहस कर दिया। लेनिन बाल-बाल बचे। कादेतों के हमले से आधे घन्टे पहले ही वह वहाँ से बाहर चले गये थे।

बोल्शेविकों और उनके नेताओं के खिलाफ जवर्दस्त प्रचार शुरू हुआ। लेनिन पर जर्मनी का जासूस होने का आरोप लगाया जा रहा था। पूँजीवादी पत्र तथा पूँजीवादी वक्ता चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि इसके 'सबूत' मौजूद हैं। शत्रुओं की बदहवासी को लेनिन अपनी सफलता समझते थे। वे अक्सर कवि नेक्रासोफ के शब्दों को दोहराते थे :

"हम सुनते सम्मान की आवाज
नहीं मीठे प्रशंसा के शब्दों में,
बल्कि बर्बर हल्ले और निंदा में !"

अस्थायी सरकार ने लेनिन की गिरफ्तारी का वांरट निकाला। उनको पकड़ने के लिए उसने भारी इनाम घोषित किया। इससे पहले, जून में ही, बोल्शेविज्म-विध्वंसक लीग में पूँजीवादियों ने लेनिन की हत्या करने का प्रस्ताव पास किया था। अब कादेत, सैनिक अफसर और गुप्तचर, लेनिन के लिए सारे शहर को छान रहे थे। लेकिन, जिनके ऊपर इतनी बड़ी क्रांति की सफलता का भार हो, वह कच्चे खिलाड़ी कैसे हो सकते थे ? लेनिन को बोल्शेविकों ने सुरक्षित जगह पर पहुँचा दिया। बोल्शेविक पार्टी भी भूमिगत हो गयी।

गुप्त जीवन–उस समय लेनिन की जीवन-रक्षा करने में सबसे अधिक सावधानी से स्तालिन और स्वेर्दलोफ ने काम किया। 20 जुलाई को लेनिन के बासे में कादेत घुस आये। लेकिन, तब तक लेनिन दूर जा चुके थे। असल में, 18 जुलाई को ही स्वेर्दलोफ ने इस खतरे से लेनिन को आगाह कर दिया था और वह उसी दिन सबेरे लुप्त हो गये थे। दो दिनों तक वह एक गुप्त-स्थान से दूसरे गुप्त-स्थान के लिए अपना बासा बदलते रहे। 19 जुलाई को लेनिन रेनॉल्ट कारखाने में एक चौकीदार के झोंपड़े में हुई पेत्रोग्राद की पार्टी कमिटी की बैठक में भी शामिल हुए। 20 जुलाई को वह बाकू के एक पुराने बोल्शेविक मजदूर अलिलुयेफ के घर में छिपे रहे। अलिलुयेफ ने बाकू में स्तालिन के साथ काम किया था। परिवार की जिस कोठरी में लेनिन रहे, बाद में उसी में अगस्त, 1917 से अक्तूबर, 1917 तक स्तालिन भी रहे।

लेकिन यह स्थान भी सुरक्षित नहीं समझा गया। अस्तु, 24 जुलाई की रात को स्तालिन लेनिन को राजलिफ रेलवे स्टेशन के नजदीक एक दूसरे कमकर के घर में ले गये। रवाना होने से पहले लेनिन ने अपनी चिर-पोषित दाढ़ी मुड़ा डाली और मूँछें कतर लीं। अब उनको पहचानना बहुत मुश्किल हो गया। राजलिफ के इस घर की छत की खाली जगह में लेनिन कितने ही दिन छिपे रहे। फिर एक झील के किनारे उनके रहने के लिए झोंपड़ी बना दी गयी। जब जाड़ा पड़ने लगा, तो अगस्त के अन्त में लेनिन को फिनलैंड भेजने का प्रबंध किया गया। एक कमकर के पासपोर्ट को लिये हुए बनावटी बालों का टोप पहने कोयला झोंकनेवाले के भेष में इंजन के पावदान पर खड़े होकर लेनिन ने फिनलैंड की सीमा पार की। पहले वह यलकाला गाँव में रहे, फिर हेलसिंगफोर्स नगर में। फिनलैंड के बोल्शेविक अपने प्राण देकर भी लेनिन की रक्षा के लिए तैयार थे।

जुलाई की घटनाओं के बाद अब एक नयी परिस्थिति उत्पन्न हुई। क्रांति के लिए शान्तिपूर्ण समय बीत चुका था। अब तो गोलियों और संगीनों से बातें होती थीं। सोवियतों की शक्ति को खतम करके क्रांति-विरोधी अस्थायी सरकार ने सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिये थे। सोवियतें उनकी पूँछ-भर रह गयी थी। मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी सोवियतों के संचालक थे।

सोवियतों की ऐसी स्थिति में लेनिन ने पार्टी के दाँव-पेंचों को बदलना आवश्यक समझा। उनके सुझाव पर "सारी शक्ति सोवियतों को दो" का नारा कुछ समय के लिए वापस ले लिया गया। लेकिन, इस नारे को लौटाते समय लेनिन ने बतलाया कि इसका अर्थ सोवियतों द्वारा शक्ति पर अधिकार करने के लिए संघर्ष को छोड़ देना नहीं है।

उन्होंने कहा :

"नयी क्रान्ति में सोवियतें प्रकट हो सकती हैं और उन्हें प्रकट होना होगा–लेकिन ऐसी सोवियतें नहीं जो पूँजीवादियों के साथ समझौते के लिए हथियार हैं, बल्कि ऐसी सोवियतें, जो पूँजीवादियों के विरुद्ध क्रांतिकारी संघर्ष करनेवाले संगठन हों। यह सच है कि तब भी हम सोवियतों के ढंग पर ही सारे राज्यों का निर्माण करने के समर्थक होंगे। सवाल आम तौर से सोवियतों का नहीं है। सवाल है मौजूदा प्रतिक्रान्ति और वर्तमान सोवियतों के विश्वासघात के विरुद्ध संघर्ष का।"

छठी पार्टी कांग्रेस–8 अगस्त को पेत्रोग्राद में बोल्शेविक पार्टी की छठी कांग्रेस आरम्भ हुई। इसके सामने मुख्य काम था नये दाँव-पेंचों और नये नारों को तैयार करना। लेनिन उस समय अज्ञातवास में थे। किन्तु उनकी अनुपस्थिति में भी उन्हें सम्मानित अध्यक्ष चुना गया। उनके योग्य शिष्य स्तालिन, स्वेर्दलोफ, मोलोतोफ, ओर्जोनिकिद्ज़े काम के लिए वहाँ थे ही। लेनिन ने कांग्रेस से पहले ही मुख्य-मुख्य विषयों पर निबंधों का मसौदा तैयार कर दिया था। कांग्रेस का संचालन स्तालिन कर रहे थे। रिपोर्ट पेश करने का काम भी स्तालिन ने ही किया। और, लेनिन की तरह ही उन्होंने क्रांति की नयी स्थिति में संघर्ष के लिए पार्टी के उद्देश्यों और दाँव-पेंचों को सामने रखा। कांग्रेस ने "सभी शक्ति सोवियतों को दो" के नारे को लौटा लिया। उसकी जगह उसने हथियारबन्द विद्रोह की तैयारी करने, और गरीब किसानों से मैत्री करके सर्वहारा द्वारा बलपूर्वक शासन पर अधिकार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

त्रात्स्की और उसके अनुयायी हथियारबन्द विद्रोह का विरोध करते रहे। सर्वहारा के अधिनायकत्व को वे पसन्द नहीं करते थे। लेनिन के इस विचार का भी उन्होंने विरोध किया कि केवल एक देश–रूस में समाजवाद की विजय सम्भव है। लेकिन, कांग्रेस लेनिन के साथ थी। उसने समाजवादी क्रांति तथा हथियारबंद विद्रोह का रास्ता अपनाया।

छठी पार्टी कांग्रेस से थोड़े ही दिन पहले अस्थायी सरकार ने अपने गुप्तचरों की मदद से जाली कागज तैयार करके लेनिन के ऊपर 'देशद्रोह' का अभियोग लगाया था और उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकाला था। कामेनेफ, त्रात्स्की, राइकोफ जैसे कुछ लोगों ने राय दी कि लेनिन को अदालत के कटघरे में उपस्थित होकर विरोधियों के इलजामों का जवाब देना चाहिए। लेकिन, स्तालिन और उनके साथी जानते थे कि कटघरे में पहुँचने पर एक गोली लेनिन को खतम करने के लिए काफी होगी; और, क्रांति-विरोधियों ने हजारों गोलियाँ लेनिन के लिए रखी थीं। उन्होंने मित्रता का दावा करनेवाले इन शत्रुओं के प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया।

इस झूठे अपराध का जवाव कमकरों और क्रांतिकारी सैनिकों ने अपना जबर्दस्त विद्रोह प्रदर्शित करके दिया। छठी कांग्रेस में भी यह सवाल उठाया गया था। कांग्रेस ने अपना निर्णय यह दिया कि लेनिन को अदालत में हाजिर नहीं होना चाहिए–उनके साथ वहाँ न्यायोचित बर्ताव नहीं होगा और इससे शत्रुओं को प्रहार करने का मौका मिलेगा। कांग्रेस ने पूँजीवादी पुलिस के जुल्म की निन्दा करते हुए लेनिन के पास अभिनन्दन का संदेश भेजा।

राजसत्ता और क्रांति–शिकारी के भेष में जंगल में झील के किनारे एक झोंपड़ी में रहते अथवा फिनलैंड में गुप्त जीवन बिताते हुए लेनिन का दिमाग सो नहीं सकता था। वह बराबर क्रांति की अगली मंजिलों के बारे में सोचा करते। पार्टी की केन्द्रीय कमिटी के साथ उनका अविच्छिन्न संबंध था। केन्द्रीय मुखपत्र के लिए उन्होंने कितने ही लेख लिखे। अपने अज्ञातवास के समय (जुलाई से अक्तूबर) में लेनिन ने साठ लेख, पुस्तिकाएँ और पत्र लिखे। इस प्रकार इस समय भी सर्वहारा अपने नेता की आवाज सुन सकने से वंचित नहीं थे। लेनिन को पूरा विश्वास था कि समाजवादी क्रांति सफल होगी और राज्यशक्ति सर्वहारा के हाथ में आ जायगी। झील के किनारेवाली झोंपड़ी में रहते समय एक बार ओर्जोनिकिद्ज़े ने उनके पास जाकर कहा कि हमारे एक साथी की राय है कि अगस्त या सितम्बर से पहले बोल्शेविकों के हाथ में शक्ति आ जायगी और लेनिन सरकार के मुखिया होंगे। लेनिन ने गम्भीरतापूर्वक इसका जवाब देते हुए कहा : "हाँ, ऐसा ही होगा !" लेनिन जिस स्थिति में रह रहे थे और अस्थायी सरकार जिस प्रकार हाथ धोकर उनके पीछे पड़ी थी, उससे किसी समय भी उनके पकड़े और मारे जाने का खतरा था। लेकिन, लेनिन को इसकी चिन्ता नहीं थी। उनका दिमाग क्रांति और

राज्य-शासन के हरेक पहलू पर विचार करने में लगा हुआ था, जिसके सुफल **राजसत्ता और क्रांति, भयंकर खतरा और उससे कैसे लड़ें ?** तथा एक लेख 'क्या बोल्शेविक राज्यशक्ति हाथ में रख सकेंगे ?' के रूप में प्रकट हुए।

राजसत्ता और क्रान्ति पुस्तक में लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के राज्य सम्बन्धी विचारों का विवेचन किया। लेकिन, तब से सर्वहारा को रूस की 1905 और 1917 की दो क्रांतियों से गुजरना पड़ा था। इन तजुर्बों की रोशनी में इस विषय पर लेनिन ने फिर से विचार किया। सर्वहारा के अधिनायकत्व को और स्पष्ट करते हुए लेनिन ने लिखा कि सर्वहारा का अधिनायकत्व धनी और गरीब सबके लिए जनवाद का रूप नहीं ले सकता। वह "ऐसा राज्य है जो एक नये रूप में (सर्वहारा और आम तौर से गरीबों के लिए) जनवादी है; और, एक नये रूप में (पूँजीवादियों के विरुद्ध) अधिनायकत्व है।" उन्होंने यह भी दिखलाया कि सर्वहारा का अधिनायकत्व पूँजीवादी समाज के शान्तिपूर्ण विकास से नहीं पैदा हो सकता। वह केवल सशस्त्र सर्वहारा क्रांति और पूँजीवादी राज्य-यंत्र के ध्वंस के परिणामस्वरूप ही पैदा हो सकता है। उन्होंने अपने राज्य-यन्त्र का निर्माण करने के लिए मजदूर वर्ग के करणीयों को बताया, जिन आर्थिक स्थितियों में राज्य मुर्झा जायगा उनको बतलाया और कहा कि कम्युनिस्ट समाज के विकास की अवस्थाएँ दो होंगी। लेनिन ने पार्टी के नेताओं को लिखा था कि अगर अस्थायी सरकार के गुर्गे मुझे मारने में सफल हो जायें तो स्टाकहोम में सुरक्षित 'राज्य के सम्बन्ध में मार्क्सवाद' नामक मेरी नोट-बुकें प्रकाशित करा दी जायें। जब वह फिनलैंड में छिपकर रहने जा रहे थे, उसी समय उन्होंने **राजसत्ता और क्रान्ति** पुस्तक की अपनी हस्तलिपि साथ जानेवाले साथी को यह कहकर दे दी थी कि मेरे गिरफ्तार होने पर इसे स्तालिन को दे देना। लेनिन को इस ग्रन्थ के दूसरे भाग को भी लिखने की इच्छा थी, जिसमें वह रूस की दोनों क्रांतियों और सोवियत-शासन के अनुभवों का निष्कर्ष देना चाहते थे। उन्होंने कुछ विषय-सूची भी तैयार कर ली थी। लेकिन जैसा कि उन्होंने बाद में कहा :

> "नाम के सिवाय मैं अध्याय की एक पंक्ति भी नहीं लिख सका। राजनीतिक संकट और 1917 की अक्तूबर क्रांति के आरम्भ ने मेरी कलम को 'रोक दिया।' इस तरह की 'रुकावट' का स्वागत ही होना चाहिए। पुस्तक के दूसरे भाग ('1905 और 1917 की रूसी क्रांतियों के अनुभव') के लिखने को शायद देर तक के लिए उठा रखना पड़ेगा। क्रांति के बारे में लिखने की अपेक्षा 'क्रांति के अनुभव' के बीच से गुजरना अधिक आनंद और लाभ की बात है।"

लेनिन अंत तक अपनी इस पुस्तिका को नहीं लिख सके।

अपनी पुस्तिका **भयंकर खतरा और उससे कैसे लड़ें ?** में लेनिन ने सर्वहारा अधिनायकत्व के आरंभिक काल के आर्थिक प्रोग्राम को तैयार किया। स्वेच्छाचारिता और पूँजीपतियों ने देश को सर्वनाश की कगार पर पहुँचा दिया है। देश को सत्यानाश से बचाना, उसकी प्रतिरक्षा की शक्ति को बढ़ाना और समाजवाद के निर्माण का काम करना–ये काम एक-दूसरे से अत्यन्त सम्बद्ध हैं। उत्पादन और वितरण पर कमकरों के नियंत्रण को स्थापित करना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उन्हें एक राज्य-बैंक के रूप में मिला देना, ट्रस्टों का राष्ट्रीयकरण और औद्योगिक कारखानों को अनिवार्य रूप से आपस में मिलाना, व्यापारिक रहस्यों (गुप्त बातों) को खतम करना और उपभोक्ता सहकारी-समितियों में जनता का संगठन करना–ये ही वे क्रांतिकारी उपाय हैं जिनके द्वारा देश को बचाया जा सकता है। समाजवाद के निर्माण के काम के ये पहले कदम हैं। यदि समाजवाद की ओर चलने में जरा भी झिझक दिखायी गयी, तो कोई प्रगति न हो सकेगी। लेनिन ने लिखा :

> "क्रांति के कारण रूस ने अपने राजनीतिक ढाँचे के संबंध में आगे बढ़े हुए देशों को कुछ ही महीनों के भीतर पकड़ लिया है। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। युद्ध बड़ी ही निष्ठुर चीज है। वह बड़ी तीक्ष्णता के साथ इस निर्दय प्रश्न को सामने रखता है : या तो आगे बढ़े हुए देशों को दौड़कर पकड़ लो और आर्थिक रूप से भी आगे बढ़ जाओ, नहीं तो नष्ट होना पड़ेगा।...

"या तो पूरी शक्ति से आगे बढ़ो, या फिर नष्ट हो जाओ। इतिहास ने समस्या को इसी तरह सामने रखा है।"

अपने लेख 'क्या बोल्शेविक राज्यशक्ति हाथ में रख सकेंगे ?' में लेनिन ने सोवियत राज्य का निर्माण

करने में सर्वहारा अधिनायकत्व को क्या-क्या कदम उठाने होंगे, इसे बतलाया है। क्रांति के शत्रु जनता को यह कहकर भयभीत करना चाहते थे कि वोल्शेविक दो सप्ताह भी राज्यशक्ति अपने हाथ में नहीं रख सकेंगे। इसका मुँहतोड़ जवाव देते हुए लेनिन ने लिखा था :

> "यदि बोल्शेविक अपने को भयभीत न होने दें और शक्ति हथियाने में समर्थ हो जायें, तो धरती पर कोई ताकत नहीं जो उन्हें राज्य-शक्ति को उस समय तक अपने हाथ में रखने से रोक सके जब तक कि विश्व समाजवादी क्रांति की अन्तिम विजय न हो जाय।"

7. कौर्निलोफ का विद्रोह

जनरल कौर्निलोफ जारशाही अफसर होने के साथ-साथ विदेशी साम्राज्यवादियों का पिट्ठू भी था। क्रांति को खतम करके जार को फिर से तख्त पर बैठाने के लिए उसने विद्रोह किया। लेनिन की अनुपस्थिति में पार्टी की केन्द्रीय कमिटी का संचालन स्तालिन कर रहे थे। स्तालिन ने तुरंत कमकरों, सैनिकों और नौसैनिकों का क्रान्ति की रक्षा के लिए आह्वान किया। क्रान्ति रूस में कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। उसकी जड़ें जनता में बहुत मजबूत थीं। कौर्निलोफ का गर्व चूर करते हुए सर्वहारा ने जारशाही के अन्तिम मन्सूबे को खतम कर दिया। कौर्निलोफ ने जिस तरह हमला किया था, उससे अस्थायी सरकार और उसके पिट्ठुओं के होश-हवास गुम हो गये थे। क्रांति की पक्षपाती असली शक्ति का सहारा न लेकर उन्होंने उन्हीं तत्त्वों को आगे बढ़ा रखा था जो प्रतिक्रियावाद के पोषक थे। केवल उनके बल पर वे कौर्निलोफ के हमले को कैसे विफल कर सकते थे ? लेकिन, यह अस्थायी सरकार की रक्षा का सवाल नहीं था। यह जारशाही से क्रांति की रक्षा का सवाल था। पार्टी के नेतृत्व में कौर्निलोफ के मनोरथ को विफल करके बोल्शेविकों ने जनसाधारण के मन में अपना प्रभाव कई गुना बढ़ा लिया। देहात के मझोले किसान अप्रैल से अगस्त तक दुविधा में पड़े हुए थे; अब वे भी गाँव के गरीबों से मिलकर बोल्शेविकों के पक्षपाती बनने लगे। अपने विश्वासघातपूर्ण आचरणों से मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी तेजी से जनता में अपना प्रभाव खोने लगे और सोवियतों में बोल्शेविकों की प्रधानता हो गयी। सितम्बर के आरम्भ तक सबसे अधिक महत्त्व रखनेवाली मास्को और पेत्रोग्राद की सोवियतें पूरी तरह बोल्शेविकों के नेतृत्व में आ गयीं। कौर्निलोफ की पराजय से क्रान्ति की शक्ति कई गुना बढ़ गयी और उनके साथ ही अब चारों तरफ वोल्शेविक भी छा गये।

लेनिन ने जैसा कहा था, घटनाएँ ठीक उसी तरह घटीं।

8. "शक्ति को हाथ में लो !"

25 और 27 सितम्वर के बीच लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी तथा पेत्रोग्राद और मास्को की पार्टी कमिटियों को 'बोल्शेविकों को शक्ति हाथ में लेनी होगी' के नाम से अपना ऐतिहासिक पत्र लिखा। इसी समय 'मार्क्सवाद और विद्रोह' लेख भी उन्होंने लिखा। केन्द्रीय कमिटी को लिखे पत्र में लेनिन ने कहा था कि हथियारबन्द विद्रोह के कार्यक्रम को सबसे पहले रखना है। जनता को अपने तजुर्बे से विश्वास हो गया था कि बोल्शेविकों के नारे ठीक हैं। अब लेनिन ने कहा : "जनता का बहुमत हमारे साथ है। अब विजय निश्चित है।"…"दोनों राजधानियों में कमकर-सैनिक-प्रतिनिधियों की सोवियतों में बहुमत प्राप्त कर लेने के वाद वोल्शेविकों को शक्ति अपने हाथ में लेनी चाहिए…।"

28 सितम्बर को स्तालिन ने लेनिन का पत्र केन्द्रीय कमिटी के सामने रखा। उन्होंने कहा कि इसे हिदायत के तौर पर स्थानीय पार्टी संगठनों के पास भेज दिया जाय। पर गद्दार कामेनेफ ने प्रस्ताव रखा कि इस पत्र को आग की नजर कर देना चाहिए। कमिटी ने स्तालिन के प्रस्ताव को स्वीकार किया। कामेनेफ और जिनोवियेफ बराबर जोर देते रहे कि बोल्शेविकों को मेन्शेविकों, समाजवादी-क्रांतिकारियों और कादेतों की प्रारम्भिक पार्लामेन्ट में सम्मिलित हो जाना चाहिए। वे बोल्शेविकों को सशस्त्र-विद्रोह की तैयारी के काम से हटाकर भूलभुलैयों में फँसाना चाहते थे। लेकिन, लेनिन का पथ-प्रदर्शन कच्चा नहीं था। प्रारम्भिक पार्लामेन्ट में कामेनेफ और तेयोदोरोविच

जैसे लोग मेम्बर बने रहना चाहते थे। इसपर केन्द्रीय कमिटी ने बायकाट का प्रस्ताव पास करते हुए बोल्शेविकों को पार्लामेन्ट से निकल आने का हुक्म दिया। साथ ही, उसने सोवियतों की द्वितीय कांग्रेस बुलाने की तैयारी पूरे जोर से शुरू कर दी। बोल्शेविक जानते थे कि सोवियतों की कांग्रेस में उनका वहुमत होना निश्चित है।

अव पार्टी की सारी शक्ति सशस्त्र-विद्रोह की तैयारी में लग गयी। बोल्शेविकों ने फिर से नारा दिया : "सभी शक्ति सोवियतों को दो !"

15
महाक्रांति (1917 ई.)

लेनिन अब उस समय को निकट देख रहे थे, जव उन्हें पेत्रोग्राद के नजदीक रहकर जनशक्ति का संचालन दृढ़तापूर्वक अपने हाथ में लेना पड़ेगा। हेलसिंगफोर्स पेत्रोग्राद से वहुत दूर था। वहाँ से जल्दी-जल्दी संदेशों का आना-जाना नहीं हो सकता था। इसलिए, 30 सितम्बर को लेनिन हेलसिंगफोर्स छोड़कर विवोर्ग पहुँच गये।

1. अंतिम तैयारियाँ

विबोर्ग से लेनिन ने पार्टी नेताओं के पास संदेश भेजते हुए जोर दिया कि विद्रोह की तैयारी में जल्दी करनी चाहिए, क्योंकि अस्थायी सरकार क्रांति-विरोधी सेनाओं को औद्योगिक केंद्रों के पास जमा कर रही थी। वह चाहती थी कि क्रांतिकारी पलटनों को दोनों राजधानियों से और दूसरे बड़े-बड़े शहरों से हटाकर तथा युद्ध के मोर्चे पर भेजकर क्रांति की ताकतों को कमजोर कर दे। लेनिन ने यह भी बतलाया कि देश के महत्त्वपूर्ण भागों में पूँजीपति वर्ग क्रांति-विरोधी केंद्र संगठित कर रहे हैं और पेत्रोग्राद को जर्मनों के हाथ में देने का भी षड्यंत्र रच रहे हैं। वे जर्मन साम्राज्यवादियों से मिलकर क्रांति को चूर-चूर करने के लिए रूसी पलटनों को युद्ध के मैदान से हटाने का भी प्रस्ताव कर रहे हैं।

विद्रोह की कला—लेनिन शतरंज के खिलाड़ी की तरह उस समय हरेक मोहरे की स्थिति को बड़े ध्यान से देखते हुए उसकी शक्ति को आँक रहे थे। समाजवादी क्रांति में वह उतावलापन दिखाने के लिए तैयार नहीं थे। क्रांति की शक्तियों को बढ़ाने के लिए उन्होंने लगातार लेखों और भाषणों द्वारा जनता को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। धोखे में डालनेवाले मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों के आचरण ने जनता को बतला दिया था कि केवल बोल्शेविक ही उसके सच्चे हितैषी हैं। 1917 ई. के वसंत में जब पार्टी के कुछ आदमियों ने तुरन्त अस्थायी सरकार को उलट फेंकने के लिए कहा, तो लेनिन ने उन्हें फटकारा, क्योंकि इसका अर्थ यह होता कि अभी तक पूरी तौर से तैयार न हुई जनता पीछे रह जाती और बोल्शेविक आगे बढ़ जाते। बोल्शेविकों के लिए, आगे रहते हुए भी, पीछे आती जनता के साथ अटूट सम्बन्ध रखना क्रांति की सफलता के लिए आवश्यक था। लेनिन जानते थे कि जनता बोल्शेविकों के साथ अटूट सम्वन्ध बनाये रखकर आगे बढ़ने को तैयार है। लेनिन समझ गये कि आखरी घड़ी आ गयी है।

'देरी का अर्थ मृत्यु'—12 अक्तूवर को लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी के नाम एक पत्र में लिखा था :

> "संकट की स्थिति अव परिपक्व हो चुकी है। रूसी क्रांति का सारा भविष्य दाँव पर है। बोल्शेविक पार्टी की इज्जत कसौटी पर है। समाजवाद के सम्वन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय कमकर क्रांति का सारा भविष्य दाँव पर है।"

अक्तूबर के आरम्भिक दिनों में केंद्रीय कमिटी, मास्को कमिटी, पेत्रोग्राद कमिटी और पेत्रोग्राद तथा मास्को की सोवियतों के बोल्शेविक सदस्यों के नाम लिखे अपने एक पत्र में लेनिन ने कहा था :

> "बोल्शेविकों को सोवियतों की कांग्रेस की प्रतीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं है; उन्हें तुरन्त

शक्ति हाथ में लेनी चाहिए !··· प्रतीक्षा करना क्रांति के प्रति घोर अपराध है।"

अक्तूबर के आरम्भ में हुए पेत्रोग्राद के बोल्शेविकों के सम्मेलन का संचालन लेनिन ने अपने छिपने के स्थान से किया। सम्मेलन के लिए उन्होंने प्रस्तावों के मसौदे बनाये, आगे आनेवाली पार्टी-कांग्रेस के प्रतिनिधियों के लिए हिदायतें तैयार कीं और गुप्त अधिवेशन में पढ़ने के लिए एक पत्र लिखा। 20 अक्तूबर (पुराना 7 अक्तूबर) 1917 को लिखे पत्र में लेनिन ने फिर दोहराया :

"हमें यह स्वीकार करना होगा कि यदि करेन्स्की की सरकार निकट भविष्य में सर्वहारा और सैनिकों द्वारा उखाड़ नहीं फेंकी गयी तो क्रांति नष्ट हो जायगी।"

अगले दिन उत्तरी भूभाग की सोवियतों की कांग्रेस के बोल्शेविक-प्रतिनिधियों के लिए उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसमें कहा था : "देरी का अर्थ मृत्यु है !"

लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के सूत्र को दोहराते हुए कहा था कि विद्रोह युद्ध की तरह एक कला है, उसको संयोग और साहस पर छोड़ना मूर्खता है। उसके लिए पूरे कौशल से तैयारी करना तथा संगठन करना और सावधानी के साथ कार्यक्रम की योजना तैयार करना आवश्यक है। विद्रोह की कला के सम्बन्ध में लेनिन ने निम्न नियम पार्टी के सामने उपस्थित किये थे :

"1. विद्रोह के साथ खिलवाड़ मत करो. परन्तु एक बार जब वह आरम्भ हो गया हो तो अच्छी तरह याद रखो कि तुम्हें अन्त तक जाना है।

"2. यह आवश्यक है कि निर्णायक समय पर निर्णायक स्थान में अपनी सेना को अधिक-से-अधिक परिमाण में जमा किया जाय, नहीं तो शत्रु बेहतर तैयार और संगठित होने के कारण विद्रोहियों को नष्ट कर देगा।

"3. एक बार जब विद्रोह आरम्भ हो जाय तो अत्यन्त दृढ़ निश्चय के साथ काम करना चाहिए, पूरी तौर से और सभी परिस्थितियों में हमें आक्रमणात्मक युद्ध करना चाहिए। 'प्रतिरक्षात्मक युद्ध हथियारबन्द-विद्रोह के लिए मृत्यु है।'

"4. शत्रु को अचानक घेरने की, उस समय से फायदा उठाने की जब कि शत्रु की सेनाएँ बिखरी हुई हों, पूरी कोशिश करनी चाहिए।

"5. हमें हर दिन (बल्कि हर नगर की बात होने पर कहा जा सकता है, हर घंटा) कम-से-कम कोई छोटी भी सफलता प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए और सभी परिस्थितियों में 'नैतिक बल को ऊँचा' रखना चाहिए।

"हथियारबन्द-विद्रोह के सम्बन्ध में सभी क्रांतिकारियों के तजुर्बों के सार को मार्क्स ने इतिहास में क्रांतिकारी दाँव-पेंच के सबसे बड़े आचार्य दांतन के शब्दों को दुहराते हुए कहा था : 'साहस, साहस और उससे भी अधिक साहस करो।' "

लेनिन ने विद्रोह के लिए निम्न योजना तैयार की थी :

"पेत्रोग्राद को घेरो और उसका बाहर से संबंध-विच्छेद कर दो; नौसैनिक बेड़े, कमकरों और सेना के सम्मिलित आक्रमण द्वारा पेत्रोग्राद पर अधिकार करो।" इन तीनों मुख्य शक्तियों को इस तरह जोड़ो कि "चाहे जितने मूल्य पर भी निम्न स्थानों पर कब्जा करना और उन्हें हाथ में रखना निश्चित हो जाय : (क) टेलीफोन सम्बन्ध; (ख) सदर तारघर; (ग) रेलवे स्टेशन; और सबसे बढ़कर (घ) पुल।" अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्रवाइयों के लिए "सबसे अच्छे कमकरों, और तरुण कमकरों, सबसे अच्छे नौसैनिकों और सबसे साहसी व्यक्तियों" के तूफानी दस्ते संगठित करने चाहिए, "जिनका आदर्श-वाक्य हो : 'हम एक-एक कर मर जायेंगे, पर शत्रु आगे नहीं बढ़ पाएगा।' " लेनिन ने लिखा था : "रूसी और विश्व-क्रांति, दोनों की सफलता दो या तीन दिनों की लड़ाई पर निर्भर करती है।"

2. 'समाजवादी क्रांति–जिंदावाद !'

ऊपर की पंक्तियों से मालूम होगा कि लेनिन और बोल्शेविक पार्टी ने क्रान्ति की तैयारी कितनी सावधानी से

की थी। कार्यक्रम के साथ क्रांति आरम्भ करने का दिन भी निश्चित कर लिया गया था। 20 अक्तूबर को लेनिन ने केंद्रीय कमिटी के निर्णय के अनुसार विबोर्ग से पेत्रोग्राद के लिए गुप्त रीति से प्रस्थान किया। अगले दिन स्तालिन एवाज कारखाने के एक मजदूर के घर में उनसे मिले। कई घंटे तक आगे की कार्रवाइयों के बारे में गुरु-शिष्य की बातें होती रहीं। लेनिन की हिदायत के अनुसार स्तालिन ने विद्रोह की एक विस्तृत योजना बनायी। इसे उन्होंने लेनिन के सामने रखा। लेनिन ने उसको पसन्द किया। सूत्रकार लेनिन के अत्यन्त योग्य भाष्यकार स्तालिन थे, इसका स्पष्ट परिचय इस समय मिला।

तीन दिन बाद, 23 अक्तूबर को, पार्टी की केंद्रीय कमिटी की ऐतिहासिक बैठक हुई। लेनिन ने रिपोर्ट पेश करते हुए जोर देकर कहा कि विद्रोह को तुरन्त आरम्भ करना अत्यावश्यक है। इस रिपोर्ट के बाद लेनिन द्वारा रखे गये प्रस्ताव को केंद्रीय कमिटी ने मंजूर किया। इसमें कहा गया था कि "सशस्त्र-विद्रोह आज का प्रथम काम है।" 29 अक्तूबर को केंद्रीय कमिटी की परिवर्धित बैठक ने भी लेनिन की बात का समर्थन किया। इस बैठक में लेनिन दो घंटे बोले थे। लेनिन के प्रस्ताव पर ही विद्रोह के संचालन के लिए स्तालिन की प्रमुखता में एक पार्टी-केंद्र कायम करने का निश्चय किया गया। पार्टी-केंद्र में पेत्रोग्राद-सोवियत की सैनिक क्रांतिकारी कमिटी के मुखिया सम्मिलित थे। विद्रोह का प्रायः पूरा संचालन इसी के हाथ में था।

जिस स्थिति में यह महान कदम उठाया जा रहा था, उसमें लेनिन की पैनी दृष्टि ही परिणाम को स्पष्ट रूप से देख सकती थी। यह भारी जोखिम का काम था। लेकिन, जैसा कि स्तालिन ने कहा है :

> "लेनिन जोखिम से डरते नहीं थे, क्योंकि वह जानते थे, वह अपनी भविष्य-दर्शी आँखों से देख रहे थे, कि विद्रोह का होना अनिवार्य है, कि विद्रोह विजयी होकर रहेगा, कि रूस का यह विद्रोह साम्राज्यवादी युद्ध को खतम करने का रास्ता साफ करेगा, कि वह पश्चिमी देशों की थकी-माँदी जनता को उठाकर खड़ा कर देगा, कि वह साम्राज्यवादी युद्ध को गृह-युद्ध में परिवर्तित करेगा। वह जानते थे कि विद्रोह सोवियतों के गणराज्य को स्थापित करेगा और सोवियतों का यह गणराज्य सारी दुनिया में क्रांतिकारी आंदोलन के लिए एक गढ़ का काम देगा।
>
> "हम जानते हैं, लेनिन की यह क्रांतिकारी दूरदर्शिता पीछे अद्वितीय सच्चाई साबित हुई।"

केंद्रीय कमिटी की दोनों बैठकों में कामेनेफ और जिनोवियेफ ने विद्रोह आरम्भ करने के प्रस्ताव के विरुद्ध वोट दिये। उन्होंने मेन्शेविक पत्र 'नोवाया जीस्न' के 18 अक्तूबर (पुराने पंचांग) वाले अंक में अपना वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कहा कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। विद्रोह की तैयारी अत्यन्त गुप्त रीति से की जा रही थी। समय से पहले भेद खोल देना भारी विश्वासघात था; यह पीठ में छुरा भोंकना था। कामेनेफ, जिनोवियेफ, त्रात्स्की और कुछ अन्य लोगों ने भी सर्वहारा क्रान्ति की योजना को बेकार करने के लिए हर तरह की कोशिश की। त्रात्स्की ने प्रस्ताव रखा था कि सोवियतों की द्वितीय कांग्रेस के आरम्भ होने से पहले विद्रोह आरम्भ नहीं करना चाहिए। लेनिन ने उसका मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा था कि कांग्रेस के अधिवेशन तक प्रतीक्षा करने का मतलब होगा 'निरी बेवकूफी या सरासर विश्वासघात !' उन्होंने माँग की कि कामेनेफ और जिनोवियेफ को क्रांति के साथ गद्दारी करने के अपराध में पार्टी से निकाल बाहर करना चाहिए।

विभीषणों को सफलता नहीं मिली। पार्टी केंद्र ने विद्रोह की सारी तैयारी बड़ी दृढ़ता के साथ की। इस समय लेनिन पेत्रोग्राद में विबोर्ग की तरफ छिपे रहकर वहीं से केंद्रीय कमिटी का लगातार पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। एक रात तो वह अस्थायी सरकार के हाथ में पड़ते-पड़ते बचे। वह टहलने के लिए बाहर गये थे, रास्ते में एक पहरेदार ने उन्हें रोक लिया। लेकिन, उसने कागज-पत्रों को देखने के बाद उन्हें छोड़ दिया। उसे पता नहीं लग सका कि यह कौन आदमी है।

बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं, यह कामेनेफ और जिनोवियेफ की कृपा से अस्थायी सरकार को मालूम हो ही गया था। वह जानती थी कि विद्रोह के जनरल स्टाफ का सदर-दफ्तर स्मोल्नी में है। उसने 6 नवम्बर को उसपर आक्रमण करने का हुक्म दिया।

3. भूचाल के दिन

बोल्शेविक निहत्थे नहीं थे। उनके पास ज़ारशाही के सिखलाये हुए, किन्तु अब क्रांति के पक्षपाती सैनिक थे, बख्तरदार मोटरें थीं और कितने ही तोपखाने, रिसाले और जहाजी बेड़े भी थे। अस्थायी सरकार ने बोल्शेविक पत्र 'रबोची पुत' (कमकर-पथ) को बन्द करने का हुक्म निकाला। प्रेस और सम्पादकीय कार्यालय के बाहर सशस्त्र सेनाएँ और हथियारबन्द मोटरें आकर खड़ी हो गयीं। स्तालिन ने उन्हें मार भगाने का हुक्म दिया। लाल गारद और क्रांतिकारी सैनिकों ने उनके हुक्म का पालन करते हुए क्रांति-विरोधियों को वहाँ से मार भगाया। 11 बजे दिन को 'रबोची पुत' निकला। इसमें स्तालिन का लेख 'हमें किस चीज की जरूरत है !' छपा था। इस लेख में अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जनता से अपील की गयी थी। उसी दिन लाल गारद और क्रांतिकारी सैनिक फुर्ती से स्मोल्नी के आसपास जमा हो गये।

विद्रोह शुरू हो गया।

लेनिन अब भी अज्ञातवास में थे। वह स्मोल्नी पहुँचने के लिए अधीर हो रहे थे। लेकिन, केंद्रीय कमिटी की आज्ञा के बिना वह अपने स्थान को नहीं छोड़ सकते थे। शाम के वक्त नादेज्दा क्रुप्स्काया ने 'केंद्रीय कमिटी के सदस्यों को' सम्बोधित लेनिन का एक पत्र केंद्रीय कमिटी को दिया। उसमें लिखा था :

"स्थिति अत्यन्त संकटमय है...। इस समय हर चीज सूत के एक धागे से लटकी हुई है।⋯ताकत को ⋯25 अक्तूबर (नया 7 नवम्बर) तक करेन्स्की मंडली के हाथ में किसी हालत में भी नहीं रहने देना चाहिए, किसी भी हालत में नहीं। इस बात का निर्णय बिना चूके आज ही शाम या आज ही रात को करना होगा।

"क्रांतिकारियों की देर को, जो कि आज विजयी हो सकते हैं (और निश्चय ही आज विजयी होंगे), और जिनके कल बहुत अधिक खोने का जोखिम है, सबकुछ खोने का जोखिम है, इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा।

"कार्रवाई में देरी का अर्थ है–मृत्यु।"

लेनिन केंद्रीय कमिटी पर तुरन्त कार्रवाई का फैसला करने के लिए जोर डाल रहे थे। उनको डर था कि त्रात्स्की और उसके समर्थक विद्रोह को कहीं स्थगित न कर दें। विद्रोह के लिए जैसे फौलादी हृदय और दिमाग की जरूरत थी, उसकी उम्मीद त्रात्स्की जैसे ढुलमुलयकीनों से नहीं की जा सकती थी। उधर करेन्स्की भी विद्रोह को दबाने के लिए भारी प्रयत्न कर रहा था। उसी रात उसे युद्ध के मोर्चे से विश्वसनीय सेना के पेत्रोग्राद पहुँचने की आशा थी।

लेनिन स्मोल्नी में–6 नवम्बर की रात को स्तालिन के जोर देने पर केन्द्रीय कमिटी ने लेनिन को स्मोल्नी में बुलाकर उनके हाथ में नेतृत्व की बागडोर देने का निश्चय किया। लेनिन के वहाँ पहुँचने में देर नहीं हुई। स्तालिन ने सारी बातों की पूरी रिपोर्ट देकर बतलाया कि 'शरद् प्रासाद' पर अधिकार करने की योजना कहाँ तक तैयार हो चुकी है। लेनिन अब क्रांतिकारी विद्रोह के सारथी थे। इतना योग्य सारथी इतिहास में बहुत दुर्लभ है।

7 नवम्बर (पुराने 25 अक्तूबर) को प्रातःकाल सारा पेत्रोग्राद विद्रोही सर्वहारा के हाथ में था और टेलीफोन-सम्बन्ध, सदर तारघर, रेडियो-स्टेशन, नेवा नदी के पुल, रेलवे के स्टेशन तथा अधिकांश महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यालय अब करेन्स्की सरकार के हाथ से निकल गये थे। विद्रोह ने एक साँस में भारी सफलता प्राप्त कर ली थी।

उसी दिन 10 बजे सवेरे सैनिक क्रांतिकारी कमिटी ने लेनिन द्वारा तैयार किये हुए 'रूस के नागरिकों के नाम' ऐतिहासिक घोषणापत्र को जारी करते हुए कहा कि अस्थायी सरकार का तख्ता उलट दिया गया है और राज्यशक्ति सोवियतों के हाथ में आ गयी है।

अपराह्न में लेनिन ने पेत्रोग्राद सोवियत की एक विशेष बैठक में भाषण दिया। भाषण-मंच पर अपने महान नेता को देखकर जनता कितनी ही देर तक करतलध्वनि और हर्षध्वनि करती रही। अपने भाषण में लेनिन ने समाजवादी क्रांति की विजय घोषित करते हुए बतलाया कि रूस में समाजवाद अवश्य विजयी होगा। अपने भाषण को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा था : "विश्व समाजवादी क्रांति–जिन्दाबाद !"

सोवियतों की कांग्रेस—उसी दिन रात को पौने 11 बजे स्मोल्नी में द्वितीय सोवियत-कांग्रेस आरम्भ हुई। इसमें केन्द्रीय और स्थानीय राज्यशक्ति के सोवियतों के हाथ में आने की बाकायदा घोषणा की गयी।

लेनिन को सोने या विश्राम करने की कहाँ फुर्सत थी ! उन्होंने पहली सारी रात स्मोल्नी में रहते हुए विद्रोह के संचालन, सैनिकों के संगठन तथा सोवियत शासन के अत्यावश्यक पहले कदमों की व्यवस्था करने में बितायी थी। प्रायः दो दिन और दो रात लगातार काम करने के बाद, शरद् प्रासाद पर अधिकार हो जाने तथा वहीं अस्थायी सरकार के गिरफ्तार कर लिये जाने पर, लेनिन ने 7 नवम्बर की रात को कुछ घन्टे स्मोल्नी के पास ही पार्टी के एक कार्यकर्ता के घर में विश्राम किया। लेकिन उस वक्त भी उन्हें नींद नहीं आई। घरवाले जग न जायें, इसलिए वह चुपके से उठकर वह मेज पर जा बैठे और वहाँ उन्होंने भूमि-सम्वन्धी फरमान तैयार किया। 8 तारीख का सारा दिन उन्होंने उसी तरह लगातार काम में बिताया। पेत्रोग्राद की प्रतिरक्षा तथा नगरवासियों के लिए रोटी का प्रबन्ध करना सबसे जरूरी और तुरन्त करणीय था। इनके अतिरिक्त उन्हें केन्द्रीय कमिटी की बैठक की भी अध्यक्षता करनी थी, जिसमें सोवियत सरकार के सदस्यों के बारे में विचार करना था। इसके बाद वह एक सम्मेलन में गये जिसमें उद्योग-धन्धों पर कमकर-संगठन के नियंत्रण के वारे में बातचीत करनी थी। शाम तक उन्हें क्षण-भर का भी अवकाश नहीं मिला।

शाम को वह सोवियतों की कांग्रेस के अधिवेशन के आरम्भ के समय भाषण देने गये। कांग्रेस ने समाजवादी क्रांति के महान नेता का जवर्दस्त स्वागत किया। लोग देर तक करतलध्वनि और हर्षोद्‌गार प्रकट करते रहे। कितनी ही देर तक लेनिन भाषण नहीं दे सके। इतिहास के महान नेता ने अब मानव इतिहास में एक नये युग की—सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा के अधिनायकत्व के युग की—घोषणा की।

लेनिन के प्रस्ताव पर सोवियत-कांग्रेस ने सोवियत सरकार के पहले फरमान—शान्ति-सम्वन्धी फरमान और भूमि-सम्बन्धी फरमान—पास किये। ये युग-प्रवर्तक अभिलेख सर्वहारा अधिनायकत्व को मजवूत करने और समाजवाद का निर्माण करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साबित हुए। इसी कांग्रेस में कमकरों और किसानों की पहली सोवियत सरकार—जन-कमीसारों की परिषद्—बनायी गयी। लेनिन परिषद् के प्रधानमंत्री चुने गये।

4. सोवियत सरकार

देश में क्रांति महाविजयी हो चुकी थी। लेनिन अब नयी सरकार के मुखिया थे। क्रांति को सफल बनाने के लिए उन्होंने जिस तरह की तत्परता के साथ काम किया था, उसी तरह की तत्परता से अव उन्होंने सोवियत सरकार को मजबूत करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के काम में हाथ लगाया। अभी तक उन्होंने अपने कौशल को क्रांति-युद्ध में दिखलाया था; अब अपनी असाधारण प्रतिभा का जौहर राज्य-प्रवन्ध में दिखलाना शुरू किया। इतिहास में ऐसा अन्य व्यक्ति नहीं देखा गया जो इतनी सैद्धांतिक सूझ, राजनीतिक प्रतिभा, दूरदर्शिता और इतना अदम्य साहस रखता हो। न ही कोई ऐसा राजनीतिक नेता हुआ जो जनता के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखता हो और जिसमें जनता इतना विश्वास रखती हो। लेनिन सच्चे अर्थों में 'साधारण जनता' के नेता थे। क्रांति सफल बनाने के लिए उन्हें जितना काम करना पड़ा उससे कम काम अव लेनिन और सोवियत सरकार के ऊपर नहीं था। शोषक वर्ग को अधिकारच्युत किया जा चुका था। लेकिन उसका प्रतिरोध अभी खतम नहीं हुआ था। पुराना, पूँजीवादी शासन-यंत्र क्रांति के लिए साधन नहीं, बल्कि भारी बाधक था। उसे तोड़ फेंकना जरूरी था जिससे कि सरकारी अफसर भीतर से गड़वड़ी न पैदा कर सकें। भारी कठिनाइयों में नगर के लिए खाद्य का प्रबन्ध करना था, कारखानों को फिर से चालू करना था, कमकरों-किसानों के राज्य का नये ढंग से निर्माण करना था। लेकिन कठिनाइयाँ लेनिन को अनुत्साहित नहीं कर सकती थीं। उनका महामंत्र था : "विजय प्राप्त करना और शक्ति को अपने हाथ में रखना केवल उन्हीं लोगों के लिए सम्भव है जिनका जनता में विश्वास है और जो जनता की सृजनात्मक प्रतिभा में विश्वास रखकर छलांग मारने के लिए तैयार हैं।"

नयी सरकार का केन्द्र स्मोल्नी था। वहाँ हर वक्त लोग मधुमक्खियों की तरह अपने काम में व्यस्त

रहते थे। एक क्षण का विश्राम किये बिना रात और दिन बड़े जोर-शोर के साथ क्रांतिकारी कार्रवाइयाँ जारी रहतीं। लेनिन को दूर जाकर रहने की फुर्सत कहाँ थी ? वह स्मोल्नी के ही भीतर रहते थे। राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, शिक्षा, संस्कृति तथा आन्दोलन सम्बन्धी तरह-तरह की समस्याएँ उठ खड़ी होती थीं। पार्टी, कमकर या किसान राजकाज का कोई तजुर्बा नहीं रखते थे। यह तजुर्बा उन्हें इस वक्त हासिल करना था। लेनिन सभी बातों में उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए तैयार थे। सोवियत सरकार पुराने कानूनों और विधि-विधानों के अनुसार नहीं चलायी जा सकती थी। उसके लिए लेनिन ने नये फरमान, नये नियम तथा कितने ही घोषणापत्र और लेख लिखे। नवम्बर के अन्त से जन-कमीसार-परिषद (मंत्रि-मंडल) प्रतिदिन बैठने लगी। उसकी कार्रवाइयों का संचालन लेनिन करते थे। साथ ही जनता के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखना भी जरूरी समझते थे। सोवियत शासन के पहले दो महीनों में उन्होंने 20 विशाल सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिया। पेत्रोग्राद में होनेवाली कितनी ही कांग्रेसों में उन्होंने रिपोर्टें पेश कीं तथा भाषण दिये और उनके लिए प्रस्ताव तथा अपीलें तैयार कीं।

कारखानों के कितने ही कमकर प्रतिनिधि-मंडल, युद्ध के मोर्चे के सैनिकों के प्रतिनिधि तथा देहाती किसानों के प्रतिनिधि लेनिन से मिलकर उनके सामने अपनी शंकाओं और प्रश्नों को रखते। लेनिन उनका जवाब देते और जनता से कहते : नये जीवन का निर्माण-कार्य तुम अपने हाथों में लो।

स्थिति बड़ी खतरनाक थी। लेनिन को फौजी बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी। करेन्स्की और कजाक पेत्रोग्राद की ओर बढ़े आ रहे थे। नगर के भीतर भी जोखिम कम नहीं था। 11 नवम्बर को कादेतों (सैनिक अफसरों) की टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया। मास्को में अभी भी लड़ाई जारी थी। लेनिन ने कहा कि राजनीतिक प्रश्न सैनिक प्रश्न के साथ विलीन होने लगे हैं। 9 नवम्बर की रात को स्तालिन के साथ लेनिन पेत्रोग्राद सैनिक भूभाग के सदर-दफ्तर में पहुँचे और सैनिक काम में नियुक्त साथियों से स्थिति के बारे में रिपोर्ट माँगी। इस समय की घटना के बारे में क्रांतिकारी सैनिक कमेटी के एक सदस्य पोद्वोइस्की ने कहा है :

> "मैंने पूछा, इस आने का अर्थ अविश्वास या और कोई चीज है ? इसपर व्लादिमिर ने बड़ी शांति से, किन्तु दृढ़तापूर्वक कहा : 'नहीं, अविश्वास नहीं, कमकरों-किसानों की सरकार सिर्फ यही जानना चाहती है कि उसके सैनिक-अधिकारी किस तरह काम कर रहे हैं।' उसी क्षण मैंने अनुभव किया कि हमारे यहाँ अधिनायकत्व काम कर रहा है, हमारे पास एक दृढ़ और मजबूत कमकर सरकार है।"

लेनिन सदर-दफ्तर में लगातार कई दिनों तक रहे और वहीं से उन्होंने करेन्स्की और क्रास्नोफ की सेनाओं के साथ सैनिक मुठभेड़ों का संचालन किया और उनके विरुद्ध लड़ने के लिए सभी उपलब्ध शक्तियों को चालित और संगठित किया।

अंत में शत्रु की पराजय हुई।

सोवियत सरकार ने करेन्स्की और क्रास्नोफ के मंसूबों को विफल कर दिया।

कामेनेफ, जिनोवियेफ, राइकोफ जैसों की भीतर से रोड़ा अटकाने की नीति अब भी बन्द नहीं हुई थी। समाजवादी क्रांति का मतलब है पुराने स्वार्थों का पूरी तरह से ध्वंस और अल्पजनहिताय की जगह बहुजनहिताय सरकार का शासन। लेकिन ढुलमुलयकीन और नेतृत्व के भूखे ये लोग पहले तो सशस्त्र विद्रोह को शुरू करने में झिझकते थे, और अब माँग कर रहे थे कि मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों को भी मिलाकर एक संयुक्त सरकार बनायी जाय। मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी क्रांति के समय पूँजीवादी नेताओं की पूँछ पकड़े हुए थे। सोवियत सरकार को जो काम करना था उसमें ये कदम-कदम पर बाधक होते थे। भला ऐसे लोगों को साथ लेकर चलना कैसे सम्भव हो सकता था ? केन्द्रीय कमिटी ने इसे 'सोवियत सरकार के नारे के प्रति गद्दारी' कहते हुए इस माँग को अस्वीकृत कर दिया। इसपर कामेनेफ, राइकोफ और उनके दूसरे साथियों ने केन्द्रीय कमिटी और जन-कमीसार-परिषद (मंत्रि-मंडल) से इस्तीफा दे दिया। किन्तु इस इस्तीफे का लेनिन के दृढ़ संकल्प पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने उनकी कोई परवाह न करके पार्टी सदस्यों और कमकर जनता को सम्बोधित करते हुए कहा :

"कमकर जनता को आश्वस्त और दृढ़ रहना चाहिए। हमारी पार्टी, सोवियत बहुमत की पार्टी, उनके हितों की रक्षा के लिए ठोस और एकतावद्ध होकर खड़ी है। पहले ही की तरह आज भी नगरों के लाखों कमकर, खन्दकों के सैनिक और गाँवों के किसान करोड़ों की संख्या में हमारी पार्टी के पीछे हैं। पार्टी का संकल्प है कि जैसे भी हो शान्ति और समाजवाद की विजय प्राप्त की जाय।"

क्रान्ति के आरम्भिक दिनों में ही लेनिन ने सोवियतों की भूमि की प्रतिरक्षा के कार्य को सबसे आगे रखा। "हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रतिरक्षात्मक युद्ध, जो हमारे ऊपर जवर्दस्ती लादा जा सकता है–हमें नहीं करना है।" इसीलिए उन्होंने नारा दिया : "समाजवादी पितृभूमि की रक्षा करो!" उन्होंने सोवियत भूमि में रहनेवाली जातियों की ओर से घोषित किया कि देश के ऊपर हथियारवन्द हमला होने पर सारी कमकर जनता अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हथियार उठायेगी : "हम, कमकर और किसान अपने से और सारी दुनिया से कहते हैं, और इसे साबित करके भी दिखायेंगे, कि सोवियत गणराज्य की रक्षा के लिए हम सब उठ खड़े होंगे।"

नया शासन-यंत्र–क्रांति के बाद पहले सप्ताहों में लेनिन का सारा ध्यान नवोत्पन्न सोवियत राज्य के निर्माण में लगा रहा। सोवियत राज्य एक बिल्कुल नयी तरह का राज्य था जिसका इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। उसके नेतृत्व में समाजवाद की इमारत वनाने के लिए जमीन साफ हो गयी, पूँजीवादी राज्य के सारे शासन-यंत्र को ध्वस्त कर दिया गया, पुराने जारशाही कर्मचारियों के लिए भीतर से तोड़-फोड़ कर सकने का कोई मौका नहीं छोड़ा गया, क्रांति-विरोधी संविधान सभा को तोड़ दिया गया; जमींदारी, जाति-व्यवस्था, स्त्रियों में असमानता, जातीय-उत्पीड़न और ईसाई गिरजाघरों के विशेषाधिकारों को सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूरी तरह खत्म कर दिया गया। इसके बाद समाजवादी इमारत की नींव का पहला पत्थर रखा गया। सामाजिक उत्पादन और वितरण का नियंत्रण कमकरों के हाथ में दिया गया। वैंकों, रेलों तथा वड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण आरम्भ किया गया। सोवियत सरकार ने अपने मुख्य-मुख्य फरमान जारी किये। इनमें से बहुतों का मसौदा लेनिन ने बनाया था।

लेनिन ने लिखा था :

"हमारा फरमान कार्रवाई करने की पुकार है, लेकिन पुराने ढंग की कार्रवाई की पुकार नहीं है कि, 'कमकरो, उठो और पूँजीपति वर्ग को उखाड़ फेंको!' नहीं, यह जनता के लिए पुकार है। यह रचनात्मक काम करने की पुकार है। ये फरमान, ऐसी हिदायतें हैं जो अमली काम के लिए जनता का आह्वान करती हैं।"

सोवियत राज्य और सभी मंत्रि-विभागों की स्थापना में लेनिन का सीधा हाथ था। उनकी प्रेरणा से सर्वहारा अधिनायकत्व का सुदृढ़ हथियार, प्रतिक्रांतिध्वंसक अखिल-रूसी असाधारण-कमीशन–चेका–स्थापित किया गया। इसके मुखिया जेर्जिन्स्की बनाये गये। लेनिन के प्रस्ताव पर राष्ट्रीय अर्थनीति की सर्वोच्च परिषद् बनायी गयी। इसका काम था समाजवादी राष्ट्रीय अर्थनीति की योजना वनाना तथा उसे कार्यरूप में परिणत करना।

द्वितीय सोवियत कांग्रेस–लेनिन के प्रस्ताव पर द्वितीय अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस ने जातीय विषय सम्बन्धी मंत्रि-विभाग की स्थापना करके स्तालिन को जन-कमीसार नियुक्त किया। पूँजीवादी राज्यों का काम जातियों का उन्मोचन और संवर्धन नहीं, बल्कि उत्पीड़न और शोषण है। इसलिए उनके यहाँ ऐसे मंत्रि-विभाग की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन सच्चे समाजवाद में–एटली और मौरिसन के खोटे समाजवाद में नहीं–जातियों का शोषण और उत्पीड़न असम्भव है। 16 नवम्बर, 1917 को लेनिन और स्तालिन के हस्ताक्षर से 'रूस की जातियों के अधिकारों की घोषणा' निकाली गयी। इस घोषणा ने जारशाही के जमाने की सतायी गयी और परतंत्र जातियों को समान अधिकार प्रदान किये।

अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी की बैठक में 17 नवम्बर, 1917 को लेनिन ने कहा :

"समाजवाद ऊपर से जारी किये गये आदेशों के द्वारा नहीं निर्मित किया जा सकता। नौकरशाही यन्त्रवाद उसके भावों के विरुद्ध है; सजीव और सृजनात्मक समाजवाद जनसाधारण का अपना सृजन है।"

उन्होंने भली प्रकार समझ लिया था कि काम में जनता की प्रेरणा, कमकरों और किसानों की सृजनात्मक प्रतिभा ही ऐसी चीज है, जिसके जरिये श्रम की उपज को बढ़ाया जा सकता है तथा लोगों की राजनीतिक और सांस्कृतिक शिक्षा जल्दी-से-जल्दी पूरी की जा सकती है। 18 नवम्बर को जनता से अपील करते हुए लेनिन ने लिखा था :

> "साथी मेहनतकशो ! याद रखो कि तुम स्वयं अब राज्य का शासन कर रहे हो। यदि तुम एकताबद्ध होकर राज्य के सभी कामों को अपने हाथ में नहीं ले लेते, तो कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकेगा। तुम्हारी सोवियतें अब राज्य के संगठन, राज्यशक्ति के यन्त्र हैं। ये सभी प्रश्नों पर फैसला देने की क्षमता रखती हैं।"

दिसम्बर, 1917 के अन्त में फिनलैंड के भीतर (किन्तु पेत्रोग्राद से अधिक दूर नहीं) लेनिन ने कुछ दिनों तक विश्राम किया। लेकिन उसे पूरा विश्राम नहीं कहा जा सकता था; क्योंकि इसी समय उन्होंने 'होड़ को कैसे संगठित करें' नामक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा।

एक तरफ जनता का विशाल भाग सोवियत सरकार और उसके नेता के युग-प्रवर्तक कामों को देखकर फूला नहीं समाता था, तो दूसरी तरफ उसके कारण पूँजीवादी तथा उनके लगुवे-भगुवे, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी गुस्से से पागल हो रहे थे। सभी साम्राज्यवादी देशों की सरकारें इन लोगों की पीठ पर थीं। कारण यह कि वे बोल्शेविक क्रांति को अपने लिए सबसे खतरे की चीज समझती थीं। वे चाहती थीं कि आँखों के काँटे लेनिन को रास्ते से निकाल वाहर किया जाय। उन्होंने पार्टी के नेताओं और विशेषकर लेनिन, की हत्या कराने की कोशिश की।

14 जनवरी, 1918 को लेनिन की मोटर पर गोलियाँ चलायी गयीं। मोटर में कई जगह छेद हो गये, लेकिन लेनिन को जरा भी चोट नहीं आई।

क्रान्ति-विरोधी लोग संविधान सभा को सोवियत शासन के विरुद्ध हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते थे। बोल्शेविकों ने उसे जनता के हित के ख्याल से बुलाया था। उनका यह भी विचार था कि अगर संविधान सभा ने वैसा करने से इन्कार किया तो जनता उसके विरुद्ध हो जायगी। 18 जनवरी, 1918 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई। उसने सोवियत सरकार और उसके द्वारा जारी किये गये फरमानों को मानने से इन्कार कर दिया। ऐसी संविधान सभा की जनसाधारण के लिए अब क्या आवश्यकता हो सकती थी ? उसे तोड़ दिया गया। धनिकों की 'जनतंत्रता' को फाड़ फेंकने के कारण दुनिया के धनिकों की सरकारें इसे स्वेच्छाचारिता, अधिनायकतन्त्र और जाने क्या-क्या कहकर प्रचार करने से भला कैसे पीछे रह सकती थीं ?

तृतीय सोवियत कांग्रेस (1918 ई.)–23 जनवरी, 1918 को संविधान सभा के भंग होने के पाँच दिन बाद, तृतीय अखिल रूसी-सोवियत कांग्रेस का उद्घाटन हुआ। सोवियत शासन को स्थापित हुए अब तक दो महीने पन्द्रह दिन बीत चुके थे। कांग्रेस में जन-कमीसार-परिषद के कामों की रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने कहा : "हमारा सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र, अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के दीपस्तम्भ की तरह और सारी मेहनतकश जनता के लिए उदाहरण के तौर पर दृढ़तापूर्वक खड़ा रहेगा।" लेनिन द्वारा उपस्थित की गयी 'कमकर तथा शोषित जनता के अधिकारों की घोषणा' को कांग्रेस ने स्वीकार किया। यह सोवियत संविधान की पहली रूपरेखा थी। इसमें सोवियत राज्य की पहली कार्रवाइयों को कानूनी रूप दिया गया था।

16

अग्नि-परीक्षा (1918 ई.)

लेनिन देख रहे थे कि जब तक रूस की जर्मनी से लड़ाई छिड़ी रहेगी तब तक सोवियत शासन की स्थिति

मजबूत नहीं बनायी जा सकेगी। अक्तूबर क्रांति के तुरन्त वाद ही उन्होंने शांति के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। 8 नवम्बर, 1917 के शांति-सम्बन्धी फरमान में सोवियत सरकार के नाम से उन्होंने 'सभी युद्धरत लोगों और सरकारों को न्यायोचित और जनतांत्रिक शांति के लिए तुरन्त बातचीत आरम्भ करने…' की अपील की। जर्मनी के साथ बोल्शेविक संधि न कर लें, इसके लिए पूँजीवादी तथा उनके एजेंट, मेन्शेविक तथा समाजवादी-क्रांतिकारी, हर तरह से कोशिश कर रहे थे। वे जर्मनी को पूरे जोर से आक्रमण करने के लिए उकसा रहे थे। वे जानते थे कि सोवियत शासन अभी इतना मजबूत नहीं है कि जर्मन सेनाओं का मुकाबला कर सके।

1. समाजवादी पितृभूमि खतरे में

पूँजीवादियों को अब जर्मन सेनाओं से ही आशा रह गयी थी। उनके अनुमान से वे ही बोल्शेविकों के शासन को उलट सकती थीं। जो जारशाही जनरल बोल्शेविकों के साथ थे वे भी सोवियत सरकार के आदेशों को खटाई में डालने की कोशिश करते थे।

22 नवम्बर की रात को लेनिन ने कमांडर-इन-चीफ जनरल दुखोनिन से सीधे तार से बात करते हुए कहा कि सैनिक कार्रवाई बन्द की जाय और अस्थायी-संधि के लिए जर्मनों के साथ वातचीत शुरू की जाय। स्तालिन उस समय लेनिन के साथ थे। उस स्थिति के बारे में उन्होंने बाद में कहा :

> "यह एक भयंकर क्षण था। दुखोनिन और जनरल हेड-क्वार्टर ने जन-कमीसार-परिषद (मंत्रि-मंडल) के आदेशों को मानने से इन्कार कर दिया था। सैनिक अफसर पूरी तरह जनरल हेड-क्वार्टर के असर में थे। जहाँ तक सैनिकों का सम्बन्ध था, कोई नहीं कह सकता था कि एक करोड़ बीस लाख आदमियों का यह समूह क्या करेगा, क्योंकि वे ऐसे तथाकथित सेना-संगठनों के आधीन थे जो सोवियतों के विरोधी थे। खुद पेत्रोग्राद में, जैसा कि हम जानते हैं, सैनिक कादेत विद्रोह की तैयारी कर रहे थे।…मुझे याद है, जरा देर तार पर ठमकने के बाद लेनिन का चेहरा एकाएक चमक उठा; वह असाधारण रूप से उत्फुल्ल हो उठे। साफ ही था, लेनिन किसी निर्णय पर पहुँच चुके थे।"

लेनिन ने कहा—हमें तुरन्त रेडियो स्टेशन पर चलना है और जनरल दुखोनिन को बर्खास्त करके सीधे सैनिकों को हुक्म देना है। "जनरलों को पकड़ लो, सैनिक कार्रवाई बन्द करो, आस्ट्रियाई और जर्मन सैनिकों के साथ सम्बन्ध स्थापित करो और शांति के काम को अपने हाथ में लो।"

स्तालिन ने लिखा है :

> "यह 'अँधेरे में कूदना' था। लेकिन लेनिन ऐसे कूदने में जरा भी घबड़ानेवाले आदमी नहीं थे। बल्कि इसके विरुद्ध वह उसके लिए बहुत उत्सुक थे, क्योंकि वह जानते थे कि सेना शांति चाहती है, वह अपने रास्ते की सभी बाधाओं को दूर हटाकर शांति प्राप्त करेगी। वह जानते थे कि शांति स्थापना के इस ढंग का जर्मन और आस्ट्रियाई सिपाहियों पर भी असर पड़ना लाजिमी है और इससे सारे मोर्चे पर शान्ति की चाह बढ़ेगी। हम जानते हैं, लेनिन की यह क्रांतिकारी भविष्यदर्शिता भी बाद में पूरी तरह ठीक साबित हुई।"

लेनिन जानते थे कि नये सोवियत राज्य के पास अभी अपनी सेना नहीं है, इसलिए वह शक्तिशाली जर्मन सेना से लड़कर पार नहीं पा सकता। उससे जूझ रहने का मतलब होगा सर्वहारा के राज्य को खतरे में डालना। वह यह भी जानते थे कि जब साम्राज्यवादी एक-दूसरे की जान के ग्राहक हो रहे हैं तो उस अवस्था में एक पक्ष के साथ शांति स्थापित करना आसान है। लेनिन ने कहा :

> "संधि कर लेने से अक्तूबर क्रांति का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व कम नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा। रूस का समाजवादी सोवियत प्रजातंत्र सभी देशों के लोगों के लिए एक सजीव उदाहरण का काम देगा और इस उदाहरण का एक जबर्दस्त प्रचारात्मक और क्रांतिकारी असर पड़ेगा। एक तरफ बिल्कुल गयी-गुजरी पूँजीवादी व्यवस्था और लुटेरों के दो गुटों की लूट की लड़ाई है, और दूसरी तरफ शांति

तथा सोवियतों का समाजवादी प्रजातंत्र है।"

जिस तरह क्रांति के लिए तैयारी करते समय युद्ध-आरम्भ के पहले से ही स्तालिन लेनिन के दाहिने हाथ थे, उसी तरह अब भी वह उनके सबसे बड़े साथी और सहायक थे। मोर्चे पर युद्ध बन्द करके जब समझौते की बातचीत के लिए ब्रेस्त-लितोव्स्क में सोवियत प्रतिनिधि-मंडल भेजने का समय आया तो उसके लिए हिदायतें तैयार करने में लेनिन ने स्तालिन से सहायता ली। एक दिन प्रतिनिधि-मंडल ने हिदायत भेजने के लिए तार दिया, तो लेनिन ने जवाब दिया : "स्तालिन यहाँ नहीं हैं, और मैं उन्हें सूचित नहीं कर सका।...उत्तर देने से पहले मैं स्तालिन से सलाह लेना चाहता हूँ।" थोड़ी ही देर बाद लेनिन ने प्रतिनिधि-मंडल के पास तार भेजा : "स्तालिन अभी-अभी आये हैं। मैं इस बात पर उनसे तुरन्त सलाह-मशविरा करूँगा और अपना सम्मिलित उत्तर तुम्हारे पास भेजूँगा।" संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए जो हिदायत ब्रेस्त-लितोव्स्क भेजी गयी थी, उसपर लेनिन और स्तालिन दोनों के हस्ताक्षर थे। इसी से पता लग जाता है कि क्रांति के आरम्भ से ही स्तालिन का क्या स्थान था। पूँजीवादी लेखक और उनके पिट्ठू सोवियत के खिलाफ हजारों झूठ बोलने में पुण्य समझते हैं। इसलिए, कोई आश्चर्य नहीं यदि वे क्रांति की सफलता का ज्यादा श्रेय त्रात्स्की को देकर फिर उसके भाग्य पर आँसू बहाते हुए यह भाव पैदा करना चाहते हैं कि सोवियत शासन की बुनियाद कृतघ्नता और विश्वासघात पर है। कामेनेफ और जिनोवियेफ की तरह ही त्रात्स्की भी सोवियत की सफलता को खतरे में डालने का काम करता रहा था। मालूम ही हो चुका है कि त्रात्स्की ने युद्ध से पहले बोल्शेविकों का विरोध करने में कुछ भी नहीं उठा रखा था। ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के लिए जर्मनों ने बड़ी कड़ी शर्तें रखी थीं। उन्हें ऐसा करने का मौका जो मिला था। लेकिन, लेनिन उन्हें ब्रह्मरेखा नहीं मानते थे। तरुण सोवियत सरकार को मजबूत करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता थी, जिसे कड़ी शर्तों वाली यह संधि दे रही है।

त्रात्स्की और बुखारिन ने इस संधि पर बड़ा बावेला मचाया। उन्होंने माँग की कि इस संधि का खयाल छोड़ दिया जाय और लड़ाई जारी रखी जाय। संधि के लिए भेजे गये प्रतिनिधि-मंडल का नेता त्रात्स्की बनाया गया था। उसको सोवियत सरकार और बोल्शेविक पार्टी की हिदायतें मिल चुकी थीं। लेकिन 28 जनवरी, 1918 को उन्हें ताक पर रखकर उसने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इसका फल यह हुआ कि 18 फरवरी, 1918 को जर्मन सेना ने सोवियत भूमि पर हमला कर दिया। इससे सोवियत शासन के लिए भारी खतरा पैदा हो गया। उसी दिन सवेरे केन्द्रीय कमिटी की बैठक में लेनिन ने जोर देकर कहा कि संधि स्वीकार करने के बारे में एक तार जर्मनों के पास तुरन्त भेजा जाय। त्रात्स्की और बुखारिन अब भी इसका विरोध करते हुए कह रहे थे : "जर्मन आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं कर सकते।" केन्द्रीय कमिटी ने एक वोट के बहुमत से लेनिन की बात को अस्वीकृत कर दिया। कुछ ही घण्टों बाद पता लग गया कि त्रात्स्की और उसके साथी कितने पानी में हैं। लेनिन की बात सच्ची साबित हुई, जर्मनों ने सारे मोर्चे पर हमला कर दिया। रूसी सेना के पैर उखड़ गये और प्रायः बिना किसी विरोध के जर्मन सेनाएँ इतनी तेजी से आगे बढ़ीं कि राजधानी पेत्रोग्राद के लिए भारी खतरा पैदा हो गया।

अब एक मिनट की भी देर नहीं की जा सकती थी। उसी शाम को केन्द्रीय कमिटी फिर बैठी। लेनिन ने त्रात्स्की और बुखारिन पर जबर्दस्त आक्षेप किया। स्तालिन ने उसका समर्थन किया। अन्त में, बहुमत से केन्द्रीय कमिटी ने लेनिन के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि जर्मन सरकार को सूचित किया जाय कि सोवियत सरकार तुरन्त संधि करने के लिए तैयार है। उसी रात को लेनिन ने जन-कमीसार-परिषद (मंत्रि-मंडल) की ओर से इस सम्बन्ध में जर्मन सरकार के पास रेडियो-तार भेजा। लेकिन, जर्मन साम्राज्यवादी जल्दी में नहीं थे। वे अपने पूर्वी शत्रु की कमजोरी को समझ गये थे। उनकी सेनाएँ आगे बढ़ती रहीं।

जर्मन साम्राज्यवादी भी बोल्शेविकों के उसी तरह शत्रु थे, जिस तरह पश्चिमी साम्राज्यवादी। वे चाहते थे कि सोवियत सरकार को खतम करके रूस को जर्मन उपनिवेश बना लिया जाय। इस खतरे को समझकर लेनिन ने तुरन्त प्रतिरक्षा के लिए देश को संगठित किया। 18 फरवरी को सवेरे ही सीधे तार से उन्होंने द्विन्स्क सोवियत के सदस्यों को हिदायत दी कि जैसे भी हो जर्मनों को आगे बढ़ने से रोका जाय; बड़े परिमाण में

सैनिक सामान को जर्मनी के हाथों में न जाने दिया जाय। 21 फरवरी, 1918 को जन-कमीसार-परिषद के नाम से लेनिन ने एक फरमान–'समाजवादी पितृभूमि खतरे में'–द्वारा जनता से अपील की, जिसमें कहा गया था :

"रूस के कमकरों और किसानों का पवित्र कर्तव्य है कि पूँजीवादी साम्राज्यवादी जर्मनी की फौजों के विरुद्ध वे सोवियत प्रजातंत्र की पूरे दिल से रक्षा करें।"

इस प्रतिरक्षा में देश के सारे साधनों व शक्तियों को लगा देना था। लेनिन ने सभी स्थानीय सोवियतों और सभी कमकरों और किसानों से कहा कि "हर स्थान की प्रतिरक्षा अपने खून की आखिरी बूँद देकर करो।" इसी अपील में लेनिन ने कहा था कि देश के धन का शत्रु के हाथ में जाना हर प्रकार से रोको; पीछे हटते समय रेलों को नष्ट कर दो; रेलवे के मकानों को उड़ा दो; रेल के डिब्बों, इंजनों आदि को पूर्व की ओर देश के भीतर भेजो; सभी अनाज खाद्य-सामग्री तथा मूल्यवान सम्पत्ति–जिसके शत्रु के हाथ में पड़ने का खतरा हो–नष्ट कर दो ! उन्होंने पेत्रोग्राद, कियेव और युद्ध-क्षेत्र के सभी कस्बों, गाँवों और खेड़ों के किसानों तथा कमकरों से कहा कि मजदूर बटालियनें बनाकर सैनिक इंजीनियरों की देखरेख में खाइयाँ खोदो ! फरमान के अन्त में उन्होंने लिखा था :

"शत्रुओं के चरों, मुनाफाखोरों, लुटेरों, गुंडों, क्रांति-विरोधी आन्दोलकों और जर्मन गुप्तचरों को गोली से उड़ा दो।

"समाजवादी पितृभूमि खतरे में है !

"समाजवादी पितृभूमि–जिन्दावाद !"

लेनिन की इस अपील ने सभी जगह लोगों में उत्साह भर दिया। सर्वत्र क्रांतिकारी जनता की नयी सेना–लाल सेना–की टुकड़ियाँ संगठित हुईं ! तरुण लाल सेना ने बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए जर्मनों को रोक दिया। 23 फरवरी, 1918 को प्स्कोफ और नार्वा में उन्हें जबर्दस्त मात दी। जर्मनों का पेत्रोग्राद की ओर बढ़ना रुक गया। 23 फरवरी–जिस दिन उसने जर्मन साम्राज्यवाद की सेनाओं का मुँह मोड़ दिया था–लाल सेना का जन्म-दिवस माना जाता है। 23 फरवरी को सबेरे संधि के लिए जर्मनों की नयी शर्तें प्राप्त हुईं। इनका जवाब देने के लिए एक ही दिन रह गया था।

लेनिन संधि के पक्ष में थे। केन्द्रीय कमिटी की बैठक में लेनिन ने उसी दिन अपना अल्टीमेटम रखते हुए माँग की कि जर्मनों की संधि की शर्तें मान ली जायें और क्रांति की 'बातें बघारना' बन्द किया जाय। स्तालिन और स्वेर्दलोफ ने लेनिन का समर्थन किया। स्तालिन ने कहा था : "या तो थोड़ा-सा अवसर, नहीं तो क्रान्ति का सत्यानाश, तीसरा कोई रास्ता नहीं है।" त्रात्स्की, बुखारिन तथा उनके अनुगामियों ने लेनिन की नीति का जबर्दस्त विरोध किया। लेकिन अन्त में, केन्द्रीय कमिटी ने बहुमत से लेनिन के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए जर्मन शर्तों को मान लिया। 23 फरवरी को ही 'प्रावदा' के सायंकाल के संस्करण में लेनिन का एक लेख छपा, जिसमें उन्होंने लिखा था :

"वर्तमान काल में और वर्तमान परिस्थितियों में केवल गैर-जिम्मेदार बात बघारनेवाले ही रूस को युद्ध में ढकेलना चाहेंगे। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, यदि यह नीति मानी गयी, तो मैं एक क्षण के लिए भी सरकार या पार्टी की केन्द्रीय कमिटी में नहीं रहूँगा।...

"हरेक आदमी को यह समझ लेना चाहिए : जो कोई तुरन्त संधि का, सबसे कड़ी शर्तों के होते हुए भी विरोध करता है, वह सोवियत शासन को खतरे में डालता है।"

23 फरवरी की शाम को अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के बोल्शेविक तथा वामपक्षी समाजवादी-क्रांतिकारी सदस्यों की एक संयुक्त बैठक हुई। इसमें लेनिन ने संधि के संबंध में भाषण दिया। त्रात्स्की, बुखारिन, उनके साथी तथा वाम समाजवादी-क्रांतिकारी मिलकर लेनिन का विरोध करते रहे। इसके बाद अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी के बोल्शेविक सदस्यों की एक बैठक हुई। इसने लेनिन के भाषण के बाद उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अन्त में 24 तारीख को 3 बजे सबेरे केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी

की बैठक हुई, जिसमें लेनिन ने जर्मनी की शर्तों के वारे में रिपोर्ट दी। उसपर गरमागरम बहस हुई और साढ़े चार बजे लेनिन के प्रस्ताव को कमिटी ने स्वीकार कर लिया।

18 से 24 फरवरी तक का सप्ताह—सोवियत-शासन के लिए भयंकर सप्ताह—समाप्त हुआ। जर्मन शर्तें मान ली गयीं। जर्मनी का हमला वन्द हो गया। लेनिन हरेक बात को जिस तरह समझ और देख सकते थे, दूसरों में वह शक्ति कहाँ थी ? उन्होंने लिखा था : "रूसी और अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति के इतिहास में यह एक सबसे बड़ा मोड़ था।" इसमें क्या शक है ! यदि उस समय जर्मनों ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर सोवियत शासन को खतम कर दिया होता, तो क्या आज, 1955 में, हम मानवता के आधे भाग को समाजवाद के झंडे के नीचे देख सकते थे ? त्रात्स्की के अंधेपन के कारण यही हुआ कि जर्मनों की शर्तें पहले से भी ज्यादा कड़ी हो गयी थीं और इस बीच बहुत भारी परिमाण में युद्ध-सामग्री जर्मनों के हाथ में चली गयी थी। त्रात्स्की, बुखारिन तथा उनके साथियों ने "वस्तुतः जर्मन साम्राज्यवादियों की सहायता की और जर्मनी में क्रान्ति के वृद्धि-विकास में रुकावट डाली।" संधि हो जाने के वाद भी त्रात्स्की और बुखारिन ने और भी जोरों से लेनिन के विरुद्ध आन्दोलन करना शुरू किया। उन्होंने वाम समाजवादी-क्रांतिकारियों से मिलकर लेनिन और उनके साथियों को सरकार से हटाने की कोशिश की। वे ब्रेस्त-लितोव्स्क की संधि को तोड़कर जर्मनी को फिर आक्रमण करने का निमंत्रण देना चाहते थे। लेकिन, स्तालिन और स्वेर्दलोफ को पकड़कर मार डालने का षड्यंत्र भी उन्होंने रचा था—ये सब बातें बीस वर्ष बाद मालूम हुई।

2. सातवीं पार्टी कांग्रेस (1918 ई.)

6 मार्च, 1918 को पेत्रोग्राद में पार्टी की असाधारण सातवीं कांग्रेस बैठी। लेनिन ने ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के बारे में अपनी रिपोर्ट दी। डेढ़ दिन तक बहस जारी रही। त्रात्स्की और बुखारिन ने जबर्दस्त विरोध किया। लेकिन अन्त में, कांग्रेस ने लेनिन की नीति को माना। लेनिन ने अपनी रिपोर्ट तथा प्रस्ताव में भी कहा था कि सोवियत भूमि के ऊपर आगे भी साम्राज्यवादी हमले होने अनिवार्य हैं, इसलिए देश की प्रतिरक्षा के लिए पूरी तरह से तैयारी करना हमारा कर्तव्य है। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि सारी वयस्क जनता के सभी स्त्री-पुरुषों को बाकायदा हथियार इस्तेमाल करने तथा सैनिक दाँव-पेंचों की शिक्षा दी जाय :

"हमें बस केवल एक ही नारा अपने सामने रखना है : 'गंभीरता से युद्ध-कला सीखो !' "

इस कांग्रेस में और भी कई महत्त्वपूर्ण काम हुए। लेनिन के प्रस्ताव को स्वीकार करके कांग्रेस ने पार्टी का नाम बदलकर रूसी कम्युनिस्ट (बोल्शेविक) पार्टी रखा। लेनिन के बनाये हुए कार्यक्रम के मसौदे को आधार मानकर उसे अंतिम तौर से तैयार करने के लिए एक कार्यक्रम कमिटी नियुक्त की गयी। लेनिन और स्तालिन भी इसके सदस्य थे।

15 मार्च को चतुर्थ असाधारण अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस हुई। लेनिन की रिपोर्ट सुनने के बाद इसने ब्रेस्त-लितोव्स्क-संधि को स्वीकार किया।

3. मास्को राजधानी (1918 ई.)

जर्मनों ने पेत्रोग्राद के पास पहुँचकर वतला दिया था कि सोवियत सरकार की राजधानी के लिए यह नगर अधिक अनुकूल नहीं है। इसीलिए, इसी अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस ने निश्चय किया कि राजधानी को पेत्रोग्राद से मास्को बदल दिया जाय जिससे कि सरकारी केन्द्र शत्रुओं की पहुँच से बाहर, सुरक्षित स्थान में, रहे; साथ ही, मास्को का सम्बन्ध रूस के दूसरे भागों से जितनी अच्छी तरह से स्थापित है, उससे भी फायदा उठाया जाय। राजधानी बदलने का मतलब केवल कागजी प्रस्ताव पास करना नहीं था, वहाँ से सरकार के हरेक विभाग को मास्को ले जाना था। यह मामूली काम नहीं था। ट्रेनें-की-ट्रेनें लदी हुई पेत्रोग्राद से मास्को की ओर बढ़ने लगीं। एक ट्रेन में लेनिन और केन्द्रीय कमिटी तथा सरकार के सदस्य भी थे। क्रांति-विरोधी समाजवादी-क्रांतिकारियों ने इस ट्रेन को उड़ा देने का षड्यंत्र रचा था, लेकिन सोवियत गुप्तचर-विभाग पूरी तौर से सजग था। 10

मार्च, 1918 को लेनिन ने पेत्रोग्राद से प्रस्थान किया। अगले दिन वह मास्को पहुँचे।

11 मार्च, 1918 से मास्को दुनिया के प्रथम और सबसे शक्तिशाली समाजवादी राज्य की राजधानी बना। सदियों से सूना क्रेमलिन दुर्ग अब सोवियत का हृदय बन गया।

'हमें रूस का शासन करना है'—लेनिन ने अब रूस को एक ऐसा शक्तिशाली राष्ट्र बनाने की ओर अपना सारा ध्यान लगाया जिससे कि कोई दुश्मन उसकी तरफ ताकने की हिम्मत न कर सके। उन्होंने एक बार कहा था : "हमने—बोल्शेविक पार्टी ने—रूस को विश्वास दिला दिया है, हमने धनिकों से गरीबों के लिए, शोषकों से मेहनतकशों के लिए रूस को जीत लिया है। अव हमें रूस का शासन-प्रवन्ध करना होगा।" लेनिन ने अब समाजवादी निर्माण के काम की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। देश के शासन-प्रवन्ध के संगठन के लिए सबसे जरूरी बात थी राष्ट्रीय हिसाब-किताव को बड़ी कड़ाई के साथ रखना तथा उत्पादन और वितरण का नियन्त्रण करना। यह आवश्यक था कि श्रम की उत्पादकता को चरम सीमा तक बढ़ाया जाय और एक नयी तरह के सोवियत समाजवादी श्रम-अनुशासन को लागू किया जाय। साथ ही, समाजवादी होड़ को संगठित करना और मुनाफाखोरी, मटरगश्ती तथा निम्नमध्यवर्गी दिखावे के खिलाफ संघर्ष करना भी जरूरी था। लेनिन ने कहा था कि पूँजीवाद के नीचे अनुशासन भूख, जबर्दस्ती और लाठी के बल पर कायम रखा जाता है। सोवियत-व्यवस्था में वह दूसरी तरह का है। नया अनुशासन समाजवादी अनुशासन है, साथी की तरह परस्पर-सम्वन्ध का अनुशासन है। सोवियत अनुशासन को कमकर लोगों की विशाल जनता ने अपने रोजमर्रा के व्यावहारिक काम में कायम किया है : "आर्थिक जीवन की समस्याएँ एक नये तरीके से हमारे सामने आ रही हैं। पैसे-कौड़ी का हिसाब साफ-साफ और जागरूकता के साथ रखो, मितव्ययिता के साथ प्रवन्ध करो, सुस्त मत बनो, चोरी न करो, काम के समय कड़े अनुशासन का पालन करो।"

समाजवादी निर्माण आरम्भ करने के लिए योजना की रूपरेखा तैयार करते हुए लेनिन ने सम्पूर्ण राष्ट्रनीति के समाजवादी पुनर्संगठन के वास्ते ऊँचे पैमाने के मशीन-उद्योग के महत्त्व पर बहुत जोर दिया। उनका लक्ष्य था देश को औद्योगिक रूप से परमुखापेक्षी न रहने देना। और यह, टेकनीक के द्वारा तथा आर्थिक रूप से देश को स्वतंत्र करने से ही हो सकता था। उन्होंने कहा कि समाजवादी राष्ट्रीय अर्थनीति का निर्माण विजली के आधुनिक टेक्नीकल आधार पर करना है। उन्होंने देश के औद्योगीकरण और बिजलीकरण के सम्बन्ध में हिदायतें दीं। शुरू के दिनों में ही लेनिन ने सोवियत राज्य के लिए एक अकेली राज्य-आर्थिक-योजना बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

"एक···दृढ़ संकल्प की जरूरत है, सभी व्यावहारिक कामों में सवको एकजुट होकर काम करना होगा। न रेलें, न यातायात-व्यवस्था, न विशाल मशीनें और न आम फैक्टरियाँ ही ठीक तौर से काम कर सकती हैं, यदि सभी मौजूदा कमकर जनसाधारण को एक आर्थिक संस्था में एकतावद्ध करके घड़ी की चाल की तरह दृढ़ संकल्प के साथ काम करने के लिए जुटा न दिया गया।"

लेनिन ने कहा कि समाजवाद का निर्माण करनेवाले करोड़ों व्यक्तियों के संकल्पों और क्रियाओं की यह एकता समाजवादी राज्य-योजना से ही कायम हो सकती है। सातवीं पार्टी कांग्रेस (मार्च 1918) में लेनिन ने कहा था :

> "···सारे राज्य के आर्थिक यंत्र को एक अकेली विशाल मशीन, एक आर्थिक सजीव ढाँचे के रूप में परिणत करना होगा, जो इस तरह काम करे कि एक अकेली योजना करोड़ों आदमियों का पथ-प्रदर्शन कर सके। यही महाविशाल संगठनात्मक करणीय आज हमारे सामने है।"

लेनिन बड़ी तत्परता से नव-निर्माण के कार्य के वारे में सोच रहे थे। 26 अप्रैल को पार्टी की केंद्रीय कमिटी की एक बैठक में उन्होंने उपरोक्त बातों पर जोर दिया। 28 अप्रैल को उन्होंने 'सोवियत सरकार के फौरी काम' के नाम से 'इजवेस्तिया' (सरकारी पत्र) में अपना लेख छपवाया और अगले दिन अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की बैठक में उसी विषय पर अपनी रिपोर्ट दी। इस प्रकार इस क्षेत्र में लेनिन ने पथ-प्रदर्शन करते हुए लोगों को नव-निर्माण के महत्वपूर्ण काम में लगाया। 28 जून को लेनिन ने वड़े पैमाने के समस्त

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के फरमान पर हस्ताक्षर किये।

जर्मनों से लोहा—देश की प्रतिरक्षा की ओर से लेनिन का ध्यान एक मिनट के लिए भी नहीं हटा। वस्तुतः प्रतिरक्षा को मजबूत करने के लिए भी नव-निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता थी। लड़ाई के कारण और जर्मनों के भीतर घुस आने से देश के आर्थिक साधनों की बड़ी क्षति हुई थी। संधि हो जाने पर भी उसे तोड़कर और उक्राइन, बेलोरूस तथा कितने ही दूसरे भूभागों पर अधिकार करके, वहाँ पूँजीवाद तथा जमींदारी की पुनः स्थापना करके, जर्मन लोग रूसियों पर अत्याचार करने लगे। उन्होंने उनके गाँव नष्ट कर दिये; हजारों कमकरों और किसानों को गोली मार दी। लेकिन जवाब में उक्राइनी और बेलोरूसी जनता ने विदेशियों के खिलाफ मुक्ति-युद्ध छेड़ दिया। आमने-सामने लड़ना संभव न देखकर उन्होंने जगह-जगह छापामार लड़ाई शुरू कर दी; जगह-जगह सशस्त्र-विद्रोह उठ खड़े हुए। जर्मनों ने आसानी से सोवियत भूमि के इस उर्वर भाग को अपना उपनिवेश बनाना चाहा था। लेकिन जनता के संघर्षों का दबाव उनके ऊपर इतने जोर का पड़ा कि जर्मन युद्ध-यंत्र विश्रृंखलित हो गया और लेनिन के शब्दों में "यह सेना भ्रष्ट होकर लुटेरों के गुट के रूप में परिणत हो गयी।" जर्मन और आगे बढ़ना चाहते थे। इसपर लेनिन ने फिर जन-युद्ध का नारा बुलन्द किया : "खारकोफ गुबर्निया की पूर्वी सीमाओं की रक्षा करने के लिए अपनी सारी शक्ति से जो भी उपाय हो सके, तुरंत करो।" 2 जून, 1918 को लेनिन ने सभी सोवियत-अधिकारियों को कड़ा आदेश दिया कि विदेशी आक्रमणकारियों और रूसी सफेद-गारदों को नष्ट करने के लिए सारी शक्ति लगा दो; खतरेवाले इलाकों की सारी जनता से उन्होंने कहा कि दुश्मन के लिए एक भी दाना न छोड़ो, सारे अनाज तथा पशुओं को भीतर की ओर सुरक्षित जिलों में ले आओ; उन जिलों में जो मशीन, युद्ध-सामग्री, रेलवे का सामान हो, सबको भीतर की ओर भेज दो; शत्रु के बढ़ाव को रोकने के लिए अपनी शक्ति-भर हर प्रयत्न करो; उनपर छापा मारो, उनके खिलाफ बारूदी हथियार और तलवार आदि इस्तेमाल करो; अपने पिछवाड़े को सुरक्षित रखो और इसके लिए शत्रु को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करनेवाले सभी गुप्तचरों, आग भड़कानेवालों, सफेद-गारदों तथा क्रांति-विरोधी विद्रोहियों को खतम कर दो।

लेनिन की हिदायतें कारगर साबित हुईं। उनसे लोगों को भारी प्रेरणा मिली और हर जगह जनता ने डटकर जर्मनों का मुकाबला किया।

1918 के मई और जून महीनों में खाद्य-स्थिति बड़ी चिन्तापूर्ण हो गयी। देश पर अकाल की छाया मँडरा रही थी। कुलक (धनी किसान) और मुनाफेखोर अपनी खत्तियों में अनाज को भरकर, लोगों को भूखा रखकर, क्रांति का गला घोंटना चाहते थे। देहात में कुलकों और गरीब किसानों के बीच भीषण संघर्ष हो रहा था। लेनिन ने कमकरों, विशेषकर पेत्रोग्राद के मजदूरों से कहा कि वे देहात में जाकर कुलकों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए गरीब किसानों को संगठित करें। उन्होंने कहा :

> "साथी कमकरो ! याद रखो कि क्रांति एक संकटपूर्ण स्थिति में है। याद रखो, तुम्हें छोड़ और कोई नहीं, केवल तुम्हीं क्रांति को बचा सकते हो। हमें जिनकी जरूरत है, वे हैं दसियों हजार चुने हुए कमकर, राजनीतिक तौर से आगे बढ़े हुए कमकर, ऐसे कमकर जो समाजवाद के भक्त हों, जो रिश्वत के फेरे में तथा लूट-खसोट के लोभ में नहीं पड़ सकते और कुलकों, नफाखोरों, लुटेरों, घूस देनेवालों तथा संगठन तोड़नेवालों के खिलाफ एक लौहशक्ति तैयार करने में सक्षम हों।"

उन्होंने कुलकों के खिलाफ निष्ठुर संघर्ष करने के लिए कहा : "कुलक सोवियत सरकार के भयंकर शत्रु हैं, उनके खिलाफ निष्ठुर युद्ध करना होगा। कुलकों के लिए मृत्यु !" लेनिन ने घोषित किया कि वे सभी लोग जनता के शत्रु हैं जो फाजिल अनाज को अपने पास रखकर उसे निश्चित दाम पर सरकार के हाथ बेचने से इन्कार करते हैं। लेनिन के प्रस्ताव पर खाद्य-पूर्ति मंत्रि-विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग का काम था जबर्दस्ती अन्न को छीनकर देश को भुखमरी से बचाना। 11 जून (1918 ई.) को उन्होंने अपने और स्वेर्दलोफ (राष्ट्रपति) के हस्ताक्षर से एक फरमान निकालकर हुक्म दिया कि गरीब-किसान-कमिटियाँ कायम की जायें और उनके हाथ में देहाती इलाकों का नियंत्रण दिया जाय।

अब क्रांति के भाग्य का फैसला रोटी के हाथ में था। भुखमरी, सोवियत-भक्तों को भी सोवियत-विरोधी बना सकती थी। इसीलिए लेनिन ने कहा : "रोटी की लड़ाई समाजवाद की लड़ाई है !"

दक्षिण में अब भी अन्न का भारी भंडार संचित था। लेकिन वह मास्को और लेनिनग्राद कैसे पहुँचे ? इस असाधारण काम के लिए असाधारण व्यक्ति की जरूरत थी। इसलिए स्तालिन को असाधारण अधिकार देकर दक्षिण रूस में खाद्य-पूर्ति के काम पर लगाया गया।

6 जून को स्तालिन जारित्सिन (आधुनिक स्तालिनग्राद) पहुँचे। जन-कमीसार-परिषद के नाम से 10 जून को एक अपील जारी करते हुए लेनिन ने लिखा था :

> "रूसी, फ्रांसीसी और चेकोस्लोवाक साम्राज्यवादी भूख द्वारा क्रांति को ध्वस्त करने के अपने प्रयत्न में असफल होंगे। दक्षिण-पूर्व भूखे उत्तर की सहायता करने आ रहा है। जन-कमीसार स्तालिन ने–जो कि जारित्सन में दोन और कुबान इलाकों की खाद्य-पूर्ति का संचालन कर रहे हैं–हमें तार दिया है कि वहाँ भारी परिमाण में अनाज का ढेर मौजूद है और आशा है कि अगले कुछ सप्ताहों में हम उसे उत्तर भेज सकेंगे !"

सचमुच ही स्तालिन रेलें भर-भरकर अनाज, मांस और मछली पेत्रोग्राद, मास्को तथा दूसरे औद्योगिक केन्द्रों की ओर भेजने लगे। गरीब-किसान-कमिटियों का संगठन करने के लिए जो वर्ग-चेतन क्रांतिकारी कमकर भेजे गये थे, उन्होंने देहातों में सोवियत शासन को मजबूत किया और मझोले किसानों को कुलकों, सफेद-गारदों और विदेशी आक्रमणकारियों से मोर्चा लेने में मदद दी।

समाजवादी-क्रांतिकारी अपने नेता करेन्स्की की तरह ही क्रांति-विरोधी थे। लेकिन उनके वामपक्ष ने क्रांति का साथ दिया था। हम देख चुके हैं कि ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के समय वे किस तरह सोवियत सरकार की टाँग पकड़कर पीछे खींचना चाहते थे। कुलक वर्ग–ग्रामीण पूँजीपति वर्ग–उनका आधार था, कुलकों के ऊपर प्रहार होने से उन्होंने अपने पैर के नीचे से जमीन खिसकती देखी। उन्होंने लेनिन, बोल्शेविक पार्टी तथा सोवियत सरकार के विरुद्ध भयंकर कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं।

4. प्रथम सोवियत संविधान

4 जुलाई, 1918 को प्रथम सोवियत कांग्रेस आरंभ हुई। इस कांग्रेस में 'वाम' समाजवादी-क्रांतिकारियों ने 'वाम कम्युनिस्टों' का समर्थन प्राप्त कर यह माँग की कि जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा की जाय। उन्होंने धमकी दी कि यदि सरकार ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि को फाड़ नहीं फेंकती, तो 'जनता' उसे फाड़ फेंकेगी। उन्होंने यह भी माँग की कि कुलकों के खिलाफ हो रही कार्रवाई वन्द की जाय और देहाती इलाकों में अन्न जमा करने के लिए कमकरों को न भेजा जाय। लेनिन ने उनको मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा :

> "जनता में कोई तुम्हारा समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है। कमकरों और किसानों की मित्रता दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है...हमारी पार्टी के खिलाफ कोई पागलपन भरी बकवास इस मैत्री को नहीं तोड़ सकती।"

'वाम' समाजवादी-क्रांतिकारी साफ देख रहे थे कि कांग्रेस और सरकार में कहीं भी उनकी चल नहीं पा रही है; उधर, कुलक भी अपनी शक्ति खोते जा रहे थे। उन्होंने 6 जुलाई को सोवियत सरकार के खिलाफ विद्रोह कर दिया। सोवियत के खिलाफ जर्मनों को भड़काने के लिए उन्होंने मास्को में जर्मन राजदूत मीरबाख की हत्या भी कर डाली। लेनिन ने तुरन्त विद्रोह को दबाने के लिए सख्ती का कदम उठाया। जिला पार्टी कमिटियों, जिला सोवियतों और लाल सेना के जिला हेड-क्वार्टरों के पास टेलीफोन द्वारा संदेश भेजकर उन्होंने कहा : "अपराधियों को पकड़ने के लिए सभी शक्तियों को चालित करो, उन्हें तुरन्त पकड़ने के लिए सबको तैयार करो !" कुछ ही घंटों में 'वाम' समाजवादी-क्रांतिकारियों का विद्रोह परास्त कर दिया गया। यह स्मरण रहे कि पहले-पहल बोल्शेविकों ने कुछ गैर-पार्टी लोगों को भी सरकार में ले लिया था। लेकिन जब क्रांति-विरोधी शक्तियों का सफाया किया जाने लगा, तो इनमें से रँगे स्यार क्रांति से पथ-भ्रष्ट हो खुद अपनी करनी से ही

अपने खात्मे की तरफ बढ़ चले।

जर्मन राजदूत की हत्या द्वारा समाजवादी-क्रांतिकारियों ने जर्मनी को रूस के भीतर दखल देने का बुलावा दिया था। जर्मन सरकार ने तुरन्त मास्को में जर्मन सैनिकों की एक बटालियन रखने की माँग करते हुए कहा कि जर्मन-दूतावास की रक्षा के लिए ऐसा करना जरूरी है। सोवियत सरकार ने ऐसा करने से साफ इन्कार करते हुए उत्तर दिया कि देश के सर्वप्रभुत्व पर हम जरा भी आँच नहीं आने देंगे। लेनिन ने कहा था कि इसका अर्थ होगा "विदेशी सेनाओं द्वारा रूस पर अधिकार करने का आरम्भ।" जर्मन साम्राज्यवादियों को मुँहतोड़ जवाब देते हुए उन्होंने यह भी कहा कि अगर मास्को में कोई सेना भेजने की कोशिश की गयी तो हम उसका जवाब देने के लिए तैयार हैं।

लेनिन ने उसी समय जारित्सिन में स्तालिन के पास 'वाम' समाजवादी-क्रांतिकारियों के विद्रोह की सूचना भेजते हुए कहा था :

> "हम आज ही रात को उन्हें बड़ी निष्ठुरता से दबा देंगे और सारी जनता को यह सत्य बतला देंगे कि हम युद्ध से बाल-बाल बचे हैं।...यह आवश्यक है कि इन कमानों और बदहवास दुस्साहसियों को निष्ठुरतापूर्वक नष्ट कर दिया जाय। ये क्रांति-विरोधियों के हाथ के हथियार बन गये हैं।" स्तालिन ने जवाब देते हुए लिखा :
>
> "जहाँ तक इन बदहवासों का सवाल है, आपको विश्वास रखना चाहिए कि हम जरा भी गफलत नहीं करेंगे। हम शत्रुओं के साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे, जैसा शत्रुओं के साथ करना चाहिए।"

4 जुलाई को पाँचवीं सोवियत कांग्रेस शुरू हुई थी और 6 जुलाई को समाजवादी-क्रांतिकारियों ने जर्मन राजदूत की हत्या करवायी थी। इसी कांग्रेस ने रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी प्रजातंत्र का संविधान (शासन विधान) स्वीकृत किया, जो कि सोवियत संघ का प्रथम संविधान था। इस संविधान को तैयार करने में लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोफ का खास हाथ था।

संविधान स्वीकृत करने के बाद अपनी भारी प्रसन्नता प्रकट करते हुए लेनिन ने जुलाई 1918 में जर्मन मार्क्सवादी क्लारा जेटकिन को लिखा था :

> "मैंने अभी-अभी नयी राज्य मोहर पायी है। यहाँ उसकी छाप दे रहा हूँ। उसमें लिखा है : 'रूसी समाजवादी संघात्मक सोवियत प्रजातंत्र ! दुनिया के मजदूरों एक हो !' "

17

गृह-युद्ध (1918-20 ई.)

1. काले बादल

क्रांति को नौ महीने बीत चुके थे। सोवियत सरकार प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण हुई थी। लेकिन, अभी भी ऊपर काले बादल मँडरा रहे थे। पश्चिम के साम्राज्यवादी, फूटी आँखों भी पूँजीवाद के परम शत्रु बोल्शेविकों को देखना नहीं चाहते थे। वे सोवियत रूस के भीतर हथियारबन्द दखलन्दाजी के लिए तैयार थे। मई के अन्त और जून के आरम्भ में यह साफ मालूम होने लगा कि अवकाश का समय अब खतम हो रहा है। क्लारा जेटकिन को लिखे एक पत्र में लेनिन ने लिखा था :

"हम इस समय संभवतः सारी क्रांति के अत्यन्त कठिन सप्ताहों में से गुजर रहे हैं। वर्ग-संघर्ष तथा गृह-युद्ध जनता में बहुत भीतर तक घुस गया है। सारे देहाती इलाकों में जनता दो टुकड़ों में बँट गयी है : गरीब किसान हमारी ओर हैं और कुलक बदहवास होकर हमारा विरोध कर रहे हैं। अंतांत* ने चेकोस्लोवाकों को खरीद लिया

है। सब जगह क्रांति-विरोधी विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। समूचा पूँजीपति वर्ग अपनी पूरी शक्ति लगाकर हमें उखाड़ फेंकने की कोशिश कर रहा है। तो भी हमें पूरा विश्वास है कि हम (1794 और 1849 ई. की) क्रांति के 'आम' रास्ते से बच निकलेंगे और पूँजीवादियों को पराजित करेंगे।"

सोवियत क्रांति को 1794 ई. की फ्रांसीसी क्रांति और 1849 की जर्मन क्रांति की तरह असफल नहीं होना था, क्योंकि अब सर्वहारा क्रांति की रक्षा के लिए मार्क्सवादी बोल्शेविक पार्टी की जबर्दस्त सेना वहाँ मौजूद थी और लेनिन जैसा सेनापति उसका संचालन कर रहा था।

29 जुलाई, 1918 को अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी कमिटी, मास्को सोवियत तथा मास्को की फैक्टरी कमिटियों और मजदूर सभाओं के प्रतिनिधियों की सम्मिलित वैठक में वोलते हुए लेनिन ने कहा :

"युद्ध और सैनिक घटनाएँ क्रांति के मूल प्रश्न के रूप में रंगमंच पर फिर प्रकट हुई हैं।...अब रूसी समाजवादी संघात्मक सोवियत प्रजातंत्र का सारा अस्तित्व, रूसी क्रांति का सारा प्रश्न, युद्ध का प्रश्न हो गया है।...हम युद्ध के भीतर हैं और क्रांति के भाग्य का फैसला इसके परिणाम पर निर्भर है।... हमें सारा प्रयत्न इसी दिशा में करना है और हरेक को हथियार उठाने के लिए ललकारना है।"

'सवकुछ मोर्चे के लिए'–1918 की गर्मियों में सोवियत प्रजातंत्र की स्थिति बड़ी भयंकर हो उठी। विदेशी और घर के क्रांति-विरोधी सोवियत शासन को उखाड़ फेंकने के लिए एक हो गये थे। किसी तरह से जर्मनी से छुट्टी पाने पर, अब इंगलैंड, फ्रांस, जापान और संयुक्त राज्य अमरीका के विदेशी दखलन्दाज रूस की तीन-चौथाई भूमि पर अधिकार किये हुए थे। उक्राइन और काकेशस, साइवेरिया और सुदूर-पर्व, यूराल और मध्य एशिया का बाकी रूस से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। रूस के भी केंद्रीय भाग में सब जगह कुलकों ने विद्रोह कर रखा था। सोवियत रूस को अपने आहार, कच्चे माल और तेल-कोयले के स्रोतों से वंचित होना पड़ा था। अन्न के बिना लोगों में भुखमरी फैली हुई थी। करीब-करीव सारे कल-कारखाने बन्द हो गये थे।- समाजवादी पितृभूमि खतरे में थी। इसी समय लेनिन ने 'सबकुछ मोर्चे के लिए' नारा दिया। नये खतरे को देखकर लोगों में फिर नया जोश पैदा हुआ। लेनिन स्वयं अक्सर कारखानों में जाते, एक-एक दिन में तीन-तीन, चार-चार सभाओं में बोलते। जन-कमीसार-परिषद और पार्टी की केंद्रीय कमिटी की बैठकों में तो उन्हें करीब-करीब रोज ही बोलना पड़ता।

लाल सेना का गठन–लेनिन, स्तालिन, फ्रुंजे और वोरोशिलोफ का लाल सेना के निर्माण में खास हाथ था। 28 जनवरी, 1918 को कमकर-किसान लाल सेना के संगठन के फरमान पर लेनिन ने हस्ताक्षर किये। इस सेना को बाकायदा शिक्षा देकर तथा अनुशासन में ढालकर इसे दुनिया की अपराजेय सेना के रूप में परिणत किया गया।

सोवियत सरकार ने अनिवार्य सैनिक-सेवा लागू की। पहले सेना के सेनापति निर्वाचित किये जाते थे। लेकिन अब, निर्वाचन को वन्द कर दिया गया और उसकी जगह योग्य व्यक्तियों को उन पदों पर नियुक्त किया जाने लगा। पुरानी सेना के सैनिक विशेषज्ञों को भी सेना में लाने में आनाकानी नहीं की गयी। हाँ, राजनीतिक तौर से देखभाल करने के लिए हरेक सैनिक-कमांडर के साथ सैनिक-कमीसार रखने की प्रथा उसी समय जारी हुई। कमीसार का काम था अफसरों और सिपाहियों को राजनीतिक भूल न करने देना। इसी समय किसानों और मजदूरों में से होनहार व्यक्तियों को लाल सेनापति वनाने के लिए बड़ी तेजी से सैनिक शिक्षा दी जाने लगी ताकि सेना में जारशाही की देन जाति-प्रथा न रहने पाये।

लेनिन ने देश को पहले ही से खबरदार कर दिया था कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ जिस गृह-युद्ध में सीधे शामिल हो रही हैं, वह जल्दी खतम नहीं होगा। अक्तूबर 1918 में लेनिन ने कहा कि 1919 के वसन्त तक हमारे पास तीस लाख सेना होनी चाहिए। सचमुच ही अपने नेता के आह्वान पर 1919 ई. में 30 लाख लाल सैनिक हथियारवन्द होकर समाजवादी क्रांति की रक्षा के लिए तैयार हो गये।

---

* इंगलैंड, फ्रांस और उनके मित्र।–ले.

गृह-युद्ध के खतरे का आभास मिलते ही सारा देश चौकन्ना हो गया। क्रांति-विरोधियों पर विजय प्राप्त करना ही सबका परम ध्येय हो गया। सभी कार्य लक्ष्य को सामने रखकर किये जाने लगे। देश को हथियारबन्द खेमा घोषित करके सारे सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को युद्ध के मातहत किया गया। बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों के अतिरिक्त मझोले और छोटे पैमाने के उद्योगों को भी राज्य-नियंत्रण में ले लिया गया। अन्न जमा करने की इजारेदारी सरकार ने ली और अन्न के सम्बन्ध में वैयक्तिक व्यापार करना निषिद्ध कर दिया गया। गल्ले के फाजिल ढेर पर सरकार ने अधिकार कर लिया। **"जो काम नहीं करता, वह खायेगा भी नहीं"** के सिद्धांत के अनुसार अनिवार्य सार्वजनिक मेहनत करने का कानून लागू किया गया। देश के सैनिक और दूसरे स्रोतों को पूरी तौर से युद्ध के लिए संचालित करने के वास्ते कमकर-किसान-प्रतिरक्षा-परिषद बनायी गयी। इसके अध्यक्ष लेनिन थे। स्तालिन भी इसमें सम्मिलित थे। लेनिन को क्षण-भर के लिए भी अन्तिम विजय में संदेह नहीं पैदा हुआ। हाँ, भारी संकट से गुजरना पड़ेगा, यह उन्हें अच्छी तरह मालूम था।

"रोटी ! रोटी !" –खाद्य-स्थिति सबसे भयंकर थी। कमकरों के लिए भोजन पाना दुर्लभ हो गया था। 24 जुलाई को जारित्सिन में मौजूद स्तालिन से तार पर बात करते लेनिन ने कहा था :

> "जहाँ तक खाने-पीने के सामान का सम्बन्ध है, मैं कहूँगा कि पेत्रोग्राद या मास्को में आज कुछ भी नहीं दिया जा रहा है। स्थिति बहुत खराब है। मुझे सूचित करो कि तुम क्या जरूरी कार्रवाई कर सकते हो, क्योंकि हमारे पास तुम्हें छोड़ पूर्ति का दूसरा कोई स्रोत नहीं है।··मछली, मांस, तरकारी··जो भी चीजें मिलें और जितनी भी मिलें, सभी भेजो।"

लेनिन का यह तार पाते ही स्तालिन ने ट्रेनें भर-भरकर खाद्य-सामग्री भेजनी शुरू कर दी।

लेनिन को जारित्सिन की बड़ी चिंता थी। वोल्गा के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर के क्रांति-विरोधियों के हाथ में चले जाने पर अन्न के स्रोत ही नहीं, वल्कि वाकू का तेल भी हाथ से निकल जाता। दोनों इलाके के क्रांति-विरोधी चेकोस्लोवाकों से मिल जाते और मास्को की तरफ बढ़ चलते। स्तालिन को अन्न एकत्रित करके भेजने के अतिरिक्त जारित्सिन की रक्षा भी करनी थी। 31 अगस्त, 1918 को स्तालिन ने लेनिन के पास निम्न पत्र भेजा था :

> "प्रिय साथी लेनिन,
>
> "दक्षिण और कास्पियन के लिए घमासान लड़ाई हो रही है। इस पूरे इलाके को अपने हाथ में रखने के लिए (और हम ऐसा कर सकते हैं) हमें कितने ही हल्के टारपीडो बोट और कुछ जोड़ी पनडुब्बियों की आवश्यकता होगी। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि सभी वाधाओं को तोड़कर इन चीजों को तुरंत भेजकर, हमारी सहायता करें। अगर हमारी आवश्यकताओं को बिना देर किये पूरा किया जाता है तो बाकू, तुर्किस्तान और उत्तरी काकेशस पूरी तरह हमारे हैं। मोर्चे पर कार्रवाइयाँ अच्छी तरह हो रही हैं। मुझे संदेह नहीं है कि वे और बेहतर होंगी (कजाक एकदम निरुत्साहित होते जा रहे हैं)। मैं अपने प्रिय तथा स्नेही इलिच से हाथ मिलाता हूँ।
>
> –आपका स्तालिन"

इस चिट्ठी को पाकर लेनिन ने अपने बारे में लिखी पंक्तियों को काट दिया। फिर पता बदलकर चिट्ठी के नीचे अपने हस्ताक्षर करके तुरंत ही उपयुक्त अधिकारियों के पास उसे भेज दिया ताकि जारित्सिन की प्रतिरक्षा के लिए टारपीडो बोट और पनडुब्बियाँ रवाना कर दी जायें। स्तालिन ने भी अपने वादे को पूरा किया।

घातक आक्रमण–30 अगस्त, 1918 को लेनिन ने मास्को के वसमन्नी मोहल्ले के कमकरों की एक सभा में भाषण दिया। वहाँ से वह जामोस्कवोरेत्स्की जिले के माइकेलसन (आधुनिक व्लादिमिर इलिच) कारखानों में भाषण देने गये। भाषण देने के बाद जिस समय वह अपनी मोटर की ओर जा रहे थे, तभी फैन्नी कप्लान नामक एक समाजवादी-क्रांतिकारी आतंकवादी ने लेनिन पर आक्रमण कर दिया। दो गोलियाँ लेनिन को लगीं। इस आतंकपूर्ण हमले के बाद लेनिन कितने ही दिनों तक जीवन और मृत्यु के वीच झूलते रहे। उनकी अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक थी। प्रति दिन अखबारों में उनके स्वास्थ्य के बुलेटिन छपते थे। सारी सोवियत भूमि के

कमकर और किसान, सारी दुनिया के मेहनतकश, समाजवाद के महान नेता के प्राणों के लिए चिंतित थे। युद्धक्षेत्र, कारखानों, मिलों, खानों और खेतों के कमकर, किसान और सैनिक प्रस्ताव पास करके भेज रहे थे। सभी की माँग थी कि क्रांति-विरोधी आतंकवादियों से पूरी निष्ठुरता से निपटा जाय और उन्हें किये का फल चखाया जाय।

"सफेद आतंक का बदला लाल आतंक से लो !" यही वक्त का तकाजा था।

2 सितम्बर को अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी कमिटी ने लेनिन के ऊपर आक्रमण के बारे में स्वेर्दलोफ से रिपोर्ट सुनी। एक प्रस्ताव पास करके केंद्रीय कमिटी ने क्रांति-विरोधी पूँजीवादियों और उनके एजेंटों के विरुद्ध लाल आतंक लागू किया। सभी क्रांति-विरोधी संगठन नष्ट कर दिये गये। आतंकवादियों को गिरफ्तार किया जाने लगा।

मुट्ठी-भर पुराने स्वार्थ-साधकों को छोड़ दिया जाय तो लेनिन समूची रूसी जनता के लाड़ले थे। बीमारी के समय किसान, मजदूर और लाल सैनिक इस बात के लिए बड़े उत्सुक थे कि लेनिन को भूखा न रहना पड़े। वे अपने राशन से बचाकर कुछ-न-कुछ अपने प्रिय नेता के पास भेजा करते थे। हजारों अपना खून अपने नेता के शरीर के लिए समर्पित करने को तैयार थे।

गोर्की के शब्दों में लेनिन—गोर्की ने अपने संस्मरणों में उस समय की लेनिन की अवस्था के बारे में लिखा है :

> "रूस में लेनिन से उस समय तक मैं न मिल सका था...जब तक कि उनके जीवन पर 1918 ई. में अन्तिम नीचतापूर्ण आक्रमण नहीं किया गया था। मैं उनके पास उस समय पहुँचा जब वह मुश्किल से ही अपना··हाथ हिला-डुला सकते थे और कठिनाई से ही अपनी गर्दन घुमा सकते थे···। जब मैंने दुःख प्रकट किया तो उन्होंने मानो स्वाभाविक-सी चीज मानकर उसे टालते हुए कहा : 'एक झगड़ा है। कुछ नहीं किया जा सकता। हरेक आदमी अपनी सूझ के मुताबिक काम करता है।'
>
> "हमारी मुलाकात बड़ी मित्रतापूर्ण थी। लेकिन प्रिय इलिच की तेज तथा भीतर तक बेध देनेवाली दृष्टि में कुछ करुणा झलक रही थी, क्योंकि मैं उस समय गुमराह हो गया था। कितने ही मिनटों के बाद उन्होंने बड़े चाव से कहा : 'जो हमारे साथ नहीं हैं, वह हमारे विरुद्ध हैं। घटनाओं के अभियान से आदमी स्वतंत्र हो सकता है—यह कोरी कल्पना है। अगर हम यह मान भी लें कि इस तरह के आदमी किसी वक्त मौजूद थे, तो भी आज तो वे नहीं हैं और न हो सकते हैं। ऐसे आदमी किसी के भी लिए भले नहीं हैं।··तुम कहते हो कि हम बहुत अधिक आग्रही हैं··कि हम जीवन को बहुत सरल कर देना चाहते हैं और यह सरलीकरण संस्कृति को नष्ट करने का खतरा पैदा करता है, क्यों ?' फिर व्यंग्य के स्वर में बोले 'हूं-म्-म्।'
>
> "उनकी मर्मभेदी दृष्टि और तेज हो गयी और उन्होंने मद्धिम स्वर में कहना शुरू किया : 'अच्छा, तुम्हारे मत से अपने हाथों में राइफल लिए करोड़ों किसान संस्कृति के लिए खतरा क्यों नहीं हैं, क्यों ? तुम समझते हो कि संविधान सभा, अराजकता पर काबू पा सकती थी ? तुम, जो कि देश में अराजकता की इतनी चिंता करते हो, दूसरों की अपेक्षा हमारे करणीयों को अच्छी तरह जान सकते हो। हमें रूसी जनसाधारण के सामने कुछ सीधी-सादी सी चीजें रखनी हैं—ऐसी चीजें जिन्हें वे समझ सकते हैं। सोवियतें और साम्यवाद सीधी-सी चीजें हैं। कमकरों और बुद्धिजीवियों का संघ, क्यों ? अच्छा, वह बुरा नहीं है। बुद्धिजीवियों से कह दो, वे हमारे पास आयें। तुम्हारे मतानुसार वे न्याय के सच्चे सेवक हैं। फिर चिन्ता किस बात की ? जरूर, उन्हें हमारे पास आने दो। हम लोग वे ही हैं जिन्होंने जनता को पैरों पर खड़ा करने सारी दुनिया को जीवन का सत्य बताने का, महान कार्य अपने ऊपर लिया है। हम लोग मानव-जीवन के लिए सीधा रास्ता—दासता, भिखमंगी, पतन से बाहर निकलने का रास्ता—लोगों को बतला रहे हैं।' क्षोभ का जरा-सा भी चिह्न दिखलाये बिना उन्होंने हँसकर कहा : 'इसी वजह से बुद्धिजीवियों से मुझे गोली मिली।' जब बातचीत की गर्मी कुछ गयी, तो उन्होंने खेद और क्षोभ के स्वर

में कहा : 'तुम समझते हो, मैं यह नहीं मानता कि बुद्धिजीवी हमारे लिए आवश्यक हैं ? पर तुम देख रहे हो, उनका मनोभाव कितना विरोधी है, समय की माँग को वे कितना कम समझते हैं ? वे यह नहीं देखते कि हमारे बिना वे कितने निर्बल हैं, जनता के पास पहुँचने में कितना असमर्थ हैं ? अगर हम बहुत अधिक सिरों को तोड़ें तो इसका दोष उनपर होगा।"

लेनिन की सहायता के बारे में गोर्की ने दूसरी जगह लिखा है :

"एक बार लेनिन ने मुझे मुस्कुराते हुए एक तार दिखलाया—'उन्होंने मुझे फिर पकड़ लिया, उनसे कहो कि मुझे छोड़ दें।' नीचे हस्ताक्षर थे : इवान वोल्नी। फिर लेनिन ने कहा : 'मैंने उसकी किताब पढ़ी है, वह मुझे बहुत पसन्द आयी। मैंने तुरन्त अनुभव किया कि यह ऐसा आदमी है जो भूलों की अनिवार्यता को समझता है, जो वैयक्तिक तौर से चोट पहुँचाये जाने पर गुस्सा नहीं होता अथवा क्रोध में पागल नहीं हो जाता। मैं समझता हूँ, तीसरी बार उसे गिरफ्तार किया गया है। अच्छा हो कि तुम उसे समझाओ कि वह गाँव छोड़ दे, नहीं तो अगली बार वे उसे मार डालेंगे। मालूम होता है वे लोग उसको वहाँ पसन्द नहीं करते। उसे समझाओ—तार देकर।'

"लोगों की सहायता के लिए लेनिन कितने तत्पर रहते थे, यह देखकर मैं अक्सर चकित हो जाता था। जिन लोगों को वह अपना दुश्मन समझते थे, उन्हें भी केवल मदद ही देने के लिए वे तत्पर नहीं रहते थे, बल्कि उनके भविष्य की भी परवाह करते थे। एक उदाहरण लीजिए। एक जनरल—जो एक वैज्ञानिक और रसायनशास्त्री भी था—के लिए मौत का खतरा पैदा हो गया था। मेरी बात सुनने के बाद लेनिन ने कहा : 'हूँ, तो तुम समझते हो कि उसे मालूम नहीं था कि उसके बेटों ने उसकी प्रयोगशाला में बारूदी हथियार छिपा रखे हैं ? यह अनहोनी-सी बात मालूम होती है। लेकिन इसका रहस्योद्घाटन करना हम जेर्जिस्की के ऊपर छोड़ते हैं। सच्चाई की खोज के लिए उसके पास तीक्ष्ण नैसर्गिक बुद्धि है।' कितने ही दिनों बाद मुझसे टेलिफोन पर बात करते हुए उन्होंने कहा : 'हम तुम्हारे जनरल को छोड़ रहे हैं—मैं समझता हूँ, वह अब तक छोड़ा जा चुका है। वह आगे क्या करना चाहता है ?'

" 'सामान्य-एमल्सन !'

" 'अच्छा, अच्छा—कार्बोलिक एसिड। अच्छा, उसे अपना कार्बोलिक उबालने दो। मुझे बतलाओ, क्या उसे किसी चीज की जरूरत है ?'

"लेनिन ने एक आदमी के जीवन को बचाने में अपने आनन्द को प्रकट न करने के ख्याल से उसे छिपाते हुए व्यंग्यपूर्वक यह कहा था। कितने ही दिनों बाद उन्होंने फिर पूछा : 'अच्छा, उस जनरल की क्या हालत है ? सब ठीक है न ?' "

लेनिन के गुणों का वर्णन करते हुए महान साहित्यकार ने एक जगह और लिखा है :

"एक बार मैंने लेनिन से कहा कि हम दोनों एक साथ मुख्य तोपखाना-विभाग में एक पुराने बोल्शेविक तोपची द्वारा आविष्कृत एक यन्त्र को देखने चलें, जिसे उसने विमानों के विरुद्ध तोप को ठीक से दागने के लिए तैयार किया था। लेनिन ने कहा—'मैं उसे क्या समझूँ ?' लेकिन तो भी वह मेरे साथ गये। अंधेरे कमरे में मेज के ऊपर एक यन्त्र रखा हुआ था जिसके चारों तरफ भौं चढ़ाये, श्वेतकेश, सात दढ़ियल बूढ़े जनरल—सभी वैज्ञानिक—खड़े थे। उनके बीच लेनिन की सीधी-सादी मूरत खो गयी—अकिंचन-सी मालूम होने लगी। आविष्कारक ने यन्त्र के निर्माण की व्याख्या शुरू की। लेनिन ने दो या तीन मिनट सुना और अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा, 'हूँ-म्'। फिर उस आदमी से उन्होंने इतनी आसानी से प्रश्न करना शुरू कर दिया, मानो वह किसी राजनीतिक प्रश्न के सम्बन्ध में उसकी परीक्षा कर रहे हैं : 'तुम कैसे मशीन से एक वक्त में ही दो कामों का इन्तजाम करते हो जब कि यह लक्ष्य को दिखला रही है ? क्या यह सम्भव है कि ऊपर नली और यन्त्र की दिशा-सूचनाओं के बीच स्वयं-प्रेरित सम्बन्ध कायम किया जा सके ?'... आविष्कारक और जनरलों ने बड़ी उत्सुकता के साथ व्याख्या की। अगले दिन आविष्कारक ने मुझसे कहा : 'मैंने अपने जनरलों से कहा था कि आप (गोर्की) एक साथी के साथ आ

रहे हैं। लेकिन मैंने यह नहीं बतलाया था कि वह साथी कौन है। वे इलिच को नहीं पहचान पाये··· शायद उन्हें ख्याल भी न आता कि इलिच तड़क-भड़क या शरीर-रक्षक के बिना आयेंगे। उन्होंने मुझसे पूछा : क्या वह कोई टेक्नीकल इंजीनियर या प्रोफेसर हैं ? क्या ? लेनिन ? आश्चर्य ! यह कैसे सम्भव है ? इन चीजों के बारे में वह कैसे इतना जानते हैं ? उन्होंने इन सवालों को एक टेक्नोलॉजी के विशेषज्ञ की तरह पूछा।···' सचमुच ही उनको विश्वास न हुआ कि वह लेनिन थे।"

लेनिन जिस समय जख्मी होकर चारपाई पर पड़े थे, उसी समय तरुण लाल सेना ने पूर्वी मोर्चे पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया। सिम्बिर्स्क दुश्मनों से छीन लिया गया। लाल सैनिकों ने लेनिन के पास निम्न तार भेजा :

"प्रिय इलिच, तुम्हारी जन्म-नगरी सिम्बिर्स्क पर कब्जा करना तुम्हारे घावों में से एक का जवाव है। हम दूसरे का जवाब देने और समारा पर अधिकार का वचन देते हैं।"

इसका जवाब लेनिन ने यह दिया था :

"मेरी जन्म-नगरी सिम्बिर्स्क पर अधिकार करना मेरे घावों के लिए सबसे अच्छा मरहम और सबसे अच्छी पट्टी है। मुझे इससे नया साहस और शक्ति मिली मालूम होती है। लाल सैनिकों का उनकी विजय के लिए मैं अभिनन्दन करता हूँ और सभी कमकर जनता की ओर से उनकी सारी कुर्वानियों के लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।"

तीन सप्ताह बाद समारा पर भी अधिकार हो गया।

शरीर के स्वस्थ और पुष्ट होने के कारण ही घातक घाव लगने पर भी लेनिन दो सप्ताह बाद ही खड़े होने लगे। 16 सितम्बर को तो वह पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की बैठक में शामिल हुए और 17 सितम्बर को जन-कमीसार-परिषद की बैठक की अध्यक्षता की। लेनिन के स्वास्थ्य-लाभ का समाचार सुनकर चारों ओर से अभिनन्दनों की बाढ़-सी आ गयी। जनता के महान नेता ने फिर एक बार सर्वहारा क्रांति की बागडोर अपने हाथ में ली।

राजकाज की जिम्मेदारियों को पूरी तरह से निबाहते हुए भी 1918 के अक्तूबर और नवम्बर में उन्होंने अपनी पुस्तक **सर्वहारा क्रांति और गद्दार काट्स्की** लिखी। इसमें उन्होंने पूँजीवादियों के पिट्ठू काट्स्की की गलती और सर्वहारा के लिए विश्वासघाती धारणाओं की खूब खबर ली। साथ ही उन्होंने साम्राज्यवाद के कुत्तों तथा द्वितीय इन्टर्नेशनल के नेताओं की भी कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि : "सोवियत सरकार, अत्यन्त जनतांत्रिक पूँजीवादी प्रजातन्त्र से भी करोड़ गुनी अधिक जनतांत्रिक है।"

महाक्रांति की प्रथम वर्षगाँठ—अक्तूबर क्रांति की प्रथम वर्षगाँठ के समय देश का तीन-चौथाई भाग विदेशी दखलन्दाजों के हाथ में था। विदेशी साम्राज्यवादी और रूसी सफेद-गारद चारों ओर से उसे दबाये हुए थे। सोवियत सरकार अकेले ही अपने बहुसंख्यक शत्रुओं से बहुत-से मोर्चों पर लड़ रही थी। लाल सेना का निर्माण हो ही रहा था; अभी वह पूरी तौर से तैयार नहीं हो पायी थी। अन्न, कच्चे माल, ईंधन, हथियारों तथा दूसरी सैनिक सामग्री का अभाव खटक रहा था। लेकिन, उन्हें लेनिन जैसा नेता मिला था, और एक महान आदर्श उन्हें अन्तःप्रेरणा और उत्साह प्रदान कर रहा था।

लेनिन ने अक्तूबर क्रांति के प्रथम वर्ष के कामों के बारे में बतलाया कि उद्योग-धन्धों पर पूँजीपतियों के बजाय अब कमकरों का नियंत्रण स्थापित हो गया है; भूमि के लिए किसानों के आम संघर्ष ने अव कुलकों के विरुद्ध देहाती गरीबों के संगठित संघर्ष का रूप ले लिया है; पुरानी पस्तहिम्मत सेना और असम्वद्ध लाल-गारद के स्थान पर अब बाकायदा लाल सेना कायम हो गयी है जिसने भिन्न-भिन्न मोर्चों पर कितनी ही विजयें प्राप्त की हैं; प्रथम सोवियत-संविधान स्वीकृत हो चुका है। 7 नवम्बर, 1918 को अक्तूबर क्रांति के योद्धाओं के सम्मान में स्मारक-पट्टिका का उद्घाटन करते हुए लेनिन ने कहा :

"साथियो, आओ अक्तूबर के योद्धाओं की स्मृति का सम्मान करते हुए इस स्मारक के सामने प्रतिज्ञा करें कि हम इनका पदानुसरण करेंगे, इनकी निर्भयता और वीरता का अनुसरण करेंगे।

इनका नारा, हमारा नारा, सारी दुनिया में विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए कमकरों का नारा हो। यह नारा है : 'विजय या मृत्यु !' "

2. शक्ति-संचय

1918 के अन्त में पर्म के (पूर्वी) मोर्चे पर अवस्था भीषण हो उठी। उत्तर से विदेशी दखलन्दाज बढ़ रहे थे। कोलचक ने पूर्व की तरफ से बढ़ते हुए उनसे मिलकर मास्को पर आक्रमण करना चाहा। 24 दिसम्बर को पर्म हाथ से निकल गया और दुश्मन व्यत्का तक पहुँच गया। लेनिन ने तुरन्त इस मोर्चे पर कुमक भेजने का प्रबन्ध किया। उनके प्रस्ताव पर पार्टी की केन्द्रीय कमिटी ने जारित्सिन में सफेद-गारदों का मुकाबला करने का प्रवन्ध करने के लिए स्तालिन को भेजा। जेर्जिन्स्की को केन्द्रीय कमिटी ने पर्म के आत्मसमर्पण के कारणों की जाँच करने तथा पूर्वी मोर्चे की स्थितियों को सुधारने के लिए भेजा। स्तालिन और जेर्जिन्स्की ने मिलकर हारी हुई तृतीय सेना में फिर से जीवन डाला और कोलचक के विरुद्ध आक्रमण कर दिया।

याद रखना चाहिए कि 1918 ई. के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते युद्ध का पासा पलट गया था और जर्मनी के मुकाबले पश्चिमी साम्राज्यवादियों का भविष्य उज्ज्वल दिखायी देता था। जर्मन सेनाएँ थक रही थीं; उनका उत्साह नष्ट हो रहा था। चार वर्षों के भयंकर नरसंहार और सम्पत्ति के नाश के कारण जनता में भारी असन्तोष फैल गया था। 1918 के नवम्बर के आरम्भ में जर्मनी में क्रांति फूट पड़ी। जर्मनों को हार स्वीकार करनी पड़ी और पश्चिमी साम्राज्यवादियों से शान्ति की भिक्षा माँगने के लिए मजबूर होना पड़ा।

छठी सोवियत कांग्रेस (1918 इ.)–8 नवम्बर को इस कांग्रेस में भाषण देते हुए लेनिन ने जर्मनी की सैनिक पराजय की चर्चा की। उन्होंने जर्मन साम्राज्ययवाद के बारे में वतलाया : "पहले इसकी काया आश्चर्यजनक गति से यूरोप के तीन-चौथाई भाग पर फैल गयी, फूल गयी और फिर एक भयंकर दुर्गंध अपने पीछे छोड़ती हुई फूट गयी।" अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति वदल चुकी थी। अब ब्रेस्त-लितोव्स्क की संधि की आवश्यकता नहीं रह गयी थी। 13 नवम्वर, 1918 को अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी ने इस संधि को खतम कर दिया। लेनिन और स्वेर्दलोफ के हस्ताक्षर से एक घोषणा-पत्र में "रूस की जनता, सभी दखल किये प्रदेशों और इलाकों के लोगों को" सम्वोधित करते हुए कहा गया था कि "जर्मन और रूसी सर्वहारा क्रांतिकारियों के सम्मिलित प्रहार से उत्पीड़न और लूट की व्रेस्त-लितोव्स्क संधि खतम हो गयी।" लाल सेना ने जर्मन कब्जे में चली गयी सोवियत भूमि को मुक्त करना शुरू किया। उसके प्रहार और छापामारों के प्रयत्नों के फलस्वरूप जर्मन सेनाएँ उक्राइन, बेलोरूस और बाल्तिक प्रदेशों को छोड़ सिर पर पैर रखकर भागीं।

कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की प्रथम कांग्रेस–विश्वयुद्ध पूँजीवाद के चरम उत्कर्ष का परिणाम था। उसकी समाप्ति के साथ ही अब सर्वहारा को उठने का मौका मिला। यूरोप में क्रांतिकारी भावनाएँ बढ़ चलीं। जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी में वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में क्रांतियाँ हुईं। जगह-जगह उठ खड़ी हुई क्रांति की इन शक्तियों को एकताबद्ध करने की आवश्यकता थी। उन्हें कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल के रूप में संगठित करने का विचार लेनिन के मन में आना स्वाभाविक था। ऐसे इन्टर्नेशनल की आवश्यकता वह बहुत पहले से ही महसूस कर रहे थे। उनकी प्रेरणा से (जनवरी, 1918 में) कितने ही देशों की समाजवादी पार्टियों के वामपक्षों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसने कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की प्रथम कांग्रेस बुलाने का निश्चय किया था। अब देर करना उचित नहीं था। अस्तु, जनवरी, 1919 में लेनिन ने यूरोप और अमरीका के कमकरों के नाम एक खुला पत्र लिखकर तृतीय इन्टर्नेशनल स्थापित करने पर जोर दिया।

कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की पहली कांग्रेस 2 मार्च, 1919 को क्रेमलिन में आरम्भ हुई। यूरोप और अमरीका जैसे बड़े-बड़े देशों के प्रतिनिधि इसमें मौजूद थे। लेनिन ने पूँजीवादी जनवाद और सर्वहारा अधिनायकत्व पर मुख्य रिपोर्ट दी। इसमें उन्होंने सर्वहारा अधिनायकत्व और शोषक वर्गों के अधिनायकत्व के मौलिक भेद को बतलाते हुए कहा कि शोषक वर्गों के अधिनायकत्व का उद्देश्य है : मुट्ठी-भर आदमियों के (अल्पमत के) हित के लिए कमकर जनता के प्रतिरोध को बलपूर्वक दबाना। सर्वहारा अधिनायकत्व का उद्देश्य है : जनता के

अत्यन्त भारी बहुमत के लिए शोषकों के प्रतिरोध को बलपूर्वक दबाकर साम्यवाद का निर्माण करना। उन्होंने बतलाया कि कमकर जनसाधारण के हित के लिए सर्वहारा अधिनायकत्व अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि केवल इसी अधिनायकत्व द्वारा मानव जाति साम्यवाद की ओर बढ़ सकती है। सोवियतें (पंचायतें) सर्वहारा अधिनायकत्व का राजनीतिक रूप हैं। सोवियतों का शासन कमकर जनता को वास्तविक जनवाद प्रदान करता है।

इस प्रकार अवसरवादी द्वितीय इन्टर्नेशनल के दिवालिया होने के बाद मार्क्स-एंगेल्स की प्रथम इन्टर्नेशनल की उत्तराधिकारी तृतीय इन्टर्नेशनल की स्थापना लेनिन की प्रेरणा से हुई।

आठवीं पार्टी कांग्रेस (1919 ई.)—कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की कांग्रेस के थोड़े ही दिनों बाद मार्च, 1919 में पार्टी की आठवीं कांग्रेस मास्को में हुई। उद्घाटन-भाषण के लिए जब लेनिन खड़े हुए तो लोगों ने हर्ष प्रकट करते हुए गगन-भेदी स्वर में नारा लगाया : "इलिच—जिन्दाबाद !"

लेनिन ने सबसे पहले स्वेर्दलोफ की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित की। सोवियत सरकार के प्रथम राष्ट्रपति और पार्टी के श्रेष्ठ संगठनकर्ता स्वेर्दलोफ की मृत्यु कांग्रेस शुरू होने से कुछ ही पहले हो गयी थी। इस कांग्रेस में लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी, पार्टी कार्यक्रम और देहाती इलाकों में काम के सम्बन्ध में रिपोर्ट दी। उन्होंने बतलाया कि सोवियत प्रजातंत्र पूँजीवादी देशों से घिरा हुआ है, इसलिए हमें अपनी सैनिक शक्ति को लगातार बढ़ाते रहना होगा। उन्होंने कहा :

> "हम केवल एक राज्य के भीतर नहीं रह रहे हैं, बल्कि अनेक राज्यों की व्यवस्था के भीतर रह रहे हैं। साम्राज्यवादी राज्यों के साथ-साथ सोवियत-प्रजातन्त्र के अस्तित्व का देर तक कायम रहना सोचा नहीं जा सकता। दोनों में से एक को अन्त में विजयी होना पड़ेगा। और जब तक यह नहीं होता, तब तक सोवियत प्रजातन्त्र और पूँजीवादी राज्यों के बीच भयंकर संघर्ष होना अनिवार्य है। इसका अर्थ यह है कि यदि शासक वर्ग—सर्वहारा—अपने को कायम रखना चाहता है, तो उसे सैनिक संगठन द्वारा अपनी क्षमता को सिद्ध करना होगा।"

नये पार्टी कार्यक्रम में कहा गया था कि कुलक वर्ग सोवियत राज्य का निर्माण करने में साधक नहीं, बल्कि भारी बाधक होगा। लेनिन ने एक बार फिर जातियों के आत्मनिर्णय तथा समानता के अधिकार पर जोर दिया। देहातों में काम करने के बारे में बताते हुए लेनिन ने मझोले किसानों की ओर खास ध्यान देने के लिए कहा। 1918 ई. की शरद् में मझोले किसान सोवियत शासन की ओर झुकने लगे। नारा दिया गया : "मझोले किसानों से समझौता करो, कुलकों के विरुद्ध संघर्ष को एक क्षण के लिए भी न छोड़ो और केवल गरीब किसानों पर भरोसा रखो।" इसी कांग्रेस में लेनिन ने कहा था : "मझोले किसानों के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि उनके साथ दृढ़ मैत्री स्थापित की जाय।"

लेनिन ने उन लोगों की कड़ी निन्दा की, जो दबाव डालकर किसानों को खेती के सामूहिक तरीके पर लाने की बात करते थे। लेनिन ने कहा कि ऐसा करने के बदले, मझोले किसानों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए हम कृषि-सम्बन्धी मशीनें जुटाने का प्रबन्ध करें :

> "यदि हम कल मझोले किसानों को पेट्रोल तथा चालकों के साथ एक लाख प्रथम श्रेणी के ट्रैक्टर दे सकें (तुम सब जानते हो कि इस समय यह केवल शेखचिल्ली की उड़ान है), तो कल ही मझोले किसान कहने लगेंगे : 'हम साम्यवाद के पक्ष में हैं।' "

कांग्रेस ने सर्वहारा और मझोले किसानों के बीच दृढ़ मैत्री की नीति को स्वीकार किया और इस प्रकार देहात में बोल्शेविक पार्टी को गरीबों और मझोले किसानों के भारी बहुमत का समर्थन मिला।

इस कांग्रेस में त्रात्स्की ने अनुशासनबद्ध नियमित लाल सेना बनाने का विरोध किया था। लेनिन ने उसका डटकर जवाब दिया। कांग्रेस ने एक राय से केन्द्रीय कमिटी के सैनिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार किया।

3. चारों ओर से आक्रमण

जर्मनी और आस्ट्रिया को हराने के बाद अब पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने सोवियत भूमि के विरुद्ध अपनी सारी

शक्ति लगा दी। उसको घेरकर उन्होंने लाल सेना को नष्ट करने तथा सोवियत प्रजातन्त्र को खतम करने की योजना बनायी। इस योजना के अनुसार कोलचक की सेना ने पूर्व से आक्रमण किया, देनिकिन की सेनाएँ दक्षिण से बढ़ीं और पश्चिमोत्तर से यूदेनिच ने पेत्रोग्राद पर धावा बोला। चारों ओर से घेरे को संकुचित करते हुए साम्राज्यवादी सोवियत शासन का गला घोंटने के लिए आगे बढ़ रहे थे। लेकिन, लेनिन को महान रूसी जनता पर अपार विश्वास था। उन्होंने लिखा था : "रूस की यह बड़ी भारी विशेषता है कि उसे जब-जब भारी संकट का सामना पड़ा, जब-जब पुरानी शक्ति हार मानने लगी, तब-तब हमेशा विशाल जनता रिजर्व के रूप में नयी शक्ति के स्रोत के तौर पर आ मौजूद हुई।"

कोलचक का आक्रमण—अंतांत के साम्राज्यवादियों को सबसे ज्यादा उम्मीद एडमिरल कोलचक से थी, जिसे उन्होंने 'रूस का सर्वोच्च शासक' घोषित किया था। रूस की सभी क्रांति-विरोधी सेनाएँ उसकी कमान में थीं। 1919 के वसंत में उसकी सेना वोलगा के किनारे तक आ पहुँची थी। पूर्वी मोर्चा इस वक्त सबसे भारी खतरे का मोर्चा था। लेनिन ने इसके लिए पूरी तैयारी करने पर जोर दिया। 11 अप्रैल, 1919 को केन्द्रीय कमिटी ने उनका समर्थन करते हुए हर आदमी का लगन से काम करने के लिए आह्वान किया। पार्टी, मजदूर सभाओं और कमकर जनगण ने कोलचक के खिलाफ लड़ने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देने का निश्चय किया। लेनिन ने पूर्वी मोर्चे की क्रांतिकारी सैनिक परिषद् को हुक्म दिया कि शत्रु के ऊपर तुरन्त आक्रमण कर दो : "यदि यूराल को जाड़ों से पहले अपने हाथों में नहीं कर लिया, तो मेरी समझ में क्रांति का अनिवार्य ही सर्वनाश हो जायगा।" "सारी जनता में मृत्यु के प्रति अवहेलना फैल जानी चाहिए…।" उन्होंने लाल सेना में फौलादी अनुशासन कायम करने का नारा दिया और कायरों, भगोड़ों, घबराहट फैलानेवालों के साथ निष्ठुरता के व्यवहार की माँग की : "युद्ध में कायर को गोली से मार देना ही उचित फैसला है।"

लाल सेना के राजनीतिक कमीसारों ने इस समय जान पर खेलकर काम किया। फलतः सेना में अनुशासन और लड़ने की क्षमता खूब बढ़ गयी। लेनिन ने लिखा : "राजनीतिक कमीसारों के बिना हमारे पास लाल सेना नहीं हो सकती थी।"

लेनिन ने मास्को सोवियत की विशेष बैठक, अखिल रूसी मजदूर सभा की केन्द्रीय परिषद् की बैठक, मास्को जंक्शन के रेलवे-कर्मियों की कान्फ्रेंस और फैक्टरी कमिटियों तथा मजदूर सभाओं की मास्को कान्फ्रेंस में भाषण दिये। उन्होंने तन-मन-धन से पूर्वी मोर्चे की सहायता करने पर जोर दिया। 10 अप्रैल के अपने पत्र में उन्होंने पेत्रोग्राद कमकरों से कहा : "सारे रूस के लिए तुम्हें उदाहरण कायम करना है ! सारी शक्ति लगाकर पूर्वी मोर्चे की सहायता करो !"

सचमुच रूस की सारी जनता कोलचक के विरुद्ध लड़ने के लिए उठ खड़ी हुई : भारी संख्या में कुमक पहुँची और लाल सेना ने कोलचक को पीछे धकेलना शुरू कर दिया। लाल सेना जब यूराल के पास पहुँच गयी तो त्रात्स्की ने उधर से हमले को रोककर सेना को दक्षिणी मोर्चे पर भेजने का प्रस्ताव रखा। लेकिन लेनिन इस तरह की बेवकूफी भरी बात को मानने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। उन्होंने कहा :

> "यूराल और साइबेरिया में आक्रमण को ढीला करने का मतलब है क्रांति के साथ विश्वासघात, कमकरों और किसानों को कोलचक के जुए से मुक्त करने के उद्देश्य के प्रति विश्वासघात !…शत्रु को केवल हराना ही नहीं होगा; उसका सर्वनाश करना होगा !…"

लेनिन के प्रस्ताव पर केन्द्रीय कमिटी ने त्रात्स्की को पूर्वी मोर्चे के नेतृत्व से हटाकर उसकी जगह फ्रुंजे तथा कुइबिशेफ को कमांडर नियुक्त किया। इनके नेतृत्व में लाल सेना ने कोलचक की सेनाओं को यूराल में बुरी तरह हराया और साइबेरिया की तरफ भगा दिया।

उसी साल के अन्त तक शक्तिशाली छापामारों की मदद से लाल सेना ने कोलचक की सेना के बचे-खुचे अंगों को भी खतम कर दिया।

यूदेनिच का आक्रमण (1919 ई.)—मई, 1919 में श्वेत जनरल यूदेनिच ने पूर्वी मोर्चे से ध्यान हटाकर कोलचक की सहायता के लिए पेत्रोग्राद पर आक्रमण कर दिया। जल्दी ही उसकी सेना पेत्रोग्राद के दरवाजों तक पहुँच

गयी। केन्द्रीय कमिटी ने सर्वहारा क्रांति के वीज-स्थान पेत्रोग्राद की रक्षा के लिए स्तालिन को भेजा। लेनिन ने स्तालिन को सावधान कर दिया था कि पेत्रोग्राद में विभीषणों और विश्वासघातियों का मजबूत संगठन है, उनके ऊपर खास तौर से ध्यान देना होगा। लेनिन ने जेर्जिन्स्की के साथ जनता के नाम अपील निकाली :

"गुप्तचरों से सावधान ! गुप्तचरों के लिए मौत ! राजनीतिक चेतनावाले सभी कमकरों और किसानों को सोवियत-शासन की रक्षा के लिए उठ खड़ा होना चाहिए !..."

गुप्तचरों और सफेद गारदवाले देशद्रोहियों के षड्यंत्र यूदेनिच को बचा नहीं सके। उसकी सेना बुरी तरह से हारी और तितर-बितर हो गयी। लेकिन इतने पर भी अभी यूदेनिच की रीढ़ नहीं टूटी थी।

इसके बाद पार्टी ने स्तालिन को पश्चिमी मोर्चे को सँभालने के लिए भेजा। वहाँ हमलावर पोल सोवियत भूमि को लालच भरी निगाहों से देख रहे थे। लेनिन ने स्तालिन को लिखा था :

"मैं तुमसे पश्चिमी मोर्चे पर जाने के लिए कहता हूँ। जहाँ तक कमीसारों की वात है, वह मोर्चा भयंकर रूप से निर्बल है। सारे मोर्चे को सहायता पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है।"

अगस्त 1919 में, जबकि लाल सेना ने कोलचक की सेनाओं को हराकर साइबेरिया को स्वतंत्र करना शुरू किया था, लेनिन ने 'प्रावदा' में 'कोलचक पर विजय के लिए कमकरों-किसानों को पत्र' लिखा। इसमें उन्होंने उन्हें सावधान किया कि शत्रु का अभी भी नाश नहीं हुआ है, इसलिए ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

लेनिन ने इस संघर्ष से भविष्य के लिए निम्न शिक्षाएँ लेने को कहा :

पहली शिक्षा—"हमें एक शक्तिशाली लाल सेना की आवश्यकता है। हमने शब्दों से नहीं, वल्कि कामों से सिद्ध कर दिया है कि हम ऐसी सेना बना सकते हैं।"

दूसरी शिक्षा—"लाल सेना तब तक एक प्रबल सेना नहीं बन सकती, जब तक कि राज्य के पास अन्न का भारी भंडार न हो। कारण कि बिना ऐसे भंडार के सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वतंत्रतापूर्वक भेजना या उसे ठीक तौर से शिक्षित करना असम्भव है। ऐसे भंडार के बिना उन कमकरों को भी जिन्दा रखना असम्भव है जो सेना के लिए सामग्री तैयार करने का काम कर रहे हैं।"

तीसरी शिक्षा—"कठोरतम क्रांतिकारी व्यवस्था कायम रखना आवश्यक है।..."

चौथी शिक्षा—"कोलचकी का जन्म मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों की कार्रवाइयों का सीधा फल है। समय आ गया है कि हम राजनीतिक पार्टियों को उनके शब्दों से नहीं, बल्कि उनके कामों से परखें।...मेन्शेविक और समाजवादी-क्रांतिकारी सफेद-गारदों के सहकारी हैं।"

पाँचवीं शिक्षा—"हिचकिचानेवालों, पस्तहिम्मतों, पूँजी की सहायता करने की चाह रखनेवालों, पूँजी के नारों और वचनों के जादू में पड़े लोगों का नाश हो ! पूँजी के विरुद्ध निष्ठुर युद्ध और कमकर जनता के बीच मैत्री, किसान और मजदूर वर्ग के बीच मैत्री—कोलचकी से हमें यही अंतिम और अत्यन्त महत्वपूर्ण शिक्षा मिलती है।"

'14 राष्ट्रों का आक्रमण' (1919 ई.)—पेत्रोग्राद और पूर्व के मोर्चे पर हार खाने के बाद विदेशी साम्राज्यवादियों और सफेद-गारदों ने अब दक्षिण से हमला करने की तैयारी की। 1919 ई. की गर्मियों और शरद में सोवियत के विरुद्ध उन्होंने दूसरा अभियान संगठित किया। यह 'चौदह राष्ट्रों का अभियान' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अभियान में प्रधान हाथ देनिकिन की सेना का था। इस सेना को साम्राज्यवादी राज्यों ने नये-से-नये हथियारों से सुसज्जित किया था।

1919 ई. की गर्मियों में देनिकिन ने लाल सेना को पीछे हटाना शुरू किया। ओरेल पर अधिकार करके तुला की ओर बढ़ते हुए उसने मास्को के लिए खतरा पैदा कर दिया। क्रांति के मर्मस्थान के इतने नजदीक तक अभी कोई शत्रु सेना नहीं आ सकी थी। लेनिन ने नारा दिया : "सबकुछ देनिकिन के विरुद्ध लगा दो !" बोल्शेविक पार्टी ने एक 'पार्टी रंगरूट भर्ती सप्ताह' मनाया। हजारों कमकर और किसान सेना में शामिल हुए। पार्टी के अच्छे-अच्छे सदस्य हथियार लेकर लड़ने के लिए निकल पड़े। देनिकिन को हराने के लिए लेनिन ने स्तालिन के साथ वोरोशिलोफ, ओर्जोनिकिद्जे और बुद्योन्नी को दक्षिणी मोर्चे पर भेजा। त्रात्स्की को इस

मोर्चे के नेतृत्व से अलग कर दिया गया। त्रात्स्की ने शत्रुओं से भरे इलाके से सेना ले जाने की योजना बनायी थी, और स्तालिन ने नये शासन के पक्षपाती कमकरों और किसानोंवाले इलाकों से–खारकोफ-दोनबास-रोस्तोफ के इलाकों से–सेना ले जाने की योजना बनायी थी। लेनिन ने स्तालिन की योजना स्वीकार की। अन्त में लाल सेना ने कोलचक और यूदेनिच की तरह साम्राज्यवादियों के लाडले देनिकिन को भी बुरी तरह हराया।

जिस समय देनिकिन के खिलाफ लड़ाई चल रही थी, उसी समय दबाव को कम करने के लिए यूदेनिच ने फिर पेत्रोग्राद पर हमला बोल दिया। क्रास्नोयेसेलो और गत्चिना उसके हाथ में चले गये। लेकिन कमकरों की मदद से पेत्रोग्राद के सैनिकों ने कुछ ही समय में उसे पूरी तरह से हरा दिया।

पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने अपने गुर्गों–कोलचक, यूदेनिच और देनिकिन को भेजकर आशा की थी कि सोवियत शासन को खतम करके वे फिर पुरानी जारशाही की स्थापना करने में सफल होंगे। लेकिन उन्हें निराश होना पड़ा।

लेकिन अभी भी वे अपने मन्सूबे बदलने के लिए तैयार नहीं थे।

18
अन्तिम विजय (1920 ई.)

1. महामानव लेनिन

संकट की स्थिति में लेनिन अपने भीतर एक नयी शक्ति का अनुभव करते थे। भीषण संकट मानो उनका उत्साह और भी बढ़ा देता था। जन-कमीसार-परिषद और प्रतिरक्षा-परिषद की प्रायः हर दिन होनेवाली बैठकों की वह अध्यक्षता करते तथा प्रतिरक्षा, खाद्य, ईंधन और यातायात की समस्याओं को हल करने में सहायता करते थे। उनके काम का समय बिल्कुल नपा-तुला था। वह अपने एक मिनट को भी बरबाद नहीं होने देते थे। ठीक समय पर वह बैठक आरम्भ करते। वक्ताओं से वह बहुत संक्षेप में बोलने के लिए कहते। लेक्चरबाजी को वह पसन्द नहीं करते थे। उनके सामने बड़े-से-बड़े महत्व के प्रश्न बड़ी जल्दी निबटा दिये जाते थे। हर वक्त उन्हें प्रसन्नमुख, उल्लसित और शक्ति से ओत-प्रोत देखा जाता था। उनको देखकर दूसरे लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। मजाक करना और ठहाका मारकर हँसना उन्हें बहुत प्रिय था। वह हमेशा किसानों, कमकरों, वैज्ञानिकों तथा सरकारी एवं पार्टी कार्यकर्ताओं की भलाई के लिए सोचा करते थे। वैज्ञानिकों की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने एक केन्द्रीय कमीशन स्थापित किया था जिसका काम था वैज्ञानिकों की आवश्यकताओं को पूरा करना। बच्चों के स्वास्थ्य और उनकी उचित देख-रेख पर वह विशेष ध्यान देते थे।

एक दिन की बात है, लेनिन जन-कमीसार-परिषद में गये। वहाँ उन्होंने देखा खाद्य-पूर्ति कमीसार सुरुपा का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। उन्होंने उसके पास एक नोट भेजकर कहा कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। तुम्हारा स्वास्थ्य वास्तव में 'राज्य-सम्पत्ति' है। उसकी ओर सावधानी बरतनी होगी। उन्होंने लिखा : "प्रिय अलेक्सान्द्र दूमित्रिविच, तुम राज्य-सम्पत्ति के साथ जैसा व्यवहार कर रहे हो, वह बहुत अनुचित है। मैं चिकित्सा के लिए आदेश देता हूँ : तीन सप्ताह तक चिकित्सा कराओ !"

उपन्यासकार अ. स. सेराफिमोविच का पुत्र युद्ध-क्षेत्र में मारा गया था। साहित्यकार का दिल टूट गया। लेनिन ने अपनी बहन से यह बात सुनी तो तुरन्त सेराफिमोविच को लिखा : "मेरी बहन ने अभी-अभी मुझे तुम्हारे महान शोक की सूचना दी है। इजाजत दो कि मैं तुम्हारा हाथ मजबूती से थामूँ, और तुम्हें उत्साह तथा सांत्वना देने की इच्छा प्रकट करूँ।" लेनिन ने जोर देकर कहा कि अपने को काम में लगाने के लिए 'मजबूर करो', क्योंकि कमकरों और देश को तुम्हारी साहित्यिक कृतियों की आवश्यकता है।

लेनिन स्त्रियों और तरुणों को हर तरह से आगे बढ़ाने की कोशिश करते थे। 1920 ई. में तरुण कम्युनिस्ट संघ की तीसरी कांग्रेस हुई। इसमें उन्होंने 'तरुण कम्युनिस्ट संघ के करणीय' पर भाषण देते हुए कहा कि तरुण कम्युनिस्ट संघ का यह कर्तव्य है कि वह कम्युनिस्ट समाज के तरुण निर्माताओं को शिक्षा देकर तैयार करे। संघ को काम के हरेक क्षेत्र में सहायता और प्रेरणा प्रदान करने का काम करना चाहिए।

छोटी-छोटी बातों पर भी लेनिन बहुत ध्यान रखते थे। काम की भरमार रहते हुए वह समसामयिक, साहित्यिक और दार्शनिक प्रश्नों का अध्ययन करने से नहीं चूकते थे। रुम्यान्तसेफ म्युजियम लाइब्रेरी (वर्तमान लेनिन राज्य पुस्तकालय) को उन्होंने एक बार लिखा :

"कृपया एक दिन के लिए निम्न पुस्तकें मेरे पास भेज दीजिये :

"1. सबसे पूर्ण और सबसे अच्छे दो यूनानी कोष…।

"2. दार्शनिक परिभाषाओं के सबसे अच्छे कोष : मेरी समझ में…जर्मन में आइजलेर…अंग्रेजी में बाल्डविन…फ्रेंच में फ्रांक…रूसी में आधुनिकतम। रदलोफ और अन्य।

"3. यूनानी दर्शन का इतिहास : (क) जेलर, पूर्ण और आधुनिकतम संस्करण, (ख) गोम्पेज… (वियनावासी दार्शनिक), ग्रीश्चे डेंन्कर।

"अगर पुस्तकालय का नियम घर के इस्तेमाल के लिए रेफरेन्स पुस्तकें देने का नहीं है, तो क्या आप उन्हें शाम या रात को मुझे इस्तेमाल करने के लिए नहीं दे सकते, जबकि पुस्तकालय बन्द रहता है ? मैं उन्हें सबेरे जरूर लौटा दूँगा !"

सोवियत राष्ट्र के सर्वोच्च नेता की यह विनम्रता कितनी स्पृहणीय है ! गोर्की ने लेनिन के गुणों के बारे में अपने संस्मरणों में लिखा :

"उनमें अद्भुत इच्छा-शक्ति थी। लेनिन के पास क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों का सबसे बड़ा गुण और विशेषता—आत्मानुशासन अत्यधिक परिमाण में…कभी-कभी तो आत्मपीड़न और आत्मभेदन के चरम रूप में…मौजूद थे। लेखक आन्द्रेयेफ के एक नायक के शब्दों में : 'दूसरे लोग बड़ा कठिन जीवन बिता रहे हैं, इसलिए मुझे भी कठिन जीवन बिताना चाहिए।'

"1919 ई. के अकालवाले कठोर वर्ष में लेनिन अपने साथियों, सैनिकों और किसानों…के भेजे हुए भोजन को खाने में शर्म महसूस करते थे। उनके सीधे-सादे बासे में जब पारसल आते, तो वह गुस्से से भर जाते… और जल्दी से आटा, चीनी और मक्खन बीमार साथियों तथा भोजन की कमी के कारण निर्बल हो गये व्यक्तियों को दे देते। एक बार उन्होंने अपने साथ भोजन करने के लिए मुझे बुलाते हुए कहा : 'मैं तुम्हें कुछ भुनी हुई मछली दूँगा—मेरे पास अस्त्राखान से आई हैं।' और फिर उन्होंने अपनी पेशानी पर शिकन डालकर (अपने को सम्भालते हुए) अपनी तीक्ष्ण दृष्टि को मेरी ओर से दूसरी तरफ फेरकर कहा : 'वे मेरे पास चीजें भेज रहे हैं, मानों मैं देवता हूँ ! मैं कैसे उन्हें ऐसा करने से रोकूँ ! अगर इन्कार करता हूँ और नहीं लेता तो उनका दिल दुखता है; उधर मेरे चारों ओर सभी भूखे हैं।'…

"एक बार मैं उनके साथ मास्को गया। उन्होंने पूछा : 'तुमने भोजन कर लिया ?' 'हाँ।' 'तुम यों ही तो नहीं कहते ?' 'इसके लिए गवाह है। मैंने क्रेमलिन के भोजनालय में भोजन किया है।' 'मैंने सुना है कि वहाँ का खाना अच्छा नहीं है।' 'बुरा भी नहीं है; लेकिन बेहतर बनाया जा सकता है।' उन्होंने तुरन्त पूछा : 'क्यों अच्छा नहीं है ? कैसे उसे बेहतर बनाया जा सकता है ?' फिर गुस्से में भुनभुनाते हुए बोले : 'वे लोग क्यों नहीं अच्छा रसोइया रखते ? लोग मरने की फुर्सत न पाकर काम कर रहे हैं। उन्हें अच्छा भोजन खिलाना चाहिए जिससे कि वे और ज्यादा खा सकें। मैं जानता हूँ, हमारे पास बहुत थोड़ी खाद्य-सामग्री है और वह भी बुरी है—लेकिन उन्हें एक अच्छा रसोइया तो रखना ही चाहिए।' "

कहने की आवश्यकता नहीं कि अमर साहित्यकार गोर्की के प्रति लेनिन को अपार स्नेह और विश्वास था।

2. नवीं पार्टी कांग्रेस (1920 ई.)

कोलचक, यूदेनिच और देनिकिन को पराजित करने के बाद लेनिन ने देश को सावधान किया कि इस विजय से कहीं अधिक कठिन आर्थिक मोर्चे पर विजय प्राप्त करना है। अव उन्होंने अपनी सारी शक्ति इस तरफ लगायी।

1920 के मार्च के अंत में मास्को में पार्टी की नवीं कांग्रेस शुरू हुई। लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी के राजनीतिक कामों के बारे में रिपोर्ट दी। अव तक की सफलताओं का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा :

> "केवल इसीलिए कि पार्टी सजग थी, इसीलिए कि पार्टी मजबूती से अनुशासनबद्ध थी, इसीलिए कि पार्टी के अधिकारी सभी विभागों और संस्थाओं को एकतावद्ध करने में समर्थ थे, इसीलिए कि केन्द्रीय कमिटी ने जो नारे दिये उन्हें सैकड़ों, हजारों और अन्त में लाखों आदमियों ने एक आदमी की तरह स्वीकार किया, और इसीलिए कि असीम बलिदान दिये गये—हमने यह सब चमत्कार देखा। यही कारण था कि अंतांत के साम्राज्यवादियों और सारी दुनिया के साम्राज्यवादियों के दोहरे, तेहरे बल्कि चौहरे आक्रमणों के खिलाफ भी हम विजयी हुए।"

लेनिन ने अपने भाषण में आर्थिक विकास के सम्बन्ध में भी कांग्रेस का ध्यान खींचा। कांग्रेस आरम्भ होने से पहले ही उन्होंने पार्टी संगठनों के नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें पार्टी, कमकरों और किसानों से "देश की आर्थिक स्थिति को पहले जैसी करने, सवसे पहले यातायात की व्यवस्था और उसके वाद खाद्य-स्थिति को बेहतर बनाने की ओर" अपनी सारी शक्ति लगाने के लिए कहा गया था।

नवीं कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके फैसला किया कि सम्पूर्ण लेनिन-ग्रन्थावली प्रकाशित की जाय। अप्रैल, 1920 में बोल्शेविक पार्टी ने अपने संस्थापक और नेता व्लादिमिर इलिच लेनिन का 50वाँ जन्मोत्सव मनाया। 23 अप्रैल को मास्को में लेनिन के सम्मान में उनकी मित्र-मण्डली की एक छोटी-सी बैठक हुई, जिसमें स्तालिन, गोर्की और दूसरों ने भाषण दिये। लेनिन ने जवाव देते हुए कहा कि हमें अपनी सफलताओं से यह नहीं भूल जाना चाहिए कि अव भी हमारे सामने बड़ी-वड़ी कठिनाइयाँ हैं। साथ ही उन्होंने यह आशा भी प्रकट की कि वोल्शेविक पार्टी अपने कर्तव्य का पालन करेगी। उनकी राय थी कि कमकरों, किसानों, विशेषकर स्त्रियों की सहायता प्राप्त करने तथा सार्वजनिक नियंत्रण को लागू करने की आवश्यकता है। इसके लिए राज्य-नियंत्रण मंत्रि-विभाग को स्तालिन के हाथ में रख दिया गया। 1920 ई. में यह मंत्रि-विभाग पुनः संगठित होकर कमकर-किसान-निरीक्षण वन गया। लेनिन ने इस संगठन के उद्देश्य के वारे में स्तालिन को लिखा था : "उद्देश्य : कमकर-किसान-निरीक्षण के काम में सभी कमकर जनता, पुरुषों और विशेषकर स्त्रियों की सहायता प्राप्त करना।"

पोलों का आक्रमण—सोवियत के भीतर दखलन्दाजी करके साम्राज्यवादी मुँह की खा चुके थे। लेकिन अब भी वे बोल्शेविक हौवे की बात करते थे और उसको मिटाना चाहते थे। लेनिन ने इस वात के लिए पहले ही सावधान कर दिया था। उनकी भविष्यवाणी सच निकली।

अप्रैल, 1920 में सोवियत भूमि के विरुद्ध साम्राज्यवादियों ने तीसरा अभियान किया। इस बार उन्होंने पोलैंड को, और बैरन रेंगल के नेतृत्व में सफेद गारद को, इस्तेमाल किया। रेंगल दक्षिण में क्रीमिया से रूस के भीतर बढ़ा। लेनिन ने बतलाया कि साम्राज्यवाद के ये दोनों हाथ दो तरफ से आगे बढ़कर सोवियत प्रजातन्त्र का गला घोंटना चाहते हैं। जिस समय सोवियत भूमि पर इस तरह के घातक हमले हो रहे थे, उस समय सारी दुनिया के साम्राज्यवादी और उनके पिट्ठू बोल्शेविकों के खिलाफ प्रचार कर रहे थे कि "रूस में बोल्शेविक नाम के खूनी लुटेरे पैदा हुए हैं जिनके मारे न किसी का धन सुरक्षित है, न इज्जत, न धर्म। वे नरभक्षी शैतान हैं।"

नये आक्रमण के तुरन्त बाद ही रूसी जनता ने नारा लगाया : "सबकुछ युद्ध के लिए !" लेनिन के प्रस्ताव पर पार्टी की केन्द्रीय कमिटी ने स्तालिन को दक्षिण-पश्चिमी मोर्चे को संगठित करने के लिए भेजा। लेनिन की अपील पर पार्टी तथा तरुण कम्युनिस्ट संघ के हजारों सबसे बढ़िया सदस्य बन्दूकें लेकर युद्ध के मोर्चे

के लिए चल पड़े।

इसी समय लेनिन ने कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की दूसरी कांग्रेस की तैयारी की। पहली कांग्रेस को हुए साल-भर हो गया था। अब विश्व पूँजीवाद सोवियत प्रजातंत्र पर भयंकर हमला कर रहा था। ऐसे समय में विश्व सर्वहारा को सजग करते हुए उसके कामों का लेखा-जोखा करना जरूरी था।

इसी साल अप्रैल और मई में लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'उग्रवादी कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज'** लिखी जोकि मार्क्सवादी दाँव-पेंच और सूझ का एक सरल निबंध और अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। इसमें सर्वहारा के क्रांतिकारी संघर्ष के नेतृत्व और महान क्रान्तियों के तजुर्बों से निष्कर्ष निकाले गये हैं।

इस पुस्तक में लेनिन ने लिखा कि क्रान्ति के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि शोषित और उत्पीड़ित जनसाधारण यह अनुभव करने लगें कि पुराने ढंग से जीवन-यापन असम्भव है, और यह सोचते हुए परिवर्तन की माँग करने लगें। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि शोषक पुराने ढंग से शासन और जीवन-यापन करने में असमर्थ हो जायें। सारे राष्ट्र में शोषक और शोषित, दोनों पर प्रभाव डालने वाले संकट के विना क्रान्ति असम्भव है और फिर, सारे कमकर वर्ग और कमकर जनता के बड़े भाग को आम तौर से क्रान्ति की ओर ले चलने के लिए प्रचार और आन्दोलन पर्याप्त नहीं हैं, इसके लिए जनसाधारण को स्वतंत्र राजनीतिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है।

लेनिन ने 'उग्र' मतवादियों की, यह बताते हुए कड़ी आलोचना की कि वे क्रान्तिकारी करणीयों को कट्टरपंथिता और एक जैसे तरीके से हाथ में लेना चाहते हैं; वे विस्तृत जनसाधारण के भीतर काम करने से हिचकिचाते हैं। सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि जनता के हिरावल को कम्युनिज्म (साम्यवाद) की ओर खींचा जाय। लेकिन हिरावल अकेला ही विजय प्राप्त नहीं कर सकता। सर्वहारा की क्रान्तिकारी हिरावल–कम्युनिस्ट पार्टियों–को चाहिए कि वे कमकर वर्ग और आम तौर से कमकर जनसाधारण के बहुमत को अपनी ओर खींचें। भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों का खयाल रखते हुए उनके अपने राजनीतिक अनुभवों की सहायता से उस जनसाधारण को चतुराई के साथ शिक्षा देते हुए क्रान्ति की ओर ले आना चाहिए। पार्टी को सीखना चाहिए कि हथियारबन्द विद्रोह से लेकर अत्यंत प्रतिक्रियावादी मजदूर सभाओं और पार्लमेंटों के क्रान्तिकारी उपयोग तक–संघर्ष के सभी तरीकों को इस्तेमाल किया जा सकता है। कानूनी और गैर कानूनी कार्रवाइयों को मिलाना जरूरी है। निर्भय होकर साहस के साथ आक्रमण करना चाहिए; लेकिन साथ ही संगठित ढंग से पीछे हटने, तथा 'शैतान और उसकी दादी' से भी व्यावहारिक समझौते के लिए तैयार रहना चाहिए।

लेनिन ने कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस (1920 की गर्मियों) के लिए मुख्य प्रस्तावों के मसौदे तैयार किए। एक निबंध द्वारा उन्होंने कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के करणीयों की रूपरेखा भी तैयार की। कृषि, राष्ट्रीय तथा औपनिवेशिक समस्याओं पर भी उन्होंने निबंध तैयार किए।

लेनिन ने कांग्रेस में कई विषयों पर रिपोर्ट दी और बहस में भाग लिया। एक बैठक में जर्मन प्रतिनिधियों को अपनी बात स्पष्ट रूप से समझाने के लिए उन्होंने जर्मन भाषा में भाषण दिया, और फ्रांसीसी प्रतिनिधियों के लिए फ्रेंच भाषा में। भाषणों का सार था : कम्युनिस्ट पार्टियों का संगठन क्रान्तिकारी मार्क्सवाद के सिद्धांतों के आधार पर होना चाहिए; उनका जनता के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए; समाजवादी क्रान्ति की विजय की तैयारी में उन्हें मार्क्सवादी दाँव-पेंचों को बड़ी चतुराई तथा दृढ़ता के साथ इस्तेमाल करना चाहिए।

कहा जा चुका है कि जिस समय कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस तथा पार्टी की नवीं कान्फ्रेंस हो रही थी, उसी समय पोलों और रेंगल के सफेद गारदों के विरुद्ध घमासान लड़ाई भी हो रही थी। लेनिन भला उसे कैसे भूल सकते थे ? 1920 के सितम्बर में नवीं कान्फ्रेंस के समय ही उन्होंने सोवियत-पोल युद्ध से पैदा हुई परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था : "अब तक हम सारी साम्राज्यवादी दुनिया के विरुद्ध अकेले लड़नेवाली शक्ति थे। लेकिन अब हम कहते हैं : हम पहले जितने शक्तिशाली थे उससे अब कहीं अधिक शक्तिशाली हैं और तुम्हारी ओर से होनेवाले प्रत्येक आक्रमण का जवाब हम इस तरह से देंगे कि तुम समझ जाओगे कि यूदेनिच, कोलचक और देनिकिन पर तुमने न सिर्फ करोड़ों रुपये का धन फूँक डाला है, बल्कि

हर आक्रमण के बाद सोवियत प्रजातंत्र भूभाग के विस्तृत होने का खतरा भी मोल ले लिया है।"

रेंगल की पराजय–लेनिन ने सोवियत जनता को सावधान किया कि जब तक रेंगल की सेनाएँ क्रीमिया पर अधिकार किये हुए हैं, तब तक हमारे सिर से खतरा दूर नहीं हुआ है : "जब तक रेंगल पूरी तौर से हरा नहीं दिया जाता, जब तक हम सारी क्रीमिया पर अधिकार नहीं कर लेते, तब तक इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि फौजी कर्तव्य हमारा सबसे पहला कर्तव्य हो।" लेनिन के प्रस्ताव पर दक्षिण मोर्चे को अलग करके उसकी कमान फ्रुंज के हाथ में दे दी गयी। लेनिन ने रेंगल को हराने के लिए भारी तैयारी की। उसके आक्रमण को रोकने में पहली सफलता प्राप्त होने पर उन्होंने कहा :

> "जैसे भी हो क्रीमिया के भीतर तक शत्रु का पीछा करो। अत्यन्त सावधानी से तैयारी करो। पता लगाओ कि क्रीमिया पर अधिकार करने हेतु सभी घाटों के वारे में जानकारी प्राप्त कर ली गयी है या नहीं।"

लाल सेना ने लेनिन की हिदायतों को कार्यरूप में परिणत किया। जिस समय क्रान्ति का तृतीय महोत्सव मनाया जा रहा था, लाल सेना ने पेरेकोप स्थल डमरूमध्य पर हल्ला बोल दिया और सिवाश जलडमरूमध्य में घुसकर रेंगल को बुरी तरह हराया। 16 नवम्बर, 1920 को फ्रुंजे ने लेनिन को तार दिया :

> "आज हमारे रिसाले ने केर्च पर अधिकार कर लिया है। दक्षिणी मोर्चा खतम कर दिया गया है।"

उसी साल दिसम्बर में आठवीं अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस हुई। 22 दिसम्बर को इस कांग्रेस में रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने रेंगल की पराजय में लाल सेना की वीरता और सफलता का बड़े प्रभावशाली शब्दों में जिक्र किया और कहा : "उसने बाधाओं पर विजय प्राप्त करके ऐसी किलेवन्दियों को नष्ट करने में सफलता पायी है जिन्हें सैनिक विशेषज्ञ अभेद्य समझते थे।...लाल सेना ने पूर्ण दृढ़ता के साथ और आश्चर्यचकित करनेवाली तीव्र गति से रेंगल के ऊपर जो विजय प्राप्त की है वह उसके इतिहास का एक बहुत ही भव्य पृष्ठ है।" रेंगल की विजय के साथ विदेशी साम्राज्यवादियों की दखलंदाजी और गृह-युद्ध समाप्त हुआ। सोवियत प्रजातंत्र अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

19
पुनर्निर्माण कार्य (1920-24 ई.)

1. विजय के वाद

लेनिन ने एक चतुर नाविक की तरह सोवियत पोत को गृह-युद्ध के भीषण तूफान से पार ले जाने में सफलता प्राप्त की थी। लेकिन, खतरा अब भी कम नहीं था। मार्ग की कठिनाइयाँ अभी भी सामने थीं। युद्ध व गृह-युद्ध ने देश की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था। कृषि, उद्योग-धंधे और यातायात चौपट हो गये थे। लोग भूखे और थके-मांदे थे। इस स्थिति का प्रभाव कमकरों के कुछ भाग पर भी पड़ रहा था, जिससे देश के विभीषण फायदा उठाना चाहते थे। रेंगल पर विजय प्राप्त करने के बाद, नवम्बर 1920 से ही लेनिन ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने की ओर अपना सारा ध्यान लगाया। उन्होंने पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए उसी महीने में मास्को के एक पार्टी सम्मेलन में कहा : "जिस सर्वहारा ने युद्ध में विजय प्राप्त की है, वही कम्युनिस्ट व्यवस्था का निर्माण, कम्युनिस्ट समाज का निर्माण, कर सकता है।"

आठवीं सोवियत कांग्रेस (दिसम्बर, 1920 ई.)–इस कांग्रेस में लेनिन ने समाजवाद का आर्थिक निर्माण करने और राष्ट्रीय अर्थनीति को पुनः स्थापित करने के लिए अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए कहा : हमारा सबसे पहला काम है सारी शक्ति लगाकर भारी उद्योग-धन्धों को फिर से स्थापित करना और उन्हें विकसित करना

तथा कृषि समेत सारे अर्थतंत्र को आधुनिक और बड़े पैमाने की मशीन से उत्पादनवाली नयी टेकनीक के आधार पर स्थापित करना। यह नया आधार था, बिजली। लेनिन के शब्दों में :

"कम्युनिज्म=सोवियत शक्ति+सारे देश का बिजलीकरण।…हम उसी समय अन्तिम रूप से विजयी होंगे जब देश का बिजलीकरण हो जायगा, जब उद्योग, कृषि और यातायात को आधुनिक और बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों की टेकनीक वाले आधार पर स्थापित कर लिया जायगा।"

लेनिन ने जिस योजना की रूपरेखा आठवीं सोवियत-कांग्रेस में रखी उसे 'गोयलरो' (बिजलीकरण राज्य-कमीशन) ने लेनिन के सुझाव पर और उनकी देख-रेख में तैयार किया था। इस योजना को बनाने में देश के सर्वश्रेष्ठ दो सौ वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने सहायता दी थी। यह बड़ी विशाल योजना थी। एच. जी. वेल्स ने लेनिन की योजना को क्रेमलिन के स्वप्नद्रष्टा का स्वप्न कहकर उसका मजाक उड़ाया था। लेकिन समाजवाद के लिए यह कोई असम्भव बात नहीं है, यह लेनिन अच्छी तरह जानते थे। लेनिन ने कहा भी था : "यदि रूस विद्युत शक्ति-केन्द्रों और शक्तिशाली टेकनीकवाले बिजली के स्टेशनों के जाल से ढक जाय, तो हमारा कम्युनिस्ट आर्थिक विकास, भावी समाजवादी यूरोप और एशिया के लिए आदर्श बन जायगा।" त्रात्स्की, राइकोफ और उनके समर्थक लेनिन की इस योजना का घोर विरोध करने लगे। लेकिन यह योजना विशेषज्ञों की सहायता से बनी थी, इसलिए अव्यावहारिक नहीं थी। भावी पंचवर्षीय योजनाओं के विधाता स्तालिन ने उसी समय लिखा था : "यह—व्यंगात्मक प्रश्न-चिन्ह के बिना—एक अकेली तथा वास्तव में राजकीय आर्थिक योजना की होशियारी के साथ तैयार की हुई रूपरेखा है।"

फूटपरस्त—सर्वसंहारी युद्धों के बाद अब शान्तिपूर्वक आर्थिक निर्माण का समय आया था। लेकिन इस काम में निश्चिन्ततापूर्वक लगना कहाँ नसीब हो सकता था ? त्रात्स्की जैसे लोग कहते थे कि जब तक सारे विश्व में समाजवादी क्रांति न हो जाय तब तक एक देश में समाजवाद का निर्माण असम्भव है। वे चाहते थे कि पहले विश्व-भर में क्रांति कर ली जाय। राइकोफ के नेतृत्व में 'जनतांत्रिक केन्द्रवादी', बुखारिन के नेतृत्व में 'वाम कम्युनिस्ट', और श्लयाप्निकोफ के नेतृत्व में 'कमकर विरोध' जैसे गुट, पार्टी के भीतर घोर विरोध कर रहे थे। लेकिन, लेनिन इन बौनों की घुड़की से कब डरनेवाले थे ? सैद्धांतिक तौर से वह अपने को ठीक रास्ते पर समझते थे। उन्हें इसका भी पूरा विश्वास था कि कमकर जनता और जनसाधारण के हित और सहानुभूति उनके साथ हैं। 1921 की जनवरी में 'पार्टी संकट' के नाम से लेख लिखकर उन्होंने विरोधियों को जवाब दिया।

दसवीं पार्टी कांग्रेस (1921 ई.)—यह पार्टी कांग्रेस मार्च 1921 में हुई। इस कांग्रेस को विभीषणों की कार्रवाइयों को विफल करने का काम तो करना ही था, उसे फरवरी और मार्च में देश में अनाज के अभाव के कारण चारों ओर फैली भुखमरी, ईंधन और यातायात की गड़बड़ी आदि को भी दूर करने की व्यवस्था करनी थी। किसानों में भी असन्तोष फैला हुआ था।

कांग्रेस आरम्भ होने से एक सप्ताह पहले क्रोन्सतात के नौसैनिक अड्डे में बगावत हो गयी थी। इस बगावत के पीछे सोवियत-शासन को उखाड़ फेंकने का षड्यंत्र था। बोल्शेविकों ने इस विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया।

ऐसी स्थिति में पार्टी की एकता में जरा भी फर्क आना खतरे की बात थी। इसकी ओर ध्यान दिलाते हुए लेनिन ने बतलाया कि "शत्रु यह समझ गये हैं कि सफेद गारदों के झंडे के नीचे खुलेआम प्रतिक्रान्ति के प्रयत्न के सफल होने की कोई आशा नहीं है, इसलिए वे रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर के मतभेदों से सब तरह से लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं…।"

'पार्टी एकता के बारे में' लेनिन के प्रस्ताव को कांग्रेस ने स्वीकार किया; विभीषणों की हार हुई। पार्टी के भीतर के विरोधियों की कार्रवाइयों की भी कांग्रेस ने निन्दा की। लेनिन, स्तालिन, मोलोतोफ, वोरोशिलोफ, कालिनिन, जेर्जिन्स्की, ओर्जोनिकिद्ज़े, फ्रुंजे और कुइबिशेफ केन्द्रीय कमिटी के सदस्य चुने गये।

2. 'नवीन आर्थिक नीति'

अब युद्धकालीन कम्युनिज्म की कड़ाइयों को जारी रखना उचित नहीं था। इसलिए दसवीं पार्टी कांग्रेस ने फाजिल अन्न वसूल करने की व्यवस्था को बन्द करके उसकी जगह पर अन्न-कर लागू किया। इस तरह 'नवीन आर्थिक नीति' ('नेप') का आरम्भ हुआ। कांग्रेस के बहुत पहले से ही लेनिन का ध्यान किसानों की आवश्यकताओं और कठिनाइयों की ओर था। जब भी मौका मिलता वह उनके साथ सीधा सम्वन्ध स्थापित करके उनके भावों को जानने की कोशिश करते थे। 1920 के दिसम्बर में सोवियत कांग्रेस के समय उन किसान-प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था, जो पार्टी के सदस्य नहीं थे। इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर लेनिन ने बड़े ध्यान से उनके भाषणों और वहस-मुवाहिसों को सुना था और वहुत-से नोट लिये थे। फरवरी, 1921 में लेनिन ने 'किसानों सम्बन्धी थीसिस का प्रारम्भिक मसौदा' लिखा। इसमें उन्होंने निम्न बातों पर जोर दिया :

"1. गैर-पार्टी किसानों की इस इच्छा की पूर्ति करो कि फाजिल अन्न वसूल करने की व्यवस्था बन्द कर दी जाय, और उसकी जगह अन्न-कर लागू हो।

"2. पिछले साल वसूली की मात्रा की तुलना में इस कर के पैमाने को कम करो।

"3. यह सिद्धांत स्वीकार करो कि कर की मात्रा किसान के परिश्रम के अनुसार लागू की जाय, और जितनी मात्रा में किसान का परिश्रम वढ़े, उसी के अनुसार कर कम किया जाय।

"4. गृहस्थ को अपने आस-पास में उस गल्ले के ढेर को...बेचने की अधिक स्वतंत्रता दी जाय, जो कर से अधिक है, लेकिन इस शर्त के साथ कि कर जल्दी और पूरी तौर से अदा कर दिया जायगा।"

'नवीन आर्थिक नीति' का आरम्भ एक तरह से उपरोक्त लेख द्वारा होता है। पार्टी कांग्रेस में लेनिन ने 'जिन्स के रूप में कर' के विषय पर रिपोर्ट दी थी। इसमें 'नवीन आर्थिक नीति' की योजना में संक्रमण की बात का समर्थन करते हुए उन्होंने बतलाया था कि समाजवाद के निर्माण में कमकर और किसान वर्ग के बीच आर्थिक मैत्री स्थापित करना अत्यावश्यक है।

'नवीन आर्थिक नीति' का पहला काम था अतिरिक्त-कर उगाहने की जगह अन्न-कर लागू करना। यह कर पहले की अपेक्षा बहुत हल्का था। लेनिन ने बतलाया था कि इस तरह के मुक्त व्यापार से देश में पहले पूँजीवाद का कुछ थोड़ा-सा पुनरुज्जीवन होगा। लेकिन उससे डरने की आवश्यकता नहीं। मुक्त व्यापार एक सीमा के भीतर ही रहेगा, जिससे प्रेरित होकर किसान अधिक अन्न उपजाने की कोशिश करेंगे, और उससे खेती की तरक्की होगी। अधिक उपज से अन्न का कष्ट कम होगा। इससे राजकीय उद्योग-धन्धों को तेजी के साथ पुनर्स्थापित करने और वैयक्तिक पूँजी को हटाने में सहायता मिलेगी। अब तक युद्धकालीन साम्यवाद की व्यवस्था चल रही थी; इसकी कठोरता को युद्ध खतम होने के बाद चालू नहीं रखा जा सकता था। युद्धकालीन साम्यवाद का काम था नगर और देहात में हल्ला बोलकर पूँजीवाद के दुर्ग पर अधिकार करना। यह काम करने में पार्टी जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ आयी थी और खतरा हो गया था कि कहीं वह अपने आधार से अलग न जा पड़े। लेनिन की दूरदर्शिता का ही परिणाम यह 'नवीन आर्थिक नीति' थी। दसवीं कांग्रेस खतम होने के बाद अप्रैल में लेनिन ने 'अन्न-कर' नाम की अपनी पुस्तिका लिखकर समाप्त की।

इसी 'नवीन आर्थिक नीति' के सम्वन्ध में लेनिन ने अप्रैल में मास्को के पार्टी सदस्यों की सभा में, मई में दसवीं अखिल-रूसी पार्टी कांग्रेस में, गर्मियों में कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की तीसरी कांग्रेस में और फिर शरद में अखिल-रूसी राजनीतिक शिक्षा सम्वन्धी कार्यकर्ताओं की द्वितीय कांग्रेस में, और मास्को गुबर्निया पार्टी कान्फ्रेंस में भाषण दिये।

देश की आर्थिक स्थिति पर लेनिन जिस तत्परता से ध्यान दे रहे थे, उसी तत्परता से उन्होंने देश की सैनिक शक्ति बढ़ाने पर भी ध्यान दिया। उन्होंने कहा :

"जागरूक रहो ! अपने देश की प्रतिरक्षा-व्यवस्था और लाल सेना की रक्षा अपनी आँख की पुतली की तरह करो। याद रखो, हमें एक क्षण के लिए भी किसी तरह की सुस्ती दिखाने का हक नहीं है।"

लेनिन ने इस समय जो दूसरे बहुत-से काम किये वे थे : विद्युत शक्ति केंद्रों की स्थापना, सहयोग समितियों का निर्माण, मछली-उद्योग का विकास, यातायात व्यवस्था, बिजलीवाले हलों के व्यवहार का आरम्भ, अकाल को मिटाने का उपाय, विदेशी व्यापार, वित्त, वैज्ञानिकों की स्थिति में सुधार, दोनेत्स कोयला खान में कोयला काटने की मशीनों का इस्तेमाल, रेडियो प्रसार, स्कूलों की वृद्धि, स्कूलों के लिए एटलस और आधुनिक रूसी भाषा के कोष आदि का प्रकाशन।

3. राज्य-योजना-कमीशन

इसी समय लेनिन ने राज्य-योजना-कमीशन को स्थापित कराया। उन्होंने कहा : "महत्वपूर्ण सफलताओं को ध्यान में रखते हुए एक लम्बे अर्से की योजना के बिना हम काम नहीं कर सकते।" इस कमीशन का मुख्य काम था एक राजकीय आर्थिक योजना तैयार करना और इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने की व्यवस्था करना। इस योजना ने हीं आगे स्तालिन की महान योजनाओं का रूप लेकर रूस की काया-पलट कर दी। इस योजना के अनुसार कशिरा और वोल्खोफ के बिजली-स्टेशन बनायें गये। कार्यकर्ताओं के पथ-प्रदर्शन के लिए 'स्थानीय सोवियत संगठनों के लिए श्रम और प्रतिरक्षा परिषद की हिदायतें' के नाम से एक गश्ती-पत्र जारी किया गया। इन हिदायतों में लेनिन ने आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए देश के सामने जो मुख्य-मुख्य करणीय थे, उनकी व्याख्या की। चौथी ट्रेड यूनियन कांग्रेस, राष्ट्रीय अर्थनीति परिषदों की चौथी कांग्रेस और दसवीं अखिल-रूसी कम्युनिस्ट पार्टी कांग्रेस में इन हिदायतों पर उन्होंने बहस की। लेनिन ने कितने ही पत्र भी लिखे और इन हिदायतों के बारे में अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी कमिटी की बैठक में भाषण दिया।

लेनिन के अनुसार देश के शासन के काम में जनता का सहयोग अत्यन्त आवश्यक था। वह बराबर जोर देते थे कि राजकीय तथा आर्थिक प्रबन्ध में पार्टी और गैर-पार्टी नर-नारियों का, सभी कमकर जनता का सक्रिय भाग लेना अत्यावश्यक है। वह उन लोगों की कड़ी आलोचना करते थे जो अपने को जनता से ऊपर समझते थे और उससे सीखना अपनी शान के खिलाफ मानते थे। उनका कहना था : हमें जनता के संघर्ष के व्यावहारिक अनुभवों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए तथा उनका सार निकालना चाहिए।

4. लेनिन के कुछ गुण

जनता में अटूट विश्वास—लेनिन कमकर और किसान-जनता के साथ हजारों तरह से सम्बन्ध रखते थे। जब भी मौका मिलता वह इसके लिए नये उपाय निकालते। जनवरी, 1922 में उन्होंने जनप्रिय पत्र 'ब्येद्नोता' (गरीब) के सम्पादक के नाम पत्र में लिखा था :

> "क्या आप कृपा करके मुझे संक्षेप में (अधिक-से-अधिक दो या तीन पृष्ठों में) सूचित करेंगे कि 'ब्येद्नोता' में किसानों के कितने पत्र आते हैं ? इन पत्रों में क्या-क्या महत्वपूर्ण और नयी बातें होती हैं ? इनमें कैसे मनोभाव प्रकट होते हैं और किन-किन विषयों पर ? क्या यह सम्भव नहीं है कि कुछ पत्रों को प्रति मास दो बार प्राप्त किया जाय ?"

लेनिन सभी शक्तियों का स्रोत जनता को समझते थे। इसीलिए, 1922 के वसन्त में ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस में उन्होंने कहा था : "हम तभी शासन कर सकते हैं, जब हम उस बात को ठीक प्रकार से व्यक्त करें, जिसका ख्याल जनता को है !" जनता भी लेनिन के प्रति असाधारण प्रेम और विश्वास रखती थी। कमकर कहते थे : "लेनिन का मतलब है—स्वयं हम।"

बाद में क्रेमलिन के फौजी स्कूल की एक सभा में स्तालिन ने कहा था :

> "मुझे ऐसे किसी दूसरे क्रांतिकारी की याद नहीं आती, जो सर्वहारा की सृजनात्मक शक्ति में, सर्वहारा वर्ग की सूझ-बूझ की क्रांतिकारी योग्यता में, इतना गम्भीर विश्वास रखता हो जितना लेनिन।...और इसीलिए लेनिन का बराबर उपदेश था : जनता से सीखो, उसकी क्रियाओं को समझने की कोशिश करो और जनसाधारण के संघर्ष के व्यावहारिक अनुभव का बड़े ध्यान से अध्ययन करो।"

लेनिन को तड़क-भड़क और हल्ला-गुल्ला पसन्द नहीं था। वह सभी चीजों में सादगी और विनम्रता पसन्द करते थे।

नौकरशाही के शत्रु–लेनिन नौकरशाही के कट्टर दुश्मन थे। जो भी ऐसी मनोवृत्ति दिखलाता, उसके खिलाफ वह अत्यन्त कड़ा बर्ताव करते। उन्होंने सोवियतों के संगठनों का एक मुख्य काम नौकरशाही का विरोध करना बतलाया था। नौकरशाही वरतने के अपराध में वह फौजदारी कार्रवाई करने की माँग करते थे। सितम्बर, 1921 में उन्होंने न्याय-मंत्री-विभाग के नाम एक पत्र लिखकर कहा था कि इस शरद और जाड़ों में मास्को में नौकरशाही के बहुत स्पष्ट चार-छः मामलों को लेकर मुकदमे चलाये जायें। लेनिन धोखा-धड़ी और जालसाजी को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। समाजवादी सम्पत्ति की खयानत करनेवालों को तो वह किसी तरह भी क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थे। सार्वजनिक कोष या सम्पत्ति के साथ खयानत के हरेक मामले के लिए वह सीधे-सीधे दण्ड देने के लिए कहते थे।

1921 ई. में एक लाल सैनिक ने मास्को में आकर दोन इलाके के कुछ अफसरों की खयानत तथा शक्ति के दुरुपयोग की सूचना दी। सैनिक ने अपने पत्र में लेनिन को बतलाया था कि इसके कारण वहाँ कमकरों और किसानों में बहुत असंतोष फैला हुआ है। लेनिन ने तुरन्त उस पत्र की एक कापी पार्टी की केंद्रीय कमिटी के सेक्रेटरी मोलोतोफ के पास भेजकर कहा कि दोन इलाके में इस लाल सैनिक के साथ केंद्रीय कार्यकारिणी कमिटी के सदस्यों तथा स्वेर्दलोफ-युनिवर्सिटी के दस से बीस तक विद्यार्थियों का एक विशेष कमीशन भेजा जाय, जो वहाँ जाकर पूरी जाँच करे और अपराधियों को गोली से उड़वा दे। उक्त लाल सैनिक के बारे में लेनिन ने मोलोतोफ के पास एक अलग नोट लिखा था :

> "लिखनेवाले को तुरन्त ढूँढ़कर और अपने आफिस में बुलाकर संतोष दो और कहो कि मैं बीमार हूँ, लेकिन तो भी इस मामले में तुरन्त कार्रवाई करनेवाला हूँ।"

शिक्षा और संस्कृति के पक्षपाती–गृह-युद्ध की भीषण घड़ियों में भी लेनिन का जोर बराबर इस बात पर रहता था कि जनता के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाय। गृह-युद्ध के बाद कृषि और उद्योग के पुनर्निर्माण का काम जोर-शोर से होने लगा, तो लेनिन ने इस ओर और भी ध्यान देने के लिए कहा। उन्होंने बतलाया कि निरक्षरता को खतम करना सबसे आवश्यक काम है। निरक्षर आदमी राजनीतिक काम में नहीं लगाया जा सकता। उसे लिखना-पढ़ना सिखाना बहुत आवश्यक है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि जनता इस काम को अपने हाथ में ले तो निरक्षरता को दूर करने में देर नहीं लगेगी। वह जानते थे कि निरक्षर और अशिक्षित जनता को बेवकूफ बनाकर शत्रु फायदा उठा सकते हैं। शिक्षा और संस्कृति के प्रसार के सम्बन्ध में लेनिन की नीति ने रूस की पिछड़ी हुई जातियों में उस प्रयत्न का आरम्भ किया जिसके कारण कुछ ही वर्षों में निरक्षरता वहाँ के लिए अतीत की चीज बन गयी। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूस में इतनी बड़ी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी, यदि जनता की मातृभाषा को साक्षरता और शिक्षा का माध्यम न बनाया गया होता।

लड़ाकू भौतिकवाद पर जोर–1922 के मार्च के आरम्भ में लेनिन ने 'लड़ाकू भौतिकवाद का महत्व' शीर्षक एक लेख लिखा था। इसमें उन्होंने कहा था :

> "कम्युनिस्टों का एक सबसे बड़ा और अत्यन्त खतरनाक गलत विचार यह है कि हरेक गंभीर क्रांतिकारी के काम में सफल होने के लिए जरूरी है कि वह इस विचार को समझे और कार्यरूप में परिणत करे कि क्रांतिकारी वस्तुतः अग्रगामी वर्ग के हिरावल का पार्ट ही अदा करने में सक्षम होते हैं। हिरावल तभी हिरावल के अपने काम को पूरा कर सकता है जब वह अपने नेतृत्व को जनसाधारण से पृथक न होने दे, जब वह सारी जनता को लेकर आगे बढ़ने में समर्थ हो। गैर-कम्युनिस्टों की मैत्री के बिना अत्यन्त विभिन्नतावाले कार्य-क्षेत्रों में कम्युनिस्टों का कोई रचनात्मक कार्य सफल नहीं हो सकता।"

उन्होंने गैर-कम्युनिस्ट भौतिकवादियों, आधुनिक विज्ञान के प्रतिनिधियों, विशेषकर प्राकृतिक विज्ञान-वेत्ताओं के साथ मैत्री स्थापित करने के लिए कम्युनिस्टों पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि इस मैत्री को स्थापित करने में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विशेष हाथ होगा। केवल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही पूँजीवादी विचारधारा और

सभी प्रकार के आदर्शवाद और पुरोहितवाद से सफलतापूर्वक लोहा ले सकता है। इस विषय में उन्होंने तीन बातों को कार्यरूप में परिणत करने पर जोर दिया। वे तीन बातें ये थीं : (1) अनथक रूप से नास्तिकवादी प्रचार करना, और हर प्रकार के पुरोहितवाद के खिलाफ निष्ठुर संघर्ष करने के लिए सभी उपलब्ध सामग्री को इस्तेमाल करना; (2) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रकाश में उन परम्परागत विचारधाराओं के टूटने की व्याख्या, जो अब तक आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित हैं, और जिनसे लाभ उठाकर पूँजीवादी दार्शनिक आदर्शवाद को भीतर घुसेड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं; और (3) सभी दृष्टियों से भौतिकवादी द्वंद्वात्मकता को दार्शनिक विज्ञान के तौर पर विकसित करना। "जब तक भौतिकवाद इस तरह के काम को हाथ में नहीं लेता, सुव्यवस्थित रूप से इसे पूरा नहीं करता, तब तक भौतिकवाद लड़ाकू भौतिकवाद नहीं हो सकता।"

पार्टी एकता और अनुशासन–सर्वहारा की हिरावल सेना की–कम्युनिस्ट पार्टी की–शक्ति को बढ़ाने और मजबूत करने की ओर लेनिन का बराबर ध्यान रहता था। वह पार्टी-संगठन में किसी तरह की शिथिलता, सुस्ती और अनुशासनहीनता को नहीं देखना चाहते थे। वह उन लोगों की कड़ी आलोचना करते थे जो सभी बातों को अपने हाथ में ले लेते थे, पर किसी को भी पूरा नहीं कर पाते थे। सम्मेलनों में लगातार बैठकी करने को लेनिन बुरी निगाह से देखते थे। वह जोर देते थे कि कार्यकारिणी द्वारा नियन्त्रण और उचित आदमी का चुनाव राज्य के शासन-यंत्र को ठीक से चलाने के लिए मुख्य चीज है। पार्टी की एकता को कायम रखने के लिए उन्होंने पार्टी के भीतर त्रात्स्की, जिनोवियेफ, कामेनेफ, रादेक, बुखारिन, राइकोफ, सोकोल्निकोफ की कड़ी आलोचना ही नहीं की, उनसे जबर्दस्त लोहा भी लिया। अयोग्य आदमियों को पार्टी में रखना वह हानिकारक समझते थे। 1921 ई. में केंद्रीय कमिटी ने शुद्धीकरण की जो घोषणा की थी, उसे लेनिन बहुत महत्वपूर्ण मानते थे और कहते थे कि 'गुण्डे, नौकरशाह, बेईमान या ढुलमुलयकीन कम्युनिस्टों और मेन्शेविकों' को निकाल बाहर करना चाहिए। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि पार्टी की शुद्धि के काम में गैर-पार्टी कमकरों की सहायता बहुत आवश्यक है। उन्होंने यह भी कहा कि नये सदस्यों को स्वीकार करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। उन्होंने कहा कि तरुण कम्युनिस्ट संघ का कोई सदस्य यदि पार्टी में लिया जाय, तो इस बात की अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल कर ली जाय कि उसने संघ में रहते हुए गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है और कुछ सीखा है, और यह भी जाँच कर ली जाय कि उसने 'गम्भीर व्यावहारिक कार्यों (आर्थिक, सांस्कृतिक, आदि) को लम्बे अर्से तक किया है या नहीं।"

जातियों के मित्र–रूस की परतन्त्र जातियों के बारे में बोल्शेविकों का क्या रुख था, इसे लेनिन ने प्रथम विश्वयुद्ध से बहुत पहले ही प्रकट कर दिया था। सोवियत शासन के आरंभ से ही उस नीति पर चलने का प्रयत्न किया जाने लगा था। जातियों के प्रति क्या नीति होनी चाहिए, इसके सबसे बड़े विशेषज्ञ स्तालिन थे। उन्हीं को इस विभाग का काम सौंपा गया था। 1921 ई. में जब गुर्जी में सोवियत-शासन स्थापित हुआ तो लेनिन ने सन्देश देते हुए स्तालिन के पास यह नोट भेजा था : "कृपया इसे भेज दो, किन्तु यदि तुम्हें कोई बात पसंद न हो तो मुझे टेलीफोन पर बुलाओ।" काकेशस में उस समय कई सोवियत प्रजातंत्र कायम हो गये थे, जिनको मिलाकर एक संयुक्त राज्य बनाना जरूरी था। लेनिन ने संयुक्त काकेशस प्रजातन्त्र बनाने के लिए जो प्रस्ताव तैयार किया था, उसके मसौदे को पहले उन्होंने स्तालिन को दिखलाया। स्तालिन ने एक संशोधन सुझाया। इसे लेनिन ने स्वीकार कर लिया।

लेनिन जातीय अहंकार को बड़ी बुरी नजर से देखते थे। पार्टी के ब्यूरो की एक बैठक में उन्होंने स्तालिन के पास निम्न नोट भेजा था :

> "जैसे ही इस कम्बखत खराब दाँत से छुट्टी पाऊँगा, मैं महारूसी जातीय अहंकार के विरुद्ध मरने-जीने का युद्ध शुरू कर दूँगा। अपने मजबूत दाँतों से मैं इसको चबा जाऊँगा।
>
> "हम इसपर पूरी तौर से जोर दें कि अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी की बैठकों में रूसी, उक्राइनी, गुर्जी इत्यादि बारी-बारी से अध्यक्षता करें। अवश्य !
>
> तुम्हारा, लेनिन।"

इस नोट के हाशिये पर स्तालिन ने लिखा था : "बहुत ठीक।"

स्तालिन से स्नेह—लेनिन अपने सबसे योग्य और प्रिय शिष्य स्तालिन के प्रति वहुत वात्सल्य भाव रखते थे। जुलाई, 1921 में उत्तरी काकेशस से जव उन्हें खवर मिली कि स्तालिन बीमार हैं, तो उन्होंने तुरन्त ओर्जोनिकिद्ज़े को तार दिया :

> "मुझे स्तालिन के स्वास्थ्य और डाक्टर की राय के बारे में सूचना दो।"

कुछ दिनों बाद फिर उन्होंने तार दिया :

> "मेरे पास उस डाक्टर का नाम और पता भेजो जो स्तालिन की चिकित्सा कर रहा है और मुझे बताओ कि स्तालिन कितने दिनों तक दूर रहेंगे।"

हम अन्यत्र वतला चुके हैं कि स्तालिन के रहने-सहने, निवास-स्थान आदि के बारे में लेनिन कितना ध्यान रखते थे। दिसंबर, 1921 में उन्होंने स्तालिन के सेक्रेटरी को नोट लिखा था : "जब स्तालिन उठें (उन्हें जगाना मत) तो उनसे कहना कि दोपहर के 11 वजे से मैं एक कमीशन में (अपने कमरे में) रहूँगा, और यह भी कि मैं उनके टेलीफोन का नम्बर माँग रहा हूँ।"मैं टेलीफोन पर उनसे कुछ बात करना चाहता हूँ।"

5. ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस (1922 ई.)

1922 के मार्च में ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस हुई। यही अंतिम पार्टी कांग्रेस थी जिसमें लेनिन ने भाग लिया। उन्होंने अपनी सारी मानसिक और शारीरिक शक्ति लगाकर इन चार-पाँच वर्षों में जो कठोर परिश्रम किया था, उसका दुष्प्रभाव अब उनके स्वास्थ्य पर पड़ने लगा था। तो भी स्वास्थ्य की चिन्ता किये विना इस कांग्रेस की तैयारी के लिए लेनिन ने काम किया। कांग्रेस में उन्होंने केन्द्रीय कमिटी की ओर से राजनीतिक रिपोर्ट पेश की और दूसरी बातों के साथ-साथ 'नवीन आर्थिक नीति' के पहले वर्ष के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि ये परिणाम सिद्ध करते हैं कि हमारी नीति विल्कुल सही थी। उन्होंने कहा कि इस नीति के आधार पर कमकरों और किसानों की मैत्री दृढ़ हुई है, कुलकों का लुटेरापन करीव-करीब बिल्कुल खत्म कर दिया गया है; और बड़े पैमाने के उद्योग, यातायात व्यवस्था, बैंक, भूमि और देशी-विदेशी व्यापार, सभी की हालत बेहतर बनी है। उन्होंने यह भी कहा :

> "एक साल तक हम पीछे हटते रहे। अब पार्टी के नाम पर 'रुको' कहना होगा। पीछे हटने का जो उद्देश्य था, वह पूरा हो गया। अब उसका समय खतम हो रहा है या खतम हो गया है। अब हमारा उद्देश्य दूसरा है—अपनी शक्तियों को पुनः पंक्तिवद्ध करना।"

शक्तियों को पुनः पंक्तिवद्ध करने का उद्देश्य लेनिन ने बतलाया था : "वैयक्तिक पूँजी के खिलाफ हमला करने के लिए तैयारी करना।" उन्होंने कहा कि 'नवीन आर्थिक नीति' के अनुसार पूँजीवाद को काम करने दिया गया था, लेकिन सवसे महत्वपूर्ण आर्थिक जगहों को सर्वहारा राज्य ने अपने हाथ में रखा था। पूँजीवादी और समाजवादी तत्त्वों के वीच एक भीषण युद्ध होता रहा, जिसमें समाजवादी तत्त्व आगे वढ़े और अन्त में पूँजीवादी तत्त्वों पर विजयी हुए। 'नवीन आर्थिक नीति' का लक्ष्य था पूँजीवाद के ऊपर समाजवाद की विजय प्राप्त करना, वर्गों का उच्छेद करना तथा समाजवादी अर्थनीति की नींव रखना। लेनिन ने कांग्रेस के सामने कहा : "रूसी सर्वहारा राज्य के हाथ में जो आर्थिक शक्तियाँ हैं, वे उसे साम्यवाद की स्थिति में पहुँचाने के लिए विल्कुल पर्याप्त हैं।" मजदूर वर्ग के साथ किसानों की मैत्री को मजवूत करने पर व्लादिमिर इलिच ने बहुत जोर दिया।

कांग्रेस के सामने अपने इस अन्तिम भाषण को समाप्त करते हुए लेनिन ने कहा कि पार्टी में दसवीं और ग्यारहवीं कांग्रेसों के दौरान संगठन और विचारधारा की जैसी एकता रही, उसे और आगे बढ़ाना चाहिए।

लेनिन अपने स्वास्थ्य को विगड़ते देख रहे थे। वह यह भी देख रहे थे कि सरकार और पार्टी के भार को और अधिक ढोना अब उनके लिए कठिन है। उन्होंने कांग्रेस में प्रस्ताव रखा कि स्तालिन को केंद्रीय कमिटी का जनरल सेक्रेटरी बनाया जाय। इस प्रकार, 1922 के मार्च में स्तालिन जनरल सेक्रेटरी निर्वाचित किये गये।

तब से 31 वर्ष (अपनी मृत्यु के समय) तक वह इस पद पर रहे। लेनिन ने स्तालिन को अपना उत्तराधिकारी चुनते हुए कितनी दूरदर्शिता से काम लिया था, इसका इतिहास साक्षी है।

6. लेनिन और भारत

'दुनिया के मजदूरों एक हो' के मंत्र का जाप करनेवाला भौगोलिक सीमाओं में कैसे जकड़ा रह सकता है ? वह सोचता है तो संसार के समस्त मजदूरों के लिए, आवाज उठाता है तो संसार-भर के मेहनतकशों के लिए, तमाम दुनिया की आजादी, शांति और खुशहाली के लिए। यों तो प्रत्यक्ष रूप से लेनिन ने सोवियत रूस की महान समाजवादी क्रांति का नेतृत्व किया, किन्तु लेनिन का दिखाया मार्ग विश्व सर्वहारा की थाती है और उनकी प्रेरणा सीमाओं और परिधियों को तोड़ती हुई समस्त संसार की मेहनतकश जनता को प्रेरित करती है।

सर्वहारा की लड़ाई के परिणाम के सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा था :

"...संघर्ष का परिणाम इस बात से निश्चित होगा कि पृथ्वी की जनसंख्या का बहुमत रूस, भारत और चीन में रहता है। और यही वह बहुमत है जो पिछले कुछ बरसों में असाधारण तेजी के साथ मुक्ति के संघर्ष में खिंच आया है। इसलिए इस बात को देखते हुए सन्देह की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं हो सकती कि विश्व संघर्ष का अन्तिम परिणाम क्या होगा।"

लेनिन को पूरा विश्वास था कि रूस, चीन और भारत में समस्त संसार की मेहनतकश जनता की लड़ाई लड़ी जायगी। जिन देशों का इतना महत्व हो उनके आंदोलनों के सम्वन्ध में और उनकी जनता की धड़कनों के संबंध में जानकारी हासिल करने के लिए लेनिन अवश्य ही तन-मन से व्यस्त रहे होंगे। समय की गति पर तो उनका हाथ था ही, भारत और चीन में होनेवाली घटनाओं को वह वहुत ही निकट से देखते थे।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि लेनिन को जिस काल में भारत के बारे में कुछ लिखने या बोलने का मौका मिला, वह हमारे लिए और स्वयं लेनिन के लिए भी एक कठिन परिस्थिति थी। हमारे देश पर अंग्रेजों का एकछत्र राज्य था। 1857 के सिपाही विद्रोह को अंग्रेजों ने जिस क्रूरता से कुचला था, उसके कारण हिन्दुस्तान की आजादी का आंदोलन बहुत पीछे हट गया था—जहाँ-तहाँ उसकी चिनगारियाँ नजर आती थीं, किन्तु वे देशव्यापी संगठित ज्वाला नहीं बन पायी थीं। दूसरी ओर रूस में अक्तूबर क्रांति के पहले तक जारशाही का क्रूर और निरंकुश राज था; और अक्तूवर क्रांति के बाद दुनिया-भर के साम्राज्यवादियों ने रूस पर संगठित हमला बोल दिया था। हमारे देश से न तो सच्ची खबरें दूसरे देशों में जा पाती थीं—क्योंकि अंग्रेज लेखक ही दुनिया के सामने हमारे आँख-कान थे—और रूस में छिड़े भयानक गृह-युद्ध के कारण लेनिन समेत रूस की पूरी जनता जीवन-मरण की लड़ाई में लगी थी। फिर भी लेनिन ने हमारे बारे में जो भी थोड़ा-बहुत लिखा, उससे उनकी पैनी दृष्टि का, हमारे आज़ादी के आन्दोलन के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति का पता चल जाता है।

भारत के प्रति उनकी सहानुभूति निष्क्रिय नहीं थी। लेनिन की आँखों से यह रहस्य छिपा नहीं रह गया कि हमारे शासक अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने ब्रिटेन के मज़दूरों में विष फैला दिया है और जो स्वाभाविक सहानुभूति उन्हें भारतीय सर्वहारा से होनी चाहिए उसपर परदा डाल दिया है। लेनिन ने एक लेख में इस भ्रम को दूर किया और इंग्लैंड के मजदूरों को बताया कि अंग्रेज साम्राज्यवादी जो कुछ अधिक सिक्के उनके सामने फेंक देते हैं, उन्हें वे अपनी जेब से नहीं देते बल्कि भारत जैसे पराधीन देशों को चूसकर ही वे रकम का एक बहुत छोटा-सा भाग उनके सामने फेंक देते हैं, ताकि ब्रिटेन का मजदूर वर्ग हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन के साथ सहानुभूति न दिखायें।

हिन्दुस्तान पर अंग्रेजी शासन की क्रूरता, उसके परिणाम और अंग्रेज राज के खिलाफ भारतीय जनता के सुलगते हुए गुस्से के बारे में लेनिन ने 1908 ई. में अपने एक लेख में लिखा था :

" 'सभ्य', ब्रिटिश पूँजीपतियों के देशी गुलाम इधर हाल में हिन्दुस्तान में अपने उन 'मालिकों' को काफी परेशान और बेचैन करने लगे हैं जिसे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन कहते हैं। उसकी हिंसा और

लूट की कोई सीमा नहीं है। वस, रूस को छोड़कर, दुनिया में और कहीं भी ऐसी गरीवी और ऐसी दायमी भुखमरी नहीं है। आजाद व्रिटेन के जान मार्ले जैसे सबसे ज्यादा उदार और उग्रवादी राजनीतिज्ञ, जो रूसी और गैर-रूसी कादेतों (पूँजीवादी पार्टी) की नजरों में अधिकारी विद्वान् हैं, 'प्रगतिशील' (असल में शासकों के टुकड़खोर) प्रचारकों के चमकते सितारे हैं, अपने कब्जे की आबादी को 'शान्त करने के लिए' वे सव कार्रवाइयाँ, यहाँ तक कि हंटरों की वर्षा कर सकते हैं...। लेकिन अपने देशी लेखकों व राजनीतिक नेताओं की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान की जनता ने सड़कों पर निकल आना शुरू कर दिया है। अंग्रेज गीदड़ों द्वारा हिन्दुस्तानी जनवादी तिलक को दी गयी घृणित सजा...थैलीशाहों के गुलामों द्वारा एक जनवादी के खिलाफ की गयी वदले की इस कार्रवाई की वजह से बम्वई की सड़कों पर प्रदर्शन और हड़ताल हुई। हिन्दुस्तान का सर्वहारा वर्ग भी इतना काफी वयस्क हो चुका है कि एक वर्ग-जागृति और राजनीतिक संघर्ष चला सके। और जव यह हालत है तो हिन्दुस्तान में रूसी-शैली की (दमन-शैली की—अनु.) ब्रिटिश हुकूमत के दिन लद गये।"

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक का बहुत बड़ा स्थान है। अंग्रेजों ने उन्हें देशनिकाला दिया तो भारतीय जनता को बड़ा धक्का लगा था। उसने इस सजा के खिलाफ़ बड़े जोरों से अपने गुस्से का इजहार किया। साथ ही इस घटना को लेकर भारत का मजदूर वर्ग पहली बार संगठित होकर आजादी के आंदोलन में उतरा। इन तमाम बातों को लेनिन की पैनी दृष्टि ने तुरन्त देख लिया था।

इस बात को हम सभी लोग जानते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही रूस में समाजवादी क्रांति हुई और उसके बाद हमारे देश की आजादी का आन्दोलन और भी तेजी से आगे वढ़ा। इस बारे में लेनिन ने 1920 में एक लेख में लिखा था :

"साम्राज्यवादी युद्ध ने क्रांति को मदद दी है। साम्राज्यवादी युद्ध में हिस्सा लेने के लिए पूँजीपति वर्ग ने फौजियों को उपनिवेशों से, पिछड़े हुए देशों से, अलहदगी से बाहर निकाला। ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग ने हिन्दुस्तान के फौजियों के दिमाग में यह वात भरी कि जर्मनी के खिलाफ ग्रेट ब्रिटेन की रक्षा करना हिन्दुस्तान के किसानों का काम है।...उसने उन्हें हथियारों का प्रयोग सिखाया। यह बहुत ही लाभदायक ज्ञान है। और यह ज्ञान देने के लिए हम पूँजीपति वर्ग के बड़े कृतज्ञ हैं। साम्राज्यवादी युद्ध ने पराधीन जनता को विश्व इतिहास में खींच लिया है। आज हमारे सामने एक सबसे खास काम इस बात पर विचार करना है कि गैर-पूँजीवादी देशों से सोवियत आन्दोलन के संगठन की आधार-शिला कैसे रखी जाय। उन देशों में सोवियतें वनाना सम्भव है। वे मज़दूर सोवियतें नहीं बल्कि किसान सोवियतें या मेहनतकशों की सोवियतें होंगी।"

किसी पराधीन देश में आजादी का आन्दोलन जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे साम्राज्यवादी शासकों की नृशंसता और क्रूरता भी वढ़ती जाती है। पर आजादी का आन्दोलन दमन से ज्यादा दिनों तक रुकता नहीं है। हमारे देश में भी ऐसा ही हुआ है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब भारत की जनता ने आजादी की माँग की तो अंग्रेजों ने उसे रोलट एक्ट नामक दमनकारी कानून दिया। जनता और भी गुस्से से भर उठी और उसने जोरदार प्रदर्शन किया। अमृतसर के जलियाँवाले बाग में पंजाब के वीर बेटे लाखों की तादाद में जमा हुए। लेकिन अंग्रेज साम्राज्यवादियों की नृशंसता भी चरम सीमा पर पहुँच गयी। हत्यारे डायर ने सैकड़ों हिन्दुस्तानियों को वहीं मौत के घाट उतार दिया। आज हम जलियाँवाले बाग के काण्ड को भुलाना भी चाहें तो नहीं भुला सकते हैं, क्योंकि एक ओर तो डायर की गोलियों के निशान अब भी हमारे सीनों पर हैं, दूसरी ओर उस काण्ड के बाद से ही हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम ने एक नये युग में प्रवेश किया। इस बारे में लेनिन ने 1921 में एक लेख में लिखा था :

"ब्रिटिश भारत इन देशों में सबसे आगे है। जैसे-जैसे एक तरफ औद्योगिक और रेलवे सर्वहारा बढ़ता जाता है और दूसरी तरफ अंग्रेजों का पाशविक आतंक बढ़ता जाता है, जो और ज्यादा और अक्सर कत्लेआम (अमृतसर), सरे आम कोड़े लगाने आदि पर उतर रहे हैं, वैसे-वैसे वहाँ क्रान्ति परिपक्व होती

जा रही है।"

1921 में इस वात का केवल विश्वास होना ही कि अंग्रेज भारत से निकल जायेंगे, एक वड़ी क्रांतिकारी बात थी। उस समय हमारे यहाँ के बहुत-से पढ़े-लिखे लोगों को यह विश्वास नहीं होता था कि हम आजाद होंगे। हमारे यहाँ के बहुत-से नेताओं को भी यह पता नहीं था कि संघर्ष का अन्तिम परिणाम क्या होगा। लेकिन, लेनिन ने समझ लिया था कि भारत स्वतंत्र होकर रहेगा, क्योंकि यहाँ की जनता दमन से नहीं डरती है, और यह कि आजादी के आन्दोलन में निर्णयकारी भूमिका अदा करनेवाले वर्ग—मज़दूर वर्ग—ने राजनीतिक संघर्ष में हिस्सा लेना शुरू कर दिया है।

केवल कहने के लिए ही लेनिन कभी कोई वात नहीं कहते थे। वह हर वात गहरे मनन के वाद कहते थे। भारत की परिस्थिति का उन्होंने अध्ययन करके ही यह वात कही थी। उन्होंने अपने इस कथन का स्पष्टीकरण एक लेख में निम्नलिखित शब्दों में किया था :

> "औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देशों की विशाल मेहनतकश जनता, जो पृथ्वी की जनसंख्या की भारी बहुमत है, वीसवीं शताब्दी के शुरू में ही, खास तौर से रूस, तुर्की, फारस और चीन की क्रांतियों की वजह से, राजनीतिक रूप से जाग गयी थी : इस विशाल जनता को विश्व राजनीति में, और क्रांतिकारी तरीके से साम्राज्यवाद का विनाश करने में, एक सक्रिय ताकत के रूप में बदलने की प्रक्रिया को 1914-18 का साम्राज्यवादी युद्ध और रूस का सोवियत शासन पूरा कर रहा है। यद्यपि यूरोप में अमरीका के पढ़े-लिखे कुर्सीतोड़ क्रांतिकारी, जिनमें दूसरी और ढाइवीं इन्टरनेशनल के नेता भी शामिल हैं, इसे देखने में बरावर इन्कार कर रहे हैं।"

इसी बात को उन्होंने और स्पष्ट रूप से तथा और ज्यादा विस्तार से उस समय कहा जब सोवियत संघ में समाजवादी सत्ता अपेक्षाकृत अधिक मज़वूत हो गयी थी। 1923 में उन्होंने विश्वास के साथ यह ऐलान किया था :

> "साथ-ही-साथ, खास तौर से पिछले साम्राज्यवादी युद्ध का ही यह नतीजा हुआ कि अनेक देश ... हिन्दुस्तान, चीन वगैरा अपनी पुरानी लीक से एकदम वाहर निकल आये हैं। उनका विकास निश्चित रूप से आम, यूरोपीय, पूँजीवादी धारा के अनुसार होने लगा है। उनपर आम यूरोपीय उथल-पुथल का असर पड़ना शुरू हो गया है। और अव सारी दुनिया के सामने यह बात साफ हो गयी है कि वे विकास के एक ऐसे दौर में खिंच आये हैं जो जरूर ही समूचे विश्व पूँजीवाद के लिए संकट पैदा करेगा।...
>
> "अन्तिम रूप में संघर्ष का परिणाम इस वात से निश्चित होगा कि पृथ्वी की जनसंख्या का बहुमत रूस, भारत और चीन में वसता है।..."

पराधीन देशों के स्वतन्त्रता-संग्राम को लेनिन समाजवादी क्रांति का ही एक अंग मानते थे—खास तौर से रूस में समाजवादी क्रांति के सफल होने के बाद। यही कारण था कि रूस में समाजवादी क्रांति के साथ दूसरे देशों के क्रांतिकारी आंदोलन का सम्वन्ध जोड़ते हुए लेनिन ने 1917 में लिखा था :

> "रूस में सर्वहारा की विजय से एशिया और यूरोप दोनों में क्रांति के विकास के लिए असाधारण रूप से अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हो जायेंगी।"

भारतवासी इस बात को समझते थे। यही कारण था कि हमारे देशवासियों ने रूसी क्रांति का अभिनन्दन किया।

आज हमारे देश ने अंग्रेज साम्राज्यवादियों की राजनीतिक गुलामी को तोड़कर फेंक दिया है। इतना ही नहीं, दुनिया में हमारे देश की प्रतिष्ठा आज बहुत वढ़ गयी है। विश्व शांति की रक्षा के लिए रूस और चीन के साथ आज हमारा देश भी प्रयत्नशील है। जैसी कि लेनिन ने भविष्यवाणी की थी रूस, चीन और भारत जिधर झुकेंगे, उधर का ही पलड़ा भारी होगा। यदि इन तीनों महान देशों ने कंधे से कंधा मिलाकर विश्व शान्ति के झण्डे को बुलन्द किया तो कोई भी शक्ति विश्वयुद्ध छेड़ने में सफल नहीं हो सकेगी। आज लेनिन की भविष्यवाणी के सही साबित होने की परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है।

20
बीमारी और महाप्रयाण (1923-24 ई.)

1. बीमारी

1918 ई. की गर्मियों में लेनिन के ऊपर काप्लान ने घातक हमला किया था। वह भयंकर रूप से घायल हो गये थे। यद्यपि उस समय वह बच गये थे, किन्तु निर्बल स्वास्थ्य के ऊपर अत्यधिक काम करने से जो बुरा प्रभाव पड़ा, उसके कारण 1921-22 ई. के जाड़ों के आरम्भ से ही उन्हें कितनी ही बार विश्राम लेना पड़ा था। ग्यारहवीं पार्टी-कांग्रेस के बाद मई, 1922 में उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। अब उनके लिए क्रेमलिन में रहना अच्छा नहीं था। डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम की राय दी। उन्होंने कहा कि लेनिन का मास्को के पास गोर्की में रहना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होगा।

मई के अन्त में लेनिन पर लकवे का पहला आक्रमण हुआ, जिसके कारण उनका दाहिना पैर और हाथ बेकाम हो गये। उनकी बोलने की शक्ति में भी रुकावट पैदा हो गयी। उनकी चिकित्सा होती रही। जून के मध्य में स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। जुलाई में डाक्टरों ने उन्हें बहुत घनिष्ट मित्रों से इस शर्त पर मिलने की इजाजत दी कि वे उनके साथ काम के बारे में बातचीत न करें। उस समय गोर्की में लेनिन से मिलने के लिए स्तालिन उनके पास गये थे। बाद में स्तालिन ने लिखा था :

"छः सप्ताह तक न देखने के बाद जुलाई के अन्त में जब मैंने साथी लेनिन से पहली बार मुलाकात की तो मेरे ऊपर उन्होंने बड़ा प्रभाव डाला। मुझे वह ऐसे दिखायी दिये, मानो लगातार और अनथक युद्धों के बाद थोड़ा विश्राम पाने पर कोई पुराना योद्धा फिर ताजा हुआ हो। वह चंगे तथा स्वास्थ्य-सम्पन्न मालूम होते थे। तो भी अधिक काम और थकावट के चिह्न मौजूद थे।

" 'मुझे अखबार पढ़ने की आज्ञा नहीं है'–साथी लेनिन ने व्यंग्यपूर्वक कहा–'और मुझे राजनीति पर बात नहीं करनी होगी। मेज पर रखे हुए हरेक कागज के टुकड़े के इर्द-गिर्द मैं बड़ी सावधानी से टहलता हूँ, ताकि कहीं ऐसा न हो कि वह अखबार का टुकड़ा निकल आये और अनुशासन भंग का कारण बने।'

"मैं दिल खोलकर हँसा और साथी लेनिन को, उनके सुन्दर अनुशासन-पालन के लिए बधाई दी। हमने डाक्टरों का भी उपहास किया जो यह नहीं समझ सकते थे कि जब दो पेशेवर राजनीतिक पुरुष मिलेंगे, तो वे राजनीति पर बात किये बिना नहीं रह सकते !

"साथी लेनिन में सबसे बड़ी बात जो तुमको मालूम होगी, वह है जानकारी के लिए उनकी प्यास, काम के लिए...उनकी भारी इच्छा।"

लेनिन के बीमार होने पर पार्टी के काम का संचालन स्तालिन कर रहे थे। समय-समय पर लेनिन उन्हें बुलाकर सभी बातों के बारे में पूछते थे। लेनिन का स्वास्थ्य जल्दी ही इतना सुधर गया कि वह कार्य-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार करने लगे और पढ़ने के लिए पुस्तकें मँगाने लगे। उन्होंने अपने सेक्रेटरी को लिखा :

"तुम्हें मेरे स्वास्थ्य-सुधार के लिए साधुवाद देना चाहिए। प्रमाण : मेरी लिखावट अब मानवीय होने लगी है। पुस्तकों को भेजना शुरू करो (और सूचीपत्रों को भेजो) : (1) वैज्ञानिक, (2) उपन्यास (3) राजनीतिक। अन्तिम को सबसे पीछे, क्योंकि अभी उसके लिए इजाजत नहीं मिली है।"

जुलाई के मध्य में स्तालिन ने ओर्जोनिकिद्जे को तार में लिखा था :

"कल, छः सप्ताहों में पहली बार, डाक्टरों ने इलिच को मित्रों से मिलने दिया तथा दिन में कुछ घंटे काम करने की इजाजत दी। मैं इलिच के पास गया और देखा कि वह पूरी तौर से स्वस्थ हो गये हैं। वर्तमान राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में हिदायतों के रूप में आज हमने एक नोट पाया। डाक्टर

सोचते हैं कि एक महीने के भीतर वह पहले की तरह काम कर सकेंगे।"

बारहवीं पार्टी कान्फ्रेंस (1922 ई.)—अगस्त में अखिल-रूसी पार्टी कान्फ्रेंस का बारहवाँ अधिवेशन हुआ। लेकिन, लेनिन का स्वास्थ्य अब भी ऐसा नहीं था कि वह उसमें उपस्थित होते। कान्फ्रेंस ने अपने नेता के नाम अभिनन्दन भेजा। अधिवेशन में स्तालिन ने कहा :

> "साथियो, मैं यह सूचना देना चाहता हूँ कि साथी लेनिन ने आज मुझे बुलाया और कान्फ्रेंस के अभिनन्दन के लिए मुझे अपना धन्यवाद पहुँचा देने की हिदायत दी। उन्होंने आशा प्रकट की है कि वह समय दूर नहीं है जब वह फिर हमारी पंक्ति में शामिल होकर काम करने लगेंगे।"

2 अक्तूबर, 1922 को सचमुच ही गोर्की से मास्को लौटकर लेनिन अपने काम में लग गये। अगले दिन उन्होंने जन-कमीसार-परिषद की बैठक की अध्यक्षता की और 5 अक्तूबर को पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की एक बैठक में सम्मिलित हुए। जब लेनिन फिर काम करने लगे तो लोगों को बहुत सन्तोष हुआ। लेकिन डाक्टरों ने लेनिन को प्रतिदिन केवल पाँच घंटा काम करने की इजाजत दी थी। उन्होंने सप्ताह में एक दिन की पूरी छुट्टी भी आवश्यक बतलायी थी। छुट्टी के लिए लेनिन ने बुधवार चुना था।

लेनिन पहले ही दिन काम पर साढ़े 9 बजे सवेरे आ गये। उन्होंने बहुत-से अखबारों पर नजर दौड़ायी। 10 बजकर 45 मिनट पर उन्होंने सेक्रेटरी से रिपोर्ट पूछी। इसमें 15 मिनट लगे। इसके बाद दो बजे तक उन्होंने जमकर काम किया। जब वह बासे पर लौटे, तो बहुत-से कागज-पत्र अपने साथ ले गये। 6 बजे शाम को ऑफिस में फिर आकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी को बहुत-सी हिदायतें दीं। डाक्टरों की सलाह को ताक पर रखकर वह छुट्टी का दिन भी अक्सर आफिस में बिताते। लेनिन के सेक्रेटरी ने उनके एक छुट्टी के दिन के बारे में लिखा है :

> "नवम्बर 1—प्रातः स्तालिन से बातचीत। संध्या : 7 से 8 बजे तक दो इतालियन साथियों से बातचीत। साढ़े 8 बजे ब्लादिमिर इलिच घर गये।"

31 अक्तूबर को लेनिन ने अखिल-रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी की बैठक में भाषण दिया। बीमारी से उठने के बाद यह उनका पहला भाषण था। अपने भाषण में उन्होंने सोवियत भूमि के अन्तिम भाग—ब्लादिवोस्तोक को जापानियों से मुक्त करने में लाल सेना और सोवियत कूटनीति की चमत्कारपूर्ण विजय का जिक्र किया। देश की आर्थिक अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया कि अभी भी वह पूँजीवादी देशों से बहुत पीछे है, लेकिन वह तीव्र गति से आगे बढ़कर उन्हें पकड़ लेगा।

13 नवम्बर को लेनिन ने कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की चौथी कांग्रेस में 'रूसी क्रांति के पाँच वर्ष और विश्व क्रांति की सम्भावनाएँ' पर रिपोर्ट दी। उन्होंने बतलाया कि यद्यपि देश की स्थिति बड़ी भयंकर है और वह चारों तरफ से पूँजीवादी देशों से घिरा हुआ है, तो भी अन्तिम विजय में कोई संदेह नहीं है। 'नवीन आर्थिक नीति' के परिणामों को बतलाने के बाद उन्होंने गर्व के साथ कहा : "पिछले अठारह महीनों ने असंदिग्ध रूप से साबित कर दिया है कि... हम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं।" 'नवीन आर्थिक नीति' के आधार पर सर्वत्र प्रगति हुई थी, कमकरों और किसानों के बीच मैत्री मजबूत हुई थी, कमकर वर्ग की स्थिति में सुधार हुआ था, रूबल का मूल्य स्थिर हो गया था, हल्के उद्योगों की उपज बढ़ी थी। उन्होंने कहा :

> "हम सिद्ध कर चुके हैं कि राज्य के तौर पर व्यापार करने, कृषि और उद्योग में मजबूत स्थिति को कायम रखने और प्रगति करने में हम समर्थ हैं।...किन्तु...भारी उद्योग को राज्य से सहायक धन की आवश्यकता है। अगर हम उसको यह नहीं दे सके तो समाजवादी राज्य की बात तो दूर, हम सभ्य राज्य के तौर पर भी नहीं रह सकेंगे।"

लेनिन ने यह भी बतलाया कि 'नवीन आर्थिक नीति' के फलस्वरूप सोवियत सरकार ने दो करोड़ सुवर्ण रूबल की बचत की है जिन्हें भारी उद्योगों की पुनर्स्थापना और विकास में लगाया जायगा। उन्होंने कहा कि सोवियत सरकार सभी मदों में—शिक्षा में भी—खर्च को घटाना चाहती है।

"ऐसा अवश्य करना होगा, क्योंकि हम जानते हैं कि यदि हम भारी उद्योग को नहीं बचाते, उसे पुनर्स्थापित

नहीं करते, तो हम किसी भी उद्योग का निर्माण करने में असफल रहेंगे, और उसके बिना हम एक स्वतंत्र देश के तौर पर नहीं जी सकते।··हमने कमकरों के लिए राज्य शक्ति पर अधिकार किया। हमारा लक्ष्य है समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए शक्ति का इस्तेमाल करना।"

लेनिन ने इन्टर्नेशनल की कांग्रेस के सामने एक घंटे तक अपनी रिपोर्ट जर्मन भाषा में दी। भाषण से मालूम हो रहा था कि बोलने में उन्हें बहुत प्रयास करना पड़ रहा है जिसे देखकर श्रोता-मंडली प्रभावित हुए बिना नहीं रही। जब उन्होंने भाषण समाप्त किया तो वह बहुत थके मालूम होते थे।

अन्तिम भाषण–एक सप्ताह बाद 20 नवम्बर 1922 को, लेनिन ने मास्को सोवियत की एक बैठक में भाषण दिया। इसमें उन्होंने सोवियत शासन के पाँच वर्षों के परिणामों को संक्षेप में बतलाते हुए कहा :

"हमने समाजवाद को प्रतिदिन के जीवन में घसीट लिया है और यहाँ हमें अपने को सँभाले रखने की आवश्यकता है।··हमारे युग का यही करणीय है। मुझे अपनी इस धारणा को प्रकट करते हुए भाषण समाप्त करने की इजाजत दीजिए कि चाहे यह करणीय हमारे पहले के करणीयों की तुलना में नया हो, और चाहे वह कितनी भी कठिनाइयाँ हमारे सामने लाये, तो भी एक दिन में नहीं, बल्कि कई वर्षों में हम सब एक साथ मिलकर इसे पूरा करेंगे, चाहे जो कुछ भी हो। और, 'नवीन आर्थिक नीति' का रूस समाजवादी रूस के रूप में परिणत होकर रहेगा।"

महान लेनिन का यह अन्तिम सार्वजनिक भाषण था।

फिर बीमार–लेनिन का स्वास्थ्य फिर खराब हो चला। उन्होंने काम जारी रखा। वह जन-कमीसार-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करते और वित्त, बिजली-उद्योग-विकास, जहाजों की मरम्मत, जन-गणना जैसे अनेक कामों में दिलचस्पी लेते। वह बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखते और हिदायतें जारी करते। उन्होंने तरुण कम्युनिस्ट इंटर्नेशनल की तृतीय कांग्रेस को, अखिल उक्राइनी सोवियत कांग्रेस को, राज्य कर्मचारी संघ की कांग्रेस को और शिक्षा-कर्मी संघ की कांग्रेस को अभिनन्दन भेजे। मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार का एक सार्वजनिक संस्करण प्रकाशित करने की भी उन्होंने कोशिश की। वैदेशिक नीति और युद्ध के खतरे से सम्बन्धित समस्याएँ उनके दिमाग में चक्कर काटा करतीं। हेग शान्ति-कांग्रेस में शामिल होनेवाले सोवियत प्रतिनिधि-मंडल के लिए भी उन्होंने हिदायतें लिखीं।

अपने जीवन के अन्तिम सक्रिय सप्ताहों में लेनिन ने सोवियत राज्य को मजबूत बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। इस समय उन्होंने सोवियत भूमि की भिन्न-भिन्न जातियों की मैत्री दृढ़ करने के लिए बहुत काम किया और जातीय सोवियत प्रजातंत्रों की स्थापना में पथ-प्रदर्शन किया। देश की प्रतिरक्षा, समाजवादी समाज का निर्माण और सभी सोवियत जातियों के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए यह अत्यावश्यक था कि सोवियत भूमि में बसनेवाली जातियों के संघ को और भी सुदृढ़ बनाया जाय। इसके लिए भिन्न-भिन्न सोवियत प्रजातंत्रों को एक राज्य-संघ के रूप में घनिष्टतापूर्वक एकताबद्ध करने की जरूरत महसूस हुई। 10 दिसम्बर, 1922 को अखिल उक्राइनी सोवियत कांग्रेस के पास अभिनन्दन भेजते हुए लेनिन ने कहा था कि आज की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है : सोवियत प्रजातंत्रों को एकताबद्ध करना। "इस समस्या का ठीक से हल करना हमारे राज्य-यंत्र के भविष्य के संगठन का फैसला करेगा।"

दिसम्बर 1922 के अंत में 10वीं अखिल रूसी-सोवियत कांग्रेस और प्रथम अखिल-संघीय सोवियत कांग्रेस की बैठक हुई। इसमें लेनिन और स्तालिन द्वारा रखे गये प्रस्ताव को पास करते हुए यह ऐतिहासिक फैसला किया गया कि सोवियतों की भूमि में रहनेवाली जातियाँ स्वेच्छापूर्वक सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के रूप में एकताबद्ध हों। लेनिन इन कांग्रेसों में बीमारी के कारण सम्मिलित नहीं हो सके। वह 10वीं अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस में बोलना चाहते थे। जो रिपोर्ट वह देना चाहते थे उसका खाका भी उन्होंने तैयार कर लिया था। लेकिन बीमारी ने उन्हें मौका नहीं दिया। 12 दिसम्बर, 1922 को वह अंतिम बार क्रेमलिन में अपने आफिस में गये। उस दिन के लेनिन के काम के बारे में सेक्रेटरी ने डायरी में लिखा था :

"लेनिन गोर्की से 12 दिसम्बर को सवेरे आये, और 11 बजकर 45 मिनट पर आफिस में दाखिल

हुए। वह वहाँ थोड़ी देर ठहरे, फिर अपने कमरे में चले गये। मध्याह्न में लौटकर उन्होंने सुरुपा से मुलाकात की जो उनके साथ दो घंटे रहे। 2 बजे लेनिन दफ्तर से बाहर गये। लेकिन शाम के लिए उन्होंने कोई हिदायत नहीं छोड़ी। शाम को ब्लादिमिर इलिच साढ़े 5 बजे दफ्तर आये। जेर्जिन्स्की 6 बजकर 45 मिनट पर आये। 7 बजकर 45 मिनट पर विदेश मंत्रि-विभाग का एक अधिकारी उनके पास आया। ब्लादिमिर इलिच सवा 7 वजे घर गये।"

2. वीमारी के वावजूद

बीमारी लेनिन की इच्छाशक्ति को किसी तरह भी निर्वल नहीं कर पायी। वह उनकी काम करने की कमी न तृप्त होनेवाली भूख को भी नहीं मिटा पायी। कई समस्याओं पर उनका दिमाग लगा हुआ था। 13 दिसम्वर को उन्होंने स्तालिन को एक पत्र लिखवाया। इसे पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की अगली वैठक में पढ़ना था और इसमें उन्होंने विदेश-व्यापार की इजारेदारी को राज्य के हाथ में रखने के लिए जोर दिया था। बुखारिन इसका विरोधी था। उन्होंने बुखारिन की निंदा की। बुखारिन के काम को उन्होंने मुनाफाखोरों, निजी व्यापारियों और कुलकों के हितों को आगे वढ़ाना वतलाया। केन्द्रीय कमिटी की वैठक की अध्यक्षता स्तालिन ने की। बैठक में लेनिन के विचारों का समर्थन किया गया।

लेनिन के स्वास्थ्य को तेजी से गिरते देखकर डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम लेने की सलाह दी। मास्को छोड़ने से दो या तीन दिन पहले तक लेनिन ने अपने साथियों से क्रेमलिन के अपने वासे में मुलाकात की, चिट्ठियाँ लिखवायीं, हिदायतें दीं तथा कितनी ही किताबों को भेजने के लिए कहा। लेनिन अपनी बीमारी के बारे में कुछ कहना पसन्द नहीं करते थे, दुःख प्रकट करने की तो वात ही क्या! किन्तु इस बार उन्होंने बहुत कष्ट सहा। एक रात वह विल्कुल नहीं सो पाये। 15 दिसम्वर को उन्होंने स्तालिन को लिखा :

> "मैंने अपने कामों को समेट लिया है। अव मैं शांतिपूर्ण दिमाग से छुट्टी ले सकता हूँ।···केवल एक ही चीज है जो मेरे दिमाग को वहुत परेशान कर रही है। वह यह है कि मैं सोवियतों की कांग्रेस में बोल नहीं सकूँगा। मंगल को डाक्टर यहाँ आयेंगे। उस समय हम लोग सोच सकेंगे कि मेरे वोल सकने की जरा भी गुंजाइश है या नहीं। मैं समझता हूँ यह अच्छा न होगा···कि मैं न वोलूँ। पिछले कुछ दिनों में मैंने अपने भाषण की रूपरेखा तैयार कर ली है। इसलिए मेरा सुझाव है कि मेरी जगह किसी और के बोलने का प्रबंध रखते हुए भी बुध तक इस वात की सम्भावना रखनी चाहिए कि मैं स्वयं बोल सकूँ··· वह भाषण आम भाषणों की अपेक्षा छोटा, करीव पौन घंटे का होगा। इस तरह के भाषण से मेरी जगह बोलनेवाले के लिए बाधा भी नहीं होगी···। मैं समझता हूँ कि मेरा वोलना राजनीतिक और वैयक्तिक तौर से भी मेरे लिए लाभदायक होगा, क्योंकि उससे काफी परेशानियाँ दूर हो सकेंगी।"

इसी समय बीमारी का एक और हमला हुआ। इस हमले ने लेनिन को सोवियतों की कांग्रेस में नहीं बोलने दिया। लेनिन का मास्को से गोर्की जाना स्थगित कर दिया गया।

लेनिन की इस वीमारी से लोगों में चारों ओर चिंता बढ़ गयी। लेकिन 1923 ई. के पहले दो महीनों में उनके स्वास्थ्य में फिर सुधार होता दिखायी दिया। इस छोटे-से अरसे में उन्होंने कितने ही महत्वपूर्ण लेख लिखवाये। 2 जनवरी को उन्होंने 'मेरी डायरी के पन्ने' वोलकर लिखवाये। 4 व 6 जनवरी को 'सहकारिता के संबंध में' तथा 9, 13, 19, 22 और 23 को 'कमकर-किसान-निरीक्षण को कैसे संगठित किया जाय' शीर्षक लेख लिखवाये। 16 और 17 जनवरी को उन्होंने 'हमारी क्रांति के सम्वन्ध में' लेख लिखवाया और 2, 4, 5, 6, 7 और 9 फरवरी को 'थोड़े ही भले, लेकिन वेहतर' शीर्षक लेख लिखवाया।

इस समय के लिखवाये लेखों में लेनिन ने क्रांति के वर्षों के कामों का जायजा लिया था। एक बार फिर उन्होंने सर्वहारा अधिनायकतत्व, राज्ययन्त्र, आर्थिक नीति, किसानों से सम्बन्ध, देश की प्रतिरक्षा, वैदेशिक नीति, पार्टी की एकता जैसी क्रांति की मौलिक समस्याओं पर चिन्तन किया। उन्होंने अपने लेखों में सोवियत संघ में समाजवाद की विजय की सम्भावना पर जोर दिया और कहा कि "सोवियत प्रजातंत्र के पास वे सभी

चीजें मौजूद हैं जो पूर्ण समाजवादी समाज के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।" समाजवाद के मुख्य आधार के तौर पर भारी उद्योग के महत्व पर जोर देते हुए उन्होंने कहा :

> "किसान वाले, भूजिक वाले, दुवले-पतले घोड़े को–ध्वस्त किसानों वाले देश के आर्थिक घोड़े को उस घोड़े से बदलना, जिसे सर्वहारा खोज रहे हैं–(अर्थात्) बड़े पैमाने के मशीन-उद्योग, बिजलीकरण··· के घोड़े से बदलना पार्टी का काम है।"

लेनिन कहते थे कि सोवियत राज्य की स्वतंत्रता और उसकी प्रतिरक्षा को मजबूत करने के लिए शक्तिशाली भारी उद्योग ही एकमात्र गारंटी है।

लेनिन ने बार-बार जोर देकर कहा कि मज़दूर वर्ग केवल किसानों की मैत्री से ही समाजवाद का निर्माण कर सकता है। 'नवीन आर्थिक नीति' का मुख्य प्रयोजन था समाजवादी निर्माण में किसानों का सहयोग प्राप्त करना। किसानों की यह सहायता कैसे प्राप्त की जाय, इसके बारे में लेनिन ने अपने अन्तिम लेखों द्वारा पथ-प्रदर्शन करते हुए चमत्कारपूर्ण हल पेश किया था। यह हल था सहकारिता, विशेषकर कृषि-सम्बन्धी सहकारिता, जिसके द्वारा समाजवादी निर्माण के काम में किसानों को शामिल किया जा सकता था। लेनिन ने बतलाया कि इस तरह सोवियत-शासन में किसान आसानी से वैयक्तिक खेती से आगे बढ़कर बड़े पैमाने की सहकारी खेती में शामिल किये जा सकते हैं। लेनिन ने बतलाया कि सहकारिता के सिद्धांत का प्रयोग पहले उपज के क्रय-विक्रय में, फिर कृषि की उपज में हो। इसे किसान सोच-समझकर अपना सकते हैं, और इस प्रकार वे समाजवादी निर्माण के काम में सहायक हो सकते हैं। उन्होंने लिखा था :

> "बड़े पैमाने के सभी उत्पादन के साधनों पर राज्य का अधिकार, सर्वहारा के हाथ में राज्य का अधिकार, कई करोड़ छोटे-से-छोटे किसानों के साथ सर्वहारा की मैत्री, सर्वहारा द्वारा किसानों का निश्चित नेतृत्व इत्यादि–क्या यही सबकुछ वह नहीं है, जो...पूर्ण समाजवादी समाज का निर्माण करने के लिए आवश्यक है ? यह अभी समाजवादी समाज का निर्माण नहीं है, बल्कि यह वह सब है जो उसके निर्माण के लिए आवश्यक तथा पर्याप्त है।"

अपने अन्तिम लेखों में लेनिन ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तथा वैदेशिक नीति की ओर विशेष ध्यान दिया। सोवियत सरकार की वैदेशिक नीति की आधार-शिला लेनिन ने रखी थी। उनके पथ-प्रदर्शन में सोवियत कूटनीति ने अनेक चमत्कारपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की थीं। उन्होंने जोर देकर कहा था कि सोवियत प्रजातंत्र को अपनी स्वतंत्र वैदेशिक नीति रखनी चाहिए, और उसे केवल सोवियत राज्य तथा समाजवादी हितों के अनुसार ही चलना चाहिए। जब तक सारी दुनिया में समाजवाद विजयी नहीं हो जाता, तब तक यह मुख्य नियम होना चाहिए कि साम्राज्यवादी खेमे में जो परस्पर-विरोध फैला हुआ है, उससे लाभ उठाया जाय और सोवियत भूमि के विरुद्ध साम्राज्यवादियों के एका करने के सभी प्रयत्नों को विफल किया जाय। लेकिन, उन्होंने जोर दिया कि इन सबके साथ देश की प्रतिरक्षा को बराबर मजबूत रखना बहुत जरूरी है।

3. 12वीं पार्टी-कांग्रेस (1923 ई.)

यह कांग्रेस अप्रैल, 1923 में हुई। यह पहली पार्टी-कांग्रेस थी जिसमें–बोल्शेविकों के सत्तारूढ़ होने के बाद पहली बार–लेनिन सम्मिलित नहीं हो सके। मार्च, 1923 में फिर लेनिन का स्वास्थ्य विगड़ गया था। 9 मार्च को बीमारी का इतना जबर्दस्त हमला हुआ था कि उन्हें चारपाई पकड़ लेनी पड़ी। लेकिन, 12वीं कांग्रेस के पथ-प्रदर्शन के लिए लेनिन पहले से ही अनेक पत्र और लेख लिख चुके थे। उनके प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस ने पार्टी के केंद्रीय नियंत्रण-कमीशन और कमकर-किसान-निरीक्षण को मिलाकर एक कर दिया।

मई तक लेनिन का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। उसी महीने के मध्य में उन्हें मास्को से गोर्की ले जाया गया। गोर्की पहुँच जाने पर जुलाई के मध्य से उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने लगा। 19 अक्तूबर, 1923 को लेनिन कुछ घंटों के लिए मास्को क्रेमलिन में अपने बासे में गये, जन-कमीसार-परिषद भवन को देखा और अपने दफ्तर को भी। फिर राजधानी की मुख्य-मुख्य सड़कों पर मोटर में घूमे। उसी साल संगठित कृषि प्रदर्शनी

भी उन्होंने देखी। महान नेता सर्वहारा की विजय के इन प्रतीकों को आखिरी बार देख रहे थे।

4. महाप्रयाण (1924 ई.)

21 जनवरी, 1924 को 6 बजे शाम को एकाएक लेनिन पर वीमारी का जवर्दस्त प्रहार हुआ। वह वेहोश हो गये। दिमाग में रक्तस्राव हुआ और उसी दिन 6 बजकर 50 मिनट पर लेनिन ने दुनिया से विदाई ली।

गोर्की ने लिखा था :

"ब्लादिमिर इलिच की मत्यु हो गयी। उनके रूप में दुनिया ने एक परम प्रतिभा, अपने महान् सम-सामयिकों से बहुत अधिक वड़ी प्रतिभा को खो दिया। इसे उनके कितने ही शत्रुओं को भी स्वीकार करना पड़ा...।

"उनका रेखा-चित्र प्रस्तुत करना बहुत मुश्किल काम है। लेनिन के शब्द उसी तरह उनके बाह्य रूप के अभिन्न अंग थे, जैसे मछली के लिए चोइयाँ। हर बात में सादगी और स्पष्टवादिता उनके स्वभाव का एक आवश्यक अंग थी। जिन साहसपूर्ण कामों को करने में वह सफल हुए, वे किसी चमकते हुए प्रभामंडल से घिरे नहीं हैं। उनके भीतर वह वीरता थी, जिसे रूस अच्छी तरह जानता है : विना दिखावे का एक ऐसे सच्चे रूसी क्रांतिकारी बुद्धिजीवी के आत्मवलिदान का तपस्वी जीवन, जिसने पृथ्वी पर सामाजिक न्याय की संभावना में अटल विश्वास रखते हुए मानवता के सुख के लिए प्रयत्न करने में जीवन के अपने सभी आनन्दों को त्याग दिया।"

लेनिन की मृत्यु के बारे में सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक आरी वारवूस ने लिखा था :

"वह समूची रूसी क्रांति के अवतार थे, जिसे उन्होंने अपने दिमाग से सोचा, उसके लिए तैयारी की और उसे जन्म देकर उसकी रक्षा की। लेनिन इतिहास के निर्माताओं में सर्वश्रेष्ठ और सभी बातों में शुद्धतम पुरुष थे। उन्होंने मानवता के लिए उससे कहीं अधिक काम किया, जितना कि उनसे पहले किसी ने किया था।"

लेनिन की मृत्यु सोवियत संघ के जनसाधारण के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के कमकरों और सर्वहारा के लिए भारी क्षति थी। उससे दुनिया के साम्राज्यवादी बड़े प्रसन्न हो रहे थे। उन्हें आशा हो चली थी कि लेनिन के बाद सर्वहारा की सरकार और अधिनायकतत्व को सँभालनेवाला कोई नहीं रहेगा और रूस टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। अपने मंसूबों में अनेक वार असफल, गुप्त या प्रकट क्रांति-विरोधी भी, जो देश में मौजूद थे, संतोष की साँस लेने लगे। लेकिन, लेनिन ने अपने पीछे लेनिनवाद को छोड़ा था, जो हर परिस्थिति में सोवियत जनता और नेताओं का पथ-प्रदर्शन करने के लिए सक्षम था। लेनिन ने पहले ही से स्तालिन जैसे योग्य उत्तराधिकारी के हाथ में नेतृत्व दे दिया था।

मृत्यु के दिन (21 जनवरी को) पार्टी की केंद्रीय कमिटी की बैठक हुई। लेनिन की मृत्यु के सम्बन्ध में अगले दिन केंद्रीय कमेटी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया :

"21 जनवरी को साथी लेनिन चल वसे।

"मृत्यु ने हमसे उस पुरुष को छीन लिया, जिसने फौलाद जैसी मजबूत हमारी पार्टी की स्थापना की, जिसने साल-दर-साल उसका निर्माण किया, जारशाही प्रहारों के बीच उसका नेतृत्व किया और कमजोरों, ढुलमुलयकीनों तथा भगोड़ों के खिलाफ, मजदूर वर्ग के विश्वासघातियों के खिलाफ, जबर्दस्त संघर्ष करते हुए उसे फौलादी बनाया। मृत्यु ने हमसे उस पुरुष को छीन लिया जिसके नेतृत्व में वोल्शेविकों की अजेय पाँतों ने 1905 ई. में लड़ाई लड़ी और प्रतिक्रांति के काल में पीछे हटकर फिर आक्रमण आरम्भ किया, जो स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध लड़नेवालों की पहली पंक्ति के योद्धा थे और जिन्होंने मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रांतिकारियों के विचार-संबंधी प्रभाव को नंगा करके खतम कर दिया। मृत्यु ने हमसे उस पुरुष को छीन लिया, जिसके लड़ाकू नेतृत्व में हमारी पार्टी ने युद्ध के धुएँ में घिरे हुए भी दृढ़ संकल्प के साथ अक्तूबर क्रांति के लाल झंडे को सारे देश के ऊपर फहरा दिया, शत्रु के प्रतिरोध को चूर कर

दिया और पहले के जारशाही रूस में मेहनतकशों के शासन को मजबूती के साथ स्थापित कर दिया। मृत्यु ने हमसे कम्युनिस्ट इंटर्नेशनल के संस्थापक, विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के नेता को छीन लिया, उसने हमसे उस पुरुष को छीन लिया है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा का प्रेम और सम्मान प्राप्त था, जो उत्पीड़ित प्राची का ध्वज था, जो रूस में कमकर-अधिनायकत्व का मुखिया था।

"मार्क्स के बाद महान सर्वहारा मुक्ति-आंदोलन ने ऐसे विराट मानव को नहीं पैदा किया, जैसेकि हमारे दिवंगत नेता, गुरु और मित्र थे। लेनिन में सर्वहारा के सभी वास्तविक रूप से महान और वीरतापूर्ण गुण मौजूद थे—एक निर्भय मस्तिष्क, एक लौह, अडिग, अदम्य और सभी बाधाओं को पार करने में समर्थ इच्छाशक्ति, दासता और उत्पीड़न के प्रति पवित्र और मरणान्तक घृणा, पहाड़ों को हिला देनेवाला क्रांतिकारी उत्साह, जनता की सृजनात्मक शक्ति में असीम विश्वास और संगठन की विशाल क्षमता। उनका नाम पश्चिम से पूर्व तक और दक्षिण से उत्तर तक नये विश्व का प्रतीक हो गया है।

"···· वह प्रत्येक छोटी-से-छोटी बात को पकड़ने और उसको उपयोग में लाने में अद्वितीय थे। आवश्यकता पड़ने पर दुर्धर्ष आक्रमण करने में, नये आक्रमण की तैयारी के लिए आवश्यकता पड़ने पर पीछे हटने में वह सक्षम थे। वह पिटे-पिटाये सूत्र से कभी चिपके नहीं रहते थे, न ही उन्होंने अपनी चतुर, सर्वदर्शी दृष्टि को किसी बात से संकुचित होने दिया, क्योंकि वह सर्वहारा सेना के जन्मजात नेता, मजदूर वर्ग की अद्‌भुत प्रतिभा थे।"

5. महान अर्थी

21 से 23 जनवरी तक स्तालिन के नेतृत्व में पार्टी कमिटी के सदस्य, सोवियत सरकार के सदस्य, द्वितीय अखिल-संघीय सोवियत कांग्रेस और मास्को कमकर संगठनों के प्रतिनिधि-मंडल गोर्की पहुँचे। आस-पास के गाँवों के किसान भी अपने नेता को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए वहाँ आ गये।

23 जनवरी को 10 बजे सवेरे लेनिन की अर्थी गेरासिमोवो स्टेशन पर पहुँचायी गयी। इस अर्थी को लेकर 1 बजे दिन को ट्रेन मास्को पहुँची। यहाँ से शोकाकुल जनता की घनी भीड़ के बीच से झंडों से ढँकी अर्थी को मजदूर-संघ भवन में ले जाया गया और वहाँ उसे स्तम्भशाला के चबूतरे पर रखा गया।

चार दिन और चार रात, भारी सर्दी में भी, लाखों कमकर, किसान, लाल सैनिक, आफिस-कर्मचारी, मास्को तथा दूसरे नगरों के संगठनों के प्रतिनिधि लगातार अर्थी के सामने से गुजरते और अपने नेता से विदाई लेते रहे। 27 जनवरी को 9 बजे सबेरे, अर्थी मजदूर-संघ-भवन से रेड स्क्वायर में लायी गयी।

4 बजे शाम को अन्येष्टि गान, कारखानों के भोंपुओं की आवाज और तोपों की गड़गड़ाहट के बीच लेनिन की अर्थी को समाधि-गृह में रखा गया।

यह समाधि-गृह आज एक नया और महान तीर्थ बन गया है। दुनिया के सभी भागों के लोग यहाँ आकर श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं, और इस महान नेता के दर्शन और उसकी अनुस्मृति से प्रेरणा लेकर जाते हैं। अन्त्येष्टि-क्रिया के दिन सारी दुनिया के कमकरों ने पाँच मिनट मौन रखा। निश्चित समय पर सभी सोवियत कारखाने बन्द हो गये, सड़कों और रेलवे लाइनों का यातायात रुक गया। उन्होंने अपने गुरु, सभी उत्पीड़ितों के गुरु, अपने मित्र और हितैषी की विदाई के प्रति शोक प्रकट किया।

6. गौरवपूर्ण शपथ

26 जनवरी, 1924 को द्वितीय अखिल-संघीय सोवियत कांग्रेस का लेनिन-स्मारक अधिवेशन हुआ। इसमें स्तालिन ने भाषण दिया। यह 'स्तालिन की शपथ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गौरवपूर्ण शपथ में स्तालिन ने कहा था :

"हम कम्युनिस्ट एक खास साँचे में ढले हुए लोग हैं। हमारा निर्माण कुछ विशेष तत्त्वों से हुआ है। हम वह है जो महान सर्वहारा रण-विशारद की फौज, कामरेड लेनिन की फौज है। मनुष्य के लिए

इस फौज का सैनिक होने से ज्यादा गौरव की बात दूसरी नहीं है। जिस पार्टी के जन्मदाता और नेता कामरेड लेनिन हैं उसके सदस्य बनने से ज्यादा गौरव की बात और दूसरी नहीं है।…

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम पार्टी के सदस्य के महान नाम को ऊँचा रखें और उसकी पवित्रता की रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम आपकी इस आज्ञा को सम्मान सहित पूरा करेंगे !…

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि आँख की पुतली की तरह हम अपनी पार्टी की एकता की रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे !…

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम सर्वहारा अधिनायकत्व को दृढ़ करें और उसकी रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करने में कुछ उठा न रखेंगे !…

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम अपनी पूरी शक्ति से मजदूरों और किसानों के सहयोग को दृढ़ करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे !…

"कामरेड लेनिन ने बार-बार इस बात पर जोर दिया था कि अपने देश की जातियों के स्वेच्छा से बने हुए संघ को बनाये रखना जरूरी है, प्रजातन्त्र संघ के ढाँचे के अन्दर जातियों के भाईचारे के सहयोग को बनाये रखना जरूरी है। हम से विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम प्रजातन्त्रों के संघ को दृढ़ करें और उसका प्रसार करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे !…

"कई बार लेनिन ने हमें बताया था कि लाल फौज को मजबूत करना और उसकी हालत सुधारना हमारी पार्टी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कर्तव्य है।…साथियो, आओ, हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपनी लाल फौज और लाल जल-सेना को मजबूत बनाने में कुछ भी न उठा रखेंगे !…

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल के उसूलों के प्रति वफादार रहें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि तमाम दुनिया के मेहनतकशों के संघ, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल को मजबूत करने और उसका विस्तार करने में हम अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे !"

चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में ही व्लादिमिर इलिच लेनिन ने पूँजीपतियों और जमींदारों के पंजे से कमकरों और किसानों को मुक्त करने का जो व्रत लिया था, उसका उन्होंने अपने जीवन-भर पालन किया। उन्होंने समाजवादी सर्वहारा क्रांति को सफलता की मंजिल पर पहुँचाया। दुनिया के छठे हिस्से में समाजवाद की स्थापना तथा निर्माण के लिए उन्होंने अपने जीवन के एक-एक क्षण को लगा दिया। इस सफलता के महत्व को उनसे बढ़कर और कौन समझ सकता था। उन्होंने लिखा था :

"हमें इस बात के लिए अभिमान करने तथा अपने को सौभाग्यशाली समझने का अधिकार है कि हम पृथ्वी के एक कोने से पूँजीवाद के उस बनैले पशु को खदेड़ भगाने में पहले थे, जिसने दुनिया को खून में डुबोया, मानवता को भूख और वर्बरता का शिकार बनाया और जो मृत्यु की यातना में कितना ही भीषण क्यों न बन जाय, अवश्य जल्दी ही नष्ट होगा।"

लेनिन मार्क्सवाद के परम मर्मज्ञ ही नहीं थे, वह मानव समाज को बदलने में उसे आधार मानकर क्रांतिकारी कार्वाइयों का संचालन करने में भी अद्वितीय थे। स्तालिन ने कहा था :

"लेनिन मार्क्सवाद के सिद्धांतों पर पूरी तरह से अपने को आधारित करते हुए मार्क्स और एंगेल्स के सच्चे भक्त तथा…शिष्य रहे।"

लेनिन वैज्ञानिक साम्यवाद के इन दोनों संस्थापकों की प्रत्येक बात और प्रत्येक विचार को अत्यन्त सम्मान

के साथ देखते थे। वह उनमें गन्दी मिलावट करने वालों के किसी भी प्रश्न को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन, साथ ही वह लगातार इस वात पर जोर देते थे कि मार्क्सवाद मतवाद नहीं है, वह क्रिया के लिए एक जबर्दस्त पथ-प्रदर्शक है, और मार्क्सवादी सिद्धांतों का चारों तरफ और भी विकास करने की आवश्यकता है। वह कहते थे कि हमें नयी ऐतिहासिक स्थिति और नयी परिस्थिति के विश्लेषण में मार्क्सवादी अनुसंधान के ढंग का उपयोग करना चाहिए। लेनिन ने मार्क्सवाद को और आगे विकसित किया तथा उसे और भी ऊँची मंजिल पर पहुँचाया। लेनिन द्वारा विकसित मार्क्सवाद ही लेनिनवाद है, जिसने विश्व की मेहनतकश जनता का मार्ग आलोकित किया है।

लेनिन को रूसी जाति का वड़ा अभिमान था। वह गर्व से कहते थे कि रूसी जाति ने हमेशा विदेशी आक्रमणकारियों के मंसूवों को अपने अदम्य उत्साह, निर्भीकता तथा जबर्दस्त आत्म-वलिदान से विफल किया है। रूसी जाति ने संस्कृति, विज्ञान और कला के हरेक क्षेत्र में अपने को ही नहीं, दुनिया को भी समृद्ध किया है। सांस्कृतिक क्षेत्र में लेनिन दुनिया के सभी अंतर्राष्ट्रीयतावादी समाजवादियों के आदर्श हैं। वह अपने महान कवियों पुश्किन, लेर्मन्तोफ को बड़ी श्रद्धा से देखते ही नहीं थे, बल्कि उनकी कृतियों का बराबर पारायण करते थे। रूस के दूसरे महान लेखकों के प्रति भी उनके यही भाव थे। उन्होंने अपनी जातीय संस्कृति के साथ घनिष्ठ प्रेम दिखलाकर वतला दिया कि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का राष्ट्रीय सद्भावनाओं से कोई विरोध नहीं है, बल्कि जो राष्ट्रीय सद्भावनाओं और सफलताओं को ताक पर रखकर अंतर्राष्ट्रीयतावादी बनना चाहता है, वह आकाशबेल की तरह विना जड़ का है, और उससे कोई आशा नहीं रखी जा सकती। लेनिन ने ही वह पथ आलोकित किया जिससे सोवियत भूमि जैसे वहुजातिक राष्ट्र ने राष्ट्रीयता की भावनाओं को सुरक्षित रखते हुए जातियों के पारस्परिक वैमनस्य को अतीत की वात वना दिया, और 'रूप में जातीय तथा भावों में समाजवादी' जातीय राज्यों की नींव डालकर उन्हें मजवूत वनाया।

लेनिन की मृत्यु के तेरह वर्ष बाद 11 दिसम्बर, 1937 में अपने अविस्मरणीय गुरु का स्मरण करते हुए स्तालिन ने एक संसदीय निर्वाचन सभा में कहा था :

> "लोगों को अपने प्रतिनिधि से माँग करनी चाहिए कि वे लेनिन जैसे राजनीतिज्ञ की तरह अपनी जगहों पर वने रहें कि वे अपने कामों में उतने ही स्पष्ट और दृढ़ हों, जितने लेनिन थे; कि वे युद्ध में वैसे निर्भय तथा शत्रु के प्रति वैसे ही निर्मम हों, जैसे लेनिन थे; कि वे कठिनाइयों के पैदा होने या खतरे के उपस्थित होने पर घवड़ाहट या घवड़ाहट जैसी किसी भी चीज से वैसे ही मुक्त रहें, जैसे लेनिन थे; कि वे दुरूह समस्याओं को हल करने में वैसे ही चतुर और अनातुर हों, जैसे लेनिन थे; कि वे वैसे ही सच्चे और ईमानदार हों, जैसे लेनिन थे; और यह कि वे अपनी जनता को उसी तरह प्यार करें, जैसे लेनिन प्यार करते थे।"

लेनिन की मृत्यु को कौन मृत्यु कह सकता है ? वह सोवियत जनता के हृदय में ही जीवित नहीं हैं, वल्कि साम्यवाद के पथ पर आरूढ़ आधी मावनता के हृदय और मस्तिष्क में जीवित हैं। यही नहीं, सारी दुनिया के सर्वहारा अपने आराध्य देव की तरह बड़े प्रेम और सम्मान के साथ उनकी पूजा करते हैं। उनकी अमर वाणी से शिक्षा लेते हुए वे उनके जीवित रहने के साक्षी हैं।

परिशिष्ट

वर्ष-पत्र (1870--1924 ई.)

सन्	स्थान	घटना विवरण
1870 अप्रैल 22	सिम्विर्स्क (उलियानोव्स्क)	व्लादिमिर इलिच उलियानोफ का जन्म
1879 अगस्त	(उलियानोव्स्क)	सिम्विर्स्क हाई स्कूल में प्रवेश
1887 जून 22	(उलियानोव्स्क)	हाई स्कूल पास
1887 अगस्त 25	कजान	युनिवर्सिटी की कानून-कक्षा में प्रवेश
1887 दिसम्बर 17	कजान	विद्यार्थियों की एक सभा में भाग लेने के कारण गिरफ्तारी और युनिवर्सिटी से निष्कासन
1887 दिसम्बर 19	कजान प्रान्त के काकुश्किनो गाँव में	नजरवन्दी
1888 शरद्-1889 मई	कजान को वापिस	'कपिताल' का अध्ययन और गुप्त मार्क्सवादी चक्र में प्रवेश
1889-93	समारा	गुप्त तरुण संगठनों में मार्क्सवाद का प्रचार
1891 नवम्बर 27	पीतरबुर्ग युनिवर्सिटी	कानून की परीक्षा में उत्तीर्ण
1893 29 अगस्त-1895	पीतरबुर्ग	कमकरों में क्रांतिकारी काम
1893 शरद्	पीतरबुर्ग	'बाजार का तथाकथित प्रश्न' लेख गुप्त मार्क्सवादी चक्र में पढ़ा
1895 मई 7	विदेश में	प्लेखानोफ आदि से सम्वन्ध
1895 अक्तूबर-दिसम्बर	पीतरबुर्ग	मुक्ति-संघर्ष लीग की स्थापना
1895 दिसम्बर 20	पीतरबुर्ग	गिरफ्तारी
1897 मार्च 6	मास्को	पूर्वी-साइवेरिया में निर्वासन
1897 का अन्त-1900	शुशेन्स्कोये	निर्वासित जीवन
1899 फरवरी 11	शुशेन्स्कोये	'रूस में पूँजीवाद का विकास' की रचना
1900 फरवरी 10	शुशेन्स्कोये	निर्वासन-अवधि की समाप्ति
1900 जून 3	पीतरबुर्ग	10 दिन के लिए गिरफ्तारी
1900 जुलाई 29	परदेश में	राजनीतिक निर्वासित के रूप में विदेश को प्रस्थान

1900 दिसम्वर 24	म्यूनिख	'इस्क्रा' का प्रथम अंक प्रकाशित
1902 मार्च	म्यूनिख	'क्या करें' पुस्तक प्रकाशित
1902 अप्रैल 12	लन्दन में	'इस्क्रा' का हेड-क्वार्टर बदलने से म्यूनिख से लन्दन आये।
1903 मई	जनेवा	'इस्क्रा' का हेड-क्वार्टर बदलने से लन्दन से जनेवा आये।
1903 मई	जनेवा	'गाँव के गरीबों से' पुस्तक जनेवा में प्रकाशित
1903 जुलाई 30-अगस्त 23	ब्रुसेल्स,लन्दन	रू. स. ज. म. पार्टी की दूसरी कांग्रेस में भाग लिया, कांग्रेस के उपाध्यक्ष चुने गये, कांग्रेस द्वारा 'इस्क्रा' के सम्पादक-मंडल में निर्वाचित
1903 नवम्बर 1	जनेवा	'इस्क्रा' के सम्पादक-मंडल से इस्तीफा
1904 मई 19	जनेवा	'एक कदम आगे, तो दो कदम पीछे' पुस्तक जनेवा से प्रकाशित
1905 जनवरी 4	जनेवा	अखबार 'व्पेर्योद' का प्रकाशन
1905 अप्रैल 25-मई 10	लन्दन	तृतीय पार्टी कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन
1905 मई 27	जनेवा	'प्रोलेतारी' (सर्वहारा) पत्र का प्रकाशन
1905 नवम्बर 20 या 21	रूस	स्वदेश लौटना
1906 अप्रैल 23-मई 8	स्टाकहोम	चतुर्थ पार्टी कांग्रेस
1906 मई	पीतरबुर्ग	कानूनी दैनिक बोल्शेविक पत्र 'बोल्ना' का सम्पादन
1906 जून	पीतरवुर्ग	'व्पेर्योद' पत्र का सम्पादन
1906 जुलाई	पीतरवुर्ग	'इको' (प्रतिध्वनि) पत्र का सम्पादन
1906 सितम्बर 3	पीतरवुर्ग	'प्रोलेतारी' पत्र का सम्पादन
1906 नवम्बर 16-20	तामरफोर्स	रू. स. ज. म. पार्टी की दूसरी अखिल-रूसी कान्फ्रेंस में सम्मिलित
1907 मई 13-जून 1	लन्दन	रू. स. ज. म. पार्टी की पाँचवीं कांग्रेस में भाग लिया।
1907 अगस्त 3-5	कोतका (फिनलैंड)	रू. स. ज. म. पार्टी की तीसरी अखिल-रूसी कान्फ्रेंस में दूयूमा के बायकाट का विरोध
1907 अगस्त 18-24	स्टुटगार्ट	द्वितीय इन्टर्नेशनल की कांग्रेस में सम्मिलित
1907 नवम्बर 18-25	हेलसिंगफोर्स (फिनलैंड)	रू. स. ज. म. पार्टी की चौथी अखिल-रूसी कान्फ्रेंस में भाग लिया
1908 जनवरी 7	जनेवा	द्वितीय बार राजनीतिक निर्वासित के रूप में जनेवा प्रस्थान
1908 अप्रैल	कापरी द्वीप	गोर्की से मुलाकात।
1908 मई-जून	लन्दन	व्रिटिश म्युजियम में अध्ययन
1908 दिसम्बर	पेंरिस	पेरिस आये
1909 जनवरी 3-9	पेरिस	रू. स. ज. म. पार्टी की पाँचवीं अखिल-रूसी कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन
1909 मई	पेंरिस	"भौतिकवाद और अनुभव-सिद्ध आलोचना' का प्रकाश (मास्को में)

1910 अगस्त	कापरी द्वीप	गोर्की के पास गये
1910 अगस्त 28-सितम्वर 3	कोपेनहैगन (डेनमार्क)	द्वितीय इंटर्नेशनल की कांग्रेस में भाग लिया
1910 नवम्बर-दिसम्बर	पेरिस	लियो तात्सताय की मृत्यु पर कई लेख लिखे
1910 दिसम्बर 29	पेरिस	'ज्वेज्दा' का प्रथम अंक पीतरवुर्ग में प्रकाशित
1911 जून 5-17	पेरिस	रू. स. ज. म. पार्टी के मेम्बरों की कई कान्फ्रेंसें
1911 गर्मियाँ	लोंगजूम्यो (फ्रांस)	रूस से आये पार्टी कर्मियों के स्कूल में भाषण
1911 सितम्बर 23-24	जूरिच	इंटर्नेशनल समाजवादी ब्यूरो की बैठक में भाग लिया
1912 जनवरी 18-30	प्राग	रू. स. ज. म. पार्टी की छटी अखिल-रूसी कान्फ्रेंस का पथ-प्रदर्शन
1912 मई 5	प्राग	पीतरवुर्ग में 'प्रावदा' का प्रथम अंक प्रकाशित
1912 जुलाई 2	क्राकों	क्राकों आये
1913 जनवरी 10-14	क्राकों	रू. स. ज. म. पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की कान्फ्रेंस की अध्यक्षता
1913 अक्तूबर 5-14	पोरोनिनो	रू. स. ज. म. पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की पोरोनिनो में होने वाली कान्फ्रेंस की अध्यक्षता
1914 जनवरी-फरवरी	व्रुसेल्स	लातवियाई स. ज. पार्टी की चौथी कांग्रेस में भाग लिया
1914 अगस्त 8	नोवी तार्ग (आस्ट्रिया)	गिरफ्तारी
1914 अगस्त 29	स्विट्जरलैंड	गिरफ्तारी से मुक्ति और स्विट्जरलैंड को प्रस्थान
1914 नवम्बर 1	जनेवा	'सोत्सियाल देमोक्रात' का पुनः प्रकाशन
1915 सितम्वर 5-8	जिमिरवाल्ड	अंतर्राष्ट्रीयतावादियों के सम्मेलन में भाग लिया
1916 जनवरी	स्विट्जरलैंड	'फोरवोर्टे' (संदेशवाहक) का प्रथम अंक प्रकाशित
1916 अप्रैल 24-30	किन्थल (स्विट्जरलैंड)	अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों की कान्फ्रेंस में भाग लिया
1916 जून	जूरिच	'साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था' पुस्तक का लेखन-कार्य समाप्त
1917 अप्रैल 9	जूरिच	स्विट्जरलैंड से रूस के लिए प्रस्थान
1917 अप्रैल 16	पेत्रोग्राद	राजधानी में लौटे
1917 अप्रैल 18	पेत्रोग्राद	प्रसिद्ध अप्रैल-थीसिस को बोल्शेविकों की एक सभा में पेश किया
1917 मई 7-12	पेत्रोग्राद	रू. स. ज. म. पार्टी की सातवीं (अप्रैल) कान्फ्रेंस का संचालन
1917 जून 17-22	पेत्रोग्राद	सोवियतों की पहली कांग्रेस में भाषण
1917 जुलाई 24-सितम्बर	सेस्त्रोरेत्स्क, राजलिव	अज्ञातवास
1917 अगस्त-सितम्बर	राजलिव	'राजसत्ता और क्रांति' पुस्तक के लिए तैयारी
1917 अगस्त 8-16	राजलिव	रू. स. ज. म. पार्टी की छटी कांग्रेस के अनुपस्थित अध्यक्ष
1917 सितम्बर आरम्भ	हेलसिंगफोर्स	गुप्त रूप से हेलसिंगफोर्स आये

1917 सितम्बर 25-27	हेलसिंगफोर्स	'बोल्शेविक अवश्य शक्ति पर अधिकार करें' नारा देते हुए केन्द्रीय कमिटी को पत्र
1917 सितम्बर 30	विवोर्ग	विवोर्ग आये
1917 अक्तूबर 20	पेत्रोग्राद	गुप्त रीति से पेत्रोग्राद आये
1917 अक्तूबर 23	पेत्रोग्राद	केन्द्रीय कमिटी द्वारा सशस्त्र विद्रोह का निर्णय
1917 अक्तूबर 29	पेत्रोग्राद	केंद्रीय कमिटी की अध्यक्षता, पार्टी केन्द्र का निर्वाचन
1917 अक्तूबर 31	पेत्रोग्राद	जिनोवियेफ और कामेनेफ को पार्टी से निकालने के लिए पत्र
1917 नवम्बर 16	पेत्रोग्राद	जातियों के अधिकारों की घोषणा
1917 नवम्बर 27-दिसम्बर 1	पेत्रोग्राद	किसान डेपुटियों की सोवियतों की असाधारण कांग्रेस में भाषण
1918 जनवरी 14	पेत्रोग्राद	समाजवादी सेना की प्रथम टुकड़ियों में भाषण
1918 जनवरी 19	पेत्रोग्राद	पूँजीवादी संविधान सभा को भंग करने के संबंध में अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की मीटिंग में भाषण
1918 जनवरी 23-31	पेत्रोग्राद	सोवियतों की तृतीय अखिल रूसी कांग्रेस का संचालन
1918 मार्च 6-8	पेत्रोग्राद	रू. स. ज. म. पार्टी की सातवीं कांग्रेस, पार्टी के नाम में परिवर्तन
1918 मार्च 10-11	मास्को	मास्को नयी राजधानी बना
1918 मार्च 14	मास्को	सोवियतों की चतुर्थ असाधारण कांग्रेस, जर्मनी के साथ संधि स्वीकृत
1918 अगस्त 20	मास्को	अमरीकी कमकरों को पत्र
1918 अगस्त 30	मास्को	एक आतंकवादी की गोली से घायल
1918 सितम्बर 16	मास्को	पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की बैठक में भाग लिया
1918 नवम्बर 6-9	मास्को	सोवियतों की छठी अखिल-रूसी कांग्रेस का कार्य-संचालन
1918 दिसम्बर का अन्त	मास्को	'सर्वहारा क्रांति और गद्दार काट्स्की' पुस्तक प्रकाशित
1919 मार्च 2-6	मास्को	कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की प्रथम कांग्रेस का कार्य-संचालन
1919 मार्च 18-23	मास्को	आठवीं पार्टी कांग्रेस का संचालन
1919 मई 21	मास्को	पेत्रोग्राद की रक्षा के लिए स्तालिन को भेजा
1919 जुलाई 9	मास्को	लेनिन ने नारा दिया "सबकुछ देनिकिन के विरुद्ध लगा दो !"
1919 अगस्त 24	मास्को	कोलचक पर विजय के सम्बन्ध में मजदूरों-किसानों को पत्र
1919 दिसम्बर 2-4	मास्को	पार्टी की आठवीं अखिल-रूसी कान्फ्रेंस का संचालन

1919 दिसम्बर 5-9	मास्को	सोवियतों की सातवीं अखिल रूसी कांग्रेस का संचालन
1919 दिसम्बर 28	मास्को	देनिकिन पर विजय के संबंध में उक्रेनी मजदूरों-किसानों को पत्र
1920 मार्च 29-अप्रैल 5	मास्को	नवीं पार्टी कांग्रेस का संचालन
1920 अप्रैल 22	मास्को	अपने नेता की 50वीं वर्षगाँठ पर सारे देश में उत्सव
1920 मई 5	मास्को	पोलैंड द्वारा युद्ध छेड़ने पर अ. रू. केन्द्रीय कार्यकारिणी के सामने भाषण
1920 जून	मास्को	'उग्रवादी कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज' पुस्तक प्रकाशित
1920 जुलाई 19-अगस्त 7	पेत्रोग्राद-मास्को	कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की द्वितीय कांग्रेस का संचालन
1920 अगस्त 2	मास्को	रेंगल की पराजय के लिए स्तालिन की नियुक्ति
1920 सितम्बर 22-25	मास्को	पार्टी की अ. रू. नवीं कान्फ्रेंस का कार्य-संचालन
1920 अक्तूबर 2	मास्को	तरुण कम्युनिस्ट संघ की तृतीय अखिल-रूसी कांग्रेस में भाषण
1920 दिसम्बर 22-29	मास्को	सोवियतों की आठवीं कांग्रेस
1921 फरवरी 21	मास्को	'एक अकेली आर्थिक योजना' शीर्षक लेख लिखा
1921 मार्च 2	मास्को	गुर्जी सोवियत गणराज्य के निर्माण पर बधाई
1921 मार्च 8-16	मास्को	पार्टी की दसवीं कांग्रेस का संचालन और 'नवीन आर्थिक नीति' आदि पर रिपोर्ट
1921 मई 26-28	मास्को	पार्टी की दसवीं अखिल-रूसी कान्फ्रेंस का संचालन
1921 जून 22-जुलाई 12	मास्को	कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की तीसरी कांग्रेस का संचालन
1921 दिसम्बर 23	मास्को	सोवियतों की नवीं अखिल-रूसी कांग्रेस में गृह और विदेश नीति पर रिपोर्ट
1922 मार्च 12	मास्को	'लड़ाकू भौतिकवाद का महत्व' शीर्षक लेख लिखा
1922 मार्च 27-अप्रैल 2	मास्को	पार्टी की ग्यारहवीं कांग्रेस का संचालन
1922 मई का आरम्भ	गोर्की	सख्त बीमार
1922 अगस्त 5	गोर्की	पार्टी की बारहवीं अखिल-रूसी कान्फ्रेंस का अभिनन्दन
1922 अक्तूबर 2	मास्को	फिर काम पर आ गये
1922 नवम्बर 13	मास्को	कम्युनिस्ट इन्टर्नेशनल की चौथी कांग्रेस में रिपोर्ट
1922 नवम्बर 20	मास्को	मास्को-सोवियत की बैठक में अंतिम भाषण
1922 दिसम्बर का आरम्भ	मास्को	फिर सख्त बीमार
1922 दिसम्बर 12	मास्को	क्रेमलिन में अन्तिम बार अपने आफिस में
1923 जनवरी-मार्च	मास्को	अन्तिम लेख लिखवाये
1923 मई का मध्य	गोर्की	मास्को से विदाई
1924 जनवरी 21, शाम 6 बजकर 50 मिनट पर	गोर्की	महाप्रयाण

■■